Digitized by eGangotri

ॐ

THE VEDIC DHARMA

VOL. II - 1929

013

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वर्ष १०

अंक ७

क्रमांक ११५

आषाढ संवत् १९८६

जोलाई सन १९२९

वैदिक धर्म.

वैदिक तत्त्वज्ञान प्रचारक मासिक पत्र।

संपादक—श्रीपाद दामोदर सातवळेकर।

स्वाध्यायमंडल, औंध (जि. सातारा)

श्रेष्ठ बनो !

ममत्तु नः परिज्मा वसर्हा ममत्तु वातो अपां वृषण्वान् ।
शिशीतमिन्द्रापर्वता युवं नस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः ॥

ऋ. १।१२२।३

(वसर्हा परिज्मा) सबका निवास करने में समर्थ और जिस की चारों ओर पृथ्वी भ्रमण करती है, ऐसा सूर्य (नः ममत्तु) हमें हर्षित करे। (अपां वृषण्वान् वातः) जलकी वृष्टि करनेवाले मेघोंके साथ वायु (ममत्तु) हमें आनंद देवे। हे इंद्र और पर्वत ! (युवं नः शिशीतं) तुम दोनों हम सबको उत्तम तीक्ष्ण बुद्धिसे युक्त करो और (विश्वे देवाः तत् नः वरिवस्यन्तु) सब देव अपनी शक्तिसे हमें श्रेष्ठ स्थानमें पंहुंचने योग्य बनावें।

इस सृष्टिमें सूर्य, वायु, मेघ, वृष्टि, जल आदि प्रचंड शक्तिवाली देवताएं हैं, ये हमें सुख देवें अर्थात् उनसे प्राप्त होनेवाला सुख स्वीकारने योग्य हमारा मन बने। उग्र सूर्य और शीत जल देनेवाला मेघ हमें उत्साह देवे। मनुष्यको उचित है कि वह बाह्य सृष्टिकी न्यूनाधिकताके कारण दुःखी न होवे। बाहेर की ऋतु आदिकी जोभी व्यवस्था बने उसमें आनन्दका अनुभव करके उत्साहसे अपनी उन्नतिके साधन करनेका अनुष्ठान हरएक को करना योग्य है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यज्ञोपवीत
क्यों पहिना जाता है ?

यज्ञोपवीत आर्यों में बहुत बडा महत्त्व दिया गया है और उस के नियम जो बनाये गये हैं वह यह हैं।

१ नियम पहिला तीन लर तागा किया जाता है।
२- " दूसरा ९६वे छानवे चावे का निर्माण किया जाता है।
३- " तीसरा में फिर तीन लर किया जाता है।
४- " चौथा फिर तीन लर किया जाता है।
५- " पाँचवाँ तीन गाँठ दी जाती हैं।
६- " छठवाँ कहीं कहीं छः गाँठ भी दी जाती है।
७- " सातवाँ मंत्र पढ कर धारण किया जाता है।

नियम पहिला— ब्रह्मचारी जब वेदारम्भ करने के लिये माता पिता के यहाँ से यज्ञोपवीत धारण कर गुरुकुल में पधारता है, उस समय ब्रह्मचारी से आचार्य उच्चारण कराता है। कि यह तीन तागा का यज्ञोपवीत धारण कर परमात्मासे विनय करो कि तीनों वेद अर्थात् ऋक्, यजु, साम का ज्ञान हो।

नियम दूसरा - यह ९६ वे छानवे चावे का यज्ञोपवीत धारण करते हैं, जो ९६ वे छानवे प्रकार की व्याधियाँ हैं याने शारीरिक, आधिभौतिक, आधिदैविक अर्थात् इन तीन प्रकार के तापों में एक एक में ३२ बत्तीस प्रकार की व्याधियाँ हैं उन से निवारित होवें।

नियम तीसरा- ध्येय याने ज्ञान, कर्म, उपासना तीनों प्राप्त हों।

" चौथा- भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों काल का ज्ञान हो।

" पँचवा- धर्म, अर्थ, काम की कामना पूरी हो।

" छठवाँ- छः ऋतुओं में कोई कष्ट न हो।

" सातवाँ- निम्न लिखीत मंत्र पढ कर यज्ञोपवीत धारण करता है जो मंत्र में खुलासा पढने से विदित हो जाता है।

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्। आयुष्यमग्र्यं प्रति मुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥

ऊपर लिखे हुये लाभ के लिये यह बडे कामसे यज्ञोपवीत का निर्माण ऋषियों ने किया था, वरना तीन, छानवे ९६. वे, फिर तीन, फिर तीन, या छः की जरूरत नहीं, नहीं तो पाँच, १०० पाँच पाँच किया जाता।

आशा है विद्वज्जन विचार करेंगें और जो त्रुटि होगी अपनी अपनी सम्मति प्रदान करने की कृपा करेंगे।

बैजनाथ सिंह
इनानजांव
ब्रह्मा

SPS Central Library
Acc No.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अहिंदू की शुद्धि

(अहिंदु को हिंदू बनाना।)

लेखांक १

आजकल एक प्रश्न समाज के सन्मुख विशेष रूपसे उपस्थित है। वह प्रश्न है अ-हिंदू को हिंदू बना लेना उचित है या नहीं। अबतक अनेक अहिंदू हिंदू कर लिए गये हैं। विशेषकर पंजाब में इस बात में बहुत कुछ कार्य हुआ है।

इस प्रश्न के दो भाग हैं। एक जन्मसे जो अहिंदु है उसे हिंदू बना लेना और दूसरा किसी कारणवश जो पर-मत में चला गया था उसे पुनः हिंदू बना लेना। अतः आवश्यक यही है कि शुद्धि की शास्त्रीय चर्चा के समय इन दोनों भागों पर विचार किया जाय। इसके लिए पहले निश्चय करना होगा कि हिंदू कौन और अ-हिंदू कौन। जब तक यह निश्चय नहीं होजाता कि हिंदू और अहिंदू के निश्चत लक्षण क्या हैं तब तक कैसे कह सकते हैं कि अ-हिंदू को हिंदू बनाया जाय या न बनाया जाय।

हिंदू शब्द का अर्थ।

" जो हिंसा से दूर रहता है " वह हिंदू है। बुद्धोत्तर काल में इसी अर्थ में यह शब्द बनाया गया। हिंदू धर्म में स्थित अहिंसा का ही बुद्धजीने अवास्तव प्रचार किया। और प्रायः सब जनता पर उसका स्थिर परिणाम भी हुआ। इसी से सब जनता का झुकाव " हिंसासे दूर रहने " की ओर हुआ। आगे चलकर जब सनातन आर्य धर्म का पुनरुद्धार करने का प्रयत्न वैदिक धर्मियोंने किया, तब इस लोकप्रिय अहिंसा की ओर ध्यान न देते हुए वैदिक धर्म को पुनः उठाना असंभव था। बुद्ध की अहिंसा का संस्कार भारतवासियोंपर ऐसा दृढमूल था इसीसे सानातन वैदिक धर्म का पुनरुद्धार करनेवाले आर्यवीर को यह बतलाना आवश्यक था कि यह सिद्धांत हमारे पास है ही। यह तो अनादि काल से चला आया है। बुद्धने इसमें कोई नई बात नहीं बतलाई। हमारे धर्मका नामभी तो इसी तत्वका प्रतिपादन करता है। हिंसा से जो दूर रहता है वह हिंदू। हमारे धर्मका परम ध्येय अहिंसा है। इस प्रकार प्रतिपादन करनेवाला यह शब्द बौद्ध धर्मको गिरानेकी इच्छा करनेवाले आर्यवीरों द्वारा इस अर्थ में प्रचलित किया गया। सब जनताका झुकाव पूर्ण रीतिसे अहिंसा की ओर था अतः यह शब्द सहजही में भारतवर्ष में सार्वत्रिक हुआ।

कई लोग यही समझते हैं कि विदेशी लोगोंने यह नाम हिंदुओं को दिया। सिंधु शब्द का उच्चार विदेशी लोग न कर सके। वे सिंधु नदी को हिंदू कहते थे, इसीसे उन्होंने आर्य जाति को यह नाम दिया और आर्योंने उसका स्वीकार किया। यह कल्पना ही अवास्तविक है। हिंदू लोग अत्यंत पुराणप्रिय हैं। वे सहसा पुरानी बात नहीं छोडते। और दूसरे की नई बात नहीं लेते। उनका कटाक्ष रहता है कि दूसरे की भाषा, यावनीया म्लेंच्छ भाषा न सीखें। ऐसे मनुष्य दूसरों का दिया हुआ नाम अपने को और अपने धर्मको लगावेंगे और यह परकीय शब्द कोने कोने तक के हिंदूको सहज प्रिय हो जाय यह तो असंभव है। इसीसे स्पष्ट है कि यह शब्द यच्चयावत् हिंदू को प्रिय हुआ और उन्होंने उसे अपने धर्म को भी लगाया अतः वह शब्द अंतःप्रेरणासे ही उत्पन्न हुआ है। बाहरसे आया हुआ शब्द हिंदुओं को इतना जीवश्च कंठश्च प्रिय कदापि न

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हो सकता। यदि हम बुद्धोत्तर काल की परिस्थिति का विचार करें तो हमें इस शब्द की व्युत्पत्ति अच्छी तरह मालूम हो सकती है। इसी दृष्टि से इस शब्द का स्पष्टीकरण होता है और यह भी मालूम होता है कि वह लोगों को इतना अधिक प्रिय कैसे हुआ।

इस समय विशेष आवश्यकता इस बात की नहीं है कि हमारे सनातन धर्म का परमश्रेष्ठ तत्त्व अहिंसा है। अपने धर्म के चार वर्ण और चार आश्रम देखिए तो यह बात आप समझ जावेंगे। शूद्रों में मांसाहार के रूप से हिंसा वृत्ति है। वह वृत्ति हटते हटते ब्राह्मण में बिलकुल हट गई है। और वे अहिंसादि योगसाधनोंका अनुष्ठान करनेवाले अतएव वे श्रेष्ठ बने। उनमेंभी जो संन्यास आश्रम ग्रहण करनेवाले हैं वे तो "मत्तः सर्वभूतेभ्यः अभयं" अर्थात् मैंने सब भूतों को अभय दिया है यह कहकर पूर्ण निर्वैर अहिंसावृत्ति से रहते हैं। हिंदू धर्म का अंतिम आश्रम अर्थात् अंतिम ध्येय बिंदु इस प्रकार अहिंसापूर्ण है। यह अंतिम सीढी प्राप्त करने के लिए बीच की कई सीढियां हैं। इन नीचे की सीढियोंपर स्थित जो लोग हैं उन्होंने हिंसा की भी, तो वे अंतिम साध्य के मार्ग में होने के कारण उनकी कृतिसे धर्मके मुख्य ध्येयमें कोई बाधा नहीं आती।

जगत् में कई धर्ममत हैं। परंतु सब में अत्यधिक निरुपद्रवी अर्थात सबमें अधिक अहिंसावादी वैर-हीन वृत्ति के यदि कोई लोग हैं तो वे अकेले हिंदू ही हैं। मुसलमान, ईसाई और हिंदू इन तीनों में हिंदू ही ऐसे हैं जिनमें निर्वैर भाव उनकी मनोवृत्तिमें ही समाया हुआ है। इसका अनुभव चाहे जहां कर लिया जा सकता है। जरा देखिए कि असहाय हिंदू मुसलमानी मुहल्ले में सुरक्षित रहता है या असहाय मुसलमान हिंदू मुहल्लेमें। तब आप समझेंगे कि हिंदूधर्मने हिंदुवृत्ति किस प्रकार मनुष्यता के योग्य अहिंसापूर्ण और निर्वैर बना दी है। यही हिंदू की विशेषता है। मौके पर हिंदू वीरवृत्ति का अंगीकार करेंगे जरूर, पर उनमें क्रूरता कदापि न आवेगी। हिंदू शूर हैं और वीर भी; पर यदि क्रूरता दिखाना है तो वह मुसलमान ही बतला सकता है। क्रूर वृत्ति को हटा कर मनुष्यता को बढाना ही हिंदू धर्म का मुख्य लक्षण है। यह सिद्धांत जैन और बौद्ध लोगोंने परम सीमा को पहुंचाया और हिंदूओंने उसीको व्यवहार्य दशामें अब भी कायम रखा है।

इसके सिवा हिंदुधर्म का दूसरा लक्षण है वर्गीकरण, (Classification) अन्य सब धर्मोंके लोग अवर्गीकृत (unclassified) स्थिति में हैं। हमारे समाज को वर्गीकृत करके उसे शास्त्रीय सुव्यवस्था का रूप देनेका कार्य आर्य ऋषियोंने किया है। जिस विलक्षण बुद्धिमानी से चार वर्ण और चार आश्रमों का वर्गीकरण ऋषियोंने किया उस बुद्धि सामर्थ्य की कितनी भी बडाई करो तो भी वह पूरी न होगी। वर्गों के अनुसार व्यवस्था लगाना ही तो शास्त्र (Science) है। वर्ग बनाकर प्रत्येक गुण की वृद्धि करने का प्रबंध करना ही शास्त्रीय प्रगति (Scientific Development) है। समाज का वर्गीकरण दूसरे किसी भी धर्म ने नहीं किया; पर वह हिंदूधर्म ने किया है। यह हिंदूधर्म की विशिष्टता है। यह बात भिन्न है कि आज दिन हिंदू भी उसका महत्व नहीं पहिचानते। पर उससे यह सिद्ध नहीं होता यह वर्गीकरण अशास्त्रीय है।

वेदों का प्रामाण्य, उपास्यों की अनेकता और पुनर्जन्म पर विश्वास ये भी हिंदुधर्म के अन्य लक्षण हैं। इस प्रकार हिंदूधर्म के पांच लक्षण हैं: (१) अहिंसा अंतिम ध्येय है, (२) वर्ण और आश्रम व्यवस्था, (३) वेद प्रामाण्य (४) अधिकार भेदों के अनुसार उपास्य भेद का प्रबंध और (५) पुनर्जन्म पर विश्वास।

अहिंदू कौन है ?

जो लोग ऊपर लिखे पांच लक्षण नहीं मानते वे अ-हिंदू हैं। (१) जिन्होंने अहिंसा तत्त्व व्यवहार में न लाया हो (२) जिस समाज में वर्गीकरण नहीं हुआ, (३) सनातन चले आये हुए ज्ञान को जो नहीं मानते और जो बीच ही में उत्पन्न हुए मत को मानते हैं, (४) उपासनाओं के अधिकार भेद का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जिनमें विचार ही नहीं है और (५) जो पुनर्जन्म नहीं मानते वे अ-हिंदू हैं।

आज के हिंदू और अ-हिंदू के ये लक्षण हैं। अति-व्याप्ति न होकर इन लक्षणों से हम निश्चय कर सकते हैं कि कौन हिंदू है और कौन अहिंदू।

धर्म कितने हैं ?

मनुष्य की भीतरी सब शक्तियों का उत्तम विकास करने की शास्त्रीय योजनाएं जिसमें विस्तार से बतलाई हुई रहतीं हैं, आत्मा और अनात्माके संबंध का जिसमें गहरा विचार किया हुआ होता है, मनुष्य की उन्नति के अनुसार उसका योग्य वर्गीकरण करके मनुष्यका दर्जा जिसमें निश्चित किया जाता है, किसी भी वर्ग के मनुष्य को अपनी आध्यात्मिक उन्नति के लिए सदैव मार्ग खुला रहता है और जिसमें संग्राहकता से सबकी उन्नति के लिए समान स्वतंत्रता है उसी को धर्म कहते हैं। इस दृष्टि से देखने पर 'धर्म' नाम जिसके लिए उचित जँचता है ऐसा संसारभर में एकही सनातन वैदिक धर्म है। इसीके धर्म, मानव धर्म, आर्य धर्म, हिन्दू धर्म ऐसे नाम हैं। यह धर्म किसी भी मत वा पंथ का तिरस्कार नहीं करता, किंतु वह अन्य पंथों की योग्यता निश्चित कर देता है और सब से अविरोध से बर्ताव करता है। इतना ही नहीं अनादि कालसे चले आये हुए सनातन ज्ञानका नवीन ज्ञान से मिलाप करके अपना उन्नतिका मार्ग निश्चित करता है। यह विशेषता केवल सनातन वैदिक धर्म में ही है इसीसे इसे धर्म कह सकते हैं।

दूसरे ईसाई, मुसलमान आदि मत वा पंथ हैं। इनमें संग्राहकता बिलकुल नहीं है। इस में एकही एक भावना का अवास्तव पुरस्कार किया हुआ दिखाई देता है। मनुष्य की मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, आत्मा आदि जो अनेक भीतरी शक्तियां हैं उनकी बाढ करने का शास्त्रीय विचार इन मतोंमें बिलकुल नहीं है। आत्मा, अनात्मा का विचार नहीं, समाज का वर्गीकरण नहीं, अन्य पंथों के साथ सहिष्णुता से वर्तात्र करने की मनुष्यता नहीं, उलटे दूसरों को गिराकर, नष्ट कर, जैसे बने तैसे भले बुरे उपायों से अपन ही बढें यही पाशवी अहमहमिका इनमें प्रबल है। इसी से इन्हें मत कह सकते हैं, धर्म कदापि नहीं कह सकते।

इस संसार में 'धर्म' नाम देने योग्य एक मात्र सनातन वैदिक धर्म है जिसे बुद्धोत्तर काल से 'हिंदू धर्म' यह नाम मिला है। ईसाई, मुसलमानी आदि जो अन्य पंथ हैं वे मत हैं। जब उनमें सहिष्णुता बढेगी और अन्य बडे तत्त्व जब उनमें आवेंगे तभी वे मत 'धर्म' कहलाने योग्य होंगे। इसीसे सारे संसार भर में केवल सनातन वैदिक धर्म ही एक मात्र धर्म है। दूसरा धर्मही नहीं। मत मतान्तर जैसे हिन्दू धर्म के भीतर अनेक हैं वैसे ही बाहर भी अनेक हैं।

इस दृष्टिसे जब विचार किया जाय तो विदित होगा कि 'धर्मान्तर' तो किसी का भी नहीं होता। क्योंकि धर्म तो एक ही है तब धर्मान्तर होना असम्भव है। जो कुछ होता है वह मतान्तर होता है। हिन्दू धर्म के सिवा अन्य धर्मही नहीं है इससे हिंदुओं का दूसरे धर्म में प्रवेश यह बात ही असम्भव है। हाँ, अन्य मत में प्रवेश होना संभव है। अतः यदि कोई ईसाई और मुसलमानी मतों में प्रवेश करे तो वह धर्मान्तर नहीं है केवल मतान्तर है। वाचक इस बात को अच्छी तरह ध्यान में रखें।

मतान्तर का स्वरूप।

हिन्दू धर्म के भीतर अनेक मत हैं-शैव, वैष्णव, गाणपत्य, शाक्त, भागवत, वीर वैष्णव, वीर शैव, पशुपत, आदि अनेक पुराने मत हैं। सिक्ख, वारकरी आदि आधुनिक मत हैं। ये सब मत हिन्दूधर्म के पेट में स्थित हैं। आज भी एक मत का हिन्दू दूसरे मत में जाता है और समझता है कि उसने मतान्तर किया। आज जो सिक्ख नहीं है वह कल सिक्ख मत की दीक्षा लेता है और कुछ काल पश्चात वैष्णव आदि चाहे जिस अन्य पंथ में जाता है। यह प्रकार एक हिन्दु धर्म के छत्रके नीचे आज भी जारी है। अतः मतान्तर करना हिन्दुओं के लिए नवीन नहीं है। यह तो हुई हिन्दू धर्म के भीतरी मतों की बात। अब अपने सन्मुख यह प्रश्न

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उपस्थित होता है कि यदि कोई हिन्दूधर्म के बाहर का मत स्वीकार कर ले तो क्या वह हिन्दू रहता है? इसका विचार करने के लिए अपने नवीन शुरू हुए देव पंथ और राधास्वामी पंथ का उदाहरण लें। ये पंथ पंजाब में शुरू हुए। उन्हे शुरू होकर पूरे पचास वर्ष भी नहीं हुए। ये नए पंथ है। यदि इनमें हिन्दू चला जावे तब कोई नहीं समझता कि वह अपने हिन्दुत्व से भ्रष्ट हुआ। इन मतों से वापिस आ सकता है। वह कुछ प्रायश्चित्त कर ले या बिना प्रायश्चित के भी वह अपने पहले के मत में लौट कर आ सकता है। यह बात भिन्न है कि यदि नये मत में कोई आचार-भ्रष्टता हो तो उसके लिए उचित प्रायश्चित्त करना पडेगा। परन्तु अन्य मत में जानेपर वह मनुष्य सदा के लिए भ्रष्ट हुआ, उसका पुनः हिन्दू होना असम्भव है ऐसा तो शास्त्र का रुख नहीं है।

हिन्दूधर्म के भीतरी मतों की अपेक्षा बाहरी मत आचारमें कुछ बातों में भ्रष्ट होंगे अथवा उनमें मनमाना वर्ताव करने की स्वतंत्रता होने के कारण उन में जानेपर कुछ अधिक अत्याचार होना संभव है; पर हम इतना ही कहते हैं कि परमत में जानेपर भी वह योग्य प्रायश्चित्त से पुनः शुद्ध होकर पुनरपि उसे हिन्दुत्व के पहले के समान ही अधिकार प्राप्त हो सकते हैं। सम्पूर्ण 'देवल स्मृति' यही बात कहती है। वाचक इस बात को देख लें तब उन्हें खात्री होगी कि मतान्तर से सदाके लिए बहिष्कृत होना असम्भव है।

क्या हिन्दू अ-हिन्दू हो सकता है?

अब अपने सन्मुख यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जो जन्म से हिन्दू है क्या वह सदा के लिए अ-हिन्दू हो सकता है? इसका विचार करने के लिए अपन एक उदाहरण लें।

एक वसिष्ठ गोत्री ब्राह्मण है। उसका विवाह काश्यप गोत्र की कन्या के साथ हुआ। इस दंपती को सन्तती हुई। यह कुटुम्ब रजवीर्य की शुद्धता के विचार से उतना ही शुद्ध है जितना शुद्ध होना चाहिए। अर्थात् इसके शरीर में वसिष्ठ और काश्यप ऋषियों का खून दौड रहा है। इसी के सदृश वाचक चाहें तो क्षत्रिय और वैश्य कुटुम्ब भी ले सकते हैं। परन्तु शुद्धाशुद्धता की बात सिद्ध करने के लिए उक्त एक उदाहरण पर्याप्त है।

यह शुद्ध कुटुम्ब ईसाई पादरी के मोहजाल में फँस गया और गिरजे में जाकर एक दिन ईसाई बन गया। पादरीने कुछ वाक्य कहे और उस कुटुम्ब पर कुछ पानी छिडक दिया और जाहिर किया कि वह कुटुम्ब भ्रष्ट हो गया। दूसरे दिन से इस कुटुम्ब के लोग भी अपने को ईसाई समझने लगे।

अब विचार यही करना है कि जो कुटुम्ब कल तक रक्त-बीज से बिलकुल शुद्ध माना जाता था, वही पादरी के पानी के कुछ छींटे शरीर पर पडते ही कुछ घण्टों में वा कुछ दिन में इतना भ्रष्ट क्यों समझा जावे? शरीर का रक्त वही, आनुवंशिक संस्कार वही, अब तक के संस्कार जरा भी नहीं मिटे, पहले की स्मृति अब भी कायम है, स्थूल शरीर से लेकर आत्मातक के तत्व तत्त्व पहले के समान ही कायम हैं, ऐसी दशामें अल्पस्वल्प प्रायश्चित्तसे उन सब को पुनः शुद्ध होते बनना चाहिए। यह सादी, सरल बात स्मृति में स्पष्ट शब्दों में निर्दिष्ट होते हुए भी आज तक हिंदुओंने इस शुद्धि की ओर ध्यान न दिया। इससे हिन्दुओं में से मनुष्य बाहर जाने की क्रिया जारी रही है। परन्तु नवीनता से भीतर आने का अथवा जो पहले इस धर्म के ही थे उनका पुनः भीतर प्रवेश कराने का दरवाजा ही बंद हुआ है। अब देखिए इसका परिणाम क्या हुआ है। जनसंख्या की गिनती के अंक नीचे दीये हैं उनसे वाचकों को विदित होगा कि हिन्दुओं की संख्या किस कदर घटती पर है और अन्य मतवालों की संख्या किस प्रकार बढती जा रही है।

	१८८१	१८९१	१९०१	१९११	१९२१
हिन्दू-	१८७९	२०७१	२०७१	२१७१	२१६२
मुसलमान-	५०७	५७३	६२४	६६६	६८७
ईसाई-	१९	२२	२९	३९	४७

सूचना- यह संख्या लाखों की है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इस कोष्टक से पाठकों को विदित होगा पिछले चालीस वर्षों में ईसाई लोक साढे तीन गुना से भी अधिक बढे हैं। मुसलमानों की संख्या सवाए से कुछ अधिक हो गई है;पर हिन्दू केवल छटवें हिस्से से ही बढे हैं। पिछले दस वर्ष में तो उनकी बाढ ही रुक गई है और संख्या में तो वे कम ही हो गये हैं। अन्य धर्म अपनी संख्या बढा रहे हैं और हिन्दू अपने संख्याबल की ओर बिलकुल ही ध्यान नहीं देते। यही बात यहाँ पर स्पष्ट होती है।

ऐसी दशा में पाठकों को चाहिए कि वे पतित परावर्तन और शुद्धि करने से होनेवाले लाभ पर ध्यान दें और वे देवलस्मृति के आधार से होने-वाले इस धर्मकार्य में सक्रिय सहानुभूति दिखलावें।

समंत्रका प्रोक्षण का बल।

ऊपर एक कटुम्ब के भ्रष्ट होने का उदाहरण दे कर यह बतलाया है कि ऐसे भ्रष्ट होनेका कुछ मत-लब ही नहीं है। रक्त और वीर्य की शुद्धता जबतक है तब तक हिन्दू कभी भी अ-हिन्दू नहीं हो सकता। फिर उसके शरीर पर ईसाई पादरीने बाप्तिस्मा का पानी भले ही छिडक दिया हो वा मुसलमान काजीने उसका चमडा भलेही खरोंचा हो। इससे वह अहिन्दू नहीं हो सकता; क्यों कि इतने से बाह्य कारण से उसके शरीर, इंद्रियां, मन, बुद्धि, आत्मा में एकदम फरक पड जाय ऐसी शक्ति इस कृति में है यह कहने को कोई सबूत नहीं। इस बाह्य कृति से जो कुछ भी फरक पडता हो वह गायत्री मंत्र से पवित्र हुए गंगोदक से निश्चय से धो डालना संभ-व है। पादरी के वा काजी के पानी के छींटों में और बाइबिल या कुरान की आयतों में जितना भी बल होगा, उससे कहीं अधिक बल ओंकार पूर्वक उच्चार किये हुए गायत्री मंत्र में और गंगोदक के प्रोक्षण में अवश्य ही है। अतः जो अनिष्ट फरक परकीयों की उक्त कृति से होना संभव है उसका निवारण अपनी इस कृति से होता है। यह बात ध्यान में आ जानेपर भ्रष्ट होकर हिन्दू का अहिन्दू होना संभव ही नहीं। यदाकदाचित किसी को भ्रम भी हुआ तो स्पष्ट ही है कि समंत्रक प्रोक्षण से उसकी शुद्धि भी हो सकती है।

हमने यह कृति कुछ अपनी कल्पना से नवीन निकाली नहीं है। संपूर्ण हिमालय के हिन्दू इसी रीतिका अवलम्ब शुद्धि का आंदोलन आरम्भ होनेसे कई वर्ष पूर्व से करते आये हैं। हमने यह बात अपनी आंखों से प्रत्यक्ष देखी है। जब हम कैलास यात्रा को गये थे तब और तिब्बत की यात्रा के समय भी ये बातें हमने प्रत्यक्ष देखीं हैं। इस समंत्रक प्रोक्षण से वहां के पादरी इतने अधिक डरते हैं कि उतना भय यहां के शुद्धि के आंदोलन से भी यहाँ के पादरियों को नहीं होता। कोटगड, चिनी, स्पूह आदि स्थानों के पादरियों ने हमे बत-लाया कि 'यहाँ के इसाइयों के प्रयत्नों में सफलता नहीं होती क्यों कि जो मनुष्य सबेरे ईसाई होता है वह दो पहर को पुनः शुद्ध होकर अपने कुटुम्ब में पहले के समान सम्मिलित हो सकता है।' इस का मतलब ही यह है कि एकवार पैदा हुआ हिन्दू किसी भी कारण से अहिन्दू नहीं हो सकता। यह बात गंगा और ब्रह्मपुत्रा इन नदियों से पवित्र हुए हिमालय के लोग जितनी समझते हैं उतनी वह भारतीय जनता की समझ में नहीं आई है। इसीसे यहां पर पादरियों के प्रयत्न सफल हो रहे हैं।जिस समय समंत्रक प्रोक्षण का और—

गंगा गंगेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥

" गंगा गंगा " ऐसा सैकडों कोसोंपरसे भी य-दि कहें तब भी उस मनुष्य की सब पापों से मुक्तता होती है।" अपनी नदियों की इस पवित्रता पर यदि ध्यान दें तब तो भ्रष्ट होकर पतित हुए मनुष्य के स-ब पाप 'गंगा' शब्द का उच्चार करते ही या दूसरे किसी के द्वारा 'गंगा' शब्द कहे जाने पर तुरन्त ही नष्ट हो जावेंगे, अतएव अब से आगे वह किसी भी कारण से अहिन्दू नहीं रह सकता। हिन्दुओं के पास इतने भारी सामर्थ्य के रहते भी वे शुद्धि का आंदोलन नहीं कर सकते इस बात से अतीव आश्चर्य होता है। शक्ति भलेही हो पर समय पडने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पर उसका उपयोग करते बनना चाहिए। अनंत अमोघ शक्ति के रहते भी गोवा के गावडे भ्रष्ट होकर अभीतक ईसाई ही बने हैं और उन्ही के समान लाखों हिन्दू भी हैं। ये सब एकत्र मिल कर एकही बार "गंगा, गंगा" का उच्चार करें अथवा उनपर गायत्री मंत्रसे अभिमंत्रित किया हुआ जल कोई झिडक दे तो उनके जन्म जन्मांतर के पातक उसी क्षण नष्ट हो जावेंगे और वे तत्क्षण हिन्दू हो सकते हैं। पर आश्चर्य यही है कि इस काम के करने का गोवा के हिन्दूओं को साहस नहीं है और एक ब्रह्मचारी मसूरकरके पकडे जाने पर सैकडों ब्रह्मचारी गोवा में जाते नहीं ! हिन्दुओं में प्रचण्ड शक्ति है पर उन्हें इस शक्ति का उपयोग करने की बुद्धि होनी चाहिए।

जाति माननेवाले ईसाई !

गोवा के गावडे जातिबंधन मानने वाले ईसाई हैं। 'जाति माननेवाले' का अर्थ 'ईसाई' कभी भी हो नहीं सकता। क्योंकि जातियों के अनुसार मानव रचना केवल एकमात्र हिन्दू धर्म में है। अन्य किसी मत में जातियों का वर्गीकरण नहीं है। तब जो जातियां मानते हैं वे ईसाई कैसे हो सकते हैं ? पहले कभी पादरी ने इनके पूर्वजों पर पानी के छीटे छिडकाए होंगे। इतने से इनके कुल के कुल और कुल के यच्चयावत् लोग हिन्दू के अहिन्दू बन गये और ऐसे ईसाई बने कि अब फिर से हिन्दु नहीं बन सकते। ऐसा उन पादरियों के पानीमें कौनसा बल था ? यदि उनके जलमें कोई बल मान भी लिया तो उसके उलट परिणाम ऊपर बतलाये हुए समंत्रक प्रोक्षणसे नहीं होता यह बात कोई भी सिद्ध कर दे। सब लोगों को हमारा आह्वान है। गायत्री मंत्र का पावित्र्य इसी प्रकार ओंकार, रामनाम, गंगानाम इनकी पुनीत करने की शक्ति शास्त्र ने अनेक बार प्रतिपादित की है। इस शक्ति का उपयोग अपने बांधवों को अपने पास लाने के लिए न करें तो फिर इस शक्ति का उपयोग करने का अवसर ही कौनसा है ?

गोवा में जैसे जाति माननेवाले गावडे ईसाई हैं वैसेही बम्बई प्रान्त से लगाकर गोवा के आगे तक भी हैं। सावंतवाडी आदि प्रांतों का हाल हम प्रत्यक्ष जानते हैं। वहां के कुछ ईसाई जाति मानते हैं इतना ही नहीं वे हिन्दू देवताओं के लिए ब्राह्मणों को भोजन खिलाते हैं। विवाह के समय गोत्र देखनेवाले और जाति का विचार करनेवाले ईसाई सारे कोंकण में हैं। ब्राह्मण जाति का ईसाई महार जाति के ईसाई के साथ विवाह संबंध करने को तैयार नहीं होता। औंध का उदाहरण तो हमने अपनी आंखों देखा है। एक मराठा जाति की ईसाई स्त्री विवाहयोग्य हुई तब उसने बतलाया कि 'ब्राह्मण वा मराठा ईसाइ से मैं विवाह करूंगी दूसरे ईसाइयों से नहीं'। अन्त में उसने ब्राह्मण ईसाई के साथ विवाह किया। इस दम्पति की सन्तती भी आज विद्यमान है। ऐसे विवाह में जातियों का विचार करने के सैकडों अवसर हम जानते हैं। ये हिन्दुओं की जातियों को मानने वाले लोग ईसाई हैं यह बात किसी भी प्रकार सिद्ध नहीं होती। क्योंकि ईसाइयों में ब्राह्मण आदि जातियां नहीं है। अतः इन्हे ईसाई कहना भारी भूल है।

इसी प्रकार अधिक तीव्रता से जातियों को मानने वाले (Caste Christians) ईसाई मद्रास प्रान्त में लाखों से गिने जा सकते हैं। इन्हे अब तक अयंगर ईसाई, अय्यार ईसाई, मुदलियार ईसाई, नायडू ईसाई, परया ईसाइ, मुसलमान ईसाई मानते हैं। इतना ही नहीं गिरजे में भी जातियों के अनुसार इनके प्रार्थना के लिए बैठने के स्थान भी भिन्न रहते हैं। ब्राह्मण ईसाई महार ईसाई के पास कदापि नहीं बैठता। वहां के पादरियोंने उनके लिए गिरजा घरों में काठ लगाकर भिन्न भिन्न जातियों के लिए अलग अलग स्थान बना दिये हैं। ये ईसाई बिलकुल हिन्दुओं के समान छूतअछूत मानते हैं और परस्पर में अन्न, उदक वा बेटी व्यवहार बिलकुल नहीं करते। मुसलमान ईसाई के घर हिन्दू ईसाई पानी भी नहीं पीता। इससे स्पष्ट होता है कि इनका रजवीर्य शुद्ध हिन्दु है, इतना ही नहीं उनके सब संस्कार भी जैसे के तैसे ही अब भी कायम हैं।

बम्बइ से लेकर मद्रास तक इस प्रकार जातियां माननेवाले ईसाई तीन चार लाख या इससे भी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अधिक होंगे। ये लोग इतने तैयार हैं कि आपने 'तुम्हें अपनाते हैं, कहने की देरी है कि वे 'हां' कह कर अपने में आजावेंगे। इस प्रकार जन्मसे, कर्मसे, और जातिविशिष्ट अचारसे जो आजतक बिलकुल हिन्दू हैं और जो केवल भ्रम से अपने को ईसाई समझते हैं ऐसों को पुनः अपनाने के लिए बडे भारी शुद्धि संस्कार की कोई आवश्यकता ही नहीं है। यदि कुछ संस्कार ही करना हो तो वह संस्कार करिए जिसका प्रचार हो रहा है। श्रद्धेय स्वामी श्रद्धानन्द जीने इसी रीतिसे सब मलकाना राजपूतों को जो केवल नामधारी मुसलमान थे, शुद्ध कर लिया; और सारी राजपूत जातिने बिना किसी हिचकिचाहट आनाकानी के उन्हे अपने में शामिल कर लिया।

आश्चर्य यही है कि इतनी सरल रीति के होते भी इसका प्रचार जोरोंसे नहीं होता। जो जातियों को मानते हैं वे हिन्दू ही हैं। किसी भी कारण से वे अ-हिंदू नहीं हो सकते। कुछ संस्कारों के लोप होनेका दोष उनमें उत्पन्न हुआ होगा वह नामस्मरण वा ऐसे ही उपायों से दूर हो सकता है। यदि हिन्दू लोग इस सादी, सरल बात को समझेंगे तो सब मिशनरी लोग क्षणभर में यहां से भाग जावेंगे और उनके फैलाए हुए जाल नष्ट हो जावेंगे।

"जो एक बार हिन्दू के घर जन्म लेता है वह किसी भी उपाय से अहिन्दू बन नहीं सकता।" किसी भी अन्य पंथ के संस्कारों में यह शक्ति नहीं जिससे कि वह हिन्दू से अहिन्दू बन जाय। इतना ही नहीं मतान्तर होनेवाला भी यदि समझने लगे कि मैं मुसलमान या ईसाई बन गया तब भी वह सच नहीं है वह भ्रम मात्र है। ज्वर में जब वायु हो जाता है, तब मनुष्य भ्रमसे मनमानी बकबक करता है, अथवा मस्तिष्क में विकृति होनेपर भी मनुष्य मनमाना बकता है। ठीक इसी प्रकार जन्मसे जो हिन्दू है वह यदि बकने लगे कि पादरी के पानी छिडकने से मैं भ्रष्ट हो गया, मेरा मूल का धर्म छूट गया तो वह उसका निरा भ्रम है। यह बात संदेहरहित है। ऐसा होने का संभव नहीं है। यदि माननेसे ही धर्म भ्रष्टता हो सकती तो धर्मभ्रष्ट ईसाई भी स्वतः को हिन्द कहलाते ही हिन्दू क्यों न बने? दोनों और एक ही नियम लगनेवाला है। परन्तु इससे भी प्रबल कारण है।

मनुष्य के शरीर में स्थूल शरीर, इंद्रियशरीर (सूक्ष्म शरीर), प्राण शरीर, वैयक्तिक मानस शरीर (कारण देह), बौद्धिक शरीर इतने शरीर हैं और इन सब के भीतर आत्मा है। इन सब का यथायोग्य ऊहापोह हिन्दूधर्मग्रंथों में किया है। अतएव हिन्दूधर्म ही सचमुच एकमात्र मानवधर्म (मनुष्य धर्म,) है। दूसरे किसी भी पंथ के ग्रंथ में यह विचार नहीं है अतः इस पृथ्वीपर दूसरा कोई भी धर्म है ही नहीं।

आद्य ऋषिकाल से लगाकर आजतक हिन्दू संस्कारों से सुसंस्कृत हुए हिन्दु कुल में जिसने जन्म लिया है उस मनुष्य की देह में और नहीं तो वीस हजार वर्ष के आर्य धर्मके संस्कार हैं। ये सब संस्कार पादरी के पानी से एक क्षण में धुल गये ऐसा सोचना निरा पागलपन है। वीस हजार वर्ष के संस्कारों को धुल जाने के लिए कमसे कम वीस हजार वर्ष तो लगने थे। इस हिसाब से यदि किसी हिन्दू को ईसाई पंथ में प्रविष्ट होना हो तो उसे वीस हजार वर्ष तक ईसाई संस्कारोंका स्वीकार करते रहना होगा। उस समय के पश्चात ही वह कार्य हो सकता है। तब तक हिन्दू के शरीर के हिन्दू संस्कार सदा के लिए मिट जाना संभव ही नहीं है। इस संबंध का शास्त्रीय विवेचन इस प्रकार है-

स्थल शरीर में जितने परमाणु हैं उतने पूर्ण रीतिसे बदलने के लिए पूरे सात वर्ष लगते हैं। यह बात आजके भौतिक शास्त्रज्ञोंने निश्चित की है। यह सिद्धान्त सर्वमान्य है अतएव इसके संबंधमें अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है। मान लीजिए कोई हिन्दू आज ईसाइयों के गिरजाघरमें गया। और पादरीने उसके शरीर पर पानी छिडका। तब भी जब तक उसके सब स्थूल सूक्ष्म शरीरके हिन्दू संस्कारोंसे संपन्न हुए परमाणु सदाके लिए नहीं बदलते, तब तक उस मनुष्य के हिन्दू धर्म का लोप होना असंभव है। बहुतही हुआ तो वह मनुष्य नामसे ईसाई और संस्कारोंसे हिन्दू रहेगा। पर ऐसे नाम मात्र के ईसाई को ईसाई कैसे कह सकते

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हैं ? क्यों कि अंतर्याम में प्रत्येक परमाणुके संस्कार रूप से वह हिन्दू ही है।

ऊपर बतलाया गया है कि सात वर्षमें स्थूल शरीरके सब परमाणु बदलते हैं। किन्तु यह फरक स्थूल शरीर भरका है। स्थूल शरीर के परमाणु परिवर्तनसे भी स्थूल शरीर के पूर्वके सब संस्कार नहीं बदलते; क्योंकि आगे आनेवाले परमाणु अंशतः पहले के समान ही आते हैं। अतएव स्थूल शरीरका बिलकूल संस्कार लोप कराना हो तो कमसे कम आठ बार शरीर के परमाणु पूर्ण रीतिसे बदल जाने चाहिए। इस दृष्टिसे ८×७=५६ वर्ष स्थूल शरीर के पूर्व संस्कार लुप्त होने के लिए लगेंगे। स्थूल शरीरके पूर्व संस्कार ५६ वर्षों में लुप्त हो जावें तो सूक्ष्म शरीर के कुछ संस्कार लुप्त होते हैं। इस प्रकार कारण शरीर तक के पूर्व संस्कारों का लोप होने में ५६×६ = ३३६ वर्ष लगेंगे अर्थात् आज यदि कोई हिन्दू अहिन्दू बनने लगे तो वह सच्चा ईसाई बनने के लिए इतना समय लगेगा। परन्तु मनुष्य की आयु तो १०० वर्ष की ही है। अतः इतने वर्ष जीवित रहकर अपने शरीर का पूर्ण परिवर्तन कराना असंभव है। इसीलिए हम कहते हैं कि "जिसने एक बार हिन्दू के घर जन्म लिया वह किसी भी उपायसे अहिन्दु बन ही नहीं सकता"। इसलिए भ्रष्ट होकर अहिन्दू बने हुए यच्चयावत लोग संस्कारसे हिन्दू ही हैं। वे अपने को धर्मांतरित मानते हैं यह भी उनका भ्रम है। अन्य लोग उन्हे धर्मांतरित समझते हैं यह भी उनका भ्रम ही है। भ्रम तो कभी भी सच्चा नहीं हो सकता इससे हिन्दुओं को धर्मांतरित होनेका जो भ्रम हुआ है सो भी सच्चा नहीं है। अर्थात् शास्त्रीय दृष्टिसे हिन्दू का भ्रष्ट होना ही असंभव है।

केवल मानने भर से कोई वैसा बनता नहीं है। पागलखाने में हमने एक पागल आदमी को देखा वह अपने को 'सम्राट' समझता था, दूसरा एक पागल समझता था कि 'मैं कांच का बना हूं'। ये दोनों अपने को जैसा मानते थे वास्तव में वैसे न थे। ये लोग मस्तिष्क बिगड जाने के कारण पूरे पागल बन गये थे। स्याने समझे जानेवाले लोगों में भी अंशतः पागल रहते हैं। इस बात को अब शास्त्रज्ञ ही मानते हैं। अन्य सब बातों में ये लोग स्याने रहते हैं पर मस्तिष्क का एक अंग विकृत रहने से उस विशेष बात के संबंध में वे अंशतः पागल रहते हैं। एक विद्वान गणितज्ञ सब गणित उत्तम रीतिसे करता था, पर ३+२ मिलकर ४ कहता था। इस मनुष्य में इतनाही पागलपन था। ऐसे अंशतः पागल कई बातोंमें रहते हैं। इस प्रकार मस्तिष्क का कोई अंग विशेष दूषित हो जानेसे जो अंशतः पागल रहते हैं वे ही कहते हैं कि पादरी के पानी छिडकते ही हिन्दू भ्रष्ट हो गया। ये लोग जानते ही नहीं कि हिंदू शरीर संस्कारों से बना हुआ होता है। अन्य पंथों (Faith) में मतों का परिवर्तन होनेसे दूसरे पंथ में जाता संभव है। यह मत परिवर्तन जल्दी होना संभव है। पर हिन्दुओंका ऐसा नहीं है। हिन्दू धर्म केवल विश्वासात्मक (Faith) नहीं है। हिन्दू धर्म कभी भी नहीं कहता कि पैगंबर पर आंख बंद करके विश्वास करो। किन्तु वह कहता है कि प्रत्येक क्षण में होनेवाले सूक्ष्म संस्कारों का विचार करो। प्रतिक्षण होनेवाले संस्कारोंका विचार करनेवाला हिन्दू धर्म को छोड दूसरा कोई धर्म नहीं है। इसीसे हिन्दू का शरीर संस्कारोंसे बनता है। इसी लिए हजारों वर्षोंके आर्य संस्कार हिन्दू शरीर में होने के कारण वे कुछ पानी के छींटों से लुप्त होना संभव नहीं। इसी लिए हिन्दू लोग अपने संस्कारों का महत्व खूब समझलें और ध्यान में रखें कि हिंदुत्व क्षणभंगुर नहीं है।

जो जाति माननेवाले ईसाई हैं वे तो जातियां मानते हैं अतएव हिन्दू ही हैं, परन्तु जो अपनी जातियां भूल गये हैं वे भी पहले के आर्य-हिन्दू होने के कारण वे भी हिन्दू ही हैं।

आचार भ्रष्टता।

पर-मत का स्वीकार करने के कारण आचार भ्रष्टता आई हुई हो, तब भी उतने से यह सिद्ध नहीं होता कि धर्मान्तर हुआ। यदि आचार भ्रष्टता हुई हो तो उतने के लिए प्रायश्चित्त दिया जा सकता है और प्रायश्चित्त देकर वह पहले के समान हिन्दू बन सकता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यह भी देखना होगा कि किस धर्म के संस्कार अधिक हैं। मुसलमानी पंथको शुरू होकर १३०० वर्ष हुए, ईसाई पंथ को १९२९ वर्ष हुए। पर हिन्दू धर्म को शुरू हो कर कम से कम २०,००० वर्ष तो हुए ही हैं अथवा लाखों वर्ष हुए हैं। जिस धर्म के संस्कार इतने वर्ष हिन्दू शरीर में इकत्रित हो रहे हैं, वे सब संस्कार अल्पवयस्क नूतन पंथके कारण नष्ट कैसे होंगे? जो लोग इस तत्त्वको समझे नहीं हैं वे भूलसे और अज्ञान से मानते हैं कि हिन्दू भ्रष्ट हो जाते हैं। यह शास्त्रीय दृष्टि कदापि नहीं है।

गार्भैर्होमैर्जातकर्मचौडमौञ्जीनिबंधनैः ।
बैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते ॥ २७॥
स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः ।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ॥ २८ ॥

मनु. अ. २

" सोलह संस्कारों से हिन्दुओं का शरीर सुसंस्कृत होकर उसका पाप नष्ट होता है। स्वाध्याय, व्रत, होम, यज्ञयाग, त्रैविद्या इनके संस्कारों से ब्राह्म-धर्मका शरीर बनता है। "

पागल लोग भलेही समझते रहें कि हजारों वर्षों के ये संस्कार पादरी के पानी से धुल जाते हैं; परन्तु शास्त्र की दृष्टि से वह कदापि सिद्ध नहीं हो सकता। जो संस्कार हो चुका है वह फजूल नहीं जाता, वह कायम रहता है। परमत में गये हुए लोग संस्कारों के अभाव के कारण सदोष हुए तब भी वे सदाके लिए पतित नहीं होते, किन्तु वे प्रायश्चित्तार्ह होते हैं। संस्कार लोप भी हुआ तब भी व्रात्यस्तोम आदि करके उसे पुनः उच्च पदपर ला सकते हैं।

इस दृष्टि से विचार करने से विदित होगा कि हिंदुस्थानमें रहे हुए और भ्रष्ट होकर ईसाई और मुसलमना पंथ में गए हुए हिन्दू केवल व्रतलोप के लिए करने के प्रायश्चित्त से सहज ही में शुद्ध हो सकते हैं। उनमें से भी जातियां माननेवाले ईसाई अल्प प्रायश्चित्त से और जातियां न माननेवाले कुछ उस अधिक प्रायश्चित्त से हिन्दुधर्म में वापिस लिए जा सकते हैं। सब धार्मिक लोग इसका विचार करें।

*

हिन्दुस्थानके बाहर की आर्य जातियां।

यह कहना बडी भूल है कि आर्य लोग केवल हिन्दुस्थान ही में थे और हिन्दुस्थानके बाहर न थे। कास्पीयन (काश्यप) समुद्र तक हिन्दुओं की बस्ती थी। सब प्रजा (काश्यपी) कश्यप से हुई और वहाँ से चारों ओर फैल गई। पुराणों और ब्राह्मणों में ऐसा ही वर्णन है। कश्यप ऋषी का आश्रम उपरोक्त स्थान में था और वहाँ से चारों ओर के देशों में आर्यों के उपनिवेश थे। मालूम होता है वहीं से वे दक्षिण में फैले।

इस कश्यप समुद्र के उस पार दक्षिणी रूस में " बाकू " नामका एक स्थान है। वहीं से सारे जगत में 'मिट्टी का तेल' जाता है। इस बाकू नगर में मिट्टी के तेल के उद्गम स्थान में पुरातन काल का गणेशजी का मंदिर मिला है। यह मंदिर अब तक सुरक्षित है। इससे सिद्ध होता है कि यहाँ पर-कम से कम-यहाँ तक हिन्दू सभ्यता स्थिर रूप से विद्यमान थी। बुद्ध के उत्तरकाल में हिन्दू रूस में कभी भी विजयी बनकर नहीं घूमे। तब यह मन्दिर सिद्ध करता है कि बुद्ध पूर्व काल के हिन्दुओं की बस्ती निःसंदेह इस प्रान्त में थी। इतना पुराना मंदिर दूसरे पंथ के लोग कदापि नहीं बनाते। अतः सिद्ध है कि दक्षिण रूस तक भारतीय हिन्दी सभ्यता थी और उसके अवशेष अवभी वहाँ न्यूनाधिकता से दिखाई देते हैं।

इधर मध्य अमेरिका में मेक्सिको आदि प्रांतों का इतिहास, कथाएं और प्राचीन अवशेषों से हम मान सकते हैं कि आर्य संस्कृति वहाँतक फैली थी। इसके बहुत से प्रमाण भी अब एकत्रित हो रहे हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि ये सब प्रमाण प्राचीन हिन्दू ऐश्वर्य के अवशेष हैं। बहुत दूर की बात जाने दीजिए। कल परसों तक काबुल, कंदहार, गजनी आदि अफगानिस्थान के प्रदेश में सब वस्ती हिन्दू लोगोंकी ही थी। महमूद गजनी के समय में अधिकांश वस्ती हिन्दुओं की ही थी। रामायण महाभारत में स्पष्ट शब्दों में कहा है कि गांधार देश आर्यवस्ती का देश था। गांधार ही कंदहार है। उस प्राचीन कालमें अफगानिस्थान अहि-गण-स्थान था। ये

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

'अहि' लोग वे ही हिन्दू थे जिन्हे अब सर्प या नाग कहते हैं। ये 'अहि-गण' मुसलमानों की तलवार के बलि हुए और अब 'अफगान' हुए हैं। ये ही पठान है। मूलके पठान और नाग एक ही हैं। अहि, सर्प और नाग के कुल सब भारतीय आर्यों में हैं। मराठोंके कई कुल अहि जाति के हैं।

जब कि यह बडा भारी प्राचीन हिंदुओंका विस्तार दिख रहा है और स्पष्ट दिख रहा है कि वह जबरदस्तीसे अन्य पंथों में खींचा गया है, तब उपरोक्त पद्धति से ये सब प्रांत शुद्ध करने योग्य हैं क्योंकि वे असली में हिन्दूही थे। ईसाई, मुसलमानी आदि नये पंथ निकलने के पूर्व इस संपूर्ण बृहत् प्रदेशमें एक ही आर्य जाति थी। इसका सबूत यह है कि उत्तर तिब्बत के आगे भी हिन्दू तीर्थ हैं। यदि एक बार मान लें कि मूलतः जो हिन्दू थे वे पुनः शुद्ध हो कर हिन्दू बन सकते हैं, तो काकेशस पर्वत, कास्पीयन समुद्र, दक्षिण रशिया, तिब्बत आदि प्रांतोंके सब लोग पुनः अपने पितृधर्म में निःसंदेह शामिल किये जा सकते हैं। यदि शुद्धि का आंदोलन करनेवाले हिन्दुओं में ईसाई पादरियोंके समान साहस और प्रयत्नशीलता हो जावेगी तो यह सम्पूर्ण प्रदेश वैदिक धर्म से परिपूर्ण होने का संभव है। प्राचीन कालके वर्णन जब हम पढते हैं तब यही अंदाज होता है कि उस समय कमसे कम १२० करोड हिन्दू होंगे। जिस समय मुसलमान लोग आर्यावर्त की ओर आए उस समय भी साठ करोड से अधिक हिन्दू यहाँ थे। पर अब वे केवल २२ करोड ही रह गए हैं और उनमें से प्रतिदिन करीब डेड सौ ईसाई पंथ में जा रहे हैं और दो तीन मुलमानी पंथ में शामिल हो रहे हैं। जिस धर्म के डेढसौ लोग प्रतिदिन दूसरे पंथ में चले जा रहे हों, तो उस धर्म के माननेवालों की संख्या घट जाने में आश्चर्य ही क्या?

इस पर इलाज है शुद्धि का। जहाँ कहीं इस इलाजका उपयोग अच्छी प्रकारसे हुआ है,वहाँ परपंथ में प्रवेश करने का मार्ग ही बंदसा हो गया है।

अंग्रेजी हिन्दुस्थान में भी जातियां माननेवाले ईसाइयों की संख्या कम नहीं है। बम्बई से मद्रास तक के समुद्र किनारे का प्रदेश इन्ही लोगों से बसा हुआ है। शुद्धि का यह कार्य अंग्रेजी मुल्क में भी जोरसे शुरू होना चाहिये।

परकीयों की शुद्धि।

अब देखना है कि परकीयों की शुद्धि करें या न करें। वास्तव में इस प्रकार के कार्य का पहले ही आरंभ हो चुका है। स्वामी विवेकानंद, स्वामी रामतीर्थ जैसे महानुभावों ने यूरोप-अमेरिका में इस कार्य का आरंभ कर दिया है। सब लोग जानते हैं कि विदुषी निवेदिताबाई अपनी खुषी से और पार्थिव प्रलोभनों के न होते भी हिन्दूधर्म में आ चुकी थी। उन्होंने हिन्दूधर्म का अभ्यास करके जो ग्रंथ लिखे हैं वे निःसंदेह मननीय हो गये हैं।

थियासफी सोसाइटीने हिन्दूधर्म के विचारों का भंडार अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित किया है। उसका परिणाम यूरोपीयन और अमेरिकन लोगों पर इतना हुआ है कि कुछ फ्रेंच लोग स्नान करके शुद्ध रेशमी वस्त्र पहिन कर तथा ऊदबत्ती जलाकर गायत्री मंत्र का जप करने लगे हैं। कई यूरोपीयन लोग हिन्दुस्थान में आकर हिन्दू योगियों के सहवास में रहने लगे हैं। कई यूरोपीयन स्त्रियां हृषीकेश में आकर वहाँ की तपोभूमि में कंद-मूल-फल खाकर रहने लगीं हैं। यदि हिन्दू मिशनरी यूरोप और अमेरिका में जावेंगे तो अपना तत्वज्ञान वहाँ कैसे कैसे चमत्कार कर दिखलावेगा सो इन बातों से मालूम हो सकता है।

उत्तर भारत में आर्य समाज द्वारा जो शुद्धिके प्रयत्न हुए हैं वे सब अन्य संस्थाओंके प्रयत्नोंसे कई गुना बढकर और अधिक चिरस्थायी हैं। इस लिये शुद्धि का विचार करनेके समय आर्यसमाज का कार्य विशेष ही धन्यवाद के लिये योग्य है।

(क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वैदिक धर्म में आनंद की दृष्टी ।

(ले. श्री. पं. लक्ष्मण शास्त्री जी जोशी, प्राज्ञपाठ शाळा, वाई)

सब आनन्दों की एकरूपता ।

व्यक्तिको आरोग्य, शक्ति और संपत्तिसे सुख होता है । कुटुम्बमें पतिपत्नी, माता पुत्र, बंधुभगिनी, इनके पारस्परिक प्रेम से आनन्द होता है । मत्सर-रहित, स्पर्धारहित, प्रयत्नशील, पराक्रमी और ज्ञानी लोकोंकी समाजमें सुख निवास करता है । नियम-बद्ध अनन्त और अचिन्त्य विश्वमें आनन्दकी प्रतीति होती है । काव्योंमें, वाणीयोंमें, कलाओंमें, और सत्कर्मोंमें आनन्दका अनुभव आता है । समाधिमें आनन्दके प्रकाशमें योगी तन्मय हो जाता है । ये सब आनन्द एकही परमानंदके तुषार हैं ऐसा उपनिषद्‌में कहा हुआ है । एकही सूर्य मण्डल विश्वको प्रकाशित कर रहा है । एकही वायुद्वारा प्राणीमात्र की जीवन-क्रिया चल रही है । एक वीणा सबके मनको रिझाती है । इसी प्रकार एकही आत्मरूप आनन्द उस उस विषयरूपी उपाधिमें सबको आनन्दित करता है । ' एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति [बृ. उ. ४-३-२२] प्राणीमात्रके जीवनका कारणीभूत सुख इस परमानन्दका ही अंश है । '

संस्कृत साहित्यमें नवरसकी उपत्ति उपनिषद्के इस आनन्दके सिद्धान्तानुसार की गई है । रसोंके लक्षण रसगंगाधरमें जगन्नाथ पंडितने इसी दृष्टिसे कहे हैं । ' वस्तुतस्तु वक्ष्यमाणश्रुतिस्वारस्येन रत्याद्यवच्छिन्ना भग्नावरणा चिदवे रसः ।

रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽनन्दी भवति ' [तै. उ० २-७] मनुष्यके जीवन में सर्व रस आत्मरूप हैं । बृहदारण्यकोपनिषदमें प्रेममीमांसा आई है । वहांपर संसारमें मनुष्य प्रेम क्यों करता है इसका उत्तर दिया है । पति, जाया, पुत्र, वित्त, पशु, समाज, देव, प्राणिमात्र अथवा सर्व जगत् के प्रतिप्रेम क्यों होता है? इसका उत्तर 'इन सबमें एकही आत्मा पूर्ण हुआ हुआ बस रहा है! वह आत्मा आनंदरूप है! वह सबसे प्रियतम है ! अतः मनुष्य इन सब पर प्रेम करता है ! ' ऐसा दिया है । समाज, प्राणिमात्र और सर्व जगत् में यदि आत्मभाव न होता तो मनुष्यको दुःख मिलता ऐसा वहां पर आगे कहा है । 'ब्रह्म तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनो ब्रह्म वेद क्षत्रं तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनः क्षत्रं वेद लोकास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो लोकान्वेद । [बृ. उ० ४-५-७] ' ब्राह्मण क्षत्रिय तथा सब लोकोंको जो आत्मरूप नहीं समजता उसका अधःपात होता है ! ' बृहदारण्यकमें याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी का संवाद वैदिक वाणी रूपीलता का अत्यन्त सुगन्धित पुष्प है ! यह पतिपत्नीका प्रेममय संवाद है । इस संवादमें विश्वमें वर्तमन प्रेमकी मीमांसा उपरोक्तमतानुसार की हुई है। इसी उपनिषदमें अन्यत्र मधु विद्या आई हुई है। मधु अर्थात् जीवन रस, पोषकरस । सारे विश्वमें पोष्य पोषकभाव है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आदित्य, दिशा, चन्द्र, विद्युत् ,मेघ, आकाश, धर्म, सत्य, वित्त और प्राण इनसे प्राणियोंका जीवन चलता है । इनमें जीवन दायिनी शक्ति मधु एक आत्मरूप है, ऐसा मधुविद्यासे प्रतीत होता है। प्रेम विद्या, मधुविद्या, या आनन्द विद्या, आत्मानन्द और इतर आनन्दमें अविरोधकी स्थापना करती है । इनकी एकरूपता सिद्ध करती है । इससे आध्यत्मिक जीवन और आधिभौतिक जीवनकी अखण्डता सिद्ध होती है। इसका समन्वय सिद्ध होता है । प्रपंच और परमार्थका झगडा दूर होता है । प्रपंचके मण्डप पर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

परमार्थ आनन्द वल्ली विकसित हुई लहराती है! अनन्दसे त्रिभुवन जगमगा उठता है!

आत्मानन्दकी इच्छासे सब व्यवहारोंको छोडकर गिरिगुहाओंका कुछ लोग आश्रय लेगें, उन्हें उपनिषद् संमति देते हैं। कुछ लोक व्यवहारमें ही यज्ञ, दान और तप के योगसे आत्मानन्दकी प्राप्तिकी खटपट करेंगे। 'तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानने तपसाऽनाशकेन। ... एतमेव प्रव्राजिनो लोकमिच्छन्तः प्रव्रजन्ति। (बृ. उ. ४—४-२२)। प्रपंचका त्याग वा स्वीकार सब किसीके स्वभावानुसार होगी। शुक, शंकराचार्य और ज्ञानेश्वर, इन जैसे जन्मसेही आत्मतृप्त अपने अपने स्वभावके मुताबिक प्रपंचसे दूर रहेंगे और श्रीकृष्ण, याज्ञवल्क्य, अजातशत्रु, रैक्व और जनक, इन जैसे प्रवृत्तिमय स्वभाववाले पुरुष द्वन्द्वरहित आत्मानंदमें रहते हुए भी सहज लीलासे व्यवहारों में उथेलापथली करते रहेंगे। जिन्हें व्यावहारिक प्रयत्नोंकी अनुकूलता न होगी अथवा जिनका मन स्वभावतः व्यवहारसे निवृत्त होगा वे प्रपंच छोडके परमार्थ करेंगे और इतर प्रपंच में पडे हुए परमार्थ करें गे। याज्ञवल्क्य ब्रह्मज्ञानी थे, पर साथही साथ उनका गृहस्थाश्रमभी संपन्न था। सम्राट् जनकनें ब्रह्मवादियोंकी भरी समाजमें विजय प्राप्त की! याज्ञवल्क्यके आश्रममें सुवर्ण का ढेर पडा हुआ था! रैक्वने ब्रह्मसाक्षात्कार करके जानश्रुति राजाको उपदेश कर गृहस्थाश्रम स्वीकारा। अजातशत्रु साम्राज्य चलाते हुए गार्ग्य जैसे ऋषिको ब्रह्मोपदेश करता था। कोई भी आश्रम अथवा कोई भी आत्मप्राप्तिमें बाधक नहीं होता।

द्वन्द्व सहिष्णु और द्वंद्वातीत पुरुष जो जो कर्म करता है, उनसे चाहे फल प्राप्ति हो वा न हो उसके आनन्दमें अन्तर नहीं पडता। इतर विनाशी आनन्द और परमानन्दका झगडा यहां मिटा हुआ होता है। ऐहिक जीवन ऐहिक आनन्दसे बढता है। उसका परमानन्दसे विरोध नहीं। यदि ऐहिक जीवन परमानन्दका विरोधी है तो परमानन्दके लिए ऐहिक जीवनको सर्वथा त्याग ही देना चाहिए। परन्तु ऐसा विरोध ही संभव नहीं। क्योंकि ऐहिक आनन्द परमानन्दका अंश है इस बातकी फिर कोई कीमत ही नहीं रहती। इसी प्रकार 'इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः' इस सिद्धान्तका फिर क्या मतलब होगा। ऐहिक जीवनानुकूल क्रिया और परमार्थ का पूर्ण अविरोध है, ऐसा गीताका सिद्धान्त है। और इसीलिए द्वन्द्वातीत और त्रिगुणातीत पुरुषों के ऐहिक जीवन का स्वरूप परमसात्त्विक होता है ऐसा गीतासे निश्चय पूर्वक प्रतिपादन किया जा सकता है। गीतामें कहे गए सात्त्विक कर्म सात्त्विक धृति, सत्विकज्ञान, सात्विक आहार इत्यादि सर्व सात्विक प्रकार द्वन्द्वातीत पुरुषके ऐहिक जीवन के भाग हैं, अतः परमानन्द और ऐहिक आनन्द का अविरोध सिद्ध होता है। आनन्द विद्याका माहात्म्य तैत्तिरीयोपनिषद्में इस प्रकार वर्णित है।

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते॥ आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति॥ सैषा भार्गवी वारुणी विद्या॥ परमे व्योमन् प्रतिष्ठिता॥ य एवं वेद प्रति तिष्ठति॥ अन्नवानन्नादो भवति॥ महान्भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन॥ महान् कीर्त्या॥ (तै० उ० ३-६)

'सर्व आनन्दरूप है, ऐसा ज्ञान होना चाहिए। प्राणिमात्रकी उत्पत्ति, स्थिति व लय आनन्दमें होता है। यह ज्ञान भृगुने सुना और वरुणने कहा। यह विद्या शुद्ध व सूक्ष्म बुद्धि में प्रवेश करती है। इस विद्या को जिसने प्राप्तकर लिया, उसमें स्थिरता आती है, उसे संपत्ति मिलती है। संपत्तिका वास्तविक भोक्ता बनता है। उसकी प्रजा बढती है, गवाश्वादि पशु प्राप्त हो उठते हैं। ज्ञान तथा शील से वह संसार में चमक उठता है और उसकी कीर्ति से दिग् दिगन्तर व्याप्त हो उठते हैं। यह तत्त्वज्ञान जिस समाज में घर कर लेता है वह समाज पूर्ण विजयी होता है। इस तत्त्वज्ञान का प्रभाव बहुत अधिक है।

एतँ ह वाव न तपति किमहँ साधुनाकरवम्॥ किमहं पापमकरवमिति॥ (तै० उ० २-९)

'यह तत्त्वज्ञान जिसे प्राप्त होता है। उसे 'मेरे हाथ से पुण्य क्यों नहीं होते? पापकी ओर प्रवृत्ति क्यों होती है?' इस प्रकारके प्रश्न नहीं सताते।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यह आनन्द सिद्धान्त सब धार्मिक प्रवृत्तियों का आधार है।

भगवद्गीतामें सात्विक सुखवाद

भगवद्गीता नीतिशास्त्र है अर्थात् भगवद्गीता समाज के बाह्य व आध्यात्मिक सुखों के साधनीभूत आचरणों का उपदेश करनेवाला शास्त्र है। भगवद्गीता में कर्म, बुद्धि, धृति, तप, दान, आहार इत्यादियों के सात्विक, राजस और तामस ऐसा तीन विभाग किए हुए हैं। सत्वसे सुख की उत्पत्ति होती है। सात्विक अर्थात् शुद्ध सुखोत्पादक। जिन साधनों से वा कर्मों से सुख उत्पन्न होता है उन कर्मों का या साधनों का साक्षात् वा परंपरा से व्यक्ति, कुटुम्ब, जाति या राष्ट्र पर यदि कभी भी दुष्परिणाम नहीं होता तो वह उन व्यक्ति वा कुटुम्ब को प्राप्त होनेवाला सुख शुद्ध है। सात्विक कर्मों को दिव्य कर्म कहते हैं। ये ही यथार्थ कर्म हैं। दुष्परिणाम, शक्तिक्षय, सामर्थ्य आदि का विचार न करते हुए किए गए कर्म दुःख के लिए कारण होते हैं अतः इनको तामस कर्म कहा जाता है। कर्तव्याकर्तव्य, भयाभय, बंधमोक्ष आदि का विचार करते हुए धैर्य से और उत्साहसे किए हुए निष्काम कर्म सात्विक कर्म हैं। क्यों कि इन कर्मों के आदि और अन्त में सुख होता है। कर्मों के सुखदुःखात्मक परिणामका विचार न करते हुए किएगए कर्म असत्कर्म होते हैं। सुखात्मक सत्परिणाम सत्कर्मों की कसौटी है।

इसीप्रकार शुद्ध बुद्धि भी सत्कर्मों की एक कसौटी है। द्वन्द्वातीत, आसक्तिरहित बुद्धि शुद्धबुद्धि का परम विकास है। इस परम शुद्धबुद्धि द्वाराही आत्मतृप्तिरूप सुख व्यक्ति को मिलता है। कर्ता की बुद्धिको सनातन धर्ममें बहुत ही अधिक महत्त्व दिया गया है। किसी कार्य में कर्ता का क्या हेतु है और कर्माकर्म की किंमत कर्ता की बुद्धि में क्या है यह यदि न देखा गया तो कर्ता के अन्तःकरण की वास्तविक उन्नति होनी संभव नहीं। कर्ता की बुद्धि को शिक्षा भी प्राप्त नहीं हो सकती। किसी भी क्रिया के ठीक ठीक होने के लिए कर्ता को कर्मोंका साङ्गोपाङ्ग ज्ञान होना आवश्यक है। और इसी प्रकार मन की उन्नति भी जरूरी है। केवल कर्मों के दृष्टिगत परिणाम परसे कर्म की परीक्षा करने से समाजमें बुद्धि को शिक्षा न मिलने से कर्मों के परिणाम भी बहुतवार समाज के लिए घातक होंगे। सत्परिणाम की प्राप्ति के लिए सद्बुद्धि की आवश्यकता है।

शुद्ध बुद्धि और सत्परिणाम ये दो सत्कर्मों की कसौटियां हैं। दोनों कसौटियों में जो कर्म उतरते हैं वे सात्विक कर्म हैं। कोईसी भी उच्च क्रिया सतत करने के लिए समाज में उच्च बुद्धि की जरूरत है। क्यों कि बुद्धि कर्मों का असाधारण कारण है। भगवद्गीता में जो सात्विक कोटि कही गई है, उसका अंतिम हेतु शुद्ध आनन्द की प्राप्ति है। कर्ता के बुद्धि की उन्नति गीता के कथनानुसार हो जानेपर सात्विक सुखकी ' यत्तदग्रे विषमिव ' की सी दुर्दशा न रहेगी। प्रारंभ से लेकर अंततक वह सुख मीठा ही बना रहेगा।

आत्मतृप्त पुरुष को भगवान् लोकसंग्रह के लिए कर्म करने के लिए आदेश देते हैं। लोक संग्रह अर्थात् समाज की उन्नति। समाज की उन्नति से समाज को शांति और सुख मिलता है। यदि वस्तुतः प्रपंच में समाज को शांति व सुख नहीं मिल सकता तो फिर गीता लोकसंग्रहार्थ कर्म करने का उपदेश क्यों कर रही है? लोकों को स्वर्ग अथवा मोक्ष मिले, इतनाही यदि योग का उद्देश है तो लोकों के प्रत्यक्ष जीवन का क्या लाभ है? अतीन्द्रिय और जिसे बुद्धि से ग्रहण नहीं किया जा सकता ऐसे मरणोत्तर जीवन के लिए गीता व भारतीय अन्य शास्त्र खटपट करते हैं ऐसा यदि मान लिया जावे तो फिर प्रत्यक्ष दीखनेवाले जीवन के लिए भगवद्गीता का क्या संदेश है यह सुलझाना कठिन हो जाएगा। परलोक की विवेचना में पडकर ऐहिक जीवन को भुल देना यदि सनातन धर्म का अर्थ है तो भारतीय संस्कृति और समाज इनकी क्या जरूरत है? वस्तुतः इहलोक और परलोक की संगति गीता को मान्य है। समाज का विनाश न हो इस वास्ते कर्मयोग का उपदेश किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सुखमीमांसा सनातनधर्मशास्त्र का पाया है

भगवद्गीता के अनुसार ही सर्व सनातन धर्मशास्त्र समाज के बाह्य और आध्यात्मिक उच्चतर सुख के लिए रचे गए हैं।

ततो धर्मसमायुक्तः स जीवः सुखमेधते ।
इहलोके परे चैव० । (अनु प. १११-२६)

' धर्मात्मा जीव को इस लोक और परलोक में सुख मिलता है । '

अधर्मप्रभवं चैव दुःखयोगं शरीरिणाम् ।
धर्मार्थप्रभवं चैव सुखं संयोगमक्षयम् ॥
(मनु. ६-६४)

' जीवों को अधर्म से दुःख मिलता है और अक्षय सुख धर्म से मिलता है । '

सुखं वाञ्छन्ति सर्वे हि तच्च धर्मसमुद्भवम् ।
तस्माद्धर्मः सदा कार्यः सर्ववर्णैः प्रयत्नतः ॥
(दक्ष. ३)

' सबको सुख की इच्छा है ' सुख धर्म से होता है; अतः सब को धर्मावलम्बन करना चाहिए । '

यदि येनेष्टसिद्धिः स्यादनिष्टाननुबन्धनी ।
तस्य धर्मत्वमुच्यते (श्लो. वार्तिक १-१-२)
अनिष्टाननुबन्धष्टि साधनत्वं धर्मत्वम् ।

' परिणाम में दुःखकारक न होनेवाले, दुःख से सुख अधिक उत्पन्न करनेवाले कर्मों का नाम धर्म है ' ऐसी व्याख्या मीमांसक नैयायिक और इतर धर्म निबन्धकार करते हैं।

फलतोऽपि च यत्कर्म नानर्थेनानुबध्यते ।
केवलप्रीतिहेतुत्वात्तद्धर्मत्वेन दीप्यते ॥
(श्लो० वा० १-१-२)

' जिस कर्म से कभी भी अनर्थ उत्पन्न नहीं होता और शुद्ध सुख प्राप्त होता है वे कर्म धर्म हैं । '

य एव श्रेयस्करः स एव धर्म शब्देनोच्यते ॥
पू. मी. भा. १-१-१ ।

सुख और दुःख नाश यह ये सब धर्मों का हेतु है । इह लोक में अर्थात् इस जगत में धर्माचरण से सुख मिलता है ऐसा शांति और अनुशासन पर्व में भीष्म ने बारबार कहा है । अव्यवस्थित समाज से तथा निरंकुश राज्य कारोबार से व्यक्ति को धर्माचरण द्वारा दुःख मिलने का संभव होनेसे शास्त्रकार यह कहकर कि पारलौकिक सुख प्राप्त होगा, आपत्काल में भी धर्माचरण की ओर प्रवृत्त करते हैं।

आम्रे फलार्थे निर्मिते छायागन्धावनूत्पद्येते ।
एवं धर्मं चर्यमाणमर्थकामावनूत्पद्येते ॥
(आप. ध. सू.)

' आम्र वृक्ष लगाने से जिसप्रकार छाया और सुगंध स्वाभाविक प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार धर्माचरण द्वारा अर्थ व काम की प्राप्ति होती है।' समाज की अपूर्णावस्था में धर्माचरण से सदा ही व्यक्तिको सुख मिलेगा ऐसा नहीं । धर्माचरण का संबन्ध केवल वैयक्तिक सुख से नहीं है । कुटुंब, जाति, समाज और प्राणिमात्र की शांति और सुख से धर्म का संबन्ध है । पर धर्माचरण से व्यक्ति के अर्थ और काम सिद्ध होते हैं ऐसा शास्त्रकारों का स्पष्ट कथन है ।

धर्मादर्थश्च कामश्च स धर्मः किं न सेव्यते ।

' धर्म से अर्थ प्राप्ति और कामना पूर्ति होती है, फिर तुम धर्माचरण क्यों नहीं करते ? ' इसप्रकार के प्रश्न का व्यासने बडी गंभीरता से विचार किया है। वैयक्तिक स्वार्थ अर्थ काम के लिए होते हैं। समाज की पूर्ण स्थिति में व्यक्ति के स्वार्थ और झगडा मिट जाता है। परार्थ ही व्यक्तिका स्वार्थ बन जाता है ।

सनातन धर्मशास्त्र केवल परलोकदत्तदृष्टि हुए हुए धर्मानुशासन नहीं करते । समाज के ऐहिक कल्याण में ही व्यक्ति का परमार्थ सिद्ध हो ऐसा भारतीय धर्मशास्त्रों का हेतु है। राजसंस्था जब न्याययुक्त होती है तब समाज में सुख रहता है, लोकों की उन्नति होती है, समाज में कृतयुग का प्रारंभ हो जाता है । समाज स्वर्ग बन जाता है ऐसा महाभारत में भीष्मने और मनुस्मृति में मनुने कहा है । प्रपंच दुःखमय है ऐसा यदि धर्म शास्त्रकारोंका सिद्धान्त है तो राजधर्मों का अनुशासन किस लिए किया है। स्त्री, पुत्र, ये यदि दुःखद होते तो गृह-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

स्थाश्रम का विधान धर्मशास्त्रों में न किया जाता। अध्ययन व प्रजा निर्माण विना किए संन्यासाश्रम जो स्वीकारता है उसका अधःपात होता है ऐसा मनुस्मृति में कहा हुआ है।

अनधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य तथा प्रजाम्।
अनिष्ट्वा चैव यज्ञैश्च मोक्षमिच्छन्व्रजत्यधः॥
(मनु. ६-३७)

गृहस्थाश्रम कर के थके हुए मनुष्य को संन्यास लेना चाहिए ऐसा मनु का आदेश है। प्रपंच यदि असार हो तो फिर संतति की क्या जरूरत है? संतुष्ट पतिव्रता स्त्री, आज्ञाकारक पुत्र और न्यायोपार्जित वित्त से गृहस्थाश्रममें आनन्द व कल्याण की वृद्धि होती है ऐसा धर्मशास्त्रका अभिप्राय है। नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, मनुष्यजातिशास्त्र, सुप्रजननशास्त्र इत्यादियोंका विचार करके चातुर्वर्ण्यव्यवस्था धर्मशास्त्रकारोंने समाज के योगक्षेम को उत्तमतया चलानेके लिए की है। व्यक्तिधर्म, कुटुम्बधर्म, आश्रमधर्म, वर्णधर्म, राजधर्म, साधारणधर्म, मोक्षधर्म, औपासनधर्म, ये सब केवल परलोकके लिए हैं ऐसा एकांगी व दुराग्रही मनुष्यके सिवाय दूसरा कोई भी मानने को तैयार न होगा। प्रपंच के विषयमें ऐकान्तिक दुःखवाद धर्मशास्त्रकारोंको मान्य नहीं है। क्यों कि अधर्म से ही दुःख उत्पन्न होता है ऐसा धर्मशास्त्रकारों का निश्चय है। धर्मकी स्थापनासे ऐश्वर्य और सुख समाजको मिलते हैं ऐसा विश्वास शास्त्रकारोंके हृदयमें बसा हुआ है। जगत् दुःखपूर्ण है ऐसा मान लेनेसे भारतीय धर्मशास्त्रोंकी संगति लगानी दुष्कर हो जाएगी।

सुखवाद सर्व प्रवृत्तियोंका आधार है।

'यदा वै सुखं लभतेऽथ करोति नासुखं लब्ध्वा करोति सुखमेव लब्ध्वा करोति सुखं त्वेव विजिज्ञासितव्यम्।' (छां. उ. ७) सुखके लिए मनुष्य प्रवृत्त होता है। सुख न मिलने वा दुःख होनेसे ठहर जाता है, अतएव सुखका ही विचार मुख्यतया करना चाहिए। मनुष्य की सब प्रवृत्तियां सुखप्राप्ति और दुःखनिवारणार्थ होती हैं। जिस कर्म से मनुष्यको दुःख ही अधिक अनुभव होगा, उस कर्म की ओर कोई भी सामान्य मनुष्य प्रवृत्त न होगा। जो लोक आदतन वा इंद्रिय परवश हुए हुए दुःखद विषयकी ओर प्रवृत्त होते हैं उनका या उनके कुटुम्बका अथवा उनकी जाति का उससे नाश होना संभव है। मद्यपान, व्यभिचार इत्यादि दुराचरणों के दुष्परिणामों को जानते हुए, किंबहुना अनुभव करते हुए भी स्वैराचरणी लोग उपरोक्त दुराचरण करने में प्रवृत्त होते हैं। परन्तु उस प्रवृत्ति की जडमें सुखलेशही होता है! जिस व्यक्तिकी भविष्य कालीन अपनी आयुमें चिर सुख वा शांतिलाभकी ओर नजर होगी वह दुराचरण की ओर कभीभी दृष्टिपात नहीं करेगा। जिसका अपनी संतति, जाति अथवा समाजकी ओर लक्ष्य होगा, उस व्यक्ति की संतति, जाति वा समाज निसर्ग में अधिक समयके लिए अपने आपको स्थिर कर सकेगी। संयमी व्यक्तिकी आयु, जाति व समाज आनन्दी तथा विजयी होते हैं। बहुत सी उत्तम कृतियां मनुष्य के हाथसे स्वाभाविक जब होने लगती हैं तो उनका परिणाम सुखद होता है अतः उसे 'सत्' विशेषण प्राप्त होता है।

व्यक्ति वा समाज के ऐहिक सुख से जिस धर्मशास्त्रका बिलकुल सम्बध न होगा वह धर्मशास्त्र शीघ्रही नष्ट हो जाएगा। समाजमेंसे दुःख कम करके सुख व शान्तिका धीरे धीरे बढाना, जगत से झगडा मिटाना, व्यक्ति वा समाजको अधिक जीवनक्षम, संरक्षणक्षम और पराक्रमी करना व्यक्तिकी, जातिकी व समाजकी सद्गुणोंद्वारा योग्य प्रमाणमें वृद्धि करना ऐसा जिस धर्मशास्त्र का हेतु होगा वह जगत् के व्यवहारों में टिक सकेगा। जिन कर्मों की ऐहिक दृष्टि से कुछ भी सार्थकता नहीं है उन कर्मों का विधायक शास्त्र डूब जाएगा। सनातन धर्मशास्त्र व्यक्ति के अथवा समाज के आधिभौतिक व आध्यात्मिक सुख व शांति के लिए निर्माण हुए हुए हैं। सनातनधर्मशास्त्र समाज के उत्कर्ष के शास्त्र हैं। उनमें कुछ विचार तात्कालिक परिस्थितिके प्रभावसे उत्पन्न हुए हुए हैं और दूसरी परिस्थिति में वे व्यर्थ भी हों तथापि उन धर्मशास्त्रों में कुछ मुख्य सिद्धान्त भारतीय समाज को उत्कर्षप्रदान करनेवाले हैं ही।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सनातन धर्मशास्त्रका उदय वैदिक वाङ्मयसे हुआ। इसको उन्नति वैदिक आर्योंने की। वैदिक आर्य आनन्दवादी थे। इस धर्मशास्त्र की जडमें ऐकान्तिक दुःखवाद न था, पर धैर्य, उत्साहयुक्त आनन्द था। इन धर्मशास्त्रोंको दुःखवादी व दैववादी लोकोंने मलिन किया। केवल परलोकवादी लोकोंने इन धर्मशास्त्रोंकी कार्यक्षमता नष्ट कर दी। भारतीय धर्मशास्त्र जीवितोंके शास्त्र हैं, यह बात भूल जानेसे अच्छी व बुरी बातोंकी मिलावट उनमें होगई। सनातन धर्मशास्त्र भारतीयोंके यह प्रपंच-के सच्छास्त्र हैं। आधिभौतिक व आध्यात्मिक सुखवाद उनका आधार है।

॥ समाप्त ॥

परिशिष्ट।

दुःखमीमांसा व आनन्द मीमांसा की तुलना।

प्रपंच दुःखवाद।

१ अहिंसा ब्रह्मचर्यादिरूप नीतिकी एकांगी स्थापना।

२ समाज में प्रमुख जनोंकी समाज विषय उदासीनता व अर्थविषयक तिरस्कार। अतः सामान्य जनता की प्रपंचमें अनास्था।

३ अधिकार अनधिकार का ख्याल न रखते हुए परा विद्याका प्रसार व उससे अपरा विद्या या भौतिक शास्त्रोंका, औद्योगिक और ललित कलाओंका अपकर्ष। काल्पनिक शब्द जंजालकी वृद्धि।

४ सहिष्णु, अज्ञ, प्रतिकारशून्य, अनुकंपनीय व निष्प्रभ प्रजा उत्पन्न होती है।

५- संन्यासवाद की प्रधानता होती है।

६- मिथ्याचारी तरुण संन्यासियोंकी वृद्धि।

७- मठसंस्थापक कर्मयोगी।

सात्त्विक सुखवाद।

१- प्रपंचपोषक व समाजधारक पूर्ण नीतिकी स्थापना।

२- समाज की आर्थिक व नैतिक धारणा। तज्जन्य सामान्य जनता की प्रापंचिक सुव्यवस्था व चकचकाहट।

३- अधिकारसंपन्न पुरुषोंके हाथमें परा विद्या रहती है।

४- धैर्यशील, जयिष्णु, उदार, उदात्तभावना संपन्न और प्राज्ञ सुप्रजा बढती है।

५- कर्मयोगको विशिष्टता मिलती है।

६- अपवादभूत अधिकारयुक्त तरुण संन्यासी व मनुस्मृत्यनुरूप वृद्ध संन्यासी।

७- कुटुंब, जाति, समाज, राज्य व मठ, इनकी अच्छी प्रकार स्थापना करनेवाले कर्मयोगी।

यजुर्वेद मूलमात्र।

१ यजुर्वेद सर्वानुक्रम सूत्र। मूल्य १)

२ यजुर्वेद पाद सूची मूल्य १)

३ मूल यजुर्वेद विनाजिल्द १॥)

मूल यजुर्वेद कागजीजिल्द २)

" . कापडी " २॥)

" रेशमी " ३॥)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हिंदूसमाज समर्थ कैसा बनेगा ?

प्रकरण ८। मनोबल विचार।

(लेखक—श्री० पं. महादेवशास्त्री दिवेकर; अनुवादक- पं. भोला नाथराव)

हिंदू जनता को हरएक स्थान में भूत प्रेत ही दिखलाई देते हैं। हिंदूसमाज, भूत प्रेत, डाकिनी इत्यादि से इतना भयभीत है कि इनकी आपत्ति के कारण उसे किसी कार्य के संपादन करने में धैर्य ही नहीं होता। घरमें यदि कहीं अंधेरा हुआ तो वह स्थान छोटे बालकों को झपेटता है। कभी कभी वट-वृक्ष पर रहनेवाला भूत भी आकर इन लोगोंके मस्तकपर सवार होता है। हरएक गांवमें एक न एक भूत तो अवश्य ही होता है जो दुर्बल हिंदू समाजको सदैव डराया करता है। यह भय यहाँ तक बढ गया है कि सीले हुए घरकी किसी कोठरीमें चलनें या सोनेके कारण यदि किसी छोटे बच्चेको जुखामका प्रकोप होता है तो उसे भी व्यर्थ कार्यकारण संबंध जोडकर भूतों ही का धावा समझा जाता है और उसे दूर करने के लिये भूत उतारने की राख लगाई जाती है। साधारण स्वांसी आने पर भी भूत का उतारा किया जाता है। मनुष्य व पशुके बीमार होने पर किंवा कुछ साधारण शारीरिक दुःख होने पर भी भूत ही पर लक्ष जाता है। शोक है! कि वे लोग यह नहीं समझते कि किसी भी रोगका कारण नैसर्गिक अथवा आरोग्य नियमका भंग ही है। हिंदू समाज पर इस विचार सरणीका इतना बुरा प्रभाव पडा है कि यदि किसी स्थानपर चार पांच मनुष्यों ने भूत का रहना सिद्ध कर दिया तो किसी भी हिंदू स्त्री या पुरुषको वहाँ जानेका साहस नहीं होता। बहुतसे ऐसे उदाहरण सुननेमें आते हैं कि इन्हीं भूतप्रेतोंके भयसे किसी ने घर छोड दिया, किसी ने स्त्री त्याग दी और किसी किसी ने तो अपने बाल-बच्चोंको भी छोड दिया है। भूत प्रेतसे त्रस्त हिंदू समाजको मुसलमान, क्रिश्चियन और अंग्रेज लोगों से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। परंतु हिंदूसमाज व्यक्तियों की अच्छी बातोंका अनुकरण नहीं करता चाहे बुरी बातोंका भले ही अनुकरण करते। हिंदूओंके सामने तो सदैव अदृश्य भूत ही नाचा करते हैं।

हम प्रारंभमें ही बतला देना चाहते हैं कि विष्णुशास्त्री चिपळुणकर के 'लोकभ्रम' नामक निबंधानुसार हमारा मत नहीं है। उन्होंने अपने लेख में भूत प्रेत का बिलकुल ही अभाव माना है। संसार में पिशाच योनि अवश्य है पर मनुष्यों को सताना ही उनका ध्येय नहीं है। निसर्ग नियमानुसार भूत प्रेत व्यर्थ ही सांसारिक जनोंको कष्ट नहीं देते। मनुष्यों की अपेक्षा भूतों की संख्या बहुत ही कम है और फिर उन्हें तेंतीस कोटि देवताओं का भय हैं, वे स्वतंत्र नहीं हैं।

पिछले दस वर्षों से भूत प्रेत की संख्या कुछ कम हो रही है। औदुंबर, नृसिंहवाडी, विराडसिद्ध इत्यादि भूतप्रसिद्ध स्थानों में भी इनका अस्तित्व बहुत कुछ घट गया है। पिछले दस वर्षों में भूतों की कल्पना की कमी देखकर हमें यह कहना पडता है कि भूतों का अस्तित्व मनुष्यों के अज्ञान पर ही अवलम्बित होता है। 'समय के अनुसार भूतप्रेतों का विचार कम हो रहा है" इसका क्या तात्पर्य है? इससे यही प्रतीत होता है कि कुछ समय पूर्व की भूतों की अज्ञान कल्पना आधुनिक समय में ज्ञानरूप में बदल रही है। सारांश यह है कि अज्ञान में जिसका उदय हुआ उसी का ज्ञान में लय हो गया। बाल्यावस्था में हम लोग बोरघाट रिह्वर्सिंग के संबंध में सुना करते थे कि वह रेल को आगे बढने ही नहीं देता। नरियल फोडकर नमस्कार करने पर भी वह रेल को सामने नहीं जाने देता; परन्तु घूमकर जाने की आज्ञा देता है। इस बात में कितना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

तथ्यांश है इसके बतलाने की आवश्यकता नहीं, परंतु भूत प्रेतसंबंधी सैकडों इसी प्रकार की बातें प्रतिदिवस सुनने में आती हैं। यह कहने में अत्युक्ति न होगी कि जब से भारत में रेलों का प्रचार हुआ तब से बहुत से भूत प्रेत भाग गये। और जो कुछ बाकी बचे हैं वे मोटरों के नीचे पडकर मर रहे हैं। जिन मनुष्यों को मृत्यु समय किसी वस्तु की उत्कट वासना होती है उन्हीं को प्रेतयोनि प्राप्त होती है। जब तक वासनाबीज होता है तब तक पुनर्जन्म होता है। बिना वासना के क्षय हुए मोक्ष प्राप्ति नहीं होती। इस शास्त्र के अनुसार यह कहना कितना अनुचित होगा कि सब जीव भूतयोनि में ही जाते हैं? भूतयोनि छोडकर जो दूसरी योनियें हैं उनमें जाने के लिये भी हरएक मनुष्य के संग कुछ न कुछ पापपुण्य अवश्य ही होता है! इसके अनुसार प्रेतयोनि का प्रमाण अल्पस्वरूप में होना चाहिये। इन लोगों में जीवित मनुष्यों को पीडा देने की शक्ति कहां। ये लोग तो अपना कर्म भोगते भोगते भूतयोनि में स्वयं ही शक्तिहीन हो जाते हैं। यदा कदाचित इनमें पीडा देने की शक्ति मानी भी जाय तो यह लोग बिना कुछ पूर्व संबंध हुए सर्व साधारण को पीडा नहीं देते। यदि यह लोग सर्व साधारण को त्रस्त करने लगें तो ईश्वर के अस्तित्व से क्या लाभ? जब तक ईश्वर और इतर तेंतीस कोटि देवताओं का ऱ्हास नहीं होता तब तक भूतों का इतना प्रभुत्व कभी भी नहीं हो सकता। संभव है, लाखों में से किसी एक को प्रेत बाधा का क्वचित भास होता हो परन्तु अन्य जो पीडाएं होती हैं उनको भी व्यर्थ ही कार्यकारण संबंध जोडकर प्रेतबाधा के ही अन्तर्गत रखा जाता है।

किसी किसी गांव के निवासी लोग तो अनेक प्रकार से भूत प्रेत की साक्षी दिया करते हैं और उसी गांव के हनुमान, खंडोबा, गणपति इत्यादि देवस्थानों को भूल जाते हैं। आश्चर्य की बात है कि देवताओं की संख्या भूतों की अपेक्षा विशेष होते हुए भी, भूत लोग स्वइच्छानुसार कैसे कार्य कर सकते हैं और देवगण उन्हें ऐसा कब करने देंगे? भूतों का विकास क्या दुर्बलों को कष्ट पहुंचाने के लिये ही हुआ है? ठीक है सबल जातियों पर तो इनका कुछ बल नहीं चलता, दुर्बलों को ही सताने में यह शक्तिशाली होते हैं। डायर ओडायर ऐसे मनुष्योंपर इनका कुछ भी प्रभाव नहीं होता। औरंगजेब ऐसे हिंदुद्वेषी राजाओं को यह भूलकर भी नहीं चपेटता। हिंदुस्तान के भूत तो केवल घर के वृद्ध लोगोंको ही अपना बल दिखाते हैं। हिंदुसमाज को ऐसे लबार भूतों को अपने पास से अलग कर देना चाहिये। अन्य समाजों में भी भूतप्रेतों की कल्पना है परंतु उन समाजों पर इसका कुछ भी बल नहीं चलता। क्या Holy Ghost होने के ही कारण बाइबिल का भूत निरुपद्रवी है? मुसलमानों में भी भूतों की कल्पना है परन्तु उन लोगों ने अपने भूतों को कुत्ते की भांति अन्य समाजों को कष्ट देने के लिये छोड रखा है। मुसलमानों का सब कुछ परकीय समाज पर ही चलता है। उनके भूत हिंदुओं को कष्ट देनेवाले हैं इसी कारण मुसलमानों ने उन भूतों को अपना रखा है। अन्य जातियों की भांति हिन्दू जाति को भी त्रासदायक भूतों की कल्पना को नष्ट कर देना चाहिये। यदि हिंदू समाज के पास कुछ ऐसे दृश्य व अदृश्य भूत हों जो अन्य समाजों पर समयानुसार छोडे जा सकते हों तो उनका अवश्य संग्रह करना चाहिये। ऐसे ही भूतसे संबंध करने पर तुलसीदास को रामचन्द्र के दर्शन हुए। हिंदू समाज के शत्रुओं को संहार करने वाले भूतोंको तो अवश्य ही जीवित रखना चाहिये परन्तु अन्य भूतों को अवश्य ही नष्ट कर देना चाहिये।

ईश्वर को स्मरण कर जो अपना कार्य प्रारम्भ करता है उसे प्रेतबाधा कभी नहीं होती। धर्मप्रमाण निर्धारित तत्वों के अनुसार चलने से प्रेतों का प्रभाव नहीं पडता। जो मनुष्य कर्तव्य का विचार करके अखिल मानव समूह के भलाई के लिये कार्य करता है उसे भूत कभी नहीं पकडते। परन्तु जहाँ तक उनसे हो सकता है सहायता ही करते हैं। हिंदुस्तान में मृत भूतों की अपेक्षा जीवित भूतही बहुत हैं जो कि हिन्दू समाज को नष्ट भ्रष्ट करने में लगे हुए हैं। ऐसी अवस्था में अन्य मृत भूतों का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

आवश्यकता नहीं। सारांश यह है कि कर्तव्यबाधक कल्पनाओं को छोडकर उद्योग ही में लगना चाहिये।

हमने पिछले ६ प्रकरणों में मनोबल का विचार किया। हिंदूसमाज में जब मानसिक बल उत्पन्न होगा तभी शरीरबल बढेगा और तभी समाज उत्साहपूर्वक अग्रसर होगा। हिंदू समाज को समाजबल, समष्टिधर्म तथा उसका उपयोग किस प्रकार करना चाहिये, इसका विवेचन ग्रंथ के उत्तरार्ध में किया गया है।

हिंदूसमाज समर्थ कैसे होगा ?

उत्तरार्ध.

प्रकरण नवाँ — समाजबलविचार

समष्टि धर्म।

हिंदूसमाज समर्थ कैसे होगा ? इसी प्रश्न का विचार करते हुए हमनें यह ग्रंथ प्रारम्भ किया था। पहले प्रकरणमें विचारों की भूमिका दी गई तदनंतर दूसरे प्रकरण में शरीरबल बढाने का उपाय बतलाया गया। तीसरे प्रकरण से मनोबल पर कुछ विचार किया गया। ' जिज्ञासानाशक वेदान्त ' इस प्रकरण से ' अवास्तव व अशास्त्रीय भूत प्रेत ' प्रकरण पर्यंत प्रमुख प्रमुख ५,६ प्रकार के विचार आठवें प्रकरण तक लिखे गये। हिंदूसमाज में मनोदौर्बल्य किन किन कारणों से आया और उनको दूर करके उसकी मानसिक उन्नति किस प्रकार हो सकती है, इसका निरूपण करके पूर्वार्ध की समाप्ति की गई।

हिंदूसमाज को सामर्थ्यवान बनाने केलिये जिस प्रकार शरीरबल व मनोबलकी आवश्यकता है उसी प्रकार उसे उन्नति के शिखर पर पहुंचाने के लिये समाजबल की भी महान आवश्यकता है। समाजबल उत्पन्न करने के लिये पहिले समाज के मानसिक उन्नति की आवश्यकता होती है। मानसिक प्रबलता होनेपर समष्टि का प्रतिपालन आप ही आप होने लगता है। पुस्तक के उत्तरार्ध में समाजबल बढाने के लिये विशेष कर समष्टि धर्म का ही निरूपण करना है। इस प्रकरण में समष्टि धर्म के प्रमुख प्रमुख तत्वों का निरूपण किया जायगा। समष्टि धर्म को समझने के लिये हमने पूर्वार्ध ही में हिंदुओं के मानसिक दुर्बलताओं को हटाने की तैयारी कर ली है ऐसा समझकर हम अपने प्रस्तुत विषय की ओर चलते हैं।

हिंदु समाज के भावी राष्ट्रीय जीवन को समष्टि धर्म की महान आवश्यकता है। हिंदू समाज जितना व्यष्टि धर्म में उत्साह दिखलाता है उतना समष्टि धर्म में नहीं दिखलाता। व्यक्ति की उन्नति मोक्ष, सुख, नीतिमत्ता इत्यादि व्यवहारों में हिंदूसमाज इतर समाजों की अपेक्षा एक डिगरी बढा हुआ ही होगा। अब हिंदू समाज के व्यष्टि धर्म का श्रेष्ठत्व समष्टिधर्म में परिवर्तित होना चाहिये। इतर समाजों में जो ऐकता व सहयोग और सामुदायिक आस्था दृष्टिगोचर होती है उसका कारण उनके समष्टि धर्म की विशिष्टता ही है। उत्साह, उद्योग, आस्था व Decipline से जो समाज पूर्ण होता है वह समाज अवश्य ही वर्धिष्णु व जयिष्णु होता है और यह गुण यदि समाजमें न हुए तो वह शनैः शनैः सहिष्णु बनकर मृत्युपंथ में जा पडता है।

हिंदू समाज में समष्टि धर्म घातक वर्णसंस्था का अस्तित्व जिस समय था उस समय था। परन्तु आधुनिक समय में वर्णसंस्था बिलकुल ही नहीं है। उनमें बहुत अन्तर हो गया है इस कारण हिंदूसमाज जातिद्वारा ही पहचाना जा सकता है। भिन्न भिन्न जाति के जो लोग हिन्दूसमाज में सम्मिलित हैं उनको यह बतला कर कि हम सब लोग हिंदू हैं, समाज हमारा है, हिन्दुस्तान देश हमारा है, समष्टि धर्म की शिक्षा देनी चाहिये। अर्थात् समाज में यह बात भली भांति विदित हो जानी चाहिये कि व्यक्ति और समष्टि धर्म में एक दूसरे से महान अन्तर है। प्रत्येक हिंदूको ' समुदाय ' इस दृष्टिसे यह समझना जरूरी है कि अमुक समाज के प्रतिपालक, उसके अमुक श्रेष्ठतत्व, उसकी विशिष्ट संस्कृति, धर्म, राजकारण, उद्योग, व्यवहार इत्यादि क्षेत्रों में हमें अमुक पद्धति से ही चलना है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

समाज में सामुदायिक बल बढाने के लिये कुछ नियमों का पालन करना पडता है। हिंदूसमाज में शिथिलता आ जाने के कारण उसमें कोई भी ऐसे नियम नहीं बचे हैं जिसे समाजबल की वृद्धि हो। समाजबलवृद्धि के लिये समाज को श्रद्धेय दो चार ध्येय होना ही चाहिये और समाज का द्वेष्य भी एक होना चाहिये। जिस समाज में द्वेष्य ध्येय होता है उसमें प्रतिकार शक्ति, सावधानता, और दूरदर्शिता इन गुणों की वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त जिस समाज का श्रद्धेय ध्येय होता है उसमें प्रेम, ऐक्य तथा सहकार्य इन गुणों की वृद्धि होती है। हिंदू समाज अत्यंत उदार है ऐसा तत्वज्ञान प्रचलित होने के कारण उसे श्रद्धेय व द्वेष्य कुछ भी नहीं है किंवा उसके लिये सर्व द्वेष्य और सर्व श्रद्धेय है ऐसी स्थिति हो गई है। जब समाज समर्थ होता है, जयिष्णु होता है तब यदि उसमें श्रद्धेय या द्वेष्य कुछ भी न हो तो भी वह किंचित कालपर्यंत चल सकता है; परंतु दुर्बल समाज भी यदि आडम्बरपूर्ण विश्वबंधुत्व, तत्वज्ञान व औदार्य की शेखी मारने लगा तो उसे नष्ट भ्रष्ट होने के सिवाय और कोई गति नहीं है। हिंदूसमाज झूठी उदारता व अक्षम्य औदासीन्यताके कारण ही नाश हो रहा है। उसे मृत्युमुख से बचाने के लिये उत्कट समाज धर्म का प्रचार करना बहुत जरूरी है तथा समाज बंधुत्व से उसे जीवित रखने की शिक्षा देना भी महान आवश्यक है।

हिंदू समाज का घटक जाति रूपसे है। जाति संस्था का मुख्य व्यवहार रोटी व बेटी से ही होता है। यद्यपि मानव समुदाय में रोटी बेटी के व्यवहार के कारण कुछ गुण हैं परंतु उन में भी नवीन शिक्षण के प्रभाव के कारण अत्यंत शिथिलता आगई है। व्यक्तिस्वतंत्रता का विचार इतना बढ गया है कि वह कुटुंब, जाति व समाज व्यवहारमें भी बाधक हो रहा है। प्रत्येक व्यक्ति के अलग अलग संन्यस्त, स्वतंत्र किंवा व्यक्तिगत बन जाने के कारण समाजबल उत्पन्न होनेका अवसर ही नहीं मिलता। समाजबलवर्धक समष्टि धर्म के कुछ तत्वों का विवेचन हम यहाँ करते हैं परन्तु उतना ही पर्याप्त है, यह हम नहीं कह सकते। इस छोटी सी पुस्तक में इतने गहन विषय का पूर्ण रूपसे विवेचन होना कठिन है; परंतु हमारे विचारों का उपयोग यदि केवल मार्गदर्शक का भी हुआ तो भी विशेष कार्य सफल होगा। वैयक्तिक और सामुदायिक धर्म के मर्म को समझने की जब आवश्यकता होती है तभी मनुष्य में पात्रता का संचार होता है। जब पात्रता की वृद्धि होने लगती है तभी समष्टि धर्म में अंतर्धान होने की इच्छा होती है और व्यष्टि धर्म का आग्रह स्वयं ही कम हो जाता है। कोई भी वस्तु जब तराजू के पल्ले के सदृश बराबर होती है तभी वह स्थिर रहती है यदि उसमें किसी पलडे में किंचित मात्र भी कमी हुई कि पलडा एक ओर को झुक जाता है। व्यष्टि धर्म के पलडे में कमी करके और समष्टि धर्मका तरण भली भांति खींचा जायगा तभी हिंदू समाज के बल की वृद्धि होगी।

"समष्टि धर्म का पहला तत्व यह है कि, "गीता ग्रंथ ही समस्त हिंदूतत्वज्ञान का मुख्य ग्रंथ है"। इस ग्रंथ पर प्रत्येक हिंदूमात्रका अधिकार है। गीता, कथित कर्मयोग अर्थात् 'राजर्षिकी परंपरा" के सिद्धांत को ही सर्व हिंदूमात्र को बतलाना चाहिये। समाज में प्रत्येक अवसर विशेष पर हिंदुओं को गीता का ही पुरस्कार व प्रचार करना चाहिये। कारण कि प्रत्येक हिंदू को यह जान लेना अत्यावश्यक है कि हिंदूसमाज का कल्याण गीता ग्रंथ में कहे हुए तत्वज्ञान द्वारा ही होगा और यदि हींदुओं के मन में इस प्रकार की भावना न हो तो इस शिक्षा का प्रचार करना चाहिये। यद्यपि हिंदूसमाज में शैव, वैष्णव, गाणपत्य, शाक्त, द्वैती, अद्वैती, विशिष्टाद्वैती, वारकरी, धारकरी, समर्थसंप्रदायी, नाथसंप्रदायी, दत्तसंप्रदायी इत्यादि विविध सांप्रदायिक लोग हैं तो भी इन लोगों को चाहिये कि अपने देवता, ग्रंथ व संप्रदाय को अपने कार्यानुसार अपने घर ही में रक्खें। समाज में अपने वैयक्तिक आग्रह को प्रकट करने से दूसरे लोग भी अपने अपने अलग अलग धर्म का आग्रह दिखलाने लगते हैं और ऐसी अवस्था में विग्रह होने की संभावना रहती है। अपने अपने घर में प्रत्येक मनुष्य देव, धर्म

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पंथ इत्यादि बातों में स्वतंत्र है परंतु घर के बाहर समाजोपयोगी धर्म का ही विस्तार होना चाहिये। सामाजिक हित के लिये प्रत्येक व्यक्ति को निज इच्छा तथा निज इष्टित को क्षणभर एक ओर रखकर समाज की कल्याणपोषक बातों को ही आत्मसात करना चाहिये। महाभारत, रामायण, भागवत, उपनिषद्, ज्ञानेश्वरी, दासबोध, गाथा, गुरुचरित्र, शिवलीलामृत इत्यादि ग्रंथ बहुजनसमुदाय को अच्छे प्रतीत होंगे और हैं भी। इन ग्रंथों का हम अनादर करते हैं यह बात नहीं। यद्यपि इन सब ग्रंथों में बहुमूल्य तत्वसंपत्ति व सिद्धांतसंपत्ति है तो भी समाजदृष्टिसे " गीता गीता " ऐसी घोषणा ही प्रत्येक हिंदू के मुख से होनी चाहिये। गीता धर्म और गीता शास्त्रका अभिमान होना अत्यावश्यक है। प्रतिदिवस गीता का एक आधा श्लोक पढना, उस पर विचार करना, नित्य स्नानोत्तर गीता पाठ करना प्रत्येक हिंदू का धर्म है। इसकी उत्पत्ति साक्षात ईश्वरके मुखसे प्रश्नोत्तर रूपमें है। स्पृश्य, अस्पृश्य, ब्राह्मण, अब्राह्मण, स्त्री, पुरुष, बाल, वृद्ध इन सब लोगों को गीता पढने का अधिकार है। हिंदूओंमें ऐसी अभिनिविष्ट बुद्धिका आना बहुत आवश्यक है कि गीता कथित भक्ति, तत्वज्ञान व कर्मयोग अति उत्कृष्ट है, इस कारण संसार को उसकी शिक्षा देनेका हिंदुओंको जन्मसिद्ध अधिकार है। किसी बिरले ग्रंथको ही इतनी पूज्यता, आग्रहता व अभिनिविष्टता दी जाती है। प्रत्येक ग्रंथका इतना आदर होना असंभव है और न इष्ट है, न आवश्यकता है। सारांश यह है कि समष्टि धर्म का पहिला तत्व यही है कि गीता ही एक ऐसी पुस्तक है जो कि सर्व तत्वज्ञानों की अनोखी पुस्तक है और प्रत्येक हिंदू को उसका प्रचार करना अपना मुख्य धर्म समझना चाहिये। बाइबिलके अनुसार गीता की पुस्तकें भी विनामूल्य ही वितरण करनी चाहिये। घर घरमें गीताका प्रचार होना चाहिये और अत्यंत गिरे हुए किंवा छोटीसे छोटी जातिको-नहीं-अर्भकों को- छोटे बच्चोंको भी, गीता यह हमारा ग्रंथ है, मैं हिंदू हूँ, गीता हमारी संपत्ति है, निधान है ऐसा विचार करना चाहिये। गीता ही सर्व हिंदुओंके तत्वज्ञान का ग्रंथ है इसका क्या प्रमाण है, इसका विवेचन हमारी एक स्वतंत्र पुस्तक (हिंदूसमाजके पुनर्घटन की चतुःसूत्री) में किया गया है; इस कारण इस बात पर हम यहाँ विचार नहीं करते हैं।

समष्टि धर्म का दूसरा तत्व यह है कि सर्व हिंदूओंको उपनयन, विवाह और अंत्येष्टि यह तीन संस्कार हिंदुत्वदर्शक समझना चाहिये कारण कि हिंदुत्व, यह संस्कारांकित है। हिंदुओंके यह सर्व संस्कार वेदमंत्रों द्वारा होने चाहिये व संस्कार जिनके हों उन्हीं को करना चाहिये। विशेष क्या Helper कहकर तज्ञसे मदत लेना चाहिये। किसी को मध्यस्थ बनाने की आवश्यकता नहीं है। प्रत्येक हिंदूका हिंदुत्वनिदर्शक संस्कार वेदमंत्रों ही द्वारा होना अत्यावश्यक है। इन संस्कारों को करने की सामाजिक स्वतंत्रता प्रत्येक हिंदूको है। वेद पढनेका अधिकार सबको है। वेदके अत्युत्कृष्ट वाङ्मय होने के कारण उस जागतिक संपत्ति पर सर्व साधारण का समान अधिकार है। परन्तु हिंदुओंके बाप दादोंने पूर्व काल में वेदोपासना की है इस कारण उन्हें तो वेदमंत्रयुक्त संस्कार करने की पात्रता सहज ही प्राप्त होती है। इसी कारण हमारा कहना है कि सर्व हिंदूवर्गको उदार और पवित्र भावना द्वारा संस्कार के समय वेद मंत्रोंका उपयोग करना ही चाहिये। अब हमें इस बात पर विशेष कुछ नहीं कहना है कि वेद मंत्रों का उपयोग करने का किसको अधिकार है और किसको नहीं। इसी अधिकार और अनधिकार के बातों से ही संस्कारमें शिथिलता आगई है। Baptism, सुन्नत विधि अर्थात् किसी विशेष विधि से यदि मनुष्य क्रिश्चियन और मुसलमान बन जाता है तो क्या अन्य जातिका मनुष्य हमारे वेदविहित संस्कारोंसे हिंदू नहीं बन सकता ? हिंदूधर्ममें जन्म लेनेसे मनुष्य आजन्म हिंदू ही रहता है। कुछ भी हो, वह कुछ भी करे, वह कभी भी अहिंदु नहीं होता; मोक्षपर्यंत तक वह हिंदू ही रहता है इसमें कोई भी संशय नहीं। तथापि हिंदुत्व दृढी करणार्थ समष्टि धर्म के अनुसार उपर कहे हुए संस्कारों को कार्य में अवश्य

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

लाना चाहिये। संस्कार, यह एक विधि है, एक प्रायश्चित्त है। मनः समाधानार्थ और धर्म का विशिष्ट चिन्ह होनेके कारण उसकी महान आवश्यकता है। प्रत्येक धर्म व समाज को थोडे बहुत आचार की आवश्यकता होती ही है। प्रत्येक समाज अन्य समाज के सन्मुख अपना भिन्नत्व व व्यावृत्ति किसी विशेष चिन्ह द्वारा ही दिखलाता है। हिंदुत्व निदर्शक कुछ चिन्हें संस्कार रूपसे ही हिंदुओं के मन में भरनी चाहिये। आधुनिक समय में भी किन्हीं किन्हीं जातियों के संस्कारमें धर्म की अपेक्षा लौकिक व्यवहार का भाग ही विशेष रहता है यास्तव शास्त्राशुद्ध संस्कार होना चाहिये, उस प्रसंग का गंभीर्य समझकर होना चाहिये। संस्कारों में धर्मभावना है, पवित्रताका चिन्ह है इस कारण उनकी रक्षा करना बहुत जरूरी है। संस्कार, यह एक नाटक सदृश है ऐसी कल्पना करना महान अनिष्टकारक है। प्रत्येक हिंदू को आस्तिकवादी होना चाहिये, ईश्वरपर उसका दृढ विश्वास होना चाहिये, उस विश्वास का द्योतक कहकर उनको समष्टि धर्म के प्रत्येक आचारको अत्यंत श्रद्धासे पालन करना चाहिये व अपने पास पडोसियोंसे भी पालन करवाना चाहिये। विद्या प्रारंभ करने से प्रथम बालक व बालिकाओंका उपनयन उर्फ विद्यारंभ संस्कार पवित्र भावनासे करके विद्यारंभ करानी चाहिये और उस समय विद्यार्थी धर्मका उपदेश देना चाहिये। विवाहविधि यह इहलोककी पवित्रतम विधि है इस कारण विवाहसे प्रथम उसका महत्व तथा उस विधिके वेद मंत्रों का अर्थ वर-वधूको भली भांति समज लेना चाहिये। मृतात्माका अभिष्ट चिंतन सद्गति लाभ और पुनः हिंदूसमाजमें ही जन्म हो इस लिये अंत्येष्टि संस्कार भी अवश्य ही होना चाहिये। यह सर्व संस्कार का इतिहास हम सार्थ क्रमसे प्रसिद्ध करने ही वाले हैं तथापि उपनयन संस्कार यह हमारी पुस्तक "हिंदू-समाज के पुनर्घटन की चतुःसूत्री" में भली भांति बतलाया गया है।

समष्टि धर्म के अनुसार हिंदूसमाजान्तर्गत सर्व जातियें हिंदू समाज के धारण पोषण की दृष्टि से एकही प्रकार की योग्यता रखती है। (जिस प्रकार जन्म ही से कोई व्यक्ति उच्च व नीच नहीं होता उसी प्रकार वह स्पृश्य और अस्पृश्य भी नहीं होता। यह समष्टि धर्म का तीसरा तत्व है।) जन्म से प्रत्येक मनुष्य एक ही समान है। प्रत्येक जाति भी एक ही सदृश है। हरएक मनुष्य का मूल्य उसकी विद्या, शील, कर्तृत्व और संपत्ति पर ही निर्धारित रहता है। यही गुण हैं जो मनुष्य को श्रेष्ठ बनाते हैं व इनके अभाव से वह अश्रेष्ठ बन जाता है। हिंदूसमाज में अनेक जातियें हैं। उनमें शैक्षणिक, सांस्कृतिक, व आचार विषयक बहुतसे भेद हैं परंतु अनेक कारणों से वे अब शनैः शनैः घट रहे हैं। हम सब लोग हिंदू है, हिंदू की प्रजा हैं, यही ज्ञान समष्टि धर्म की दृष्टि से समाज को मिलना चाहिये। जन्म ही से उच्च नीच पन की जो कल्पना हिंदू समाज में भरी हुई है उसे एकबार ही हटा देना अत्यंत कठिन है; तथापि प्रत्येक व्यक्ति अपने घर में स्वतः को जितना उच्च समझता हो समझता रहे; परंतु उसे अपने उन विचारों को घर के बाहर समाज में प्रकट करने का अधिकार नहीं। हिंदू शब्द के अंतर्गत सर्व जातियों को-नहीं- प्रत्येक मनुष्य को- अपने पूर्वजों के तप, विद्या, उद्योग, शोध, पराक्रम, कर्तृत्व, व्यापार, सेवा इत्यादि गुणों का स्मरण करके उनके अनुसार चलने का अधिकार है। उन प्रयत्नों को पूर्व स्मरण की स्फूर्ति मिलना ही चाहिये और इसी कारण घरके प्रत्येक मनुष्य को स्वजाति, वर्ण व कुल का स्मरण रखना ही चाहिये। परंतु वह स्वतः की उन्नति का साधन ही मान कर, घरके बाहर वह विचार समाजोन्नति को बाधक है इससे उसका प्रचार समाज में नहीं करना चाहिये।

(क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

विजयकी प्राप्ति।

[३]

(ऋषिः- बृहद्दिवोऽथर्वा । देवता-अग्निः । विश्वे देवाः)

ममा॑ग्ने॒ वर्चो॑ विह॒वेष्व॑स्तु व॒यं त्वेन्धा॑नास्त॒न्वं॑ पुषेम ।
मह्यं॑ नमन्तां प्र॒दिश॒श्चत॑स्र॒स्त्वया॒ध्य॑क्षेण॒ पृत॑ना जयेम ॥ १ ॥
अग्ने॑ म॒न्युं प्र॑तिनु॒दन् परे॑षां॒ त्वं नो॑ गो॒पाः परि॑ पाहि वि॒श्वतः॑ ।
अपा॑ञ्चो यन्तु नि॒वता॑ दुर॒स्यवो॒ मैषां॑ चि॒त्तं प्र॒बुधां॒ वि ने॑शत् ॥ २ ॥

अर्थ—हे अग्ने ! (विहवेषु मम वर्चः अस्तु) सब युद्धोंमें मेरा तेज प्रकाशित होवे । (वयं त्वा इन्धानाः तन्वं पुषेम) हम तुझे प्रदीप्त करते हुए अपने शरीरको पुष्ट बनावें । (चतस्रः प्रदिशः मह्यं नमन्तां) चारों दिशाएं मेरे सन्मुख नमें । (त्वया अध्यक्षेण पृतनाः जयेम) तुझ अध्यक्षके साथ रहकर संग्रामोंमें विजय प्राप्त करें ॥ १ ॥

हे अग्ने ! (परेषां मन्युं प्रतिनुदन्) शत्रुओंके क्रोधको दूर करता हुआ (त्वं गोपाः सन्) तू रक्षक होकर (नः विश्वतः परिपाहि) हमारा सब ओरसे पालन कर । (दुरस्यवः पराञ्चः निवताः यन्तु) दुःखदायी दूर हटाने योग्य नीच लोग दूर चलें । (एषां प्रबुधां चित्तं अमा विनेशत्) ये दुष्ट प्रबुद्ध हुए तो भी उनका चित्त साथ साथ ही नष्ट हो जावे ॥ २ ॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! सब प्रकारकी स्पर्धाओंमें मेरा तेज प्रकाशित होवे । तुझे अपने अंदर प्रकाशित करके हम अपने शरीरको पुष्ट और बलवान करेंगे । मेरे सन्मुख सब दिशा उपदिशाओंमें रहनेवाले लोग नम्र हों । तेरी अध्यक्षतामें हम सब प्रकारकी स्पर्धाओंमें विजयी होंगे ॥ १ ॥

हे देव ! शत्रुओंका क्रोध दूर करके तू हमारी सब प्रकारसे रक्षा कर । दुःख देनेवाले नीच लोग हमसे दूर हो जांय । यदि वे शत्रु बुद्धिमान हों तो उनकी दुष्ट बुद्धी भी साथ साथ ही नष्ट हो जावे ॥ २ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

लाना चाहिये । संस्कार, यह एक विधि है, एक प्रायश्चित्त है । मनः समाधानार्थ और धर्म का विशिष्ट चिन्ह होनेके कारण उसकी महान आवश्यकता है । प्रत्येक धर्म व समाज को थोडे बहुत आचार की आवश्यकता होती ही है । प्रत्येक समाज अन्य समाज के सन्मुख अपना भिन्नत्व व व्यावृत्ति किसी विशेष चिन्ह द्वारा ही दिखलाता है। हिंदुत्व निदर्शक कुछ चिन्हें संस्कार रूपसे ही हिंदुओं के मन में भरनी चाहिये । आधुनिक समय में भी किन्हीं किन्हीं जातियों के संस्कारमें धर्म की अपेक्षा लौकिक व्यवहार का भाग ही विशेष रहता है यास्तव शास्त्राशुद्ध संस्कार होना चाहिये, उस प्रसंग का गंभीर्य समझकर होना चाहिये। संस्कारों में धर्मभावना है, पवित्रताका चिन्ह है इस कारण उनकी रक्षा करना बहुत जरूरी है । संस्कार, यह एक नाटक सदृश है ऐसी कल्पना करना महान अनिष्टकारक है । प्रत्येक हिंदू को आस्तिकवादी होना चाहिये, ईश्वरपर उसका दृढ विश्वास होना चाहिये, उस विश्वास का द्योतक कहकर उनको समष्टि धर्म के प्रत्येक आचारको अत्यंत श्रद्धासे पालन करना चाहिये व अपने पास पडोसियोंसे भी पालन करवाना चाहिये । विद्या प्रारंभ करने से प्रथम बालक व बालिकाओंका उपनयन उर्फ विद्यारंभ संस्कार पवित्र भावनासे करके विद्यारंभ करानी चाहिये और उस समय विद्यार्थी धर्मका उपदेश देना चाहिये । विवाहविधि यह इहलोककी पवित्रतम विधि है इस कारण विवाहसे प्रथम उसका महत्व तथा उस विधिके वेद मंत्रों का अर्थ वर-वधूको भली भांति समज लेना चाहिये । मृतात्माका अभिष्ट चिंतन सद्गति लाभ और पुनः हिंदूसमाजमें ही जन्म हो इस लिये अंत्येष्टि संस्कार भी अवश्य ही होना चाहिये । यह सर्व संस्कार का इतिहास हम सार्थ क्रमसे प्रसिद्ध करने ही वाले हैं तथापि उपनयन संस्कार यह हमारी पुस्तक "हिंदू-समाज के पुनर्घटन की चतुःसूत्री " में भली भांति बतलाया गया है ।

समष्टि धर्म के अनुसार हिंदूसमाजान्तर्गत सर्व जातियें हिंदू समाज के धारण पोषण की दृष्टि से एकही प्रकार की योग्यता रखती है । (जिस प्रकार जन्म ही से कोई व्यक्ति उच्च व नीच नहीं होता उसी प्रकार वह स्पृश्य और अस्पृश्य भी नहीं होता । यह समष्टि धर्म का तीसरा तत्व है ।) जन्म से प्रत्येक मनुष्य एक ही समान है । प्रत्येक जाति भी एक ही सदृश है । हरएक मनुष्य का मूल्य उसकी विद्या, शील, कर्तृत्व और संपत्ति पर ही निर्धारित रहता है । यही गुण हैं जो मनुष्य को श्रेष्ठ बनाते हैं व इनके अभाव से वह अश्रेष्ठ बन जाता है। हिंदूसमाज में अनेक जातियें हैं । उनमें शैक्षणिक, सांस्कृतिक, व आचार विषयक बहुतसे भेद हैं परंतु अनेक कारणों से वे अब शनैः शनैः घट रहे हैं । हम सब लोग हिंदू है, हिंदू की प्रजा हैं, यही ज्ञान समष्टि धर्म की दृष्टि से समाज को मिलना चाहिये । जन्म ही से उच्च नीच पन की जो कल्पना हिंदू समाज में भरी हुई है उसे एकबार ही हटा देना अत्यंत कठिन है; तथापि प्रत्येक व्यक्ति अपने घर में स्वतः को जितना उच्च समझता हो समझता रहे; परंतु उसे अपने उन विचारों को घर के बाहर समाज में प्रकट करने का अधिकार नहीं । हिंदू शब्द के अंतर्गत सर्व जातियों को-नहीं- प्रत्येक मनुष्य को- अपने पूर्वजों के तप, विद्या, उद्योग, शोध, पराक्रम, कर्तृत्व, व्यापार, सेवा इत्यादि गुणों का स्मरण करके उनके अनुसार चलने का अधिकार है । उन प्रयत्नों को पूर्व स्मरण की स्फूर्ति मिलना ही चाहिये और इसी कारण घरके प्रत्येक मनुष्य को स्वजाति, वर्ण व कुल का स्मरण रखना ही चाहिये। परंतु वह स्वतः की उन्नति का साधन ही मान कर, घरके बाहर वह विचार समाजोन्नति को बाधक है इससे उसका प्रचार समाज में नहीं करना चाहिये ।

(क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

विजयकी प्राप्ति।

[३]

(ऋषिः- बृहद्दिवोऽथर्वा । देवता-अग्निः । विश्वे देवाः)

ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रस्त्वयाध्यक्षेण पृतना जयेम ॥ १ ॥
अग्ने मन्युं प्रतिनुदन् परेषां त्वं नो गोपाः परि पाहि विश्वतः ।
अपाञ्चो यन्तु निवता दुरस्यवो मैषां चित्तं प्रबुधां वि नेशत् ॥ २ ॥

अर्थ—हे अग्ने ! (विहवेषु मम वर्चः अस्तु) सब युद्धोंमें मेरा तेज प्रकाशित होवे । (वयं त्वा इन्धानाः तन्वं पुषेम) हम तुझे प्रदीप्त करते हुए अपने शरीरको पुष्ट बनावें । (चतस्रः प्रदिशः मह्यं नमन्तां) चारों दिशाएं मेरे सन्मुख नमें । (त्वया अध्यक्षेण पृतनाः जयेम) तुझ अध्यक्षके साथ रहकर संग्रामोंमें विजय प्राप्त करें ॥ १ ॥

हे अग्ने ! (परेषां मन्युं प्रतिनुदन्) शत्रुओंके क्रोधको दूर करता हुआ (त्वं गोपाः सन्) तू रक्षक होकर (नः विश्वतः परिपाहि) हमारा सब ओरसे पालन कर । (दुरस्यवः पराञ्चः निवताः यन्तु) दुःखदायी दूर हटाने योग्य नीच लोग दूर चलें । (एषां प्रबुधां चित्तं अमा विनेशत्) ये दुष्ट प्रबुद्ध हुए तो भी उनका चित्त साथ साथ ही नष्ट हो जावे ॥ २ ॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! सब प्रकारकी स्पर्धाओंमें मेरा तेज प्रकाशित होवे । तुझे अपने अंदर प्रकाशित करके हम अपने शरीरको पुष्ट और बलवान करेंगे। मेरे सन्मुख सब दिशा उपदिशाओंमें रहनेवाले लोग नम्र हों । तेरी अध्यक्षतामें हम सब प्रकारकी स्पर्धाओंमें विजयी होंगे ॥ १ ॥

हे देव ! शत्रुओंका क्रोध दूर करके तू हमारी सब प्रकारसे रक्षा कर । दुःख देनेवाले नीच लोग हमसे दूर हो जांय । यदि वे शत्रु बुद्धिमान हों तो उनकी दुष्ट बुद्धी भी साथ साथ ही नष्ट हो जावे ॥ २ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मम॑ दे॒वा वि॑ह॒वे स॑न्तु॒ सर्व॒ इन्द्र॑वन्तो म॒रुतो॒ विष्णु॑र॒ग्निः ।
ममा॒न्तरि॑क्षमु॒रुलो॑कमस्तु॒ मह्यं॒ वातः॑ पवतां॒ कामा॑या॒स्मै ॥ ३ ॥
मह्यं॑ यजन्तां॒ मम॒ यानी॒ष्टाकू॑तिः स॒त्या मन॑सो मे अस्तु ।
एनो॒ मा नि गां॑ कत॒मच्च॒नाहं विश्वे॑ दे॒वा अ॒भि र॑क्षन्तु मे॒ह ॥ ४ ॥
मयि॑ दे॒वा द्रवि॑ण॒मा य॑जन्तां॒ मय्या॒शीर॑स्तु॒ मयि॑ दे॒वहू॑तिः ।
दैवा॒ होता॑रः सनिषन् न ए॒तदरि॑ष्टाः स्याम त॒न्वा॑ सु॒वीराः॑ ॥ ५ ॥

अर्थ-(सर्वे देवाः इन्द्रवन्तः मरुतः विष्णुः अग्निः) सब देव अर्थात् इन्द्रके साथ मरुत् विष्णु और अग्नि (विहवे मम सन्तु) युद्धमें मेरे पक्षमें हों। (मम अन्तरिक्षं ऊरुलोकं अस्तु) मेरा अन्तरिक्ष विशेष स्थानवाला होवे। (वातः मह्यं अस्मै कामाय प्रवतां) वायु मेरे लिये इस कार्यके लिये बहता रहे ॥ ३ ॥

(मम यानि इष्टा मह्यं यजन्तां) मेरे जो अभीष्ट हैं वे मुझे प्राप्त हों। (मे मनसः आकूतिः सत्या अस्तु) मेरे मनका सङ्कल्प सत्य होवे। (अहं कतमच्चन एनः मा नि गां) मैं किसीभी प्रकारके पापको न करूं। (विश्वे देवाः इह मा अभिरक्षन्तु) सब देव यहां मेरी रक्षा करें ॥ ४ ॥

(देवाः मयि द्रविणं आयजन्तां) देव मेरे लिये धन देवें। (मयि आशीः, मयि देवहूतिः अस्तु) मुझ में आशीर्वाद और मुझमें देवताओंको पुकारनेकी शक्ति रहे। (दैवा होतारः नः एतत् सनिषन्) दिव्य होतागण हमें यह देवें। हम (तन्वा अरिष्टाः सुवीराः स्याम) अपने शरीरसे नीरोग और उत्तम वीर बनें ॥ ५ ॥

भावार्थ-सब देवोंकी सहायता हमें स्पर्धाके समय प्राप्त हो। इन्द्र, विष्णु, अग्नि, मरुत तथा अन्यान्य देव हमें सहायक हों। मेरा अन्तःकरण बहुत विशाल हो, तथा वायु आदि देव हमारी आवश्यकताके अनुकूल चलें॥३॥ मेरी सब कामनाएं पूर्णतया सिद्ध हों। मेरे मनके सङ्कल्प सत्य हों। मेरेसे कोई पापकर्म न हो। और मेरी रक्षा सब देव करें ॥ ४ ॥ सब देव मुझे धन्य बनावें, उनका आशीर्वाद मेरे ऊपर हो, देवोंकी उपासना करनेकी निष्ठा मेरे मनमें स्थिर हो। यह निष्ठा देवोंकी कृपासे हमें प्राप्त हो। हम अपने शरीरोंसे नीरोग और स्वस्थ होते हुए उत्तम वीर बनें ॥ ५ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दैवीः षडुर्वीरुरु नः कृणोत विश्वे देवास इह मादयध्वम् ।
मा नो विददभिभा मो अशस्तिर्मा नो विदद् वृजिना द्वेष्या या ॥ ६ ॥
तिस्रो देवीर्महि नः शर्म यच्छत प्रजायै नस्तन्वे३ यच्च पुष्टम् ।
मा हास्महि प्रजया मा तनूभिर्मा रधाम द्विषते सोम राजन् ॥ ७ ॥
उरुव्यचा नो महिषः शर्म यच्छत्वस्मिन् हवे पुरुहूतः पुरुक्षु ।
स नः प्रजायै हर्यश्व मृडेन्द्र मा नो रीरिषो मा परा दाः ॥ ८ ॥

अर्थ-(दैवीः षट् ऊर्वीः) ये दिव्य छः बडी दिशाओं! (नः उरु कृणोत) हमारे लिये विशाल स्थान करो। हे (विश्वे देवासः) सब देवो! (इह मादयध्वं) यहां हमें आनंदित करो। (अभिभाः नः मा विदत्) निस्तेजता हमें न प्राप्त हो। (अशस्तिः मा उ) अकीर्ति न आवे, (या द्वेष्या वृजिना नः मा विदत्) जो द्वेष करने योग्य पाप हैं वे हमारे पास न आजावें ॥ ६ ॥

हे (तिस्रः देवीः) तीन देवियो! (नः महि शर्म यच्छत) हमें बडा सुख प्रदान करो। (यत् च पुष्टं नः तन्वे प्रजायै) जो कुछ पोषक पदार्थ हैं वे हमारे शरीरके लिये और प्रजा के लिये दो। (प्रजया मा हास्महि) हम संततिसे हीन न हों और (मा तनूभिः) शरीर भी कृश न हो। हे (राजन् सोम) राजा सोम! (द्विषते मा रधाम) शत्रुके कारण हम पीडित न हों ॥ ७ ॥

(ऊरुव्यचाः पुरुहूतः महिषः अस्मिन् हवे नः पुरुक्षु शर्म यच्छतु) विशाल शक्तिवाला प्रशंसित देव इस यज्ञमें हमें बहुत अन्नयुक्त सुख देवे। हे (हर्यश्व इन्द्र) रसहरणशील किरणवाले देव! हे प्रभो! (नः प्रजायै मृड) हमारी प्रजाके लिये सुख दो। (नः मा रीरिषः) हमारा नाश न कर। (मा परादाः) हमें मत त्याग ॥ ८ ॥

भावार्थ-दिव्य दिशायें हमारे लिये विस्तृत स्थान देवें। सब देव हमें आनन्दित करें। निस्तेजता, अकीर्ति तथा घृणित पातक हमसे दूर हों ॥६॥ तीन देवियां हमें बडा सुख देवें। हमारा शरीर और हमारी प्रजा पुष्टिको प्राप्त हो। हमारी प्रजा और शरीर नष्ट न हों और शत्रुतासे हम पीडित न हों ॥७॥ विशाल शक्तिवाला ईश्वर हमें उत्तम सुख देवे। हमारी प्रजा सुखी हो, कभी हमारा नाश न हो और हम कभी विभक्त न हों ॥८॥

*

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

धाता विधाता भुवनस्य यस्पतिर्देवः सविताभिमातिषाहः ।
आदित्या रुद्रा अश्विनोभा देवाः पान्तु यजमानं निर्ऋथात् ॥ ९ ॥
ये नः सपत्ना अप ते भवन्त्विन्द्राग्निभ्यामव बाधामह एनान् ।
आदित्या रुद्रा उपरिस्पृशो न उग्रं चेत्तारमधिराजमक्रत ॥ १० ॥
अर्वाञ्चमिन्द्रममुतो हवामहे यो गोजिद् धनजिदश्वजिद् यः ।
इमं नो यज्ञं विहवे शृणोत्वस्माकमभूर्हर्यश्व मेदी ॥ ११ ॥

अर्थ-(धाता विधाता) धारक और निर्माण करनेवाला, (यः भुवनस्य पतिः अभिमातिषाहः सविता देवः) जो भुवन का पालक सञ्चालक घमंडी शत्रुको जीतनेवाला देव है, (आदित्याः रुद्राः) आदित्य और रुद्र, तथा (उभा अश्विना) दोनों अश्विनीकुमार ये सब देव (निर्ऋथात् यजमानं पान्तु) विनाशसे यजमानको बचावें ॥ ९ ॥

(ये नः सपत्नाः ते अप भवन्तु) जो हमारे वैरी हैं वे दूर हो जावें, (इन्द्राग्निभ्यां एनान् अव बाधामहे) इन्द्र और अग्निकी सहायतासे इनको हम प्रतिबन्ध करते हैं । (आदित्याः रुद्राः उपरिस्पृशः) आदित्य, रुद्र, और ऊपरके स्थानको स्पर्श करनेवाले सब देव (नः उग्रं चेत्तारं अधिराजं अक्रत) हमारे लिये उग्र चेतना देनेवाले मुख्य अधिराजको बनाते हैं ॥ १० ॥

(यः गोजित्, धनजित् यः अश्वजित्) जो गौ, धन और घोडोंको जीतनेवाला है उस (अर्वाञ्चं इन्द्रं अमुतः हवामहे) हमारे पासवाले इन्द्रकी वहांसे स्तुति करते हैं । (नः विहवे इमं यज्ञं शृणोतु) विशेष स्पर्धा में किये हमारे इस यज्ञको सुनें । हे (हर्यश्व) रसहरणशील किरणवाले देव! (अस्माकं मेदी अभूः) तू हमारा स्नेही हो ॥ ११ ॥

भावार्थ-ईश्वर तथा सविता आदि सब अन्य देव हमें पापसे बचावें ॥९॥

जो हमारे वैरी हैं वे हमसे दूर हों, इसलिये शत्रुओंको हम रोकते हैं । तथा आदित्य आदि सब देव हमारे लिये उत्तम तेजस्वी और बुद्धिमान ऐसा राजा दें ॥ ११ ॥

जो गौ, घोडे, आदि विविध धनोंको देनेवाला है, उस प्रभु की हम अपने अन्तःकरणसे स्तुति करते हैं । हे प्रभो! यह हमारी प्रार्थना सुनकर हरएक स्पर्धामें हमारी सहायता कर और हमारा स्नेही बन ॥ ११ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अपने विजय की प्रार्थना।

इस सूक्तमें अपने विजयके लिये ईश्वरकी शक्ति प्राप्त करनेकी इच्छा प्रकट की है। मनुष्य प्रायः हरएक समय किसी न किसी स्पर्धामें लगा रहता है। यह जीवन ही एक प्रकारकी स्पर्धा है। इस स्पर्धामें विजय प्राप्त करनेकी इच्छा हरएक मनुष्यमें रहती है, परंतु उस विजय को प्राप्त करनेके लिये किस प्रकार मनमें विचार धारण करने चाहिये, बुद्धिमें कौनसे संकल्प स्थिर करने चाहिये, और शरीरसे कौनसे कर्म करने चाहिये, इसका विचार मनुष्य नहीं करता। मन बुद्धि चित्त आदि अन्तःशक्तियोंके तथा शरीरादि बाह्य शक्तियोंके उत्तम सहकार्य और उत्तम प्रभावसे ही मनुष्यका विजय हो सकता है। इससे स्पष्ट होता है विजय प्राप्त होना अथवा न होना अपनी शक्तिपर ही निर्भर है। बुद्धि, मन और चित्तमें जो विचार जाग्रत होंगे, उनका ही परिणाम जय अथवा पराजय होता है। अर्थात् मनमें विजयी विचार रहें तो विजय और हीन विचार रहें तो पराजय होगा। इसका संबंध ऐसा है कि, मनके शुभाशुभ विचारोंके अनुसार शरीरसे शुभाशुभ कार्य होते हैं और उनका अन्तिम परिणाम परमेश्वरीय नियमानुसार विजय अथवा पराजयमें होता है। इसलिये विजयी विचार मनमें सदा धारण करने चाहियें, जिससे विजय प्राप्तिकी संभावना हो। इस सूक्तमें विजयी विचार दिये हैं, जिनको मनमें धारण करनेसे मनुष्यका निःसन्देह विजय होगा, ये विचार अब देखिये—

विजयी विचार।

विजयी विचार मनमें धारण करने चाहिये, हीन और क्षुद्र विचार कदापि मनमें आने नहीं देने चाहिये। इस सूक्तमें प्रारम्भसे अन्ततक विजयी विचार कहे हैं। इस लिये इस सूक्तके मननसे पाठकोंके मनमें विजयी विचार स्थिर रह सकते हैं, और उनका विजय निःसन्देह हो सकता है। ये विजयी विचार अब देखिये—

१ विहवेषु मम वर्चः अस्तु। (मं० १)

२ पृतनाः जयेम। (मं० १)

"युद्धोंमें मेरा तेज प्रकाशित होवे। और हम युद्धोंमें शत्रुवोंकी सेनाओंको पराजित करेंगे।" यह मनका निश्चय रहना चाहिये। मनमें ऐसे विचार रखने चाहिये कि मैं शत्रुका पराभव अवश्य ही करूंगा। और विजय संपादन करूंगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

३ एनान् अव बाधामहे। (मं० १)

"इन शत्रुओंको हम पूर्ण प्रतिबंध करेंगे।" अर्थात् किसीभी मार्गसे शत्रु आने लगे तो उनको हम रोक देंगे। और आगे बढने नहीं देंगे। इस मंत्रभागसे अपनी युद्ध-विषयक तैयारी कैसी रहनी चाहिये, इस विषयकी सूचना मिल सकती है। हरएक मार्गसे आनेवाले शत्रुओंको रोक रखनेके लिये अपनी विशेष ही तैयारी चाहिये। मनुष्यको अपने शत्रुओंको इस प्रकार रोक रखनेके लिये जितनी तैयारी रखनी चाहिये उतनी तैयारी हरएक मनुष्य रखे और शत्रुसे अपना बचाव करे। जिसकी इतनी तैयारी रहेगी वही युद्धोंमें विजय प्राप्त कर सकेगा। इस विजयके विषयमें व्यक्तिके लिये क्या और राष्ट्रके लिये क्या दोनोंके कार्यक्षेत्रोंके छोटे और बडे होते हुए भी, शत्रुको रोक रखनेकी तैयारी विशेषही रीतिसे करना आवश्यक है। इस प्रकार की पूर्व तैयारीसे विजय प्राप्त होनेपर ही वह कह सकता है कि—

४ चतस्रः प्रदिशः मह्यं नमन्ताम्। (मं० १)

"चारों दिशाओंमें रहनेवाले लोग मेरे सामने नम्र होकर रहें" अर्थात् हमारे ऊपर हमला करनेकी शक्ति और इच्छा उनमें अवशिष्ट न रहे। इस प्रकार—

५ मम अन्तरिक्षं उरुलोकं अस्तु। (मं० ३)

"मेरा अन्तरिक्ष विस्तृत स्थानवाला होवे।" हरएक मनुष्य के लिये अपना अपना अन्तरिक्ष छोटा या बडा उसकी कर्तृत्व शक्तिके अनुसार रहता है। जो प्रबल पुरुषार्थी होते हैं उनके लिये संपूर्ण जगत्के समान विशाल अंतरिक्ष होता है और आलसी तथा आत्मघातकी लोगोंके लिये बहुत ही छोटा अन्तरिक्ष होता है। अपने अधिकारके अन्दर कितना अन्तरिक्ष आगया है और अपना शासन कितने अन्तरिक्षपर है, इसको देखकर मनुष्य अपनी योग्यताका निश्चय कर सकता है। मानो, यह एक अपनी परीक्षाकी उत्तम कसौटी ही है। पाठक इन पांचों वाक्यों की परस्पर संगति देखेंगे, तो उनको विजय प्राप्त करनेके विषयमें बहुत बोध प्राप्त हो सकता है। इस विजयके लिये अपने शत्रुको दूर करनेकी अत्यंत आवश्यकता है, इस विषयके लिये निम्नलिखित आदेश देखिये—

शत्रुको दूर करना।

शत्रुको दूर करना, उसकी छायामें स्वयं न जाना, शत्रुको दबा कर रखना और उसको उठने न देना, यह करना विजयके लिये मनुष्यको अत्यंत आवश्यक है, इस विषयमें ये मंत्रभाग देखिये—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

६ सपत्ना अप भवन्तु । (मं० १०)

७ दुरस्यवः निवृताः अपाञ्चः यन्तु । (मं २)

" वैरी दूर हों, तथा दुष्ट लोग नीच गतिसे नीचेकी ओर चले जावें । " अर्थात् वे अपना सिर उपर न करें । तथा और देखिये--

८ अभिभाः अशस्तिः द्वेष्या वृजिना मा नो विदन् । (मं० ६)

" निस्तेजता, अकीर्ति और द्वेष करने योग्य कुटिलता हमारे पास न आवे " अर्थात् ये आन्तरिक शत्रु दूर रहें । इनमेंसे कोई भी शत्रु अपना सिर ऊपर न कर सकें । इन मंत्रभागोंमें व्यक्तिके अन्तर्गत और बाह्य, तथा समाजके अन्तर्गत और बाह्यके सब शत्रु दूर करनेकी सूचना मिलती है । सच्चा विजय प्राप्त करनेवाले मनुष्यको उचित है कि वह इन सब शत्रुओंको अपने प्रयत्नसे दूर करे और अपने अभ्युदयका मार्ग खुला करे ।

कामनाकी तृप्ति ।

अपना विजय करना और शत्रुको दूर करना यह सब अपनी कामनाकी तृप्तिके लिये ही है । मनुष्यके अन्तःकरणमें कुछ विशेष कामना होती है, उसकी पूर्णता हुई तो उसको अपने जीवनकी सार्थकता होगई ऐसा प्रतीत होता है; अन्यथा वह अपने जीवनको निरर्थक समझता है । इस विषयमें मनुष्यकी इच्छाएं किस प्रकार होती हैं यह देखिये—

९ मह्यं अस्मै कामाय वातः पवताम् । (मं० ३)

१० यानि मम इष्टानि मह्यं यजन्ताम् । (मं० ४)

११ मे मनसः आकूतिः सत्या अस्तु । (मं० ४)

१२ देवा मयि द्रविणं, आशीः, देवहूतिः च आ यजन्ताम् । (मं.५)

१३ तिस्रो देवीः नः महि शर्म यच्छत । (मं० ७)

१४ नः प्रजायै मृड । (मं० ८)

" मेरी इस कामनाके अनुकूल वायु अथवा प्राण चले । जो मेरे इष्ट मनोरथ हैं, वे परिपूर्ण हों । मेरे मनके सब संकल्प सत्य हों । सब देव मुझे धन, आशीर्वाद, और देवभक्ति दें । तीन देवियां अर्थात् मातृभूमि, मातृभाषा और मातृसभ्यता मुझे बडा सुख देवें । ईश्वर हमारी सब प्रजाको सुखी करे । " इस प्रकारकी कामनाएं प्रायः हर एक मनुष्यके अंदर न्यूनाधिक प्रमाणसे रहती हैं । मनुष्यका सुख और दुःख इन कामना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ओंकी न्यूनाधिक पूर्तिपर अवलंबित है। इसलिये मनुष्यको उचित है कि वह अपनी कामनाएं शुभ ही होने दें, और उनमें कोई अशुभ वासना न रहे, ऐसी मनकी उच्च अवस्था बना दें। उन्नतिके लिये इसकी बडी भारी आवश्यकता है। इस प्रकार भावनाकी शुद्धताके लिये ईश उपासना करना आवश्यक है, इस हेतुसे कहा है--

ईश्वर उपासना।

१५ इन्द्रं हवामहे। (मं० ११)

"प्रभुकी प्रार्थना और उपासना हम करते हैं।" ईश्वर सब श्रेष्ठ गुणोंसे मण्डित है, इसलिये उसके गुणोंका मनन करनेसे मनुष्यके मनकी भावना शुद्ध होती है, कामना निर्दोष होती है और संकल्प शुद्ध होते हैं। यही बात निम्नलिखित मंत्रभागोंमें कही है—

निष्पाप बनना।

१६ अहं कतमच्चन एनः मा नि गाम्। (मं ४)

"मैं किसी प्रकारका छोटा या बडा पाप न करूंगा अथवा पापके पास भी नहीं जाऊंगा।" मंत्रमें कहा है कि "पापकेपास नहीं जाऊंगा" यह बडा भारी उच्च निश्चय है। जो मनुष्य ऐसा निश्चय करेगा वही उन्नतिके पथपर चल सकता है। पाप स्वयं करना और बात है और पापके पास जाना भिन्न बात है। पातक स्वयं करनेकी अपेक्षा पापके पास जाना सहज है। मनुष्य प्रथम पापकर्म का वर्णन सुनता है, पश्चात् दूसरेका किया पापकर्म देखता है, तदनंतर स्वयं प्रवृत्त होता है। यह पापकी परंपरा है, अतः मंत्रमें उपदेश दिया है कि पापकर्मकी ओरही मनुष्य न जावे। पाठक इस अमूल्य उपदेशका महत्त्व जानें और तदनुसार अपना आचरण सुधारकर उन्नतिके मार्गका आक्रमण करें। इस प्रकार निष्पाप होकर ईश्वरकी प्रार्थना करे कि—

ईश प्रार्थना।

१७ इमं यज्ञं निहवे शृणोतु। (मं० ११)

"इस उपासना रूप स्तुति प्रार्थनामय यज्ञको ईश्वर सुने।" अर्थात् जो प्रार्थना मैं कर रहा हूं उसको परमेश्वर सुनें। यहां पाठक स्मरण रखें कि परमेश्वर उसकी ही प्रार्थना सुनता है जो पूर्वोक्त प्रकार निष्पाप होकर शुद्धाचारी रहते हुए उन्नतिके मार्ग से जाना चाहते हैं। इस प्रकारके मनुष्यको देवताओंकी सहायता अवश्य मिलती है, इन्हींका अधिकार है कि वे देवताओंकी सहायता चाहें, इस समय इन उपासकोंका विश्वास कैसा होता है यह बात निम्नलिखित मंत्रभागोंमें देखिये। हरएक मनुष्य यद्यपि यश-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

का भागी बननेके लिये देवताओंकी सहायता चाहता और प्रार्थना करता है, तथापि पूर्वोक्त प्रकार शुद्ध और पवित्र बने हुए मनुष्यको ही वह सहायता मिलती है।

देवोंकी सहायता।

प्रायः मनुष्य सङ्कट समयमें देवताओंकी सहायता चाहता ही है। यदि पूर्वोक्त प्रकार आत्मशुद्धी करके देवताओंकी सहायता मनुष्य चाहेगा, तो निःसन्देह उसको वह सहायता मिल सकती है। इस विषयमें इस सूक्तके कथन देखने योग्य हैं–

१८ विहवे सर्वे देवा मम सन्तु। (मं० ३)
१९ इह विश्वेदेवाः मा अभिरक्षन्तु। (मं० ४)
२० विश्वेदेवासः इह मादयध्वम्। (मं० ६)
२१ धाता विधाता भुवनस्य यस्पतिः अन्ये च देवाः
निर्ऋथात पान्तु। (मं० ७)
२२ अस्मिन् हवे पुरुहूतः महिषः पुरुक्षु शर्म यच्छतु। (मं० ८)
२३ अस्माकं मेदी अभूः। (मं० ११)
२४ देवीः षट् उर्वीः नः उरु कृणोत। (मं० ६)
२५ परेषां मन्युं प्रतिनुदन् नः विश्वतः परिपाहि। (मं० २)

" युद्धके प्रसंगमें सब देव मेरे हों। संपूर्ण देव मेरी रक्षा करें। सब देव यहां मेरा आनन्द बढावें। धाता विधाता भुवनपति और अन्य देव दुःखसे हमारी रक्षा करें। इस यज्ञके समय बहुत प्रशंसित समर्थ प्रभु बहुत भोगयुक्त सुख हमें देवें। प्रभु हमारा सहायक हो। दिव्य छः दिशाएं हमारे लिये बडा विस्तृत कार्यक्षेत्र बनावें। शत्रुओंको क्रोध दूर करके हमारी सब प्रकारसे रक्षा करें। "

शत्रुवोंको दूर करनेके विषयमें येही इच्छायें मनुष्यके मनमें सदा रहती हैं। विजय प्राप्त करनेवाले मनुष्यकोभी अपने मनमें येही इच्छाएं धारण करना चाहिये। पूर्वोक्त वाक्यों मेंसे अन्तिम वाक्यमें " शत्रुओंका क्रोध दूर करनेकी प्रार्थना " है। यह प्रार्थना विशेष महत्त्वकी है। " शत्रुका क्रोध दूर करके उनकी शुद्धता कर " यह आशय इस प्रार्थना में है। शत्रुका नाश करनेकी अपेक्षा यदि शत्रुके क्रोधादि दुष्टभाव दूर होकर वह भला आदमी हुआ तो अच्छाही है। इस दृष्टिसे यह उपदेश मनन करने योग्य है। वैदिक धर्मियोंको उचित है कि वे प्रथम शत्रुके दोष दूर करके उसको शुद्ध करनेका यत्न करें, यह न हुआ तो उसको दूर करें अथवा नाश करें। यह नीतिका उत्तम नियम इस वेदमंत्र द्वारा बताया है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

राजप्रबंध ।

अपने राजप्रबन्धकी उत्तमतासे विजय हो सकता है और राज्यशासनकी अव्यवस्थासे हानि होती है, इसलिये अपने शासक राजाके गुणधर्म कैसे होने चाहियें इस विषयमें दशम मन्त्रका एक वाक्य मननपूर्वक देखने योग्य है-

२६ देवाः चेत्तारं उग्रं अधिराजं अक्रत । (मं० १०)

"सब देव चेतना देनेवाले शूर वीर राजाको हमारे लिये बनावें" अर्थात् हमारा राजा ऐसा हो, कि वह प्रजामें चेतना और नवजीवन सञ्चारित करे और स्वयं शूर वीर प्रतापी और तेजस्वी हो। राष्ट्रमें तेजस्विताका स्फुरण उत्पन्न करनेवाला राजा हो, प्रजाका तेज कम करनेवाला राजा कदापि राज्यगद्दीपर न आवे, यह उपदेश इस स्थानपर मिलता है। विजय प्राप्त करनेके मार्गका आक्रमण करनेवालोंको इस उपदेशका महत्त्व सहजहीसे ध्यानमें आ सकता है।

शारीरिक बल ।

विजय प्राप्तिके लिये शारीरिक बल बढाना और मानसिक तथा बौद्धिक शक्तिका विकास करना अत्यन्त आवश्यक है। इस विषयमें निम्नलिखित मन्त्रभाग देखिये—

२७ तन्वं पुषेम । (मं० १)

२८ तन्वा अरिष्टाः सुवीराः स्याम । (मं० ५)

२९ नः तन्वे प्रजायै पुष्टम् । (मं० ७)

३० तनूभिः प्रजया मा हासिषम् । (मं० ७)

३१ नः मा रीरिषः । (मं० ८)

"अपने शरीरका बल बढायेंगे और उनको पुष्ट करेंगे। शरीरसे दुर्बल न होते हुए हम उत्तम वीर बनेंगे। हमारे शरीर और सन्तान पुष्ट हों। हमारे शरीर और सन्तान हीन और दीन न हों। हम दुर्बल न हों।" इस प्रकार शारीरिक बल और पुष्टि बढानेकी सूचना देनेवाले मन्त्रभाग इस सूक्तमें इतने हैं। पाठक इन सब मन्त्रभागोंका क्रमपूर्वक मनन करेंगे, तो उनके ध्यानमें यह आ सकता है कि इस सूक्तमें विजय प्राप्तिके साधन किस प्रकार कहे हैं। व्यक्ति समाज और राष्ट्रके विजयके साधनका इस सूक्तमें किया हुआ उपदेश यदि पाठक मनमें धारण करेंगे और इन उपदेशोंके अनुकूल आचरण करेंगे तो विजयका मार्ग उनके लिये खुला और भयरहित हो जायगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कुष्ठ औषधि ।

[४]

(ऋषिः- भृग्वङ्गिराः । देवता-कुष्ठः)

यो गिरिष्वजायथा वीरुधां बलवत्तमः ।
कुष्ठेहि तक्मनाशन तक्मानं नाशयन्नितः ॥ १ ॥
सुपर्णसुवने गिरौ जातं हिमवतस्परि ।
धनैरभि श्रुत्वा यन्ति विदुर्हि तक्मनाशनम् ॥ २ ॥
अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि ।
तत्रामृतस्य चक्षणं देवाः कुष्ठमवन्वत ॥ ३ ॥

अर्थ— हे (तक्मनाशन कुष्ठ) रोगनाशक कुष्ठ नामक औषधि! (यः गिरिषु अजायथाः) जो तू पर्वतोंमें उत्पन्न होता है और जो (वीरुधां बलवत्तमः) सब औषधियोंमें अत्यंत बल देनेवाला है,वह तू (तक्मानं नाशयन् इतः आ इहि) रोगोंका नाश करता हुआ वहांसे यहां आ ॥ १ ॥

(सुपर्ण-सुवने गिरौ हिमवतः परि जातं) गरुड जहां होते हैं ऐसे हिमालयके शिखरपर जो होता है उसका वर्णन (श्रुत्वा धनैः अभियन्ति) सुनकर धनोंके साथ लोग वहां जाते हैं और (तक्म-नाशनं विदुः हि) रोगनाशक औषधिको प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥

(इतः तृतीयस्यां दिवि देवसदनः अश्वत्थः) यहांसे तीसरे द्युलोकमें देवोंके बैठने योग्य अश्वत्थ है। (तत्र अमृतस्य चक्षणं कुष्ठं देवाः अवन्वत)वहां अमृतका दर्शन होनेके समान कुष्ठ औषधिको देव प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— कुष्ठ औषधि पर्वतोंपर उगती है। बलवर्धक औषधियोंमें सबसे अधिक बलवर्धक है। इससे क्षयादि रोग दूर होते हैं ॥ १ ॥

हिमालयकी ऊंची ऊंची चोटियोंपर यह औषधि उगती है, वहां मिलती है यह जानकर बडा धन खर्च करके लोग वहां जाते हैं और रोगनाशक इस औषधिको प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥

यहांसे तीसरे उच्च द्युलोकमें जहां देवताएं बैठती हैं वहां अमृतके समान कुष्ठ औषधिको देव प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि ।
तत्रामृतस्य पुष्पं देवाः कुष्ठमवन्वत ॥ ४ ॥
हिरण्ययाः पन्थान आसन्नरित्राणि हिरण्यया ।
नावो हिरण्ययीरासन् याभिः कुष्ठं निरावहन् ॥ ५ ॥
इमं मे कुष्ठ पूरुषं तमा वह तं निष्कुरु । तमु मे अगदं कृधि ॥ ६ ॥
देवेभ्यो अधि जातोऽसि सोमस्यासि सखा हितः ।
स प्राणाय व्यानाय चक्षुषे मे अस्मै मृड ॥ ७ ॥

अर्थ— (हिरण्ययी हिरण्यबन्धना नौ दिवि अचरत्) सोनेकी बनी और सुवर्णके बन्धनोंसे बन्धी नौका द्युलोकमें चलती है। (तत्र अमृतस्य पुष्पं कुष्ठं देवाः अवन्वत) वहां अमृतके पुष्पके समान कुष्ठ देव प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥

(हिरण्ययाः पन्थान आसन्) सोनेके मार्ग थे और (अरित्राणि हिरण्यया) बल्लियां भी सोनेकी थीं तथा (नावः हिरण्ययीः आसन्) नौकायेंभी सोनेकी थीं (याभिः कुष्ठं निरावहन्) जिनसे कुष्ठको लाया था ॥ ५ ॥

हे कुष्ठ नामक औषधि! (मे इमं पुरुषं आवह) मेरे इस पुरुषको उठा, (तं निष्कुरु) उसको निःशेष रीतिसे चंगा कर और (मे तं उ अगदं कृधि) मेरे उस पुरुषको नीरोग कर ॥ ६ ॥

(देवेभ्यः अधिजातः असि) देवोंसे तू उत्पन्न हुआ है और (सोमस्य सखा हितः) सोम औषधिका तू मित्र और हितकारी है। इसलिये (सः प्राणाय व्यानाय चक्षुषे मे अस्मै मृड) वह तू प्राण, व्यान और चक्षुआदिके लिये इस मेरे पुरुषको सुख दे ॥ ७ ॥

भावार्थ— सुवर्णकेसमान तेजस्वी आकाशनौका जहां चलती है वहां अमृतका ही पुष्परूप यह कुष्ठ देवोंने प्राप्त किया है ॥ ४ ॥

उस आकाश नौकाके मार्गभी सुवर्णके थे और बल्लियांभी सोनेकी थीं जिनसे कुष्ठ औषधी यहां लाई गई ॥ ५ ॥

यह कुष्ठ औषधी मनुष्यको रोगमुक्त करती है ॥ ६ ॥

देवोंसे उत्पन्न और सोमकेसमान हितकारी यह कुष्ठ औषधि प्राण, व्यान, चक्षुआदिके लिये सुखकारी है ॥ ७ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उदङ् जातो हिमवतः स प्राच्यां नीयसे जनम् ।
तत्र कुष्ठस्य नामान्युत्तमानि वि भेजिरे ॥ ८ ॥

उत्तमो नाम कुष्ठास्युत्तमो नाम ते पिता ।
यक्ष्मं च सर्वं नाशय तक्मानं चारसं कृधि ॥ ९ ॥

शीर्षामयमुपहत्यामक्ष्योस्तन्वो३ रपः ।
कुष्ठस्तत् सर्वं निष्करद् दैवं समह वृष्ण्यम् ॥ १० ॥

अर्थ- (सः हिमवतः जातः) वह तू हिमालयसे उत्पन्न होकर (जनं प्राच्यां उदङ् नीयसे) मनुष्यको प्रगतिकी उच्च दिशामें ले जाता है। (तत्र कुष्ठस्य उत्तमानि नामानि) वहां कुष्ठ औषधिके उत्तम नाम (विभेजिरे) अलग अलग विभक्त हुए हैं ॥ ८ ॥

हे कुष्ठ ! (उत्तमः नाम असि) तेरा नाम उत्तम है (ते पिता उत्तमो नाम) तेरा उत्पादक अथवा रक्षकभी उत्तम है। (सर्वं यक्ष्मं नाशय) सब क्षयरोग दूर कर (च तक्मानं अरसं कृधि) और ज्वरको निःसत्त्व कर ॥ ९ ॥

(शीर्षामयं) शिरके रोग, (अक्ष्योः उपहत्यां) आंखोंकी कमजोरी, और (तन्वः रपः) शरीरके दोष (तत सर्वं) इन सबको (दैवं वृष्ण्यं सं अह) दिव्य बल बढाकर (कुष्ठः निष्करत्) कुष्ठ औषधी दूर करती है ॥ १० ॥

भावार्थ— हिमालयसे उत्पन्न होकर मनुष्योंकी उन्नति करती है, इस लिये इसके यश बहुत गाये जाते हैं ॥ ८ ॥

कुष्ठ स्वयं उत्तम है, जो उसको अपनेपास रखता है, वह भी उत्तम है। इससे क्षयादि सब रोग दूर होते हैं ॥ ९ ॥

इससे सिरके रोग, आंखोंके व्याधि, तथा शरीरके दोष दूर होते हैं। इस कुष्ठसे शरीरका बल बढता है और दोष दूर होकर आरोग्य प्राप्त होता है ॥ १० ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कुष्ठ औषधि।

कुष्ठ औषधिका वर्णन इस सूक्तमें है। इस औषधिसे सिरके रोग, नेत्रके रोग, शरीरके अन्यत्र होनेवाले रोग, ज्वर तथा क्षय और कुष्ठरोगभी इस औषधिसे दूर होते हैं। इसलिये सोमके समान ही इस औषधिका महत्त्व है। इस औषधिका सेवन बहुत प्रकारसे होता है। रस आदि पेटमें लिये जाते हैं और घृतादि बनाकर शरीरपर लेप दिये जाते हैं। इस औषधिके गुणधर्म वैद्यकग्रन्थमें देखने योग्य हैं। वैद्यक ग्रन्थोंमें आये हुए इसके नाम विचार करने योग्य हैं—

१ नीरुजं=नीरोगता उत्पन्न करनेवाली औषधि।

२ पारिभद्रकं=सब प्रकारसे कल्याण करनेवाला।

३ रामं=आनंद देनेवाला।

४ पावनं=शुद्धि करनेवाला।

कुष्ठ औषधिके ये नाम वैद्यशास्त्रमें प्रसिद्ध हैं। इन नामोंसे इस औषधिसे होनेवाले लाभ ज्ञात हो सकते हैं। अब इसके गुण देखिये—

कुष्ठमुष्णं कटु स्वादु शुक्रलं तिक्तकं लघु।
हन्ति वातास्रवीसर्पकासकुष्ठमरुत्कफान्॥ भा० प्र० पू० १
विषकण्डूखर्जूदद्रुहृत् कान्तिकरं च॥ रा० नि० व० १०

" यह कुष्ट औषधि उष्ण कटु स्वादु है, शुक्र उत्पन्न करती है, तिक्त और लघु है। वात, रक्त, वीसर्प, खांसी, कुष्ठ और कफ इन रोगोंको दूर करती है। इसी प्रकार विष, खुजली, दाद आदि रोगोंको दूर करती है और कान्तिको बढाती है।"

वैद्यक ग्रंथोंमें लिखे हुए ये वर्णन बिलकुल स्पष्ट हैं और पाठक इन गुणोंकी तुलना वेदके मंत्रोंके साथ करेंगे तो उनको वेद मंत्रोंका अर्थ अधिक स्पष्ट हो जायगा।

इस औषधिका हिंदी नाम "कुठ" है। यह अतिप्रसिद्ध औषधि है। इसका उपयोग अन्दर पीने और बाहरसे लेपन करनेमें होता है। इसका शीतोष्ण कषाय पीनेसे अन्तःशुद्धि होती है और इसके तैल, घृत आदिका लेप करनेसे कुष्ठ आदि दुःसाध्य रोग भी दूर होते हैं। वैद्योंको इस औषधिके प्रयोग करनेकी रीतिका अधिक विचार करना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

लाक्षा ।

[५]

(ऋषिः- अथर्वा । देवता- लाक्षा)

रात्री माता नभः पितार्यमा ते पितामहः ।
सिलाची नाम वा असि सा देवानामसि स्वसा ॥ १ ॥
यस्त्वा पिबति जीवति त्रायसे पुरुषं त्वम् ।
भर्त्री हि शश्वतामसि जनानां च न्यञ्चनी ॥ २ ॥
वृक्षंवृक्षमा रोहसि वृषण्यन्तीव कन्यला ।
जयन्ती प्रत्यातिष्ठन्ती स्परणी नाम वा असि ॥ ३ ॥

अर्थ— (ते माता रात्री, पिता नभः, पितामहः अर्यमा) तेरी माता रात्री, पिता आकाश और पितामह अर्यमा है। (नाम सिलाची वै असि) तेरा नाम सिलाची है। (सा देवानां स्वसा असि) वह तू देवोंकी बहिन है ॥ १ ॥

(यः त्वा पिबति, जीवति) जो तेरा पान करता है वह जीता है (त्वं पुरुषं त्रायसे) तू मनुष्यकी रक्षा करती है। (शश्वतां जनानां हि भर्त्री न्यञ्चनी च असि) सब जनोंका भरण पोषण करनेवाली और आरोग्य देनेवाली तू है ॥ २ ॥

(वृषण्यन्ती कन्यला इव) पुरुषको चाहनेवाली कन्याके समान (वृक्षं वृक्षं आरोहसि) प्रत्येक वृक्षपर चढती है। तू (जयन्ती प्रत्यातिष्ठन्ती) विजय करनेवाली और प्रतिष्ठित होनेवाली है। (स्परणी नाम वै असि) तेरा नाम स्परणी भी है ॥ ३ ॥

भावार्थ-सिलाची वनस्पतिकी माता रात्री, पिता आकाश और पितामह सूर्य है। यह इंद्रियोंको बहिन के समान सुखदायक है ॥ १ ॥

जो इस औषधिके रसका पान करता है वह जीवित रहता है। इस औषधिसे सब मनुष्योंकी रक्षा पुष्टि और नीरोगिता होती है ॥ २ ॥

बहुत वृक्षोंपर यह होती है, इससे रोगोंपर विजय प्राप्त किया जाता है और आयुष्य स्थिर होता है, इसलिये इसको स्परणी भी कहते हैं ॥ ३ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यद् दण्डेन यदिष्वा यद् वारुर्हरसा कृतम् ।
तस्य त्वमसि निष्कृतिः सेमं निष्कृधि पूरुषम् ॥ ४ ॥

भद्रात् प्लक्षान्निस्तिष्ठस्यश्वत्थात् खदिराद्धवात् ।
भद्रान्न्यग्रोधात् पर्णात् सा न एह्यरुन्धति ॥ ५ ॥

हिरण्यवर्णे सुभगे सूर्यवर्णे वपुष्टमे ।
रुतं गच्छासि निष्कृते निष्कृतिर्नाम वा असि ॥ ६ ॥

अर्थ—(यत् दण्डेन, य इष्वा) जो दण्डेसे और जो बाणसे, (यत् वा हरसा अरुः कृतं) अथवा जो रगडसे घाव होगया है, (तस्य निष्कृतिः त्वं असि) उससे बचाव करनेवाली तू है, (सा इमं पुरुषं निष्कृधि) वह तू इस पुरुषको चंगा कर ॥ ४ ॥

(भद्रात् प्लक्षात् अश्वत्थात् खदिरात धवात्) भद्र, पाकर, पीपल, खैर, धव, (भद्रात् न्यग्रोधात पर्णात) बड, पलाश इन वृक्षोंसे (निः तिष्ठासि) निकलती है। हे (अरु-धति) घावोंको भरनेवाली वनस्पति ! (सा नः एहि) वह तू हमारे पास आ ॥ ५ ॥

हे (हिरण्यवर्णे सुभगे) सुवर्णके समान रंगवाली भाग्यशालिनी ! (सूर्यवर्णे वपुष्टमे) सूर्यके समान वर्णवाली और शरीरके लिये हितकारी हे (निष्कृते) रोग दूर करनेवाली! तेरा (नाम निष्कृतिः वै असि) नाम निष्कृति है अतः तू (रुतं गच्छासि) व्रण या रोग के पास पहुंचती है ॥ ६ ॥

भावार्थ—दण्डा, बाण अथवा किसीकी रगड लगनेसे जो व्रण होता है वह व्रण इस औषधिसे अच्छा होजाता है ॥ ४ ॥

पीपल, खैर, पलाश आदि अनेक वृक्षोंसे इसकी उत्पत्ति होती है, यह घावको भरनेवाली है ॥ ५ ॥

यह पीले रंगवाली तेजस्वी और शरीरके लिये हितकरी है। यह रोग दूर करती है इसलिये इसका निष्कृति नाम हुआ है ॥ ६ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हिरण्यवर्णे सुभगे शुष्मे लोमशवक्षणे । अपामसि स्वसा लाक्षे वातो हात्मा बभूव ते॥७॥
सिलाची नाम कानीनोऽजबभ्रु पिता तव । अश्वो यमस्य यः श्यावस्तस्य हास्नास्युक्षिता ॥ ८
अश्वस्यास्नः सम्पतिता सा वृक्षाँ अभि सिष्यदे । सरा पतत्रिणी भूत्वा सा न एह्यरुन्धति ॥९॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

अर्थ- हे (हिरण्यवर्णे सुभगे) सुवर्णके रंगवाली भाग्यशालिनी ! हे (शुष्मे लोमश-वक्षणे) बलशालिनी और बालोंवाली ! हे (लाक्षे) लाक्षा नामक औषध ! (त्वं अपां स्वसा असि) तू जलोंकी बहिन है । (ते आत्मा वातः ह बभूव) तेरा आत्मा वायु ही हुआ है ॥ ७ ॥

(सिलाची नाम कानीनः) सिलाची नामक औषधि कन्याके समान है । (तव पिता अजबभ्रु) तेरा पालक अजबभ्रु अर्थात् बकरियोंको पुष्ट करनेवाला वृक्ष है । (यमस्य यः श्यावः अश्वः) यमका जो गतिशील अश्व है (तस्य ह अस्ना उक्षिता असि) उसके मुखसे तूं सींची गई है ॥८॥

(अश्वस्य अस्नः सम्पतिता) घोडेके मुखसे संमिलित हुई (सा वृक्षान् अभिसिष्यदे) वह वृक्षोंको सींचती है । हे (अरुं-धति) घावको भरने-वाली! (पतत्रिणी सरा भूत्वा) चूनेवाली और प्रवाहित होनेवाली होकर (सा नः एहि) वह तू हमारे पास आ ॥ ९ ॥

भावार्थ-यह सुवर्णके रंगवाली,बलवाली और अंदरसे तन्तु निकालने-वाली है। इसका नाम लाक्षा औषधि है। यह रसवाली है, परंतु वातस्वभाववाली है ॥ ७ ॥

इसका नाम सिलाची तथा कानीना भी है। जिन वृक्षोंके पत्ते बकरियां खातीं हैं, उनपर यह मिलती है। सूर्यके गतिशील किरणोंके द्वारा यह बनती है ॥ ८ ॥

सूर्य किरणसे तप्त होकर वृक्षोंसे बाहर आती है। यह वृक्षसे चूती है और बाहर आती है । यह व्रणोंको ठीक करनेवाली है ॥ ९ ॥

लाक्षा ।

लाक्षा का वर्णन वैद्यक ग्रंथोंमें बहुत आता है। इसको भाषामें लाही कहते हैं। लाख भी इसीका नाम है । इसके संस्कृत नाम बहुत हैं, परंतु उनमेंसे निम्नलिखित नाम इस सूक्तके साथ विचार करने योग्य हैं---

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

१ जन्तुका, जतु, जतुका – कृमियोंसे बननेवाली।
२ क्रिमिजा, कीटजा – ,, ,,
३ क्रिमिहा – क्रिमियोंका नाश करनेवाली।
४ रक्षा, राक्षा, लाक्षा – रक्षा करनेवाली।
५ रङ्ग माता – रङ्ग जिससे बनता है।
६ क्षतघ्ना, क्षतघ्नी – व्रणका नाश करनेवाली।
७ खदरिका – खैरके वृक्षसे उत्पन्न होनेवाली।
८ पलाशी – पलाश ,, ,,
९ द्रुमव्याधिः, द्रुमामयः – यह वृक्षका रोग है।
१० दीप्तिः – यह तेजःस्वरूप है।
११ द्रवरसा – द्रव रसरूप है।

ये इस लाक्षाके नाम इस सूक्तमें कहा आशयही बता रहे हैं। देखिये —

यह लाक्षा खैर और पलाश तथा अन्यान्य वृक्षोंसे प्राप्त होती है यह बात इस सूक्तके पञ्चम मंत्रमें कही है। जिसके सूचक नाम वैद्यक ग्रंथोंमें "खदरिका और पलाशी" ये हैं। इसका नाम वैद्यक ग्रंथोंमें "दीप्ति" कहा है, इस गुणका वर्णन षष्ठ और सप्तम मंत्रमें "हिरण्यवर्णा" आदि शब्दोंसे हुआ है। "द्रव रसा" इसका नाम वैद्यक ग्रंथमें है। यही भाव नवम मंत्रके "सरा" पदसे जाना जाता है। सरा और रसा ये शब्द अक्षरके उलट पुलट होनेसे भी बनते हैं।

लाक्षाका नाम "क्षत-घ्नी" है। इसका अर्थ व्रणको ठीक करनेवाली है। यही बात इस सूक्तके चतुर्थ मंत्रमें कही है। "दण्डेसे बाणसे अथवा रगडसे होनेवाला व्रण लाक्षाके प्रयोगसे दूर होता है" इस प्रकार मंत्रमें कहे हुए गुण और इन शब्दोंमें कहे हुए गुण परस्पर मिलते जुलते हैं। अब इस लाक्षाके गुण देखिये —

तिक्ता कषाया श्लेष्मपित्तघ्नी विषघ्नी रक्तघ्नी विषमज्वरघ्नी च। रा०नि०व०६

"लाक्षा तिक्त और कषाय है। तथा कफ, पित, विष, रक्तदोष और विषमज्वरको दूर करनेवाली है।" इसके ये गुण हैं, इसीलिये यह मनुष्यकी रक्षा करती है ऐसा इस सूक्तमें बार बार कहा है।

इस सूक्तमें लाक्षा औषधिके माता, पिता, पितामह बहिन, कन्या आदि संबंधियोंका वर्णन मं० १, ७, ८ में आगया है। इस वर्णनके आशयकी अधिक खोज करनी चाहिये। वैद्योंको उचित है कि, वे इसका अधिक विचार करें और इस खोजकी पूर्णता करें।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

प्रथम मंत्रमें सिलाची लाक्षा का वर्णन करते हुए "देवानां स्वसा" ऐसा उसका वर्णन किया है। यह लाक्षा देवोंकी बहिन है, अर्थात् इंद्रियोंकी सहायक है। "देव" शब्द यहां इंद्रियवाचक है, आगे जाकर हरएक अंग और अवयवके व्रणको दूर करनेवाली यह लाक्षा है, ऐसा कहा है, इसलिये यह इंद्रियोंकी सहायक है यह बात सिद्ध होती है।

द्वितीय मंत्रमें इसका पान करनेवाला दीर्घजीवी होता है, ऐसा कहा है। यह लाक्षा रस करके किस प्रकार पीयी जाती है, यह एक विचारणीय प्रश्न है। इसका सेवन पेटमें करनेसे यह मनुष्यकी रक्षा करती है। रक्षा करनेके कारण ही इसको 'रक्षा, राक्षा अथवा लाक्षा' कहते हैं। यह व्रणको ठीक करती है, सडने नहीं देती और मनुष्योंका भरण पोषण करती हुई मनुष्यको आरोग्यसंपन्न करती है। द्वितीय मंत्रका यह कथन पूर्वोक्त वैद्यक ग्रंथोक्त गुणोंके साथ भी मिलता है।

तृतीय मंत्रमें कहा है कि यह बहुत वृक्षोंपर होती है, यह रोगोंपर विजय करती है, रोगोंका सामना करती है। इस कारण बहुत लोग इसको चाहते हैं। सब लोग इसकी स्पृहा करनेके कारण इसका नामही 'स्परणी' हुआ है।

चतुर्थ मंत्रमें कहा है कि विविध प्रकारसे उत्पन्न हुए व्रण आदिको यह लाक्षा दूर करती है। रोगोंकी निष्कृति करनेके कारण इसका नाम "निष्कृति" हुआ है।

पंचम मंत्रमें कहा है कि पिलखन, पीपल, खैर, बबूल, पलाश आदि वृक्षोंपर यह होती है, और यह 'अरुं-धती' है अर्थात् व्रणोंको चंगा करनेवाली है। इसके प्रयोगसे नाना प्रकारके घाव भर जाते हैं।

षष्ठ और सप्तम मंत्रके पूर्वार्धमें इसके तेजस्वी होनेका वर्णन है। सूर्यके समान, तप्त सुवर्णके सदृश अथवा सूर्यके रंगके समान तेज इसमें है। यह 'वपुष्टमा' अर्थात् शरीरके लिये हित करनेवाली है। शरीरको पुष्ट और तेजस्वी करनेवाली है। "रुत" अर्थात् व्रण आदिको दूर करती है और सब दोषोंको हटा देती है। रोगों और व्रणादिकोंका निराकरण करनेके कारण इसको "निष्कृति" नाम प्राप्त हुआ है। यह बात प्रकृतिवाली है, मानो इसका आत्माही बात है।

अष्टम मंत्रमें 'अजबभ्रु' यह लाक्षा का पिता है, ऐसा कहा है। अज नाम बकरीका है, बकरियोंका जो पोषण करते हैं, उन वृक्षोंका यह नाम है। जिन वृक्षोंके पत्ते बकरियां खाती हैं उन पीपल, बेरी आदि वृक्षोंका यह नाम है। इनपर लाख उत्पन्न होती है।

इस प्रकार इस सूक्तमें लाक्षाका वर्णन किया है। वैद्य इसके उपयोगका अधिक विचार करें और जनताके लाभके लिये उसका प्रकाश करें।

*

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ब्रह्मविद्या।

[६]

(ऋषिः-अथर्वा । देवता-सोमारुद्रौ)

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः ॥ १ ॥
अनाप्ता ये वः प्रथमा यानि कर्माणि चक्रिरे ।
वीरान् नो अत्र मा दभन् तद् वः एतत् पुरो दधे ॥ २ ॥

अर्थ— (पुरस्तात् प्रथमं) पूर्वकालसेभी प्रथम (जज्ञानं ब्रह्म) प्रकट हुए ब्रह्मको (सुरुचः सीमतः) उत्तम प्रकाशित मर्यादाओंसे (वेनः वि आवः) ज्ञानीने देखा है। (सः) वही ज्ञानी (अस्य बुध्न्याः वि-स्थाः) इसके आकाश संचारी विशेष रीतिसे स्थित और (उप-माः) उपमा देने योग्य सूर्यादिकोंको देखकर (सतः च असतः योनिं) सत और असत के उत्पत्ति स्थानकोभी (वि वः) विशद करता है॥ १॥

(ये प्रथमाः अनाप्ताः) जो पहिले श्रेष्ठ ज्ञानी पुरुष थे उन्होंने (वः यानि कर्माणि चक्रिरे) तुम्हारे लिये जो कर्म किये, वे (नः वीरान् अत्र मा दभन्) हमारे वीरोंको यहां कष्ट न दें। (तत् एतत् वः पुरः दधे) वह यह सब तुम्हारे सन्मुख धर देता हूं॥ २॥

भावार्थ- सबसे प्रथम प्रकट हुए ब्रह्मको उसके प्रकाशकी मर्यादाओंके द्वारा ज्ञानी जानता है और वही ज्ञानी उपमा देने योग्य आकाशसंचारी सूर्यादि ग्रहों और नक्षत्रोंको देख कर सत् और असत् के मूल उत्पत्ति स्थानके विषयमें सत्य उपदेश करता है ॥ १॥

पहिले ज्ञानी पुरुषोंने जो जो प्रशस्त कर्म किये थे, उनका स्मरण करके वैसे कर्म तुम करो, और बालबच्चों और वीरोंको बचाओ, यही तुम्हारे लिये कहना है ॥ २॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सहस्रधार एव ते समस्वरन् दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः ।
तस्य स्पशो न नि मिषन्ति भूर्णयः पदेपदे पाशिनः सन्ति सेतवे ॥ ३ ॥
पर्यू षु प्र धन्वा वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।
द्विषस्तदध्यर्णवेनेयसे सनिस्रसो नामासि त्रयोदशो मास इन्द्रस्य गृहः ॥४॥

अर्थ—(दिवः सहस्रधारे नाके एव) द्युलोकके सहस्रों धाराओंसे युक्त सुखपूर्ण स्थानमें ही (ते असश्चतः मधुजिह्वाः समस्वरन्) वे निश्चल शांत स्वभाववाले और मधुरभाषणी लोग सब मिलकर एक स्वरसे कहते हैं, कि (तस्य भूर्णयः स्पशः न निमिषन्ति) उसके पकडनेवाले पाश लिये दूत कभी आंख नहीं बंद करते हैं। (सेतवे पदे पदे पाशिनः सन्ति) बांधनेके लिये पद पद पर पाश लिये खडे हैं ॥ ३ ॥

(वाजसातये वृत्राणि सक्षणिः) अन्नदानके लिये प्रतिबंध करनेवाले शत्रुवोंको दूर करनेवाला बन कर (उपरि सु प्र धन्व) उनको सब ओरसे भगा दे। क्यों कि (तत् द्विषः अर्णवेन अधि ईयसे) तू शत्रुओंपर समुद्रकी ओरसे भी चढाई करते हो। इस कारण आपका (सनि-स्रसः नाम असि) सनिस्रस अर्थात् चढाई करनेमें कुशल इस अर्थका नाम है। (त्रयोदशः मास इन्द्रस्य गृहः) तेरहवां महिना इन्द्रका घर है ॥ ४ ॥

भावार्थ-प्रकाशपूर्ण स्वर्ग धाममें रहनेवाले शांत और मधुर स्वभाववाले ज्ञानी लोग एक स्वरसे कहते हैं कि उस प्रभुके दूत कभी आंख बंद नहीं करते; अपने आंख सदा खुले रखकर हाथमें पाश लिये हुए पापियोंको बांधनेके लिये पद पद पर तत्पर रहते हैं ॥ ३ ॥

जो लोग अन्नदान आदि परोपकारके कार्योंमें विघ्न उत्पन्न करते हैं, उनको दूर करो। जिस प्रकार शत्रुपर भूमिसे चढाई की जाती है, उस प्रकार समुद्रकी ओरसे शत्रुपर चढाई करनेमें भी तू कुशल बन। तेरहवां महिना भी अन्य मासोंके समान इन्द्रका घर है ॥ ४ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

न्वे३ तेनारात्सीरसौ स्वाहा ।
तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं नः ॥ ५ ॥
अवैतेनारात्सीरसौ स्वाहा ।
तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं नः ॥ ६ ॥
अपैतेनारात्सीरसौ स्वाहा ।
तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं नः ॥ ७ ॥
मुमुक्तमस्मान्दुरितादवद्याज्जुषेथां यज्ञममृतमस्मासु धत्तम् ॥ ८ ॥

अर्थ-(नु एतेन असौ अरात्सीः) निश्चयसे इस प्रकार उस तूने सिद्धि प्राप्त की है। (स्वा-हाः) आत्मसर्वस्वका समर्पण ही सिद्धिका मार्ग है। (तिग्मायुधौ तिग्महेती) तीक्ष्ण हथियारवाले और तीक्ष्ण अस्त्रवाले (सु-सेवौ सोमारुद्रौ) उत्तम सेवा करने योग्य सोम और रुद्र (इह नः मृडतं) यहां हमें सुखी करें ॥ ५ ॥

(एतेन असौ अव अरात्सीः) इसी रीतिसे यह तू सिद्धि प्राप्त करता है, (स्वाहा) त्याग ही सिद्धिका मूल है। (तिग्मायुधौ०) उत्तम शस्त्रास्त्र वाले वीर यहां सबको सुखी करें ॥ ६ ॥

(एतेन असौ अप अरात्सीः) इसी रीतिसे यह तू सिद्धि प्राप्त करता है। (स्वाहा) त्यागही सिद्धिका मूल है। (तिग्मा०) उत्तम शस्त्रास्त्रधारी वीर यहां सबको सुखी करें ॥ ७ ॥

(अस्मान् अवद्यात् दुरितात् मुमुक्तं) हम सबको निंदनीय पापसे छुडावो (यज्ञं जुषेथां) यज्ञका सेवन करो और (अस्मासु अमृतं धत्तं) हममें अमृत धारण करो ॥ ८ ॥

भावार्थ-इस मार्गसे हरएकको सिद्धि मिल सकती है। परोपकारके लिये आत्मसर्वस्वका समर्पण करनाही सिद्धिका मूल है। उत्तम शस्त्रास्त्रधारी सेवा करने योग्य वीर उक्त प्रकार यहां सबको सुखी करें ॥ ५ ॥ इसी रीतिसे हरएक मनुष्य सिद्धि प्राप्त कर सकता है। त्यागभावही सिद्धिका मूल है। सब वीर इसी मार्गसे सबको सुखी करें ॥ ६ ॥ इसी प्रकार सिद्धि मिलती है। त्याग भाव ही सिद्धि का मूल है। सब वीर इसी मार्गसे सबको सुखी करें ॥ ७ ॥ पापसे दूर रहो। प्रशस्त सत्कर्म करो और अमरत्व प्राप्त करो ॥ ८ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

चक्षुषो हेते मनसो हेते ब्रह्मणो हेते तपसश्च हेते ।
मेन्या मेनिरस्यमेनयस्ते सन्तु ये३स्माँ अभ्यघायन्ति ॥ ९ ॥
यो३स्मांश्चक्षुषा मनसा चित्त्याकूत्या च यो अघायुरभिदासात् ।
त्वं तानग्ने मेन्यामेनीन् कृणु स्वाहा ॥ १० ॥
इन्द्रस्य गृहोऽसि ।
तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः सर्वात्मा सर्वतनूः
सह यन्मेऽस्ति तेन ॥ ११ ॥

अर्थ–हे (चक्षुषः हेते) आंखके आयुध! (मनसः हेते) हे मनके शस्त्र ! (ब्रह्मणः हेते) हे ज्ञानके आयुध! और (तपसः च हेते) तपके आयुध! तू (मेन्याः मेनिः असि) शस्त्रका शस्त्र है। (ये अस्मान् अभ्यघायन्ति) जो हमें सताते हैं (ते अमेनयः सन्तु) वे शस्त्ररहितसे बनें ॥ ९ ॥

(यः यः अघायुः अस्मान्) जो कोई पापाचरण करनेवाला हमें (चक्षुषा मनसा चित्त्या) आंख, मन, चित्त, (च आकूत्या अभिदासात्) और संकल्पसे दास बनानेका यत्न करे, हे अग्ने ! (त्वं तान् मेन्या अमेनीन् कृणु) तू उनको शस्त्रसे शस्त्रहीन कर। (स्वा–हा) आत्मसर्वस्वका समर्पण ही मुक्तिका हेतु है ॥ १० ॥

(इन्द्रस्य गृहः असि) तू इन्द्रका घर है। मैं (सर्व–गुः) सर्व प्रकारकी गतिसे युक्त, (सर्व–पुरुषः) सब पुरुषार्थशक्तिसे युक्त, (सर्व–आत्मा) सर्व आत्मबलसे युक्त, (सर्व-तनूः) सब शारीरिकशक्तियोंसे युक्त (यत् मे अस्ति तेन सह) जो कुछ मेरा है, उसके साथ (तं त्वा प्रपद्ये) उस तुझको प्राप्त करता हूं, और (तं त्वा प्रविशामि) उस तुझमें प्रविष्ट होता हूं ॥ ११ ॥

भावार्थ–आंख, मन, ज्ञान और तप ये बडे शस्त्रास्त्र हैं, ये शस्त्रोंकेभी शस्त्र हैं। इनसे उन दुष्टोंको शस्त्रहीन कर, कि जो अपने बलसे दूसरोंको सताते हैं ॥ ९ ॥

जो कोई पापी आततायी चक्षु, मन, चित्त अथवा संकल्प से दूसरोंको दास बनानेका यत्न करेगा, उसको तू उक्त शस्त्रोंसे शस्त्रहीन कर। इस मार्गमें आत्मसर्वस्वका समर्पण ही बंधमुक्त होनेका उपाय है ॥ १० ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इन्द्र॑स्य॒ शर्मा॑सि ।
तं त्वा॒ प्र प॑द्ये॒ तं त्वा॒ प्र वि॑शामि॒ सर्व॑गुः सर्व॑पूरुषः सर्वा॑त्मा॒ सर्व॑तनूः
स॒ह यन्मेऽस्ति॒ तेन॑ ॥ १२ ॥

इन्द्र॑स्य॒ वर्मा॑सि ।
तं त्वा॒ प्र प॑द्ये॒ तं त्वा॒ प्र वि॑शामि॒ सर्व॑गुः सर्व॑पूरुषः सर्वा॑त्मा॒ सर्व॑तनूः
स॒ह यन्मेऽस्ति॒ तेन॑ ॥ १३ ॥

इन्द्र॑स्य॒ वरू॑थमसि ।
तं त्वा॒ प्र प॑द्ये॒ तं त्वा॒ प्र वि॑शामि॒ सर्व॑गुःसर्व॑पूरुषः सर्वा॑त्मा॒ सर्व॑तनूः
स॒ह यन्मेऽस्ति॒ तेन॑ ॥ १४ ॥

अर्थ-(इन्द्रस्य शर्म असि) इन्द्रका तू आश्रयस्थान है। मैं (सर्व-गुः०) सब गति, पुरुषार्थशक्ति, आत्मिकबल और शारीरिकशक्तिसे युक्त होकर तथा जो भी कुछ मेरे पास है उसके साथ तुझे प्राप्त होता हूं, और तुझमें आश्रय लेता हूं ॥ १२ ॥

(इन्द्रस्य वर्म असि) इन्द्रका कवच तू है। मैं सब गति, पौरुषशक्ति, आत्मिक और शारीरिक बलसे युक्त होकर तथा जो कुछ मेरे पास है उसको लेकर तुझे प्राप्त होता हूं और तेरे आश्रयसे रहता हूं ॥ १३ ॥

(इन्द्रस्य वरूथं असि) इन्द्रकी ढाल तू है। मैं सब गति, पौरुषशक्ति, तथा आत्मिक और शारीरिक बलके साथ तथा जो कुच्छ मेरा है, उस सबके साथ तुझे प्राप्त होता हूं और तेरे आश्रयसे रहता हूं ॥ १४ ॥

भावार्थ- सब गति, सब पुरुषार्थशक्ति, सब आत्मिकबल और संपूर्ण शारीरिकबलोंके साथ तथा और भी जो कुच्छ मेरा कहने योग्य है उसको साथ लेकर, प्रभुके शरणमें जाता हूं, उसके घरमें प्रविष्ट होता हूं और वहां ही रहता हूं ॥ वही हम सबका सच्चा घर और सबके लिये सुरक्षित स्थान है ॥ ११—१४ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ब्रह्मप्राप्तिका मार्ग।

इस सूक्तका पहिला मंत्र (कां० ४ । १ । १) चतुर्थ काण्डके प्रथम सूक्तका पहिला मंत्र है, तथा इस सूक्तका द्वितीय मंत्र चतुर्थ (कां० ४ । ७ । ७) काण्डमें सप्तम मंत्रका सप्तम मंत्र है। इन मंत्रोंके अर्थ, भावार्थ और स्पष्टीकरण पाठक वहां देखें।

यद्यपि द्वितीय मंत्र कां० ४ । ७ । ७ में है, तथापि यह मंत्र वहां विष दूर करनेके औषधि प्रकरणमें है। इसलिये प्रकरणानुसार वहां औषधि प्रकरणका सामान्य अर्थ बता रहा है। परन्तु यहां ब्रह्मविद्या और आत्मोन्नतिका प्रकरण है, इस प्रकरणमें इसका अर्थ इसी प्रकरणके अनुकूल होगा और ऐसा करनेके लिये शब्दोंके वेही अर्थ लेकर अर्थ देखा जायगा। क्यों कि यह सामान्य अर्थवाला मंत्र है और ऐसे मंत्र भिन्न भिन्न प्रकरणोंमें भी आकर वहांके योग्य अर्थ बता सकते हैं। जैसा किसीने अपने अनुयायियोंसे कहा कि "तुम तैयार हो जाओ" तो यह सामान्य निर्देश होनेसे हरएक शाखाके कार्यकर्ता अपने अपने कर्तव्यकर्ममें तैयार होनेका आशय ले सकते हैं, और इस आदेशानुसार ब्राह्मण अपने ज्ञानकर्ममें, क्षत्रिय अपने युद्धकर्ममें, वैश्य अपने व्यापारव्यवहारके कार्यमें तथा शूद्र अपनी कारीगरीके कार्यमें अपनी सिद्धता कर सकता है। एक ही सामान्य आज्ञा भिन्न भिन्न श्रोताओंमें भिन्न भिन्न कार्यके लिये प्रेरणा कर सकती है। इसी प्रकार इस मंत्रकी सामान्य आज्ञा पूर्वोक्त स्थान (कां० ४ । ७ । ७) पर औषधिप्रयोगके कर्मकी प्रेरणा देती है और यहां उपासनायोगकी प्रेरणा देती है। पाठक इसका विचार करके इस सामान्य मंत्रका महत्त्व जान सकते हैं।

प्रथम मंत्रका विस्तृत स्पष्टीकरण चतुर्थ काण्डके सू० १ मं० १ की व्याख्यामें पाठक देख सकते हैं। इस प्रथम मंत्रका यह आशय है—"ब्रह्म सबसे पहिले प्रकट हुआ है, उसके प्रकाशकी जहां मर्यादा होती है, वहां देखकर ज्ञानी इस ब्रह्मको जानता है। यही ज्ञानी सूर्यादि तेजस्वी पदार्थोंका अद्भुत तेज देखकर और उनको उपमा देने योग्य अनुभव करके, इस दृश्यके अनुसंधानसे मूल उत्पत्तिस्थानके विषयमें निश्चित ज्ञान प्राप्त करके उसका उपदेश कर सकता है। (मं० १)"

जिस प्रकार सूर्यका तेज किसी पदार्थपर गिरनेसे, अर्थात् उस तेजकी मर्यादा होनेसे, दिखाई देता है, मर्यादा न हुई तो सूर्यका तेज नहीं दिखाई देता; इसी प्रकार परमात्माके परम तेजका अनुभव भी सूर्यादि विविध केन्द्रोंमें उसकी मर्यादा होनेसे ही होता है

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अर्थात् यदि जगत् न बने तो परमात्माके अद्भुत सामर्थ्यका अनुभव कैसे हो सकता है। परमात्मा परम तेजस्वी है, सबसे पूर्वकालसे प्रकाशित हो रहा है, यह सब सत्य है तथापि सूर्यचन्द्रादि केन्द्रोंमें जब उसके तेजकी अन्तिम सीमा बनती है, तब ही उसके सामर्थ्यका पता लग सकता है। जिस प्रकार घरके कमरेमें चमकनेवाले दीपका प्रकाश कमरेकी दिवारोंपर गिरनेसे नजर आता है। यदि दिवारोंकी रुकावट न होगी, तो नजर नहीं आवेगा। इसी प्रकार इस विश्वके कमरेमें परमात्माका दीप चमक रहा है, अग्नि आदि देवतारूपी दिवारोंपर उसके किरण पडकर जो मर्यादा उत्पन्न होती है, उस मर्यादासे उसकी शक्तिका ज्ञान होता है। ब्रह्मप्राप्तिके मार्गकी यह एक सीढी है।

जगत्में परमात्माकी शक्तिका कार्य देख कर सदसत्के मूल आदि कारणको जानना चाहिये। ज्ञानी, कवि, सन्त ही इस प्रकार परमात्माका ज्ञान प्राप्त करते हैं और उसके संबंधका सत्य उपदेश कर सकते हैं।

यह प्रथम मंत्रका आशय है। इसके पश्चात् द्वितीय मंत्रमें कहा है कि—"पूर्व कालके ज्ञानी भद्रपुरुषोंने जिस प्रकार प्रशस्ततम कर्म किये थे, उसी प्रकार तू भी प्रशस्ततम कर्म कर, अपने बालबच्चों और वीरोंको बचाओ और उनकी उन्नति करो, यही तुम्हें कहना है। (मं० २)" तुम्हारे सन्मुख वही आदर्श रहे, जो कि प्राचीनकालके श्रेष्ठ पुरुषोंने अपने सामने रखा था। इसी प्रकार प्राचीन कालके श्रेष्ठ पुरुषोंके जीवन चरित्र भी तू अपने सन्मुख रख और उनके समान बननेका यत्न कर। उन्होंने परमार्थसाधन करते हुए भी संसारयात्रा किस प्रकार चलाई, परमात्माकी भक्ति करते हुए ही अपने बालबच्चोंकी उन्नति किस प्रकार की, अपने संतानोंको विनाशसे कैसा बचाया, इत्यादि बातोंको उनके चरित्रोंमें देख कर उन बातोंको अपनी जीवनीमें ढाल दो और उनके समान आचरण करके अपनी आत्मिक उन्नतिका साधन कर। यह उपदेश इस द्वितीय मंत्रद्वारा मिलता है। यह सामान्य व्यवहारका मंत्र वैद्यक प्रकरणमें वैद्यका व्यवहार उत्तम करनेकी प्रेरणा दे रहा है और यहां आत्मोन्नतिके प्रकरणमें संसारके साथ परमार्थका साधन करनेकी प्रेरणा दे रहा है। पाठक इन सामान्य मंत्रोंका महत्त्व यहां देखें और वेदकी इस शैलीका अनुभव करें।

इन दो मंत्रोंका इस प्रकार आशय देखनेके पश्चात् अब तृतीय मंत्रका मनन करते हैं।

स्वर्गके महन्तोंकी घोषणा।

जिनको स्वर्गसुखका अनुभव प्राप्त हुआ है, वे महन्त जनताको जो कल्याणका उपदेश करते हैं, वह उपदेश इस तृतीय मंत्रमें कहा है—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

ते असश्चतः मधुजिह्वाः सहस्रधारे दिवो नाके समस्वरन् ॥ (मं० ३)

" वे स्थितप्रज्ञ, मधुरभाषण करनेवाले, सहस्र धाराओंसे जहां अमृत प्राप्त होता है उस द्युलोकके स्थानका अनुभव लेनेवाले सन्त महन्त एक स्वरसे यह उपदेश देते हैं।" अर्थात् वे लोग जनताकी भलाईके लिये एक स्वरसे निम्नलिखित उपदेश करते हैं।

तस्य भूर्णयः स्पशः न निमिषन्ति ।
सेतवे पदे पदे पाशिनः सन्ति ॥ (मं० ३)

" उस परमात्माके दुष्टोंको पाशोंसे बांधनेवाले दूत आंख कभी मूंझते नहीं, अर्थात् लोगोंके पुण्यपापोंको अपने खुले आंखोंसे सदा देखते रहते हैं। पापियोंको पाशोंसे बांधनेके लिये अपने पाश लेकर सब जगत्में हरएक स्थानमें सदा तैयार रहते हैं।" अर्थात् इनकी दृष्टिसे कोई पापी कभी बच नहीं सकता, हरएक पापीको उसके पापके अनुसार दण्ड देनेके लिये ये दूत सदा तैयार रहते हैं और अवश्य ही उस पापीको बांध देते हैं। अतः कोई पापी यह न समझे कि मैं पाप करके परमात्माके दण्डसे बच जाऊं। पद पद पर उसके दूत आंख खोलकर खडे हैं, वे तत्काल पापीको पकडते हैं। यहां तक इन दूतोंका प्रबंध पूर्ण है कि, पकडा गया हुआ पापी कभी कभी अपने आपको स्वतंत्र भी समझता है, परन्तु वह उस समय पूर्णरीतिसे बंधा हुआ होता है। परमात्माका इतना अद्भुत प्रबंध है, इस लिये सब मनुष्योंको उचित है कि वे उचित धर्मानुकूल व्यवहार दक्षताके साथ करनेका यत्न करें। पापसे बचें और इस प्रकारके सावधान आचरणसे परमात्माके इन गुप्तचरोंसे बच जांय। इसका बिलकुल संभव नहीं है कि कोई छिपकर पाप करे और वह छिपनेसे बच जाय। इस कारण विशेष सावधानताकी आवश्यकता है। यदि मनुष्य पुण्यमार्ग परसे जानेवाला होगा तो उसकी उत्तम रक्षा येही ईश्वरके दूत उतनी ही सावधानीसे करते हैं, इसलिये पुण्यात्माको किसीसे डर नहीं होता।

जो पाठक इस मंत्रका उत्तम विचार करेंगे उनका आचरण अवश्य ही सुधर जायगा, इसमें कोई संदेह नहीं है। यदि आत्मिकशक्तिका विकास करनेकी इच्छा पाठकोंमें होगी, तो उनके लिये परिशुद्ध आचरणकी अत्यंत आवश्यकता है, यह उपदेश इस मंत्र द्वारा उत्तम रीतिसे मिलता है।

शत्रुको भगाना।

चतुर्थ मंत्रमें शत्रुका लक्षण कहकर ऐसे शत्रुको दूर करनेका उपदेश किया है। 'वृत्र' शब्द यहां शत्रु वाचक है, जो घेरता है, चारों ओरसे प्रतिबंध उत्पन्न करता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

है, विशेषतः (वाज-सातये) अन्नदान आदि परोपकारके कृत्योंमें जो रुकावटें खडी करता है, वह शत्रु है। पाठक विचार करेंगे तो उनकी रुकावट करनेवाले उनके शत्रु कौन हैं इसका उनको पता लग जायगा। धार्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, वैयक्तिक अथवा सांघिक रुकावटें उत्पन्न करनेवाले अनेक शत्रु विद्यमान हैं। इनको दूर करके अपना उन्नतिका मार्ग खुला करना आवश्यक है। ऐसे शत्रुओंको (परि सु प्र धन्व) सब ओरसे उत्तम प्रकार विशेषरीतिसे भगा दो। अपनेपास ठहरने न दो। शत्रुपर चढाई भूमिकी ओरसे तथा समुद्रकी ओरसे भी होती है। तथा ऊपरसे भी हो सकती है। कोई अन्यरीतियां भी होती होंगी। यहां तात्पर्य रीतियोंके कहनेसे नहीं है। जो भी रीति हो उसका अवलंबन करके शत्रुको दूर भगाया जावे, और अपना उन्नतिका मार्ग प्रतिबंधरहित बनाया जावे। प्रतिबंधरहित होना ही मुक्ति है। उसका मार्ग इस मंत्रने बताया है। यह तो आध्यात्मिक मुक्तिके लिये और सामाजिक तथा राष्ट्रीय मुक्तिके लिये भी अत्यंत उपयोगी है।

सिद्धिका मार्ग।

शत्रुओंका प्रतिबंध दूर करने, अपना मार्ग प्रतिबंध रहित करने और स्वतंत्रता प्राप्त करनेका उपदेश इन चार मंत्रोंमें पूर्वोक्त प्रकार किया है। अब विचार यह है कि इसकी सिद्धि किस प्रकार हो सकती है। इस शंकाके उत्तरमें कहा है—

एतेन नु अरात्सीः। (मं० ५)
एतेन अव अरात्सीः। (मं० ६)
एतेन अप अरात्सीः। (मं० ७)

" इसी मार्गसे तू सिद्धिको प्राप्त करेगा " अर्थात् पूर्वोक्त चार मंत्रोंमें जो धर्ममार्ग कहा है उसका आचरण करनेसे ही मनुष्यको सिद्धि मिल सकती है। चार मंत्रोंमें जो धर्म कहा है उसका संक्षिप्त स्वरूप यह है- (१) परमेश्वरकी भक्ति करना, (२) श्रेष्ठोंका आदर्श अपने सन्मुख रखना, (३) पापका भय धारण करना, (४) और प्रतिबंधक विघ्न अथवा शत्रु दूर करना।" ये उन्नतिके चार सूत्र हैं। इनका आचरण करनेसे मनुष्यकी उन्नति हो सकती है। इस उन्नतिमें एक बातकी आवश्यकता है और वह है " स्वाहा " करना। स्वाहा करनेका अर्थ अब देखिये—

स्वा-हा करो।

इस सूक्तमें मं० ५ से ७ तकके तीन मंत्रोंमें तथा दसवें मंत्रमें मिलकर चार वार ' स्वाहा ' शब्द आगया है। इसलिये इस सूक्तमें अनेक वार और बार बार स्वाहा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

आनेसे इसका महत्त्व इस सूक्तोक्त सिद्धीमें अधिक है। इस लिये 'स्वाहा' शब्दका अर्थ देखना चाहिये।

(स्व) अपने सर्वस्वको (हा) त्याग देनेका नाम स्वाहा है। अपने अधिकारमें जो तन, मन, धन आदि है उसका सब जनताकी भलाईके लिये समर्पण करनेका नाम स्वाहा करना है। अपनी शक्ति केवल अपने भोग बढानेमें ही खर्च न करते हुए संपूर्ण जनताकी भलाई करनेके प्रशस्ततम कार्य करनेमें उसका व्यय करना स्वाहा शब्दसे बताया जाता है। इसलिये यज्ञके हवनमें स्वाहा शब्दका उच्चार होता है। इसका अर्थ यह है कि यज्ञमें दी हुई आहुति दूसरोंकी उन्नतिके लिये दी है, उससे मैं अपने भोग बढाना नहीं चाहता। यही यज्ञकी शिक्षा है। द्रव्ययज्ञ, विद्यायज्ञ, ज्ञानयज्ञ आदि अनंत यज्ञ हैं, इनका अर्थ ही यह है कि द्रव्य ज्ञान आदिका परोपकारार्थ समर्पण करना और उनको केवल अपने भोग बढानेके लिये न लगाना। परोपकारके लिये आत्मसर्वस्वका समर्पण करनेका नाम स्वाहाकार है। यह स्वाहाकार करनेसे ही इस सूक्तमें कही परम उच्चसिद्धि प्राप्त हो सकती है। यह स्वाहाकार जितना होगा उतनी सिद्धि होगी। सिद्धिके लिये इस स्वाहाकारकी अत्यन्त आवश्यकता है। मं० ५ – ७ तकके तीन मंत्रोंमें तीन वार लगातार कहनेसे इस आत्मसमर्पणका अत्यंत महत्त्व सिद्ध होता है। पाठक भी यहां देख सकते हैं कि जगत्में भी स्वार्थत्याग करनेवालेकी ही विशेष प्रतिष्ठा होती है, वैसी स्वार्थी मनुष्यकी नहीं होती। अर्थात् स्वार्थत्याग जैसा जगत्के व्यवहारमें प्रतिष्ठा प्राप्त करनेके लिये आवश्यक है, उसी प्रकार परमार्थसाधनके लिये भी आवश्यक है।

सोम और रुद्र।

जगत्में शांति करनेवाली और उग्रता बढानेवाली दो शक्तियां हैं, इनके 'सोम-रुद्र, अग्नि-सोम, इन्द्र-सोम' ये नाम वेदमें आ गये हैं। सोमशक्ति जगतमें शान्ति करनेवाली है और रुद्रशक्ति उग्रता बढानेवाली है। प्रत्येक स्थानमें ये दोनों शक्तियां कार्य करती हैं, कहीं कदाचित एक न्यून होती है और दूसरी प्रबल होती है। जो प्रबल होती है उसका प्रभाव होता है, अर्थात् यदि किसीमें सोमशक्तिका प्रभाव अधिक हुआ तो वह पुरुष, शान्त, गम्भीर, विवेकी विचारी होगा, तथा किसीमें रुद्रशक्तिकी प्रधानता हुई तो वह पुरुष शूर वीर, युद्धप्रिय, क्रूर अथवा कठोर होगा। इस प्रकार मनुष्यकी स्वाभाविक प्रवृत्ति देखनेसे पता लग जाता है कि इसमें कौनसी शक्ति विशेष प्रबल है और कौनसी न्यून है।

जिस प्रकार व्यक्तिमें सोम अथवा रुद्र शक्तिकी न्यूनाधिकता होती है, उसी प्रकार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

समाजमें अथवा जातीमें सोम या रुद्रशक्तिकी न्यूनाधिकता होती है। इसी कारण ब्राह्मण और क्षत्रिय ये वर्ण क्रमशः शांतस्वभाव तथा उग्रस्वभाव हुए हैं। ब्राह्मणकी शान्ति और क्षत्रियकी उग्रता उस कारणही सुप्रसिद्ध है। अतः सोमारुद्रौ इस देवता वाचक शब्दसे आदर्श ब्राह्मण क्षत्रियोंका बोध होता है।

मं० ५—७ तकके तीनों मंत्रोंमें सोमारुद्रौ देवता है। 'ये दोनों देवता हमें सुखी करें' ऐसी प्रार्थना इन तीनों मंत्रोंमें है। व्यक्तिके अंदर जो शान्ति और उग्रता होती है वह उसके हितके लिये सहायक होवे, अर्थात् मनुष्यकी शान्ति उसको शिथिल बनानेवाली न हो और मनुष्यकी उग्रता उसको हिंसक न बनावे, यह आशय यहां लेना उचित है। समाजमें भी शान्तिप्रिय ब्राह्मण और युद्धप्रिय क्षत्रिय परस्पर सहायकारी होकर परस्परकी उन्नति करते हुए राष्ट्रका उद्धार करनेवाले हों। इस प्रकार मनुष्यकी उन्नति होती रहे और सबका सुख बढता रहे और कोई हीन और दीन न बने। पूर्वोक्त कही रीतिके अनुसार मनुष्य त्यागभावसे स्वार्थत्याग और आत्मसमर्पण करता हुआ और शान्ति तथा उग्रतासे योग्य सहायता लेता हुआ सिद्धिको प्राप्त करे। यह आशय इन तीन मंत्रोंका है। पाठक इन मंत्रोंका विचार करेंगे तो उनके ध्यानमें यह बात आ सकती है कि किस प्रकार स्वार्थत्याग और आत्मसमर्पणपूर्वक आत्मोन्नतिके मार्गका अवलंबन करके मनुष्य उन्नतिको प्राप्त हो सकता है। इन तीनों मंत्रोंका आशय ही भिन्न शब्दोंसे अष्टम मंत्रमें कहा है। इस अष्टम मंत्रके तीन भाग हैं—

तीन उपदेश।

१ अवद्यात् दुरितात् अस्मान् मुमुक्तम्। (मं० ८)
२ यज्ञं जुषेथाम्। (मं० ८)
३ अस्मासु अमृतं धत्तम्। (मं० ८)

"(१) निंद्य पापाचरणसे हमें मुक्त कर, (२) यज्ञका सेवन कर, (३) हममें अमृतको धारण कर।" ये तीन उपदेश अष्टम मंत्रमें हैं। पापाचरणसे दूर रहना, आत्मसमर्पणरूप यज्ञ करना और अन्तमें अमृतको प्राप्त करना, ये तीन उपदेश हैं, जो पूर्वके मंत्रोंका सार है। इस समय तक जो उपदेश इस सूक्तमें कहे हैं उनका सार इन तीन मंत्रभागोंमें आगया है। "पापसे बचना, सत्कर्म करना, और मृत्युको दूर करके अमृतको प्राप्त करना" सब धर्मके नियम इन तीन मंत्रभागोंमें संमिलित हुए हैं। अमृत प्राप्त करना यह मनुष्योंका साध्य है, उसका साधन यज्ञ अर्थात् सत्कर्म करना है और पापाचरण न करना यह निषिद्ध कर्मका निषेध है। इस प्रकार यह त्रिवृत यज्ञ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

किंवा त्रिकर्म करना है। यदि और कुछ सिद्ध न हुआ तो ये तीन उपदेश मनुष्यके मनमें स्थिर रहे तो उसका बेडा पार हो सकता है। कितने व्यापक महत्त्वके उपदेश कितने थोडे शब्दोंमें वेदने यहां दिये हैं; इसका विचार पाठक करेंगे; तो उनको इन उपदेशोंका महत्त्व समझ सकता है।

शस्त्रोंके शस्त्र।

शत्रुको दूर करनेका उपदेश इससे पूर्व कईवार किया है। उसका पालन करनेके लिये शत्रुके शस्त्रास्त्रोंकी अपेक्षा अपने शस्त्रास्त्र बढानेकी आवश्यकता होती है। हमारे शस्त्रास्त्र देखकर शत्रुभी अपने शस्त्रास्त्र बढाता है। इस प्रकार दोनों ओरके शस्त्रास्त्र बढने लगे, तो वे इतने बढ जाते हैं कि उसकी कोई परिमिति नहीं रहती। इसके पश्चात् जो अत्यधिक शस्त्रास्त्रोंसे सज्जित राष्ट्र होता है, उसका नियमन किस रीतिसे किया जाय; यह प्रश्न विचारी मनुष्योंके सन्मुख उपस्थित होता है, इस प्रश्नका उत्तर नवम मंत्रने दिया है—

चक्षुषः मनसः ब्रह्मणः तपसः हेतिः मेन्याः मेनिः॥ मं० (९)

"आंख, मन, ज्ञान और तपके जो शस्त्र हैं, वे शस्त्रोंके भी शस्त्र हैं।" अर्थात् शस्त्रोंसे कई गुणा अधिक शक्ति इन में है। इन में जो आत्मिकबल होता है वह शस्त्रास्त्रोंके बलसे कई गुणा अधिक समर्थ होता है। इसलिये शस्त्रास्त्रोंके पाशवीबलका प्रतीकार नेत्र-मन-ज्ञान-तपरूपी आत्मिक बलवाले आध्यात्मिक शक्तियोंसे किया जा सकता है। केवल दृष्टिक्षेपसे, केवल मनकी इच्छासे, केवल ज्ञानके योगसे अथवा तपके प्रभावसे पाशवी शस्त्रोंका प्रतीकार किया जा सकता है। लोहेके शस्त्रास्त्र क्षत्रियके हैं और ये आत्मिक बल ब्राह्मणके होते हैं। विश्वामित्र के पाशवी शस्त्र तपस्वी वसिष्ठकी इच्छाशक्तिके सामने व्यर्थ सिद्ध हुए, यह इतिहासिक कथा यहां देखने योग्य है।

पाशवी बलका आत्मिक बलसे प्रतिकार।

पाशवी बल जिसके पास बढता है, वह अपने सुखको बढानेके लिये दूसरोंपर अत्याचार करता है, इस कारण वह (अघ+आयुः) जिसकी आयु पापमय हो चुकी है, ऐसा पापी बनता है। जिस प्रकार एक पापी व्यक्ति दूसरोंपर अत्याचार करती है उसी प्रकार पाशवी शस्त्रास्त्रोंसे युक्त एक पापी राष्ट्रभी दूसरोंपर भी अत्याचार करता है, इस लिये उसकोभी "अघ—आयु" अर्थात् पापी जीवनवाला राष्ट्र कहते हैं, उसका वर्णन यह है—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ये अस्मान् अभ्यघायन्ति। (मं० ९)

यो अघायुः अस्मान् अभिदासात्। (मं १०)

" जो हमें सब ओरसे पापाचरणसे कष्ट देते हैं। जो पापी हमें दास करना चाहता हैं अथवा हमारा सर्वस्व नाश करना चाहता है।" इन मंत्र भागोंमें पाशवी अत्याचार का स्वरूप बताया है, (१) एक तो यह है कि दूसरेका घातपात पापपुण्यका विचार न करते हुए करना, (२) और दूसरा यह है दूसरोंका सर्वस्व नाश करना। यह पाशवी अत्याचारका स्वरूप है। जगत्के अन्दरकी सब गुलामी और लोगोंके सब दुःख इसीके कारण हैं। पाठक जगत् के इतिहासमें देखेंगे, तो उनको मालूम होगा कि 'एक बलवाला दूसरे निर्बलको अपने पेटकी पूर्तिके लिये खा रहा है।" यही पाशवी अत्याचार है। इस बलवानके शस्त्रोंको निर्बल करनेका उपाय केवल आत्मिक बल ही हैं—

चक्षुषा मनसा चित्त्या आकूत्या मेन्या तान् अमेनीन् कृणु। (मं० १०)

ब्रह्मणः तपसः च मेन्या ते अमेनयः सन्तु। (मं० ९)

" आंख, मन, चित्त और संकल्परूपी शस्त्रसे उन अत्याचारी शत्रुवोंको शस्त्र रहित कर। ज्ञान और तपके शस्त्रसे उनको शस्त्रहीन कर।" अर्थात् पाशवी शस्त्रोंका सामना इन आत्मिक बलसे कर। अपने आंख, मन, चित्त, संकल्प, ज्ञान और तप ये हि आत्माके शस्त्र हैं। इनको तेजस्वी बना और इनसे तू लोहेके शस्त्रोंका प्रतिकार कर। तुम्हारे अंदर ये आत्मिकबल जितने प्रमाणसे बढेंगे, उतनेहि प्रमाणसे शत्रुके पाशवी बल सत्त्वहीन हो जांयगे। पाशवी शक्तिवालोंका सामना करनेका यही सनातन मार्ग है। इसी मार्गके आचरणसे वसिष्ठने विश्वामित्रका और प्रल्हादने हिरण्यकशिपुका सामना किया था। इस आत्मिकबलके मार्गसे अन्तमें निःसंदेह विजय होगा। सबसे अधिक प्रभावशाली यह आत्मिकबल है। जो पाशवी बलवाले होते हैं वे अपने लोहशस्त्रोंकी घमंडसे अपना आत्मिकबल बढानेका यत्न नहीं करते किंवा वे अत्याचार प्रवृत्तिके कारण अपना आत्मिकबल बढा नहीं सकते। इसलिये अनत्याचारी शान्तिपूर्ण अहिंसामय आत्मिक बलके मार्गपरसे जानेवाले लोग जितना अपना मार्ग आक्रमण करेंगे; उतना उनका विजय ही होता रहता है, क्यों कि उनके शत्रु इस मार्गमें आते नहीं, और यदि इस आत्मिकबलके मार्गपर वे आगये, तो भी उसमें इनही आत्मिक उन्नतिवालोंकीही जीत होगी। इसका कारण यह है कि यदि इस मार्गपर चलनेके लिये वे शत्रु अहिंसामय अनत्याचारी बने, तो दुःख का मूलही नष्ट होगया और फिर झगडेका कारणही नहीं रहा। जैसा वसिष्ठका आत्मिक बल देखकर विश्वामित्र न

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अत्याचारी क्षात्रबलका त्याग करके शांतिमय अनत्याचारी ब्राह्मबलका स्वीकार किया। तत्पश्चात् दोनोंमें झगडा होनेका कुछ भी कारण न रहा। इस प्रकार आत्मिकबलवालोंकी सदा जीत ही होती रहती है।

इस आत्मिकबलद्वारा पाशवी अत्याचारोंको रोकनेके मार्गमें "स्वा-हा" अर्थात् आत्मसर्वस्वका समर्पण करनेकी अत्यंत आवश्यकता होती है, इसीलिये दशम मंत्रमें पुनः 'स्वाहा' शब्दद्वारा आत्मत्यागका उपदेश दिया है। पाठक यहां स्मरण रखें, कि अत्यंत स्वार्थत्यागके विना यह आत्मशुद्धि और आत्मबलके मार्गपरसे चलना असंभव है। इस आत्मसर्वस्वके समर्पणका स्वरूप देखिये—

आत्मसमर्पण

"अपना कहने योग्य जो भी कुछ हो उसका सत्कार्यमें समर्पण करना आत्मसमर्पण कहलाता है।" इसका वर्णन इस प्रकार है—

यत् मे अस्ति तेन सह, सर्वतनूः, सर्वगुः, सर्वात्मा, सर्वपूरुषः
त्वा प्रपद्ये, त्वा प्रविशामि ॥ ११-१४ ॥

"जो कुछ मेरा है उसको लेकर तथा सब शरीर, सब इंद्रिय, सब आत्मशक्तियां, सब पुरुषार्थशक्तियां लेकर तुझे प्राप्त होता हूं और तुझमें प्रविष्ट होता हूं।"

इस मंत्रमें स्वार्थसमर्पणकी परम सीमा वर्णन की है। जो कुछ मेरा इस जगत्में है उसको भी परमार्थकी सिद्धता करनेके लिये समर्पण करता हूं और उसके साथ मेरा शरीर, मेरे इंद्रिय, मेरी मन आदि शक्तियां, और सब पुरुषार्थकी शक्तियां भी उसी परम कार्यके लिये समर्पित करता हूं। अर्थात् जो कुछ मेरा कहने योग्य है, वह सब ध्येयकी सिद्धीके लिये समर्पित करता हूं। यह 'स्वाहा' शब्दका स्पष्ट अर्थ इन मंत्रों द्वारा बताया गया है। इन मंत्रोंको देखनेसे आत्मसमर्पणका अर्थ कितना व्यापक है, इस बातका पता लग सकता है। इस प्रकारका आत्मसमर्पण जो कर सकते हैं वेही त्यागी अन्तमें बंधमुक्त होकर अमृत प्राप्त कर सकते हैं, जिनको किसी भी प्रकारकी पाशवी शक्तिसे बांधा नहीं जा सकता।

इस रीतिसे इस सूक्तमें आत्मोन्नतिके मार्गका उपदेश दिया है, इस मार्गसे आत्म-शुद्धि होकर वैयक्तिक, सामाजिक, राजकीय और पारमार्थिक उन्नतिका साधन मनुष्य कर सकता है। यह सूक्त कई दृष्टियोंसे मनन करने योग्य है। जो पाठक इस दर्शायी रीतिसे इस सूक्तका अधिक मनन करेंगे, वे अपने उद्धारका उत्तम बोध प्राप्त कर सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ऐश्वर्यमयी विपत्ती।

[७]

(ऋषिः- अथर्वा। देवता-बहुदैवत्यम्।)

आ नो भर मा परि ष्ठा अराते मा नो रक्षीर्दक्षिणां नीयमानाम्।
नमो वीत्सार्या असमृद्धये नमो अस्त्वरातये ॥ १ ॥

यमराते पुरोधत्से पुरुषं परिरापिणम्।
नमस्ते तस्मै कृण्मो मा वनिं व्यथयीर्मम ॥ २ ॥

अर्थ- हे (अराते) अदानी ! (नः आभर) हमें धन भर दे, हमसे (मा परि स्थाः) मत अलग हो, (नः नीयमानां दक्षिणां मा रक्षीः) हमारी लाई गई दक्षिणाको मत अपने पास रख। ऐसी (वीत्सार्यै असमृद्धये नमः) ईर्ष्या युक्त असमृद्धिके लिये नमस्कार है और (अरातये नमः अस्तु) अदानके लिये दूरसे नमस्कार है ॥ १ ॥

हे (अराते) अदानी ! (यं परिरापिणं पुरुषं पुरोधत्से) जिस बडबडनेवाले पुरुषको तू आगे धरती है (ते तस्मै नमः कृणमः) तेरे उस पुरुषको हम नमस्कार करते हैं। परंतु (मम वनिं मा व्यथयीः) मेरे मनकी इच्छा को तू पीडा न दे ॥ २ ॥

भावार्थ— दान न देनेका गुण संपत्तिको संग्रहित करता है, इसलिये यह गुण कुछ मर्यादा तक अलग न हो। परंतु देने योग्य दक्षिणाका दान कम न हो। इस मर्यादा तक की कंजूसी और असमृद्धिका हम आदर करते हैं ॥ १ ॥

जिस पुरुषपर उक्त प्रकारकी अदानशीलताका प्रभाव हुआ है उसको भी हम नमस्कार करते हैं, तथापि मेरी मनकी इच्छाको उससे व्यथा न पहुंचे ॥ २ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

प्र णो वनिर्देवकृता दिवा नक्तं च कल्पताम् ।
अरातिमनुप्रेमो वयं नमो अस्त्वरातये ॥ ३ ॥
सरस्वतीमनुमतिं भगं यन्तो हवामहे ।
वाचं जुष्टां मधुमतीमवादिषं देवानां देवहूतिषु ॥ ४ ॥
यं याचाम्यहं वाचा सरस्वत्या मनोयुजा ।
श्रद्धा तमद्य विन्दतु दत्ता सोमेन बभ्रुणा ॥ ५ ॥
मा वनिं मा वाचं नो वीर्त्सीरुभाविन्द्राग्नी आ भरतां नो वसूनि ।
सर्वे नो अद्य दित्सन्तोऽरातिं प्रति हर्यत ॥ ६ ॥

अर्थ-(नः देवकृता वनिः) हमारी देवोंद्वारा निर्मित इच्छा (दिवा नक्तं च कल्पतां) दिन और रात समर्थ होवे । (वयं अरातिं अनुप्रेमः) हम अदानशीलताको प्राप्त हों (अरातये नमः अस्तु) अदानशक्तिको नमस्कार होवे ॥ ३ ॥ (यन्तः सरस्वतीं अनुमतीं भगं हवामहे) हलचल करनेवाले हम विद्या, सुमति और ऐश्वर्यको पास बुलाते हैं । (देवहूतिषु देवानां जुष्टां वाचं अवादिषं) देवोंके आह्वानके प्रसंगमें देवोंके लिये प्रिय वाणी ही मैं बोलता हूं ॥ ४ ॥ (यं अहं मनोयुजा सरस्वत्या वाचा याचामि) जिससे मैं उत्तम मनसे युक्त ज्ञानमय वाणीको मांगता हूं (तं अद्य बभ्रुणा सोमेन दत्ता) उसको आज भरणकर्ता सोमने दी हुई (श्रद्धा विन्दतु) श्रद्धा प्राप्त होवे ॥ ५ ॥ (नः वनिं मा) हमारी भक्तिको न कम कर और (वाचं मा वि ईर्त्सीः) वाणीको भी न रोक । (उभौ इन्द्राग्नी नः वसूनि आ भरतां) दोनों इन्द्र और अग्नि हमें धन प्राप्त करावें । (नः दित्सन्तः सर्वे) हमें दान करनेवाले सब तुम (अरातिं प्रतिहर्यत) अदानशीलताको विरोधके साथ प्राप्त हो ॥ ६ ॥

भावार्थ-देवों द्वारा प्रेरित हमारी सदिच्छा दिन और रात बढती रहे । हम उक्त प्रकारकी अदानशीलताको प्राप्त हों ॥ ३ ॥ हम हलचल करनेवाले लोग विद्या, सुमति और ऐश्वर्यकी इच्छा करते हैं । हम सदा प्रियवाणी ही बोलें ॥ ४ ॥ मैं उत्तम सुसंस्कृत मन और ज्ञानमयी वाणीको चाहता हूं । उत्तम श्रद्धा भी हम सबको प्राप्त हो ॥ ५ ॥ हमारी सदिच्छा कम न हो और वाणी न रुके । देव हमें धन देवें । दान देनेवाले सब दानी उक्त प्रकारकी अदानशीलताको दूरसे नमस्कार करें ॥ ६ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

परोपेह्यसमृद्धे वि ते हेतिं नयामसि ।
वेद त्वाहं निमीवन्तीं नितुदन्तीमराते ॥ ७ ॥
उत नग्ना बोभुवती स्वप्नया सचसे जनम् ।
अराते चित्तं वीर्त्सन्त्याकूतिं पुरुषस्य च ॥ ८ ॥
या महती महोन्माना विश्वा आशा व्यानशे ।
तस्यै हिरण्यकेश्यै निर्ऋत्या अकरं नमः ॥ ९ ॥
हिरण्यवर्णा सुभगा हिरण्यकशिपुर्मही ।
तस्यै हिरण्यद्रापयेऽरात्या अकरं नमः ॥ १० ॥

अर्थ- हे (असमृद्धे) असमृद्धि ! (परः अप इहि) परे चली जा (ते हेतिं विनयामसि) तेरे शस्त्रको हम अलग करते हैं । हे (अराते) अदानशीलते ! (अहं त्वा निमीवन्तीं नितुदन्तीं वेद) मैं तुझको निर्बल करनेवाली और अंदरसे चुभनेवाली जानता हूं ॥ ७ ॥

हे (अराते) अदानशीलते ! (उत नग्ना बोभुवती) और नंगी होकर (जनं स्वप्नया सचसे) मनुष्यको आलस्यसे युक्त करती है । इस प्रकार (पुरुषस्य चित्तं आकूतिं च वि ईर्त्सन्ती) मनुष्यके चित्त और संकल्पको मलीन करती है ॥ ८ ॥

(या महती महोन्माना) जो बडी और विशाल होनेके कारण (विश्वा आशा व्यानशे) सब दिशाओंमें फैली है । (तस्यै हिरण्यकेश्यै निर्ऋत्यै) उस सुवर्णके समान बालवाली विपत्तिको (नमः अकरं) नमस्कार करते हैं ॥ ९ ॥

(हिरण्यवर्णा सुभगा) सुवर्णके समान वर्णवाली, ऐश्वर्यवाली (मही हिरण्यकशिपुः) बडी सुवर्ण वस्त्रवाली है (तस्यै हिरण्यद्रापये अरात्यै) उस सुवर्णके वस्त्रोंसे आच्छादित अदानशीलताके लिये (नमः अकरं) नमस्कार करता हूं ॥ १० ॥

भावार्थ- असमृद्धि दूर चली जावे । तेरे आघातको हम हटाते हैं । मैं जानता हूं कि असमृद्धिसे निर्बलता होती है और अंदरसे ही कष्ट होते हैं ॥ ७ ॥

कंजूसी मनुष्यको नंगा बनाती और आलसी बनाती है । और मनुष्यके चित्त और संकल्पको मलीन करती है ॥ ८ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यह बडी विशाल है और सर्वत्र फैली है। उस सुवर्णके समान रंगवाली विपत्तिके लिये दूरसेही नमस्कार है ॥ ९ ॥

सुवर्णके समान सुंदर, ऐश्वर्यवाली, सुवर्णके आभूषणवाली इस अदानशीलताको हम दूरसे नमन करते हैं ॥ १० ॥

विपत्तिपूर्ण सम्पत्ति ।

आपत्तिपूर्ण विपत्ति और संपत्तिमय विपत्ति, ऐसी दो प्रकारकी विपत्तियां हैं। इनमेंसे वस्तुतः दोनों निंदनीय ही हैं; परंतु पहिलीका सर्वथैव निषेध और दूसरीका कुछ नियमोंसे निषेध वेदमें किया है। आपत्तिपूर्ण विपत्ति वह है कि जो परिपूर्ण निर्धनताके साथ अनंत आपत्तियां लगीं रहती हैं। यह अवस्था तो पुरुषार्थके साथ दूर करनी चाहिये। परंतु दूसरी जो संपत्तिमय विपत्ति है, जिसको भाषामें "कंजूसी" कहते हैं; इस अवस्थामें मनुष्यके पास संपत्ति तो विपुल रहती है, परंतु दान न करनेके कारण घरमें विपुल धन होते हुए भी इसकी स्थिति कंगाल जैसी होती है। यह भी अवस्था दूरसे ही नमस्कार करने योग्य है। और इसीका वर्णन इस सूक्तमें किया है।

पाठक ऐसे मनुष्यकी कल्पना अपने मनमें करें कि जो बडा धनी है, परंतु अत्यंत कंजूस है, अत्यंत आवश्यक धर्मकृत्यके लिये भी दान नहीं देता है। ऐसा मनुष्य संपत्तिमय विपत्तिसे घेरा हुआ होता है, इसका वर्णन इस सूक्तके नवम और दशम मंत्रमें किया है। जो पाठक इन दोनों मंत्रोंका आशय ठीक प्रकार समझेंगे, उनको इस सूक्तका तात्पर्य समझनेमें कोई कठिनता न होगी।

नवम मंत्रमें (हिरण्यकेशी निर्ऋती) सोनेके बालोंवाली विपत्तिका वर्णन है। जहां बालबालमें सुवर्ण भरा है, ऐसी यह धनमय निर्धनता है। इसीको धन पास होते हुए निर्धन कहा जाता है। इसीका और वर्णन दशम मंत्रमें देखिये—

हिरण्यवर्णा, सुभगा, हिरण्यकशिपुः मही,
हिरण्यद्रापी, अरातिः। (मं० १०)

"सोनेके वर्णसे युक्त, उत्तम भाग्यवती, सोनेके शरीरसे युक्त, बडी और सोनेके कपडे ओढी अदानशीलता यह है।" जिस धनीके पास सोना चांदी विपुल है, अन्यान्य ऐश्वर्य जितना चाहिये उससे भी अधिक है, हरएक स्थानपर सोनेके ढेर लगे हुए हैं, घरमें कपडे वर्तन और अन्यान्य साधन भी सुवर्णके ही बने हैं, ऐसे महाधनी पुरुषके अंदर जो दान न देनेका भाव रहता है उसका नाम "धनयुक्त निर्धनता" है। निर्धन मनुष्य दान न देवे तो वह उसका न देना समर्थनीय है, क्यों कि उसके पास

S.P.S. Library
CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

देनेके लिये कुछ भी नहीं है, परंतु जो मनुष्य संपत्तिमें लदा हुआ होनेपर भी सत्कर्मके लिये उचित दान नहीं देता, उसको तो दूरसे ही (नमः अकरं। मं० १०) नमस्कार करना चाहिये। उसके पास भी जाना योग्य नहीं है। इस प्रकारकी धनमयी विपत्ति बहुत स्थानोंमें दिखाई देती है, इसी विषयमें नवम मंत्रमें कहा है—

या महती महोन्माना विश्वा आशा व्यानशे। (मं० ९)

"यह संपत्तिमयी विपत्ती बडी विशाल है और सब दिशाओंमें व्यापी है" अर्थात् कोई दिशा इससे खाली नहीं है। हरएक दिशामें इस संपत्तिमयी विपत्तिमें डूबे हुए लोग होते ही हैं। कोई गांव इससे खाली नहीं है। अपनी शक्तिसे अत्यधिक दान देनेवाले अथवा जनताकी भलाईके लिये आत्मसर्वस्वका पूर्णतया समर्पण करनेवाले उदारधी दानी महात्मा थोडे ही होते हैं। परंतु बहुत अल्पदान करनेवाले अथवा बिलकुल दान न देनेवाले लोग ही बहुत होते हैं। इसीलिये नवम मंत्रमें कहा है कि "यह दानहीना बडी विशाल और सर्वत्र उपस्थित है।" कोई नगर इससे खाली नहीं है। प्रशस्त कर्म करनेके लिये धनकी याचना करनेवाले धर्मसेवक किसी भी नगरमें जावें, वहां इस प्रकारके धनवान होते हुए भी निर्धनके समान व्यवहार करनेवाले लोग ही उनको चारों ओर दिखाई देंगे। इस कंजूसीसे क्या होता है देखिये—

कंजूसीसे गिरावट।

नग्ना बोभुवती स्वप्नया जनं सचते॥
अरातिः पुरुषस्य चित्तं आकूतिं च वर्तिर्सयन्ती॥ (मं०८)

"यह कंजूसी स्वयं नंगी रहनेके समान लोगोंकोभी नंगा बना देती है। और उनको आलसी भी बना देती है। यह कंजूसी मनुष्यके चित्त और संकल्पको मलिन कर देती है।" उदारचित्त दानी पुरुष जैसा सदा प्रसन्नचित्त रहता है, और उसको जैसे चारों ओर मित्र मिलते हैं, उस प्रकार अदानी कंजूस का नहीं है, वह सदा आलसी होता है और उसका चित्त और संकल्प मलीन होता है। उसमें कभी प्रसन्नता नहीं होती। यह कितनी हानि है, इसका विचार पाठक करें और इस कंजूसीसे बचनेका प्रयत्न करें। क्यों कि यह मनुष्यको मनुष्यत्वसेभी गिरा देती है। इसीलिये सप्तम मंत्रमें कहा है—

असमृद्धे! परः अपेहि। ते हेतिं विनयामसि।
अराते! अहं त्वा निमीवन्तीं नितुदन्तीं वेद। (मं० ७)

"हे असमृद्धि! दूर हट जा। तेरे शस्त्र हम दूर हटा देते हैं। मैं खूब जानता हूं कि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

तू लोगोंको निर्बल बनानेवाली और अन्दरसे दुःख देनेवाली है ।" वस्तुतः यह दानहीनता ऐसी कष्ट देनेवाली है इसलिये इसको हटा देना चाहिये । किसी को भी इसके आधीन नहीं होना चाहिये । क्यों कि यह निर्बलता बढानेवाली और आंतरिक कष्ट देनेवाली है । इसीसे मनुष्य गिर जाता है । इसलिये कहा है कि--

अरातिं प्रतिहर्यत । (मं० ६)

" कंजूसीका विरोध करो " । विरोध करके अपने अंदर कंजूसी न रहे ऐसी व्यवस्था करो । और अपने अंदर—

अद्य सर्वे दित्सन्तः । (मं० ६)

" आज सब ही दान देनेमें उत्सुक होवें " कोई कंजूस अपने अंदर न रहे । समाज ऐसे उदारचित्त दानी महाशयोंसे युक्त होवे और कभी कंजूसोंसे युक्त न होवे ।

हार्दिक इच्छा

हमारी हार्दिक इच्छा क्या होनी चाहिये, इस विषयमें विचार करनेके समय निम्नलिखित मंत्रभाग हमारे सन्मुख आ जाता है ।

१ यन्तः सरस्वतीं अनुमतीं भगं हवामहे । (मं० ४)

२ जुष्टां मधुमतीं वाचं अवादिषम् । (मं० ५)

३ सरस्वत्या मनोयुजा वाचा यं याचामि
तं अद्य श्रद्धा विन्दतु । (मं० ५)

" (१) हम प्रगतिका प्रयत्न करनेवाले लोग विद्या, सुमति और ऐश्वर्यको चाहते हैं । (२) हम सेवन करने योग्य मीठी बात ही बोलते हैं । (३) विद्या और सुविचार से युक्त सुसंस्कृत वाणीसे जिसके पास हम मांगते हैं, उसमें देनेकी श्रद्धा होवे " वास्तवमें हम चाहते हैं कि हम सबको विद्या, सुबुद्धि और संपत्ति प्राप्त हो । हम इसी लिये मधुर वाणीसे बोलते हैं । हम श्रेष्ठ सत्कर्म करना चाहते हैं, इन कर्मोंके लिये जिसके पास धनादिकी याचना करेंगे, उसमें देनेकी बुद्धि वसे । इस प्रकारके दानसे जनताकी भलाईके प्रशस्ततम कर्म किये जाते हैं, जिससे सबका उद्धार होगा और सबका यश बढेगा । तथा–

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

१ नः देवकृता वनिः दिवा नक्तं वर्धताम्। (मं० ३)

२ नः वनिं वाचं मा वीर्त्सीः। (मं० ६)

" देवों द्वारा बनायी हमारी यह श्रद्धामयी बुद्धि दिनरात बढे और (२) इस श्रद्धाभक्तियुक्त वाणीमें घटाव न होवे। " अर्थात् दानबुद्धि, परोपकारका भाव और आत्मसर्वस्व समर्पणकी श्रद्धा हममें स्थिर रहे और बढे। इस धर्मबुद्धिसे परस्परकी सहायता करते हुए हम उन्नतिको प्राप्त हों।

यहां तक इस सूक्तके आठ मंत्रोंका विचार हुआ। इससे पाठकों को पता लग सकता है, कि इस सूक्तका मुख्य उपदेश क्या है। अदानशीलता अथवा कंजूसीका स्तोत्र करनेका विचार इसमें नहीं है; प्रत्युत मनुष्योंको हानिकारक कंजूसीसे निकाल कर उच्चता स्थापन करनेवाले श्रद्धापूर्ण दानशूरताकी ओर ले जाना इस सूक्तको अभीष्ट है।

प्रथम मंत्रमें भी अदानशीलताको दूरसे नमन किया है। जो कंजूसी (दक्षिणां मा रक्षीः) दान देनेमें क्षति उत्पन्न नहीं करती, अर्थात् दान देनेके लिये निकाला हुआ धन भी फिर अपनी संदूकमें बंद नहीं करती, अर्थात् अपनी योग्यताके योग्य दान देती है वह बुरी नहीं है, उस संग्रहवृत्तिसे (आ भर) अपने पास धन भर दे और खजाना जिस प्रमाणसे भरेगा उस प्रमाणसे दान भी होगा। परंतु जो (अराति) कंजूसी असमृद्धि कंगालताका प्रदर्शन करती है और (वीर्त्सा) मलीनता युक्त व्यवहार कराती है, वह हानिकारक है। यह प्रथम मन्त्रका भाव मननीय है। इसका भाव यह है कि योग्यप्रमाणसे संग्रह किया जाय और उचित दानभी दिया जाय। जो कंजूसी कङ्गालके समान दिखती है वह हानिकारक है। धन पास होते हुए भी कंगालके समान व्यवहार करनेकी बुद्धि होनी बहुत हानिकारक है। मनुष्यमें चाहे बहुत औदार्य न हो, परन्तु धन होते हुए भी कंगाल जैसी वृत्ति तो रहनी नहीं चाहिये।

इस प्रकार इस सूक्तका आशय है। यद्यपि इस सूक्तमें अदानशीलताको नमन किया है, तथापि वह उस वृत्तिको दूर करनेके लिये ही है। इस दृष्टिसे विचार करनेसे इस सूक्तमें बडा गंभीर आशय है यह बात पाठकोंके मनमें आ जायगी। यह सूक्त बडा कठिन है, सहज समझमें आने योग्य सुगम नहीं है। तथापि जो पाठक इस स्पष्टीकरणें दर्शायी रीतिसे इसका मनन करेंगे, वे इस सूक्तका आशय जान सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वर्ष १०

अंक ८

क्रमांक ११६

वैदिक धर्म.

श्रावण संवत् १९८६

अगस्त सन १९२९

वैदिक तत्त्वज्ञान प्रचारक मासिक पत्र।

संपादक—श्रीपाद दामोदर सातवळेकर।

स्वाध्यायमंडल, औंध (जि. सातारा)

सत्यका सामगायन !

कथा ते अग्ने शुचयन्त आयोर्ददाशुर्वाजेभिराशुषाणाः ।
उभे यत्तोके तनये दधाना ऋतस्य सामन्रणयन्त देवाः ॥

ऋ. १ । १४७ । १

" हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप देव ! (ते आशुषाणाः शुचयन्तः) तेरे शोषक होते हुए भी शुद्धता करनेवाले किरण (वाजेभिः आयोः कथा ददाशुः) विविध अन्नों के साथ अथवा बलों के साथ आयुष्य का दान किस प्रकार करते हैं ? (यत् तोके तनये उभे दधानाः देवाः) जिस बल के योग से बालबच्चों का धारण पोषण करनेवाले देव (ऋतस्य सामन् रणयन्त) सत्यका सामगायन करके रमते हैं, वह बल हमें दे । "

अग्निमें परमात्मा का प्रकाशक और दाहक गुण है । उस अग्नि के किरण दाहक और शोषक होते हुए भी मनुष्यों को विविध अन्नादि पदार्थ देकर, उनका आयुष्य सुखमय कर के वृद्धिंगत करते हैं। उस के सामर्थ्य से समर्थ बने हुए देव अर्थात् ज्ञानी मनुष्य बालबच्चों का पालन पोषण और संवर्धन करते हुए, सत्यनिष्ठा से ईश्वर के स्तोत्र गाते हैं और जिस आनंदावस्था का अनुभव लेते हैं,वह आनंदावस्था हमें प्राप्त हो ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ईश उपनिषद्

" ईश उपनिषद् " तैयार हुआ है और ग्राहकों के पास भेजा गया है । इस १६० पृष्ठों के ग्रंथ में ५१ पृष्ठ की विस्तृत भूमिका है, इस में ईशोपनिषद् के कई सिद्धान्तों का उत्तम मनन किया है । इसके पढनेसे ईशोपनिषद् पढकर जो शंकाएं मनमें उत्पन्न हो सकती हैं, उनका निरसन हो सकता है । इसके नंतर ईशोपनिषद् का काण्वपाठ और वाजसनेयिपाठ दिया है । इसके पश्चात् ईशोपनिषद् के मंत्रों का सरल अर्थ दिया है और नीचे टिप्पणी में प्रत्येक उपदेश का अधिक स्पष्टीकरण दिया है, जिसके पढने से पाठकों के मनमें ईशोपनिषद् का गंभीर भाव सुगमता से आ सकता है । इसके पश्चात् ईशोपनिषद् के प्रत्येक मंत्र की तुलना वेद के अन्यान्य मंत्रों के उपदेश से की है । इस प्रकार ईशोपनिषद् का गंभीर अर्थ समझ में आने के लिये यह पुस्तक अत्यंत उपयोगी है ।

पाठक बहुत दिनों से इस पुस्तक का तगादा कर रहे हैं,इसलिये जो पाठक इस पुस्तक के पढने के इच्छुक हैं वे त्वरा से मंगावें ।

पुस्तक सजिल्द है । मूल्य १) डा. व्य. ।)

महाभारत ।

महाभारत " शल्यपर्व " छपकर ग्राहकों के पास गत मास में ही भेजा गया है । अब उस के बाद के " सौप्तिकपर्व " और " स्त्रीपर्व " छपकर तैयार हैं । अंक बन रहे हैं । अंक बनते ही ग्राहकों के पास रवाना किये जांयगे । आगे " शान्तिपर्व " की छपाई वेगसे चल रही है, इस का पहिला अंक तैयार हो चुका है और दूसरा छप रहा है । शांतिपर्व के चार चार अंक इकट्ठे ग्राहकों के पास भेजे जांयगे । जो लोग इस ग्रंथ को पढना चाहते हैं, वे इसके ग्राहक बन जांय । पहिले जो ग्राहक हैं वे अपना अपना आगेका चंदा शीघ्र भेज दें । इतना सस्ता और इतना बडे अक्षरों से छपा हुआ महाभारत इस समय दूसरे किसी भी स्थान में नहीं मिलेगा ।

यजुर्वेद पादसूची ।

यजुर्वेद पादसूची छपकर तैयार है । मंत्र के प्रत्येक पादका पता इस सूचीसे पाठक देख सकते हैं । इस समयतक मंत्रपादों की सूची किसी भी स्थानपर छपी नहीं है । यही पहिली है । और इस उत्तम ग्रंथ का मूल्य केवल १) रखा है । शीघ्र मंगवाइये ।

यजुर्वेद सर्वानुक्रमसूत्र ।

यजुर्वेद पढनेवालों के लिये यह सर्वानुक्रम एक अत्यंत उपयोगी ग्रंथ है। इस से मंत्र के ऋषि-देवता-छंद का अतिशीघ्र पता लग सकता है । मंत्रका ऋषि देवता छंद निश्चय करने के लिये इस प्राचीन ग्रंथ के समान दूसरा कोई ग्रंथ नहीं है । संस्कृत न जाननेवाला भी इस से लाभ उठा सकता है, इस प्रकार अति सुगम रीतिसे इसका मुद्रण किया है ।

निवेदक,
प्रबंधकर्ता-स्वाध्याय मंडल
औंध (जि. सातारा)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अ-हिन्दू की शुद्धि ।

(लेखांक २)

पिछले लेखमें दिखलाया गया कि जो लोग पहले हिन्दू ही थे परन्तु भ्रष्ट होकर दूसरे पंथमें गये थे, उन लोगों की शुद्धि शास्त्र की बतलाई हुई मर्यादा के अनुसार कर सकते हैं। यह भी दिखलाया गया कि इस प्रकार की शुद्धि की मर्यादा कितनी बडी है। ऐसे पर मत में गये हुए हिन्दुओं की वस्ती केवल हिन्दुस्थान ही में नहीं है किंतु अफगानिस्तान से लेकर दक्षिण रूस तक और कश्मीर से लेकर उत्तरी तिब्बत तक और ब्रह्मा से लेकर पश्चिमी चीन तक किस प्रकार फैली है सोभी प्राचीन अवशेषों में से जो उपलब्ध हैं उनके आधार पर संक्षेप में दिखलाया।

यह सब दिखलाते समय प्रसंग से यह भी कहा गया था कि इस पृथ्वी में 'धर्म' एक ही है और वह आर्य धर्म या हिन्दूधर्म ही है अन्य सब 'मत' हैं। धर्म के अंतर्गत मत हो सकते हैं परन्तु मतों में धर्म नहीं रह सकता। इस सनातन नियम के अनुसार अन्य मतों के लोग वैदिक धर्म में आ सकते हैं, परन्तु एकबार जिसने वैदिक धर्मी कह कर जन्म लिया उसका धर्मान्तर होही नहीं सकता। ये नियम भी पिछले लेख में बतलाये गए।

इस लेख में यही देखना है कि जन्मतः जो अन्य मत में है वह हिन्दूधर्म में आ सकता है या नहीं आसकता। यह देखने के लिए हमें प्रथम आर्यधर्म के आदि काल की ओर दृष्टि डालनी चाहिए।

ब्राह्मण धर्म।

हिन्दूधर्म को आजकल (Brahmanism) ब्राह्मण धर्म कहते हैं। इस धर्म को ब्राह्मण धर्म क्यों कहते हैं, वह किस समय किसका धर्म था, वह धर्म आज किस रूपमें है आदि मनोरंजक इतिहास अत्यंत बोधप्रद है। आज के विषय प्रतिपादन में इस विषय का संबंध विशेष है, इससे इस ब्राह्मण धर्म का कुछ स्वरूप यहां दर्शा देना आवश्यक है।

गौर वर्ण के ब्राह्मण।

मेरु पर्वत पर ब्रह्मसभा थी, इस सभा के सभापति ब्रह्मा और सदस्य ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण थे। वे जिस धर्म का आचरण करते थे उसका नाम "ब्रह्म-धर्म या ब्राह्मण-धर्म" है। यह वर्णन विष्णु पुराण में विस्तार से और अन्य अनेक पुराणों में संक्षेप से किया गया है। मेरु पर्वत पर छः माह का दिन और उतनी ही बडी रात रहती है। रात्रि के समय भी वहाँ पर एक प्रकार का विलक्षण प्रकाश पडता है। यह वर्णन महाभारत में भी है। इस भरतखण्ड में आर्यों के आजाने के पश्चात् भी यहाँ के ऋषि मेरुपर्वत तक जाते थे और वहां के ऋषि यहां आते थे। इससे स्पष्ट है कि प्राचीन काल में मेरुपर्वत तक अच्छा आवागमन था।

मेरु पर्वत यह पृथ्वी का उत्तर ध्रुव ही है। इस संबंध में प्राचीन और अर्वाचीन विद्वानों में यत्किंचित् भी मतभेद नहीं है। इस उत्तर ध्रुव के प्रदेश में 'ब्रह्म' नाम की जाति रहती थी। उसके अध्यक्ष को "ब्रह्म-देव=ब्रह्मजाति के लोगों का मुखिया" कहते थे। उनके पास जो परंपरागत ज्ञान था उसे भी 'ब्रह्म' कहते थे। ये लोग उत्तर ध्रुव की ओर के जिस भूभाग में रहते थे उसे 'ब्रह्म लोक' कहते थे। [इस समय 'लोक' शब्द देश वा राष्ट्र के अर्थ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

में आता था जैसे 'देव लोक' अर्थात् देव जाति के लोगों के रहने का देश, त्रिविष्टप अथवा आजकल का तिब्बत ।]

लोकमान्य तिलकजीने निश्चित किया है कि इस उत्तर ध्रुव के प्रदेशमें आर्यों की बस्ती हिमयुग के पूर्व अर्थात् करीब आठ हजार वर्ष पहले थी । अन्य कई विद्वान यह काल और भी कई हजार वर्ष पहले ले जाते हैं और यूरोपीयन लोग उसे इस ओर लाते हैं । हमारा मत है कि ब्रह्म सभा की उन्नति का समय कमसे कम चालीस हजार वर्ष पहले का होना चाहिए । क्यों कि पुराणों में और ब्राह्मण ग्रंथों में भी उल्लेख है कि स्मृति नष्ट हुए प्राचीन कालमें 'ब्रह्म सभा' थी । इससे स्पष्ट है कि इस सभा की स्मृति पांच छः हजार वर्षोंके पूर्व ही नष्ट हो चुकी थी। तथापि इस जाति के अस्तित्व के उल्लेख सर्वत्र स्पष्ट मिलते हैं । इससे निश्चय है कि 'ब्रह्म' नाम की जाति उत्तर ध्रुव की ओर अवश्य ही थी ।

ब्रह्मदेव की संतति, उसकी सभाके सदस्य उनका आना-जाना और भलेबुरे काम इन सब बातोंका। इतिहास ब्राह्मणों और पुराणों में विस्तार से वर्णन किया गया है । अतः यह जाति अति प्राचीन काल में मेरुपर्वत पर निःसंदेह थी। इसका जो इतिहास उपलब्ध है उससे निम्न लिखित हाल मालूम होता है–

१ ब्रह्म–इस जाति का मूल नाम । इन्हीं का आगे चल कर 'ब्राह्मण' नाम हुआ ।

२ ब्रह्म-देव– इस जाति की सभा का अध्यक्ष, इसीका दूसरा नाम ब्रह्मा है ।

३ ब्रह्मज्ञान–जो ज्ञान इन लोगों के पास परंपरासे संगृहीत किया हुआ था वह । ब्रह्म शब्द 'मंत्र' वेदमंत्र' के अर्थ में आता है इसका भी कारण यही है ।

४ ब्रह्म-लोक–इस जाति के रहने का प्रदेश, उत्तर ध्रुव ।

'ब्रह्म' शब्द असली में मंत्र अथवा ज्ञान वाचक है । वे मंत्र इन लोगों के पास थे इससे इन्हें 'ब्रह्म या ब्राह्मण' कहते थे । इनका वर्णन कई ग्रंथों मिलता है–

न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत् ।
महाभारत शां० १८८

'पहले सब जगत् एक ही ब्राह्मण वर्ण का था' ।

इसी प्रकार–

ब्रह्म वा इदमग्र आसीदेकमेव तदेकं सन्न व्यभवत्
तच्छ्रेयो रूपमत्यसृजत क्षत्रम्॥बृ० उप० १।४।१०

"आरंभ में ब्रह्म नाम की एकही जाति थी, वह एकही थी इससे वह बढने न लगी। आगे चलकर श्रेयरूप क्षत्रिय नामकी दूसरी जाती उत्पन्न हुई । आगे–

स नैव व्यभवत्, स विशमसृजत ॥१२॥
स नैव व्यभवत् स शौद्रं वर्णमसृजत ॥ १३ ॥
बृ० उप० १।४

"आगे चल कर वैश्य हुआ और तदनंतर शूद्र-वर्ण हुआ ।"

बृहदारण्यक उपनिषद के इस वचन में भी यही बात स्पष्ट रीतिसे बतलाई है कि एक समय ऐसा था जब कि केवल ब्राह्मण वर्ण ही था अन्य कोई भी वर्ण नहीं था । आगे के कालमें अगले वर्ण हुए अथवा इस ब्राह्मण धर्म में लिए गए । परन्तु यह बात न भूलना चाहिए कि ये बातें कालांतरमें हुई थीं ।

जिस मेरुपर्वतके पासकी वस्तीके कालमें एकही ब्रह्म या ब्राह्मण वर्ण था, उस ब्राह्मणवर्णका रंग शुद्ध गोरा था । यह गौर वर्ण ब्राह्मण जाति में अब भी है । काश्मीरी ब्राह्मणों का गौरवर्ण अब भी है। गौड ब्राह्मण पहले के गौर ब्राह्मण हैं। इनमें भी कुछ अंशमें यह वर्ण है । मद्रास की ओर यद्यपि कृष्ण वर्ण प्रमुख है तब भी ऐयार, ऐयंगार इन जातिके ब्राह्मणोंमें अब भी ब्राह्मण जाति का गौर वर्ण बहुत कुछ दिख पडता है । ब्राह्मणों का वर्ण श्वेत, क्षत्रियोंका रक्त वर्ण, वैश्योंका पीत वर्ण और शूद्रोंका कृष्ण वर्ण था। इस प्रकार का उल्लेख सब धर्मशास्त्रग्रंथों में है । इस वर्ण के लोग किस भूभाग में हैं यह देखें, तो मालूम हो जावेगा कि आर्यों के चातुर्वर्ण्य के संघमें ये चार वर्ण किस भू-प्रदेश से आये । ऊपर बतलाया जा चुका है कि उत्तर ध्रुव की ओर असली में गौरवर्ण ब्राह्मण

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जाति के आर्य प्रारंभमें रहते थे। आर्यधर्ममें सबके पहले से यह जाति थी किंवा सच तो यह है कि इस जाति के पास आरंभ में यह धर्म था; इसी लिए ब्रह्म जातिके पासवाले धर्म को ब्राह्मणधर्म कहते थे। इस धर्मका अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, पवित्रता, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर भक्ति यह दशविध धर्मतत्त्व प्रसिद्ध है। ब्राह्मणों का असली असली धर्म इस प्रकार था कि अहिंसा अथवा निर्वैर भाव ही अंतिम लक्ष्य है और इसके प्राप्त करने के लिए सब प्रवृत्ति और शमदम आदि साधन हैं। इस प्रकार का यह असली ब्राह्मण धर्म अब भी, जैसा तब था वैसा ही व्यवहारमें न भी हुआ तब भी, सब लोगों के मानने में है।

इस उत्तर ध्रुव के प्रदेश में दूसरी कोई भी अन्य जाति न थी और एक ही गौरवर्ण ब्राह्मण जाति थी, इससे इसका वर्णन-

" एकवर्णमिदं पूर्वं आसीद्विश्वं युधिष्ठिर "

" पहले एकही वर्ण था " यही बात इतिहास, पुराण कहते आये हैं। यह एकही गौर वर्ण के ब्राह्मणों की जाति कालान्तर में अपने उपनिवेश बढाने लगी और जब वह उत्तर प्रदेश से दक्षिण भूभाग की ओर फैलने लगी तब इस जातिका संबंध भिन्न भिन्न वर्णों के लोगोंसे आने लगा; और जैसे जैसे संबंध आने लगा वैसे वैसे अन्य वर्ण के लोग इस ब्राह्मणधर्म में प्रविष्ट होने लगे।

लाल वर्ण के क्षत्रिय।

क्षत्रिय असल में रक्त वर्ण के अर्थात् लाल रंग के लोग थे। उत्तर ध्रुवसे नीचे उतरते ही मध्य रशिया का प्रदेश इस ओर और अमेरिका प्रदेश उस ओर लगता है। इस भू-भाग में लाल रंगके लोग निवास करते थे। श्वेत वर्ण के ब्रह्म जातिके लोगों का लाल वर्ण के क्षत्रिय जाति के लोगों से यहां प्रथम संबंध हुआ। इस के पूर्व में केवल " ब्रह्म " जाति का नाम आता था, अब " ब्रह्म क्षत्र " इन द्वैवर्णियोंका नाम आने लगा। प्रथम क्षत्र जाति के लोग ब्राह्मण धर्म में न थे, इस काल के अनंतर वे इसमें प्रविष्ट हुए।

"क्षद् वा क्षत्" धातु प्रथम "चूर्ण करना, काटना, घात करना, हिंसा करना" इन अर्थोंमें उपयोग की जाती थी। काट छाट करनेवाला, घातपात करनेवाला, हिंसा करनेवाला सोही क्षत्र है। यही रक्त-वर्ण के क्षत्र नामक लोगोंका बर्ताव उस समय प्रसिद्ध था। शांत, अहिंसावादी गोरी ब्रह्म जाति-का अ-शांत और काटछाट करनेवाली लाल क्षत्र जातिसे संबंध आनेपर एक दूसरे का मुकाबिला कैसे हुआ होगा वह पुराणों में प्रसिद्ध है और वह वाचक कल्पना से सहज ही जान सकते हैं। बहुत मारपीट, काटछाट, और रक्तपात होने के बाद इन दोनों जातियों में समझौता हुआ और ब्रह्म क्षत्रों ने एकदिल से बरतनेका निश्चय किया--

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना।
यजु० २०। २५

" जिस देश में ब्रह्म और क्षत्र लोग एक दिलसे बरतते हैं वह देश पुण्यकारक है।" यही सब लोगों की धारणा हुई। इस समय के पहले ही क्षत्र वर्ण ब्राह्मण धर्ममें प्रविष्ट होगया था। क्षत्रिय मारकाट शत्रुके प्रदेश में करें, ब्रह्म-क्षत्रोंके देशमें न करें और वे ब्राह्मण धर्मका अंतिम लक्ष्य जो अहिंसा है उसे वे लोग केवल तत्त्व (Creed) कहकर मानलें; हिंसा केवल युद्ध के समय की जाय, यही दोनों जातियों-का समझौता था। रक्तवर्ण की क्षत्र जाति इस प्रकार तत्वतः ब्राह्मण धर्म स्वीकार कर इस धर्म में शामिल हुई। ब्रह्म नामके लोगोंने अपने तत्व का प्रभाव रक्त वर्ण के लोगोंपर डाला और उन्हे अपने धर्म में शामिल कर लिया। ध्यान रखना चाहिए कि ब्राह्मण धर्म में क्षत्र जातिका प्रवेश संघशः हुआ है। न कि व्यक्तिशः।

जिस प्रकार मुसलमानी या ईसाई मत में जब किसी का प्रवेश होता है तब उसे अपने पूर्व-मत को बिलकुल ही भूल जाना पडता है वैसा हाल ब्राह्मण धर्म में शामिल होने पर क्षात्र लोगोंका नहीं किया गया। इस धर्म प्रवेश का स्वरूप ऐसा था कि अंतिम तत्त्व मानकर इस धर्म में रहें, शेष बर्ताव के संबंध में हरएकको पूर्ण स्वतंत्रता रहे। इससे ब्रह्म और क्षत्र

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ये दो जातियां अपने अपने आचार विचारों में पूर्ण स्वतंत्र होने पर भी, एक ही धर्म में परस्पर मेल से रहने लगीं। क्षत्र लोगों को यह बिलकुल ही न मालूम हुआ कि ब्रह्मधर्म में प्रवेश करने के कारण हमें कुछ छोडना पडा। भीतर प्रविष्ट होनेवालों को पूर्ण स्वतंत्रता थी! बंधन केवल धर्म की सर्व साधारण अहिंसाके तत्वकी सनातन बात के संबंध में ही था और वह भी सर्व साधारण बंधन था। अ-हिंदूको हिंदू बनाने की ब्राह्मण धर्म की यह रीति देखिये और आज जो ईसाई आदि अन्य मत-प्रवर्तक लोग दूसरोंको अपने निजके धर्म में लाते हैं उनकी रीति देखिये। तब आपके ध्यान में ब्राह्मण धर्म की उदारता और आधुनिक ईसाई आदि की अनुदारता स्पष्ट रीतिसे तुरंत ही आ जावेगी।

इस प्रकार रक्तवर्ण के लोगों को ब्राह्मण धर्म के गौरवर्ण ब्राह्मजातिने अपने धर्म में मिला लिया। तब इन द्वैवर्णिकों का संघिकरण हुआ। कई शतकों तक इस धर्म में ये दोही वर्ण थे। इनके उपनिवेश बढने लगे और वे अधिकाधिक प्रदेश आक्रमण करने लगे।

पीत वर्ण के वैश्य।

पीतवर्ण के लोगों का वह प्रदेश है जो मंगोलिया, तिब्बत, चीन, जपान, नेपाल, भूतान, ब्रह्मा आदि भू-स्थलों से निर्दिष्ट होता है। यहां पीत वर्ण के लोग जैसे पहले रहते थे वैसे अब भी रहते हैं। जपानी और चिनी लोग जैसे साफ पीले रंग के दिखते हैं वैसे ब्रह्मी भी दिखाई देते हैं। ये पीतवर्ण के लोग मंगोलिया से शुरू होते हैं।

ब्रह्म-क्षत्र लोग जब बस्तियां बढाते बढाते पीतवर्ण के लोगों के प्रदेश तक पहुंच गए, तब इस संघमें तीसरा वर्ण प्रविष्ट हुआ। इन लोगों की पूर्वोक्त द्वैवर्णिकों से लडाइयां होने का उल्लेख बिलकुल नहीं है, इससे कह सकते हैं कि यह पीतवर्ण का संघ आर्यसंघमें खुशी से प्रविष्ट हुआ होगा। इसप्रकार द्विवर्णी आर्यों के त्रिवर्णिक आर्य बन गए और इस काल के पश्चात् ये त्रैवर्णिक आर्य अपने दिग्विजय एवं उपनिवेश-वृद्धि का कार्यक्रम निश्चित करने लगे। बहुत ही अधिक शतकोंतक ये त्रैवर्णिक आर्य त्रिवर्णात्मक ही रहे और बहुत काल बीत जानेपर चौथे कृष्णवर्ण के लोगों से उनका संबंध भारतवर्ष में आनेपर हुआ।

कृष्ण वर्ण के शूद्र।

त्रैवर्णिक आर्य हिमालय में से भारतवर्ष में आये और आधे से अधिक देश व्यापलेनेपर हजारों वर्षों के बाद उनका संबंध कृष्णवर्ण के द्रविड लोगों से हुआ। उन लोगों को आर्यधर्म में प्रविष्ट कर लेने के बहुत समय बाद चातुर्वर्ण्य की संघठना हुई और आज के चातुर्वर्ण्य का अस्तित्व आरंभ हुआ।

चार भिन्न सभ्यताएं।

ऊपर के संक्षिप्त विवेचन से वाचकों को विदित हुआ होगा कि क्षत्र, विट्, और शूद्र इन तीन भिन्न देशोंके और भिन्न भिन्न रंगों के और एक दूसरे से आचार विचारों में विसदृश लोगों को एक ब्रह्म नामक जातिने अपने ब्राह्म धर्म में ले लिया और उन्हे अपनी अपनी जाति के अंतर्गत व्यवहार में पूर्ण स्वतंत्रता देकर ब्राह्मण धर्म के मुख्य सनातन धर्म अहिंसादि तत्त्वों का भर बंधन उनपर जारी रखा। और इस प्रकार उन्हे अपना लिया। इस विधि से ब्राह्मधर्म के बाहर के भिन्न जाति की और भिन्न सभ्यता की तीन बडी बडी जातियों को ब्राह्म धर्म में सदा के लिए प्रविष्ट कर लिया। यहां भी यह प्रवेश व्यक्तिशः न था, संघशः था।

चार रंगों के लोग यद्यपि इस रीति से एकत्र हुए तब भी उनकी निज की रहनसहन पूर्व के सदृश ही थी। प्रत्येक के विवाह आदि संस्कार पहले की उनकी पुरानी पद्धति के अनुसार ही होते थे, अन्य व्यवहार भी वैसे ही वे करते थे। जितने सामान्य बंधन थे उतनेही उन लोगों को चातुर्वर्ण्य के संघ में आनेपर मानने पडते थे।

गौरवर्ण के ब्राह्मण ब्रह्म नाम के मंत्र समुदाय का पठन पाठन करते थे, यज्ञयाग करते थे, कंदमूल भक्षण करते थे और अकृष्टपच्य अन्न खाते थे। वे पर्णकुटी में रहते थे और धनदौलत का संग्रह नहीं करते थे। भारतवर्ष में आनेपर तथा जहां

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

तहां आर्यों के राज्य स्थिर हो चुकने पर भी ब्राह्मण लोग शहरों में अधिक न रहते थे। वृक्ष की खोह में, गुफा में, नदीके किनारे पर्णकुटी में रहना, अध्यात्म चिंतन करना, यज्ञयाग अथवा शमदमादि अनुष्ठान करना स्थावर जायदाद बिलकुल न बढाना और कंदमूल पर उदर निर्वाह करना यही उनका व्यवहार था। जहांतक बन सके याचना न करने की ब्राह्मणों की वृत्ति थी और शहरों में कायम निवास न होनेसे राजा के शासनाधिकार में ब्राह्मण जाति नहीं आई थी। इस कारण उनपर कोई कर नहीं लगाया जाता था और यदि कर लगाया भी जाता तो वे लोग दे भी न सकते। राजा के कर से ब्राह्मणों के अलिप्त रहने का यही असली कारण था। आजकल कई लोगों को उसमें पक्षपात दिखता है इसका कारण उनका अज्ञान मात्र है।

रक्तवर्ण के क्षत्रिय लोग शूरवीर थे, इससे छोटे बडे राज्य स्थापन कर वे लोग राजा, महाराजा, सरदार आदि बनने लगे। शत्रू के प्रदेशों को जीतना, वहां जो धन मिलेगा उसे लेआना और संपत्ति का उपभोग करना ही उनका धंदा हो गया।

पीतवर्ण के वैश्य पहले हीसे खेती करके गायबैल पालते थे। पहले हीसे घरद्वार बनाकर रहनेवाले ये ही लोग थे। क्षत्रियों के राज्य स्थापित हुए वे भी वैश्य लोगों के ब्राह्मणधर्म में शामिल हो जाने के बाद। घरद्वार बनाकर, खेती-किसानी कर, और धन इकठ्ठा कर रहनेवाले अर्थात् राजा को कर देने के लिए बिलकुल योग्य यदि कोई थे तो वे वैश्य ही थे। इसीसे उन्हे 'विश्' याने 'प्रजा' कहते थे। क्षत्रिय लोग राजे या सरदार थे अतः करों से अलिप्त थे, ब्राह्मण वनवासी, निवृत्तिमार्गी अपरिग्रही थे अतएव अलिप्त थे। इससे राजा की प्रजा बनकर रहने के लिए अकेले वैश्य ही योग्य थे। इसीसे जो जो कर लगाये जाते वे वैश्योंपर ही लगाये जाते थे, और इस प्रकार वैश्योंसे प्राप्त होने वाले द्रव्यपर क्षत्रिय लोग राज्य करते थे।

यद्यपि कृष्ण वर्णके शूद्र इस धर्म में प्रविष्ट हुए थे तथापि ब्राह्मणों की कठिन तपस्या में जाना उनके लिए असंभव था; क्षत्रिय लोग उन्हे सरदार बनाने योग्य उदार न थे, इससे कारीगरी के धंदे करना अथवा मजदूरी करना इससे अधिक श्रेष्ठ स्थान उन के हिस्से में आने की कोई अशा ही न थी।

इस प्रकार ये चार वर्ण ब्राह्मणधर्म में इकठ्ठे हुए। इसके बाद इस धर्म को आर्यधर्म, सनातन धर्म आदि नाम प्राप्त हुए या यों कहो कि प्रचारमें आये और आधुनिक काल में उसे हिंदूधर्म यह नाम प्राप्त हुआ। आधुनिक काल यद्यपि कहा गया है तब भी उसे बहुत समय बीत चुका है। क्यों कि तंत्र ग्रंथों में हिन्दू शब्द का प्रयोग आया है और इस शब्द की व्युत्पत्ति भी इस प्रकार की गई है—

हिंसया दूयते यस्मात् हिंदुरित्यभिधीयते ॥

मेरु तंत्र

"हिंसा के कारण जिसे दुःख होता है उसे हिंदू कहते हैं।" तंत्रग्रंथों के काल के पूर्व ही इस धर्म को हिंदू धर्म नाम प्राप्त हो चुका था। इसीसे इस ग्रंथ में हिंदूशब्द की व्युत्पत्ति दी गई है।

आज ईसाई या मुसलमानी मत-वाले लोग दूसरों को अपने धर्म में ले रहे हैं। पर इनके इस प्रचारमें उदारता का गंध भी नहीं है। जो हिंदू इनके मतमें जाता है उसे पहले का सब कुछ भूल जाना पडता है और उनका मत जैसा है वैसा ही मानना पडता है। इनमें किसी को मत-स्वातंत्र्य नहीं है। जब इनके मतमें प्रवेश हो चुकता है तब सब संस्कार उनकी निश्चित रीतिके अनुसार ही सबको करने पडते हैं। इनमें निजके जो मतभेद होते हैं सो हैं पर कोई भी हिंदू अपनी उपास्य देवता कायम रखकर उनके धर्म में प्रवेश नहीं कर सकता। इस प्रकार की परतंत्रता ब्राह्मणधर्म में न कभी थी और न अब है। क्षत्र, विश् और शूद्र ये स्वतंत्र जातियां ब्राह्मणधर्म में आई परंतु उन्हें पहले के आचार विचार न छोडना पडे। इस धर्म में प्रविष्ट होने पर भी ये तीन जातियां अपने विवाहादि संस्कार तथा अन्य व्यवहार अपनी पूर्व परंपरा के अनुसार करने को पूर्ण स्वतंत्र थीं और अब भी हैं। केवल सामान्य धर्म के बंधन ही सबको समानता से मानने पडते थे और राष्ट्रीय उपास्यों का भजन पूजन करना पडता था। तबभी यदि कोई कहे कि मैं अमुक देव का भजन न करूंगा तो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उसे वैसा करने के लिए हिंदू धर्म में रहकर भी पूर्ण स्वतंत्रता थी और अब है। यह बात अन्य किसी धर्म में नहीं है। यह हिंदू धर्म की उदारता है।

विवाहों में ही देखिए। ब्राह्मण अपने विवाह ब्राह्म-पद्धति से ही पहले के समान अब तक करते हैं; कन्यादान और गोप्रदान करने से ब्राह्मणों का विवाह होता है। क्षत्रिय लोग पांडवों के समय तक लडकियोंको भगा ले जाकर ही विवाह करते थे,गांधर्व पद्धति से विवाह करते थे और मार पीट कर पैशाच पद्धति से विवाह करते थे। आर्य धर्म में क्षत्रियों का प्रवेश हो जाने पर भी उन्होने अपनी जंगली रीतियां छोडी न थीं और ब्राह्मणों ने अपनी पद्धती उनपर लादी नथी। इसी प्रकार वैश्य शूद्र भी अंतर्व्यवस्थामें पूर्ण स्वतंत्र थे। एक ही स्थानमें रहनेके कारण ब्राह्मणों की रीतिरस्मों के अच्छापन का दूसरोंपर परिणाम होने लगा। इसीसे धीरे धीरे ब्राह्मणोंकी अच्छी रीतियां क्षत्रिय स्वीकार कर लेते थे। परंतु ब्राह्मणोंके हाथों में धार्मिक अधिकारों के रहते भी उन्होंने अपनी रीतियां दूसरों पर जबरन न लादीं। इसी प्रकार जबजब जिन जिन जातियोंका प्रवेश हिंदूधर्म में हुआ, तब तब उन्हे अंतर्गत स्वतंत्रता देकर आर्योंने अपनाया था। यह हिंदू धर्म की पद्धति जैसे आद्य काल में प्रचलित थी वैसे ही वह मध्य काल में भी प्रचलित थी। यह बात ध्यान देने योग्य है। जिस प्रकार अनेक छोटे छोटे स्वतंत्र राज्य मिलकर एक साम्राज्य बनता है उसी प्रकार यह उदार वैदिक धर्म है। जैसे अन्य सब छोटे बडे राज्यों को नष्ट कर तथा उन्हे सदा के लिए गुलाम बनाकर कोई साम्राज्य बनता है ठीक उसी प्रकार ईसाई और मुसलमानी धर्मों का हाल है। यह बात वाचक अच्छी प्रकार देखें। तब उनकी समझ में आवेगा कि प्राचीन आर्यों की धर्म प्रसार की पद्धति और दूसरों को अपने धर्म में लेने की पद्धति किस प्रकार उदारता की थी। आर्य लोग धर्म प्रचार करते थे; परंतु स्वत्व का विकास होने देने की गरज से प्रत्येक जाति को पूर्ण स्वतंत्रता देते थे और सौम्यता से अपनी सभ्यता का प्रभाव उन पर डालते थे।

आर्यों के कई धर्मवीर दूसरे देशों में जाकर वहां ब्राह्मणधर्म का प्रसार करते थे और अन्य देशों के लोगों को भी अपने चातुर्वर्ण्य में लेते थे। पुराणों में इस विषयमें भी बहुत हाल मिलता है। देखिए

सरस्वत्याज्ञया कण्वो मिश्रदेशमुपाययौ।
म्लेच्छान्संस्कृतमाभाष्य तदा दशसहस्रकान्॥१६॥
वशीकृत्य स्वयं प्राप्तो ब्रह्मावर्ते महोत्तमे।
ते सर्वे तपसा देवीं तुष्टुवुश्च सरस्वतीम्॥१७॥
सपत्नीकांश्च तान्म्लेच्छान् शूद्रवर्णाय चाकरोत्१८
कारुवृत्तिकराः सर्वे बभूवुर्बहु पुत्रकाः।
द्विसहस्रस्तदा तेषां मध्ये वैश्या बभूविरे॥१९॥
तदा प्रसन्नो भगवान्कण्वो वेदविदांवरः॥२१॥
भविष्यपुराण प्रतिसर्ग अ. २१

" सरस्वती की आज्ञासे कण्व ऋषि मिश्र (ईजिप्त) देशमें गये और दस हजार म्लेंच्छों को संस्कृत भाषा सिखलाकर तथा उन्हे वश करके उनके साथ ब्रम्हावर्त देश को वापिस आए। उन सब तपसे सरस्वती देवी की स्तुति की। उन सपत्नीक म्लेच्छों को शूद्रों के वर्ग में प्रविष्ट किया। वे सब शूद्र बनकर कारीगरी से अपना निर्वाह करने लगे। आगे चलकर उन्हे कई पुत्र हुए। उनमें से दो हजार कालान्तरसे वैश्यवर्ण में प्रविष्ट हुए। "

यह वृत्तांत भविष्य पुराण में है और वह देखने योग्य है। अन्य देशों के अ-हिंदुओं को जब हिंदू बना लेते हैं तब उन्हे प्रथम कौनसा वर्ण मिलता है यह बात इससे मालूम होती है। ईजिप्त देश में कण्व ऋषि गए और वहां एक दौरे ही में उन्होंने दस हजार हब्शियों को शुध्द करके हिंदू बनाया। उन्हे प्रथम शूद्र वर्ण में दाखिल किया पश्चात् उनके वंशजों में से कुछ वैश्य वर्ण में आये और इस प्रकार वे इस देश में हिंदू बनकर रहने लगे। यदि हब्शि लोग हिन्दू धर्म में प्रवेश कर सकते हैं तब दूसरे प्रवेश क्यों न कर सकेंगे? इन कण्व ऋषिके धर्म प्रचार के समान ही अगस्ति ऋषि के धर्मप्रचार का वृत्तांत भी बडा बोधप्रद प्रसिद्ध है।

इसी के समान श्रीकृष्णचैतन्य, रामानंदस्वामी, निम्बादित्य आदि वैष्णव संप्रदाय के आचार्योंने जो म्लेच्छों की शुद्धि इस देशमें की और उन्हे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वैष्णव संप्रदाय में शामिल कर लिया वह सब वृत्तांत भविष्य पुराण में इसी प्रतिसर्ग पर्व में देखने योग्य है। वैष्णवोंने शुद्धि का कार्य बडी तेजी से और अध्यवसाय से चलाया था। अल्प अवधिमें ही उन्होंने उस प्राचीन कालमें लाखों की शुद्धि की। वह सब वृत्तांत भारी बोधप्रद है। जो उसे देखना चाहते हैं वे उसे भविष्य महापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में देख सकते हैं। कण्व ऋषि के धर्म प्रचार में विदेशी लोगों को आर्य धर्म में प्रविष्ट करने का उल्लेख है और वैष्णव आचार्यों द्वारा भारतवर्ष के ही यवन और म्लेंच्छों को शुद्ध कर लेने का उल्लेख है। तात्पर्य यही कि अपने पुराणों से दोनों रीतियों से अपने धर्म की दीक्षा दूसरों को देने की बात सिद्ध होती है। अतः इस संबंध में किसी को भी अब शंका करने का कोई कारण नहीं है।

बुद्धोत्तर काल में श्री. शंकराचार्य और अन्य आचार्यों ने बौद्धधर्मावलंबियों को पुनः हिंदूधर्म में लिया। वह तो एक प्रचंड कार्य ही था। हजारों लोगों की बृहत् सभा होती थी और उसमें ईश्वर के नाम से घण्टा नाद किया जाता था। जितने लोग घण्टानाद सुन लेते थे वे हिंदू हो जाते थे। इन आचार्यों में ऐसी प्रचण्ड शक्ति थी। इसीसे तो वे बिलकुल थोडे समयमें सब बौद्ध धर्मीयों को हिंदू बना सके। श्री. शंकराचार्य के पूर्व प्रायः सब भारतवर्ष बौद्धधर्मियों द्वारा व्याप्त था। सनातन धर्म के अनुयायी तो बहुत थोडे बचे थे। बौद्ध धर्म में म्लेंच्छ, यवन, ग्रीक आदि विदेशी लोग भी संमिलित थे। अतएव शुद्धिकृतों में कौन किस जाति का कैसे शुद्ध हुआ सो निःसंशय रीतिसे समझने का कोई उपाय न था। क्यों कि बौद्ध धर्म में शामिल हो जानेपर रोटीबेटी व्यवहार का कोई परहेज नहीं रहता था। म्लेंच्छ यवन और हिन्दू में बौद्ध धर्म में प्रवेश कर चुकने पर कोई भेद भाव नहीं रहता था। इससे संभव है कि शुद्धिकृतों में बहुतसे विदेशी भी हिन्दू धर्म में प्रविष्ट हुए हों। श्रीमत् शंकराचार्य और अन्य आचार्यों द्वारा की गई शुद्धियों का इतिहास इस प्रकार है। बौद्धधर्ममय बने हुए भारतवर्ष को इन आचार्यों ने पुनः हिन्दुधर्म-मय बना दिया तब बौद्धधर्म में जो कोई प्रविष्ट हुए थे वे भी उस संघके साथ हिन्दूधर्म में आए। क्यों कि उस समय व्यक्तिशः शुद्धि करने के लिए समय ही न था। इस समय की सब शुद्धियां संघशः हुई थीं और जातियों के गुट्टके गुट्ट शुद्ध किए गए। सारांश, इतिहास के पूर्वकाल की शुद्धि देखिए या पुराण काल की शुद्धि देखिए; उनमें यही दिखेगा कि हिन्दू धर्म के आचार्योंने एक एक की अकले की शुद्धि करने में कभी भी समय फजूल न खर्च किया। उन्होंने जातियों को ही शुद्ध कर अपने धर्म में मिलाईं। कण्व ऋषिने दस हजार हब्शियों को इकट्ठे शुद्ध किया और वह जाति हिन्दूधर्ममें प्रविष्ट हुई तथा जाति ही रही आई। इस प्रकार अनेक उदाहरण पुराणों से दिखाए जा सकते हैं।

एकदम जातियां यदि अपने धर्ममें प्रवेश करने लगें और अपनी जाति बांधकर रहें तो कोई भी बुरा न मानेगा। हिंदुस्थान में अनेक जातियों के जो अनेक कारण हैं उनमेंसे दो कारण प्रमुख हैं कि जातिशः शुद्धि और शुद्धिकृतों को अंतर्गत आचरण की पूर्ण स्वतंत्रता। प्रचलित जातियों का संबंध इस शुद्धि से आनेवाला है। इसलिए इस बात का भी संक्षेप से विचार करना आवश्यक है।

भिन्न सभ्यताके लोग।

पहले बतलाया गया है कि गौरवर्ण के ब्राम्हण, रक्त वर्ण के क्षत्रिय, पीतवर्ण के वैश्य और कृष्णवर्ण के शूद्र ये चारों भिन्न देश के भिन्न लोग थे तब भी वे सब एक धर्म में आये और मेल से रहने लगे। तथापि ब्राह्मण पहले ही इस धर्म में थे और वे इस धर्म के आधारस्तंभ ही थे इससे उनका मान सर्व प्रथम माना जाता था। तदनंतर जिस क्रमसे दूसरे वर्ण प्रविष्ट हुए उसी क्रमसे उनका दर्जा माना गया। इससे मालूम होगा कि पुराने पनके अनुसार ही वर्णों का क्रम ऊपर या नीचे माना गया। इसी लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण एकसे दूसरा नीचेका वा नीच है यह नहीं दिखाते। वे बतलाते हैं कि एक के बाद दूसरा वर्ण इस धर्म में प्रविष्ट हुआ। नौकरी में भी पुरानेपन को कुछ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अधिक मान्यता होती होती है तब यदि पुराने वर्ण को नये वर्ण की अपेक्षा बैठने उठने का कुछ अधिक मान मिले तो कोई आश्चर्य की बात नहीं ।

पितृ सावर्ण्य ।

चार वर्ण भिन्न भिन्न वर्ण के हैं और वे एक स्थान में आगए । परंतु ब्राह्मण गौर वर्ण के, क्षत्रिय लाल वर्ण के, वैश्य पीत वर्ण के और शूद्र कृष्ण वर्ण के थे तब भी आजकल सब वर्णों में सब रंगों के लोग कैसे दिखाई देते हैं । यह बडा विचारणीय प्रश्न है । काले रंग के सिद्दी लोगों में कभी भूलकर भी गोरा मनुष्य उत्पन्न नहीं होता और गोरे लोगों में काला कभी भी उत्पन्न नहीं होता । ऐसा होते भी हिन्दुओं के चार वर्णोंमें मिश्र संतति क्यों होने लगी इसका कारण ढूंढ कर निकालना चाहिए । जिस समय ये चार वर्ण एकही स्थान में रहने लगे, उस समय एक दूसरे का परस्पर कई प्रकार से संबंध आने लगा और इसी लिए परस्पर विवाह होने के अवसर भी आए । वह समय ऐसा था जब की ब्राह्मण चारों वर्णों की,क्षत्रिय तीन वर्णों की और वैश्य दो वर्णोंकी स्त्रियां करते थे । उस समय सबकी या वरिष्ठ वर्ग की दृष्टि इतनी अवश्य थी कि अपने से पहले वर्णसे संबंध न होने पावे। यदि ब्राह्मण चार वर्णकी स्त्रियां करे तो उसे ब्राह्मणी से गोरे लडके,क्षत्राणी से लाल रंगके लडके, वैश्य स्त्री से पीले रंगके लडके और शूद्र स्त्रीसे काले रंग के लडके होने का संभव था । इसी प्रकार क्षत्रिय को भी उक्त कारण से रंग बिरंगी संतति होना संभव है । क्षत्रिय लोग तो बहुत ही स्त्रियां करते थे इससे उनमें रंगबिरंगापन अधिक ही होना संभव है । जो कोई सवर्ण स्त्री से ही विवाह करके रहे होंगे उनमें मिलवा रंग होने का संभव नहीं, पर यदि कोई एक बार भी भिन्न वर्णियों से अधिक विवाह करेगा तो उसके वंश में रंग बिरंगापन आना अपरिहार्य हो जाता है ।

इस प्रारंभ काल में त्रैवर्णिक लोग रक्त की अपेक्षा बीज का महत्त्व अधिक मानते थे । अतः क्षेत्र कोई भी हो, जिस वर्ण का बीज होगा उसी वर्ण की संतति होती है । यही उन्हे अपने बीज का वृथाभिमान था । इसका परिणाम यह होता था कि ब्राह्मण या क्षत्रिय यदि शूद्र स्त्री से संबंध करे तो जो संतति होती थी वह पितृसावर्ण्य के कारण क्रमसे ब्राह्मण या क्षत्रिय मानी जाती थी। इसे 'पितृसावर्ण्य' का काल कहते हैं । क्षेत्र का विचार न करने के कारण और पितृवीर्य को बहुत अधिक महत्त्व देने के कारण वर्णसंकर से कौन कौन अनर्थ होना संभव है इस का जरा भी विचार इस समय आर्यों को न था। अपन पुराणों में देखते हैं कि उस कालमें हीन योनि में जन्म लेकर भी श्रेष्ठ वर्ण के अधिकार पितृसावर्ण्य के नियमके कारण बहुत से लडकों को मिले ।

इस मिश्रण के कारण जो खिचडी त्रैवर्णिकों में हुई उससे श्रेष्ठ और उच्च विचारों के कुलमें ही हीन विचारों की संतति उत्पन्न होने लगी और इससे कुल की शुद्धता नष्ट होने लगी । यह बात हजारों वर्षों के बाद कई पीढियां हो जाने पर आर्य संघ के चालकों के ध्यान में आई । और उन्होंने यह समझ कर कि जो संकर हो चुका सो हो चुका, कमसे कम अब आगे चलकर तो संकर न होने पावे, ' पितृसावर्ण्य ' बिलकुल ही बंद कर दिया और " मातृसावर्ण्य " शुरू किया । यह क्रांति बुद्ध-पूर्व काल में हुई । तब से अब तक मातृ-सावर्ण्य की रीति ही चलती है । इसका मतलब यह कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य यदि शूद्र जातीकि स्त्री से संबंध रखें तो जो संतति होगी वह शूद्र ही समझी जावेगी । पहले के समान वह ऊपर के त्रैवर्णिकों में नहीं लीजाती । हजारों वर्ष के पितृसावर्ण्य की प्रथा के कटु अनुभव आने के बाद यह मातृसावर्ण्य प्रथा शुरू की गई । फजूल के उच्चनीचता के विचारों से यह प्रथा शुरू नहीं की गई । पितृसावर्ण्य के कालमें यद्यपि कुछ मनुष्य संकरवर्ण में उत्पन्न होकर भी अच्छे निकले, तबभी विसदृश रक्त के मिश्रण से त्रैवर्णिकों की शुद्धता जो एकबार नष्ट हुई और उस से आर्य जातिको जो जबरदस्त धक्का लगा उसकी मार अब तक नष्ट न हुई । इतने अनुभव के बाद मातृसावर्ण्य शुरू हुआ है । आजकल ' सवर्ण ' विवाह ही हिंदु-धर्म-शास्त्र के अनुसार धर्म्य माना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जाता है। उसका कारण इतने बडे कटु अनुभव में है। अतएव सवर्ण विवाह ही योग्य है। विजातीय विवाह बहुतही हानिकर हैं। इस समय युरोप अमेरिकामें भी देखिये, वहां विचारों की उदारता अत्यधिक होते हुए भी वे लोग गौरवर्णियोंसे हब्शी स्त्रियोंमें उत्पन्न हुए बच्चोंको अपने समाजमें लेनेके लिये तैयार नहीं हैं, इसका कारण भी यही है।

अंत में यही कहना है कि अपने वैदिक धर्म में परकीयोंका प्रवेश हुआ है, अन्य लोगों को अपने धर्ममें प्रवेश मिल सकता है,प्राचीन काल के ऋषियोंने और आचार्योंने अनेक बार शुद्धि करके अन्य लोगोंको सनातन धर्म में लिया है। पर वह जातिशः और संघशः लिया है और धीरे धीरे उनकी उन्नति की है। आज तक शुद्धि के लिए जो नियम शिष्टसंमत माने गए उनके तोडने की आवश्यकता दिखानेवाला समय अभी आया नहीं। ऐसी दशा में केवल उत्साह के अतिरेकसे अगला पिछला विचार न करके जो कुछ किया जा रहा है वह आगामी समय में अवश्य ही विध्वंसक सिद्ध होगा। जल्दी करनेवाले शुद्धिकर्ता इसे न भूलें।

हिंदुसमाज समर्थ कैसा बनेगा ?

(लेखक—श्री० पं. महादेवशास्त्री दिवेकर; अनुवादक-पं. भोला नाथ राव)

जन्मतः उच्चनीचपन छोडनेका कष्ट सर्व हिंदु समाज को एक ही समान होगा। कारण कि प्रत्येक हिंदु स्वतः को इतर लोगोंकी अपेक्षा उच्च समझता है। अछूत लोगों का कहना है कि पहले चमार अछूत फिर सृष्टि होगी। उनसे कुछ ऊपरकी जाति माली कहता है कि प्रथम माली और पुनः सृष्टि हुई। कंहार अपने से नीच जातिको (मांग व डोर चमारको) जैसा अस्पृश्य समझता है वैसे ही समाजके प्रत्येक घटक नीच उच्चका विचार करके स्पृश्य व अस्पृश्य किसी न किसी को समझता।

केवल उच्चस्थिति के ही लोगोंके इस कल्पना को छोडने से सुधार होगा; ऐसी वस्तुस्थिति नहीं है। समाजमें मध्यम जाति भी अपने से नीची जाति के लोगों को जन्म ही से नीची समझती है। यद्यपि ऐसी स्थिति है तथापि सब लोगोंको इस कल्पना को छोड ही देना चाहिये। ब्राह्मण, अब्राह्मण; ब्राह्मणेतर; स्पृश्य, अस्पृश्य; अस्पृश्येतर ऐसी जन्मप्रमुख, जन्मावलम्बी, जन्मपुरस्कृत उच्च नीच की कल्पना को छोडकर कर्तृत्वप्रमुख, कर्तृत्वावलम्बी, कर्तृत्वपुरस्कृतकी कल्पना को ही दृढ करना चाहिये। जो हिंदुसमाजोपकारक कार्य करता है वही श्रेष्ठ और जो उसके विरुद्ध करता है वही कनिष्ठ है। वही मनुष्य श्रेष्ठ है जिसका कर्म, विद्या, शील, सर्व कुछ हिंदुसमाजोपयोगी हो, चाहे वह किसी भी पंथका क्यों न हो। परंतु सर्वगुणसम्पन्न होता हुआ भी यदि मनुष्य हिंदुसमाज घातक, विघातक, अपकारक व हानिकारक है तो हिंदुसमाज को उसे अवश्य ही अस्पृश्य समझना चाहिये।

केवल हिंदुसमाज में ही उंच नीच का विचार है यह बात नहीं। अन्य समाजों में भी यह कल्पना थोडी बहुत अवश्य ही दिखलाई देती है। विशेषतः जेता समाज स्वतःकी अपेक्षा जित समाज को सर्व दृष्टि से तुच्छ समझता है। जित समाज कितना भी अच्छा क्यों न हो तब भी वह जित होने के कारण जन्म ही से हीन समझा जाता है। इसके विपरीत जेता समाज कितना ही गिरा हुआ क्यों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

न हो परन्तु केवल जेतपन ही के कारण वह सर्वोच्च है ऐसा भासमान होता है। हिंदूसमाज के जित, सर्वस्वी जित, आत्यंतिक जित हो जाने के कारण उसे आपस में अब जन्मसे उच्चनीचपन के विचार को स्थिर रखने का कोई कारण शेष नहीं रह गया है। इस लोकशाही की परिस्थिति में उस कल्पना का स्थिर रहना ही अशक्य है। अतएव हम सब हिंदू लोग जित हैं, सब लोगों को मिलकर परकीय समाज व राज्य के आघातों को हटाना है इस भावना से अग्रसर होना चाहिये। अनेक दृष्टिसे विचार करने पर भी हमें यही दीख पडता है कि जन्मावलम्बी उच्चनीचपण की कल्पना इस युग में कदापि उपयोगी नहीं है।

किसी भी समाज की दो अवस्थाएं होती हैं। एक गतिशीलता व दूसरी स्थितिशीलता। यदी समाज स्थितिशीलता की अवस्थामें हुआ तो वहाँ जन्मावलम्बी कल्पना ही सन्मुख होती है और उस समय वैसा होना ठीक भी जान पडता है। परंतु पारध अवस्था में समाज गतिशील होता है। उस समय जन्मावलम्बी कल्पना नहीं देख पडती। जब कृषिप्रधान समाज स्थितिशील होता है उस समय जन्मावलम्बी कल्पना सन्मुख आती है परंतु औद्योगिक जग किंवा युगमें वह कल्पना किसी भी समाज में नहीं रहती। हिंदुस्थान देशस्थ हिंदू समाज को भविष्य में औद्योगिक क्षेत्र में प्रवेश करना है इस लिये प्राचीन जन्मप्रमुख कल्पनाको ही स्थिर रखना सर्वथा अनुचित है।

समष्टिधर्मका चौथा तत्व, सूर्य देवका उपासना है। सूर्य अनादिकाल से सर्व हिंदुओंका वेद प्रतिपादित देवता है। उसके पूजनसे तप, तेज, विद्या आदि वस्तुओंकी प्राप्ति होती है इस लिये सूर्योपासना का प्रचार करना महान आवश्यक है। हिंदू समाजावलम्बी सर्व जातियों स्त्री, पुरुष, बालक वृद्ध सब लोगोंको प्रातः सायं गायत्री मंत्र जपकर सूर्य देवता की मानसिक आराधना करनी चाहिये और निदान सूर्यको ६० बार नमस्कार करके शारीरिक तपश्चर्या भी करनी चाहिये। पुरुषों को ही नमस्कार करना चाहिये यह बात नहीं, स्त्रियें भी यदि उसे करें तो कोई हानि नहीं है। इस रीतिसे श्री सूर्य नारायणकी उपासना द्वारा प्रत्येक मनुष्य तथा स्त्री का मानसिक और शारीरिक व्यायाम भी हो जायगा। सूर्य यह सर्व हिंदू मात्रके देवता हैं (सर्व हिंदूमात्र के अनन्यसामान्य देव सूर्य ही है ! इसको जानने के लिये पुनर्घटन की चतुःसूत्री नाम पुस्तक देखो) राम, कृष्ण, हनूमान, शंकर, गणपति, देवी, इत्यादि हजारों देव हिंदू समाज में है ! यह सत्य है परंतु यह सिद्ध नहीं होता कि ये देवता सर्व हिंदुओंको एक प्रकार से मान्य हैं। सर्व हिंदुओं को जिसका दर्शन, स्पर्शन व उपासना सहज सुलभ है वह देव सूर्य ही है (सूर्य आत्मा जगतः तस्थुषश्च) और सूर्य जंगम और स्थावर जगतका आत्मा है यह तत्व सर्वमान्य है। इससे प्रत्येक हिंदूको इसी देवता की उपासना की प्रधानता देनी चाहिये। इतर सर्व देव सूर्यसे प्रतीक है इस विचारानुसार और व्यष्टिधर्म, कुलधर्म के अनुसार जिन लोगोंको उनकी पूजा करना है वे अपने अपने घर में प्रसन्नता से उनकी पूजाको करें उसमें कोई भी रोक टोक नहीं है परंतु व्यक्तिविशेष को अपने विशेष देवता को समाज में लानेकी आवश्यकता नहीं है।

यदि किसी पर रामकी कृपा हुई, शंकर की प्रसन्नता हुई किंवा हिंदू के तेंतीस कोटि देवताओं को छोडकर किसी को पीर का ही सक्षात हुआ तो उसे अपने उस देवताकी कृतज्ञता की सूचना समाज में नहीं फैलानी चाहिये। यदि कोई यह कह कर कि मुझ पर रामकी कृपा हुई है इससे मैं उनका मंदिर निर्माण करूंगा तो वह समाजकी दृष्टिसे बडा ही अनुचित होगा। कारण कि आधुनिक समय में देवता भी बहुत से हो गये हैं और वैसे ही उनके मंदीर भी बहुत हैं। उन मन्दिरोंके बहुत से देवताओंमें बहुतसे देवता तो ऐसे लाचार सी बडे हुए हैं कि उन्हें पूजाअर्चना का एक पत्ता भी नहीं मिलता। जब देवमूर्तियोंकी ऐसी दुर्दशा दिखलाई देती है तो यही विचार होता है कि इनका विसर्जन ही क्यों न कर दिया जाय? मंत्रों द्वारा ही उनकी प्राणप्रतिष्ठा की गई है और मंत्रो द्वारा ही उनका

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

विसर्जन भी हो सकता है। जो समाज अपने देवताओंकी रक्षा नहीं कर सकता उस समाज की देवता भी रक्षा नहीं करते। धर्म का रक्षण करने से ही धर्म मनुष्य की रक्षा करता है । "धर्मो रक्षति रक्षतः" जब समाज देवताओंकी रक्षा करेगा तभी देवता लोग भी उसकी रक्षा करने को तत्पर होंगे। गीता शास्त्र में कहा है कि "परस्परं भावयंतः श्रेयः परमवाप्स्यथ" प्राचीन समय में मंदिर का निर्माण करना समाजोपकारक तथा धार्मिक कार्य समझा जाता था; परन्तु अब वह समय नहीं है। अब तो यह कहने से किंचित मात्र भी अत्युक्ति नहीं होगी कि आधुनिक समय में मंदिरों का निर्माण करना पापकर्म है । कोई भी व्यक्ति यदि शाहखर्च-अथवा वैयक्तिक समाधान के लिये देव मन्दिर का निर्माण करे और बाद में उस प्राणप्रतिष्ठित मूर्ति के संरक्षण का कार्य ठीक न चला तो सर्व हिंदूसमाज के मानभंग का प्रश्न उपस्थित हो जाता है। यदि इस मानभंग को दूर करना है तो नवीन देवमन्दिरों में नवीन प्राणप्रतिष्ठित देवताओं की आवश्यकता नहीं है । अब तो ऐसा समय उपस्थित होगया है कि जो कुछ देवता हैं उनमें से भी कम करके २५००० की बस्ती में एक ही देवालय व एक ही देवता की स्थापना की जाय । बहुत से देवालय होने से उनकी अप्रतिष्ठा होने लगती है इसके विपरीत यदि वे थोडी ही संख्या में हुए तो उनका महत्व बढता है । कितने ही गावों में देवालयों की भर मार है यहाँ तक कि किसी किसी घरमें स्थान स्थान पर देवताओंकी मूर्तियां दिखलाई देती हैं । पवित्रता व श्रद्धा की दृष्टिसे देवताओंका इतना विस्तार अत्यंत अनुचित जान पडता है । बहुतसे देवमन्दिरोंके स्थापना का ही यह प्रभाव है की हिंदु समाज देवताओं पर भार डालकर कर्तव्यविहीन हो गया है। कुछ भी संकट आया, आपत्ति आई,शत्रुने आक्रमण किया कि देवमन्दिर में जाकर मूर्तिके सन्मुख खडे होकर प्रार्थना करना, उनसे क्षमा मांगनी, उनके सन्मुख नाक रगडना यहीं इन लोगोंको आता है कारण की इनका विश्वास है कि इस प्रकार करने से सब संकट दूर होते हैं। इस विचारसरणी से हिन्दू समाज की कितनी अधोगती हुई है इसकी कल्पना महम्मद कासिम, महम्मद गोरी, महमूद गजनी इनके इतिहास से भली भांति हो सकती है । तात्पर्य यह है कि मूर्ति व देवालयों का प्रचार कम करने के लिये, देवभक्ति में श्रद्धाका अंश स्थिर करने के लिये, उत्साहपूर्वक समाज में सूर्योपासना का प्रचार करना चाहिये । इस देवता की उपासना के लिये स्थान, मन्दिर, पुष्प किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं;केवल भाव व विश्वास ही पर्याप्त है। यह देवता श्रौत तथा वेद विदित है । इस देवता की गिनती पुराणों के इतर असंख्य देवताओंकी तरह आधुनिक नहीं है। (पौराणिक देवताओंके सर्व मंदिरों में सर्व हिंदुओंके जाने की आज्ञा होना चाहिये कारण कि पुराणों का अधिकार सबको है।) जिन देव मन्दिरोंके देवताओंकी कुछ भी पूंछ नहीं है उन देवालयों में अछूत लोगोंके लिये पाठशालाएं बनवा देना ही उत्तम है । इस प्रकार से जिन देवताओंको कोई नहीं पूंछता उन देवताओंका संरक्षण भी होगा और पाठशालों के निर्माण करने के लिये उत्तम स्थान भी मिलेगा ।

किसी हिंदू को पीर की कृपासे लडका पैदा होता इस कारण से वह उस पीर को प्रसन्न करने के लिये उसकी मसजिद बनवा देता है। परन्तु पीर को भजना हिन्दुओं की महान मूर्खता का द्योतक है। उसके प्रसाद से संतान होती है यह कल्पना बिलकुल झूठ है और वैयक्तिक समाधान के लिये उसकी मसजिद बनवाना यह हिंदुसमाज के लिये बडी ही अनिष्टकारक बात है। पंचमहापातकी भी सह्यनीय है। क्यों कि उसका पातक अल्प क्षेत्रमें ही अपना प्रभाव दिखलाता है परन्तु हिंदू समाजद्रोही मनुष्य इतना अधम है कि वह अपना पाप सर्व हिंदू जातिके पल्ले बांध देता है। मूर्ख अजागल हिंदू पीर की पूजा करें परंतु यदि वे लोग उनकी प्रतिष्ठा समाज में फैलाने लगें तो ऐसे नीच नराधमों को हिंदू समाज से बहिष्कृत कर देना चाहिये । सर्व जगत चैतन्य स्वरूप है, सर्वत्र परमेश्वर का अस्तित्व वर्तमान है 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' तो भी सर्प बिच्छू ऐसे ईश्वर को दूर ही से वंदना करनी चाहिये

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ऐसा तुकाराम जी कहता है। इसीप्रकार सर्प विच्छू सदृश जो अन्य समाज हिंदूसमाज के सहवास में बहुत समय से रहता आया है व रह रहा है, उसके देव भी उसी जाति के हैं ऐसा विचार कर हिंदुओं को इन अहिंदु देवताओं का प्रचार नहीं करना चाहिये विशेष उनका भजन पूजन व्यक्तिधर्म की दृष्टि से भी करना महत्पाप है।

हिंदुओंको अहिंदु देवताओं की पूजा करना, उनके उत्सव में भाग लेना, उन तामसी देवताओं की बढाई करना कभी भी उचित नहीं। नीति ऐसी है कि जैसा समाज वैसा उसका तत्वज्ञान तथा उसके देव भी उसी प्रकार के होते हैं। धर्मके नामपर परधर्मीय मनुष्यकी स्त्री, द्रव्य व जीवनपर जिनकी दृष्टि रहती है व जो लोग ऐसे कुत्सित कर्म करने में मोक्ष की प्राप्ति समझते हैं उनके देव किस जाति के होंगे यह विचारपूर्वक देखने से ही भली भांति विदित हो सकता है। सर्व जग में चैतन्य का ही अधिष्ठान और उसकी सादृश्य मूर्ति सूर्य नारायण की उपासना छोडकर पीर फकीरों के पीछे पडना कितनी मूर्खता और कितना पागलपन है। बहुत सी मूर्ख हिंदू जनता तो अहिंदू फकीरोंके जालमें पडकर अपना सर्वस्व गमा देती है। आश्चर्य की बात तो यह है कि ३३ कोटि देव और ५६ कोटि साधु संतों के समाज में होते हुए भी इनका काम नहीं चलता और यह लोग पीर और फकिरों के पीछे पीछे अपनी कामना सिद्धिके लिये लगे रहते हैं। समष्टि धर्म के अनुसार अहिंदू देव, फकीरोंका पूजन करना, उत्सव करना तथा उन की बढाई करना त्याज्य व दुर्गतिदायक है। " येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः " इस कथन के अनुसार हिंदूओंको हिंदू देवताओंकी ही पूजा व आराधना करनी चाहिये। जिनकी उपासना करते करते बाप दादोंकी कमाई समाप्त होगई जिनकी प्रसन्नताके लिये उन्होंने अपना शरीर तक त्याग दिया उन्हीं हिंदू देवताओंकी उपासनासे शीघ्र फल मिलेगा। इन सब बातों के कहनेका मुख्य तात्पर्य यही है कि सर्व अहिंदू देवोंका बहिष्कार करके मुख्य प्रधान शास्त्रोक्त वेदविहित देव सूर्य की ही उपासना करनी चाहिये।

समष्टि धर्म का पांचवा तत्व के अनुसार हिंदू समाज के पापपुण्य की कल्पना भी समष्टि धर्मानुकूल ही होनी चाहिये। कारण कि वैयक्तिक पापपुण्य में और सामुदायिक पापपुण्यमें महान अन्तर है। वैयक्तिक क्षेत्र संकुचित है अतएव उस अल्प क्षेत्र के पापपुण्य की कल्पना सामुदायिक क्षेत्र के पापपुण्य की कल्पना से बिलकुल पृथक है। पीर की कृपासे यदि कोई कार्य सफल होता है, इससे उसकी कृतज्ञता प्रकट करना चाहिये यह वैयक्तिक पुण्य हो सकता है, परंतु उस कृतज्ञता को प्रकट करने के लिये मसजिद बनवाना सामाजिक अपराध है अतएव महापाप है। पीर कुछ करता है यह कल्पनाही अनुचित है। मोहर्रम के उत्सवमें भाग लेना भी हिंदुओंके लिये महा पातक है। यदि किसी अवसर पर पीरके कारण वैयक्तिक पुण्य का भ्रम हो तो भी वह समाज के लिये हानिकारक ही है। जिन बातों से समाज को कुछ धक्का पहुंचता हो उनमें कभी भी भाग नहीं लेना चाहिये चाहे वह वैयक्तिक पुण्यदायक ही क्यों न हो। पापपुण्यकी व्याख्या हिंदुसमाज के सन्मुख इसी प्रकार की होनी चाहिये कि जिन कार्यों से समाजोपकार हो वही पुण्य और जिनसे समाजका अपकार हो वही पाप। समष्टि धर्म की यह व्याख्या कुछ नवीन नहीं है, न इसे संशोधन करने की ही आवश्यकता है। व्यास महर्षिने सर्व पुराणों का सार बतलाकर यह कहा है।

अष्टादश पुराणानां सारं सारं समुध्दृतम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥

समाज का उपकार ही पुण्य और अपकार ही पाप है। तुकाराम जी ने भी इसीका अनुवाद मराठी भाषा में इस प्रकार किया है " पुण्य उपकार पाप ते पर पीडा। आणिक नाहीं दुजा जोडा यासी" ॥ उपकार और अपकार यह समाजोपयोगी पापपुण्य की व्याख्या बहुत प्राचीन है और बहुत श्रेष्ठ है केवल आधुनिक परिस्थिती के अनुसार उसे उपयोग में लाने की आवश्यकता है।

" पापपुण्य की कल्पना के मुख्य तत्वको समक्ष रखकर परिस्थिति के अनुसार उसमें अदल

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

बदल करना चाहिये " क्यों कि कोई भी कल्पना सदैव एकसी नहीं रहती उसमें कुछ न कुछ बदलना ही पडता है। किसी समय में यज्ञका अनुष्ठान ही पुण्य समझा जाता था, तदनन्तर देवालय निर्माण करने में ही पुण्य समझा जाने लगा, कारण कि उस समय में इन दोनों बातों की आवश्यकता थी। श्राध्द कार्य में परिस्थिती के अनुसार कितना भेद कहा गया है वह इस प्रकार से है कि श्राद्ध ब्राह्मण द्वारा उत्तम रीति से होना चाहिये। यदि वह न हो सके तो तर्पण कराना चाहिये। यद्यपि वह भी न हो सके तो प्रेत के उद्देश से खाने का कुछ पदार्थ किंवा उतना द्रव्य जितने में वह आसकता है दे देना चाहिये। वह उस समय में प्रचलित था। यज्ञ संस्था का उस समय प्रचार था इसी कारण यज्ञ उस समय पुण्य समझा जाता था। इसके आगे स्मार्ताग्नी रखने में और तदनन्तर घर ही में यथा शक्ति पंचमहायज्ञ करने की बारी आई और यह समझा जाने लगा कि इन सब में पुण्यका अंश एक ही प्रकार का है। सारांश यह है कि कालमान के अनुसार पापपुण्य व धर्माधर्म की कल्पना बदलती रहती है। सहस्र ब्राह्मण भोजन कराने से जो आनंद था पुण्य होता है वही आनंद आज शुध्द करके हिंदूधर्म में लिये हुए उन अछूतों के पंक्तिपावन करने में है। अर्ध हिंदुओं को पूर्ण हिंदू बनाने में, अहिंदुओं को हिंदू बनाने में व उनको मिष्टान्न भोजन कराने में ही आजकल पुण्य है। कारण कि शुध्दि कार्य समाज के लिये बडाही लाभदायक है। हिंदुसमाजका धन हिंदुसमाज के उपयुक्त कार्य ही में खर्च होना चाहिये। ऐसा ही कार्य करना चाहिये कि हिंदुसमाजमें जो दान, पुण्य और पवित्रता की कल्पना है वह सब हिंदूसमाजोपयोगी हो। 'सर्वा भूतीं भगवंत' कहकर अपकारी पर भी उपकार व दया करना यह किसी समय में पुण्य समझा जाता था परंतु अनुभव द्वारा यह सिद्ध है कि ऐसे लोगों को दूध पिलाने से समाज की हानि ही है। लाभ कुछ भी नहीं। इस कारण आज वह महापातक के स्वरूप में गिना जायगा। गोरक्षणार्थ पैसा खर्च करना यह अवश्य ही उत्तम कार्य है परंतु गोवध करनेवाले लोगों को हिंदु बना लेनेमें ही सच्चा गोरक्षण है। एक गोभक्षक अपनी आयु में ३से ५ तक गाय मारता है तो उसे शुद्ध करके हिंदु बनालेने में ५ गायों के प्राण बचाने का पुण्य मिलता है। वास्तव गोरक्षणार्थ गोहतकों को हिन्दू बना लेना चाहिये। इस पद्धति से हिन्दु धर्म सेवा, गोभक्षकों का उद्धार और गोरक्षा इन तीनों कार्यों की पूर्ति एक ही साथ हो जायगी। मन्दिर बनवाना, सहस्र भोजन करवाना, विपुल धन खर्च करके यात्रा करना इत्यादि कार्य पूर्व समयमें पुण्यदायक थे, परंतु आजकल की दशा देखकर पैसेका उपयोग निरक्षरों को साक्षर, साक्षरों को विचारशील, अस्पृश्यों को स्पृश्य तथा धर्मभ्रष्टों को शुद्ध करने ही में व्यय करना ठीक जान पडता है कारण कि इस कार्य में विशेष पुण्य है और इससे समाज को भी बडा लाभ पहुंचता है।

हिंदू समाज के पास धन की कमी नहीं है, पर वह धन देवालय बनवाने, भोजन देने, बडे थाट बाठ से विवाह करने, आनंद उडाने, गुरु का मठ चलाने, उन्हें गुरुदक्षणा देने, विदेशी पहराव तथा उनके अनुकरण करने ही में व्यय किया जाता है। यह सर्व धन अंध, अनाथालय, विधवाश्रम, रुग्णालय, साक्षरता, शिक्षण इत्यादि कार्य में व्यय किया जायगा तभी हिंदू समाज का कल्याण हो सकता है। जो हिन्दू हिन्दुस्तानके बाहर जाते है उन्हें अनेक प्रकार के प्रलोभन वहां मिलते हैं। भोली जनता उसके फेर में पडकर अपना धर्म नष्ट कर देती है। हिंदुस्तान में मिशनरी की कार्यकुशलता तथा उनके स्वसमाजोपकार को देखकर सिर नीचा ही करना पडता है। हिन्दुस्तानमें मिशनरी के आठ लक्ष सभासद हैं और १८ लक्ष उनका फंड है। १४००० प्रचारक खिस्ती धर्म का प्रचार कर रहे हैं जिनमें ६ हजार स्त्रियें और २॥ हजार यूरोपियन स्त्री पुरुष हैं। १८७ औषधालय २२१ रुग्णगृह हैं और इनमें १२००डाक्टर कार्य करते हैं। मिशनरीयोंके स्कूल भी वस्तुतः १५००० से कम नहीं हैं। उनमें २५००० शिक्षक व ६लक्ष हिंदु विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। इन ६ लक्ष हिंदूविद्यार्थियों में दो लक्ष संख्या हिंदू

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बालिकाओं की है। (यह हिसाब अंदाज से दिया गया है। पं. देवप्रकाश कृत " घोर आक्रमण" पुस्तक से) ऐसी अवस्था देखते हुए भी क्या हिंदू समाज को भी मिशनिरियों की तरह कार्य नहीं करना चाहिये ? समाजोन्नति के लिये पैसा खर्च करना क्या महत्पुण्य नहीं है ? हिंदुत्व का ढोंग हाकनेवाले हिंदू समाजके लिये क्या अनाथालय, शिक्षणसंस्था अर्भकसंस्था, रुग्णालय के प्रीत्यर्थ दान नहीं देना चाहिये ? मिशनरीयों की ही तरह मुसलमानों का भी काम चल रहा है। वे लोग अनेक प्रकार से अपनी जाति संख्या का बढाना ही महत्पुण्य समझते हैं। तन मन धन से प्रत्येक मुसलमान पादरी, मौलवी, संस्थानिक, गुंडे अपने समाज बल वृद्धिकी चेष्टा कर रहा है। हिंदुओ, क्या समाजबल वृद्धिके लिये तुम लोग अपने पाप पुण्य की कल्पना को नहीं बदलोगे ? समष्टि धर्म स्वीकार करने पर ही हिंदू समाज जीवित रहेगा,नहीं तो मृत्युमुख में जाने की अपेक्षा दूसरी गति नहीं है। व्यक्ति धर्म को घर ही पर रक्खो,व्यक्तिगत पापपुण्यकी कल्पना की अपेक्षा समष्टिगत कल्पना ही समाज में जागृत होनी चाहिये। देखो ! आंखें खोलो ! अन्य समाजों में क्या हो रहा है, उनका क्या उद्देश है। संसार में यदि जागृति करनी होती है तो सापेक्षता का विचार करके ही जागृत होना पडता है। इतर समाज की अपेक्षा हम लोग कैसे है, उनके पापपुण्य व हमारे पापपुण्य में क्या अंतर है इन सब बातों का विचार करके समाजोपयुक्त कार्य, दान धर्म और समाजोपकारक त्याग करना सीखो। समाज के नवजीवन की पोषक संस्थाओं को ही सहायता करो। " पुरानी संस्था अब पैर पर खडी हो रही है, उसकी ओर लक्षकर, हिंदू संगठन, अस्पृश्यनिवारण, शुद्धि संवर्धन इत्यादि कार्यों में धन की व्यय करना ही महत्पुण्य है।

समष्टि धर्म के छठे तत्व के अनुसार हिंदूसमाजको समाज रक्षा के लिये अपनी स्वर्ग नरक की कल्पना को भी बदल देना चाहिये। व्यक्तिगत स्वर्ग, नर्क, मोक्ष पर हिंदूसमाज में अनेक कल्पनाएं हैं पर यह श्रौत, स्मार्त और पौराणिक कल्पनाएं समष्टि धर्म के अनुसार समाज के लिये किंचित मात्र भी उपयोगी नहीं हैं। व्यक्तिगत स्वर्ग व मोक्ष स्वतंत्र है इस कारण प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र है परंतु समाजके स्वर्ग नर्क का विचार भी प्रत्येक हिंदूजनता के लिये महान आवश्यक है। विशेषकर हिंदूसमाज में जनता की दृष्टि समाज के स्वर्ग नर्क की कल्पना की तरफ कम है। जहाँ देखो वहाँ स्वतः के ही स्वर्ग नरक की कल्पना में मनुष्य लगे रहते हैं। परंतु जब समाज ही नरक अर्थात परवशतामें होगा तो व्यक्ति को स्वर्ग कहाँ मिल सकता है ? समाज को नरक परवशता ही है। श्री शंकराचार्य का कहना है कि "को नरकः परवशता।" कवि मोरोपंत ने भी इसका भाषण मराठी भाषामें इस प्रकार किया है " परवशताचि निरय गति जाणुनि तूं संग सोडुनी सरका।" जो समाज परतंत्र है, जिस पर इतर समाज आघात करता है, जो समाज दूसरे समाजों से अपमानित हो रहा है ऐसे नीचे गिरे हुए समाज को ऊपर उठाना ही सच्चा धर्म है। हिंदू समाज को इस अधोगति से रक्षा करना ही सच्चा स्वर्ग है। क्या यह सामाजिक स्वर्ग नहीं है ? हिंदू समाज को भली भांति ध्यान रखना चाहिये कि जिस समाज में फूट, वैमनस्य, मत्सर विद्यमान है वह नरक में है और इसके अतिरिक्त जिस समाज में एकता, प्रेम और (Decipline) है वह स्वर्ग में है। कुमारिल भट्ट ने अपने ग्रंथ तंत्र वार्तिक में स्वर्ग की व्याख्या " सुख विशेषः स्वर्गः " इन शब्दों में की है। और व्याख्या समाजिक स्वर्गकी सबसे उत्तम व्याख्या है। जब समाज का एक ध्येय, एक भावना,एक विचार, एक स्फूर्ति, एक श्रद्धेय और एक द्वेष्य होता है तभी वह बलवान होता है और सुखका अनुभव करता है; अतएव वह स्वर्ग में होता ऐसा कहने में कुछ भी आपत्ति नहीं है। हिंदुसमाज को सुखविशेष ही में निमग्न हो जाना चाहिये। जहाँ तहाँ उत्साह,आनंद स्फूर्ति व जोश की ही बाहुल्यता होनी चाहिये। समाज में यह गुण न हो तो उसे तर्क ही में समझना चाहिये।

(क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

"भेदमें अभेद" लेखके विषयमें

भ्रान्ति का निवारण.

वैदिक धर्म की जून १९२९ की संख्या में "भेद में अभेद" शीर्षक पं० सातवळेकरजीने एक लम्बा लेख लिखा है। आपका यह लेख लिखनेका उद्देश तो यह जान पडता ह कि जो लोग ब्राह्मण- अब्राह्मण, जन्म की उंच-नीच, छूत-अछत और जातपात के लिये झगडों को मिटाने में लगे हुए हैं, के अपनी शक्ति और समयका नाश कर रहे हैं। उन्हें चाहिये कि इन बातों पर ध्यान न देकर अपने देश को स्वतंत्र कराने में ही सारी शक्ति और समय लगाएं, क्यों कि ये छोटे छोटे झगडे तुच्छ हैं। इन से उत्पन्न होनेवाली हानियां इतनी कष्टदायक नहीं जितनी कि विदेशीयों कि अधिनता। पंडितजी कहते हैं:—

"आश्चर्य है कि लोगों में ज्यों ज्यों ऐक्य की उत्सुकता बढती है त्यों त्यों पक्षभेद बढते ही जा रहे हैं। ... ...

"ऐसे धुरंधर गोलंदाज जातिरूप दुर्ग को गिराने की चेष्टा कर रहे हैं। परंतु इसीसे ही ऐसी नवीन जातियां उत्पन्न हो रहीं हैं। जो पहिले कभी अस्तित्वमें न थीं। हाल ही में एक ऐसी नवीन जाति उत्पन्न हुई है जिसका नाम पहिले कभी किसी ने न सुना था। वह जाति दक्षिण भारत में "अब्राह्मण" नामसे जानी जाती है। पहिले की जातियां केवल धार्मिक और सामाजिक बातों में ही अनुकूल या प्रतिकूल मालूम होती थीं। पर यह अब्राह्मण जाति ऐसी है जो धार्मिक और सामाजिक बातों के सिवा राजनैतिक बातों में भी रुकावट और बाधायें डाल रही है। अन्यान्य लोग कह रहे हैं कि हमें स्वराज्य चाहिये इस जातिके लोग कह रहे हैं कि हमें स्वराज्य नहीं चाहिये। श्री छत्रपति शिवाजी महाराज के समय से लेकर पेशवाओं के राज्यका अन्त होने तक सब जातियां ऐक्य भावसे देशके लिए शत्रुसे लडती थीं। अटकतक और ब्रह्मपुत्रातक अपनी सत्ता प्रस्थापित करनेमें इस जातिभेदने रुकावट न डाली। छत्रपति के आश्रय में मराठा क्षत्रिय सरदार भी बढे। बिकुलल निम्न श्रेणी की जातिके लोग भी बडे बडे सरदार हुए। उसी समय जातिभेद किसी भी प्रकारकी बाधा या किसी भी प्रकारकी रुकावट न डाल सका— यदि छत्रपति श्री शिवाजी महाराज स्वराज्य संस्थापनाके पूर्व एकता करने के लिये जातिभेद तोडते बैठे होते तो वे कदापि महाराष्ट्रीय स्वराज्यकी स्थापना न कर सकते ......शिवाजी महाराजकी यह चातुर्य की बात भूलकर वर्तमान पुरुष वह अविभक्तता जागृत करना छोड उस विभक्तताको बढा रहे हैं। जो वास्तवमें विद्यमान नहीं है। जातिभेदके नष्ट हुए विना राजकीय उन्नति असंभव है ··· ये युक्तियां विदेशी लोग इस समय काम में ला रहे हैं।"

"जातियां तोडनेके जो जो प्रयत्न हुए उनकी एक एक नवीन जाति निर्माण हुई है। पहिले की जातियां मिटी ही नहीं, पर यह नवीन जातियां अधिक उत्पन्न हो गईं। इन बातों से यदि कोई बोध सीख सकते हैं तो वह यही है कि जातिभेद इस प्रकार के प्रयत्नोंसे न टूटेगा... आज कल जिन जिन देशी और विदेशी विचारकों ने इस प्रश्नको सोचा है, उन्होंने यही कहा है कि जातिभेद हिंदुओंको उपकारक हुआ है।"

अंत में पंडितजीने उपदेश दिया है कि आपस में चाहे जैसे विवाद मचे हों, पर बाहरी शत्रुके आतेहि हमें एक हो जाना चाहिये। ...... आपस

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

में झगडेके समय पांडव पांच और कौरव सौ थे, परंतु बाहरी शत्रुके आनेपर दोनों मिल कर एक सौ पांच थे ।

निराशा वादी और आलसी लोग प्रायः कहा करते हैं कि ज्यों ज्यों टेम्परंस का प्रचार किया जाता है त्यों त्यों शराब खोरी अधिक बढ रही है । ज्यों ज्यों धर्म सभाएं धर्मका प्रचार करती हैं त्यों त्यों अधर्म बढा रहा है। पर इसमें बुद्धिमान् और उत्साही मनुष्य शराब और अधर्मका खंडन करना छोड नहीं देते। इसी प्रकार पं० सातवळेकर जी की यह शिकायत कि एकता के लिये जितना उद्योग किया जाता है उतना हि मतभेद बढता है, मिथ्या है। जो मतभेद उन्हें अब दृष्टिगोचर होने लगा है। वह पहिले भी विद्यमान था परंतु उस मतभेदसे जिन दलित लोगों को कष्ट था वे प्रबल स्वार्थ साधकों के नीचे इतने दबे हुए थे कि उनका मुकाबला न कर सकते थे । इसी लिये ये शक्तिशाली स्वार्थी लोग समझते थे, की सब शांति ही है, सब लोग इनके शासनमें संतुष्ट हैं । अब जब कि निर्बलों और दलितों में भी बल आया है। विदेशी सरकार और विधर्मियों की कृपा से इन्हें विद्या, धन, और सामाजिक उन्नति थोडी बहुत प्राप्त हुई है, तो वे अपने अत्याचारियों को आंखें दिखाने लगे हैं। इस पर ये अत्याचारी, जिनके हाथमें अब इन गरीबों (शूद्रों और अछूतों) को दबाए रखने की शक्ति नहीं रही, तळमळा उठे हैं । और अब यह झूटा दोषारोपण कर उन्हें बदनाम करना चाहते हैं कि विदेशीय सरकारके सिखाते पढाते ये ही ये शूद्र लोग हमें तंग करने लगे हैं । पंडितजी महाराज, आपके हिंदु राज्य अथवा धर्मराज्यमें तो इन बेचारों को विद्या पढने, धन कमाने और अच्छा खाने पीने की भी आज्ञा न थी । इस लिये ब्राह्मणोंके उत्पन्न किये जातिभेदके कारण नारकीय जीवन व्यतीत करते हुए भी वे इन द्विजोंका मुकाबला न कर सकते थे। अब इनके अंदर जागृति उत्पन्न हुई है । अब इनके पास विद्या और धनधान्य भी है । अतः अब जात-पात और वर्णव्यवस्था का ढोंग खडा नहीं रह सकता । पहले जिन लोगोंने जात-पात को उडाने का यत्न-किया था वे द्विजों में से हि कुछ उदारचित्त मनुष्य थे । जो लोग इस जात पातसे पीडित थे उनके अंदर जागृति उत्पन्न नहीं हुई थी । नानक, गोविंदसिंह, राममोहन, दयानंद सब उंची जाति-के हिन्दू थे । अब क्यों कि शूद्रों और अछूतोंको अपने अपमानका अनुभव होने लगा है और उनके पास साधन भी मौजूद हैं, इस लिये अब कोई भी सांसारिक शक्ति इस अन्याययुक्त जातिभेद को स्थिर न रह सकेगी । " अब्राह्मण " नामक जाति नई नहीं । यह आपही बनाई हुई बहुत पुरानी है, क्या " इतर " वा " ब्राह्मणेतर " शब्द (अर्थात् ब्राह्मणों से अतिरिक्त अन्य लोग शूद्र) आपके पौराणिक कालके साहित्य में नहीं मिलते । आजकल भी ब्राह्मण लोग क्या दूसरे लोगोंको घृणासे " इतर जातियां " नहीं कहते सुने आते ? फिर आपका " अब्राह्मण " को एक नई जाति कहना कहां का न्याय है ? हां यह बात अवश्य है की अब यह " इतर जातियां " अपने सबके सामने के शत्रुको पराजित करने के लिये एक झंडेके नीचे एकत्र होने लगी हैं । इसके तुमुल घोषसे सारा मद्रास प्रान्त कांप उठा है। जरा सोचिए कि इस समय आपके "पृथक् पृथक् बना रहने" के उपदेशको सुनकर वे आपके और आपके धार्मिक जातके विषयमें क्या संमति स्थिर करेंगे ? अब्राह्मण लोगोंका स्वराज्य का विरोध करना स्वाभाविक है । आपके धर्म राज्यमें वेद-मंत्र कानमें पड जाने पर उनके कानमें सीसा भर दिया जाता था । " ओम् " का उच्चारण करने पर उसकी जिव्हा काट डाली जाती थी । वे धन नहीं कमा सकते थे । साफ-सुथरे नहीं रह सकते थे । सडक-पर नहीं चल सकते थे । फिर स्वराज्य (जिसे वे ब्राह्मण राज्य करते हैं) होने पर वे उसी दुर्दशा को प्राप्त हो जायगे । इस लिये वे क्यों इसका विरोध न करें ? अब भी त्रावणकोर और नेपाल में जहां हिंदू राज्य है देखिये इनकी कैसी दुर्गति है । नेपालमें सुना है अब भी शूद्रको दूध पीने की आज्ञा नहीं । यदि वह पीये तो उसे दंड मिलता है।

शिवाय पागलके कौन ऐसे नरकमें पडने के लिये आप उद्योग करेगा ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

आपने शिवाजी महाराज का उदाहरण दिया है पर शायद आपको मालूम नहीं कि उनकी सफलताका एक बडा रहस्य यह था कि समर्थ रामदास स्वामीने अपने धार्मिक उपदेशों के द्वारा महाराष्ट्रमें सामाजिक क्रांति उत्पन्न कर दी थी । इस महात्माके शुभ प्रयत्नसे जन्ममूलक उंच नीच का भेदभाव बहुत कुछ दूर हो चुका था । इसी सामाजिक क्रांतिके आधार पर ही शिवाजी राजनैतिक क्रांतिका विशाल भवन खडा कर सके थे । पंजाब में गुरु गोविंद सिंहजीने भी जात पातके भेद भावको दूर किया था। तभी शीख लोग एक विदेशी सरकारको नष्ट भ्रष्ट कर पाए थे । शिख गुरुओंकी वाणीमें यत्र तत्र जात पातके विरुद्ध वचन मिलते हैं ।

रामदासियें, महज़बीशिख, जाट, नाई, धीवर, कलाल,कुम्हार, धोबी, सब उस समय नीच समझे जाते थे । गुरु गोविंदसिंहजिने इन सबको सिंह बनाकर एक जगह अमृत छकाया, इन में से उंच नीच का भाव मिटाया। तभी वे लोग देश और धर्म के लिये गर्दने कटानेको सहर्ष तैयार हुए । हमारी कांग्रेस समाजसुधार पर कुछ भी ध्यान नहीं दे रही । वह वर्णव्यवस्था, जातिभेद और जात पातके नामसे होनेवाले अत्याचारोंको दूर करने का कुछ भी यत्न नहीं करती । वह " शुद्ध पोलिटिकल" बना रहा चाहती है । इसी लिए पचास वर्ष के निरंतर प्रयत्न पर भी इसे शिवाजी और गोविंद सिंहजी को मिलनेवाली सफलता का सहस्रवां भाग भी प्राप्त नहीं हुआ । मराठों कि प्रभुता के पतनका एक बडा कारण भी यही जातिभेदका था । पेशवा लोग ब्राह्मण थे । वे शिंदे, भोसले, और होलकर आदि मराठे सरदारोंको गडरिये और शूद्र समझते थे । ज्यों ज्यों समर्थ रामदासस्वामी के उपदेशों से लोग भूलते गए । जन्ममूलक जातिभेद का विषाक्त भाव फिर जोर पकडता गया । और अन्त में इसका कड्वा फल पेशवाओं और मराठा सरदारोंकी फूटके रूप में निकला, जिससे मराठा राज्य अंत को नष्ट हो गया । हम भारत के इतिहाससे अनेक ऐसे उदहरण पेश कर सकते हैं जिन में राजपूत और मराठे शत्रुओंसे इस कारण पराजित हुए क्यों कि जातिभेद के कारण उंची और नीची जातियों के राजपूत और मराठे एकही झंडे के नीचे एकत्र होकर न लड सके । यदि जातिभेद मिटा दिया गया होता, तो भारतवर्ष का सर्वनाश न हुआ होता ।

पंडितजी महाराज ? आप जहां तक हमें मालूम है, जन्म और कर्म दोनोंसे ब्राम्हण हैं । आपका कर्तव्य है कि अब्राम्हणोंको कोसने और उनपर देशके प्रति विद्रोहका झूटा दोषारोपण करने के स्थान पर आप ब्राम्हणों कोही डाटें । जो इतनी देरतक गरीब शूद्रों का खून चूसते रहे हैं । यदि वे अपनी झूटी जन्मकी बढाई छोडकर देशकी भलाई को संमुख रखते हुए स्वयं नीचे बन जायें और जिन्हें वे शूद्र, अछूत, अंत्यज, चाण्डाल, राक्षस और म्लेंछ आदि घृणित नामोंसे पुकारते रहे हैं उनके साथ गुणकर्मानुसार विवाह संबंध करने लग जावं तो ब्राह्मण अब्राह्मणका और छूत-अछूतका प्रश्न तुरन्त हल हो जाए । फिर सारा देश एक होके स्वराज्यके लिये यत्न करेगा । क्या ब्राह्मण लोग जो देशभक्ति और आत्मत्यागकी इतनी डींग मारते हैं, देशके लिए और स्वयं अपने लिये इतना त्याग भी नहीं कर सकते । यदि आप पीडित अब्राह्मणों को उपदेश न देकर यदि अपनेही अत्याचारी भाईयों को सीधे मार्ग पर लानेका उद्योग करें तो अत्युत्तम होगा । क्योंकि अशांति और अधोगति का कारण इस समय वही है । वही लोगोंके अनुचित रीतिसे छीने हुए सामाजिक अधिकार देनेको तैयार नहीं। और भिन्न भिन्न प्रकार की पोलिटिकल बातें कहकर इन बेचारों को दबाए रखना चाहते हैं। इसलिए ऐसी अवस्थामें अब्राह्मणोंसे आपका देशभक्तिके नाम पर अपील करना शोभा नहीं देता ।

आप कहते हैं कि देशी और विदेशी सभी विचारकों ने जातिभेद को हिंदुओं के लिए लाभदायक कहा है । आपका यह विचार ठीक नहीं; सच जानिये इस समय प्रति सेकडा नेता लोग जात पात को देश के लिये एक बहुत ही हानिकारक वस्तु समझते हैं । यदि विश्वास न हो तो जात-पात तोडक मंडल लाहोर के कार्यालयमें उनकी छपी हुई संमतियां मंगाकर देख लीजिये । किसी अज्ञान वा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

स्वार्थी मनुष्य ने ही आपके सामने जात-पातको हिंदुओंके लिये लाभदायक बताया होगा अथवा कोई भी निस्वार्थी और बुद्धिमान् मनुष्य इसकी हानियों को अपनी आंखों देखते इसे लाभदायक कहनेकी धृष्टता नहीं कर सकता ।

आपने जो वेदमंत्र दिया है उनसे तो यह सिद्ध होता है कि व्यवसाय और काम सदा भिन्न भिन्न रहेंगे। हम सब कहते हैं की सभी लोग बढई बन जाएं या सभी पोथियां वाचने लगें। संसार में सभी पेशों के करनेवाले कारीगर होने चाहिये और इन सबको जन्ममूलक उंच नीच के भाव को छोडकर भाइयोंकी तरह प्रेमसे रहना चाहिये । आजकल के मद्रासी ब्राम्हणोंकी तरह नहीं, कि दुसरों को सडक पर चलने और मंदिरमें जानेसे रोकें और उन्हें शूद्र जैसे जघन्य नामोंसे पुकार कर अपमानित करें ।

संतराम मंत्री
जात-पात तोडक मंडल, लाहौर

(संपादकीय उत्तर)

" भेदमें अभेद " क्या है ।

" प्रत्येक मनुष्यको प्रत्येक हितकारी नियम पालन के लिये स्वतंत्र और सामाजिक सर्व हितकारी नियमके पालन करनेके लिये परतंत्र रहना चाहिये ।

(आर्य समाज का १० वां नियम -स्वा० दयानंद निर्मित)

अर्थात

" प्रत्येक मनुष्य को वैयक्तिक उन्नतिका साधन करने के लिये स्वतंत्र और कुटुंबकी उन्नति के साधन के लिये परतंत्र रहना चाहिये । प्रत्येक कुटुंब को अपनी उन्नति के कार्य करने में स्वतंत्र और नगर की उन्नतिके कार्य करने में परतंत्र रहना चाहिये । प्रत्येक नगर को अपनी नागरिक उन्नतिके लिये स्वतंत्र और प्रांतिक उन्नतिके कार्य करनेमें परतंत्र रहना चाहिये। प्रत्येक प्रांतको अपने अभ्युदयके कार्य करने में स्वतंत्र और संपूर्ण राष्ट्रके कार्य करनेमें परतंत्र रहना चाहिये। प्रत्येक जातिको अपने नियत कार्य करनेमें स्वतंत्र और जाति संघ अर्थात् वर्ण के कार्य करनेके लिये परतंत्र रहना चाहिये । प्रत्येक वर्ण को अपने कार्य करने में स्वतंत्र और सार्ववर्णिक अर्थात् सामाजिक अथवा राष्ट्रीय उन्नतिके कार्य करने में परतंत्र रहना चाहिये। यही भेदोंके रहते हुए अभेद भावसे कार्य करनेका तात्पर्य है ।" (संपादक-वैदिक धर्म)

म० संतरामजी का पत्र पाठकों के सन्मुख रखा है । म० संतरामजी बडे उत्साही कार्य कर्ता हैं, और वे जातपात तोडने का कार्य बडे जोरसे कर रहे हैं तथापि जातियां नहीं टूटीं, इतने में यह लेख वैदिकधर्म में छपा, इसलिये इस " भेद में अभेद " शीर्षक लेख में कुछ थोडासा मतभेद का अनुभव होने से ही उन्हें क्रोध का आवेश चढ गया है; परंतु शांत मस्तिष्क से वह लेख पुनः पढने की वे कृपा करेंगे, तो उन को पता लग जायगा कि "भेद में अभेद " देखना और उस दृष्टि से कार्य चलाना यही मानवी उन्नति का सीधा मार्ग है। इतना सीधा और सरल मार्ग दूसरा नहीं है ।

यहां सब से पहिले यह कह देना आवश्यक है कि " किसी प्रकार भी जगत् की सब जातियां और उपजातियां नष्ट हो गईं तो मुझे यत्किंचित् भी दुःख न होगा । " परंतु मेरा निश्चय है कि जातियां और भेद भाव सब का सब नष्ट होना असंभव है । हां यह हो सकता है कि किसी विशेष कार्य के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

लिये कुछ लोगों का आपस में कुछ शर्तोंपर समझौत होकर वह कार्य करने के लिये वे एक दिल से लगें, परंतु यह मानना मानवी मनःशक्ति के बाहर है कि, मनुष्यों के संपूर्ण मतभेद, आचार भेद और अन्यान्य भेद सदा के लिये पूर्ण रीतिसे नष्ट हो जांय और सब मनुष्य पूर्ण अभेद से एक हो जांय। इसी लिये ऋषिका वचन है कि,- " हर एक मनुष्य निज व्यवहार के लिये स्वतंत्र और सामाजिक कार्य के लिये परतंत्र है। " यही नियम थोडा अन्य शब्दों में रखेंगे तो इस प्रकार भी बन सकता है— " हरएक कुटुंब अपने कार्य के लिये स्वतंत्र और ग्राम के कार्य के लिये परतंत्र है " इसीप्रकार " हरएक जाति अपने अन्दरूनी निजव्यवहार के लिये स्वतंत्र है, परंतु राष्ट्रीय व्यवहार के लिये परतंत्र है, " तथा " हरएक राष्ट्र निज व्यवहार के लिये स्वतंत्र और सार्वभौम व्यवहार के लिये परतंत्र है । "

इसी नियम व्यवस्थापर प्राचीन काल के ऋषिमुनियों ने समाज का एकीकरण किया था और इसी का तात्पर्य " भेद में अभेद दृष्टि " रखना है। मानवी उन्नति का सच्चा और सरल नियम यही है। इस नियम के पालन होने से ही आपस का द्वेष कम हो सकता है और शनैः शनैः जातिभेद की तीव्रता भी कम हो सकती है।

भेद कितने हैं ?

मानवजाती में भेद बहुत हैं, उनकी गिनती नहीं हो सकती, परंतु विचार की सुगमता के लिये हम मुख्य भेद यहां देते हैं—

१ वैयक्तिक भेद

शरीर का ऊंचा नीचा, मोटा बारीक, गोरा काला आदि होने से जो भेद होते हैं, तथा बुद्धि और आत्मशक्ति की न्यूयाधिकता से जो भेद हैं।

२ जाति भेद

ब्राह्मण क्षत्रियादि जातिभेद और उपजातियों के भेद।

३ धर्मभेद

हिंदु (वैदिक, पौराणिक, बौद्ध), ईसाई, मोहम्मदी आदि धर्मों के भेद।

४ प्रांतभेद

पंजाबी, बंगाली, मद्रासी, महाराष्ट्रीय आदि प्रांत के कारण होनेवाले भेद।

५ देशभेद

भारत, चीन, जपान, इग्लैंद, जर्मन, फ्रान्स आदि देशों के कारण होनेवाले भेद।

६ भाषाभेद

विविध भाषाओं के कारण होनेवाले भेद।

७ व्यवहारभेद

देशविशेष अथवा अवस्थाविशेष के कारण होनेवाले आचारों के भेद।

८ अवस्थाभेद

आयु अनुभव आदि अपरिहार्य कारणों से होनेवाले भेद।

९ संख्याभेद

अनुयायियों की संख्या न्यूनाधिक होने के कारण उत्पन्न होनेवाले भेद। जैसा हिंदुओं की संख्या २२ करोड, और मुसलमानों की ७ करोड होने से होनेवाला भेद।

१० मतभेद

नवमत और पुराणमत के कारण होनेवाला भेद।

मनुष्य समाज में जो व्यवहार चल रहे हैं, उन को देखने से कमसे कम इतने भेद हैं ऐसा प्रतीत होता है। वास्तविक और सैंकडों भेद हैं, परंतु विचार करने के लिये इतने हम लेंगे तो अपना विचार का कार्य ठीक प्रकार चल सकता है।

" भेद हटाने चाहियें " इस प्रकार का जो पुकारा करते हैं उनको उचित है कि वे इनमें से कौन से भेद हटाने चाहिए और कौन से रखने चाहिये, इसका विचार करके उत्तर दें। विकार और भावना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

से कोई उत्तर न दें, परंतु सब को मिलकर मानव समाज के हितका संवर्धन करना है और आज ही कार्य प्रारंभ करना है इस दृष्टि से उत्तर दें। हमारी दृष्टि से इन भेदों के विषय का उत्तर यह है—

वैयक्तिक भेद जो शरीर की ऊंचाई मोटाई आदि के कारण होते हैं, सबलता और निर्बलता के कारण होते हैं, तथा गोरा काला आदि होने के कारण होते हैं, तथा बुद्धिमत्ता अथवा निर्बुद्धता के कारण होते हैं, तथा शुभाशुभ अन्तः प्रवृत्तियों के कारण होते हैं वे कदापि मिट नहीं सकते। क्यों कि-

अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो
मनोजवेष्वसमा बभूवुः। ऋ. १०।७१।७

" आंख और कान यद्यपि सब मनुष्यों को समान होते हैं, तथापि मनुष्य मन के वेगमें समान नहीं होते हैं " इसलिये मनुष्यों में विविध भेद रहते ही हैं। यह वेद का कथन मनन करने योग्य है। इसलिये वे भेद रहेंगे ही ऐसा मान कर इन " भेदों में अभेद " देखकर ही कार्य करना चाहिये। अर्थात् इन स्वाभाविक भेदों की ओर ध्यान न देकर सब मनुष्यों के हितकारी किसी एक कार्य में सब को लगाना चाहिये। जब ये स्वाभाविक भेद हट जांयगे और सब लोग एक जैसे ऊंचे या ठिंगणे, एक जैसे मोटे या पतले एक जैसे सबल या निर्बल, एक जैसे गोरे या काले तथा एक जैसे बुद्धिमान या पूर्ण निर्बुद्ध होंगे, तब उन की संघशक्ति होगी और तभी उनसे सामाजिक अथवा संघिककार्य हो सकेंगे, ऐसा कहना हास्यास्पद मूर्खताकाही द्योतक है। अर्थात् ये भेद मिटनेवाले नहीं, इस लिये इन भेदों की ओर ख्याल न करना चाहिये, परंतु मानवी उत्कर्ष का उद्देश्य मनमें रखकर उक्त " भेदों में अभेद " की दृष्टि रखकर अपना सार्वजनिक हित साधन करने का कार्य हरएक को करना चाहिये।

इसीप्रकार अवस्थाभेद मिटना भी अशक्य है, कई बालक, कई तरुण और कई वृद्ध रहेंगे, स्त्री पुरुष भेद भी रहेगा ही, अनुभव के और ज्ञान के कारण होनेवाले भेद भी रहेंगे। इन भेदों के रहते हुए भी हमें किसी एक साध्यपर दृष्टि रखकर "भेदमें अभेद" दृष्टि का उपयोग करके अपनी सांघिक उन्नति का मार्ग आक्रमण करना चाहिये। स्त्री पुरुष भेद हैं, दोनों के अवयवों में भिन्नता है, इस कारण एक कुटुंब में दोनों विभिन्न स्त्रीपुरुषों का रहना असंभव है ऐसा यदि कोई कहेगा, तो उस को पागलखाने में ही रखना चाहिये। यहां स्त्री और पुरुष दोनों विभिन्न शक्तिवाले दो मानव प्राणियों को इकट्ठा लाने के लिये ही वैदिक धर्म में "गृहस्थाश्र " संस्था की योजना की है। यहां स्त्रीका स्त्रीत्व और पुरुष का पुरुषत्व गृहस्थाश्रम के प्रजनन रूपी एक कार्य करने के उद्देश्य से एकत्रित किये हैं। यह कार्य केवल स्त्रियां या केवल पुरुष समान गुणधर्मवाले हैं इसलिये इकट्ठे होकर नहीं कर सकते। यहां स्त्री पुरुषों के परस्पर विभेद में प्रजनन रूप एक कार्यकी एकत्वकी दृष्टि है, अर्थात् गृहस्थाश्रमकी व्यवस्था देखी जाय तो " भेदमें अभेद दृष्टि " वहां प्रत्यक्ष नजर आवेगी। इसी प्रकार एक कुटुंबमें बालक, तरुण, वृद्ध, स्त्री और पुरुष ये भिन्न अवस्थावाले जन कुटुंबके अभिमानसे एक होते हैं। इसी रीतिसे भेदमें अभेद यहां भी कार्य कर रहा है।

एक कुटुंबके घर पर चोर आगये और घरमें लूट मार कर रहे हैं, उस समय स्त्री पुरुषोंके लिंग भेद, या पति पत्नीके घरेलू झगडे सामने करके, उस चोरको अपना घर लुटने देना बुद्धिमत्ताका कार्य नहीं है। पतिपत्नी झगडते रहें, यह घरेलू झगडे हैं, परकीय शत्रु आगया, तो सबने मिलकर उसको पहिले अपने घरके बाहेर करना चाहिये। चोर दूर भाग जानेके पश्चात् अपने घरका पहिले बंदोबस्त करके, फिर पतिपत्नी या भाई भाई अपने अपने अधिकारों के लिये फिर अपना झगडा शुरू करें।

जो घरके लिये नियम है वही राष्ट्रके लिये है। "घर"छोटा राष्ट्र है और " राष्ट्र" बडा घर है। इस समय भारत राष्ट्रपर बडा संकट है। चारों ओर से सब युरोपीयन, अमेरिकन, जापानी तथा अन्य राष्ट्र भारत वर्षकी लूट कर रहे हैं, प्रतिदिन लूट होने के कारण भारत वर्ष इतना दरिद्री हो गया है कि इस समय हरएक भारतवासी प्रतिदिन आधे पेट ही

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

भूखा रहता है। यह लूट बंद करनेके लिये छूत और अछूत दोनोंने मिलकर स्वराज्य के लिये पराकाष्ठाका प्रयत्न करना चाहिये। स्वराज्य प्राप्त होने से लूट बंद होगी, हमें खानेके लिये मिलेगा, तब अंदरूनी झगडे झगडने के लिये पर्याप्त समय हमें मिलेगा। इस समय अपने भेदोंकी ओर दृष्टि देकर यदि उन भेदों को हटानेका यत्न करने में अपना समय लगायेंगे, तो उतने समय में लूटनेवालों को लूट चलानेके लिये पर्याप्त समय मिलेगा। यह हमने "भेद में अभेद" शीर्षक लेख में लिखा था। परंतु इसपर म० संतरामजी लिखते हैं--

"विदेशी सरकार और विधर्मियोंकी कृपासे अछूतोंको विद्या, धन और सामाजिक उन्नति थोडी बहुत प्राप्त हुइ है।"

अर्थात् विदेशी सरकार का यहां रहना और विधर्मियों का बहकाना सात करोड अछूतों के लिये लाभकारी हो गया है। यह म० संतरामजी का कहना इतना असत्य है कि, इससे और घोर असत्य दूसरा कोई नहीं हो सकता। विदेशी सरकार तो किसी भी अवस्थामें हरएक व्यक्तिको हानिकारक ही है। जगत्में कोई मनुष्य विदेशी सरकार की कृपा चाहनेवाला मिलेगा नहीं। " बुरे स्वराज्य शासनसे अच्छा विदेशी राज्य बहुत घातक है। यह स्वामिजीका उपदेश यहां म०संतरामजी मनन करें। "विदेशी सरकार का कितना ही उत्तम प्रबंध क्यों न हो वह विदेशी सरकार का शासन शासित राष्ट्रके लिये हमेशा हानिकारक ही सिद्ध हुआ है। म० संताराम जी जैसे विद्वानोंका विदेशी सरकारकी कृपा की प्रशंसा करना सिद्ध कर रहा है कि विदेशी सरकार के द्वारा जारी की गई शिक्षासे कितनी मानसिक अवनति हो चुकी है।

हमें निःसंदेह पता है कि श्री० शिवाजी महाराज से लेकर पेशवाओंके अन्तिम समय तक महाराष्ट्र में अछूतों की जो अवस्था थी, उसका सौंवा हिस्सा भी विदेशी सरकार के कृपाछत्र में आकर अछूतों को प्राप्त नहीं हुआ है। यह बात तो स्वयं यहां के अछूत मान रहे हैं। अन्यप्रान्तोंका हाल अन्य प्रान्तवाले जान सकते हैं। महाराष्ट्र में तो सब अछूत ग्राम पंचायत के समान अधिकारी सदस्य थे, जिनको वतनदार करके कहा जाता है, उन ग्रामके ३२ ओहदेदारों में तीन चार ओहदे इनको प्राप्त थे। विदेशी सरकार की कृपासे ही वह ग्रामसंघटन टूट गयी है और ग्रामके वे अधिकार भी इनसे छीने गये। महाराष्ट्रकी प्राचीन ग्रामसंस्थामें महार चमार आदि अछूतों को भी जो अधिकार थे वे अधिकार विदेशी सरकारने ही नष्ट किये हैं। इसमें विशेष आश्चर्य यह है कि ग्राममें सबसे अच्छी उपजाऊ भूमि, प्रायः महाराष्ट्र के सब ग्रामों में, इन अछूतों के लिये दी गई थी। क्या विदेशी सरकारने ऐसा कोई कार्य अछूतों के लिये इस देशमें किया है? महाराष्ट्र के स्वराज्य के समय में तो शौर्य अंगमें होनेपर किसी भी जातिके लोगों को शौर्य विषयक उन्नतिमें किसी प्रकारका प्रतिबंध नहीं था। शौर्य होनेपर और युद्धमें वीरता दिखानेपर वह मनुष्य चाहे गडरिया हो, चाहे धनगर हो वा और कोई हो, उसको शूरताके अनुसार ऊंचा पद मिल जाता था। क्या यह बात विदेशी सरकारकी उपस्थितिमें रही है ? यहां विदेशी सरकारकी फौजमें साधारण अधिकार ही भारतवासी पाते हैं, उससे ऊपर कभी नहीं चढ सकते। इतना होने पर भी म० संतरामजी की लेखनी को यह कहनेकी लज्जा नहीं हुई, की विदेशी सरकार की कृपासे भारतीयोंको यह लाभ हुआ। अस्तु।

जो एक घरके नियम हैं वे ही राष्ट्रमें लगते हैं। घरमें घुसा हुआ चोर घरके किसी मनुष्यको यदि ईनाम देने लगा तो उसका उद्देश्य यह नहीं हो सकता है कि, घरवालोंका या उस मनुष्यका कल्याण किया जाय। उसका हेतु यही होता है, कि घरके लूटनेमें यह मनुष्य प्रतिबंध न करे। घरके पूर्णतया लूटे जाने पर उस मनुष्यका धन भी लूटा जायगा ही। यही बात राष्ट्रमें है। विदेशी सरकार यदि किसी जातिका हित करनेका बहाना करती है, तो उसमें उस सरकारका यह हेतु कदापि नहीं होता कि, उस जातिका भला हो, परंतु उसमें यही हेतु होता है कि, इस राष्ट्रको पूर्ण पराधीन बनानेके कार्यमें इस समय यह जाति हमारा विरोध न करे। अन्य

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जातियोंको दबानेके पश्चात् इस जातिको भी विदेशी सरकारने दबाना ही है। अछूत लोग अपनी अज्ञानता के कारण चाहे यह बात न समझें, परंतु बी. ए. उपपदधारी म० संतरामजी भी यह बात भूलते हैं, यह देख कर इस बातका आश्चर्य होता है कि इनकी इतनी पढी हुई विद्या कहां चली गई ? युरोपकी शिक्षा द्वारा हमारे लोगोंकी मानसिक दुरवस्था कहांतक हुई है यह देखना हो तो म० संतरामजीका यह वाक्य देखें। अस्तु! तात्पर्य घरके मनुष्योंमें अवस्थाभेद होने पर घरके स्वास्थ्य के लिये जिस प्रकार एकता बसनी चाहिये उसी प्रकार राष्ट्रके विविध कार्यकर्ता गणोंके अवस्थाभेद होने पर भी राष्ट्रकी भलाईके लिये उनकी एकता होनी चाहिये और उनमें एक दूसरेकी सहायता करनेकी भी बुद्धि उक्त कारणसे ही रहनी चाहिये। उनका हित स्वराष्ट्रप्रेम में ही है न कि विदेशी सरकारके प्रेम में।

जिस प्रकार वैयक्तिक भेद और अवस्था भेद रहेंगे ही उसी प्रकार भाषाभेद, व्यावहारभेद, संख्याभेद, और मतोंके भेद ये भी रहेंगे हि। ये भेद मिट जाने असंभव हैं। कोई एक भाषा लीजिये, महाराष्ट्री, पंजाबी या बंगाली, कोई लीजिये, प्राय, पचास मैलोंमें उनमें भेद और उपभेद होते हैं। ये उपभेद भी मिट नहीं सकते और मुख्य भाषा भेदभी मिट नहीं सकते। यह भाषाभेदोंकी भिन्नता रहेगी ही, परंतु इसकी विषमता दूर करनेके लिये सर्व साधारण के लिये एक राष्ट्र भाषा सीखनी चाहिये। इसीको कहते हैं "भेदमें अभेद" देखना। म० संतरामजी चाहते हैं कि सब भाषाओंको तोडकर और उनका समूल नाश करनेके पश्चात् एक राष्ट्रभाषाका प्रसार किया जाय और हम चाहते हैं कि अन्य भाषाएं भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें बेशक रहें, परंतु सबको मिलानेवाली एक राष्ट्र भाषा अपनी मातृभाषाके साथ साथ पढायी जाय। भेदमें अभेद स्थापन करनेकी यह रीति है, इसी रीतिका अवलंबन अति प्राचीन कालसे इस समयतक सब ज्ञाताओंने किया है और इतिहासने यह सिद्ध किया है कि, "भेदमें अभेद भावना से कार्य करनेसे ही सबका अधिक हित होना संभव है।" अब म० संतरामजीकी रीति देखिये, पहिले सब भाषाएं समूल तोडीं जांय और पश्चात् राष्ट्रभाषा प्रचार किया जाय!!! यह भाव देखने पर हम म० संतरामजी सेही पूछतें हैं कि किसका "भ्रम निवारण" करनेंकी आवश्यकता है? जो भाषा भेदकी स्थिति है वही जाति भेदकी है। चार प्रांतोंके लोग भारत वर्षमें इकट्ठे मिले तो वे भाषाभेद होनेके कारण विचारविनियम कर नहीं सकते, राष्ट्रहित के लिये एक राष्ट्र भाषाकी अत्यंत आवश्यकता है, फिर क्या सब प्रांत भाषाएं एकदम तोडीं जांय और सब पाठशालाओंमें केवल हिंदी पढाई जाय, अथवा अन्य प्रांत भाषाओंके साथ हिंदी राष्ट्र भाषा करके पढाई जाय। यदि सब भाषाओंके भेद होते हुए भी एक राष्ट्र भाषा होना संभव है, तो उसी मनोवृत्तिसे अनेक जातियां और अनेक वर्ण होते हुए भी एकीकरण का मार्ग अवश्यमेव आजही निकल सकता है, यह कोई असंभव बात नहीं है। दोनों स्थानोंपर "भेदोंमें अभेद" दृष्टिही आवश्यक होती है।

(क्रमशः)

भेदमें अभेदका नियम।

" सबको किसी एक महान कार्यमें लगा दो, उस महान कार्यकी जितनी तीव्रता उनके मनमें बढेगी, उतनी शीघ्रतासे आपस के भेदोंकी तीव्रता हट जायगी।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

शत्रुको दबाना।

[८]

(ऋषिः— अथर्वा। देवता–नानादैवत्यं १,२ अग्निः, ३ विश्वेदेवाः, ४–९ इन्द्रः)

वैकङ्कतेनेध्मेन देवेभ्य आज्यं वह।
अग्ने ताँ इह मादय सर्व आ यन्तु मे हवम् ॥ १ ॥

इन्द्रा याहि मे हवमिदं करिष्यामि तच्छृणु।
इम ऐन्द्रा अतिसरा आकूतिं सं नमन्तु मे।
तेभिः शकेम वीर्यं जातवेदस्तनूवशिन् ॥ २ ॥

अर्थ- हे अग्ने! (वैकङ्कतेन इध्मेन) स्रुवा वृक्षके इन्धनसे (देवेभ्यः आज्यं वह) देवोंके लिये घृत पहुंचा। और (तान् इह मादय) उनको यहां प्रसन्न कर, वे (सर्वे) सब (मे हवं आयन्तु) मेरे यज्ञमें आवें ॥ १ ॥

हे इन्द्र! (मे हवं आयाहि) मेरे यज्ञमें आ पहुंच। जो (इदं करिष्यामि तत् शृणु) यह प्रार्थना मैं करूंगा, वह तू सुन। (इमे ऐन्द्रा अतिसराः) ये इन्द्रसंबंधी अग्रगामी पुरुष (मे आकूतिं सं नमन्तु) मेरे संकल्पके अनुकूल झुकें। हे (तनू-वशिन् जातवेद) शरीरको वशमें करनेवाले ज्ञानवान्! (तेभिः वीर्यं शकेम) उन प्रयत्नोंसे वीर्य की प्राप्ति हम कर सकें ॥ २ ॥

भावार्थ- अग्नि इस यज्ञमें देवोंके लिये घृतकी आहुतियां पंहुंचावे और यहां देवोंको आनन्दित करे, जिससे सब देव संतोषसे मेरे यज्ञमें आते रहें ॥ १ ॥

हे इन्द्र! तू मेरे यज्ञमें आ और जो मैं प्रार्थना करता हूं, वह श्रवण कर। ये जो इन्द्रके संबंधमें कार्य करनेवाले हैं, वे मेरे अनुकूल कार्य करें। हे शरीर-को वश करनेवाले ज्ञानी! उनसे हमको वीर्य प्राप्त होवे ॥ २ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यदसावमुतो देवा अदेवः संश्चिकीर्षति ।
मा तस्याग्निर्हव्यं वाक्षीद्धवं देवा अस्य मोप गुर्ममैव हवमेतन ॥ ३ ॥
अति धावतातिसरा इन्द्रस्य वचसा हत ।
अविं वृकं इव मथ्नीत स वो जीवन् मा मोचि प्राणमस्यापि नह्यत ॥४॥
यममी पुरोदधिरे ब्रह्माणमपभूतये ।
इन्द्र स ते अधस्पदं तं प्रत्यस्यामि मृत्यवे ॥ ५ ॥

अर्थ- हे (देवाः) देवो ! (असौ अ-देवः सन्) वह देवता रहित होकर (अमुतः यत् चिकीर्षति) वहांसे जो कुछ घात करना चाहता है, (तस्य हव्यं अग्निः मा वाक्षीत्) उसका हव्य अग्नि न पंहुंचावे। (देवाः अस्य हवं मा उपगुः) देवभी इसके यज्ञमें न जावें। प्रत्युत (मम एव हवं एतन) मेरेही यज्ञमें आवें ॥ ३ ॥

हे (अतिसराः) अग्रगामी पुरुषो! (अतिधावत) वेगसे दौडो। (इन्द्रस्य वचसा हत) इन्द्रके वचनसे मारो। (अविं वृक इव मथ्नीत) जैसे भेडको भेडिया मारता है, उस प्रकार शत्रुको मथ डालो। (सः जीवन्) वह शत्रु जीता (वः मा मोचि) तुम्हारेसे न छूट जावे। (अस्य प्राणं अपिनह्यत) इसके प्राणको भी बांध डालो ॥ ४ ॥

(अमी यं ब्रह्माणं) ये जिस ज्ञानीको (अपभूतये पुरः दधिरे) अवनति के लिये ही आगे धरदेते हैं। हे इन्द्र ! (सः ते अधस्पदं) वह तेरे पांवके नीचे होवे, (तं मृत्यवे प्रत्यस्यामि) उसको मृत्युके लिये फेंकता हूं ॥ ५ ॥

भावार्थ- हे देवो ! जो वस्तुतः प्रभुकी भक्ति न करता हुआ जो कुछ अन्य कर्म करना चाहता है, उसकी आहुतियां अग्निभी देवोंको न पहुंचावे और देव भी इसके यज्ञमें न जावें। परंतु वे मेरे यज्ञमें आवें ॥ ३ ॥

हे अग्रगामी पुरुषो ! वेगसे शत्रुपर हमला करो। इन्द्रकी आज्ञासे शत्रुका वध करो। जैसा भेडिया भेडको मारता है, उस प्रकार तुम शत्रुको मार डालो। शत्रुके प्राण लो। कोई शत्रु तुम्हारे हाथसे न बच जावे ॥४॥

जो शत्रु अपने अन्दरके विद्वान् पुरुषको भी अवनतिके कार्य में ही लगा देते हैं, उनकी अधोगति होवे, मैं तो उसको मृत्युके लिये समर्पित करता हूं ॥ ५ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यदि॑ प्रे॒युर्दे॑वपु॒रा ब्रह्म॒ वर्मा॑णि चक्रि॒रे ।
त॒नू॒पानं॑ परि॒पाणं॑ कृण्वा॒ना यदु॑पोचि॒रे सर्वं॒ तद॑र॒सं कृ॑धि ॥ ६ ॥
यान॒सावति॑स॒रांश्च॒कार॑ कृ॒णव॑च्च॒ यान् ।
त्वं तानि॑न्द्र वृत्रहन् प्र॒तीचः॒ पुन॒रा कृ॑धि॒ यथा॒मुं तृ॑ण॒हां जन॑म् ॥ ७ ॥
यथेन्द्र॑ उद्वा॒चनं॑ ल॒ब्ध्वा च॒क्रे अ॑ध॒स्प॒दम् ।
कृ॒ण्वे॒३॒॑ऽहमध॑रां॒स्तथा॒मूञ्छ॑श्व॒तीभ्यः॑ समा॑भ्यः ॥ ८ ॥

अर्थ-(यदि देवपुराः प्रेयुः) यदि शत्रुओंने देवोंके नगरोंपर चढाई की है और उन्होंने (ब्रह्म वर्माणि चक्रिरे) ज्ञान को ही अपना कवच बनाया है, और (तनूपानं परिपाणं कृण्वानाः) शरीररक्षक साधन भी जो बनाते हुए (यत् उप ऊचिरे) जो कुछ कहते हैं (सर्वं तत् अरसं कृधि) वह सब नीरस करो ॥ ६ ॥

(असौ यान् अतिसरान् चकार) इसने जिनको अग्रगामी बनाया था और (च यान् कृणवत्) जिनको अभी बनाया है। हे (वृत्रहन् इन्द्र) शत्रुनाशक इन्द्र! (त्वं तान् पुनः प्रतीचः आकृधि) तू उनको पुनः प्रतिगामी कर (यथा अमुं जनं तृणहान्) जिससे उस जनसमूहको हम मार डालें ॥ ७ ॥

(यथा इन्द्रः उद्वाचनं लब्ध्वा) जैसे इन्द्रने बडबडनेवाले शत्रुको प्राप्त करके उनको (अधस्पदं चक्रे) पांवके नीचे किया (तथा अहं) उस प्रकार मैं (शश्वतीभ्यः समाभ्यः) सदाके लिये (अमून् अधरान् कृण्वे) इन शत्रुओंको नीचे करता हूं ॥ ८ ॥

भावार्थ- यदि देवोंके नगरोंपर शत्रुओंने चढाई की है, और अपनी शरीररक्षाके लिये कवचादिके द्वारा अच्छी तैयारी की है, तथा अपने सब ज्ञानको भी इस युद्धकर्ममें ही लगा दिया है, ऐसे शत्रुका यह सब प्रयत्न विफल होवे ॥ ६ ॥

जो शत्रु अपने वीरोंको अग्रगामी करके हमला करता है, वे शत्रुके प्रयत्न उलटे हो जावें, जिससे सब शत्रुओंको हम मार डालेंगे ॥ ७ ॥

जिस प्रकार इन्द्र घमंडी शत्रुको भी नीचे दबाता है, उस प्रकार मैं सदा अपने शत्रुको नीचे दबाकर रखता हूं ॥ ८ ॥

*

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अत्रैनानिन्द्र वृत्रहन्नुग्रो मर्मणि विध्य ।
अत्रैवैनानभि तिष्ठेन्द्र मेद्यहं तव ।
अनु त्वेन्द्रा रभामहे स्याम सुमतौ तव ॥ ९ ॥

अर्थ- हे (वृत्रहन् इन्द्र) शत्रुनाशक इन्द्र ! (अत्र उग्रः एनान् मर्मणि विध्य) यहां शूर होकर इनको मर्मोंमें छेद। हे इन्द्र ! (अत्र एव एनान् अभितिष्ठ) यहांही इन पर चढाई कर। (अहं तव मेदी) मैं तेरा मित्र होकर रहता हूं। हे इन्द्र ! (त्वा अनु आरभामहे) तेरे अनुकूल हम कार्यारम्भ करते हैं और (तव सुमतौ स्याम) तेरी सुमतिमें हम रहें ॥ ९ ॥

भावार्थ- हे प्रभो ! तू उग्र होकर यहां शत्रुके मर्मस्थानोंको छेद, इन शत्रुओंपर चढाई कर। मैं तेरा मित्र होकर तेरे अनुकूल कार्य करता हूं और तेरी सुमतिमें स्थिर रहता हूं ॥ ९ ॥

शत्रुका नाश ।

यह सूक्त शत्रुका नाश करनेका उपदेश करनेवाला है। इसके पहिले दो मंत्रोंमें परमेश्वर प्रार्थना करके बल प्राप्त करनेका उपदेश किया है—

ईश प्रार्थना ।

अग्निमें घृतकी आहुतियां देकर यजमान प्रार्थना करता है कि— " मैं देवताओंके उद्देश्यसे ये आहुतियां इस यज्ञमें दे रहा हूं, ये आहुतियां देवताओंको प्राप्त हों और इससे देवताएं सन्तुष्ट होकर मेरी प्रार्थना सुनें। प्रभुकी भी मैं प्रार्थना करता हूं कि वह मेरी प्रार्थना सुने और सब उसकी शक्तियां मेरे अनुकूल हों और हमको बहुत बल प्राप्त होवे। (मं० १-२)

नास्तिकोंकी असफलता ।

जिस पुरुषके मनमें परमात्माकी भक्ति नहीं होती, उसको नास्तिक अथवा भक्तिहीन मनुष्य कहा करते हैं। युद्ध उपस्थित होनेपर दोनों पक्षके लोग प्रभुकी प्रार्थना करते हैं। सत्पक्षभी जैसा अपने यशके लिये प्रभुकी प्रार्थना करता है, उसी प्रकार दुष्ट

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पक्षके लोगभी विजयके लिये प्रार्थना करते हैं। ऐसी दोनों ओरके सैनिक विजय प्राप्ति के लिये प्रार्थना करने लगे और यज्ञयाग करने लगे, तो प्रभु किस पक्षकी सहायता करता है और किसकी नहीं करता, इस विषयमें तृतीय मंत्रका उपदेश लक्ष्यपूर्वक देखने योग्य है—

" जिस समय नास्तिक भक्तिहीन दुष्ट मनुष्य अपने विजयके लिये यज्ञयाग अथवा ईशप्रार्थना आदि करता है, उस समय अग्नि उसकी आहुतियां देवताओंके प्रति नहीं पंहुचाता और देवतायेंभी उसके यज्ञमें नहीं जातीं, क्योंकि देवताएं केवल आस्तिक भक्तोंके यज्ञमेंही जाती हैं।" (मं० ३)

इस मंत्रसे स्पष्ट हो जाता है कि, दोनों पक्षके लोग भी प्रार्थना करने लगे, तौ भी धार्मिक लोगोंकी ही प्रार्थना परमेश्वर सुनता है, दुष्टोंकी प्रार्थनाएं कभी नहीं सुनता। इसलिये सत्यपक्षके लोगही प्रार्थनासे ईश्वरीय बल प्राप्त करते हैं और वह बल असत्य पक्षके लोगोंको नहीं प्राप्त होता; इस कारण सदा अन्तमें सत्पक्षका ही विजय होता है। इसलिये चतुर्थ मंत्रमें कहा है कि-"प्रभुकी आज्ञाके अनुसार शत्रुपर हमला करो,शत्रुको मार डालो, कोई शत्रु तुम्हारे हमलेसे जीता न बचे।" (मं० ४) यह बल सत्यपक्षकोही प्राप्त होता है,इसलिये सत्यका पक्ष व्यवहारकी दृष्टिसे अशक्त प्रतीत हुआ तोभी वह आत्मिक बलकी दृष्टिसे शक्तिसंपन्न होनेके कारण अन्तमें विजयी होता है। असत्पक्षवालोंको परमेश्वरकी भक्तिसे लाभ नहीं होता, यही बतानेके लिये पंचम और षष्ठ मंत्रोंका उपदेश है--

" जो असत्पक्षका आश्रय करनेवाले लोग अपने विजयके लिये ब्राह्मणको भी अपने अवनतिकारक कर्ममें उपासनादि कार्य करनेके लिये बाधित करते हैं, उनको परमेश्वर अवनत करता है और मृत्यु तक पहुंचाता है॥ जो दुष्ट देवजनोंके नगरोंपर हमला करके अपने विजयके लिये उपासनादि कर्म करते रहते हैं और समझते हैं कि इससे हमारी रक्षा होगी और हम सुरक्षित होंगे, वे भ्रममें रहते हैं, क्यों कि उनके ये सब प्रयत्न विफल होनेवाले हैं। (मं० ५—६)

अर्थात् असत्पक्षका विजय कभी नहीं होगा। सदा सत्यका पक्ष ही जय प्राप्त करेगा। यह वैदिकधर्मका त्रिकालाबाधित सिद्धान्त है। कोई इसको उलटपुलट कर नहीं सकता।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अन्तिम तीनों मंत्रोंमें यही बात भिन्न रीतिसे कही है—" जो दुष्ट शत्रु अपने सैनिकोंको आगे बढाकर वेगसे हमला चढाता है, उनका वह कार्य उसीके विरुद्ध अन्तमें होजाता है। (मं० ७) " अर्थात् बलकी घमंडमें आकर शत्रु सत्पक्षका नाश करनेकी जैसी जैसी तैयारी करता है, वैसा वैसा वह अधिकसे अधिक गिरता जाता है। बडे बडे साम्राज्य इसी दुष्ट भावके कारण नाशको प्राप्त हुए हैं और वे कभी पुनः उठे नहीं, यह जान कर लोगोंको उचित है कि वे कभी अधर्मपथसे न चलें और दूसरोंके नाशसे अपनी उन्नति करनेके कार्य न करें। क्यों कि ऐसे कार्योंमें कदापि सफलता प्राप्त नहीं होगी।

" ऐसे घमंडी और बकबक् करनेवाले शत्रु प्राप्त होनेपर उनको नीचे दबाना चाहिये, यह सदा पालन करने योग्य नियम है। " (मं० ८) अर्थात् सज्जनोंको भी शत्रुकी उपेक्षा करना योग्य नहीं है।

शत्रुके नाशका उपाय।

नवम मंत्रमें शत्रुका नाश करनेका उपाय कहा है। यह बात अब देखिये-

(१) उग्रः अत्र मर्माणि विध्य। - शूर होकर यहां शत्रुके मर्मस्थानोंपर वेध कर। (मं० ९)

(२) अत्रैव एनान् अभितिष्ठ। - यहांही उनका सामना कर अर्थात् उन शत्रुओंपर वेगसे हमला चढा दे। (मं० ९)

(३) अहं तव मेदी। तव सुमतौ स्याम। त्वा अन्वारभामहे—मैं तेरा मित्र होकर रहूंगा, तेरी सुमतिमें मैं रहूंगा और तेरे अनुकूल कार्य करूंगा। (मं० ९)

परमात्माके अनुकूल कार्य करनेका तात्पर्य धर्मानुकूल व्यवहार करना है। इस प्रकार धार्मिक व्यवहार करते हुए आत्मिक बल बढाकर, परमात्माके प्रेमी बन कर रहना और शत्रुका हमला उलटा देनेका सामर्थ्य भी अपने पास रखना, अर्थात् अपने पक्षको कमजोर न रखना। इस प्रकार आत्मिक और शारीरिक बलसे युक्त होनेसे सब युद्धोंमें विजय अवश्य ही प्राप्त होता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

आत्मिक बल।

[९]

(ऋषिः— ब्रह्मा। देवता-वास्तोष्पतिः)

दिवे स्वाहा॑ ॥ १ ॥ पृथिव्यै॑ स्वाहा॑ ॥ २ ॥ अन्तरिक्षाय स्वाहा॑ ॥ ३ ॥
अन्तरिक्षाय स्वाहा॑ ॥ ४ ॥ दिवे स्वाहा॑ ॥ ५ ॥ पृथिव्यै॑ स्वाहा॑ ॥ ६ ॥
सूर्यो॑ मे चक्षुर्वातः॑ प्राणो॒३॑ऽन्तरि॑क्षमात्मा पृ॑थिवी शरी॑रम्।
अस्तृतो नामाहमयम॑स्मि स आत्मानं नि द॑धे द्यावा॑पृथिवीभ्यां॑ गोपीथाय॑ ॥७॥
उदायुरुद् बलमुत् कृतमुत् कृत्यामुन्म॑नीषामुदि॑न्द्रियम्।
आयु॑ष्कृदायु॑ष्पत्नी स्वधा॑वन्तौ गोपा मे॑ स्तं गोपायतं॑ मा।
आत्मसदौ॑ स्तं मा मा॑ हिंसिष्टम् ॥ ८ ॥

अर्थ— (दिवे) द्युलोक (अन्तरिक्षाय) अन्तरिक्ष और पृथ्वी लोक के लिये(स्वाहा=सु+आह) उत्तम प्रशंसा का वचन कहते हैं। १—६॥

(सूर्यः मे चक्षुः) सूर्य मेरा चक्षु है (वातः प्राणः) वायु प्राण है,(अन्तरिक्षं आत्मा) अंतरिक्ष आत्मा है और (पृथिवी शरीरं) पृथिवी मेरा शरीर है। (अस्तृतः नाम अयं अहं अस्मि) अमर नामवाला यह मैं हूं। (द्यावापृथिवीभ्यां गोपीथाय) द्यावापृथिवींद्वारा सुरक्षित होने के लिये (सः आत्मानं निदधे) वह मैं अपने आपको निःशेष देता हूं ॥ ७ ॥

मेरी (आयुः उत्) आयु उत्तम, (बलं उत्) बल उत्तम, (कृतं उत्) किया हुआ कर्म उत्तम, (कृत्यां उत्) काटनेकी शक्ति उत्तम,(मनीषां उत्) बुद्धि उत्तम, (इन्द्रियं उत्) इन्द्रिय उत्तम होवे। (आयुष्कृत् आयुष्पत्नी) आयुकी वृद्धि करनेवाले और जीवनका पालन करनेवाले तथा (स्वधावन्तौ) अपनी धारकशक्ति बढानेवाले तुम दोनों द्यावापृथिवी (मे गोपा स्तं) मेरे रक्षक होओ। (मा गोपायतं) मेरी रक्षा करो। (मे आत्मसदौ स्तं) मेरे आत्मामें रहनेवाले हों और (मा मा हिंसिष्टं) मुझे कभी विनाश न करें ॥ ८ ॥

भावार्थ— द्युलोक, अन्तरिक्षलोक और पृथिवी लोक इन तीनों लोकों-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

की और इनमें विद्यमान पदार्थोंकी मैं प्रशंसा करता हूं ॥ १—६ ॥

सूर्यही मेरा आंख, वायु मेरा प्राण, अन्तरिक्ष मेरा अन्तःकरण, और पृथ्वी मेरा स्थूलशरीर बना है। मैं अमर और अदम्य हूं। द्युलोक और पृथिवीलोक मेरी रक्षा करते हैं,इसलिये मैं अपने आपको उनके आधीन कर देता हूं ॥ ७ ॥

मेरी आयु, शक्ति, क्रियाशक्ति, काटनेकी शक्ति, मननशक्ति इंद्रियशक्ति, आदि शक्तियां उत्तम अवस्थामें रहें। आयु देनेवाली तथा जीवन का पालन करनेवाली और धारकशक्तिसे युक्त दोनों द्यावापृथिवी हैं, वे मेरी रक्षा करें, वे दोनों मेरे अंदर रहकर मेरी रक्षा करें और कभी मेरी शक्ति क्षीण न करें।

[१०]

अ॒श्म॒व॒र्म मे॑ऽसि॒ यो मा॒ प्राच्या॑ दि॒शो॒ऽघा॒युर॑भि॒दासा॑त् ।
ए॒तत् स ऋ॑च्छात् ॥ १ ॥
अ॒श्म॒व॒र्म मे॑ऽसि॒ यो मा॒ दक्षि॑णाया दि॒शो॒ऽघा॒युर॑भि॒दासा॑त् ।
ए॒तत् स ऋ॑च्छात् ॥ २ ॥
अ॒श्म॒व॒र्म मे॑ऽसि॒ यो मा॑ प्र॒तीच्या॑ दि॒शो॒ऽघा॒युर॑भि॒दासा॑त् ।
ए॒तत् स ऋ॑च्छात् ॥ ३ ॥
अ॒श्म॒व॒र्म मे॑ऽसि॒ यो मोदी॑च्या दि॒शो॒ऽघा॒युर॑भि॒दासा॑त् ।
ए॒तत् स ऋ॑च्छात् ॥ ४ ॥
अ॒श्म॒व॒र्म मे॑ऽसि॒ यो मा॑ ध्रु॒वाया॑ दि॒शो॒ऽघा॒युर॑भि॒दासा॑त् ।
ए॒तत् स ऋ॑च्छात् ॥ ५ ॥
अ॒श्म॒व॒र्म मे॑ऽसि॒ यो मो॒र्ध्वाया॑ दि॒शो॒ऽघा॒युर॑भि॒दासा॑त् ।
ए॒तत् स ऋ॑च्छात् ॥ ६ ॥
अ॒श्म॒व॒र्म मे॑ऽसि॒ यो मा॑ दि॒शाम॑न्तर्दे॒शेभ्यो॑ऽघा॒युर॑भि॒दासा॑त् ।
ए॒तत् स ऋ॑च्छात् ॥ ७ ॥
बृ॒ह॒ता मन॒ उप॑ ह्वये मा॒त॒रिश्व॑ना प्राणापा॒नौ ।
सूर्या॒च्चक्षु॑र॒न्तरि॑क्षा॒च्छ्रोत्रं॑ पृथि॒व्याः शरी॑रम् ।
सर॑स्वत्या॒ वाच॒मुप॑ ह्वयामहे मनो॒युजा॑ ॥ ८ ॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अर्थ-(मे अश्मवर्म असि) मेरा पत्थरका दृढ कवच तू है। (यः अघायुः) जो पापी (प्राच्याः, दक्षिणायाः, प्रतीच्याः, उदीच्याः, ध्रुवायाः, दिशां अन्तर्देशेभ्यः) पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ध्रुव, ऊर्ध्व और इन दिशाओं के मध्यके प्रदेशोंसे (मा अभिदासात्) मेरा नाश करे, (सः एतत् ऋच्छात्) वह स्वयं इस विनाशको प्राप्त होवे॥ १—७॥

(बृहता मन उपह्वये) बडे ज्ञान के साथ मनको मैं मांगता हूं। (मातरिश्वना प्राणापानौ) वायुसे प्राण और अपान, (सूर्यात् चक्षु) सूर्यसे आंख, (अन्तरिक्षात् श्रोत्रं) अन्तरिक्षसे कान, (पृथिव्याः शरीरं) पृथिवीसे शरीर, (मनोयुजा सरस्वत्या वाचं) मननसे युक्त विद्याके साथ वाणीको (उपह्वयामहे) मांगते हैं॥ ८॥

[१०]

भावार्थ—यह मेरा कवच है। जो पापी मेरे ऊपर सब दिशा उपदिशाओंसे हमला करके मेरा नाश करना चाहता है, वह स्वयं नष्ट होवे॥ १—७॥

मुझे ज्ञानयुक्त मन, वायुसे प्राण, सूर्यसे चक्षु, अन्तरिक्षसे श्रोत्र, पृथ्वीसे स्थूल शरीर, और मननशक्तिसे संयुक्त विद्याके साथ उत्तम वाणी को चाहता हूं, इनकी मुझे प्राप्ति होवे॥ ८॥

आत्मिक शक्ति।

अपने अन्दर आत्मिकशक्तिका विकास करनेके लिये जिन विशेष विचारोंकी धारणा अपने मनके अंदर करना आवश्यक है, वह धारणा इन दो सूक्तोंमें कही है। नवम और दशम ये दोनों सूक्तोंका ऋषि ब्रह्मा है और देवता वास्तोष्पति है। अर्थात् ये दोनों एक ही विषयके सूक्त हैं, इसलिये इनका मनन भी साथ साथ ही करते हैं।

नवम सूक्तके पहिले छः मंत्र, वस्तुतः ये तीन ही मंत्र हैं और दुबारा आनेसे छः बने हैं, पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक इन तीनों लोकोंके लिये स्वाहा अर्थात् (सु+आह) उत्तम शब्दोंद्वारा प्रशंसा कही है। द्युलोकमें सूर्य नक्षत्र आदि हैं, अन्तरिक्षमें इन्द्र, वायु, चंद्र, विद्युत् आदि हैं और पृथ्वीपर धान्य जल आदि अनंत पदार्थ हैं, जिनका उपयोग मनुष्य करता है और सुखी होता है। इस कारण ये तीन लोक और इनमें रहनेवाले अनंत पदार्थ मनुष्यके द्वारा प्रशंसा करने योग्य हैं। क्यों कि इनके विना मनुष्य जीवितही नहीं रह सकता, अतः ये प्रशंसा करने योग्य हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इन तीनों लोकोंके अंदर रहनेवाले सभी पदार्थ इस प्रकार मनुष्यके लिये उपकारक अत एव मनुष्यके प्रशंसाके लिये योग्य हैं। यह जानकर इनको अपने अंदर देखना चाहिये, अर्थात् ये मेरे अंदर आकर रहे हैं और मेरी शक्तिको बढाते हैं तथा प्रकाशित करते हैं। यह भाव मनमें धारण करनेको सप्तम मंत्रने कहा है। इस मंत्रका आशय यह है—

"सूर्य मेरा आंख हुआ है, वायु मेरा प्राण बना है, अन्तरिक्ष लोक मेरा अन्तःकरण बना है, और पृथिवीसे मेरा स्थूल शरीर बना है। (मं० ७)" यह सप्तम मंत्रका कहना है। देखिये, इस प्रकार द्युलोक का सूर्य, अन्तरिक्षलोकका वायु, और पृथिवीलोकके पदार्थ क्रमशः मेरे आंख, प्राण और स्थूलशरीरमें आकर रहे हैं, इस प्रकार मेरा साक्षात् संबंध इन तीनों लोकोंके साथ है, इन तीनों लोकोंके अंश आकर मेरे शरीरमें रहे हैं, अथवा इनका अवतार मेरे शरीरमें हुआ है। इस बातका विचार करनेसे अपनी आत्मशक्तिकी कल्पना सहजहीमें हो सकती है, यही बात अथर्ववेदके अन्य मंत्रोंमें भी कही है, देखिये—

सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणं पुरुषस्य विभेजिरे।
अथास्येतरमात्मानं देवाः प्रायच्छन्नग्नये॥

अथ० ११।८(१०)३१

"सूर्य और वायु ये क्रमशः पुरुष के आंख और प्राणमें विभक्त हुए हैं, इसी प्रकार इसके इतर आत्मभागोंको इतर देवोंने दिया है।" अतः कहते हैं कि—

तस्माद्वै विद्वान् पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते।
सर्वा ह्यस्मिन्देवता गावो गोष्ठ इवासते।

अथर्व ११।८(१०)३२

"इसीलिये ज्ञानी इस पुरुषको ब्रह्म मानता है, क्यों कि सब देवताएं इसमें वैसी रहती हैं, जैसी गोशालामें गौवें रहती हैं।" इस मंत्रमें तो सभी देवताएं मनुष्यके शरीरमें विविध अवयवोंमें रहती हैं, ऐसा कहा है। पूर्वोक्त मंत्रोंमें कुछ देवताओंका यहांका निवास वर्णन किया है, और इस मंत्रमें कहा है कि सब देवताएं यहां रहती हैं, अर्थात् अन्य देवताओंका पता मननसे लगाना चाहिये। यह मनन करके उपनिषदोंमें कुछ अन्य देवताओंका भी स्थान निर्देश किया है, वह मनोरंजक विषय अब देखिये—

अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशत्, वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत्, आदित्यश्चक्षुर्भूत्वाक्षिणी प्राविशत्, दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन्, ओषधिवनस्पतयो लोमानि भूत्वा त्वचं प्रा-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

विशन्, चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशत्, मृत्युरपानो भूत्वा नाभिं प्राविशत्, आपो रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशत् ॥

ऐ० उ० १।२।४

"अग्नि वाणी बनकर मुखमें घुसा, वायु प्राण बनकर नाकमें प्रविष्ट हुआ, सूर्य आंख बनकर नेत्रमें रहने लगा, दिशाएं कान बनकर कानके स्थानपर रहने लगीं, औषधि और वनस्पतियां लोम बनकर त्वचामें प्रविष्ट होगई, चन्द्रमा मन बनकर हृदयमें घुसा, मृत्यु अपान होकर नाभिमें रहने लगा, जल रेत बनकर शिश्नमें प्रविष्ट हुआ।" इस प्रकार अन्यान्य देवताएं अन्यान्य स्थानोंमें रहने लगीं। यह है अपने शरीरमें देवताओंका निवास। यहां देवताएं रहती हैं, इसलिये इस शरीरको "देवों का मन्दिर" कहते हैं। बाह्य सृष्टिमें बडे बडे सूर्यादि देव हैं; उनके अंश बीजरूपसे यहां अपने शरीरमें आगये हैं और इन्ही अंशोंके बडे विस्तृत देव फिर बनते हैं, इस विषयमें निम्नलिखित उपनिषद्वचन देखिये--

मुखाद्वाग्वाचोऽग्निः,....नासिकाभ्यां प्राणः प्राणाद्वायुः,...अक्षिभ्यां चक्षुश्चक्षुष आदित्यः,...कर्णाभ्यां श्रोत्रं श्रोत्राद्दिशः,... त्वचो लोमानि लोमभ्य ओषधिवनस्पतयः, ...हृदयान्मनो मनसश्चन्द्रमाः,....नाभ्या अपानोऽपानान्मृत्युः, शिश्नाद्रेतो रेतसः आपः ॥४॥

ऐतरेय उ. १।१

"मुखसे वाणी, वाणीसे वाचा;....नासिकासे प्राण, प्राणसे वायु; ....आंखोंसे चक्षु, चक्षुसे सूर्य; ... कानोंसे श्रोत्र, श्रोत्रसे दिशाएं; ... त्वचासे लोम, लोमोंसे ओषधि-वनस्पतियां;.... हृदयसे मन, मनसे चन्द्रमा;...नाभीसे अपान और अपानसे मृत्यु;... शिश्नसे रेत और रेतसे जल हुआ।"

इन दोनों वचनोंमें पाठक तुलना करके देखेंगे, तो उनको पता लग जायगा कि पहिलेमें बृहत् देवताओंसे अपने अन्दरके सूक्ष्म देव होनेका वर्णन है और दूसरेमें इन सूक्ष्म अंशोंसे फिर वृद्धि होकर बडे देव बननेका वर्णन है। जिस प्रकार मनुष्य शरीर-से वीर्यबिंदु उत्पन्न होता है और फिर इस वीर्यबिन्दुसे मनुष्य शरीर बनता है, उसी प्रकार संकोच और विस्तार यहां भी होता है। अस्तु।

मनुष्यके अंदर सूर्यादि सब देवोंकी शक्तियां हैं यह बात यहां मनुष्यने स्मरणमें रखना चाहिये। मैं तुच्छ नहीं हूं, परंतु मैं उनही शक्तियोंसे युक्त हूं कि जिनसे युक्त

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

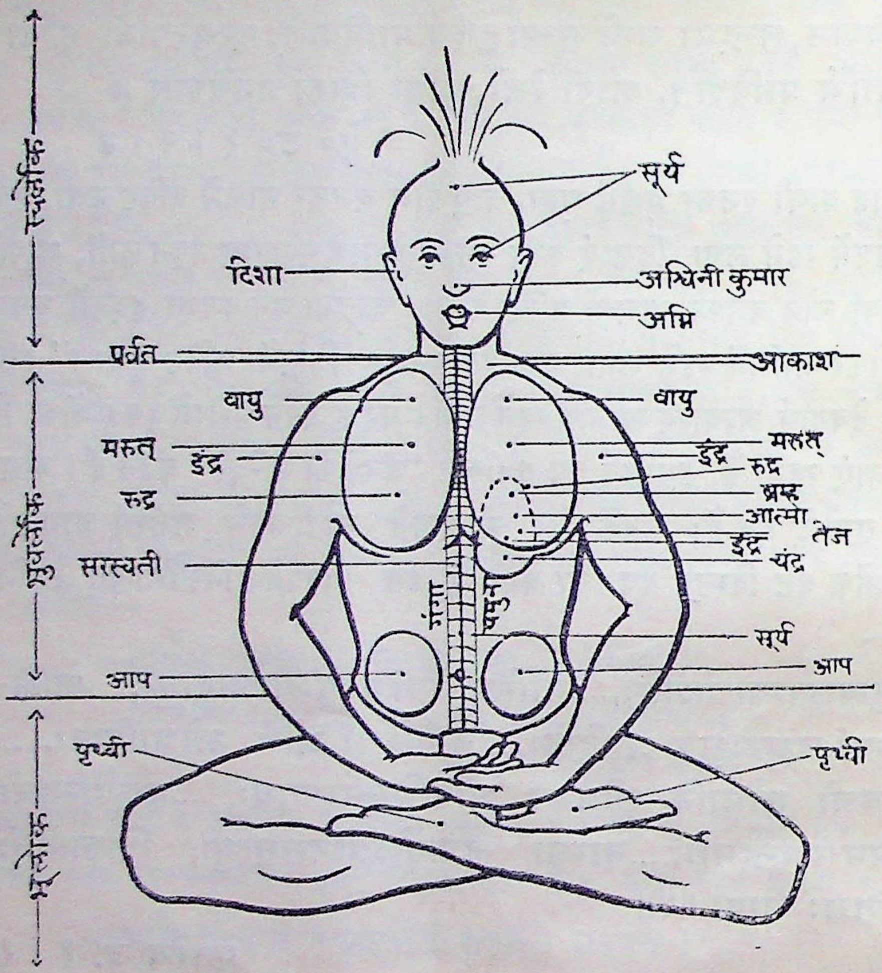

परमात्मा है। मेरी शक्तियां अंशरूप हैं और उसकी पूर्णरूप हैं। अर्थात् शक्तियां मेरे शरीरमें हैं, जिनका विकास धर्मानुष्ठानसे करना है। यह सप्तम मंत्रका आशय है, यह मंत्र मनुष्यको एक विशेषही शक्ति दे रहा है। पाठक, इसका अनुभव अपने मनमें करें। इस शक्तिको अपने अन्दर देखनेके बाद ही कहा जाता है कि—

अयं अहं अस्तृतः नाम अस्मि। (मं० ७)

" यह मैं अमर अथवा अदम्य शक्तिसे युक्त हूं " पाठक इसका विचार करें। अपने अन्दर इतनी शक्ति है और मैं अमर हूं, शरीरनाश होनेसे मैं नष्ट नहीं होता। जिस प्रकार परमात्मा ' अ-मर ' है, उसी प्रकार आत्मदृष्टिसे मैं भी ' अ-मर ' हूं। यह विश्वास इस मंत्रने दिया है। पाठक ही अनुभव करें कि इस विचारको मनमें धारण करनेसे कितना आत्मिकबल बढता है। वेदकी शिक्षा आत्मिक बल बढाती है और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अपनी शक्तियोंका ज्ञान कराती है, यह बात इस प्रकार है । जब यह मनुष्य इस प्रकार आत्मशक्तिका अनुभव लेता है, तब यह सब जगत्के लिये अपने आपका समर्पण करता है--

आत्मानं द्यावापृथिवीभ्यां गोपीथाय निद्धे । (मं० ७)

" मैं अपने आपको द्यावा पृथिवीके लिये रक्षाके अर्थ देता हूं । " इस प्रकार सब जगत् इसकी रक्षा करता है, सब विश्वसे जो सुरक्षित होता है, वह निर्भय होकर विचरता है । इसी निर्भयतासे उसकी उन्नति होती है। इसके पश्चात् वह जितना अधिक आत्मसमर्पण करता है,उतना अधिक बल प्राप्त करता है । इस रीतिसे—" आयु, बल, शक्ति, कर्म, बुद्धि, इन्द्रिय, आदिकी शक्तियां उत्कृष्टतम हो जाती हैं । " (मं० ८) यह उसका शक्तिविकास है । " इस प्रकार अन्न देनेवाले दोनों लोक इसकी पूर्ण रक्षा करते हैं । " (मं० ८) ये लोक वस्तुतः—

मे आत्मसदौ स्तम् । (मं० ८)

" मेरी आत्मामें रहनेवाले हैं ।" यह बात उपनिषद्वचनोंसे इसके पूर्व बतादी है । अपने शरीरमें आत्माके आधारसे ये सब सूर्यादि पदार्थ अर्थात् तीनों लोक रहते हैं ।

ये सब उन्नति ही करते हैं और धर्मपथपर चलने से कभी अवनति नहीं करते । इस प्रकार नवम सूक्तका विचार हुआ, अब दशम सूक्तका विचार करते हैं—

पत्थरका कवच ।

दशम सूक्तके आदिके सात मंत्रोंमें 'पत्थरके कवच' का वर्णन आया है । पूर्वोक्त ज्ञानही मनुष्य का 'पत्थर जैसा दृढ कवच' है, जिससे मनुष्य सुरक्षित होकर उन्नतिको प्राप्त कर सकता है । " किसीभी दिशासे शत्रु हमला चढावे, जिसके शरीरपर यह पूर्वोक्त ज्ञानरूपी कवच है वह हमेशा सुरक्षित रहता है । " (मं० १-७) यह इन सात मंत्रोंका तात्पर्य है । जो ज्ञान पत्थर जैसा सुदृढ कवच है, वही पूर्वोक्त मंत्रमें कहा हुआ ज्ञान इस सूक्तके अष्टम मंत्रमें पुनः कहा है—

"सूर्यसे चक्षु, अन्तरिक्षसे श्रोत्र, पृथिवीसे शरीर, वायुसे प्राणापान और बृहच्छक्ति से मन, सरस्वतीसे वाणी, प्राप्त करता हूं ।" (मं० ८) इस मंत्रमें भी पूर्व सूत्रोक्त ज्ञान ही कहा है । क्यों कि यही मनुष्यका रक्षक सुदृढ कवच है । पाठक, इस ज्ञानको अपनावें और निर्भय बनें ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

श्रेष्ठ देव।

[११]

(ऋषिः- अथर्वा। देवता-वरुणः)

कथं महे असुरायाब्रवीरिह कथं पित्रे हरये त्वेषनृम्णः।
पृश्निं वरुण दक्षिणां ददावान् पुनर्मघ त्वं मनसाचिकित्सीः ॥ १ ॥
न कामेन पुनर्मघो भवामि सं चक्षे कं पृश्निमेतामुपाजे।
केन नु त्वमथर्वन् काव्येन केन जातेनासि जातवेदाः ॥ २ ॥

अर्थ— (महे असुराय कथं अब्रवीः) महान् शक्तिवान के लिये तुमने कैसा क्या कहा? और (त्वेषनृम्णः इह हरये पित्रे कथं) स्वयं तेजस्वी होता हुआ तू यहां दुःख हरण करनेवाले पिताके लिये भी कैसा क्या कहा है? हे (वरुण) श्रेष्ठ प्रभो! हे (पुनर्मघ) पुनः पुनः धन देनेवाले देव! (पृश्निं दक्षिणां ददावान) गौ आदि दक्षिणा देता हुआ (त्वं मनसा अचिकित्सीः) तूने मनसे हमारी चिकित्सा की है ॥१॥

(कामेन पुनर्मघः न भवामि) केवल इच्छासे ही मैं पुनः पुनः धनवाला नहीं होता हूं। मैं (कं संचक्षे) किसे यह कहूं ? (एतां पृश्निं उप अजे) इस गौ आदिको पास ले चलता हूं। हे (अथर्वन्) शान्त स्वभाववाले देव ! (केन नु काव्येन त्वं) किस काव्यसे तू और (केन जातेन जातवेदाः असि) किसके होनेसे तू जातवेद हुआ है ॥ २ ॥

भावार्थ- (भक्तका कथन)= हे ईश्वर ! बडे बडे शक्तिमानको भी तुमने क्या उपदेश दिया है? और सबका दुःख हरण करनेवाले पिताको भी तुमने क्या कहा था? तू स्वयं तेजस्वी है। तूने ही यह गौ, भूमि, वाणी आदिका दान दिया है और हे पुनः पुनः धन देनेवाले देव! तूने ही हमारी चिकित्सा की है ॥ १ ॥

केवल इच्छा करने मात्रसेही धनवान नहीं होता हूँ। यह मैं किसे ठीक प्रकार कहूं? मैं इस गौ, भूमि, वाणी आदिको प्राप्त करता हूं। हे देव! किस काव्यके बनानेसे तथा किस पदार्थके बनानेसे तू जातवेद कहा जाता है? ॥ २ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सत्यमहं गंभीरः काव्येन सत्यं जातेनास्मि जातवेदाः ।
न मे दासो नार्यो महित्वा व्रतं मीमाय यदहं धरिष्ये ॥ ३ ॥
न त्वदन्यः कवितरो न मेधया धीरतरो वरुण स्वधावन् ।
त्वं ता विश्वा भुवनानि वेत्थ स चिन्नु त्वज्जनो मायी बिभाय ॥ ४ ॥
त्वं ह्यङ्ग वरुण स्वधावन् विश्वा वेत्थ जनिमा सुप्रणीते ।
किं रजस एना परो अन्यदस्त्येना किं परेणावरममुर ॥ ५ ॥

अर्थ-(सत्यं अहं गभीरः) सत्य है कि मैं गंभीर हूं। और (सत्यं) यह भी सत्य है कि मैं (जातेन काव्येन जातवेदाः अस्मि) काव्य उत्पन्न करनेसेही जातवेद कहलाता हूं। (यत् अहं धरिष्ये) जिसका मैं धारण करता हूं (मे व्रतं) उस मेरे नियमको (न दासः न आर्यः) न तो दास और न आर्य (महित्वा मीमाय) महत्त्वके साथ तोड सकता है ॥ ३ ॥

हे (स्वधावन् वरुण) अपनी धारण शक्तिसे युक्त श्रेष्ठ देव! (त्वत् अन्यः कवितरः न) तेरेसे भिन्न दूसरा कोई अधिक कवि नहीं है। (मेधया धीरतरः न) और बुद्धिके कारण अधिक धीरवाला भी कोई नहीं है। (त्वं ता विश्वा भुवनानि वेत्थ) तू उन सब भुवनोंको जानता है। इसलिये (सः मायी जनः) वह कपटी मनुष्य (त्वत् चित् नु बिभाय) तुझसे निःसंदेह भयभीत होता है ॥ ४ ॥

हे (अङ्ग स्वधावन् सुप्रणीते वरुण) प्रिय, अपनी धारणाशक्तिसे युक्त, उत्तम चलानेवाले श्रेष्ठ देव!(त्वं हि विश्वा जनिमा वेत्थ) तू ही सब जन्मोंको जानता है। हे (अ-सुर) ज्ञानी ! (एना रजसः परः अन्यत् किं अस्ति) इस प्रकृतिके परे दूसरा क्या है? (एना परेण अवरं किं) और इस परेवाले के उरे भी क्या है? ॥ ५ ॥

भावार्थ-(ईश्वरका उत्तर)-यह बात सत्य है कि मैं बडा गंभीर हूं और यह भी सत्य है, कि इस काव्यके प्रकाशित होनेके कारण मैं जातवेद नामसे प्रसिद्ध हूं। जिस नियमको मैं बनाता हूं, उसको कोई तोड नहीं सकता, फिर वह आर्य हो वा दास हो ॥ ३ ॥

(भक्तका कथन) हे श्रेष्ठ और समर्थ देव ! तेरेसे भिन्न कोई भी अधिक श्रेष्ठ कवि नहीं है और बुद्धिवान् भी नहीं है। तू ही संपूर्ण भुवनोंका

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

एकं रजस एना परो अन्यदस्त्येना पर एकेन दुर्णशं चिदर्वाक् ।
तत् ते विद्वान् वरुण प्र ब्रवीम्यधोवचसः पणयो भवन्तु
नीचैर्दासा उप सर्पन्तु भूमिम् ॥ ६ ॥
त्वं ह्यङ्ग वरुण ब्रवीषि पुनर्मघेष्ववद्यानि भूरि ।
मो षु पणीँरभ्ये३तावतो भून्मा त्वा वोचन्नराधसं जनासः ॥ ७ ॥

अर्थ-(एना रजसः परः अन्यत् एकं अस्ति) इस प्रकृतिके परे दूसरा एक पदार्थ है। और (एना एकेन परः) इस एकसे परे जो है उसके (अर्वाक् चित् दुर्णशं) उरे का भी पदार्थ दुष्प्राप्य है। हे (वरुण) श्रेष्ठ देव! (ते तत् विद्वान् प्रब्रवीमि) तेरा वह महिमा जाननेवाला मैं कहता हूं कि (पणयः अधो वचसः भवन्तु) कुत्सित व्यवहार करनेवाले लोग नीचे मुख करनेवाले होवें, तथा (दासाः भूमिं नीचैः उपसर्पन्तु) दास भाववाले लोग भूमिपर नीचेसे चलते रहें ॥ ६ ॥

हे (अङ्ग वरुण) प्रिय श्रेष्ठ प्रभो! (त्वं हि पुनर्मघेषु) तू भी फिर धन प्राप्त करनेके व्यवसायोंमें (भूरि अवद्यानि ब्रवीषि) बहुत निन्दायोग्य दोष होते हैं, ऐसा कहता है। (एतावतः पणीन् मो सु अभिभूत) इन व्यवहार करनेवालोंकोभी हानि कभी न होवे और (जनासः त्वा अराधसं मा वोचन्) लोग तुझे धनहीन भी न कहें ॥ ७ ॥

ज्ञाता है इसलिये सब दुष्ट कपटी लोग तेरेसे ही डरते रहते हैं ॥ ४ ॥

हे ईश्वर! तू सबके सब जन्मोंको जानता है। हे देव! इस प्रकृतिके परे क्या है और सबसे परे है उसके उरेभी क्या है? ॥ ५ ॥

(ईश्वरका उत्तर)= इस प्रकृतिके परे एक वस्तु है, और उस अन्तिम वस्तुके उरेभी एक दुष्प्राप्य वस्तु है। (भक्तका कथन) = हे देव! तेरा महिमा जानकर मैं कहता हूं कि दुष्ट व्यवहार करनेवालोंका मुख नीचे हो जावे और सब दास भाववाले भी अधोगतिको पहुंचें ॥ ६ ॥

हे श्रेष्ठ देव! तुमने कहा है कि वारंवार धन बढाने के प्रयत्नोंमें बहुत ही दोष उत्पन्न होते हैं। इसलिये मैं प्रार्थना करता हूं कि सबपर ऐसी दया कर, कि ये व्यवहार करनेवाले भी कभी हानि न उठावें और दूसरे लोगभी तुमको कंजूस न कहें ॥ ७ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मा मा॑ वोचन्नरा॒धसं॒ जना॑सः पुन॑स्ते॒ पृश्निं॑ जरित॒र्ददा॑मि ।
स्तोत्रं॑ मे॒ विश्व॒मा या॑हि॒ शची॑भिर॒न्तर्विश्वा॑सु॒ मानु॑षीषु दि॒क्षु ॥ ८ ॥
आ ते॑ स्तो॒त्राण्युद्य॑तानि यन्त्व॒न्तर्विश्वा॑सु॒ मानु॑षीषु दि॒क्षु ।
दे॒हि नु मे॒ यन्मे॒ अद॑त्तो असि॒ युज्यो॑ मे स॒प्तप॑दः सखा॑सि ॥ ९ ॥
स॒मा नौ॒ बन्धु॑र्वरुण स॒मा जा वेदा॒हं तद्यन्नावे॒षा स॒मा जा ।
ददा॑मि॒ तद् यत् ते॒ अद॑त्तो अस्मि॒ युज्य॑स्ते स॒प्तप॑दः सखा॑स्मि ॥ १० ॥

अर्थ-(जनासः मा अराधसं मा वोचन्) लोग मुझे धनहीन न कहें । हे (जरितः) स्तुति करनेवाले ? (ते पृश्निं पुनः ददामि) तेरी गौको मैं फिर देता हूं । (विश्वासु मानुषीषु दिक्षु अन्तः) सब मनुष्योंसे युक्त दिशाओं-के बीचमें (शचीभिः मे विश्वं स्तोत्रं आयाहि) बुद्धियोंके साथ मेरे सब स्तोत्रको प्राप्त हो ॥ ८ ॥

(ते स्तोत्राणि) तेरे स्तोत्र (विश्वासु मानुषीषु दिक्षु अन्तः) सब मनुष्योंसे युक्त दिशाओंमें (उद्यतानि यन्तु) उत्तम प्रकार फैलें । (यत् मे अदत्तः) जो मुझे दिया नहीं, (नु मे देहि) वह मुझे दे । क्यों कि तू (मे सप्तपदः युज्यः सखा असि) मेरा सात चरण चल कर बने हुए के समान योग्य मित्र है ॥ ९ ॥

हे (वरुण) श्रेष्ठ देव ! (नौ समा बन्धुः) हम दोनों समान बन्धु हैं । और (जा समा) हमारी उत्पत्ति भी समान है । (अहं तत् वेद) मैं वह भी जानता हूं (यत् नौ एषा समा जा) कि जो हमारी यह समान उत्पत्ति है । (यत् ते अदत्तः) जो तुझे नहीं दिया है (तत् ददामि) मैं वह देता हूं । (ते युज्यः अस्मि) तेरे योग्य मैं हूं । तेरा (सप्तपदः सखा अस्मि) सात चरण चलकर बना हुआ मित्र मैं हूं ॥ १० ॥

भावार्थ-लोग मुझेभी धनहीन या कंजूस न कहें । हे देव! जो गौ आदि मेरा धन है, वह सब तेरे लिये समर्पित करता हूं । मैं चाहता हूं कि यह तेरा स्तोत्र सर्वत्र जगत्के मनुष्योंमें फैले ॥ ८ ॥

तेरे स्तोत्र जगत्के मनुष्योंमें फैल जांय । हे देव! जो अभीतक मुझे प्राप्त नहीं हुआ वह मुझे अब प्राप्त हो, क्योंकि मैं तेरा सुयोग्य मित्र हूं ॥ ९ ॥

हे ईश्वर! हम दोनों बन्धु हैं, हमारा जन्मभी समान है । मैं जानता हूं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

देवो देवाय गृणते वयोधा विप्रो विप्राय स्तुवते सुमेधाः ।
अजीजनो हि वरुण स्वधावन्नथर्वाणं पितरं देवबन्धुम् ।
तस्मा उ राधः कृणुहि सुप्रशस्तं सखा नो असि परमं च बन्धुः ॥ ११ ॥

अर्थ-(गृणते देवाय वयोधाः देवः) स्तुति करनेवाले विद्वान्के लिये अन्न देनेवाला देव तू है। तथा तू (स्तुवते विप्राय सुमेधाः विप्रः) स्तुति करने वाले ज्ञानीके लिये उत्तम मेधावान् ज्ञानी है। हे (स्वधावन् वरुण) हे अपनी धारणाशक्तिसे युक्त श्रेष्ठ देव ! तू (देवबन्धुं पितरं अथर्वाणं अजीजनः) देवों के भाई जैसे पालक अथर्वा-योगी को बनाता है। (तस्मा उ सुप्रशस्तं राधः कृणुहि) उसके लिये उत्तम प्रशंसनीय धन प्रदान कर। (नः सखा असि) तू हमारा मित्र है और (परमं च बन्धुः) परम बन्धु भी तूही है ॥ ११ ॥

कि यह हमारी समानता कैसी है। मैंने जो अभीतक तेरे लिये समर्पित नहीं किया है, वह मैं तुम्हें अब समर्पित करता हूं। अब मैं तेरा योग्य मित्र हूं और सखा भी हूं ॥ १० ॥

स्तुति करनेवाले उपासक को अन्नादि देनेवाला तूही एक देव है। उपासक को उत्तम ज्ञान देनेवाला भी तूही है। हे श्रेष्ठ देव! तू ही रक्षकोंको उत्पन्न करता है, और उनको धनादि पदार्थ अथवा सिद्धि देता है। तू ही हम सबका मित्र है और भाई भी है ॥ ११ ॥

ईश्वर और भक्तका संवाद।

ईश्वर और भक्तका संवाद इस सूक्तमें होनेसे इस सूक्तका महत्त्व विशेष है। वेदमें इस प्रकारके संवादात्मक सूक्त बहुत थोडे हैं, इसलिये इन सूक्तोंका मनन कुछ विशेष रीतिसे करना आवश्यक है।

इस सूक्तमें ईश्वरका नाम " पुनर्मघ " आया है। पुनः पुनः धन देनेवाला, जो एकवार निर्धन हुआ है, उसको भी पुनः धन देनेवाला, यह इस शब्दका अर्थ है। दो प्रकारसे ईश्वरकी सहायता होती है। यह बात इस सूक्तके प्रथम मंत्रमें कही है—

१ पृश्निं दक्षिणां ददावान्। (मं० १)

२ त्वं मनसा अचिकित्सीः। (मं० १)

" (१) परमेश्वर भूमि, गौ, वाणी आदि धनोंकी दक्षिणा वारंवार देता है, और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

(२) सबकी मनसे चिकित्सा करता है। " अर्थात् जगत्के विविध पदार्थ देकर उपभोगके अनंत साधन प्रदान करता है, जिससे मनुष्य सुखपूर्वक इस भूमिपर रह सकता है। यह स्थूल शरीरके सुखका प्रबंध ईश्वरद्वारा होता है। इसी प्रकार सबकी मानस चिकित्सा भी करता है। हरएक मनुष्यको सन्मार्गमें प्रवृत्त करता है, उलटे मार्ग पर लगे मनुष्यको सीधे मार्गपर लाता है, सन्मार्गकी प्रेरणा करता है। इस प्रकार अनंत रीतियां हैं, जिनके द्वारा वह सबका भला करता है।

ये ईश्वरके सब पर अनंत उपकार हैं। इस मंत्रमें " पृश्नि " शब्द है, जिसका अर्थ " प्रकृति, भूमि, गौ, वाणी, विद्या " आदि अनेक प्रकार हो सकता है। यहां प्राकृतिक विश्वके उपलक्षणमें यह शब्द आया है।

दो प्रकारके लोग।

जगत्में दो प्रकारके लोग हैं और उनको ज्ञान देनेके भी दो प्रकार हैं। एक प्रकारके लोग " असुर " कहलाते हैं और दूसरे प्रकारके " पिता हरि " कहलाते हैं। " असुर " शब्द शारीरिक बलसे युक्त पुरुषोंका वाचक है और " पिता हरि " का अर्थ है कि जो "रक्षक और दुःख हरण करनेवाले" होते हैं। इनके विषयमें यह कहा है—

१ महे असुराय कथं अब्रवीः। (मं० १)

२ पित्रे हरये कथं अब्रवीः। (मं० १)

" (१) बडे शक्तिशालीके लिये तूने क्या और कैसा कहा है? और (२) दूसरोंके रक्षक और दूसरोंका दुःख हरण करनेवाले मनुष्यके लिये कैसा और क्या उपदेश दिया है!" इस जगत्में कई लोग शारीरिक शक्तिके घमंडमें कुछ विशेष प्रकारसे व्यवहार कर रहे हैं और दूसरे लोग ऐसे हैं कि जो अपना बल परोपकारार्थ लगाते हैं और दूसरोंकी रक्षा करते हैं, और दुसरोंके दुःखोंका हरण करते हैं, इन सत्पुरुषोंको किस प्रकारका उपदेश तूने दिया है? कई बलवान लोग ऐसे होते हैं कि जो अपनी शक्तिका उपयोग दूसरोंकी भलाईके लिये करते हैं, परंतु कई शक्तिमान लोग ऐसे हैं कि जो अपनी शक्तिसे दूसरोंकी सहायता भी करते हैं। इन सब लोगोंको तूने किस प्रकारका उपदेश दिया है, जिससे ये विविध प्रकारकी प्रवृत्तियां लोगोंमें दिखाई देती हैं! यह आशय इस प्रथम मंत्रके प्रश्नोंका है। तू लोगोंको सब जगत्के पदार्थ अर्पण करके तथा उनकी आधिव्याधियोंका शमन करके सबका भला करता है, तथापि जनतामें ऐसी भिन्न प्रवृत्तिके लोक किस कारण उत्पन्न होते हैं, यह भाव यहां है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

प्रयत्न का महत्त्व।

केवल इच्छा करनेसेही सफलता प्राप्त नहीं हो सकती, इच्छाके साथ प्रयत्नकी भी अत्यंत आवश्यकता है, यह बात विशेष रीतिसे द्वितीय मंत्रमें कही है—

न कामेन पुनर्मघो भवामि। (मं० २)

" केवल इच्छा करने मात्रसेही पुनः धनयुक्त नहीं होता हूं। " अर्थात् इच्छाके साथ विशेष प्रयत्नकी भी आवश्यकता है। जो इच्छा करेगा और सिद्धिके लिये प्रयत्न करेगा उसको ही सिद्धि प्राप्त हो सकती है। नहीं तो इच्छा करनेवाला कोई मनुष्य धन हीन नहीं रहेगा। परंतु हम देखते हैं कि हरएक मनुष्य धनी बननेकी इच्छा करता है, परंतु सभी निर्धन रहते हैं और क्वचित् कोई मनुष्य धनी होता है और धनी होनेपर बहुत ही थोडे सुखी होते हैं! इसलिये पुरुषार्थका महत्त्व विशेषही है। यह बात—

कं संचक्षे? (मं०२)

"किससे मैं कहूं।" अर्थात् हर कोई मनुष्य धनी होना चाहता है, परंतु प्रयत्न करनेकी तैयारी नहीं करता। यह अवस्था होनेके कारण मंत्र कहता है कि "केवल इच्छामात्रसे सिद्धि नहीं हो सकती, यह बात मैं किससे कहूं? कौन इस उपदेशको सच्ची प्रकार सुननेको तैयार है? सुनते तो सबही हैं, परंतु करते बहुत ही थोडे हैं। जो प्रयत्न करते हैं वे—

एतां पृश्निं उप आजे। (मं० २)

"इस प्रकृति (भूमि, वाणी, गौ आदि) को चलाते हैं, प्राप्त करते हैं और अपनी इच्छाके अनुसार उनसे कार्य लेते हैं।" यह सब प्रयत्नसे ही साध्य होता है, परंतु जो लोग प्रयत्न तो करते नहीं और इच्छाएं बडी बडी करते रहते हैं, उनसे कुछ भी नहीं होता। इसलिये उन्नति चाहनेवाले मनुष्यको उचित है कि वे सदिच्छा धारण करें और उसकी सिद्धता के लिये हो सकता है उतना प्रयत्न भी करें।

ईश्वरका महत्त्व।

जैसे इतर पदार्थ हैं वैसा ही ईश्वर भी है। फिर सबके ऊपर परमेश्वरका शासन कैसा हुआ, इस विषयमें द्वितीय मंत्रका प्रश्न बडा मननीय है—

हे अथर्वन्! त्वं केन? केन काव्येन जातेन
जातवेदाः असि? (मं० २)

"हे निश्चल देव! तू किस कारण निश्चल हुआ है और किस काव्यके प्रकट करनेसे जातवेद कहलाता है?" अर्थात् तू जो निश्चल है और तुझे कोई भी अपने स्थानसे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हिला नहीं सकता, इतनी शक्ति तेरे अन्दर किस कारण प्राप्त हुई है और तुम्हें ज्ञानका उगम कहते हैं, वह भी किस कारण है ? किस पुरुषार्थके कारण परमेश्वरका यह महात्म्य प्रसिद्ध हुआ है, परमेश्वरकी ऐसी कौनसी पुरुषार्थ शक्ति है कि जिससे परमेश्वरका ऐसा ऐश्वर्य बढा हुआ है ? यह प्रश्न यहां है भक्तका यह प्रश्न श्रवण करके परमेश्वर तृतीय मंत्रमें उत्तर देते हैं—

यत् अहं धारिष्ये, (तत्) मे व्रतं न दासः आर्यः मिमाय। (मं० ३)

"मैं जो नियम करता हूं, उस मेरे नियमको दास अथवा आर्य कोई भी तोड नहीं सकता।" व्रतपालनकी यह दक्षता परमेश्वर में है, इसलिये उसका शासन सर्वतोपरि हुआ है। नियमका पालन स्वयं करना और दूसरोंसे नियमका पालन करवाना, ये कार्य आत्मशक्तिसे होते हैं। परमेश्वर सबसे अधिक शक्तिमान है, इसलिये वह स्वयं नियमपालन करता है और दूसरोंसे नियमपालन करवाता है और उसने अपने विश्वव्यापक राज्यमें ऐसी व्यवस्था रखी है कि उसके नियमोंको कोई भी तोड न सके। ऐसा उत्तम शासन रहनेके कारण उसका अधिकार सर्वतोपरि हुआ है। यह बात परमेश्वरकी शक्तिके विषयमें हुई, अब उसके ज्ञानके विषयमें देखिये—

सत्यं, काव्येन जातेन अहं जातवेदाः अस्मि। (मं० ३)

"यह बात सत्य है कि यह काव्य प्रसिद्ध होनेके कारण ही मैं जातवेद नामसे प्रसिद्ध हुआ हूं।" जातवेदका अर्थ 'जिससे वेद प्रसिद्ध हुए' ऐसा है। परमेश्वरका यह निश्वसित वेद जगत्में प्रसिद्ध होनेके कारण ही ईश्वरकी ज्ञानविषयमें श्रेष्ठता जगत्में प्रसिद्ध होगई है। पहिले मंत्रभागमें उसकी शक्तिका वर्णन हुआ और प्रबंधशक्तिका भी वर्णन हुआ है। इस मंत्रभागमें उसकी ज्ञानशक्तिका वर्णन हुआ। सबसे पूर्ण और श्रेष्ठ ज्ञान परमेश्वरही सबको देता है, जो ध्यान लगाते हैं वे उससे समाधान प्राप्त करते हैं। यह सामर्थ्य परमेश्वरका ही है। इसी प्रकार परमेश्वरकी गंभीरताका भी वर्णन इसी मंत्रमें निम्नलिखित प्रकार है—

सत्यं, अहं गभीरः। (मं० ३)

"यह सत्य है कि, मैं गंभीर हूं।" गंभीर उसको कहते हैं कि जिसकी गहराईका किसीको पता नहीं लगता। सबसे गंभीर परमेश्वर ही है, क्यों कि उसकी गहराईका पता अभी तक किसीको लगा नहीं, इतनाही नहीं, परंतु उसके द्वारा बनाई गयी यह सृष्टि है, इसकी गंभीरताका भी पता अभीतक किसीको भी लगा नहीं है। उसकी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

गंभीरता इतनी है। ये गुण परमात्मामें होनेसे ही परमेश्वरका शासन सर्वतोपरि होगया है।

इस प्रकार तृतीय मंत्रमें परमात्माका भाषण श्रवण करके भक्त फिर ईश गुणोंका वर्णन कर रहा है—

१ त्वत् अन्यः कवितरः न। (मं० ४)
२ [त्वत् अन्यः] मेधया धीरतरः न (मं० ४)

" (१) तेरेसे भिन्न दूसरा कोई अधिक श्रेष्ठ कवि वा ज्ञानी नहीं है, और (२) तेरेसे भिन्न बुद्धिसे अधिक बुद्धिवान् भी कोई नहीं है। " अर्थात् तूही इन गुणोंमें सबसे श्रेष्ठ है। क्यों कि-

त्वं ता विश्वा भुवनानि वेत्थ। (मं० ४)
त्वं विश्वा जनिमा वेद। (मं० ५)

" तू ही इन सब भुवनोंको और जन्मोंको जानता है। " संपूर्ण पदार्थमात्रका ज्ञान तेरे अंदर है, तेरे लिये कोई अज्ञात पदार्थ नहीं है। तू सर्वज्ञ, श्रेष्ठ कवि और विशेष ज्ञानी होनेके कारण सब लोगोंके गुण दोष तू यथावत् जानता है, इसी कारण-

मायी जनः त्वत् बिभाय। (मं० ४)

" कुटिल मनुष्य तुझे डरता रहता है। " क्योंकि कपटी मनुष्य यद्यपि अन्य लोगोंके साथ कपट कर सकता है, तथापि वह परमेश्वर के साथ नहीं कर सकता; क्योंकि परमेश्वर उसके कर्मोंको यथावत् जानता है, उसे छिपा हुआ कुछ भी नहीं हैं। इसीलिये सब छली और कपटी उस परमेश्वरसे सदा डरते रहते हैं। जाहिरी तौरपर बतावें या न बतावें, परंतु वे मनमें डरते रहते हैं। इस सर्वज्ञताके कारण परमेश्वरका शासन सर्वतोपरि हुआ है।

पंचम मंत्रमें भी यही बात पुनः कही है कि " वह ईश्वर सबके जन्मोंको यथावत् जानता है। " फिर कौन उससे कैसा छिपा सकता है। पञ्चम मंत्रके उत्तरार्धमें कहा है कि-

रजसः परः किम् अन्यत् अस्ति ? (मं ५)
किं परेण अवरम् ? (मं० ५)

" इस प्रकृतिके परे दूसरा क्या है और उसके परे भी और क्या है? " उत्तरमें कहते हैं-

रजसः एकं परः अन्यत अस्ति।
परः एकेन दुर्णशं चित् अर्वाक्॥ (मं० ६)

" इस प्रकृतिके परे एक श्रेष्ठ तत्त्व है और उसके परे अविनाशी तत्व है। " यहां

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

प्रकृति जीवात्मा और परमात्माका वर्णन स्पष्टतासे आया है। मनुष्यको उचित है कि वह इनको जाने और अपनी उन्नतिका मार्ग इनके आश्रयसे है यह निश्चित रूपसे समझे।

धनप्राप्तिमें दोष।

पूर्वोक्त प्रकार अध्यात्मका विषय बतानेके पश्चात् व्यवहारका थोडासा उपदेश करते हैं। इह लोकका व्यवहार करनेके लिये धन बहुत चाहिये, यह धन कमानेके बहुत मार्ग हैं, परंतु—

पुनर्मघेषु भूरि अनवद्यानि। (मं० ७)

" पुनः धन कमानेमें बहुत दोष अथवा निंद्य कर्म होते हैं " अर्थात् दोष न करते हुए और निंद्य कर्म न करते हुए जितना धन कमाया जा सकता है, उतना कमाना चाहिये। दोष और निंद्य कर्म करके जो धन कमानेका व्यवहार करते हैं, वे दण्डनीय समझने चाहिये, इस विषयमें देखिये—

पणयः अधोवचसः भवन्तु। (मं० ६)

दासाः भूमिं नीचैः उपसर्पन्तु (मं ६)

" व्यवहारमें निंद्य कर्म करके धन कमानेकी इच्छा करनेवालोंका मुख नीचेकी ओर होवे। और दूसरेका घात करके धन कमानेवाले नीच स्थितिमें गिर जावें। " अर्थात् जो धन कमाना हो, वह धर्मानुकुल व्यवहार करके कमाया जावे। और कोई मनुष्य निंद्य व्यवहार और घातपात करके धन कमानेका यत्न न करे।

इस मंत्रभागमें " पणि " शब्द है, इसका अर्थ " क्रय विक्रय करनेवाला बनिया " है। पणि शब्दमें कोई वस्तुतः बुरा भाव नहीं है। परंतु पाठक जानते ही है कि बनियावों में शुद्ध धर्मानुसार व्यवहार करके धन कमानेकी इच्छा करनेवाले बहुत थोडे होते हैं, और जैसा मर्जी चाहे बुरा भला व्यवहार करके शीघ्र धनी होनेकी इच्छा करनेवाले ही बहुत होते हैं। इसलिये उक्त मंत्रभागोंमें जिन (पणियों) बनियोंको नीचे मुख करनेका शाप दिया है, वे दुष्ट व्यवहार करनेवाले हैं। इसी प्रकार ' दास ' शब्दका धात्वर्थ " क्षय करनेवाले, घातपात करनेवाले " ऐसा होता है। दूसरोंकी लूटमार करके धनी होनेवाले यह अर्थ इस मंत्रमें दास शब्दसे लेना योग्य है। इन सब कुत्सित व्यवहार करनेवालोंकी अन्तमें दुर्दशा होती है, इसलिये धर्ममार्गसे उत्तम व्यवहार करके धनी बननेका प्रयत्न सब लोग करें, यह उपदेश यहां है। इतना होनेपर भी—

एतावतः पणीन् मा सु अभिभूत्। (मं० ७)

" बनियोंको भी नुकसान न होवे। " अर्थात् वे भी उत्तम धर्मानुकूल व्यवहार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

करके योग्य लाभ अवश्य कमावें। जब तक धर्मानुकूल व्यवहार वे कर रहे हैं तब तक उनको कोई रुकावट न होवे, परंतु जिस समय वे धर्मनियमका भंग करेंगे, तब ही उनको दूर किया जावे। हरएक व्यवहार करनेवाले लोग इस उपदेशके अनुसार अपना व्यवहार करें और धनी बनें।

आगे अष्टम और नवम मंत्रमें "परमेश्वरका स्तोत्र अर्थात् ईशभक्ति सब लोगोंमें फैले" यह इच्छा प्रकट की है, इसका अर्थ यही है कि, सब लोग एक ईश्वर भक्तिसे रंगे जांयगे, तो उनमें बुराईका व्यवहार करनेकी इच्छा ही उत्पन्न नहीं होगी और सब लोग उत्तम रीतिसे धर्मानुकूल चलेंगे। ईशभक्तिसे मनुष्य का जीवन ही पवित्र होता है।

ईश्वर का सखा।

हर एक मनुष्यको ऐसा विश्वास होना चाहिये कि मैं परमेश्वरका मित्र हूं। जो धार्मिक भक्त होते हैं, उनमेंही यह भाव हो सकता है—

१ मे युज्यः सप्तपदः सखा असि। (मं० ९)

२ ते युज्यः सप्तपदः सखा अस्मि। (मं० १०)

३ सखा नः असि। बंधुः च असि। (मं० ११)

"ईश्वर मेरा मित्र और बन्धु है।" वस्तुतः जीवात्मा और परमात्मा परस्पर मित्र, बंधु और एक वृक्षपर रहनेवाले दो पक्षियोंके समान परस्पर सख्य करनेवाले हैं। परंतु कितने लोग ऐसे हैं कि जो इस मित्रताका अनुभव करते हैं, इसका विचार किया जाय तो पता लगेगा कि बहुत ही मनुष्योंने इस मित्रताको भुला दिया है। ईश्वर के साथ जीवित और जाग्रत मित्रता का संबंध रखनेवाले क्वचित कोई सन्त महंत होते हैं, शेष लोग इस मित्रताके संबंधको भूले हुए होते हैं। यह ईशमित्रता का संबंध जितने अन्तःकरणोंमें जाग्रत हो जाय उतना अच्छा है। जिनमें यह संबंध जाग्रत होता है वे ही—

देहि नु मे यत् मे अदत्त। (मं० ९)

ददामि तत् यत् ते अदत्त। (मं० १०)

" दे मुझे वह जो अभी तक नहीं दिया है। मैं तुझे वह देता हूं कि जो तुझे अभी तक नहीं दिया है।" यह भक्त और ईश्वरका वार्तालाप तब प्रत्यक्ष हो सकता है कि जब मनुष्य ईश्वरको अपना मित्र अनुभव करेगा। जो अबतक दी नहीं गई ऐसी वस्तु " मोक्ष " ही है जो इस समय भक्त मांगता है और परमेश्वर भी देता है। परमेश्वरसे प्राप्त होनेवाला यह अन्तिम दान है जो भक्तको सबसे अन्तमें प्राप्त होता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यज्ञ ।

[१२]

(ऋषिः—अङ्गिराः । देवता—जातवेदाः)

समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान् यजसि जातवेदः ।
आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान् त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः ॥ १ ॥
तनूनपात् पथ ऋतस्य यानान् मध्वा समञ्जन्त्स्वदया सुजिह्व ।
मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन् देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः ॥ २ ॥

अर्थ— हे (जातवेदः) ज्ञान प्रकाशक देव ! (अद्य मनुषः दुरोणे समिद्ध देवः) आज मनुष्यके घरमें प्रदीप्त हुआ तू देव (देवान् यजसि) देवोंका यजन करता है । हे (मित्रमहः) मित्रके समान पूज्य देव ! तू चिकित्वान् आवह च) ज्ञानवान् उनको यहां ला । (त्वं कविः प्रचेता दूतः असि) तू कवि और विशेष ज्ञानी दूत है ॥ १ ॥

हे (तनू-न-पात् सुजिह्व) शरीरको न गिरानेवाले और उत्तम जिह्वा-वाले देव ! (ऋतस्य यानान् पथः मध्वा समञ्जन् स्वदय) सत्यके चलने योग्य मार्गोंको मधुरतासे युक्त करता हुआ स्वादयुक्त कर । (धीभिः मन्मानि) बुद्धियोंसे मननीय विचारों को (उत यज्ञं ऋन्धन्) और यज्ञको सिद्ध करता हुआ (देवत्रा नः अध्वरं च कृणुहि) देवोंके मध्यमें हमारा अहिंसामय कर्म पूर्ण कर ॥ २ ॥

भावार्थ— आज मनुष्यके घरमें प्रदीप्त हुआ अग्निदेव देवोंके लिये यज्ञ करता है और उनको यहां लाता है। यह मित्रके समान पूज्य, ज्ञानी, कवि, उत्तम चित्तवाला देवोंका दूत है ॥ १ ॥

शरीरको न गिरानेवाला और मधुर भाषणी देव सत्यको पंहुंचानेवाले मार्गोंको माधुर्ययुक्त करता है। उत्तम मननीय विचारोंसे यज्ञको सिद्ध करके देवोंके बीचमें हमारा यज्ञ पहुंचता है ॥ २ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चा याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः ।
त्वं देवानामसि यह्व होता स एनान् यक्षीषितो यजीयान् ॥ ३ ॥
प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम् ।
व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो अदितये स्योनम् ॥ ४ ॥
व्यचस्वतीरुर्विया विश्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः ।
देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः ॥ ५ ॥

अर्थ- हे अग्ने! (आजुह्वानः ईड्यः वन्द्यः च) हवन करनेवाला स्तुति और वन्दन करने योग्य तू (सजोषाः वसुभिः आयाहि) प्रेमसे वसुओंके साथ आ। हे (यह्व) पूज्य! (त्वं देवानां होता असि) तू देवोंका आह्वान करनेवाला है। (सः इषितः यजीयान् एनान् यक्षि) वह इष्ट और याजक तू इनका यजन कर ॥३॥ (अह्नां अग्रे) दिनके प्रथम भागमें (अस्याः पृथिव्याः प्रदिशा) इस पृथ्वीकी दिशासे (वस्तोः बर्हिः प्राचीनं आवृज्यते) आच्छादनके लिये तृणादि पूर्व दिशाके अभिमुख फैलाया जाता है। यह आसन (वितरं वरीयः) विस्तृत और श्रेष्ठ (देवेभ्यः अदितये स्योनं) देवोंके लिये तथा स्वतंत्रताके लिये सुखदायक (उ विप्रथते) फैलाया जाता है ॥ ४ ॥ (शुम्भमाना जनयः पतिभ्यः न) शोभायमान स्त्रियां जिस प्रकार पतियोंके लिये आदर करती हैं उस प्रकार (व्यचस्वती उर्विया) विस्तृत और महान् (बृहतीः विश्वं इन्वाः) बडे और सबको प्राप्त करनेवाले (देवीः द्वारः) हे दिव्य द्वारो! (देवेभ्यः सुप्रायणाः भवत) देवोंके लिये सुखसे आने जाने योग्य होवो ॥ ५ ॥

भावार्थ- उत्तम हवन करनेवाला, स्तुति योग्य और नमस्कारके लिये योग्य तू देव वसुओंके साथ यहां इस यज्ञमें आ। तू देवोंको बुलानेवाला है। इसलिये तू याजकोंमें उत्तम याजक उन देवोंको यहां ले आ ॥ ३ ॥

प्रातः कालमें ही इस पृथिवीको आच्छादित करनेके लिये पूर्वदिशाकी ओरसे आसन फैलाते हैं। यह विस्तृत और उत्तम आसन सब देवोंके बैठनेके लिये सुखदायक है और यह स्वतंत्रताके लिये भी उत्तम है ॥४॥

स्त्रियां जिस प्रकार पतिको सुख देती हैं उस प्रकार ये हमारे दिव्य दरवाजे, जो विस्तृत बडे और सबको आने जाने लिये योग्य हैं, वे देवों को सुखपूर्वक अन्दर लानेवाले हों ॥ ५ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्ता सदतां नि योनौ ।
दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियं शुक्रपिशं दधाने ॥ ६ ॥
दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै ।
प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥ ७ ॥
आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विडा मनुष्वदिह चेतयन्ती ।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं स्योनं सरस्वतीः स्वपसः सदन्ताम् ॥ ८ ॥

अर्थ-(सुष्वयन्ती यजते उपाके) उत्तम चलनेवाली यजनीय और समीपस्थित (दिव्ये योषणे) दिव्य और सेवनीय (बृहती सुरुक्मे) बडी सुन्दर(शुक्रपिशं श्रियं अधि दधाने) शुद्ध शोभाको धारण करनेवाली (उषासानक्ता योनौ नि आसदताम्) दिन और रात्री हमारे घरमें आवे ॥ ६ ॥

(प्रथमा सुवाचा दैव्या होतारा) पहिले, सुन्दर बोलनेवाले दोनों दिव्य होता (मनुषः यज्ञं यजध्यै मिमाना) मनुष्यके यज्ञमें यजन करनेके लिये निर्माण करनेवाले (विदथेषु प्रचोदयन्ता कारू) यज्ञोंमें प्रेरणा करने वाले कर्मकर्ता (प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्तौ) प्राचीन ज्योतिको उसकी दिशासे बताते हैं ॥ ७ ॥

(भारती नः यज्ञं तूयं आ एतु) सबका भरण करनेवाली मातृभूमि हमारे यज्ञमें बलके साथ आवे । (इडा मनुष्वत् यज्ञं चेतन्ती इह) मातृभाषा मनुष्योंसे युक्त यज्ञकी चेतना देती हुई यहां आवे । (सरस्वती सु-अपसः आसदन्तां) मातृसभ्यता उत्तम कर्म करनेवालोंके पास बैठे और ये (तिस्रः देवीः इदं स्योनं बर्हिः) तीनों देवियां इस उत्तम आसन पर आकर विराजें ॥ ८ ॥

भावार्थ-उत्तम गमन करने योग्य,एक दूसरेके साथ संबंधित,दिव्य और सुंदर प्रातः काल और रात्रीका समय सुखपूर्वक हमारे घरमें बीते ॥ ६ ॥ ये सुंदर मंत्रगान करनेवाले दिव्य होतागण मनुष्योंका यह यज्ञ पूर्ण करनेके लिये पूर्वदिशाकी ज्योतिका संदेश देते हुए, सबको प्रेरणा करनेके लिये यहां आवें ॥७॥ हमारे इस यज्ञमें सबका पोषण करनेवाली मातृभूमी यज्ञकी प्रेरणा करनेवाली मातृभाषा और उत्तम कर्मकी प्रेरणा करनेवाली प्रवाहसे प्राप्त मातृसभ्यता यहां आकर इस यज्ञमें विराजें ॥ ८ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिंशद् भुवनानि विश्वा ।
तमद्य होतरिषितो यजीयान् देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् ॥ ९ ॥
उपाव सृज त्मन्या समञ्जन् देवानां पाथ ऋतुथा हवींषि ।
वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन ॥ १० ॥
सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत् पुरोगाः ।
अस्य होतुः प्रशिष्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवाः ॥ ११ ॥

अर्थ-(इमे जनित्री द्यावापृथिवी) ये उत्पन्न करनेवाली द्यु और पृथिवीमें (विश्वा भुवनानि रूपैः यः अपिंशत्) सब भुवनोंको विविध रूपोंसे रूपवान जिसने बनाया है। हे (होतः) याजक! (यजीयान् इषितः विद्वान्) यज्ञ करनेवाला इष्ट विद्वान् तू (अद्य इह तं देवं त्वष्टारं यक्षि) आज यहां उस त्वष्टा देवके लिये यजन कर ॥ ९ ॥

(त्मन्या समञ्जन्) स्वयं प्रकट होता हुआ तू (देवानां पाथः हवींषि ऋतुथा उप अवसृज) देवोंके लिये अन्न और हवन ऋतुके अनुसार दे। (वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः) वनस्पति, शान्तिकर्ता अग्निदेव (मधुना घृतेन हव्यं स्वदन्तु) मधुर घृतके साथ हव्यका स्वाद लेवे ॥ १० ॥

(सद्यः जातः अग्निः यज्ञं वि अमिमीत) शीघ्र प्रकट हुआ अग्नि यज्ञका निर्माण करता है। वह (देवानां पुरोगाः अभवत्) वह देवोंका अग्रगामी होता है। (अस्य ऋतस्य होतुः प्रशिषि वाचि) इस सत्य प्रवर्तक होताकी प्रकृष्ट शासनवाली वाणीमें (स्वाहाकृतं हविः देवा अदन्तु) स्वाहाकार द्वारा दिया हुआ हव्य देव खावें ॥ ११ ॥

भावार्थ-जो सब भूतोंको विविध रूप देती है वे दोनों द्यावापृथिवी हैं। हमारा याजक त्वष्टा देवका यहां यजन करे ॥ ९ ॥

स्वयं यहां प्रकट होकर सब देवोंको ऋतुओंके अनुसार हवि और अन्न दे। वनस्पति, शमिता, और देव अग्नि ये सब हमारा हवि और घृत मीठेसे युक्त करें ॥ १० ॥

प्रज्वलित अग्नि यहां हमारा यज्ञ निर्माण करता है। यह देवोंका अग्रणी है। इस होता अग्निकी वाणीमें अर्थात् मुखमें स्वाहाकार पूर्वक डाला हुआ हवि सब देव खावें ॥ ११ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यजमानकी इच्छा।

यजमान अपने घरमें यज्ञयाग अथवा होमहवन करता है, उस समय उसके मनमें जो विचार होने चाहियें वे इस सूक्तमें बडे सुंदर वर्णन के साथ दिये हैं। घरमें कोई धर्मकृत्य, धर्मका कोई संस्कार, करनेके समयमें भी ये ही विचार यजमानको मनमें धारण करना योग्य हैं—

" (१) यह मेरे घरमें प्रदीप्त किया हुआ यज्ञीय अग्नि निःसंन्देह सब देवताओंका यजन करता है। वह निःसंदेह सब देवोंको यज्ञस्थानमें ले आता है, क्योंकि वह देवोंको बुलानेवाला, और हवि उनको पंहुंचानेवाला प्रत्यक्ष देवदूत ही है।

(२) यह उत्तम जिह्वावाला अग्निदेव सत्यको पहुंचनेवाले धर्ममार्गोंपर मीठे पाथेय देनेवाला है। यह यहां आता है उत्तम स्तोत्रोंसे यज्ञ करता है, और अहिंसामय कर्मोंको देवोंतक पहुंचा देता है॥

(३) हे अग्ने ! पृथिव्यादि आठ वसु देवोंको तू यहां इस यज्ञमें ला। तूं वंदनीय और प्रशंसनीय देव है। तू देवोंको यहां बुलानेवाला है, इसलिये देवोंको यहां बुलाकर उनके लिये यजन कर।

(४) हमने प्रातःकालसे ही देवताओंके सुखपूर्वक बैठनेके लिये पूर्वदिशाके सन्मुख आसन फैला कर रखे हैं। देव यहां आवें और सुखपूर्वक यहां विराजें।

(५) हमारे घरके द्वार पूर्णतया खोलकर रखे हैं, इनमेंसे देव सुखपूर्वक आवें और इस यज्ञमें मंगल करें।

(६) सबेरेसे सायंकालतकका शोभन और तेजस्वी समय है, यह सब समय उत्तम आनन्दकारक रीतिसे हमारे घरमें बीते अर्थात् हमारे लिये यह समय सुख देनेवाला होवे।

(७) दिव्य होतागण हमारे यज्ञमें आजांय, मनुष्योंको बुलावें, उत्तम प्रकार यज्ञ कर्म करें और इस यज्ञसे प्रकाशका मार्ग सबको बतावें।

(८) इस यज्ञसे सबका भरणपोषण करनेवाली मातृभूमिका सत्कार हो, यहां मातृभाषा सबको उत्तम प्रेरणा देवे, प्रवाहसे प्राप्त सभ्यता उत्तम कर्मकी प्रेरणा करें। इस प्रकार ये तीनों देवियां इस यज्ञमें आकर कार्य करें।

(९) ये द्यावापृथिवी है, इनके कारण ही सब स्थिर चर पदार्थ रूपसे संपन्न हुए हैं। इनके बीचमें यह यज्ञ चल रहा है, अतः इस यज्ञमें सबको आकार देनेवाले त्वष्टा देवके लिये हवन अवश्य होवे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

(१०) यज्ञकी समिधाएं, अग्नि और हवन सामग्री घीसे युक्त होवे, हवन सामग्रीमें मीठा मिलाया जावे। और ऋतुओंके अनुकूल देवोंके निमित्त हवन होता रहे।

(११) अग्नि प्रदीप्त होते ही यज्ञका प्रारंभ होता है, और देवभी उस यज्ञस्थानमें आते हैं। इस अग्निमें स्वाहाकारपूर्वक किया हुआ हवन सब देव खाते हैं और तृप्त होते हुए हमारा कल्याण करते हैं।

इस प्रकार यजमान अपनी हार्दिक इच्छा प्रकट करता है। जिस यजमानके मनमें विश्वासपूर्वक ये बातें रहती हैं और जो सच मुच समझता है कि इस यज्ञकर्ममें सब देवताएं भाग लेती हैं और मनुष्यका कल्याण करती हैं, वही यजमान वैदिक कर्मोंसे आध्यात्मिक लाभ उठा सकता है। अविश्वासीके उद्धारका कोई मार्ग नहीं है।

इस सूक्तके कथनानुसार पाठक स्वयं जान सकते हैं कि सामग्री कैसी सिद्ध करना। यज्ञकी विधि जाननेके लिये भी इस सूक्तके मननसे बहुत लाभ हो सकता है।

अग्निका नाम इस सूक्तमें " तनू-न-पात् " आया है। इसका अर्थ है " शरीरको न गिरानेवाला " अर्थात् शरीरको चलानेवाला। इस शरीरमें अग्नि शरीरको चलाता है, यह बात इस मंत्रमें स्पष्ट कही है। पाठक स्थूल दृष्टिसे भी विचार करेंगे, तो उनको पता लग जायगा कि मृत मनुष्यका शरीर शीत होजाता है और जीवित मनुष्यके शरीरमें उष्णता रहती है। इस अनुभवसे भी पाठक जान सकते हैं कि इस शरीरको चलानेवाला अग्नि है। आगे चलकर यही तनूनपात् शब्द आत्माका वाचक हो जाता है और आत्मा शरीरका चालक है यह बात सब जानतेही हैं।

जो यज्ञ अग्निमें किया जाता है उसका नाम अध्वर है, यह बात द्वितीय मंत्रमें कही है। अ-ध्वरका अर्थ " अ-हिंसा " है अथवा " अ-कुटिलता " भी है। अर्थात् यज्ञका अर्थ अहिंसा युक्त और कुटिलता रहित कर्म है। मनुष्यको इस प्रकारके ही कर्म करने चाहिये। परंतु कई मनुष्य यज्ञके नामसे हिंसामय कर्म करते हैं, और आश्चर्यकी बात यह है कि वे उस हिंसाको ही अहिंसा मानते हैं। इससे अर्थका अनर्थ तो और क्या हो सकता है? अस्तु।

इस प्रकार इस सूक्तका विचार करके पाठक उचित बोध प्राप्त करें।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सर्पविष दूर करना ।

[१३]

(ऋषिः—गरुत्मान् । देवता-तक्षकः । विषम्)

द॒दिर्हि मह्यं॒ वरु॑णो दि॒वः क॒विर्वचो॑भिरु॒ग्रैर्नि रि॑णामि ते वि॒षम् ।
खा॒तमखा॑तमु॒त स॒क्तम॑ग्रभ॒मिरे॑व॒ धन्व॒न्नि ज॑जास ते वि॒षम् ॥ १ ॥
यत् ते॒ अपो॑दकं वि॒षं तत् त॑ ए॒तास्व॑ग्रभम् ।
गृ॒ह्णामि॑ ते मध्य॒मम॑ुत्त॒मं रस॑मु॒ताव॒मं भि॒यसा॑ नेश॒दादु॑ ते ॥ २ ॥

अर्थ— (दिवः कविः वरुणः हि मह्यं ददिः) द्युलोकके कवि वरुणने मुझे उपदेश दिया है कि (उग्रैः वचोभिः ते विषं निरिणामि) बलवान् वचनोंके द्वारा तेरा विष दूर करता हूं। (खातं अखातं उत सक्तं) घाव अधिक खुदा हुआ हो, न खुदा हुआ हो अथवा विष केवल उपर चिपका ही हुआ हो, इस सब विषको (अग्रभं) मैं लेता हूं। (धन्वन् इरा इव) रेतीले स्थानमें जिस प्रकार जलधारा नष्ट होती है उस प्रकार (ते विषं निजजास) तेरा विष निःशेष नाश करता हूं ॥ १ ॥

(यत् ते अप-उदकं विषं) जो तेरा जलशोषक विष है (तत् ते एतासु अग्रभं) वह तेरा विष इनमें लेता हूं। (ते उत्तमं मध्यमं उत अवमं रसं गृह्णामि) तेरा उत्तम मध्यम और नीचेवाला रस पकडकर लेता हूं। जो (आत् उ ते भियसा नेशत्) तेरे भयसे नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

भावार्थ— दिव्य ज्ञानी कहता है कि बलवाले वचनोंसे सर्पका विष दूर होता है। विष गहरे घावमें गया हो, छोटे घावमें गया हो अथवा केवल ऊपर ही ऊपर चिपका हो। उसको मैं पकडता हूं और निःशेष करता हूं ॥ १ ॥

सर्प विष शोषक है। उसको ऊपर मध्यभागमें और नीचे के भागमें पकड लेता हूं और सर्पविषके भयसे तुम्हें दूर करता हूं ॥ २ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वृषा मे रवो नभसा न तन्यतुरुग्रेण ते वचसा बाध आदु ते ।
अहं तमस्य नृभिरग्रभं रसं तमस इव ज्योतिरुदेतु सूर्यः ॥ ३ ॥
चक्षुषा ते चक्षुर्हन्मि विषेण हन्मि ते विषम् ।
अहे म्रियस्व मा जीवीः प्रत्यगभ्येतु त्वा विषम् ॥ ४ ॥
कैरात पृश्न उपतृण्य बभ्र आ मे शृणुतासिता अलीकाः ।
मा मे सख्युः स्तामानमपि ष्ठाताश्रावयन्तो नि विषे रमध्वम् ॥ ५ ॥

अर्थ-(मे रवः नभसा तन्यतुः न वृषा) मेरा शब्द आकाशकी गर्जनाके समान बलवान है। (उग्रेण वचसा आत् उ ते ते बाधे) बलवाले वचनोंसे निश्चयपूर्वक तुझे तुझेही बाधा करता हूं। (अहं नृभिः अस्य तं रसं अग्रभं) मैंने मनुष्योंके साथ इसके उस रसको लिया है। (तमसः ज्योतिः सूर्यः इव उदेतु) अन्धकारसे ज्योति देनेवाले सूर्यके समान यह उदयको प्राप्त होवे ॥ ३ ॥

(चक्षुषा ते चक्षुः हन्मि) आंखसे तेरे आंखका नाश करता हूं। (विषेण ते विषं हन्मि) विषसे तेरा विष नाश करता हूं। हे (अहे म्रियस्व, मा जीवीः) सर्प ! तू मर जा, मत जीता रह। (विषं त्वा प्रत्यक् अभ्येतु) विष तेरे प्रति लौटकर आ जावे ॥ ४ ॥

हे (कैरात, पृश्ने, उपतृण्य, बभ्रो, असिताः, अलीकाः) जंगलमें रहनेवाले, धब्बेवाले, घासमें रहनेवाले, भूरे रंगवाले, कृष्णसर्प और निंदनीय सर्पो ! (मे आशृणुत) मेरा भाषण सुनो। (मे सख्युः स्तामानं अपि मा स्थात) मेरे मित्रके घरके पास मत ठहरो। (आश्रावयन्तः विषे नि रमध्वं) सुनाते हुए दूर अपने विषमें ही रमते रहो ॥ ५ ॥

भावार्थ— मेरा शब्द प्रभावशाली है, उससे विषकी बाधा दूर करता हूं। मैं अन्य मनुष्योंकी सहायतासे विषके रसको स्तंभित किया है, अब यह सूर्यउदयके समान जाग उठेगा ॥ ३ ॥ विषसे विष दूर करता हूं। हे सांप! अब तू मर जा, जीवित न रह। तेरा विष लौटकर तेरे प्रति जावे ॥ ४ ॥ जंगलमें रहनेवाले, धब्बोंवाले, घांसमें रहनेवाले और भूरे रंगवाले, काले और घृणित ऐसे सांप होते हैं। हे सब सर्पों ! मेरे मित्रके घरके पास न ठहरो! दूर कहां जाकर अपने विषके साथ रमो ॥ ५ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

असितस्य तैमातस्य बभ्रोरपोदकस्य च।
सात्रासाहस्याहं मन्योरव ज्यामिव धन्वनो वि मुञ्चामि रथाँ इव ॥ ६ ॥
आलिगी च विलिगी च पिता च माता च।
विद्म वः सर्वतो बन्ध्वरसाः किं करिष्यथ ॥ ७ ॥
उरुगूलाया दुहिता जाता दास्यसिक्न्या।
प्रतङ्कं दद्रुषीणां सर्वासामरसं विषम् ॥ ८ ॥

अर्थ-(असितस्य) कृष्ण (तैमातस्य) गीले स्थानपर रहनेवाले (बभ्रोः) भूरे रंगवाले (अप-उदकस्य) जलसे दूर रहनेवाले और (सात्रासाहस्य मन्योः) सबको पराजित करनेवाले क्रोधी सर्पके विषबाधाको मैं (वि-मुञ्चामि) ढीला करता हूं, जिस प्रकार (धन्वनः ज्यां इव, रथान् इव) धनुष्यसे डोरी और रथोंके बंधनोंको ढीला करते हैं ॥ ६ ॥

(आलिगी च विलिगी च) चिपकनेवाली और न चिपकनेवाली (पिता च माता च) तथा नर और मादा (वः बन्धु सर्वतः विद्म) तुम सबके बंधुओंको भी हम सब प्रकारसे जानते हैं। (अरसाः किं करिष्यथ) तुम नीरस होने पर क्या करोगे? ॥ ७ ॥

(उरु-गुलाया दुहिता जाता) बहुत हिंसक सर्पिणीकी दुहिता (आसि-क्न्याः दासी) कृष्णसर्पिणीकी दासी होगई है। इन (दद्रुषीणां सर्वासां) दाद पैदा करनेवाली सब सांपिनियोंका (प्रतङ्कं विषं अरसं) कष्ट-दायक विष नीरस होवे ॥ ८ ॥

भावार्थ-कृष्ण, गीले स्थानपर रहनेवाले और भूरे रंगवाले, जल स्थानसे दूर रहनेवाले और क्रोधी सर्पकी विषबाधाको मैं दूर करता हूं। धनुष्यपरसे डोरी उतारनेके समान मैं दूर करता हूं ॥ ६ ॥

विषकी बाधकता नष्ट होनेपर सांपोंका नर या मादा क्या हानि करेगा? ॥ ७ ॥

हिंसक, कृष्णसर्पिणी, और दाद उत्पन्न करनेवाली सांपिणीका विष नीरस होवे ॥ ८ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कर्णा श्वावित् तदब्रवीद् गिरेरवचरन्तिका।
याः काश्चेमाः खनित्रिमास्तासामरसतमं विषम् ॥ ९ ॥
ताबुवं न ताबुवं न घेत् त्वमसि ताबुवम्।
ताबुवेनारसं विषम् ॥ १० ॥
तस्तुवं न तस्तुवं न घेत् त्वमसि तस्तुवम्।
तस्तुवेनारसं विषम् ॥ ११ ॥

अर्थ— (कर्णा श्वावित्) कानवाली साही (गिरेः अवचरन्तिका) पहाडके नीचे घूमनेवाली (तत अब्रवीत्) वह बोली (याः काः च इमाः खनित्रिमाः) जो कोई ये भूमिको खोदकर रहते हैं, (तासां विषं अरसतमं) उनका विष नीरस होवे ॥ ९ ॥

(ताबुवं न ताबुवं) ताबुव हिंसक नहीं है। (त्वं ताबुवं न घ इत् असि) तू ताबुव तो हिंसक निःसंदेह नहीं है। (ताबुवेन विषं अरसं) ताबुवके द्वारा विष नीरस होता है ॥ १० ॥

(तस्तुवं न तस्तुवं) तस्तुव भी नाशक नहीं है। (त्वं तस्तुवं न घ इत् असि) तू तस्तुव तो नाशक निःसंदेह नहीं है। (तस्तुवेन विषं अरसं) तस्तुव द्वारा विष निरस होता है ॥ ११ ॥

भावार्थ- सब पहाडी सर्पोंका विष साररहित हो जावे ॥ ९ ॥

ताबुव और तस्तुव नामक पदार्थ विशेषसे सांपोंका विष निर्बल होता है ॥ १०-११ ॥

सर्प विष।

इस सूक्तमें निम्नलिखित सर्पजातियोंका वर्णन है—

१ कैरातः- भील जहां रहते हैं उस जंगलमें रहनेवाला सर्प,
२ पृश्निः- धब्बोंवाला सर्प,
३ उपतृण्यः- घासमें रहनेवाला सर्प,
४ बभ्रुः- भूरे रंगवाला सर्प,
५ असितः- काले रंगवाला सर्प,
६ अलीकः— अमंगल सर्प,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

७ तैमातः— गीले प्रदेशमें रहनेवाला सर्प,
८ अपोद्कः— जो जलके पास नहीं रहता,
९ सात्रासाहः— इसके संबंधमें आनेवालेका नाश करनेवाला सर्प,
१० मन्युः— क्रोध धारण करनेवाला सर्प,
११ आलिगी- चिपकनेवाली अर्थात् शरीरको लपेटनेवाली सांपीन,
१२ विलिगी— शरीरसे दूर रहनेवाली सांपिन,
१३ उरु-गुला— जिसका निम्न प्रदेश बडा होता है,
१४ असिक्नी— काली सांपीन,
१५ दद्रुषी – जो सांपीन काटनेसे शरीरपर दाद उठती है और दादसे रक्त निकलता है।
१६ कर्णा— कानवाली सांपीन,
१७ श्वावित् –कुत्ता जिसको काटता है, कुत्ता जिसको ढूंढकर निकालता है।
१८ खनित्रिमा- खोदी हुई भूमिमें रहनेवाली सांपीन,

इतनी सांपोंकी जातियोंके नाम इस सूक्तमें हैं। इनमेंसे दो तीन नामोंके विषयमें हमें संदेह है और उनके ज्ञान निश्चित करनेके लिये अभी बहुत खोजकी अपेक्षा है।

उपाय।

सर्पविषकी बाधा पर " ताबुव और तस्तुव " का उपाय इस सूक्तके अन्तिम दो मंत्रोंमें लिखा है। परंतु ये पदार्थ क्या हैं इसका ज्ञान खोज करने पर भी अभीतक हमें नहीं हुआ। संभव है कि ये कुछ औषधी खनिज पदार्थ या पत्थर जैसे पदार्थ अथवा मणि हों। संभव है ये सर्पविशेषके मस्तकमें मिलनेवाले मणियोंके नाम हों। कुछ निश्चयसे नहीं कहा जा सकता। इस विषयमें खोज करनेकी आवश्यकता है।

दूसरा उपाय तीन स्थानपर बंध लगाकर विषकी गतिको रोकना है—

गृह्णामि ते मध्यमं उत्तमं अवमम्।
एतासु विषं अग्रभम् (मं० २)

"ऊपर, मध्यमें और नीचे रसीसे बांधके, इनमें विषको पकड लेता हूं।" यह विधि इस प्रकार है। प्रायः हाथ या पांवको सांप काटता है। जहां काटता है वहांसे विष ऊपर चढता है, इसलिये काटते ही जंघाके मूलमें, घुटनेपर तथा कटे स्थानसे किंचित् ऊपर रसीसे बांध देनेसे विषकी ऊपर जानेकी गति रुक जाती है। इस प्रकार विषकी गति रोककर फिर जहां तक विष गया हो, वहां पर उक्त पदार्थोंका प्रयोग करनेसे विष निःसत्त्व हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

परंतु "ताबुव और तस्तुव" पदार्थ प्राप्त न होनेकी अवस्थामें यह उपाय कैसा किया जाय यह एक शंका है।

जहां तक धमनीमें विष पहुंचा होता है, वहांके बाल खडे नहीं रहते, इसलिये बालोंको देखनेसे पता लगता है कि यहां तक विष आया है। अतः विष जहां है वहां जलता अग्नि रखकर वह स्थान जला दिया जाय तो मनुष्य बच सकता है। परंतु यह बात इस सूक्तमें कही नहीं है।

यह सूक्त दुर्बोध है। इसलिये कई मंत्रोंका अर्थ भी ठीक प्रकार समझमें नहीं आया है, इस कारण मंत्रोंका विवरण भी अधिक नहीं हो सकता।

इस सूक्तके कई मंत्र ऐसे हैं कि मंत्रसामर्थ्यसे सांपको कुछ कहनेके समान भाषा उसमें है। जैसा—

प्रत्यक् अभ्येतु ते विषम्। (मं० ४)

अहे! म्रियस्व। (मं० ४)

"हे सांप! तेरा विष लौटकर तेरे पास जावे! हे सर्प। तू मर जा।" तथा—

मे सख्युः स्तामानं मा अपि स्थाः। (मं० ५)

"मेरे मित्रके घरके पास न ठहर।" इत्यादि मंत्र पढनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि मंत्र प्रभाव, अथवा कहनेवालेकी इच्छाशक्तिके प्रभावसे सर्पपर कुछ परिणाम होता है। हमने स्वयं अभीतक देखा नहीं है, परंतु बहुत लोग कहते हैं कि महाराष्ट्रमें ऐसे मांत्रिक हैं कि जो सर्पद्वारा दंशित मनुष्यके पास उस काटनेवाले सांपको बुलाते हैं, और उससे व्रणसे सब विष चुसवा लेते हैं। और इस प्रकार सर्पका विष शरीरसे बाहर गया तो वह मनुष्य जाग्रत होनेके समान उठता है। तृतीय मंत्रके अन्तिम चरणमें "अन्धकारसे सूर्य उदय होनेके समान यह मनुष्य जाग उठे" (मं० ३) ऐसा कहा है। संभव है कि इस प्रकारका कुछ भावही इसमें हो।

यह सर्पदंशका विषय अत्यंत महत्त्वका है और इस लिये सब प्रकारके उपचारोंकी बडी खोज करना चाहिये और निश्चय करना चाहिये कि कौनसा उपाय निश्चित गुणकारी है।

इस प्रकारके सूक्त गूढ आशय होनेके कारण बडे दुर्बोध होते हैं और इसी कारण इस विषयको सुबोध करनेके लिये बहुत खोजकी अपेक्षा होती है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

घातक प्रयोगको लौटाना।

[१४]

(ऋषिः— शुक्रः । देवता-वनस्पतिः । कृत्याप्रतिहरणम्)

सुपर्णस्त्वान्वविन्दत् सूकरस्त्वाखनन्नसा ।
दिप्सौषधे त्वं दिप्सन्तमव कृत्याकृतं जहि ॥ १ ॥
अव जहि यातुधानानव कृत्याकृतं जहि ।
अथो यो अस्मान् दिप्सति तमु त्वं जह्योषधे ॥ २ ॥
रिश्यस्येव परीशासं परिकृत्य परि त्वचः ।
कृत्यां कृत्याकृते देवा निष्कमिव प्रति मुञ्चत ॥ ३ ॥
पुनः कृत्यां कृत्याकृते हस्तगृह्य परा णय ।
समक्षमस्मा आ धेहि यथा कृत्याकृतं हनत् ॥ ४ ॥

अर्थ—(सुपर्णः त्वा अन्वविन्दत्) गरुडने तुझे प्राप्त किया और (सूकरः त्वा नसा अखनत्) सूकरने तुझे अपनी नासिकासे खोदा है। हे औषधे! (त्वं दिप्सन्तं दिप्स) तू नाशकका नाश कर और (कृत्याकृतं अवजहि) हिंसा करनेवालेको मार डाल ॥ १ ॥

(यातुधानान् अवजहि) यातना देनेवालोंको मार डाल। (कृत्याकृतं अवजहि) काटनेवालेको मार डाल। (अथो यः अस्मान् दिप्सति) और जो हमें मारना चाहता है, हे औषधे! (तं उ त्वं जहि) उसको तू मार॥२॥

हे (देवाः) देवो! (रिश्यस्य परिशासं इव) हिंसकको चारों ओरसे चुभनेवालेंके समान और (निष्कं इव) सुवर्णभूषणके समान (त्वचः परि परिकृत्य) त्वचाके ऊपर घाव करके, (कृत्याकृते कृत्यां प्रतिमुञ्चतं) हत्या करनेवालेके प्रति उसीके काटनेवाले प्रयोगको वापस करो ॥ ३ ॥

(पुनः कृत्यां हस्ते गृह्य) फिर काटनेवाले साधनको हाथमें पकडकर (कृत्याकृते परा णय) प्राणघातक उपाय करनेवालेके पास वापस भेजो। (अस्मै समक्षं आधेहि) इसके लिये सामने रख दे, (यथा कृत्याकृतं हनत्) जिससे हिंसाकारी मारा जाय ॥ ४ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कृत्याः सन्तु कृत्याकृते शपथः शपथीयते ।
सुखो रथ इव वर्ततां कृत्या कृत्याकृतं पुनः ॥ ५ ॥
यदि स्त्री यदि वा पुमान् कृत्यां चकार पाप्मने ।
तामु तस्मै नयामस्यश्वमिवाश्वाभिधान्या ॥ ६ ॥
यदि वासि देवकृता यदि वा पुरुषैः कृता ।
तां त्वा पुनर्णयामसीन्द्रेण सयुजा वयम् ॥ ७ ॥
अग्ने पृतनाषाट् पृतनाः सहस्व ।
पुनः कृत्यां कृत्याकृते प्रतिहरणेन हरामसि ॥ ८ ॥
कृतव्यधनि विध्य तं यश्चकार तमिज्जहि ।
न त्वामचक्रुषे वयं वधाय सं शिशीमहि ॥ ९ ॥

अर्थ-(कृत्याः कृत्याकृते सन्तु) मारक साधन हिंसकोंके ऊपर ही लौट जांय। (शपथः शपथीकृते) गालियां गाली देनेवालेके पास लौट जांय । (सुखः रथः इव) सुख देनेवाला रथ जैसा जाता है उस प्रकार(कृत्याः कृत्या-कृतं पुनः वर्तताम्) घातपातके उपाय घातकके ऊपरही फिर पहुंच जावें ॥५॥ (यदि स्त्री यदि वा पुमान्) चाहे स्त्रीने अथवा चाहे पुरुषने (कृत्यां पाप्मने चकार) घातक प्रयोग पापकी इच्छासे किया है । (तां उ तस्मै नयामसि) उसको उसके पासही हम लौटा देते हैं, (अश्वा-अभि-धान्या अश्वं इव) घोडेको बांधनेकी रसी जिस प्रकार घोडेके पास ले जाते हैं ॥ ६ ॥ (यदि वा देवकृता असि) यदि तू देवोंद्वारा की गई हो अथवा (यदि वा पुरुषैः कृता) यदि मनुष्योंद्वारा बनाई गई हो, (तां त्वा वयं) उस तुझको हम (इन्द्रेण सयुजा) सहयोगी इन्द्रके द्वारा (पुनः नयामसि) पुनः हटा देते हैं ॥७॥

हे (पृतनाषाट् अग्ने) संग्राम जीतनेवाले तेजस्वी पुरुष ! (पृतनाः सहस्व) शत्रुसेनाओंका पराभव कर । (पुनः कृत्याकृते) फिर घातपात करनेवालेके प्रति (प्रतिहरेण कृत्यां प्रति हरामसि) प्रतिहार करनेके उपायसे घातक प्रयोगको लौटा देते हैं ॥ ८ ॥ हे (कृत-व्यधनि) घातकका वेध करनेवाले! तू (तं विध्य) उसका वेध कर । (यः चकार तं इत् जहि) जिसने घात किया उसका नाश कर (अचक्रुषे त्वां वधाय न संशिशीमहि) हिंसा न करनेवाले तुझको वधके लिये हम उत्तेजना नहीं देते ॥ ९ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पु॒त्र इ॑व पि॒तरं॑ गच्छ स्व॒ज इ॑वा॒भिष्ठि॑तो दश ।
ब॒न्धमि॑वावक्रा॒मी ग॑च्छ॒ कृत्ये॑ कृत्या॒कृतं॒ पुनः॑ ॥ १० ॥
उ॒देणी॑व वार॒ण्य॑भि॒स्कन्दं॑ मृ॒गीव॑ ।
कृ॒त्या क॒र्तार॑मृच्छतु ॥ ११ ॥
इष्वा॒ ऋजी॑यः पततु॒ द्यावा॑पृथिवी॒ तं प्रति॑ ।
सा तं मृ॒गमि॑व गृह्णातु कृ॒त्या कृ॑त्या॒कृतं॒ पुनः॑ ॥ १२ ॥
अ॒ग्निरि॑वैतु प्रति॒कूल॑मनु॒कूल॑मिवोद॒कम् ।
सु॒खो रथ॑ इव वर्ततां कृ॒त्या कृ॑त्या॒कृतं॒ पुनः॑ ॥ १३ ॥

अर्थ-(पुत्र इव पितरं गच्छ)पुत्रके समान पिताके प्रति जा ।(स्वज इव अभितिष्ठतः दश) लिपटनेवाले सांपके समान घात करनेवालेको काट। (बन्ध इव अवक्रामी) बन्धनके प्रति जानेके समान जा। हे (कृत्ये) हिंसे (कृत्याकृतं पुनः गच्छ) हिंसकके प्रति पुनः जा ॥ १० ॥ (वारणी एणी इव मृगी इव) हाथिनी मृगीके ऊपर जानेके समान (अभिस्कन्दं कर्तारं कृत्या उद् ऋच्छतु) चढाई करनेवाले, घात करनेवालेके प्रति घातक प्रयोग चला जावे ॥ ११ ॥ हे द्यावापृथिवी ! (सा कृत्या तं प्रति इष्वाः ऋजीयः पततु) वह घातक प्रयोग उस कर्ताके प्रति बाणके समान सीधा गिरे। और (मृगं इव) मृगके समान वह (तं कृत्याकृतं पुनः गृह्णातु) उस घातक प्रयोग करनेवालेको फिर पकड लेवे ॥ १२ ॥ (अग्निः इव प्रतिकूलं) अग्निके समान प्रतिकूलके प्रति और (उदकं इव अनुकूलं एतु) जलके समान अनुकूलता के साथ वह चले। (सुखः रथः इव) सुखकारक रथके समान (कृत्या कृत्याकृतं पुनः वर्ततां) घातक प्रयोग कर्ताके पास फिर चला जावे ॥ १३ ॥

दुष्ट कृत्यका परिणाम ।

दुष्ट कृत्य यदि दूसरेके घातपातके लिये किया जावे, तो वह अन्तमें कर्ताकाही घात करता है, यह इस सूक्तका तात्पर्य है। इसमें कृत्या नामका कुछ घातक प्रयोग कोई दुष्ट लोग करते हैं, ऐसा जो विषय कहा है, वह बडा दुर्बोध है और अबतक उस विषयमें हमें कोई पता नहीं लगा है। इसलिये हम इसपर अधिक कुछ लिख नहीं सकते। यदि कोई पाठक इस मारण प्रयोगके विषयमें कुछ निश्चित और सप्रयोग ज्ञान रखते हों, तो प्रकाशित करनेकी कृपा करें।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सत्यका विजय ।

[१५]

(ऋषिः- विश्वामित्रः । देवता-वनस्पतिः)

एका च मे दश च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ १ ॥
द्वे च मे विंशतिश्च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ २ ॥
तिस्रश्च मे त्रिंशच्च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ ३ ॥
चतस्रश्च मे चत्वारिंशच्च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ ४ ॥
पञ्च च मे पञ्चाशच्च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ ५ ॥
षट् च मे षष्टिश्च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ ६ ॥
सप्त च मे सप्ततिश्च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ ७ ॥

अर्थ— हे (ऋतावरि ऋतजाते ओषधे) सत्यपालक और सत्यसे उत्पन्न औषधि ! तू (मधुला) मधुरता उत्पन्न करनेवाली होकर (मे मधु करः) मेरे लिये सर्वत्र मधुरता कर। (मे एका च दश च अपवक्तारः) मेरे लिये एक या दस निंदक क्यों न हों। इसी प्रकार (द्वे विंशतिः च) दो और वीस, (तिस्रः त्रिंशत् च) तीन और तीस, (चतस्रः चत्वारिंशत् च) चार और चालीस, (पञ्च पञ्चाशत्) पांच और पचास, (षट् षष्टिः च) छः और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अष्ट च मेऽशीतिश्च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतंजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ ८ ॥
नव च मे नवतिश्च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतंजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ ९ ॥
दश च मे शतं च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतंजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ १० ॥
शतं च मे सहस्रं चापवक्तार ओषधे ।
ऋतंजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ॥ ११ ॥

॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

साठ, (सप्त सप्ततिः च) सात और सत्तर, (अष्ट अशीतिः च) आठ और अस्सी, (नव नवतिः च) नौ और नव्वे, (दश शतं च) दस और सौ, (शतं सहस्रं च) सौ और हजार (अपवक्तारः) निंदक क्यों न खडे हों और मुझे प्रतिबंध करनेका यत्न क्यों न करें, मैं सत्यमार्गसे ही उनका प्रतिकार करूंगा । इसलिये सर्वत्र मेरे लिये मधुरता फैले ॥ १-११॥

सत्यसे यश ।

इस सूक्तमें ऋतावरी ऋतजाता औषधिका नाम है । यह कौन औषधि है, इसका पता नहीं लगता । परंतु इस सूक्तमें हमें ऐसा प्रतीत होता है कि यहां कोई औषधि प्रयोग नहीं बताया है । परंतु जो निंदक शत्रु हैं उनको सत्यपालन और सत्य व्यवहार से ही ठीक करना और सत्यका महत्त्व सिद्ध करना ही बताया है । सत्यपालन करनेवालेके लिये सब दिशाएं मधुरतायुक्त हो जाती हैं, अर्थात् उसके लिये कोई विरोधी नहीं रहता । सत्यपालन करनेवाला मनुष्य शत्रुरहित होजाता है । मानो " सत्यपालन का व्रत " ही सब दोषोंको धोनेवाली दोषधी अथवा ओषधि है । इस सूक्त में कही संख्याका क्या भाव है वह समझमें नहीं आता ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

आत्मबल।

[१६]

(ऋषिः— विश्वामित्रः । देवता-एकवृषः)

यद्येकवृषोसि सृजारसोऽसि ॥ १ ॥ यदि द्विवृषोसि सृजारसोऽसि ॥ २ ॥
यदि त्रिवृषोसि सृजारसोऽसि ॥ ३ ॥ यदि चतुर्वृषोसि सृजारसोऽसि ॥ ४ ॥
यदि पञ्चवृषोसि सृजारसोऽसि ॥ ५ ॥
यदि षड्वृषोसि सृजारसोऽसि ॥ ६ ॥
यदि सप्तवृषोसि सृजारसोऽसि ॥ ७ ॥
यद्यष्टवृषोसि सृजारसोऽसि ॥ ८ ॥
यदि नववृषोसि सृजारसोऽसि ॥ ९ ॥
यदि दशवृषोसि सृजारसोऽसि ॥ १० ॥
यद्येकादशोसि सोपोदकोसि ॥ ११ ॥

अर्थ— (यदि एकवृषः, द्विवृषः, त्रिवृषः, चतुर्वृषः, पञ्चवृषः, षड्वृषः, सप्तवृषः, अष्टवृषः, नववृषः, दशवृषः, असि) यदि तू एक दो तीन चार पांच छः सात आठ नौ और दस शक्तियोंसे युक्त है, तो (सृज) बल उत्पन्न कर, नहीं तो (अरसः असि) तू निःसत्व ही रहेगा। तथा यदि तू (एकादशः असि) ग्यारहवां है, तो (अपउदकः असि) तू प्राकृतिक जीवन रससे रहित है॥ १—११ ॥

मनुष्यमें दस इंद्रियशक्तियां हैं। प्रत्येक इंद्रियमें बडी भारी वृषशक्ति, अथवा अश्व-शक्ति भी कहिये, है। शरीरस्थ आत्मा इन सब शक्तियोंसे युक्त रहता है। आत्मा शरीरमें आनेके पश्चात् उसको उचित है कि वह अपना बल बढावें, यदि यह बल बढानेका प्रयत्न न करेगा, तो निःसंदेह इसका बल घटता जायगा। बल न घटे इसलिये इसको उचित है कि, वह अपना बल बढानेका यत्न करे। जिस समय यह ग्यारहवां शुद्ध आत्मा अर्थात् देहसे विरहित आत्मा होता है, उस समय उसके पास ये प्राकृतिक शक्तियां नहीं होती हैं। उस समय वह केवल आत्मिक शक्तिसे ही युक्त रहता है और वह अखंड शक्ति होती है, इसलिये उस समय उसमें घट वध कुछ नहीं कहा जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

स्त्रीके पातिव्रत्यकी रक्षा ।

[१७]

(ऋषिः—मयोभूः । देवता—ब्रह्मजाया)

तेऽवदन् प्रथमा ब्रह्मकिल्बिषेऽकूपारः सलिलो मातरिश्वा ।
वीडुहरास्तप उग्रं मयोभूरापो देवीः प्रथमजा ऋतस्य ॥ १ ॥
सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां पुनः प्रायच्छदहृणीयमानः ।
अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीदग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय ॥ २ ॥

अर्थ— (अ-कू-पारः सलिलः) अगाध समुद्र, (मातरिश्वा) वायु (वीडुहराः) बलवान तेजवाला अग्नि, (उग्रं तपः) उग्र ताप देनेवाला सूर्य (मयो-भूः) सुख देनेवाला चन्द्र, (देवीः आपः) दिव्य जल, (ऋतस्य प्रथमजाः) सत्यका पहिला प्रवर्तक देव (ते प्रथमाः) ये पहिले देव भी (ब्रह्म किल्बिषे अवदन्) ब्राह्मणके संबंधमें पातक करनेवालेके विषयमें गवाही देते हैं ॥ १ ॥

(अहृणीयमानः प्रथमः सोमो राजा) क्रोध न करता हुआ पहिला सोम राजा (ब्रह्म जायां पुनः प्रायच्छत्) ब्राह्मणकी भार्याको पुनः वापस देने लगा। उस समय (वरुणः मित्रः अन्वर्तिता आसीत्) वरुण और मित्र ये साथ चलनेवाले थे और (होता अग्निः हस्तगृह्य निनाय) होता अग्नि हाथ पकड कर चलाता रहा ॥ २ ॥

भावार्थ- अग्नि, जलनिधि समुद्र, वायु, तेजस्वी सूर्य, सुख देनेवाला चन्द्रमा, तथा अन्य सब देव ब्राह्मणके संबंधमें पाप करनेवाले पापीके पापाचरणके विषयमें सत्य बात स्पष्ट कह देते हैं ॥ १ ॥

सोमने शान्तिके साथ ब्राह्मणकी स्त्रीको पुनः वापस दिया, वहां वरुण और मित्र उपस्थित थे और अग्निभी पाणिग्रहण के समय होता बना था ॥ २ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेति चेदवोचत् ।
न दूताय प्रहेया तस्थ एषा तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य ॥ ३ ॥
यामाहुस्तारकैषा विकेशीति दुच्छुनां ग्राममवपद्यमानाम् ।
सा ब्रह्मजाया वि दुनोति राष्ट्रं यत्र प्रापादि शश उल्कुषीमान् ॥४॥
ब्रह्मचारी चरति वेविषद् विषः स देवानां भवत्येकमङ्गम् ।
तेन जायामन्वविन्दद् बृहस्पतिः सोमेन नीतां जुह्वं न देवाः ॥ ५ ॥

अर्थ- (हस्तेन एव ग्राह्यः अस्याः आधिः) हाथसे ही ग्रहण किया जावे, ऐसा इसका आदेश है, (ब्रह्मजाया इति चेत् अवोचत्) यदि यह ब्राह्मणकी पत्नी है ऐसा कहा जाय । (एषा दूताय प्रहेया न तस्थे) यह दूतके लिये लेजाने योग्य होकर नहीं ठहरती, (तथा क्षत्रियस्य गुपितं राष्ट्रं) वैसा ही क्षत्रियका सुरक्षित राष्ट्र होता है ॥ ३ ॥ (विकेशी एषा तारका इति) बंधन रहित यह तारका है ऐसा (ग्रामं अवपद्यमानां दुच्छुनां यां आहुः) जिस को ग्रामके ऊपर गिरनेवाली विपत्ति करके कहते हैं। इसी प्रकार (सा ब्रह्मजाया राष्ट्रं विदुनोति) वह ब्राह्मण स्त्री राष्ट्रको विशेष हिला देती है, (यत्र उल्कुषीमान् शश प्रअपादि) जहां उल्कायुक्त शशक गिरता है ॥४॥ (ब्रह्मचारी विषः वेविषत् चरति) ब्रह्मचारी प्रजाओंकी सेवा करता हुआ जगत्में संचार करता है, इसलिये (सः देवानां एकं अंगं भवति) वह देवोंका एक अंग बनता है । (तेन बृहस्पतिः जायां अन्वविन्दत्) उसके द्वारा बृहस्पतिने भार्या प्राप्त की (सोमेन नीतां जुह्वां न देवाः) जिस प्रकार सोमने लायी हुई चमस से हुत आहुती देव प्राप्त करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ-जो ब्राह्मणकी पत्नी कही जाती है वह पाणिग्रहण विधिसे ही विवाहित हुई होती है । यह किसीके दूतद्वारा भगाई जाने योग्य नहीं होती, इसकी सुरक्षासे क्षत्रियका राष्ट्र सुरक्षित होता है ॥ ३॥ जिस प्रकार आकाशकी तारका और उल्का किसी ग्रामपर गिरती है और वह दुश्चिन्ह कहा जाता है, उसी प्रकार वह ब्राह्मणस्त्री भगाई जाने पर राष्ट्रका नाश करती है ॥४॥ ब्रह्मचारी विद्या समाप्त करनेपर जनताकी सेवा करता हुआ जगत् में संचार करता है, इसलिये उसको देवतांश कहते हैं । यह उक्त अत्याचार का पता लगाता है,और जिसकी स्त्री उसके पास पहुंचाता है ॥५॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

देवा वा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्तऋषयस्तपसा ये निषेदुः ।
भीमा जाया ब्राह्मणस्यापनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन् ॥ ६ ॥
ये गर्भा अवपद्यन्ते जगद् यच्चापलुप्यते ।
वीरा ये तृह्यन्ते मिथो ब्रह्मजाया हिनस्ति तान् ॥ ७ ॥
उत यत् पतयो दश स्त्रियाः पूर्वे अब्राह्मणाः ।
ब्रह्मा चेद्धस्तमग्रहीत् स एव पतिरेकधा ॥ ८ ॥

अर्थ-(एतस्यां पूर्वे देवाः वै अवदन्त) इसके संबंधमें पूर्व देवोंने कहा है, तथा (ये तपसा निषेदुः सप्त ऋषयः) जो तप करनेके लिये बैठते हैं उन सप्त ऋषियोंने भी वैसाही कहा है। (ब्राह्मणस्य अपनीता जाया भीमा) ब्राह्मणकी भगाई पत्नी भयंकर होती है, उसे (परमे व्योमन् दुर्धां दधाति) परम धाममें भी दुःख देनेवाली वह है ऐसी धारणा करते हैं ॥ ६ ॥ (ये गर्भाः अवपद्यन्ते) जो गर्भ गिर पडते हैं, (जगत् यत् च अप लुप्यते) जो चलनेवाले प्राणी नाशको प्राप्त होते हैं, (ये वीराः मिथः तृह्यन्ते) जो वीर परस्पर लडते भिडते हैं, (तान् ब्रह्मजाया हिनस्ति) उनको ब्राह्मणकी भार्या मार डालती है ॥ ७ ॥ (उत यत् पूर्वे अब्राह्मणाः स्त्रियाः दश पतयः) और जो पहिले ब्राह्मणसे भिन्न स्त्रीके दस पति होते हैं, (ब्रह्मा चेत् हस्तं अग्रहीत्) ब्राह्मणने यदि उसका पाणिग्रहण किया, तो (स एव एकधा पतिः) वह उसका एकही पति होता है ॥ ८ ॥

भावार्थ-तप करनेवाले ऋषि और सब देवता लोग इस विषयमें वारंवार कहते आये हैं कि, इस प्रकार भगाई गुरुपत्नी भयानक हानि करती है और दूसरे उच्च लोकोंमें भी बडी पीडा देती है ॥ ६ ॥

राष्ट्रमें जिस समय अकालमें बालकोंकी मृत्यु होती है और प्राणियोंका बहुत संहार होता है, और आपसमें वीर लोग एक दूसरेके सिर फोडने लगते हैं, तब समझना चाहिये कि यह परिमाम गुरुपत्नी के पूर्वोक्त कष्ट से ही हो रहा है ॥ ७ ॥

ब्राह्मणसे भिन्न दस पति स्त्रीके होते हैं, परंतु जिस समय ब्राह्मण किसी स्त्रीका पाणिग्रहण करता है, उस समय उस स्त्रीका वही एक पति होता है, कदापि उस स्त्रीका दूसरा पति नहीं हो सकता ॥ ८ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ब्राह्मण एव पतिर्न राजन्यो३ न वैश्यः ।
तत् सूर्यः प्रब्रुवन्नेति पञ्चभ्यो मानवेभ्यः ॥ ९ ॥
पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्या अददुः ।
राजानः सत्यं गृह्णाना ब्रह्मजायां पुनर्ददुः ॥ १० ॥
पुनर्दाय ब्रह्मजायां कृत्वा देवैर्निकिल्बिषम् ।
ऊर्जं पृथिव्या भक्त्वोरुगायमुपासते ॥ ११ ॥
नास्य जाया शतवाही कल्याणी तल्पमा शये ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥ १२ ॥

अर्थ— (ब्राह्मण एव पतिः न राजन्यः न वैश्यः) ब्राह्मणही एक पति है, क्षत्रिय और वैश्य नहीं। (सूर्यः पञ्चभ्यः मानवेभ्यः तत् प्रब्रुवन् एति) सूर्य पांचों मनुष्योंको वह कहता हुआ चलता है ॥ ९ ॥ (देवाः वै पुनः अददुः) देवोंने पुनः दिया, (मनुष्याः पुनः अददुः) मनुष्योंने पुनः दिया है। (सत्यं गृह्णानाः राजानः) सत्यका पालन करने वाले राजालोग भी (ब्रह्मजायां पुनः ददुः) ब्राह्मणस्त्रीको पुनः देते हैं ॥ १० ॥ (देवैः निकिल्बिषं कृत्वा ब्रह्मजायं पुनर्दाय) देवोंने पापरहित करके ब्राह्मणस्त्रीको पुनः देकर (पृथिव्याः ऊर्जं भक्त्वा) पृथिवीके बलका विभाग करके (उरुगायं उपासते) बडी प्रशंसा करने योग्य देवताकी उपासना करते हैं ॥ ११ ॥ (यस्मिन् राष्ट्रे अचित्या ब्रह्मजाया निरुध्यते) जिस राष्ट्रमें अज्ञानसे ब्राह्मणकी स्त्री प्रतिबंधमें डाली जाती है। (अस्य शतवाही कल्याणी जाया तल्पं न आशये) उसकी सौ संतान उत्पन्न करनेवाली कल्याण कारिणी स्त्री भी बिस्तरेपर न सोवे ॥ १२ ॥

भावार्थ— ब्राह्मण ही एक पति है, क्षत्रिय और वैश्य नहीं, यह बात सूर्य ही पञ्चजनोंको कहता है ॥ ९ ॥ देव, मनुष्य और सत्यपालक राजा लोग गुरुपत्नीको सुरक्षित गुरुके प्रति पहुंचाते हैं ॥ १० ॥ जहां निष्पापतासे गुरुपत्नीको सुरक्षितता के साथ गुरुगृहके प्रति पंहुंचाया जाता है, वहां भूमिका सत्व बढता है और यश फैलता है ॥ ११ ॥ परंतु जिस राष्ट्रमें गुरुपत्नीको प्रतिबंध होता है, उस राष्ट्रमें मानो कोई सुवासिनी स्त्री बिस्तरे पर सुरक्षित नहीं सो सकती ॥ १२ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

न विकर्णः पृथुशिरास्तस्मिन् वेश्मनि जायते ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्या ॥ १३ ॥
नास्य क्षत्ता निष्कग्रीवः सूनानामेत्यग्रतः ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्या ॥ १४ ॥
नास्य श्वेतः कृष्णकर्णो धुरि युक्तो महीयते ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्या ॥ १५ ॥
नास्य क्षेत्रे पुष्करिणी नाण्डीकं जायते बिसम् ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्या ॥ १६ ॥
नास्मै पृश्निं वि दुहन्ति येऽस्या दोहमुपासते ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्या ॥ १७ ॥
नास्य धेनुः कल्याणी नानड्वान्त्सहते धुरम् ।
विजानिर्यत्र ब्राह्मणो रात्रिं वसति पापया ॥ १८ ॥

अर्थ-जिस राष्ट्रमें अज्ञानसे ब्राह्मणस्त्री प्रतिबंधमें पडती है (तस्मिन् वेश्मनि विकर्णः पृथुशिराः न जायते) उस घरमें विशेष सुननेवाला और बडे शिर वाला पुत्र उत्पन्न नहीं होता ॥ १३ ॥ जिस राष्ट्रमें अज्ञानसे ब्राह्मणस्त्री प्रतिबंधमें पडती है, (अस्य क्षत्ता निष्कग्रीवः सूनानां अग्रतः न एति) उस राष्ट्रका वीर सुवर्णालंकार गलेमें धारण करके लडकियोंके सन्मुख नहीं जाता है ॥१४॥ जिस राष्ट्रमें अज्ञानसे ब्राह्मणस्त्री प्रतिबंधमें पडी होती है (अस्य श्वेतः कृष्णकर्णः धुरि युक्तः न महीयते) उस राष्ट्रमें श्यामकर्ण श्वेतवर्ण का घोडा धुरामें युक्त होकर महत्त्वको प्राप्त नहीं होता ॥ १५ ॥ जिस राष्ट्रमें अज्ञानसे ब्राह्मणस्त्री प्रतिबंधित होती है (अस्य क्षेत्रे न पुष्करिणी) उसके क्षेत्रमें कमलोंवाले तलाव नहीं होते और (बिसं आण्डीकं न जायते) कमलको बीज भी नहीं होता ॥ १६ ॥ जिस राष्ट्रमें अज्ञानसे ब्राह्मणकी स्त्री प्रतिबंधमें डाली जाती है, उस राष्ट्रमें (ये अस्याः दोहं उपासते) जो इसके दोहन के लिये बैठते हैं वे (अस्मै पृश्निं न दुहन्ति) इसके लिये गौ दुहते नहीं ॥ १७ ॥ (विजानिः ब्राह्मणः) स्त्रीरहित होकर ब्राह्मण (यत्र रात्रिं पापया वसति) जहां रात्रीमें पापबुद्धिसे रहता है, (अस्य) उसके राष्ट्रमें (न कल्याणी धेनुः) कल्याण करनेवाली धेनु नहीं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

होती है और (न अनड्वान धुरं सहते) न बैल धुराको सहता है ॥ १८ ॥

भावार्थ- जिस राष्ट्रमें गुरुपत्नी का अपमान होता है उस राष्ट्रमें उत्तम पुत्र नहीं उत्पन्न हो सकते॥ सुवर्णके आभूषण धारण करके कोई वीर बालिकाओंके साथ खेल नहीं सकता॥ श्यामकर्ण घोडे को कोई जोत नहीं सकता॥ कमलयुक्त तालाव प्रफुल्लित नहीं होते ॥ गौवें दूध नहीं देतीं ॥१३--१७॥

जिस राष्ट्रमें गुरुपत्नीकी मानहानि होती है और उस कारण धर्मपत्नी न होनेसे गुरु अकेला ही त्रस्त होकर क्रोधकी भावना मनमें धारण करके सोता है, उस राष्ट्रमें गौभी कल्याण नहीं करती और बैलभी कार्य करनेवाला नहीं होता है ॥ १८ ॥

स्त्रीचारित्र्यकी रक्षा।

स्त्रीचारित्र्यकी रक्षा करनी चाहिये, यह उपदेश देनेके लिये यह सूक्त है। जिस राष्ट्रमें स्त्रीचारित्र्य की रक्षा की जाती है, और सब पुरुष स्त्रीके चारित्र्यकी रक्षा करने के लिये तत्पर रहते हैं उस राष्ट्रकी उन्नति होती है। परन्तु जिस राष्ट्रमें स्त्रीचारित्र्य की रक्षा नहीं होती, वह राष्ट्र पतित होता है। सारांशसे इस सूक्तका यह उपदेश है।

इस सूक्तमें ब्राह्मणकी स्त्री क्षत्रियके द्वारा भगाई जानेसे राष्ट्रपर कितने अनर्थ गुजरते हैं, इसका वर्णन है। " वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः। " अर्थात् सब वर्णोंको विद्यादान देनेवाला सबका अध्यापक अथवा " गुरु " ब्राह्मण है। इसलिये ब्राह्मणकी स्त्री सबकी " गुरुपत्नी " होती है। जिस प्रकार " ब्राह्मण " सब पुरुषोंको ज्ञानोपदेश देता हुआ सर्वत्र भ्रमण करता है, उसी प्रकार " ब्राह्मणी " भी सब स्त्रियोंको धर्म का उपदेश करती हुई भ्रमण करती है। गुरुपत्नीका यह कर्तव्य ही है। यह कर्तव्य करनेके लिये जब गुरुपत्नी बाहर भ्रमण करती है तब उसके चारित्र्य का रक्षण सब लोग करें। कोई भी उसको प्रतिबन्ध न करें और न उसका किसी प्रकार अपमान करें।

जो गुरुपत्नीका अपमान करनेका साहस करेंगे, वे अन्यस्त्रियोंका अपमान करनेसे पीछे नहीं हटेंगे, यह भाव यहां है। वास्तवमें सभी स्त्रियोंके चारित्र्यकी रक्षा होनी चाहिये। क्योंकि इसी पर राष्ट्रका गौरव अवलंबित है। जिस राष्ट्रमें गुरुत्नीका भी चारित्र्य अथवा पातिव्रत्य गुण्डोंके अत्याचारके कारण सुरक्षित नहीं रहता, वहांकी अन्य स्त्रियोंकी दुर्दशाका वर्णन ही क्या हो सकता है ? इसलिये सब स्त्रियोंके चारित्र्यके उत्कर्षकी दृष्टिसेही इस सूक्तमें कहा है कि सब जनता गुरुपत्नीका अपमान न करें। यह सूक्त आकाशस्थ तारोंकी गतिपर रचा हुआ अलंकार है, इसका स्पष्टीकरण अब देखिये—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

एकादश वर्षका ॐ इतिवृत्त।

स्वाध्याय मंडल.

द्वारा

प्रकाशित

पुस्तकों का सूचीपत्र.

मंत्री
स्वाध्याय मंडल; औंध. (जि. सातारा)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ॐ

स्वाध्याय मंडल

औंध (जि. सातारा)

स्वाध्याय मंडल का उद्देश्य

(१) वेदोंका स्वाध्याय करना और कराना ।

(२) वैदिक शब्दोंके मूल अर्थ की खोज करना।

(३) मूल वेदोंका अर्थ मूल वेदोंके आधारसे करना ।

(४) लोगोंमें वैदिक धर्म की जागृति करना।

(५) वैदिक धर्म के सुबोध ग्रंथ प्रसिद्ध करना ।

(६) वैदिक धर्मकेसाथ अन्य धर्मग्रंथों की तुलना करना।

(७) वैदिक धर्मकेसाथअन्यमत ग्रंथोंकी तुलना करना।

(८) वैदिक दृष्टीसे गाथाओंका अर्थ निश्चित करना।

(९) प्रचलित युरोपीयन मतकी समालोचना करना ।

(१०) प्रतिपक्षियोंके आक्षेपोंका सप्रमाण उत्तर देना।

ये स्वाध्याय मंडल के उद्देश्य हैं और इसी दृष्टिसे आज ग्यारहवर्ष इस मंडलका कार्य चल रहा है, जिसका वृत्त इस लेखद्वारा प्रसिद्ध किया जाता है । आशा है कि वैदिक धर्मके प्रेमी इस कार्यको बढानेके लिये सहायता देंगे ।

औंध (जि. सातारा)] श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.
१ जनवरी १९२९] स्वाध्याय मंडल, औंध

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

स्वाध्याय मंडल।

" वेदका पढना पढाना, सुनना सुनाना, सब आर्योंका परम धर्म है।"

नाम

(१) नाम=इस संस्थाका नाम 'स्वाध्याय मंडल' है।

उद्देश।

(२) उद्देश – (पूर्वस्थानमें दिये हैं ।)

कार्यक्षेत्र।

(३) कार्यक्षेत्र=उक्त उद्देशोंके अनुसार वैदिक तत्त्वज्ञान और वैदिक धर्मके सुबोध ग्रंथ प्रचलित अनेक भाषाओंमें प्रसिद्ध करना तथा वेदके पठन पाठनके लिये उचित सहायता और उत्तेजना देना।

स्वाध्याय मंडलका व्यय।

(४) स्वाध्याय मंडल का व्यय= पुस्तक प्रकाशन में लाभकी आशा न करनेके कारण, स्वाध्याय मंडल के व्यय आदिके लिये, उदारचित्त ' दानी महाशयों की उदारता ' परही विश्वास रखा है। आशा है कि धनिक लोग स्वयं द्रव्यकी सहायता करेंगे और दूसरे लोग सहायता करवायेंगे।

----०----

सदस्यों के नियम।

प्रतिपालक वर्ग।

(५) स्वा०मंडलके प्रतिपालक=जो धनिक पांच सौ रु० अथवा अधिक धनराशी स्वा० मंडलको दान देंगे, वे स्वा० मंडलके " प्रतिपालक " हो सकते हैं। इनको " स्वाध्याय-मण्डल " के सब पुस्तक मिलेंगे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पोषकवर्ग।

(६) स्वाध्याय मंडलके पोषक = जो धनिक सौ रु० अथवा अधिक धनराशी स्वाध्याय मंडलको दान देंगे वे स्वाध्याय मंडल के " पोषक " हो सकते हैं। इनको वह सब पुस्तक भेंटके रूपमें मिलेंगे कि जो इनकी रकम आने के पश्चात् मुद्रित होंगे।

[गत वर्ष बीस रु. से अधिक मूल्यके पुस्तक इस वर्ग के सदस्योंको भेजे गये हैं।]

सहायकवर्ग।

(७) सहायक = जो यथाशक्ति द्रव्यकी सहायता करेंगे वे स्वाध्याय मंडलके " सहायक " हो सकते हैं।

स्थिर सहायक वर्ग।

(८) स्थिर-सहायक=जो २५, ५०, १०० अथवा अधिक रु. स्वाध्याय मंडलके पास अनामत रखेंगे वे " स्थिर सहायक " होंगे। (दो वर्षके पश्चात् जिस समय चाहे उस समय इनका धन वापस हो सकता है।)

[इनको तथा सहायक वर्ग के सदस्योंको उनकी रकमके हिसाबसे क्रमशः २, ४॥, और १०, रु. के पुस्तक (डाकव्यय समेत) प्रतिवर्ष भेंट किये जांयगे। अर्थात् डाकव्यय इन के जिम्मे होगा। इस वर्ग के सदस्य सालके अन्तमें अपनी रुचि के अनुसार जो चाहे सो पुस्तकें चुनकर भी ले सकते हैं।]

मासिक सहायता।

(९) मासिक-सहायक=जो प्रतिमास यथाशक्ति सहायता करेंगे वे ' मासिक-सहायक ' होंगे।

[इनको भी सब ग्रंथ प्राप्त धनके अनुसार मिलते रहेंगे।]

सूचना

सूचना - सहायक, स्थिर सहायक, तथा मासिक सहायक आदिकोंको उनकी रकम प्राप्त होनेके अनुसार स्वा० मं० के पुस्तक मिलेंगे। सबको उचित है कि वे स्वा० मंडलके पुस्तक स्वयं पठन करें इन पुस्तकोंका प्रचार करने में सहायता करें और उक्त प्रकार के पालक, पोषक, सहायक आदिकों की संख्या बढानेमें सहायता दें। क्यों कि आर्थिक सहायताके विना 'स्वाध्याय-मंडल' का कार्य चल नहीं सकता।

वार्षिकवृत्त।

(१०) वार्षिकवृत्त=स्वाध्याय मंडलका वार्षिक वृत्त प्रतिवर्ष प्रसिद्ध होगा, जिसमें स्वाध्याय मंडल के सब कार्य का विवरण आदि प्रकाशित होगा।

प्राप्तिपत्र।

(११) प्राप्तिपत्र=प्रत्येक दानका प्राप्तिपत्र स्वाध्याय मंडलसे दानी महाशयके पास पहुंचेगा। तथा वार्षिकवृत्तमें उसका उल्लेख रहेगा।

पुस्तक विक्रीके नियम।

(१२) उधार पुस्तक देना बंद किया है। सब पुस्तक वी. पी. द्वारा ही भेजे जाते हैं, अथवा पेशगी मूल्य आनेपर रजिस्ट्री डाकसे भेजे जाते हैं। पैकिंग अच्छा करनेका विशेष ख्याल किया जाता है।

कमिशन।

(१३) कमिशन-व्यौपारियों के लिये निम्न प्रकार कमिशन दिया जाता है—

१००	रु. के	पुस्तकोंपर	२० फी	सैंकडा
५०	"	"	१५ "	"
२५	"	"	१० "	"
१०	"	"	५ "	"

दस रु० से कम रकमकी पुस्तकें मंगवाने वालों को कमिशन नहीं मिलेगा।

कमिशन नहीं मिलेगा।

(१४) वैदिक धर्म, पुरुषार्थ, महाभारत, संस्कृत पाठमाला, तथा संस्कृत स्वयंशिक्षक इन मासिकों पर कमिशन नहीं मिलेगा, क्यों कि इनका मूल्य पहिले से ही न्यून रखा है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

डाकव्यय का अनुमान ।

(१५) प्रायः एक रुपयेके मूल्यके पुस्तकों के लिये दो या तीन आने डाक व्यय लगता है। किसी अवस्था में कुछ न्यून वा अधिक भी होता है । परंतु साधारण अनुमान यही है । पुस्तकों का जो मूल्य इस सूचीपत्र में लिखा है वह डाकव्यय के विना है । वी. पी. मंगवाने वालों को पुस्तकों के मूल्य के अतिरिक्त उक्त हिसाब से डाकव्यय देना पडेगा। परंतु जो मनी आर्डरसे दाम पेशगी भेजकर पांच रु० से अधिक रु० के पुस्तक मंगवायेंगे उनको डाकव्यय माफ होगा । मूल्य पेशगी भेजनेवालों को ही इतना लाभ है । पुस्तकें मंगवाने के समय ग्राहक इस सहूलियतसे लाभ उठावें । किसी कारण भी वी. पी. मंगानेवालों को डाकव्यय माफ नहीं होगा ।

दूसरे के नाम पर ।

(१६) कोई महाशय दूसरेके नामपर वी. पी. भेजनेको न लिखें । हमारा अनुभव है कि इस प्रकार की वी. पी. यां स्वीकृत नहीं होतीं । इस लिये ऐसी वी. पी. आगे नहीं भेजी जायगी ।

बदलेमें पुस्तक ।

(१७) बदलेमें पुस्तक नहीं दिये जाते, क्यों कि उनकी विक्री करनेका साधन यहां नहीं है ।

पेशगी मूल्य भेजनेसे लाभ ।

(१८) पेशगी मूल्य भेजने से लाभ = जो लोग ५) पांच अथवा अधिक रु. की पुस्तकें, पुस्तकों का सब मूल्य पेशगी म. आ. द्वारा भेजकर मंगवायेंगे, उनको उक्त कमिशनके अतिरिक्त पांच फी सैंकडा कमिशन अधिक मिलेगा और डाकव्यय माफ होगा। पांच रु० से कम मूल्य की पुस्तकें मंगवानेवालों को यह लाभ नहीं होगा ।

ध्यान दीजिये ।

वी. पी. मंगवाकर लोग वापस करते हैं, इससे बहुत नुकसान उठाना पडता है, इसलिये म. आ. से पेशगी मूल्य भेजने वालोंको ही उक्त सहूलियत दी है । वी. पी. से पुस्तकें मंगवाने वालोंको यह लाभ नहीं होगा । अर्थात् वी. पी. से मंगानें वालोंको डाकव्यय देना पडेगा । पुस्तकें मंगवाने के समय ग्राहक इस बातका विचार अवश्य करें ।

कम मुल्यकी वी. पी. ।

(१९) एक रु. से कम मूल्यकी पुस्तकें वी. पी.से मंगवाने में डाकव्यय दुगना देना पडता है । अतः १) एक रु. से कम मूल्य की पुस्तकें मंगवानी होंगी तो ब्रिटिश पाष्टके टिकट भेजकर मंगवाने में लाभ है । उदाहरण=) दो आनेकी पुस्तक पर वी. पी. व्यय।-) पांच आने लगता है और एक रु. के पुस्तकों पर भी ।-) लगता है । पुस्तकें मंगवाने वाले इसका अवश्य विचार करें ।

भाषामें पत्र ।

(२०) पत्र व्यवहार कृपया संस्कृत, हिंदी या आर्य भाषा, मराठी या अंग्रेजी में कीजिये । अन्य भाषाओंके पत्र यहां पढे नहीं जाते । यहां ऊर्दू पढने वाला कोई नहीं है ।

(२१) वापस आई हुई पुस्तकें पुनः मंगवानी होंगी तो डाकव्यय दुगना देना पडेगा ।

(२२) एक समय भेजीं हुई पुस्तकें पुनः किसी भी कारण से वापस नहीं ली जायगी ।

नियम परिवर्तन ।

उक्त नियमोंमें परिवर्तन करनेका अधिकार स्थानिक कार्यकारी मंडलको होगा । परंतु स्वा० मंडलकी उन्नतिके लिये सब सभासद अपनी सूचनाएं मंडलके पास भेज सकते हैं, जिनका निःपक्षपातसे विचार कर के योग्य सूचनाका अवश्य स्वीकार किया जायगा ।

औंध, जि. सातारा | श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
१ जनवरी १९२९ | स्वाध्याय मंडल, औंध

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वैदिक धर्मके ग्रंथ।

[१] "वैदिकधर्म"

मासिक पत्र वार्षिक मूल्य ४)

(३) यजुर्वेद।

विनाजिल्द	१॥) रु
कागजी जिल्द	२) ,,
कापडी जिल्द	२॥) ,,
रेशमी जिल्द	३) ,,

[२] "महाभारत"

१ आदिपर्व	मू.	६)रु
२ सभापर्व	,,	२),,
३ वनपर्व	,,	८),,
४ विराटपर्व	,,	१॥),,
५ उद्योगपर्व	,,	५),,
६ भीष्मपर्व	,,	४),,
७ द्रोणपर्व	,,	७॥),,
८ कर्णपर्व		३॥),,
९ शल्यपर्व		२),,

(४) संस्कृतपाठ माला।

एक अंकका मूल्य	।≈)
१२ अंकोंका मूल्य	४)
२४ अंकोंका मूल्य	६॥)

(५) वैदिक यज्ञ संस्था।

प्रथम भाग	१)
द्वितीय भाग	१)
तृतीय भाग, गोमेध	१)

(६) अथर्ववेदकासुबोधभाष्य।

१ प्रथम काण्ड।	२)
२ द्वितीय काण्ड	२)
३ तृतीय काण्ड	२)
४ चतुर्थ काण्ड	२)

(७) छूत और अछूत।

१ प्रथम भाग।	१)
२ द्वितीय भाग।	॥)

(८) महाभारतकी समालोचना।

१ प्रथम भाग	॥)
२ द्वितीय भाग (स्वर्गलोक)	॥)

(९) वेदका स्वयंशिक्षक।

१ प्रथम भाग	१॥)
२ द्वितीय भाग	१॥)

(१०) योगसाधन माला।

१ संध्योपासना।	१॥)
२ संध्याका अनुष्ठान।	॥)
३ वैदिक प्राण विद्या।	१)
४ ब्रह्मचर्य (सचित्र)।	१।)
५ योगसाधन की तैयारी।	१)
६ योग के आसन (सचित्र)।	२)
७ सूर्यभेदन व्यायाम ,,।	॥।)
८ इन्द्रशक्तिका विकास।	॥)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

(११) यजुर्वेदका स्वाध्याय ।

१ अ. ३० । नरमेध । १)
२ अ. ३२ । एकेश्वर उपासना ॥)
३ अ. ३६ । शांतिका उपाय ॥=)

(१२) देवतापरिचय ग्रंथमाला ।

१ रुद्रदेवता परिचय ॥)
२ ऋग्वेद में रुद्र देवता ॥=)
३ ३३ देवताओंका विचार ≡)
४ देवताविचार । ≡)
५ अग्निविद्या । १॥)

(१३) धर्मशिक्षा के ग्रंथ

१ बालक धर्म शिक्षा । प्रथम भाग -)
२ बालक धर्म शिक्षा । द्वितीय भाग =)
३ वैदिक पाठमाला । प्रथम पुस्तक ≡)

(१४) आगमनिबंधमाला ।

१ वैदिक राज्यपद्धति ।-)
२ मानवी आयुष्य । ।)
३ वैदिक सभ्यता । ॥।)
४ वैदिक चिकित्सा शास्त्र । ।=)
५ वैदिक स्वराज्य की महिमा । ॥)
६ वैदिक सर्प विद्या । ॥)
७ मृत्युको दूर करनेका उपाय । ॥)
८ वेदमें चर्खा । ॥)
९ शिवसंकल्पका विजय । ॥।)
१० वैदिक धर्मकी विशेषता । ॥।)
११ तर्कसे वेदका अर्थ । ॥)
१२ वेदमें रोगजंतु शास्त्र । ≡)
१३ ब्रह्मचर्यका विघ्न । =)
१४ वेदमें लोहेके कारखाने । ।-)
१५ वेदमें कृषिविद्या ≡)
१६ वैदिक जलविद्या । =)
१७ आत्मशक्तिका विकास । ।-)
१८ वैदिक उपदेश माला ॥)
१९ वैदिक कर्तव्य शास्त्र । १।)
२० आसन चित्रपट । ≡)
२१ नमस्कार चित्रपट । =)

छन्दो निर्णय =)

Surya Namaskar (Sun Adoration) Rs. 1

(१५) ब्राह्मणबोधमाला ।

१ शतपथ बोधामृत । मूल्य ।)

(१६) उपनिषद्ग्रंथमाला ।

१ ईश उपनिषद । १)
२ केन उपनिषद् । मूल्य १।)

डाक व्यय अलग देना होगा ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अथर्ववेदका सुबोधभाष्य।

प्रथम काण्ड।

इस प्रथम काण्डमें निम्नलिखित विषय हैं—

अथर्ववेदका महत्त्व। बुद्धिके संवर्धन करनेका उपाय। विजय प्राप्त करना। आरोग्य वर्धन। जलकी महिमा। धर्म प्रचार करना। अपना तेज बढाना। पापोंसे छुटकारा। संगठन करना। चोर आदि दुष्टोंका दूर करना। रक्तस्राव बंद करनेका उपाय। सौभाग्य वर्धन। शत्रुका नाश करना। आपसकी एकता। प्रजापालन। हृदयरोग, कामिला, श्वेतकुष्ठ, शीतज्वर इन रोगोंको दूर करना। सुख प्राप्ति। विजयी स्त्री। राष्ट्रसंवर्धन। आयुष्य बढाना। दिग्विजय। जीवनरसका महासागर। मधुविद्या।

इतने विषय प्रथम काण्डमें हैं। मूल्य २) डा. व्य. ॥)

द्वितीय काण्ड।

इस काण्डमें निम्नलिखित विषय हैं—

गुह्य अध्यात्मविद्या। एक पूजनीय ईश्वर। आरोग्य प्राप्ति। जंगिडमणि। क्षत्रिय धर्मका आदर्श। ब्राह्मण धर्मका आदर्श। शापको दूर करना। आनुवंशिक रोग दूर करना। सन्निपात रोग दूर करना। दुर्गतिसे बचना। आत्माके गुण। मनका बल बढाना। वस्त्रपरिधान। विपत्तियोंको हटाना। निर्भयजीवन। विश्वंभरकी भक्ति। आत्मसंरक्षणका बल। शुद्धिकी विधि। डाकुओंको असफल करना। पृश्निपर्णी। गोरस। विजय प्राप्ति। दीर्घ आयुष्य। पुष्टि। सुप्रजानिर्माण। पति और पत्नी। रोगोत्पादक क्रिमि। क्रिमिनाशन। यक्ष्म नाशन। मुक्तिका सीधामार्ग। आत्मसमर्पण। विवाहका मंगलकार्य।

इस काण्डमें इतने विषय हैं। मूल्य २) डा. व्य. ॥) है

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

तृतीय काण्ड

इस तृतीय काण्डमें निम्नलिखित विषय हैं—

अपने राष्ट्रका विजय। शत्रुसेनाका संमोहन। राजा की पुनः अपने राज्यपर स्थापना। राजाका चुनाव। राजाको बनानेवाले। वीर पुरुष। आनुवंशिक रोगोंको दूर करना। राष्ट्रीय ऐक्य। क्लेश प्रतिबंधक उपाय। कालका यज्ञ। हवनसे दीर्घ आयुष्य। गृहनिर्माण। जल। गोशाला। वाणिज्यसे धनकी प्राप्ति। प्रातः कालमें भगवान् की प्रार्थना। कृषिसे सुख। वनस्पति। ज्ञान और शौर्य। तेजस्वितासे अभ्युदय। कामाग्निका शमन। तेजकी प्राप्ति। वीर पुत्रकी उत्पत्ति। समृद्धि। उन्नतिकी दिशा। पशुओंका स्वास्थ्य। संरक्षक कर। एकता। सांमनस्य। सहृदयता। पाप निवृत्ति।

इस काण्डमें इतने विषय हैं। मूल्य २) डा. व्य. ॥) है।

चतुर्थ काण्ड

इस चतुर्थ काण्डमें निम्नलिखित विषय हैं—

ब्रह्मविद्या। हम किस देवताकी उपासना करें? शत्रुओंको दूर करना। बल बढाना। निद्रा। विषको दूर करना। राजाका राज्याभिषेक। अञ्जन। शंखमणि। विश्वरूपी शकटका संचालक। रोहिणी औषधि। हस्तस्पर्शसे रोगनिवारण। आत्मज्योतिका मार्ग। वृष्टि। सर्वसाक्षी प्रभु। अपामार्ग औषधि। दिव्य दृष्टि। गौपालन। क्षात्रबल संवर्धन। पापमोचन। राष्ट्रीदेवी की भक्ति। मनका उत्साह। पाप नाशन। अन्नका यज्ञ। दुष्टोंका दमन। रोग नाशक ओषधी। सूर्यके किरण। समृद्धिकी प्राप्ति। शत्रुओंका नाश करना।

इत्यादि विषय इस काण्डमें हैं। मूल्य २) डा. व्य. ॥) है

मंत्री- स्वाध्याय मंडल, औंध

(जि. सातारा)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

स्वाध्याय मंडल द्वारा प्रकाशित

वैदिक धर्म के ग्रंथ।

१ आगम निबंध माला।

वेद अनंत विद्याओंका समुद्र है। इस वेद समुद्र का मंथन करनेसे अनेक "ज्ञान रत्न" प्राप्त होते हैं, इन रत्नों की यह माला है।

१ वैदिक-राज्य-पद्धति। मू. ।-)
२ मानवी आयुष्य। ,, ।)
३ वैदिक सभ्यता। ,, ।।।)
४ वैदिक चिकित्सा शास्त्र। ,, ।=)
५ वैदिक स्वराज्य की महिमा। ,, ॥)
६ वैदिक सर्प विद्या। ,, ॥)
७ मृत्युको दूर करनेका उपाय। ,, ॥)
८ वेदमें चर्खा। ,, ॥)
९ शिवसंकल्पका विजय। मू. ।।।)
१० वैदिक धर्मकी विशेषता। ,, ।।।)
११ तर्कसे वेदका अर्थ। ,, ॥)
१२ वेदमें रोगजंतु शास्त्र। ,, ≡)
१३ ब्रह्मचर्यका विघ्न। ,, =)
१४ वेदमें लोहेके कारखाने। ,, ।-)
१५ वेदमें कृषिविद्या। ,, ≡)
१६ वैदिक जल विद्या। ,, =)
१७ आत्मशक्तिका विकास। ,, ।-)
१८ वैदिक उपदेश माला। ,, ॥)
१९ इन्द्र शक्तिका विकास। ,, ॥)

२ धर्म शिक्षा के ग्रंथ।

बालक और बालिकाओंकी पाठशालाओंमें "धर्म शिक्षा" की पढाईके लिये तथा घरोंमें बालबच्चोंकी धार्मिक पढाईके लिये ये ग्रंथ विशेष रीतिसे तैय्यार किये हैं।

(१) बालकों की धर्म-शिक्षा.

प्रथमभाग, प्रथम श्रेणीकी धर्म शिक्षा के लिये मू.-)

(२) बालकों की धर्म शिक्षा

द्वितीय भाग। द्वितीय श्रेणीकी धर्म-शिक्षा के लिये। मू=) दो आने)

(३) वैदिक पाठमाला

प्रथम पुस्तक। तृतीय श्रेणीकी धर्म शिक्षा के लिये। मू≡)

अन्य श्रेणीयोंके लिये पुस्तक तैयार हो रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

[३]. योगसाधन माला.

" योग साधन" का अनुष्ठान करनेसे शारीरिक आरोग्य, इंद्रियोंकी स्वाधीनता, मानसिक शक्तिका उत्कर्ष, बुद्धिका विकास और आत्मिक बलकी प्राप्ति होना संभव है । इसलिये यह " योग-साधन " हर-एक मनुष्यको करने योग्य है ।

१ संध्योपासना.

योग की दृष्टिसे संध्या करनेकी प्रक्रिया इस पुस्तक में लिखी है । मू० १॥) डेढ. रु०

२ संध्याका अनुष्ठान ।

(यह पुस्तक पूर्वोक्त " संध्योपासना " में संमिलित है, इस लिये " संध्योपासना" लेनेवालों को इसके लेनेकी आवश्यकता नाहीं है ।) मू० ॥) आठ आने ।

३ वैदिक प्राण विद्या ।

प्राणायाम करनेके समय जिस प्रकार " मनकी भावना " रखनी चाहिये, उसका वर्णन इस पुस्तक में है । मू. १) एक रु.

४ ब्रह्मचर्य

इस पुस्तकमें " अथर्व वेदीय ब्रह्मचर्य सूक्त " का विवरण है । ब्रह्मचर्य साधनके योगासन तथा वीर्य-रक्षण के अनुभवसिद्ध उपाय इस पुस्तक में दिये हैं । यह पुस्तक "सचित्र" है । इसमें लिखे नियमों के अनुसार आचरण करनेसे थोडेही दिनोंमें वीर्य स्थिर होनेका अनुभव निःसन्देह होता है । मू० १।) सवारु.

५ योग साधन की तैयारी ।

जो सज्जन योगाभ्याससे अपनी उन्नति करना चाहते हैं, उनको अपनी तैयारी किस प्रकार करनी चाहिये इस विषयकी सब बातें इस पुस्तकमें लिखीं हैं । मू. १) एक रु. ।

६ आसन ।

इसमें उपयोगी आसनों का वर्णन चित्रोंके समेत दिया है । मू. २) रु.

७ सूर्यभेदन व्यायाम

(सचित्र) बलवर्धक योगके व्यायाम । मू. ॥।)

" योग साधन " के अन्य पुस्तक छप रहे हैं मुद्रित होतेही सूचना दी जायगी ।

४ यजुर्वेदका स्वाध्याय,

१ यजुर्वेद अ० ३० की व्याख्या ।

" नर मेध" मनुष्योंकी उन्नतिका सच्चा साधन । वैदिक नरमेध कितना उपयोगी है, इस विषयका ज्ञान इस पुस्तकके पढनेसे हो सकता है । मू० १) एकरु.

२ यजुर्वेद अ० ३२ की व्याख्या ।

"सर्वमेध" एक ईश्वर की उपासना । इस में एक ईश्वरकी स्पष्ट कल्पना बताई है । मू. ॥)

३ यजुर्वेद अ० ३६ की व्याख्या

" शांति करण" सच्ची शांति का सच्चा उपाय । व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और जगत् में सच्ची शांति कैसी स्थापन की जा सकती है, इसके वैदिक उपाय इस पुस्तक में देखिये । मूल्य ॥ =)

CC-0. In Public Domain. Funded by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

५ उपनिषद् ग्रंथ माला।

तत्त्वज्ञान के भंडारमें " उपनिषद् ग्रंथ " अमूल्य ग्रंथ हैं। तत्त्वज्ञान की अंतिम सीमा इन ग्रंथोंमें पाठक अनुभव कर सकते हैं। जीवनके समय ये ग्रंथ उच्च तत्त्वज्ञान के द्वारा सदाचार की शिक्षा देते हैं। और मृत्युके समय अमृतमय शांति प्रदान करते हैं। हरएक मनुष्यके लिये इन ग्रंथोंका पठन, मनन और अधिक विचार करनेकी अत्यंत आवश्यकता है।

१ ईश उपनिषद्।

इस पुस्तक में ईश उपनिषदकी व्याख्या है। मू. १

२ केन उपनिषद्

इस पुस्तकमें केन उठनिषद् का अर्थ और स्पष्टीकरण, अथर्ववेदीय केन सूक्त की व्याख्या और देवी भागवतकी कथाकी संगति बता दी है। उमा, यक्ष, आदि शब्दोंके अर्थ वैदिक प्रमाणोंसे निश्चित करके बताया है, कि उनका स्थान आध्यात्मिक भूमिकामें कहां है और उसकी प्राप्तिका उपाय क्या है।

मू. १।) रु.

६ देवता-परिचय-ग्रंथ-माला।

"वैदिक देवता" ओंका सूक्ष्मज्ञान होनेके विना वेदका मनन होना असंभव है, इसलिये इस ग्रंथमाला में "देवताओंका परिचय" करानेका यत्न किया है। पुस्तकोंके नामोंसेही पुस्तकोंके विषयका बोध हो सकता है—

१ रुद्र देवता का परिचय मू.॥)

२ ऋग्वेद में रुद्र देवता। मू.।।=)

३ ३३ देवताओंका विचार। ≡)

४ देवता विचार। ≡)

५ वैदिक अग्निविद्या। १।)

"अन्य" देवताओंका विचार और परिचय कराने वाले ग्रंथ तैयार हुए हैं, शीघ्रही मुद्रित होंगे।

७ ब्राह्मण बोधमाला।

१ शतपथ बोधामृत। मूल्य ।)

८ स्वयं-शिक्षक-माला।

१ वेदका स्वयं शिक्षक।

प्रथम भाग। मूल्य. १॥) डेढ रु०

२ वेदका स्वयं शिक्षक।

(द्वितीय भाग मू. १॥) डेढ रु०।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वैदिक यज्ञ संस्था।

प्रथम भाग। मूल्य १) रु. डाकव्यय।)

इस पुस्तक में निम्न लिखित विषयों का विचार हुआ है—

प्राचीन संस्कृत निबंध।

१-३ पिष्ट-पशुमीमांसा। लघु-पुरोडाश-मीमांसा।

भाषाके लेख। (ले०-श्री०- पं० बुद्धदेवजी) ४ दर्श और पौर्णमास,५ अद्भुत कुमार संभव।(ले० -श्री०पं०चंद्रमणिजी)६ बुद्ध के यज्ञ विषयक विचार।

(संपादकीय) ७ यज्ञका महत्त्व, ८ यज्ञका क्षेत्र, ९ यज्ञका गूढ तत्त्व, १० औषधियोंका महामख, (ले०-श्री०पं० धर्मदेवजी)११ वैदिक यज्ञ और पशु-हिंसा।(ले०-श्री० पं० पुरुषोत्तम लालजी) १२ क्या वेदोंमें यज्ञों में पशुओंका बलि करना लिखा है?

वैदिक यज्ञ संस्था। द्वितीय भाग. मूल्य १) रु. डा. व्य।)

इस द्वितीयभागमें निम्नलिखित विषयोंका विचार हुआ है- (ले०-श्री. पं. देवशर्माजी विद्यालंकार)

भारतवर्षमें यज्ञकी कमी, यज्ञकी महिमा, यज्ञसे जो चाहे सो प्राप्त कर लो, यज्ञपुरुषका वर्णन, हवन प्रक्रिया, यज्ञशेष और उच्छेष, राजसूय, विश्वजित, अश्वमेध, गोमेध, सर्वमेध, वाजपेय, पंचमहायज्ञ, यज्ञ संसारकी नाभि है।

पं. बुद्धदेवजी लिखित=संज्ञपन और अवदान।

संपादकीय = नरमेध का वैदिक तात्पर्य।

इतने विषयोंका विचार इस पुस्तकमें हुआ है। प्रत्येक विषय के प्रतिपादनके लिये वेदके अनेक प्रमाण दिये हैं और विषयका प्रतिपादन अति सुगम है। मूल्य १) डा. व्य.।)

वैदिक यज्ञ संस्था। तृतीय भाग।

गोमेध।

इस पुस्तकमें निम्न लिखित विषयोंका विचार हुआ है—

योगमें गोमांस, प्रकरणानुकूल अर्थ विचार, ऋषिपंचमी, वेदका महासिद्धान्त, यज्ञकी पूर्व और उत्तरवेदी, मधुपर्क, कलिवर्ज्य प्रकरण, बृहदारण्यक का वचन, गौके वैदिक नाम, गोमेधका विचार, चरक की साक्षी, विवाहमें गोमांस, अतिथिके लिये गौ, यज्ञमें मांस, अन्त्य यज्ञ, वेदमें अहिंसा, अवध्य गौ और बैल, यज्ञका तत्त्व, गौको खाना।

गोमेधके दो सूक्तोंका सरल अर्थ, गौका दान, गौ दान लेने का अधिकारी, रक्षक और पाचक, गौका महत्त्व, राष्ट्ररक्षक गौ, गौके लिये सोमरस, सबकी माता गौ।

इत्यादि अनेक विषय इसमें आगये हैं। हरएक विषयका प्रतिपादन करनेके लिये अनेक वेदमंत्रोंके पमाण दिये हैं। जो कहते हैं कि "वैदिक समयमें गोमांस भक्षण की प्रथा थी," उनके लिये यह उत्तम उत्तर है। यह पुस्तक पढने का पश्चात् उक्त विषयमें कोई शंका नहीं रहेगी।

मूल्य १) रु. डा. व्यय।-)

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

संस्कृत पाठ माला।

[स्वयं संस्कृत सीखने का अत्यंत सुगम उपाय।]

हरएक आर्यका कर्तव्य है कि वह संस्कृत भाषा सीखे और वेद तथा आर्ष शास्त्र स्वयं पढे, उसका मनन करे और प्रचार करे।

यह कर्तव्य तबतक ठीक रीतिसे पालन नहीं हो सकता, जबतक संस्कृत सीखनेके सुगम साधन निर्माण नहीं हुए हों। इस कठिनता का हम कई वर्षोंसे मनन कर रहे हैं। इन वर्षोंमें हमने अनेक प्रयत्न किये, छोटे और बडे विद्यार्थियोंको भिन्न भिन्न रीतियोंसे पढा कर अनुभव लिया और इतने अनुभव का और मननका निछोड इन पुस्तकों में संगृहित किया है। इसी लिये ये पुस्तक अत्यंत सुगम और सबके उपयोगी सिद्ध होगये हैं।

ये पुस्तक हमने छः से दस वर्षोंके बालकों और बालिकाओंको पढाये और अनुभव लिया, कि ये छोटे बालक पहिले महिने से ही छोटे छोटे वाक्य संस्कृत में बोलने लगते हैं और इन पुस्तकों की पढाई करना उनके लिये एक बडा आनंद का कार्य हो जाता है!! इसी प्रकार स्त्रियों और पुरुषोंके लिये भी ये पुस्तक अत्यंत लाभकारी सिद्ध हुए हैं।

इसी लिये आपसे निवेदन है कि आप इन पुस्तकों की सूचना अपने समाजके आर्य सभासदों, सदस्यों और प्रेमी भद्र पुरुषोंको दीजिये। हर एक आर्य भाई अवश्य संस्कृत सीखे। कईयों को अबतक पता नहीं है कि ऐसी सुगम पुस्तकें बनी हैं। इस लिये आप यथा संभव जितनोंको इन पुस्तकों की सूचना दे सकते हैं दीजिये, ताकि आपकी प्रेरणा द्वारा वहां के भद्रपुरुष संस्कृत के अभिज्ञ बनें।

आप अपने समाजके अधिवेशनोंमें इसकी घोषण दीजिये और ऐसी व्यवस्था कीजिये कि आपके स्थान पर अधिक से अधिक मनुष्य संस्कृत पढनेवाले बने।

हरएक की सुविधा के लिये इस संस्कृत पाठमालाके बारह पुस्तकों का मूल्य म० आ० से केवल चार रु. रखा है। वी. पी. से ४॥) रु० होगा इस लिये ग्राहक म० आ० से ही ४) रु. भेजें, वी. पी. से मंगवाने पर उनका व्यर्थ नुकसान होगा।

आशा है कि आप इस संस्कृत के प्रचार के लिये इतनी सहायता देंगे।

जहां अन्य स्थानोंमें सहस्रों मनुष्य इन पुस्तकों से लाभ उठा रहे हैं, वहां अपके परिचित मनुष्य क्यों वंचित रहें ?

इस लिये इन पुस्तकों की सूचना आप अधिकसे अधिक मनुष्योंतक पहुंचानेकी कृपा कीजिये।

संस्कृत पाठमाला के अध्ययन से लाभ।

(१) अपना कामधंदा करते हुए फुरसत के समय आप किसी दूसरेकी सहायता के बिना इन पुस्तकोंको पढकर अपना संस्कृत का ज्ञान बढा सकते हैं।

(२) प्रतिदिन घंटा अथवा आध घंटा पढनेसे एक वर्षके अंदर आप रामायण महाभारत समझने की योग्यता प्राप्त कर सकते हैं।

(३) पुस्तक अत्यंत सुगम हैं। बिना नियमों को कंठ किये आपका संस्कृत भाषामें प्रवेश हो सकता है

(४) घरमें पुत्रों, पुत्रियों और स्त्रियोंको इन पुस्तकों का पढना और पढाना अत्यंत सुगम है। इन पुस्तकोंके पठनसे आपके घर के सब मनुष्य संस्कृत जाननेवाले हो सकते हैं।

(५) पाठशालामें जानेवाले विद्यार्थी इन पुस्तकों से बडा लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

यदि आपके मनमें संस्कृत सीखनेकी इच्छा है तो आप इन पुस्तकोंके ग्राहक बन जाइये।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

संस्कृत पाठ माला.

(चोवीस भागोंमें सब संस्कृत की पढाई हो गई है ।)

बारह पुस्तकोंका मूल्य म. आ. से ४) और वी. पी. से ४॥)
चोवीस पुस्तकोंका मूल्य म. आ. से ६॥) रु. और वी. पी. से ७)
प्रतिभाग का मूल्य ।≈) छः आने और डा. व्य -) एक आना ।

अत्यंत. सुगम रीतिसे संस्कृत भाषाका अध्ययन करनेकी अपूर्व पद्धति

इस पद्धतिकी विशेषता यह है ---

१ प्रथम द्वितिय और तृतिय भाग ।
इन तीन भागोंमें संस्कृत भाषाके साथ साधारण परिचय करा दिया गया है ।

२ चतुर्थ भाग ।
इस चतुर्थ भागमें संधि विचार बताया है ।

३ पंचम और षष्ठ भाग ।
इन दो भागोंमें संकृतके साथ विशेष परिचय कराया गया है ।

४ सप्तम से दशम भाग ।
इन चार भागोंमें पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंगी नामोंके रूप बनानेकी विधि बताई है ।

५ एकादश भाग ।
इस भागमें "सर्वनाम" के रूप बताये हैं ।

६ द्वादश भाग ।
इस भागमें समासों का विचार किया है ।

७ तेरहसे अठारहवें भाग तक के छः भाग।
इन छः भागोंमें क्रियापद विचार की पाठविधि बताई है ।

८ उन्नीससे चौवीसेंव भागतकके छः भाग।
इन छः भागोंमें वेदके साथ परिचय कराया है ।

अर्थात् जो लोग इस पद्धतिसे अध्ययन करेंगे उन को अल्प परिश्रम से बडा लाभ हो सकता है ।

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अग्नि विद्या

इस पुस्तकमें निम्नलिखित विषय हैं।

१ अग्नि शब्दका भाव, २ अग्निके पर्याय शब्द, ३ पहिला मानव अग्नि, ४ वृषभ और धेनु, ५अंगिरा ऋषि, ६ वैश्वानर अग्नि, ७ ब्राह्मण और क्षत्रिय, ८ जनता का केन्द्र, ९ सब धन संघका है, १० बुद्धिमें पहिला अग्नि, ११ मनुष्यमें अग्नि, १२ मर्त्योंमें अमर अग्नि, १३ वाणीमें अग्नि, १४ पुरोहित अग्नि, १४ शक्ति प्रदाता अग्नि, १६ हस्त-पाद-हीन गुह्य अग्नि, १७ वृद्ध नागरिक, १८ मूकमें वाचाल, १९ अनेकों का प्रेरक एक देव, २० जीवनाग्नि, २१ अग्निकी दस बहिनें, २२ देवोंके साथ रहनेवाला अग्नि. २६ यज्ञका झंडा २४ गुहा निवासी अग्नि. २५ सात संख्याका गुह्य तत्त्व, २६ तनूनपात् अग्नि, २७ यज्ञ पुरुष, यज्ञशाला, मंदिर (चित्र), २८ परमाग्नि, २९ अग्नि सूक्त का अर्थ और व्याख्या।

हर एक विषयको सिद्ध करने के लिये वेद के विपुल प्रमाण दिये हैं। इस पुस्तकके पढने से अग्नि विद्या की वैदिक कल्पना ठीक प्रकार ज्ञात हो सकती है। मूल्य १॥) रु. डाकव्यय ।) है

—०—

‘ केन ’ उपनिषद् !

इस पुस्तकमें निम्न लिखित विषयोंका विचार हुआ है—

१ केन उपनिषद् का मनन, २ उपनिषद् ज्ञान का महत्त्व, ३ उपनिषद् का अर्थ, ४ सांप्रदायिक झगडे, ५ ‘ केन ’ शब्द का महत्त्व, ६ वेदान्त, ७ उपनिषदों में ज्ञान का विकास, ८ अग्नि शब्दका भाव, ९ उपनिषद् के अंग, १० शांतिमंत्रोंका विचार, ११ तीनों शांति मंत्रों में तत्त्वज्ञान, १२ तीन शांतियोंका भाव, १३ ईश और केन उपनिषद्, १४ “यक्ष” कौन है ? १५ हैमवती उमा, १६ पार्वती कौन है ? १७ पर्वत, पार्वती, रुद्र, सप्तऋषि और अरुंधती, १८ इंद्र कौन है? १९ उपनिषद् का अर्थ और व्याख्या, २० अथर्ववेदीय केन सूक्तका अर्थ और व्याख्या, २१ व्यष्टी समष्टी और परमेष्टी, २२ त्रिलोकी, २३ अथर्वाका सिर, २४ ब्रह्मज्ञानी की आयुष्यमर्यादा, २५ ब्रह्म-नगरी, अयोध्या, आठ चक्र, २६ आत्मवान् यक्ष, २७ अपनी राजधानीमें ब्रह्मका प्रवेश, २८ देवी भागवत में देवी की कथा, २९ वेदका वागांभृणी सूक्त, इंद्र सूक्त, वैकुंठ सूक्त, अथर्व सूक्त, ३० शाक्तमत, देव और देवताकी एकता, ३१ वैदिक ज्ञान की श्रेष्ठता।

इतने विषय इस पुस्तक में आगये हैं, इस लिये उपनिषदोंका विचार करनेवालों के लिये यह पुस्तक अवश्य पढने योग्य है। मूल्य १।) रु. डाकव्यय=) है।

स्वाध्याय मंडल, औंध. (जि. सातारा)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इन्द्र शक्तिका विकास

मनुष्य मात्र में इन्द्रशक्ति है, परंतु वह इतनी जाग्रत नहीं है। उसको जाग्रत करना और विकसित करना योगानुष्ठानोंसे साध्य होता है। उसके निर्देश वेद और उपनिषदोंमें अनेक हैं। इनकी संगति लगाकर अपने अंदर इन्द्रशक्तिका संवर्धन करनेकी अनुष्ठानपद्धति इसमें दर्शायी है। जो लोग इस पुस्तक का मनन करेंगे उनको इसके अनुष्ठानकी कल्पना ठीक रीतिसे हो सकती है। यह अनुष्ठान सुगम है, इसलिये प्रायः सभी मनुष्य कर सकते हैं। इस पुस्तक में निम्न लिखित विषयों का विचार हुआ है—

मनुष्य जीवन का उद्देश्य, अपने अंदर की शक्तियां, अपने अंदरकी इन्द्रशक्ति, इन्द्र और स्वर्ग, इन्द्रके गुण धर्म, इन्द्रशक्ति के विकास के चिन्ह, इन्द्र तत्व सूर्य में है, सब शक्तियोंका मूल स्रोत, मनुष्य का ध्येय, अभ्युदय, मृत्यु और अमरत्व, इन्द्र और वृत्रका युद्ध।

इन्द्र शक्ति का घातक खानपान, इन्द्र और मरुत्, प्राणायाम की पूर्व तैयारी, आसन और प्राणायाम प्रयत्नसे इन्द्र शक्तिका वर्धन, पिता और पुत्र, ऋतुओंका साक्षात्कार।

इन्द्र शक्तिका वर्धक खान पान, अनुष्ठानका तत्व, वैदिक विकासवाद, वैदिक संकोचवाद, संकोच विकास का स्वरूप, बीज प्रदाता ईश्वर, देवोंका प्रवेश मार्ग (चित्र), गर्भ प्रकरण, संपूर्ण तेजों का तेज, आत्माकी मुक्ति, आठ चक्र और नंदनवन, चक्र व्यूहमें प्रवेश।

पुरुषार्थका अवसर, शरीर में देवताओंका निवास, (चित्र) अपनी आत्मशक्तिका ध्यान, अपने अंदर ३३ देवताओं का निवास, उनका अपने अंदर अनुभव, उन्नतिका उपाय, दो मार्ग, प्रकाशका मार्ग, अनुष्ठान।

इस प्रकार यह पुस्तक अनुष्ठान करनेवाले महाशयोंके लिये बडा उपयोगी है।

मूल्य ॥) और डाक व्यय =) है।

छूत और अछूत ॥

अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ ! अत्यन्त उपयोगी !!

इसमें निम्न लिखित विषयों का विचार हुआ है,

१ छूत अछूत के सामान्य कारण,
२ छूत अछूत किस कारण उत्पन्न हुई और किस प्रकार बढी,
३ छूत अछूत के विषयमें पूर्व आचार्योंका मत,
४ वेद मंत्रों का समताका मननीय उपदेश,
५ वेदमें बताए हुए उद्योग धंदे,
६ वैदिक धर्मके अनुकूल शूद्रका लक्षण,
७ गुणकर्मानुसार वर्ण व्यवस्था,
८ एक ही वंशमें चार वर्णों की उत्पत्ति,
९ शूद्रोंकी अछूत किस कारण आधुनिक है,
१० धर्मसूत्रकारोंकी उदार आज्ञा,
११ वैदिक कालकी उदारता,
१२ महाभारत और रामायण समयकी उदारता
१३ आधुनिक कालकी संकुचित अवस्था।

इस पुस्तकमें हरएक कथन श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास' धर्मसूत्र आदिके प्रमाणोंसे सिद्ध किया गया है। यह छूत अछूत का प्रश्न इस समय अति महत्त्वका प्रश्न है और इस प्रश्नका विचार इस पुस्तक में पूर्णतया किया है।

प्रथम भाग मू. १) डा. व्य =)

द्वितीय भाग मू. ।॥) " =)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यजुर्वेदका शुद्ध मुद्रण

यजुर्वेद

दैनिक स्वाध्याय के लिये वेदोंकी चारों संहिताओं का, उपलब्ध शाखा संहिताओंके साथ, शुद्ध मुद्रण करनेका संकल्प किया है। इस कार्य के लिये श्रीमान् महाराजा साहेब औंध नरेशजी से पांच सहस्र रु० दान भी प्राप्त हुआ था। उक्त दान प्राप्त होते ही यजुर्वेदका मुद्रण शुरू किया जो इस समय तैयार हो चुका है। इसके तैयार करनेके लिये जहां जहां शुक्लयजुर्वेदी माध्यन्दिन शाखीय विद्वान ब्राह्मणोंके स्थान थे वहांसे उनके पाससे शुद्ध हस्त लिखित ग्रंथ मंगवाये। उनकी पडताल करनेसे मंत्रपाठका निश्चय किया। इस पडताल से अबतक छपे ग्रंथोंकी अनेक अशुद्धियोंका पता लगा। इतना करनेपर भी जहां पाठनिश्चय केवल पुस्तकों द्वारा तथा भाष्योंके मनन से भी न हो सका, वहां का पाठनिश्चय घनान्त वेदपाठी विद्वान ब्राह्मणोंके वेद-पाठ श्रवण करके और स्थान स्थान के ब्रह्मवृंदों से पूछ कर किया है। इस प्रकार बडे परिश्रमसे इस यजुर्वेद का मुद्रण किया है।

शुक्लयजुर्वेद की काण्व और वाजसनेयी ये दो शाखा संहिताएं हैं। यह वाजसनेयी शाखा संहिता का मुद्रण है। इसीके समान काण्व शाखा की संहिता है। जिस के मंत्रपाठमें कुछ भिन्नता है। परंतु संहिता का क्रम इसीके समान है। अध्याय ४० ही हैं, परंतु कुछ मंत्र आगे पीछे हैं। दोनों की तुलना करना स्वाध्याय के लिये अत्यावश्यक है, इसलिये विस्तारपूर्वक इस काण्व संहिताके पाठभेद मुद्रित किये हैं।

ये पाठभेद देनेके समय प्रतिपृष्ठपर काण्वशाखा का अध्याय दर्शाया है। साथ साथ दशक दिये हैं। अनुवाक बताये हैं। एक ओर वाजसनेयी संहिता के मंत्रांक दिये हैं। वहां ही मंत्रोंका प्रारंभ दिया है। जितना मंत्रभाग भिन्न है उतनाही उसके आगे दिया है और दूसरी ओर काण्वसंहिता का मंत्रांक दिया है। इससे पाठक थोडेसे अवलोकन से जान सकते हैं कि एक संहिताका एक मंत्र दूसरी संहिता में कहां है और किस रूपमें है। स्वाध्याय के लिये यह अत्यंत आवश्यक है।

तत्पश्चात् अध्यायक्रमसे, और अकारादिक्रमसे ऋषि और देवता सूचियाँ दी हैं। इसके पश्चात् अध्यायक्रमसे विषयसूची भी दी है। इससे स्वाध्यायशील पाठकोंको स्वाध्याय करनेके लिये बहुत सहायता मिल सकती है।

इसका नमूना पृष्ठ इस पृष्ठके साथ साथ दिया है इस से पाठक जान सकते हैं कि इसमें कैसे अलग अलग मंत्र दिये हैं, किसी प्रकार भी मंत्रोंकी संकीर्णता नहीं है। एक एक मंत्र खुला और स्पष्ट मुद्रित हुआ है। पाठक इस स्वाध्याय की सुविधाका अनुभव करें और इस पुस्तक का संग्रह करें।

पाठकों की सुविधाके लिये मूल्य अल्पही रखा है-

यजुर्वेद विना जिल्द	१॥)	रु. डा. व्य. ।=)
कपडा और कागजकी जिल्द	२)	” ” ॥)
पूर्णकपडेकी जिल्द	२॥)	” ” ”
पूर्णरेशमी की जिल्द	३)	” ” ”

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उत्तानायामव भरा चिकित्वान्त्सद्यः प्रवीता वृषणं जजान ।
अरुषस्तूपो रुशदस्य पाजऽइडायास्पुत्रो वयुनेऽजनिष्ट ॥ १४ ॥

इडायास्त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्या ऽ अधि । जातवेदो निधीमह्यग्ने हव्याय वोढवे ॥१५॥

प्र मन्महे शवसानाय शूषमाङ्गूषं गिर्वणसे ऽ अङ्गिरस्वत् ।
सुवृक्तिभिः स्तुवत ऽ ऋग्मियायार्चामार्कं नरे विश्रुताय ॥ १६ ॥

प्र वो महे महि नमो भरध्वमाङ्गूष्यꣳ शवसानाय साम ।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञा ऽ अर्चन्तो ऽ अङ्गिरसो गा ऽ अविन्दन् ॥ १७ ॥

इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायः सुन्वन्ति सोमं दधति प्रयांꣳसि ।
तितिक्षन्ते ऽ अभिशस्तिं जनानामिन्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेतः ॥ १८ ॥

न ते दूरे परमा चिद्रजाꣳस्या तु प्र याहि हरिवो हरिभ्याम् ।
स्थिराय वृष्णे सवना कृतेमा युक्ता ग्रावाणः समिधाने ऽ अग्नौ ॥ १९ ॥

अषाढं युत्सु पृतनासु पप्रिꣳ स्वर्षामप्सां वृजनस्य गोपाम् ।
भरेषुजाꣳ सुक्षितिꣳ सुश्रवसं जयन्तं त्वामनु मदेम सोम ॥ २० ॥

सोमो धेनुꣳ सोमो ऽ अर्वन्तमाशुꣳ सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति ।
सादन्यं विदथ्यꣳ सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै ॥ २१ ॥

त्वमिमा ऽ ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो ऽ अजनयस्त्वं गाः ।
त्वमा ततन्थोर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥ २२ ॥

देवेन नो मनसा देव सोम रायो भागꣳ सहसावन्नभि युध्य ।
मा त्वा तनदीशिषे वीर्यस्योभयेभ्यः प्रचिकित्सा गविष्टौ ॥ २३ ॥

अष्टौ व्यख्यत्ककुभः पृथिव्यास्त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून् ।
हिरण्याक्षः सविता देव ऽ आगाद्दधद्रत्ना दाशुषे वार्याणि ॥ २४ ॥

हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुभे द्यावापृथिवी ऽ अन्तरीयते ।
अपामीवां बाधते वेति सूर्यमभि कृष्णेन रजसा द्यामृणोति ॥ २५ ॥

हिरण्यहस्तो ऽ असुरः सुनीथः सुमृडीकः स्ववा यात्वर्वाङ् ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

चतुर्ऋचमानुष्टुभं, द्वयोरनुमतिर्द्वयोः सिनीवालीसरस्वत्यौ, सिनीवालि पृथुष्टुके द्वे गृत्समदस्त्वमग्ने द्वे आग्नेय्यौ जगत्यौ हिरण्यस्तूप आङ्गिरस, उत्तानायां द्वे देवश्रवा देववातश्च भारतावाद्या त्रिष्टुब्द्वितीयानुष्टुप्प्र मन्महे नोधा द्व्यृचमैन्द्रं त्रिष्टुभमिच्छन्ति त्वा द्व्यृचमैन्द्रं त्रैष्टुभमेव देवश्रवा देववातश्च भारतौ ॥ १ ॥ [य० अ० ३४ मं० १--१९]

अषाढं युत्सु गोतमश्चतुर्ऋचं त्रैष्टुभꣳ सौम्यमष्टौ व्यख्यचतुर्ऋचं त्रैष्टुभꣳ सावित्रमाङ्गिरसो हिरण्यस्तूपो द्वितीया जगत्युभा पिबतमाश्विनं तृचमुभा पिबतं प्रस्कण्वो गायत्रीमग्नस्वतीमश्विना त्रिष्टुभौ कुत्स, आ रात्रि पथ्याबृहतीꣳ रात्रिदेवत्यां कशिपा भरद्वाज-

अथ सर्वानुक्रमसूत्रे चतुर्थोऽध्यायः।

अथ० संहितायां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः।

१-६ यज्जाग्रतो०॥१॥– सुषारथिरश्वानिव०॥६॥	शिवसंकल्पः, आदित्ययाज्ञवल्क्यौ		मनः	त्रिष्टुप्
७ पितुं नु स्तोषं महो०	अगस्त्यः	,,	अन्नम्	उष्णिक्
८ अन्विदनुमते त्वं मन्यासै०		,,	अनुमतिः	अनुष्टुप्
९ अनु·नोऽद्यानुमति०		,,	,,	,,
१० सिनीवालि पृथुष्टुके०	गृत्समदः	,,	सिनीवाली	,,
११ पञ्च नद्यः सरस्वती०	,,	,,	सरस्वती	,,
१२ त्वमग्ने प्रथमोऽअङ्गिरा०	हिरण्यस्तूपः आङ्गिरसः	,,	अग्निः	जगती
१३ त्वं नोऽअग्ने तव देव०	,, ,,	,,	,,	,,
१४ उत्तानायामवभरा०	देवश्रवा देववातश्च भारतौ	,,	,,	त्रिष्टुप्
१५ इडायास्त्वा पदे वयं०	,, ,,	,,	,,	अनुष्टुप्
१६ प्र मन्महे शवसानाय शूष०	नोधाः	,,	इन्द्रः	त्रिष्टुप्
१७ प्र वो महे महि नमो०	,,	,,	,,	,,
१८ इच्छन्ति त्वा सोम्यासः०	देवश्रवा देववातश्च भारतौ	,,	,,	,,
१९ न ते दूरे परमा०	,, ,,		,,	,,
२० अषाढं युत्सु पृतनासु०	गोतमः	,,	सोमः	,,
२१ सोमो धेनुꣳ सोमो०	,,	,,	,,	,,
२२ त्वमिमाऽओषधीः सोम०	,,	,,	,,	,,
२३ देवेन नो मनसा देव सोम०	,,	,,	,,	,,
२४ अष्टौ व्यख्यत्ककुभः	हिरण्यस्तूपःआंगिरसः	,,	सविता	,,
२५ हिरण्यपाणिः सविता०	,, ,,	,,	,,	जगती
२६ हिरण्यहस्तोऽअसुरः सुनीथः०	,, ,,	,,	,,	त्रिष्टुप्
२७ ये ते पन्थाः सवितः०	,, ,,	,,	,,	,,
२८ उभा पिबतमश्विनोभा०	प्रस्कण्वः	,,	अश्विनौ	गायत्री
२९-३० अग्नस्वती०॥२९॥– द्युभिरक्तुभिः०॥३०॥	कुत्सः	,,	,,	त्रिष्टुप्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

देवा यज्ञं तन्वानाः ३१. १५
देवावीर्देवान् हविषा यजासि ११. ३५
देवासश्चक्रमा वयम् २०. १४
देवासो हि ष्मा मनवे समन्यवः ३३. ९४
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ३३. ९५
देवास्त्वा देवयज्यायै जुषन्ताम् ५. ४२
देवास्त्वा मन्थिपाः प्रणयन्तु ७. १७
देवास्त्वा शुक्रपाः प्रणयन्तु ७. १२
देवाः सधस्था विद रूपमस्य १८. ६०
देवी उषासानक्ता २८. १४, ३७
देवी उषासावश्विना २१. ५०
देवी ऊर्जाहुती दुघे सुदुघे २१. ५२; २८. १६, ३९;
देवी जोष्ट्री वसुधिती २१. १५, ३८
देवा जोष्ट्री सरस्वती २१. ५१
देवी देवमवर्धताम् २८. ३७-३९
देवी द्यावापृथिवी मखस्य वामद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः ३७. ३
देवीराप एष वो गर्भः ८. २६
देवीरापः शुद्धा वोढ्वं सुपरिविष्टा देवेषु ६.१३
देवेभ्यश्च पितृभ्य आ १९. ६५
देवेभ्यः शुन्धस्व ५. १०
देवेभ्यः शुम्भस्व ५. १०
देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु २५. ३४
देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा १२. ७५
देवेभ्यस्त्वा देवाव्यं गृह्णामि यज्ञस्यायुषे गृह्णामि ७.२२
देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यः ७. ३, ६
देवेभ्यः स्वाहा ६. ११
देवेभ्यो अदितये स्योनम् २९. २९
देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः २९. ३०
देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात् ८. ४३
देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् १३. ३४; ३५. १९
देवेभ्यो हव्यं सहममप्रयुच्छन् ५. ४
देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्यः ३३. ५४
देवेषु रत्नमभजन्त धीराः १९. ५२
देवेषु होत्रा यच्छ ६. २५
देवेष्वकृत श्रवः ३५. १८
देवैरग्ने सयावभिः ३३. १५
देवो अग्निः स्विष्टकृत् २१. ५८, २८. २२, ४५

यजुर्वेद मूलमात्र।

यजुर्वेद का मुद्रण कितने प्रयत्नसे किया है यह इस विवरणसे पाठक देख सकते हैं। यजुर्वेदसर्वानुक्रम और पादसूची के नमूने के पृष्ठ यहां दिये हैं। इनके देखनेसे पाठक स्वयं अनुभव कर सकते हैं कि ये पुस्तक कितनी उपयोगी हैं। सर्वानुक्रमसे प्रत्येक मंत्र के ऋषि देवता और छन्द विदित होसकते हैं। ये पुस्तक यजुर्वेद पाठ के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं। पादसूची का महत्त्व तो हरएक पाठक जान सकता है। मंत्रका प्रत्येक पाद कहां है इसका ज्ञान इससे हो सकता है। इनका मूल्य इस प्रकार है-

१ यजुर्वेद सर्वानुक्रम सूत्र। मूल्य १)
२ यजुर्वेद पाद सूची मूल्य १)
३ मूल यजुर्वेद विनाजिल्द ॥१॥)
" कागजी ,, २)
" कापडी ,, २॥)
" रेशमी ,, ३।)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

महाभारत ।

महाभारत के पठन से लाभ ।

———०———

(१) आर्यजातिका अत्यंत प्राचीन इतिहास विदित होगा ।
(२) आर्यनीति शास्त्रका उत्तम बोध होगा ।
(३) भारतीय राजनीति शास्त्र का ज्ञान होगा ।
(४) आर्यों की समाजसंस्थाओंकी उत्क्रांतिका बोध होगा ।
(५) आर्य राज्यशासनपद्धतिका पता लगेगा ।
(६) ऋषियोंके धर्मवचनों का बोध होकर सनातन मानव धर्मका उत्तम ज्ञान होगा ।
(७) चार वर्णों और चार आश्रमों की प्राचीन व्यवस्था के स्वरूपका पता लग जायगा ।
(८) कई आलंकारिक कथाओं के मूलका पता लग जायगा ।
(९) वैदिकधर्मके प्राचीन आचार विचारोंका ज्ञान होगा और—
(१०) प्राचीन आर्य लोगोंका सदाचार देखकर हमें आजकी स्थितिमें किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये, इसका निश्चित ज्ञान होगा ।

तात्पर्य हरएक अवस्थामें अपने प्राचीन पूर्वजोंके इतिहास का ज्ञान प्राप्त होनेसे अनन्त लाभ हो सकते हैं

इसलिये, आप स्वयं महाभारतका पाठ कीजिये, मनन कीजिये और बोध प्राप्त कीजिये तथा दूसरोंको वैसा करनेके लिये प्रेरणा कीजिये ।

प्रतिमास १०० पृष्ठोंका एक अंक प्रसिद्ध होता है.

१२ अंकोंका अर्थात् १२०० पृष्ठोंका मूल्य म. आ. ६)

और वी, पी, से ७ रु. है ।)

आप अपना नाम ग्राहक श्रेणीमें लिखवा कर अपना चंदा म. आ. से ६) रु. भेजदें तथा अपने मित्रोंको ग्राहक बनने के लिये उत्साह दीजिये ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ते द्रोणपुत्रमासाद्य यथावृत्तं न्यवेदयन् ॥ ४२ ॥
व्यवहारं गदायुद्धे पार्थिवस्य च पातनम् ।
तदाख्याय ततः सर्वे द्रोणपुत्रस्य भारत ।
ध्यात्वा च सुचिरं कालं जग्मुरार्ता यथागतम् ॥४३॥३६९२

इतिश्री महाभारते० शल्यपर्वांतर्गतगदापर्वणि दुर्योधनविलापे चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

संजय उवाच— वार्तिकाणां सकाशात्तु श्रुत्वा दुर्योधनं हतम् ।
हतशिष्टास्ततो राजन् कौरवाणां महारथाः ॥ १ ॥
विनिर्भिन्नाः शितैर्बाणैर्गदातोमरशक्तिभिः ।
अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ॥ २ ॥
त्वरिता जवनैरश्वैरायोधनमुपागमन् ।
तत्रापश्यन्महात्मानं धार्तराष्ट्रं निपातितम् ॥ ३ ॥
प्रभग्नं वायुवेगेन महाशालं यथा वने ।
भूमौ विचेष्टमानं तं रुधिरेण समुक्षितम् ॥ ४ ॥
महागजमिवारण्ये व्याधेन विनिपातितम् ।
विवर्तमानं बहुशो रुधिरौघपरिप्लुतम् ॥ ५ ॥
यदृच्छया निपतितं चक्रमादित्यगोचरम् ।
महावातसमुत्थेन संशुष्कमिव सागरम् ॥ ६ ॥
पूर्णचन्द्रमिव व्योम्नि तुषारावृतमण्डलम् ।

कांपने लगी। आकाशमें बिजली गिरी। ये वार्त्तावह अश्वत्थामाके पास पहुंचे और गदायुद्धमें राजाके गिरनेका समाचार सब कह दिया और थोडे समय तक रोते रहे, फिर सब इधर उधरको चले गये। (४०—४३) [३६९२]

शल्यपर्वमें चौसठ अध्याय समाप्त।

शल्यपर्वमें पैंसठ अध्याय।

सञ्जय बोले, हे महाराज! दुर्योधनको पृथ्वीमें गिरपडा सुन तेजवान शक्ती गदा और तोमरादि शस्त्रोंके घावोंसे व्याकुल आपकी ओरके वीरोंमेंसे बचे हुये; अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा तेज घोडोंके रथोंपर बैठकर राजाके पास आये, उन्होंने वहां आकर महात्मा दुर्योधनको वायुसे टूटे हुए वनमें पडे शालवृक्षके समान देखा। उस समय रुधिरमें भींगे, तडफते हुये महाराजकी ऐसी शोभा दीखती थी, जैसे व्याधेके बाणसे कटे हुए हाथीकी। रुधिरसे भींगे तडफते हुये, महाराजकी ऐसी शोभा दीखती थी, जैसे आकाशमें गिरे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

महाभारत।

आर्योंके विजयका प्राचीन इतिहास।

इस समय तक छपकर तैयार पर्व।

पर्वका नाम	अंक	कुल अंक	पृष्ठसंख्या	मूल्य	डा. व्यय
१ आदिपर्व	[१ से ११]	११	११२५	६) छः	रु १)
२ सभापर्व	[१२ " १५]	४	३५६	२) दो	" ।-)
३ वनपर्व	[१६ " ३०]	१५	१५३८	८) आठ	" १।)
४ विराटपर्व	[३१ " ३३]	३	३०६	१॥) डेढ	" ।-)
५ उद्योगपर्व	[३४ " ४२]	९	९५३	५) पांच	" १)
६ भीष्मपर्व	[४३ " ५०]	८	८००	४) चार	" ॥।)
७ द्रोणपर्व	[५१ " ६४]	१४	१३६४	७।) साडेसात	१।=)
८ कर्णपर्व	[६५ " ७०]	६	६३७	३॥) साढेतीन)	" ॥)

कुल मूल्य ३७॥) कुलडा.व्य.६॥।)

सूचना— ये पर्व छप कर तैयार हैं। अतिशीघ्र मंगवाइये। मूल्य मनी आर्डर द्वारा भेज देंगे तो आधा डाकव्यय माफ करेंगे; अन्यथा प्रत्येक रु० के मूल्यके ग्रंथका तीन आने डाकव्यय मूल्यके अलावा देने होंगे।

मंत्री— स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

मुद्रक तथा प्रकाशक— श्री० दा० सातवळेकर, भारतमुद्रणालय, औंध, (जि० सातारा)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

आसनों का चित्रपट।

आसनोंका व्यायाम लेनेसे सहस्रों मनुष्योंका स्वास्थ्य सुधर चुका है। इस लिये आसन व्यायामसे स्वास्थ्य लाभ होनेके विषयमें अब किसी को संदेह ही नहीं रहा है। अतः लोग सब आसनोंके एक ही कागज पर छपे हुए चित्रपट बहुत दिनोंसे मांग रहे थे। वैसे चित्रपट अब मुद्रित किये हैं। २०-३० इंच कागज पर सब आसन दिखाई दिये गये हैं। यह चित्रपट कमरे में दिवार पर लगाकर उसके चित्रों को देख कर आसन करनेकी बहुत सुविधा अब हो गई है।

मूल्य केवल ≡) तीन आने और डाक व्यय –) एक आना है।

वेदका स्वयं शिक्षक!

प्रथम और द्वितीय भाग!

ये अत्यंत सुगम रीतिसे वेदमें प्रवेश करानेवाले पुस्तक हैं। जो पाठक प्रतिदिन आधा घण्टा इन के अध्ययन के लिये देंगे, उनका प्रवेश वेदके भव्य मंदिरमें सुगमतासे हो सकता है। इतने सुबोध पुस्तक अबतक तैयार नहीं हुए हैं। इस समय दो भाग तैयार हैं। प्रत्येक भाग का मूल्य १॥) डेढ रु. और डाकव्यय तीन आने ≡) है।

स्वाध्याय मंडल – औंध, जि. (सातारा)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वैदिक कर्तव्यशास्त्र।

(लेखक-श्री. पं० स्ना० धर्मदेवजी सिद्धान्तालंकार विद्यावाचस्पति । संपादक-'वेद संदेश' (कर्णाटक मासिक)तथा सहसंपादक -' ब्रह्मचर्य ' (अंग्रेजी मासिक)

इस पुस्तकमें निम्नलिखित विषयोंका विचार हुआ है। "[प्रथम परिच्छेद] वैदिक कर्तव्य शास्त्रके १२ मूल सिद्धान्त । भ्रातृभाव तथा मित्र दृष्टि । सार्वभौम अटल नियम । जीवनका अन्तिम उद्देश्य । आत्मौपम्य दृष्टि । कर्मका नियम । पाप से निवृत्ति। शारीरिक और मानसिक शक्तियोंका समविकास । व्यक्ति और समाजका संबंध । स्वतंत्रता । कर्तव्य । सत्य । निर्भयता ॥ [द्वितीयपरिच्छेद] वैयक्तिक और पारिवारिक कर्तव्य । ईश्वर भक्ति । पवित्रता । संयम । स्त्रियोंका कर्तव्य ॥ [तृतीयपरिच्छेद] यज्ञ। चार वर्णोंके कर्तव्य । सबके राष्ट्रीय कर्तव्य । राष्ट्रकर्तव्य में स्त्रियोंका कार्य ॥[चतुर्थ परिच्छेद] वैवल की शिक्षा । बौद्धधर्मकी शिक्षा । चार सत्य और अष्टांगमार्ग । गौतम बुद्ध आस्तिक थे । अहिंसा के वैदिक और बौद्ध सिद्धान्तमें भेद ॥ [पञ्चम परिच्छेद] वैदिक कर्तव्यशास्त्र की सर्वोच्चता का कारण । सर्वांगीण उन्नतिका उपदेश । वैयक्तिक और सामाजिक, ज्ञान और कर्म, तर्क और श्रद्धा, भोग और त्याग का मध्यमार्ग। तेजस्वी वैदिक उपदेश । विकासवादी युरोपीयनोंके मत की समालोचना । वेदमें समता का उपदेश । हिंसात्मक कर्म । वैदिक शिक्षाओं की सार्वभौमता । "

इतने विषय इसमें आगये हैं। और प्रत्येक सिद्धांतका प्रतिपादन करने के लिये वेदमंत्रोंके अनेक प्रमाण दिये हैं । इस विषयपर ऐसी पुस्तक यही एक है, इसलिये पाठक इसका पाठ अवश्य करें । मूल्य १।) डा० व्य० ।

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

वैदिक उपदेशमाला ।

(ले० -श्री० पं० अभयदेव शर्माजी, गुरुकुल कांगडी)

"अपना जीवन शुद्ध और निष्पाप बनानेके लि- ये बारह उपदेश इसमें दिये हैं। ये बारह उपदेश जो सज्जन अपनायेंगे उनकी आत्मोन्नति निःसंदेह होगी। इसलिये एकवार यह पुस्तक अवश्य पढिये।"

मूल्य ॥) आठ आने. डा. व्य. =) दोन आने.

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ईश उपनिषद्.

ईश उपनिषद् अति प्रसिद्ध उपनिषद् ग्रंथ है। इसका सरल भाषानुवाद इस पुस्तकमें दिया है। प्रारंभमें अतिविस्तृत भूमिका दी है, जिसमें ईशोपनिषद्के कई सिद्धान्तोंका वैदिक प्रमाणोंसे विचार किया है और मंत्रभागोंका अर्थ निश्चित किया है। मंत्रका अर्थ देनेके पश्चात् अतिविस्तृत टिप्पणी दी है, जिसमें मंत्रोंके अर्थका अधिक स्पष्टीकरण किया है। पाठक इस टिप्पणीको पढनेसे मंत्रका तात्पर्य अच्छी प्रकार जान सकते हैं।

इसके पश्चात् मंत्रोंका विशेष स्पष्टीकरण किया है। जिसमें वेदके अन्यान्य स्थानोंके विशेष मंत्रोंके साथ ईश उपनिषद्के मंत्रोंकी तुलना की है। और वैदिक मंत्रोंसे बोध प्राप्त करनेकी रीति भी अति सुगमताके साथ बतायी है।

इस पुस्तकके पढनेसे ईशोपनिषद् का गंभीर अर्थ ध्यानमें आसकता है, और वैदिक सिद्धान्तोंका भी ज्ञान हो सकता है।

मूल्य १) डा. व्य. ।)

छन्दो निर्णय।

वेदमंत्रोंके कई छंद हैं। छंदका महत्त्व इतना है कि वेदमंत्रोंका अर्थ जाननेके लिये उनके छंदोंका ज्ञान होना अत्यंत आवश्यक है। छंदका ज्ञान होनेके लिये छंदः शास्त्रका अध्ययन करना आवश्यक है, परंतु यह कार्य साधारण मनुष्यके लिये सुगम नहीं है। इस लिये हमने इस पुस्तकमें सुगम ढंगसे छंदका ज्ञान देनेकी रचना की है। केवल अक्षर संख्याके ज्ञानसेही बहुतसे मंत्रोंके छंदका ज्ञान हो सकता है। साधारण मनुष्य भी इसको एक वार पढेगा, तो मंत्रचरणोंकी अक्षरसंख्या जानकर वह छंदका पता लगा सकता है। छंदके विषयमें इतना सुगम पुस्तक दूसरा नहीं है।

मूल्य =) दोन आने डा. व्य. –) एक अना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मराठी पुस्तकें.

पुरुषार्थ ग्रंथ माला.

१ संध्या [उपासना]

मराठी अर्थासह, किं० १ आणा. व ट. ख. १ आणा. संध्या हा 'ध्यानयोग' च आहे व तो विशिष्ट भावना मनांत स्थिर करीत गेल्यानेंच सिद्ध होणार आहे. अशा रीतिनें संध्या करतां यावी म्हणूनच या पुस्तकामध्यें संध्येचे मूळ वेदमंत्र दिले असून त्या खालीं त्या मंत्रांचें सरळ मराठी भाषांतर दिलें आहे, हें भाषांतर वाचलें असतां मंत्र म्हणतेवेळीं संध्या करतांना जी भावना मनांत धरणें अवश्य आहे तिचें सहज ज्ञान होईल व अशा रीतिनें संध्या करीत गेल्यास हरएकास आपली ऐहिक व पारमार्थिक उन्नति सहज साध्य करून घेतां येईल.

२ सूर्यास नमस्कार.

(ले०-श्री० बाळासाहेब पंत, बी. ए. प्रतिनिधि सं. औंध.)

या पुस्तकांत नमस्कारांच्या व्यायामाची सचित्र पद्धति दिली आहे. सुमारें दीड तप न चुकतां दररोज स्वतः श्रीमंतांनीं या पद्धतिनें नमस्कारांचा व्यायाम घेतला. अशा अनुभवानें या व्यायामाची श्रेष्ठता स्वतः पाहिल्यानंतर श्रीमंतांनीं औंध संस्थानामध्यें सर्व शाळांतून हा नमस्कारांचा व्यायाम अवश्य केला. त्यामुळें सर्व साधारणपणें सर्व मुलांवर इष्ट परिणाम झाल्याचें दिसून आलें. इतक्या अनुभवानंतर हें पुस्तक श्रीमंतांनीं लिहिलें आहे. म्हणून त्याची श्रेष्ठता सहज समजेल. किं ४ आणे, ट. ख. १ आणा.

नमस्कारांचा सचित्र तक्ता.

(२०×३० इंच म्ह०) सुमारें सवा हात रुंद व पावणेदोन हात लांब अशा कागदावर समंत्रक नमस्कारांचीं २५ नांवें क्रमानें छापलीं आहेत व वर उगवत्या सूर्याचें प्रेक्षणीय चित्र दिलें आहे व नमस्कार घालण्याची रीति दाखवणारीं चित्रेंही क्रमानें दिलीं आहेत. किंमत २ आणे, ट. ख. एक आणा.

३ मनुष्याचें आयुष्य.

मनुष्याचें आयुष्य किती आहे, तें वाढवतां येतें कीं नाहीं, वाढवतां येत असल्यास तें कोणत्या उपायांनीं वाढवतां येतें, पूर्वी कोणी या उपायांनीं आपलें आयुष्य वाढवलें होतें कीं काय; पूर्वी या देशांत कोणी कसें व किती आपलें आयुष्य वाढवलें, आज आपणांस आमचें आयुष्य कोणत्या उपायांनीं वाढवतां येईल, इत्यादि विषयांचें विवेचन शास्त्रीय प्रमाणांसह या पुस्तकांत आहे. किं ३ आणे. ट. ख. १ आणा.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

४ स्वधर्माची ओळख.

यांत स्वधर्माची ओळख पटविणारे लेख आहेत. हें पुस्तक वाचलें असतां आपल्या धर्माची उत्तम माहिती होईल. किं० ४ आणे. ट. ख. १ आणा.

५ वैदिक संस्कृतीचें स्वरूप

या पुस्तकामध्यें वैदिक संस्कृतीचें स्वरूप, दिव्य ऋषींचें दर्शन, शिक्षणाचें ध्येय, स्वराज्याची पात्रता, प्राचीन हिंदुस्थानांतील स्वराज्य वगैरे विषयांचें विवरण आहे. हें पुस्तक वाचलें असतां आर्यांच्या प्राचीन संस्कृतीची उत्कृष्ट कल्पना होऊं शकते.

किं० ४ आणे, ट. ख. १ आणा.

६ सूर्यभेदन व्यायाम (मराठी)

खात्रीनें आरोग्य, बल व आयुष्य वाढवणारा योगासनांचा व्यायाम. किंमत. ६ आणे ट. ख. १ आणा.

७–१० आरोग्यासाठीं योगसाधन.

प्रथम, द्वितीय, तृतीय व चतुर्थ भाग.

प्रत्येक भागाची किंमत आठआणे;प्रत्येकीं ट.ख.२आणे.

या पुस्तकांत मनुष्याच्या आरोग्यसाधनासाठीं योगसाधनाच्या जेवढ्या भागांचा विचार करणें आवश्यक आहे तेवढा अगदीं सुबोध रीतिनें केला आहे.

या पुस्तकामध्यें आरोग्यासाठीं योगसाधन कसें करावें तें दाखवलें आहे. शरीराच्या आरोग्यासाठीं आवश्यक असणारीं आसनें यांमध्यें सचित्र दिलीं असून, त्या संबंधीं भरपूर माहिती दिलेली आहे. या शिवाय हीं आसनें करण्यापासून कोणास कसा फायदा झाला तें त्यांच्याच शब्दांनींच दिलें आहे. यांतील आसनें केल्यानें मनुष्यास रोगाची बाध होणार नाहीं.

आसनांचा चित्रपट.

भिंतीवर टांगून त्याकडे पाहत आसनांचा व्यायाम घेणें फार सोईचें होतें. २०।३० इंच आकाराच्या उत्तम जाड कागदावर सर्व आसनें दाखवलीं आहेत. आसनांचा अभ्यास करणारांनीं हा चित्रपट लवकर मागवावा. किंमत तीन आणे. व. ट. ख. १ आणा.

पुरुषार्थाचे कायमचे वर्गणीदार.

जे लोक पुरुषार्थ मासिकाला कायमचे वर्गणीदार होऊं इच्छितील त्यांनीं एकवेळ पंचवीस रु० पुरुषार्थ कचेरींत भरावे, म्हणजे ते कायमचे वर्गणीदार होतील व पुढें केव्हांही त्यांस वर्गणी भरावी लागणार नाहीं. पुरुषार्थाचा आकार वाढून जरी वर्गणी वाढली, तरी त्यांस याच देणगीवर सतत " पुरुषार्थ " मासिक मिळत जाईल.

पुरुषार्थ मासिकाची वार्षिक वर्गणी म. आ. नें २॥ रु० व वी. पी. नें ३ रु. आहे. नमुन्याचा अंक फुकट मिळेल. आजच मागवा.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ईश उपनिषद्.

ईश उपनिषद् हा ग्रंथ तत्त्वज्ञानाच्या दृष्टिनें अत्यंत महत्वाचा आहे. अगदीं थोडक्यांत वैदिक तत्त्वज्ञानाच्या सर्व सिद्धान्तांचा विचार जसा या उपनिषदांत आहे तसा इतरत्र क्वचित्च आढळेल. या साठीं इतर ग्रंथांचें अध्ययन न करतां आलें तरी, वैदिक धर्माभिमान्यांनीं या ग्रंथाचें अध्ययन तरी अवश्य केलें पाहिजे. या साठीं या पुस्तकांत ईशोपनिषदाच्या मंत्रांचा सुबोध अर्थ व त्यांचें सुबोध स्पष्टीकरण दिलें आहे. तत्त्वज्ञानाचा गहन विषय अगदीं सुबोध रीतिनें या पुस्तकांत मांडला असल्यामुळें हें पुस्तक समजण्यास अगदीं सुबोध असें झालें आहे.

मूल्य ।। आठ आणे व ट. ख. ≈ तीन आणे.

पौराणिक गोष्टींचा उलगडा.

(भाग १ ला)

पौराणिक गोष्टी केव्हां केव्हां चमत्कारिक दिसतात, पण त्यांत फारच अमूल्य उपदेश भरलेला असतो. या चमत्कारिक दिसणाऱ्या पौराणिक कथा कोणत्या दृष्टीनें वाचाव्या व त्यांतून तात्पर्य कसें समजून घ्यावें, याचा विचार या पुस्तकांत केलेला आहे व यांत चार गोष्टी उलगडून ही दाखवल्या आहेत. जे लोक हें पुस्तक वाचतील त्यांस पौराणिक गोष्टी वाचण्यांची नवीनच दृष्टि प्राप्त होईल.

मूल्य ।। आठ आणे ट. ख. ≈ तीन आणे.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मराठी

संस्कृत स्वयं शिक्षक.

चोवीस भागांमध्यें संस्कृत भाषेचें अध्ययन.

अगदीं सुगम पद्धतिनें संस्कृत भाषा शिका.
चोविस भागांची आगाऊ म. आ. नें किंमत ६ रु. वी. पी. नें ७ रु.
बारा भागांची आगाऊ म. आ. नें किंमत ३॥ रु. व वी. पी. नें ४॥ रु
प्रत्येक भागाची किंमत ५ आणे व ट. ख. १ आणा.

घरीं बसल्या स्वतःच अध्ययन करा.
दुसऱ्याच्या मदतीवांचून स्वतःच अध्ययन करतां येतें.

हायस्कुलांतील विद्यार्थ्याला अपूर्व संधि.
हीं पुस्तकें हरएक पुस्तक विक्रणाराकडे विकत मिळतील.

स्वाध्याय मंडलांतून प्रसिद्ध

झालेलीं हिंदी पुतकें.

हिंदी भाषा ही सर्व हिंदुस्थानची राष्ट्रभाषा आहे. म्हणून सर्व हिंदवासीयांस, मग ते कोणत्याही प्रांतातील कोणतीही जन्मभाषा बोलणारे असोत; त्यांस हिंदी भाषा ही आलीच पाहिजे. या साठीं आम्हीं मुद्दाम अगदीं सोप्या हिंदी भाषेत बरींच पुस्तकें प्रकाशित केलीं आहेत. हीं इतकीं सोपीं आहेत कीं तीं मराठी वाचकांस सहज समजतात. यासाठीं मराठी वाचकांनीं हीं हिंदी पुस्तकें घेऊन आपल्या धर्मज्ञानाबरोबर राष्ट्रभाषेचेंही ज्ञान वाढवावें.

मंत्री —"स्वाध्याय मंडल" औंध (जि. सातारा)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यजुर्वेद वाजसनेयी संहिता.

उपलब्ध शाखासंहितांसह चारही वेदांचें मुद्रण करावें असा आमचा मनोदय पुष्कळ दिवसांपासून होता. या पवित्र कार्यास श्रीमंत महाराज सरकार बाळासाहेब पंत प्रतिनिधि सं० औंध, यांनीं पांच हजार रु. ची उदार देणगी गेल्यावर्षीं दिली. त्यावेळेपासून यजुर्वेदाच्या वाजसनेयी माध्यंदिन शुक्ल संहितेचें मुद्रण चालू केलें. तें आतां पूर्ण झालें आहे. या संहितेची शुद्ध प्रत तयार करण्यासाठीं ज्या ज्या ठिकाणीं माध्यन्दिन यजुर्वेदी ब्राह्मण आहेत तेथून अनेक जुन्या हस्तलिखित पोथ्या आणवून त्यांचे पाठ तपासून शुद्ध पाठ तयार केले व जेथें आजपर्यंत छापलेल्या पोथ्यांमध्यें व हस्तलिखित पोथ्यांमध्यें पाठभेद आढळला व ज्या पाठभेदाचा निर्णय भाष्यादिकांच्या सहाय्यानेंही होऊं शकला नाहीं त्यांचा निश्चय घनपाठी विद्वान ब्राह्मणांकडून करवून घेतला. या कामीं काशी, ग्वालेर, त्र्यंबकेश्वर, अहमदनगर वगैरे ठिकाणच्या ब्रह्मवृंदांनीं आपल्या पोथ्या देऊन व पाठभेद निश्चित करण्यास मदत करून आम्हांस बरेंच सहाय्य केलें व त्यांच्याच मदतीनें ही संहिता छापणें शक्य झालें. इतक्यांच्या एकवटलेल्या संघटित प्रयत्नानें या संहितेचें मुद्रण केलें असल्यामुळें हें आजपर्यंत छापलेल्या सर्व पुस्तकांत अधिक निर्दोष आहे असें म्हणण्यास हरकत नाहीं.

यामध्यें प्रत्येक मंत्र अगदीं सुटा असा छापलेला आहे. त्यामुळें मंत्र वाचण्यास फार सोपें जातें. आजपर्यंत छापलेल्या पोथ्यांमध्यें पदच्छेदाकडे फारसें लक्ष्य पुरवलेलें नाहीं. तो दोष या पुस्तकामध्यें आम्ही ठेवलेला नाहीं व जेथें जसें पद पाडलें पाहिजे तेथें तें तसेंच दाखवलें आहे.

शुक्लयजुर्वेदाच्या काण्व व वाजसनेयी अशा दोन संहिता सारख्या आहेत. मंत्रांमध्यें कांहीं पाठभेद, मंत्रांचा क्रमभेद असे थोडे भेद आहेत. ते दाखवण्यासाठीं या पुस्तकांत स्वतंत्र एक परिशिष्ट जोडलेलें आहे. पानाच्या डाव्या बाजूस वाजसनेयी संहितेचे मंत्रांक व उजव्या बाजूस काण्वसंहितेचे मंत्रांक दिलेले आहेत आणि मध्यें पाठभेद दिलेले आहेत. या व्यवस्थेमुळें एका संहितेमधील अमूक मंत्र दुसऱ्या संहितेंत कोठें आहे तें चटकन समजतें व तेथें असलेल्या पाठभेदाचेंही ज्ञान होतें. या मुळें हें एक पुस्तक घेतल्यानें काण्व व वाजसनेयी या दोनही संहिता घेतल्याचें श्रेय येतें. इतकें शुद्ध व उत्तम मुद्रण करून इतकें स्वस्त पुस्तक आजपर्यंत कोणीही दिलेलें नाहीं. सर्वांस सोईचें व्हावें म्हणून किंमत फारच कमी ठेवली आहे.

साधी बांधणी-किंमत	१॥ रु.	ट. ख०	।≈
कागदी "	" २	" "	॥
कापडी "	" २॥	" "	॥
रेशमी "	" ३	" "	॥

ज्यांनां जसें पुस्तक पाहिजे असेल त्यांनीं तसें मागवावें वी. पी. नें चार आणे अधिक बसतील.

यजुर्वेद सर्वानुक्रम व यजुर्वेदाच्या मंत्रांची पादसूची (चरणांची सूची) ही छापून तयार आहे. तिची किंमत पुढें दिली आहे—

१ यजुर्वेद सर्वानुक्रम १ रु. ट. ख. ।

२ यजुर्वेद मंत्रपादसूची १ " ।

"यजुर्वेद सर्वानुक्रमा" वरून प्रत्येक मंत्राच्या ऋषि, देवता व छंदांचें ज्ञान होईल व "मंत्रपादसूची" वरून मंत्राचा प्रत्येक चरण संहितेमध्यें कोठें आहे तें कळून येईल. हीं पुस्तकें फारच उपयोगी आहेत.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

स्वाध्यायमंडलका ग्यारहवे वर्ष का कार्य।

स्वाध्याय मंडल की स्थापना होकर आज ग्यारह वर्ष हो चुके हैं और इतने वर्षोंमें जो कार्य हुआ, वह इस वृत्त पत्र द्वारा पाठकोंके सन्मुख रखा जाता है। हमारी हार्दिक इच्छा यह थी कि, इतने वर्षोंमें इससे कई गुना अधिक कार्य करना, परंतु वेदके पुस्तकोंके ग्राहकोंकी संख्या प्रायः कम होती है, इसलिये मुद्रित पुस्तक शीघ्र बिकते नहीं; अतः हर समय आर्थिक कठिनतामें ही काम करना पडता है। इस कारण अनावश्यक परंतु शीघ्र बिकनेवाले ग्रंथ निर्माण करनेमें समय बिताना पडता है और आवश्यक वैदिक ग्रंथोंका मुद्रण दूर रखना पडता है। कई वर्षोंसे आर्थिक कठिनता इस प्रकार हमें सता रही है जो वेगसे कार्य होने नहीं देती है। जो पाठक वैदिक ग्रंथोंके शीघ्र मुद्रण होनेके इच्छुक हैं, उनको उचित है कि, वे इसका योग्य विचार करें।

वेदोंका मुद्रण।

वेदोंके शुद्ध और सुंदरतया मुद्रित पुस्तक कहीं भी नहीं मिलते, इसलिये वेदोंकी मूल संहिताओंका मुद्रण करने की हमारी हार्दिक इच्छा थी। यह कार्य आर्थिक सहायताके विना होना असंभव था। इसलिये यह इच्छा कई वर्ष हमारे मन में ही रही। परंतु श्री० औंध नरेश की पांच हजार रु० की सहायता आगई जिस कारण " (१) यजुर्वेद मूलमात्र, (२) यजुर्वेदका सर्वानुक्रम सूत्र, और (३) यजुर्वेद के मंत्रोंके पादोंकी अनुक्रमणिका " ये तीन ग्रंथ प्रकाशित हो गये। इसका सब श्रेय श्री० औंध नरेश को ही है।

अथर्ववेदका मुद्रण।

इसी प्रकार अथर्व वेदका मुद्रण करनेका विचार है। परंतु यह कार्य यजुर्वेद की अपेक्षा तीन गुणा बडा है। और कमसे कम आठदस हजार रु० हाथमें न रहे तो इसका प्रारंभ भी नहीं हो सकता। इस लिये इसका मुद्रण स्थगित रखा है। जो दानी महोदय वेदके सुंदर ग्रंथ मुद्रित करनेके इच्छुक हैं, वे इस कार्यके लिये दान देंगे, तो ही यह कार्य प्रारंभ किया जा सकता है।

इसका आवश्यक प्रारंभिक कर्तव्य हमने किया है, अर्थात् अथर्ववेदकी शुद्ध प्रतिलिपी करना, उसके शुद्धाशुद्ध पाठोंका निश्चय करना, और शाखा संहिताओंके पाठोंकी तुलना करना आदि सब कार्य प्रायः हो चुका है और जो शेष कार्य है वह भी शीघ्र ही तैयार हो जायगा। जिस समय इस कार्यके लिये आवश्यक धनका प्रबंध हो जायगा, उसी समय मुद्रणका प्रारंभ किया जायगा।

अथर्ववेदका सुबोध भाष्य।

अथर्ववेदका सुबोध भाष्य प्रकाशित हो रहा है। इसके चार काण्ड प्रकाशित होचुके हैं और पांचवां छप रहा है। यह सुबोध भाष्य इतना सुबोध है कि जो पाठक केवल भाषाही जानते हैं और संस्कृत नहीं जानते, वे भी इसको समझ सकते हैं और अथर्व वेदके सूक्तोंका हृद्गत जान सकते हैं। जो पाठक एकवार इस भाष्यका पाठ करेंगे, उनको इसकी सरलताका पता लग सकता है।

अथर्व वेदके वीस काण्ड हैं, जिनमें से केवल चार ही काण्ड छप चुके हैं और पांचवां छप रहा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

है। शेष पंद्रह छपने हैं। प्रत्येक काण्डकी बनवाई और छपाईके लिये एक हजार रु० से अधिक व्यय लगता है, इस प्रकार अथर्ववेदका कुल भाष्य मुद्रित होनेके लिये पचीस हजार रु० की आवश्यकता है। यदि धनी पाठक एक एक हजार रु० का दान देंगे अथवा कुछ वर्षोंके लिये कर्जा देंगे, तो उनके नामसे एक एक काण्डका मुद्रण किया जा सकता है। जो कर्जा देंगे,उनका कर्जा अथर्व वेदके मुद्रण की समाप्तिपर वापस किया जा सकता है। इससे उनका नाम भी होगा और वेदमुद्रणका कार्य भी होगा।

जो पाठक इस पवित्र कार्यके लिये अपना धन लगाना चाहते हैं वे इसका विचार करें। इस प्रकार की सहायता प्राप्त होनेके विना अथर्व वेदका सुबोध भाष्य पूर्ण होना कठिन कार्य है, क्योंकि प्रतिदिन छपाई चल रही है और उस छपाईके लिये कागज आदिमें जो धन खर्च हो रहा है वह शीघ्र वापस नहीं होता है, ग्रंथोंके रूपमें रुका रहता है यह आर्थिक कठिनता पाठक अनुभव करें और इस कार्यका भार जितना हो सकता है अपने सिरपर ले कर हमारा बोझ कम करदें। ऐसा होनेसे ही आगे का कार्य चल सकेगा।

महाभारत।

महाभारत ग्रंथका महत्त्व सब जानते ही हैं। इसका शुद्ध, उत्तम और सस्ता बडे अक्षरोंसे मुद्रण करनेके विचारसे इसकी छपाई शुरू की गई। यह ग्रंथ अब करीब तीन चौथाई छप चुका है। और शेष ग्रंथ शीघ्र ही छप जायगा।

यह ग्रंथ धर्मज्ञान देता है, इतनाही नहीं अपितु राष्ट्रीय बुद्धिभी विकसित करता है और जातीयताका रक्षण करनेका सामर्थ्य उत्पन्न करता है। ऐसा कथा ग्रंथ दूसरा निर्माण ही नहीं हुआ। इस कारण इसको अद्वितीय ग्रंथ कहते हैं। आर्योंके दिग्विजयका अति प्राचीन इतिहास इसके पढनेसे ज्ञात हो सकता है। इसके अतिरिक्त इसमें वेदके कई सूक्तोंका रूपान्तर भी दिया हुआ है जो वेद जिज्ञासुओंके अर्थ बोध के लिये अत्यंत लाभकारी है। महाभारतका मुद्रण हम इसी लिये कर रहे हैं। और इसकी समालोचनामें बताया जायगा कि वैदिक सूक्तोंके साथ महाभारतके वर्णनका संबंध किस प्रकार है। यह सब मनोरंजक विषय क्रमशः मुद्रण करनेका हमारा विचार है।

इस विषयमें पाठकोंसे निवेदन इतनाही है कि वे इस ग्रंथके ग्राहक अपने इष्ट मित्रोंमें बढाने द्वारा हमारी सहायता करें। ग्राहक बढनेके पूर्व इस ग्रंथकी शीघ्र छपाई करना और समालोचनाके सब भाग मुद्रित करना बडा कठिन कार्य है। क्योंकि यह इतने बडे व्ययका कार्य है कि स्वाध्याय मंडल जैसी धनहीन संस्था इसे अपने धनपर कदापि मुद्रित नहीं कर सकती। हमने ग्राहकों की उदारतापर ही यह कार्य शुरू किया है। यदि ग्राहक अपने इष्ट मित्रोंमें इसके ग्राहक बढावेंगे तो हमारी आर्थिक कठिनता दूर हो जायगी और मुद्रणका कार्य भी शीघ्र हो जायगा।

वैदिक धर्म।

"वैदिक धर्म" मासिक द्वारा जो कार्य गत वर्षोंमें हुआ है, वह प्रसिद्ध ही है। पहिले यह मासिक केवल २४ पृष्ठोंका था और मूल्य ३॥) था। दूसरेके प्रेसमें उस समय छपता था, इसलिये इसकी उन्नति नहीं होती थी। अपना मुद्रणालय होनेके पश्चात् इसकी पृष्ठसंख्या बढाते बढाते हमने इस समय ७२ पृष्ठसंख्या की है और मूल्य केवल ४) रु. रखा है। इससे पाठक विचार कर सकते हैं कि, यह कितना सस्ता हुआ है। इसके अतिरिक्त इसमें क्रमपूर्वक अथर्व वेदका सुबोध भाष्य छपरहा है। जो पाठक इस मासिक के ग्राहक होंगे वे प्रतिमास इस सुबोध भाष्यका पाठ करके आनंद प्राप्त कर सकते हैं। इस लिये वैदिकधर्मी ग्राहकोंको उचित है कि, वे इस मासिक के ग्राहक बढाकर वैदिकधर्मकी जागृति करनेके पवित्र कार्यमें योग्य सहायता देंगे। इस मासिकके समान केवल वेदका विचार करनेवाला कोई दूसरा मासिक नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ग्राहक बढाइये।

जो स्वाध्याय मंडलके कार्यके साथ सहानुभूति रखते हैं उनको उचित है कि वे यथाशक्ति इस कार्यको दान देवें और दिलावें, तथा महाभारत, वैदिकधर्म इन मासिकोंके ग्राहक बढावें। साथ ही साथ स्वाध्याय मंडलके पुस्तकोंका प्रचार अपने इष्टमित्रोंमें करें। पुस्तकोंका प्रचार अधिक होनेसे ही स्वाध्याय मंडलका ध्येय सिद्ध होनेवाला है। जो पाठक स्वाध्याय मंडलके मासिकों और पुस्तकोंके ग्राहक बढानेकी सहायता करेंगे, वे स्वाध्याय मंडलका उद्देश सिद्ध करनेमें अधिक सहायता कर सकते हैं। इस प्रकार जो पाठक सहायता करेंगे वे अपने अपने नगरमें इतना कार्य कर सकते हैं कि, वह कार्य किसी अन्य साधनोंसे नहीं हो सकता। इस लिये पाठकोंसे सानुरोध प्रार्थना है कि वे स्वाध्याय मंडलके पुस्तकोंका प्रचार अपने स्थानमें जितना हो सकता है करें।

अन्य सहायता।

पाठक बहुत अन्य प्रकारोंसे स्वाध्याय मंडलकी सहायता कर सकते हैं। स्वाध्याय मंडलका कर्जा उतरता नहीं, प्रतिवर्ष बोझ बढताही जाता है। यह चिन्ता वारंवार हमारा उत्साह घटाती है। कइ व्यवहारज्ञानी लोगोंसे इस कर्जेके विषयमें हमने मंत्रणा की, उन सबकी यही संमति है कि, जिस वेगसे मुद्रण चल रहा है,उस वेगसे पुस्तकोंका मुद्रण होनेसे कर्जा अवश्य चढता ही रहेगा। यदि कर्जा उतारना हो, तो मुद्रणका वेग कम करना चाहिये। मुद्रणका वेग कम और विक्रीका वेग अधिक होनेसे कर्जा उतर सकता है और विक्रीके वेगसे मुद्रणका वेग बढ जानेसे कर्जा होना स्वाभाविक है। अतः या तो विक्रीका वेग बढाना चाहिये अथवा मुद्रणका वेग घटाना चाहिये। यदि पाठक स्वाध्याय मंडलके पुस्तकों का प्रचार करके विक्रिका वेग बढायेंगे, तो मुद्रणका वेग कम करनेकी कोई आवश्यकता नहीं होगी, परंतु यदि पाठक यह सहायता नहीं करेंगे, तो पुस्तकों की छपाई कुच्छ कम करनी पडेगी। अपना विचार पाठक इस सूचनाके विषयमें कहेंगे तो अधिक अच्छा होगा। इस विषय में पाठक बहुत प्रकारकी सहायता कर सकते हैं और स्वाध्याय मंडल की आर्थिक कठिनता दूर कर सकते हैं।

हम आशा करते हैं कि पाठक इस बातका अवश्य विचार करेंगे और जो हो सकता है स्वाध्याय मंडलके लिये अवश्य करेंगे।

औंध का मार्ग।

औंध आनेके लिये उत्तर भारत से आनेवाले लोग सबसे प्रथम " पूना " में आकर, वहांसे "सदर्न मराठा रेलवे " के " रहिमतपुर स्टेशन " पर उतरें और रहिमतपूर स्टेशन से मोटार द्वारा औंध आजावें। स्टेशन से औंध १३ मील दूर है। स्टेशन पर रात्रीके २ बजे, सवेरे ७ बजे और दोपहर के २ बजे मोटारें मिलती हैं। अन्य समय प्रथम सूचना मिलने पर प्रबंध हो सकता है। आनेवाले दर्शक " सातारा " का तिकिट लेते हैं और बडे कष्टमें पड़ते हैं। सातारा यहांसे बहुत दुर है इसलिये औंध के लिये स्टेशन " रहिमतपुर " है यह बात ध्यानमें धारण करें॥

१।१।२६   निवेदक
औंध जि.(सातारा)   श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
संचालक-स्वाध्यायमंडल

मु० वासुदेव भगवंत मराठे
प्रबंधकर्ता — स्वाध्याय मंडल.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा.) एकादशवे वर्षका आयव्यय.

(ता० १।१।२८ से ता० ३१।१२।२८ तक) परिशिष्ट संख्या १

आय	रु.	आ.	व्यय.	रु.	आ.
गतवर्षकी रोकड औंधमें	११	१०	मुद्रणालय—		
वैदिकधर्मका चन्दा	२१३२	५	टाइप ४२०१-२		
महाभारत " "	२५२४	१०	फर्निचर ८३-५		
पुरुषार्थ " "	१९६८	१२	चित्र आदि अन्य सामान २५८-२	७६२	३
पुस्तक विक्रीसे प्राप्त	९३४७	१	पुस्तकालय	५६१	३
दान प्राप्त-			पुस्तक छपाई मुंबईमें		
पोषक वर्गका चन्दा ८४२-१४			गत वर्षका देना १००-०		
मासिक दान ६०- ०					
इतर दान १८०- १	१०८२	१५	इस वर्ष दिया ७१७-४	८१७	४
			कागज आदिका देना		
स्थिर ग्राहक चन्दा	१०	०	गतवर्षका देना २०९२-१		
छपाईसे प्राप्त	५४१	०	इसवर्ष दिया १६५६-३		
विज्ञापनसे प्राप्त	२	०		३७४८	४
पुराना टाइप विक्रीसे प्राप्त	७१	४	वेतन	६४८५	१०
कर्जा-			डाकव्यय	१९४२	१
स्थिर सहायक चन्दा	४६६	०	स्टेशनरी	२०५	२
			रेलवे व्यय	३३२	९
			विज्ञापन व्यय	१३५	१२
			यंत्रदुरुस्ती आदि	१२०	०
			साधारण व्यय	२५५	१०
			कर्जानिवृत्ति—		
			स्थिर सहायक चंदा वापस १३०५- ०		
			गतवर्षके कर्जाकी निवृत्ति ७४०- ०		
			सूद ७२-१३		
			औंध स्टेट बैंक कर्जा निवृत्ति ६००- ०		
			इतर (अनामत तथा अन्य) ६५- ९	२७८३	६
			रोकड औंधमें	८	९
रु.	१८१५७	९	रु.	१८१५७	९

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा), का हानिलाभ पत्रक.

(ता. १।१।२८ से ता. ३१।१२।२८ तक) परिशिष्ट संख्या २

आय.		रु.	आ.
वैदिकधर्मका चन्दा			
गतवर्षका शेष	५४०-०		
इसवर्ष प्राप्त	२१३२-५		
	२६७२-५		
बाद पेशगी	५२०-०		
		२१५२	५
महाभारतका चन्दा—			
गतवर्षका शेष	१९८०-०		
इसवर्ष प्राप्त	२५२४-१०		
	४५०४-१०		
बाद पेशगी	१८२०-०		
		२६८४	१०
पुरुषार्थका चन्दा—			
गतवर्षका शेष	७००-०		
इस वर्ष प्राप्त	१९६८-१२		
	२६६८-१२		
बाद पेशगी	६६७-०		
		२००१	१२
स्थिरग्राहक चन्दा			
गतवर्षका शेष	४-०		
इसवर्ष प्राप्त	१०-०		
	१४-०		
बाद पेशगी	४		
		१०	०
दान प्राप्त—			
पोषकवर्गका चन्दा	८४२-१४		
मासिक दान	६०-०		
इतर दान	१८०-१		
		१०८२	१५
पुस्तक विक्रीसे प्राप्त		९३४७	१
छपाईसे और विज्ञापनसे प्राप्त		५४३	०
पुराना टाइप विक्रीसे प्राप्त		७१	४
अन्तिम दिन पुस्तक संग्रह		२०७७९	४
रु०		३८६७२	३

व्यय.		रु.	आ.
गतवर्ष के आरंभदिन पुस्तक संग्रह		१८९१०	०
पुस्तक छपाई मुंबईमें			
इसवर्ष दिया	७१७-४		
शेष देना	१५-०		
		७३२	४
कागज आदिका देना			
इसवर्ष दिया	१६५६-३		
शेष देना	३४९६-१२		
		५१५२	१५
अन्यव्यय—			
वेतन	६४८५-१०		
डाकव्यय	१९४२-१		
स्टेशनरी	२०५-२		
रेलवेव्यय	३३२-९		
विज्ञापनव्यय	१३५-१२		
यंत्रदुरुस्ती	१२०-०		
साधारणव्यय	२५५-१०		
		९४७६	१२
घटाव—			
टाइपका	२१००-०		
यंत्रका	७००-०		
पुस्तकालयका	१७५-०		
मकानका	६००-०		
		३५७५	०
सूद		७२	१३
		३७९१९	१२
आयका शेष		७५२	७
रु०		३८६७२	३

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा) का आर्थिक अवस्था पत्रक
(ता. ३१।१२।२८ के दिन) परिशिष्ट संख्या ३

कोश और कर्जा.			रु.	आ.
स्थिर कोश-				
गतवर्षका शेष		२५८८१-१२		
इस वर्षमें जमा		७५२- ७		
			२६६३४	३
यंत्रादिका घटाव-				
गतवर्षपर्यंत		१००१७- ३		
इसवर्षका		३५७५- ०		
			१३५९२	३
कर्जा—				
(१) स्थिरसहायक वर्ग-				
गतवर्षतक का	१०९५९-४			
इसवर्षका	४६६-०			
	११४२५-४			
इसवर्ष वापस	१३०५-०			
		१०१२०- ४		
(२) अन्यदेना—				
कागजआदिका	३४९६-१२			
छपाईका	१५- ०			
		३५११-१२		
(३) पेशगी-				
वैदिकधर्मका	५२०-०			
महाभारतका-	१८२०-०			
पुरुषार्थका--	६६७-०			
स्थिरग्राहकका	४-०			
		३०११- ०		
(४) औंध बैंकका—				
गतवर्षाका शेष	३६००- ०			
इस वर्ष दिया	६००-- ०			
		३०००-०		
(५) गतवर्षका फुटकर कर्जा--				
फुटकर कर्जा--	११००- ०			
इस वर्ष दिया--	७४०-०			
		३६०-०		
			२०००३	०
रु.			६०२२९	६

संपत्ति.			रु.	आ.
मुद्रणालय—				
मकान		१२७९७-१		
यंत्रादि		१३३७४-३		
टाइप				
गतवर्षतक	५८३१- ७			
इसवर्षका	४२०-१२			
		६२५२-३		
अन्यसामान—				
गतवर्षतक	२५९३-४			
इसवर्ष	२५८-२			
		२८५१-६		
			३५२७४	१३
फर्निचर				
गतवर्षतक		४२१-४		
इसवर्ष		८३-५		
			५०४	९
पुस्तकालय				
गतवर्षतक		३१०१-०		
इसवर्षका		५६१-३		
			३६६२	३
अन्तिम दिन पुस्तक संग्रह			२०७७९	४
रोकड हाथमें			८	९
रु.			६०२२९	६

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पोषक वर्ग.

१ श्री. से. जीवनराम कल्याणजी, मुंबई	१००
२ श्री. केशवलाल द्विवेदीजी, मकवानी	१००
३ श्री. सोमाभाईजी पटेल, नडीयाद	६७॥-
४ श्री. गणपतराव गोरे, जकोबाबाद	७५
५ श्री. शा. प्राणजीवन जमनादासजी,	१००
६ म. एन्. जी. शिखरे, बगदाद	१००
७ श्री. रामजी धनजी पटेल, मुंबई	१००
८ श्री. सी. बी. सूरतवाला ट्रस्टी	१००
(स्व. श्री. रामगोपाल ठाकोर,)	१००
९ श्री. जानी पुरुषोत्तमजी, दारेस्सलाम	१००
	८४२॥=

मासिक दान.

१ श्री. वी. एल्. मराठे इं० मुंबई	६०
	६०

स्थिर सहायक वर्ग.

१ श्री. आर्यसमाज चारोतर प्रदेश, आनंद	६०
२ श्री. बाबूरामजी सूद, हरोली	३७५
३ श्री. गो. भि. करंदीकर, औंध	२५
४ श्री. आप्पासाहेब तरसड	६
	४६६

दान.

१ मु. प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा, आनंद	१००
२ श्री. आर्यसमाज, लाहौर क्याट	१५
३ श्री. ग. शि. रानडे, मुंबई	१५
४ श्री. गणपतराव गोरे, जकोबाबाद	१४॥-
५ श्री. ओंप्रसादची, अमृतसर	१०
६ श्री. रामदासजी बत्रा सक्कर	१०
७ " नथमल भवसार, गंधावलल	६
८ श्री. बलदेव नरोत्तम, सारंग	५
९ श्री. सी. बी. सूरतवाला, सुरत	२।
१० श्री. भगवान स्वरूप, भटनगर	१
११ श्री. चन्द्रविलास द्विवेदीजी, अटसर	१
	१८०-)

एकादशीचा उपवास.

(मराठी पुस्तक)

उपवासाचें महत्व किती आहे, त्याचा आपल्या शरीरावर काय परिणाम होतो, उपवास कां करावेत त्यांतल्या त्यांत एकादशीचा उपवासच कां अधिक विहित आहे, इत्यादि विषयाचें शास्त्रीय दृष्टीनें या पुस्तकांत विवेचन केलेलें आहे. किंमत ३ आणे, ट. ख. १आणा.

स्वाध्याय मंडल, औंध जि. (सातारा)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अपने
आरोग्य साधनके लिये
ये ग्रंथ पढो ।

१ आसन (सचित्र) मूल्य २)		डा. व्य. ।-)
२ सूर्यभेदन व्यायाम (सचित्र) ।॥)		,, ≡)
३ योगसाधनकी तैयारी	१)	,, ।)
४ ब्रह्मचर्य (सचित्र) ,,	१।)	,, ।)
५ इन्द्रशक्तिका विकास	।)	,, ≡)
६ मृत्यु दूर करनेका उपाय	॥)	,, ≡)
७ शिवसंकल्पका विजय	॥।)	,, ।)
८ ब्रह्मचर्यका विघ्न	=)	,, -)
९ आत्मशक्तिका विकास	।-)	,, =)
१० वैदिक उपदेशमाला.	॥)	,, ≡)
११ आसन चित्रपट	≡)	,, -)

मंत्री— स्वाध्यायमंडल

औंध जि—सातारा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वर्ष १०
अंक ९
क्रमांक ११७

वैदिक धर्म.

भाद्रपद
संवत् १९८६
सितंबर
सन १९२९

वैदिक तत्त्वज्ञान प्रचारक मासिक पत्र।
संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर।
स्वाध्यायमंडल, औंध (जि. सातारा)

आत्मसमर्पणसे स्वर्गप्राप्ति !

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवा॥

ऋ० १। १६४। ५०; १०।९०।१६

" (देवाः यज्ञेन यज्ञं अयजन्त) ज्ञानी अपने आत्माके समर्पण से पूजनीय यज्ञपुरुष परमात्मा का यजन करते हैं, (तानि प्रथमानि धर्माणि आसन्) वे पहिले धर्म थे। इस धर्मानुष्ठानसे (ते ह महिमानः नाकं सचन्त) वे निश्चयपूर्वक महत्त्व को प्राप्त करते हुए स्वर्गको पहुंचते हैं। (यत्र पूर्वे साध्याः देवाः सन्ति) जहां पूर्वके साधनसंपन्न ज्ञानी रहते आये हैं।"

दूसरोंका भला करनेके कार्योंमें आत्मसमर्पण करने द्वारा पूर्ण ज्ञानी लोग परमेश्वरका पूजन करते आये हैं। आत्मसर्वस्व का उक्त कार्यों में समर्पण करना हा परम पूर्ण और श्रेष्ठ यज्ञ है। जो ज्ञानी इस महायज्ञका अनुष्ठान करते हैं वे महात्मा बन कर आनंदपूर्ण स्वर्ग धाममें अखंड आनंदका अनुभव लेते हैं। और वहां जाते हैं कि जहां सत्कर्म करनेवाले सत्पुरुष पहिलेसे जाते और वहां रहकर प्रकाशते हैं।

—:०:—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

स्मृति–दहन।

यदि स्मृति नष्ट हो जाय तो!

आजकल स्मृति-दहन की हलचल बहुत जोरों हो रही है। हमारा सनातन वैदिक मानव-धर्म श्रुति और स्मृति के बल पर ही अपना अस्तित्व धारण किए है। इस अवस्थामें यदि स्मृतिदहन की हलचल बढे और यदि स्मृति सचमुच नष्ट हो जावे, तो अपने धर्म की नीव पर ही घाव लगेगा। इस लिए धर्म के विषय में शांत चित्तसे विचार करनेवालों को इस स्मृति-दहन की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

छत्रपति श्री शिवाजी महाराज के काल तक इस आर्यभूमि के सब जातियों के कई वीर पुरुषोंने अपने धर्म के लिए प्राण तक त्याग दिए हैं और अपना यश निष्कलंक बनाए रखा तथा अपने सत्व की रक्षा की है। परंतु आज उसी देश में ऐसे कई पुरुष निर्माण हुए हैं जो स्वार्थ के लिए धर्म-त्याग करने के लिए तैयार हो गए हैं। इसीका उत्तम उदाहरण स्मृति-दहन की हलचल है।

इन अविचारी लोगों ने इसका विचार तक न किया है कि स्मृति-दहन के बाद मनुष्य मनुष्यरूप में रह सकता है या नहीं। भविष्य में उन्नति होने के लिए पिछले अच्छे या बुरे अनुभवों की स्मृति अति आवश्यक है। सब मनुष्यों की स्मृति यदि पूर्णतया नष्ट हो जाय, तो इस दो पांववाले जीव को कोई भी मनुष्य न कहेगा। प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि वह इस बात का विचार करे। मनुष्यों की गणना महान् व्यक्तियों में उसी मात्रा में हो सकती है जिस मात्रामें उसकी स्मृति तीव्र होती है, जिस मात्रामें उसे भूत काल की बातों का स्मरण रहता है और उसी स्मृति के बलपर जिसे मालूम होता है कि भविष्यमें क्या करना चाहिए। परंतु उसे यदि भूतकाल की स्मृति ही न हो तो उसकी योग्यता पत्थर से कदापि अधिक न होगी। भूलनेवाला मनुष्य इस संसार में बेफाम समझा जाता है। उसका कारण यही है।

यही अवस्था राष्ट्र की और साथ ही साथ जाति की भी है। वही राष्ट्र या जाति अपना योग्य मार्ग निश्चित कर सकती है जिसे अपने राष्ट्र या जाति के पूर्व काल के अयोग्य और योग्य व्यवहारों की अच्छी स्मृति हो। हमने यदि यही मान लिया कि भूतकाल के सब व्यवहार और कानून आदि सब अयोग्य थे, तोभी हमे उनकी स्मृति नष्ट करने की आवश्यकता नहीं। क्यों कि याद रहना चाहिए कि आगे कभी उसी प्रकार के कानून शुरू न हों इसलिए स्मृति का सर्वनाश होने देना अच्छा नहीं। परन्तु यदि भूतकाल की प्रथाओं में और कानूनों में कोई अच्छी बात हो, तब तो स्मृति का महत्व और भी बढ जायेगा। सारांश, भूतकाल की बातें कितनी भी अच्छी और बुरी क्यों न हों उनसे हमें बहुत लाभ है। इसलिए हमारा कर्तव्य यही है कि उनकी रक्षा करें। हमारे धर्म में जो आचार विचारों का भाग है वह हमारे प्राचीन महान् पुरुषों का बनाया हुआ है। वह भी इस प्रकार बनते हुए चला आया है कि उसमें पुरानी और नई अच्छी अच्छी बातों का मेल है। यही मेल अब तक होते चला आया है। आजकल के दूरदर्शी विद्वानों का काम यही है कि उस प्रथा को उसी प्रकार आगे चलावें तथा उसमें योग्य और अच्छे फरक भी करते जावें। परन्तु इस बात का विस्मरण न हो कि सुधार करने के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

लिए भी तो भूत-काल की स्मृति आवश्यक है ।

मनुस्मृति का दहन ।

कुछ मास पूर्व प्रथम मद्रास प्रांत के अब्राह्मणोंने "मनुस्मृति दहन" सार्वजनिक रीतिसे किया और उसीका अनुकरण बम्बई के अब्राह्मणों ने भी किया तत्पश्चात् अन्यत्रभी हुआ। इन लोगों ने इस कार्य को करके कौनसा लाभ उठाया सो जानना तो बहुत ही कठिन बात है। क्यों कि आजकल हमारे व्यवहार मनुस्मृति के नियमों के अनुसार बिलकुल नहीं चलते। यह तो सभी लोग जानते हैं कि कलियुग में पराशर स्मृति चालू है। (कलौ पाराशरः स्मृतः) इसलिए जो कानून की पुस्तक आजकल चालू नहीं है उसके जलाने से अब्राह्मणों को क्या लाभ हुआ होगा? हम तो इस बात को नहीं जान सकते। यदि चालू स्मृति को जला देते तो कह भी सकते थे कि उन्हे वर्तमान स्मृति से असंतोष है; परन्तु पुराने स्मृतिकारोंने, यह जानकर कि मनुस्मृति कलियुग के लिए योग्य नहीं है, पाराशर स्मृति निर्माण की और यह भी बतला दिया कि कलियुग में मनुस्मृति चालू नहीं है। ऐसी पुरानी स्मृति को जलाने से न मालूम उन्होंने क्या लाभ उठाया?

सन्मान्य स्मृतिकार मनु ।

स्मृतिकारों में अग्रस्थान मनुजी को मिला है। क्यों कि उन्हीने पहले पहल स्मृति बनाई। इसी लिए सब कानून-पण्डित मनु का सन्मान करते हैं। (The first law giver) 'पहला कानून बनानेवाला' यह बहुमान की उपाधि संसार के महान् कानून पण्डितों ने भगवान् मनु को ही दी है। यदि कुछ दिवाभीत मनुस्मृति की थोडीसी प्रतियां जलाकर अपना अक्षम्य अज्ञान प्रगट करें, तब यह कदापि संभव नहीं कि मनुजी को मिला हुआ उक्त आदर इस कृति से सहस्रांश में भी घट जाय। मनुजी सर्व प्रथम कानून बनानेवाले थे। उनके कानूनी सिद्धान्त, जो उन्होंने इतने प्राचीन काल में निश्चित किये थे, अभी तक कोई भी बदल न सका। समस्त संसार के कानून पण्डित उन्हे जो इतना मान देते हैं उसका यही कारण है। इनके समान कानून बनानेवाला अब्राह्मण भी यदि संसार में पहला मान पा लेवे, तो इस बात का अभिमान अब्राह्मणोंको तो होना ही चाहिए, पर ब्राह्मणोंको भी होना चाहिए। ब्राह्मण तो अभीतक यह अभिमान रखते ही हैं; परन्तु दुःख यही है कि अब्राह्मण लोग बिना किसी कारण के अपनीही जाति के आदरणीय आदि स्मृतिकार से द्वेष करने लगे हैं। क्यों कि वे समझते हैं कि यह स्मृति ब्राह्मणों की ही लिखी हुई है। इसी कारण यह द्वेष जारी हुआ है। यदि उन्हे मालूम हो जावे कि स्मृति के बनाने का कुछ श्रेय क्षत्रियों को भी है, तो वे इस प्रकार आत्मघातक आंदोलन कदापि न करेंगे ।

स्मृति के लेखक और चालक ।

पहले समझ लेना चाहिए कि स्मृति के लेखक और उसके प्रवर्तक भिन्न भिन्न व्यक्तियां होती हैं। इसे समझने के लिए 'हिन्दू कानून' (Hindoo-law) का उदाहरण लीजिए। जब अंग्रेजी पहले पहल शुरू हुई तब पहला 'हिन्दू कानून' कुछ यूरोपीयनों ने लिखा और बाद में वर्तमान 'हिन्दू कानून' श्रीयुत माननीय मंडलीक महोदयने लिखा। पहले लेखक यूरोपीयन थे और दूसरे ब्राह्मण। तब भी यह राजाको ही प्रचलित करनी पडी तभी तो उसे कानून का स्वरूप प्राप्त हुआ। इसलिए यद्यपि "हिन्दू कानून" पहले कुछ यूरोपीयनोंने और पश्चात् ब्राह्मणों ने लिखा तब भी वह तो वर्तमान अंग्रेज सरकारद्वारा प्रवर्तित किया गया है। उसका यश वा अपयश राजा को ही है। लेखक का उससे कोई संबंध नहीं क्यों कि लेखक कानून बनानेवाला नहीं होता वह सिर्फ परिस्थिति का उल्लेख भर कर देता है। अर्थात् वर्तमान रीति नियमोंका संग्रह करता है।

मनुस्मृति भृगु ऋषि ने लिखी थी और मनुजीने उसे प्रचलित किया था। भृगु ऋषि ब्राह्मण थे और मनुजी क्षत्रिय थे। इन दोनों का भाग मनुस्मृति में उसी प्रमाण में है जैसे वर्तमान "हिन्दू कानून" में श्री. मंडलिक और सरकार का है। हमारी मनुस्मृति

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

में यद्यपि वर्तमान कानून (Law) के सिवा और भी कुछ बातें हैं, तब भी मनुस्मृति को एक समय कानून का ही स्वरूप था। यदि देख लिया जाय कि कानून किस प्रकार बनाए जाते हैं, तो अपन सहज ही में समझ सकते हैं कि स्मृति बनाने में किसका कितना गुण है और किसका कितना दोष।

स्मृति, धर्मशास्त्र अथवा कानून ये तीनों शब्द एक दृष्टि से समान अर्थ के हैं। आजकल सदाचार और कानून विलग हो गए हैं। इससे कानून (Law) शब्द का अर्थ आजकल भिन्न माना जाता है। पर यदि उसमें धार्मिक सदाचार के नियम शामिल कर लिए जांय तो ऊपर लिखे तीनों शब्द एक ही अर्थ के हो जावेंगे। संस्कृत साहित्य में भी धर्मशास्त्र अथवा स्मृति उसी कानून को कहा है " जो सदाचार के धार्मिक नियमोंसहित है " अतः जब हम मालूम कर लेंगे कि कानून किस प्रकार बनाए जाते हैं और वे प्रचार में कैसे आते हैं, तो हमें ज्ञात होगा कि मनुस्मृति किस प्रकार प्रचार में आई होगी। हमें यह भी विदित होगा कि उसके दोषों के उत्तरदायी कौन हैं और गुणों के लिए प्रशंसापात्र कौन हैं। इसीसे अब देखेंगे कि स्मृतियां (कानून) कैसे बनती हैं—

स्मृतियां कैसे बनती हैं?

जिन्होंने मनुस्मृति जलाई, उन अ-ब्राह्मणों की समझ यही है कि मनु आदि स्मृतियां ब्राह्मणों ने मनचाही बना लीं और वे अब्राह्मणों पर जबरदस्ती से लाद दीं। परन्तु यह सर्वथा उनकी भूल है। स्मृतियां न तो ब्राह्मणों ने बनाई ही हैं और न दूसरों पर जबरन् लादी ही हैं। स्मृतियां जैसे आज बनती हैं वैसी ही वे प्राचीन काल में बनती थीं। सब देशों में स्मृतियां एक ही रीति से बनती हैं।

विशेषतः भारतवर्ष में तो किसी भी प्राचीन समयमें स्मृतियां एक समाज द्वारा दूसरे समाजपर नहीं लादी गई।

माननीय मंडलिक महोदय ने 'हिन्दू लॉ' तैयार किया वह कुछ उन्होंने नए सिलसिलेसे तैयार नहीं किया। हिन्दुओं का जो नियमसंग्रह था उसी का पद्धति के अनुसार संग्रह उन्होने किया। इस दृष्टि से माननीय मंडलिक वर्तमान समय के स्मृति-लेखक ही हैं। हिन्दुओं की रीतिरस्मों की जो 'स्मृति' श्री. मंडलिक के समय तक चली आई थी, चाहे वह ग्रंथों में संग्रहित की हुई हो या वृद्धों के स्मरण में संग्रहित की गई हो, उन्ही स्मृतियों का संग्रह मंडलिकजीने किया। यही काम स्मृतिकार भी करते हैं। यहां पर वाचक गण स्मरण रखें कि स्मृति शब्द का अर्थ " लेखक के समय तक के व्यवहारों की स्मृति " है। वर्तमान कानून में धार्मिक सदाचार भी यदि शामिल रह सकते, तो मंडलिक-जी के 'हिन्दू लॉ' में भी हिन्दुओं को कब उठना चाहिए, कब पूजा करनी चाहिए आदि नियम भी लिखे जाते। पर समय बदल गया है, इससे धार्मिक सदाचार के नियम उसमें शामिल नहीं किए गए। बस, स्मृति और वर्तमान कानून में यही अंतर है।

श्रुति और स्मृति।

" श्रुति के नियम कभी भी नहीं बदलते, पर स्मृतियां भर समय के अनुसार बदलती हैं "। यह हमारे श्रौतस्मार्त सनातन धर्म का सिद्धांत है। जैन, बौद्ध, यहूदी, ईसाई, मुसलमानी आदि किसी भी धर्म में धर्म का श्रौत स्मार्त ऐसा भेद नहीं किया गया। जैसे ईसाई समझते हैं कि ईसामसीह का उपदेश ही अंतिम संदेश है, वैसे ही मुसलमान भी समझते हैं कि हजरत महम्मद पैगंबर का कुरान में लिखा हुआ संदेश ही अंतिम संदेश है।

इसमें बदल न होगा, परंतु हमारे सनातन धर्म का ऐसा हठ न कभी था और न अब है। हिन्दूधर्म का स्पष्ट मत है कि जितने श्रुति के आचार हैं वे कभी भी न बदलनेवाले हैं परन्तु स्मृतियों के आचार काल के अनुसार बदलने वाले हैं। इसीसे काल कितना भी अनुकूल या प्रतिकूल क्यों न हो और भौतिक शास्त्र में कितनी भी क्रांति क्यों न हो, तब भी 'स्मृति कालानुसार है' यह हमारा सिद्धान्त होने के कारण हमारा स्मार्तधर्म कालानुसार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बदलता रहेगा और तब भी श्रौत धर्म के सनातन एकत्व के कारण सब की धार्मिक एकता कायम रहती है। यह प्रगति की नीति, उपरोक्त नियम के कारण, जैसे हिन्दूधर्म में रह सकी है, वैसे वह संसार के अन्य किसी धर्म में नहीं है। इसी से अन्य धर्मों में क्रांति (Revolution) करके सुधार करने पडते हैं; पर हमारे धर्म में उत्क्रांति (Evolution) होत होते पहले की सनातन व्यवस्था में आवश्यक सुधार होते जाते हैं। इस प्रकार बिलकुल प्राचीन पर अच्छी अच्छी बातें कायम रखकर हम लोग आवश्यक नवीन बातों को हजम कर लेते हैं। ऋषियोंने श्रौत और स्मार्त धर्म के सनातन एवं कालानुसारी नियमों को स्पष्ट कर अपूर्व धर्मसंगठन का तत्त्व प्रतिपादित किया है। इसके लिए उन ऋषियों के बडापन की जितनी भी बडाई करेंगे कम ही होगी।

हम लोग खुली आंखों देख रहे हैं कि भौतिक शास्त्र के बढते हुए ज्ञान से ईसाई तथा मुसलमानों की कैसी फजिहत हो रही है, उससे यूरोप से ईसाई धर्म का कैसे उच्चाटन हुआ है और स्वयं कमाल पाशाने इस्लामी धर्म को किस प्रकार उडा दिया है। हम लोगों को यह अडचन कदापि न मालूम होगी यदि हम अपने धर्म उपरोक्त तत्त्व को भली भांति समझ लें। अनेक प्रकार की अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थिति प्राप्त होने पर भी हमारे प्राचीन पूर्वजों को उक्त कारण से, कभी भी अडचन न मालूम हुई। इसका कारण यही है कि स्मृतियां कालानुसार बदलती हैं और सब लोगों के व्यवहार स्मृतियोंके अनुसार चलते हैं।

इसी नियम के अनुसार आरंभ में मनुस्मृति चलती थी। अनंतर मध्यकाल में अन्य स्मृतियां जारी थीं और अब कलियुग में पराशर स्मृति जारी है। अब मनुस्मृति की सत्ता शब्दशः कडी बिलकुल नहीं है। यदि कोई सिद्ध कर देवे कि वे स्मृतियां, जो अब जारी हैं — चाहे वह पराशर स्मृति हो या अन्य कोई भी स्मृति हो — वर्तमान समय के लिए अव्यवहार्य हैं, तो धार्मिक सभाएं करके आवश्यक बदल किया जा सकता है। जिस अपने धर्म में इतनी संग्राहक शक्ति है, उस धर्म के स्मृति ग्रंथ जला देने का कारण ही क्या? और उन्हे जलाने से लाभ ही क्या हो सकता है? हमारी सूचना है कि वे लोग इसका विचार करें।

स्मृति कालानुसार बदलती है।

अब देखना चाहिए कि स्मृतियां कालानुसार बदलती हैं याने क्या? यह जानने के लिए देवल स्मृति का निरीक्षण किया जाय। जब तक अन्य धर्मों से संबंध नहीं आया था, तब तक शुद्धि का विचार पूर्व स्मृतियों में आने का कारण ही न था। परंतु जब परधर्मियों से संबंध आया, और ओछे दिल के लोग परधर्म में फुसलाकर लिए जाने लगे, तब भ्रष्टों की शुद्धि की आवश्यकता हुई। देवल स्मृति की रचना की गई और उसे स्मृतियोंमें स्थान मिला तथा पतितोद्धार की प्रथा रूढ बन गई।

वर्तमान कानून में समय समय पर नवीन धाराएं जोडी जा रही हैं और विद्यमान धाराओंमें भी नवीन बातें जोडी जा रही हैं। इसी प्रकार स्मृति ग्रंथों में भी कालमान के अनुसार नवीन श्लोक जोडे गए और नवीन विभाग भी जोडे गए। किस समय कौनसी बात जोडी गई और वह क्यों जोडी गई यह तो आज भी नहीं बतलाया जा सकता। परन्तु ऐसा करना ही हो तो स्मृतिग्रंथों का उस दृष्टि से अध्ययन करना आवश्यक है। इससे पाठक समझ सकते हैं कि जैसे पीनल कोड में समय समय पर जो धाराएं जोडी जाती हैं उन्हे कोई दोष नहीं देता; परन्तु स्मृतियों में जो कालानुसार फरक हुआ है उसे 'प्रक्षिप्त' (Interpolation) कहकर आधुनिक विद्वान दोष देते हैं। इसका स्पष्ट कारण यही है कि वे स्मृति क्या हैं सो समझे नहीं होते। जिस समय राष्ट्र जीवित रहता है, उस समय उस राष्ट्रके कानूनों में फेरबदल होते ही रहते हैं। राष्ट्र में स्थित जीवितता जब नष्ट हो जाती है, तब स्मृतिमें बदल होना असंभव हो जाता है। इससे विदित होगा कि स्मृतिग्रंथों में पीछेसे कुछ मिलाया जाना उन ग्रंथों का दोष नहीं है, वह तो कानून की पुस्तक में नवीन धाराएं जोडने के समान

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

समाज की सजीवता का लक्षण है।

वर्तमान रीति-रस्मों को दाखिल करना ।

अब तक स्मृतिग्रंथों की न्यूनाधिकताकी वस्तुस्थिति का विचार हुआ । अब यह देखना है कि प्रथम स्मृति कैसे बनी। स्मृति को ' स्मृति ' नाम देने कारण स्थूलरूप से पहले ही दिखलाया गया। आचार, रीति-रिवाज, कुलाचार, धार्मिक तथा दैशिक आचार विचारों की चालू पद्धति इन बातों कि स्मृति जनता को सदैव रहती है। बहुतेरे लोगों ने वृद्ध स्त्री पुरुषों को कहते सुना होगा कि " हमारे कुल में ऐसी रीति है " अथवा " ऐसी नहीं है "। पूर्वकालीन आद्य स्मृति ही चालू स्मृतियों का निर्देश है। जब तक परस्पर विभक्त कुटुंब थे और जब तक ग्राम संगठन या राष्ट्र संगठन न हुआ था, तब तक वैयक्तिक स्मृति से ही लोगों का कार्य चलता था। पर जब अनेक कुटुंब इकठ्ठे रहने लगे और प्रत्येक की व्यक्तिगत स्मृतियां भिन्न भिन्न होने के कारण उन विभिन्न कुटुम्बों में कलह होने लगे तब लोगों को मालूम होने लगा कि राष्ट्र में सब की सर्वमान्य एकही स्मृति होनी चाहिए अथवा "सबकी स्मृतियां इकत्रित की हुई होनी चाहिए "। यह बात सर्व प्रथम मनुजीके ध्यानमें आई और उन्होंने अपने राज्यके विद्वान लोगोंकी सहायतासे उस समयके भिन्न भिन्न मानवसंघोंमें प्रचलित रीतिरिवाजों का संग्रह कराया और उसीमें वे नियम भी जोड दिए जो राज्ययंत्रके जारी रखनेके लिए आवश्यक थे। यही मनुस्मृति है। यही उस समय का मनुजीके राज्य का कानून था। इसके श्लोकोंके आधार पर उस समय के मुकदमों के फैसले हुआ करते थे। उस समय के वकील और प्राड् विवादक इन्हीं श्लोकों के शब्दोंकी नुक्ताचीनी--जैसे आजकलके वकील पीनल कोडकी धाराओं की नुक्ताचीनी किया करते हैं--करते थे।

तीन मनु सबको पूजनीय हो गए हैं: बृहन्मनु, वृद्धमनु और मनु। सबमें प्रथम मनुका नाम बृहन्मनु था, मध्यकालीन मनुका वृद्धमनु और तीसरे मनुका मनु था। ये तीन नाम तीन कालोंके द्योतक हैं। अनेक विभिन्न मानव जातियोंकी रीति-रस्मों का संग्रह जिस मनुने किया वह सर्व प्रथम ग्रंथ करीब एक लाख श्लोकोंका था। इससे उसे बृहन्मनु कहते हैं। इसके २४ भाग थे; यह संग्रह बहुत भारी था। व्यवहार की दृष्टिसे उसमें संक्षेप एवं सुविधा न होनेसे वह ग्रंथ बहुत ही बडा हो गया था। प्रारंभ में ऐसा होना अपरिहार्य भी था। आगे चलकर जब इसका सार (digest) निकालनेकी आवश्यकता मालूम हुई, तब मनु की राजगद्दिपर जो राजा विद्यमान था उसने यह काम नारदमुनिकी अध्यक्षता में करा लिया। प्रथम संग्रह भृगु ऋषीने अन्य अनेक विद्वानोंकी सहायतासे प्रथम मनुके समय किया। वह केवल संग्रहही था। इससे उसे सार रूपसे सिलसिलेसे बारा हजार श्लोकोंमें नारद मुनिने तैयार किया और उसे मध्यकालके मनुने प्रचलित किया। अनंतर उसकाभी सार आगेके मनुने चार हजार श्लोकोंमें उस समयके विद्वानोंसे तैयार कराया। उसमें करीब आधे ही श्लोक आजकल उपलब्ध हैं। मनुस्मृतिका इतिहास संक्षेपमें इस प्रकार है।

भृगुऋषिकी अध्यक्षतामें तैयार हुआ एक लाख श्लोकोंका मनुस्मृतिका प्रथम बृहत्संस्करण अब अस्तित्वमें नहीं है। नारद मुनिकी अध्यक्षतामें तैयार हुआ दूसरा बारा हजार श्लोकोंका साररूप संस्करणभी अस्तित्वमें नहीं है। अज्ञात नामधेय विद्वानोंका किया हुआ तीसरा चार हजार श्लोकों का लघु संस्करण भी अब अस्तित्वमें नहीं है। सब का सारभूत मानवधर्मसूत्र नामका जो छोटासा ग्रंथ तैयार हुआ था सो भी अब उसके असली रूपमें विद्यमान नहीं है। जो कुछ उपलब्ध है सो तीसरे संस्करणके करीब आधे श्लोक। इसी ग्रंथ पर अब्राह्मणोंकी कुदृष्टि है! सो न जाने क्यों है। अब देखिए इस उपलब्ध मनुस्मृतिके बारेमें यूरोपीयन विद्वान क्या कहते हैं—

यूरोपीयनों का मत।

Manu- Sanhita, the well- known law-book, the code of Manu...it bears the marks of being the production of more than one

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

mind ...this is a collection or digest of current laws and creeds rather than a planned systematic code the rules and precepts it contains had probably existed as traditions long before.

[Hindu classical Dictionary by Prof Dowson. P. 201.]

" मनुसंहिता नामक प्रसिद्ध कानून की पुस्तक मनूका कानून है। ...... इसमें स्पष्ट चिन्ह हैं कि यह पुस्तक एकसे अधिक बुद्धियों द्वारा बनाई गई है। ...... यह पुस्तक ऐसी नहीं है कि किसी एकने विचार करके व्यवस्थित रचना कर बनाया हो परन्तु वह उस समयके प्रचलित नियम, आचार और व्यवहारों का निरा संग्रह है या ऐसे संग्रहका सार है। ... ... जो नियम और आचार या विधि इसमें दीए गए हैं, वे केवल इसी समय के नहीं हैं वे बहुधा बहुत पूर्व परंपरासे चले आये होने चाहिए। "

हिंदू क्लासिकल डिक्शनरी-प्रो.

डॉ. सन । पृ. २०१

जो बात मनुस्मृति पढकर यूरोपीयनोंके भी ध्यान में आगई, वह बात मनुस्मृतिमें बिलकुल स्पष्ट होते हुए भी आजकलके अब्राह्मणोंके ध्यानमें न आवे यह कैसा आश्चर्य है। यह तो सत्य है कि मनुस्मृति बिलकुल आद्यस्मृति है। परंतु वह किसी भी एक ब्राह्मणद्वारा अब्राह्मणोंपर ज्यादती करनेके लिए कदापि नहीं की गई। वह केवल उन रीतिरस्मों का तथा विधियों का संग्रह है जो उस समय तक परंपरासे चली आई थीं। ये रीतिरस्म उस समय मानव राज्यमें इकत्रित हुए भिन्न भिन्न मानववंशोंमें भिन्न भिन्न प्रकारसे प्रचलित थीं। इससे उनका संग्रहही इसमें किया हुआ है। इसी कारणसे वह संग्रह मनु महाराजकी उस समयकी लोक सभाने मान्य किया और मनु राजाने प्रचलित किया।

लोकसभाकी मान्यता।

वाचकोंको स्मरण रहे कि कोई कैसी भी स्मृति क्यों न लिख दे परंतु जब तक लोगोंके पंच-लोकसभा-उसे स्वीकृत न कर लेते और उसे राजा की मंजूरी नहीं मिलती तब तक वह ग्रंथ स्मृतिके नाते प्रचारमें आना संभव नहीं होता है। जिस प्रकार अब बडी धारासभामें कानून पास हुए विना तथा राजा की मंजूरीके विना वह कानून नहीं बनता, ठीक यही हाल मनुके समय भी था यह बात मनुस्मृतिसे ही सिद्ध होती है। अतएव किसी ब्राह्मणने कुछ श्लोक बनालिए और उनमें दूसरों पर अत्याचार करनेके लिए मनचाहा लिख लिया और उसे स्मृति कहा तथा उससे एक जातिने दूसरी पर अत्याचार किया आदि जो बातें आजकल बोलते हैं और लिखते हैं, उसमेंसे एकभी विधान स्मृतिके प्रमाणसे तथा वस्तुस्थितिके विचारसे वे सिद्ध न कर सकेंगे। क्यों की सब स्मृतिग्रंथ बिलकुल भिन्न वस्तुस्थिति दिखलाते हैं। इतना होते हुए न पढते और न विचार करते हुए ये लोग जातिद्वेष बढाकर राष्ट्र की प्रगतिमें फजूल विघ्न कर रहे हैं।

मर्यादा याने क्या ?

स्मृति नियमोंको 'मर्यादा' कहते हैं। यह मर्यादा शब्द बहुत महत्व का है। (मर्यैः) सब मनुष्यों द्वारा जो (आ-दा)स्वीकार किया जाता है (मर्यैः आदीयते) उसका नाम मर्यादा Self-determination है। इसी का नाम स्मृति है। कोई भी विधिपरंपरा जो लोगों को बिलकुल मंजूर नहीं होती वह कभी भी प्रचार में नहीं आ सकती। अब भी राजसत्ता के पास प्रजापर अत्याचार करने के साधन अपरिमित बढ गए हैं, तब भी राजा को प्रजामें कोई भी नवीन रिवाज चालू करना असंभव है। तब प्राचीन कालमें जब कि राजसत्ता वर्तमान समय के अनुसार प्रखरतर शस्त्रास्त्रों से सुरक्षित की हुई न थी और जिस समय राजाका अस्तित्व केवल प्रजा की इच्छा पर अवलंबित था और राम जैसे सच्छील युवराज को भी राजगद्दी देने की इजाजत लोकसभा के पास मांगनी पडती थी ऐसे राज्यसत्ता प्रखरतर होने के पूर्व के समय कोई स्वार्थी विद्वान कुछ तो भी लिख लेगा और वह माननेको सब लोगों को विवश करेगा यह कहना केवल वस्तुस्थिति का अज्ञान दिखलाना है !!

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उस समय आज जैसी बडे विस्तार के प्रचण्ड साम्राज्य न रहते थे। बडे से बडा साम्राज्य अब के एक छोटे से प्रांत के बराबर भी नहीं होता था। इससे यदि कोई राजा अत्याचार के कानून बनाने लगे, या वे नियम जो लोगों को मंजूर नहीं हैं, लोगों पर लादने लगा तो प्रथम लोग उससे कहते थे, यदि वह न मान जाता तो उसे राजगद्दीसे अलग कर देते थे, यदि यह संभव नहीं होता तो अपना माल असबाब उठाकर पास लोकछंदानुवर्ती राजा के राज्य में आकर रहते थे। यह तीसरी बात राजाको बडी भारी दहशत दिलाने को काफी हुआ करती थी। इससे राजा लोग नम्र हो जाते थे और यदि वे ऐसे नम्र न होते तो यह हाल हो जाता था कि राजा है पर प्रजा नहीं है। इस विषय के अनेक उदाहरण महाभारत में दिखलाए जा सकते हैं। अतएव राजा हो या उस समय का विद्वान ब्राह्मण हो लोग आकर्षित हों इस गरज से लोगों पर अत्याचार या जबरदस्ती करना असंभव था। साम्राज्य के बढाने के लिए राजा लोग जिस जिस प्रकार का अत्याचार करते थे उसका वर्णन करनेकी जरूरत यहां नहीं है। वैसा अत्याचार करते हुए भी आज की अनियंत्रित राजशाही या नौकरशाही जितना कष्ट देती है उतना कष्ट उस समय के लोगों पर राजा या मंत्रीके कारण होना असंभव था। यही बात यहां दिखलानी थी।

तब जो नियम स्मृति में लिखे गए हैं वे नियम किसी भी जातिके विद्वान के लिखे हों वे उस समय के पहले हीसे चले आये थे और वे उस समय के लोगों को मंजूर थे, यह बात किसी को भी न भूलनी चाहिए। अब देखना यह है कि अछूतों के संबंध में ऐसे अत्याचारी कानून स्मृति में क्यों आये? अब उस समय की परिस्थिति का कुछ विवरण करना है।

गांव और महारवाडा

यह बात अच्छी तरह समझने के लिए वर्तमान परिस्थिति भी देखना चाहिए। आजकल कई शहरों के पास छावनी नामक भाग बसे रहते हैं। जैसे लाहौर शहर और लाहौर छावनी, इंदोर शहर और इंदोर छावनी आदि। शहर हिन्दी निवासियों के हैं और वे अंग्रेजों के आनेके पहलेसे बसे हुए हैं। छावनियां भर अंग्रेजों की बसाई हुई हैं। शहर पहले का और छावनी बादकी। ऐसी बात होते हुए भी छावनी की सडकें चौडी, बंगले हवादार, रहन सहन साफ-सुथरी और खुली है। इसके विरुद्ध शहर में अस्वच्छता, सकरी गलियां, एकसे एक लगे हुए मकान हैं। इससे शहर अस्वच्छताका नमूना और छावनी स्वच्छता का नमूना, आजकल, बन गए हैं। कोई शहर और कोई छावनी इस दृष्टि से देखने योग्य है तब दोनों का अंतर तुर्त ही और स्पष्ट दिखाई देगा। छावनी की परिधि भी शहर से बडी होती है इससे उसे बढने के लिय काफी गुंजाइश रहती है। अच्छे बडे व्यापारी प्रायः छावनी में ही अपनी दूकानें लगाते हैं। यही नहीं, शहरके लोग और व्यापारी भी छावनी में रहना पसंद करते हैं। ये सब हाल यदि अच्छी तरह देखा जाय तो पाठक गणों को स्पष्ट होगा कि आजकल की छावनी ही सच्चा 'गांव' हो गया है और मूल के गांव 'महार बाडा' अर्थात् अस्वच्छ मोहोल्ला बन गया है। यह वस्तुस्थिति यदि अच्छी तरह समझमें आगई तो विदित होगा कि 'महार बाडे' की उत्पत्ति कैसे हुई और इससे स्मृति के नियमों का भी स्पष्टीकरण हो जायेगा।

छावनी को बसानेके समय अंग्रेजों का उद्देश यह न था कि असली गांव का महारवाडा बन जाय। परंतु छावनी को बसानेवाले अंग्रेज नगर-रचना का शास्त्र अधिक अच्छी तरह जानते थे, इससे उनके द्वारा बसाया गया गांव अधिक अच्छी तरह बसा और पुराना गांव आपही आप 'महार बाडा' बन गया। इसी तरह आजकल का महारवाडा वास्तव में यहां के 'आदि हिंदुओं' का था, आगे चलकर जब नवीन सभ्यता से संपन्न आर्य लोग विजयी होकर यहां आए तब उन्होने अपने गांव मूल-निवासियों के गांवों के पास ही बसाए। ये नवीन गांव बसानेवाले आर्य मूल निवासियोंसे कितने ही अधिक ज्ञानी थे। इससे पहले के गांवों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

से नए गांव अधिक अच्छे बने और अधिक उन्नति कर गए। आज कल लोग यही समझते हैं कि गांवों के पास धेडवाडा बसा परन्तु वस्तुस्थिति यह है कि धेडवाडे के पास विजयी आर्योंने अपना नया गांव बसाया। आज के शहरों के पास की छावनियों से वाचक इसका साम्य देख लें। छावनी में कायम हो कर रहने के लिए सहसा इजाजत नहीं मिलती। इजाजत इसी शर्त पर मिलती है कि जिस समय सरकार चाहेगी जमीन ले लेगी। प्रायः इसीके समान नियम स्मृति में दिखाई देते हैं जिसमें धेडवाडे के लोगों को गांवमें कायम होकर बसने के लिए मनाई होती है। आजकल छावनी के नियम दुसरे प्रकार से कडे हैं। परन्तु उनकी आदत पड जाने से उनके संबंध में लोगों को कुछ भी मालूम नहीं होता। परन्तु अंग्रेज यदि यहां सदा के लिए बस जाते,तब तो निश्चय जानिए कि उन्होने आफ्रिका जैसे नियम यहां भी बनाए होते। क्यों कि आफ्रिका में ये नियम बन रहे हैं और हम उन्हे खुद ही देख रहे हैं। आफ्रिका में जो नियम हैं वे इस प्रकार हैंः-

१ अंग्रेजों के मोहोल्लों में रहने की मनाई है।
२ अंग्रेजों के रास्तों परसे, वाहनों में से, रेल गाडियों में से जाने की मनाई।
३ अंग्रेजों की होटलों में जाने की मनाई।
इत्यादि, इत्यादि।

आफ्रिका के अंग्रेज और हिन्दुस्थान के अंग्रेज एक ही हैं। तब दोनों देशों में एक ही से नियम बने होते। अंग्रेज लोग आफ्रिका में उपनिवेश बनाकर रहने लगे हैं और भारतवर्षमें उपनिवेश बनाकर रहने नहीं लगे। इससे जिन्होंने आफ्रिकामें ऐसे नियम किए जो स्मृतियों के अंत्यजों के संबंध के नियमों से कहीं अधिक कडे हैं, उन्होंने यहां ऐसे नियम नहीं किए। यदि आगे चलकर किसी समय वे यहां सदा के लिए रहने लगें, तो स्पष्ट ही है कि यहां भी वैसे ही कडे नियम होंगे।

अंग्रेज ईसाई हैं। तिसपर भी काले इसाइयों को किसी भी प्रकार की रियायत नहीं है। इससे स्पष्ट है कि जित लोगों का भाग्य जेता के धर्म का स्वीकार करने पर भी नहीं बदलता। इसी प्रकार अंत्यजोंने यद्यपि जेता आर्यों के धर्म का स्वीकार कर लिया तब भी उनकी परिस्थितिमें कोई अंतर न हुआ। धर्मप्रचार करना ब्राह्मणों का काम रहा है और जित जातियों को दबाना क्षत्रियों का स्वाभाविक एवं उनकी दृष्टिसे आवश्यक कर्तव्य है।

इस प्रकार गांव कैसे बसे, महारवाडे कैसे बसे, आर्य और अंत्यजों के परस्पर व्यवहार के नियम कैसे बने आदि बातों का स्पष्टीकरण है। वर्तमान परिस्थिति का यदि आप इस दृष्टिसे अवलोकन करें तो आप सहज ही में समझ सकते हैं कि स्मृति के कडे नियम कैसे और क्या बने और वे व्यवहार में क्यों आए। अंत्यजों के संबंध के स्मृति के नियम समझने के लिए आफ्रिका की वर्तमान परिस्थिति देखना बहुत उपयोगी होगा।

आजकल शिक्षा का प्रचार अधिक है इससे आफ्रिकाके नियमों के संबंध में हल्ला मच रहा है। परंतु सरकार का बल अधिक है इससे वे कडे नियम भी प्रचार में आ रहे हैं। पचास वर्ष पूर्व जो स्वतंत्रता और सुख हिन्दुस्थानी लोग पाते थे उसके शतांश में भी अब नहीं मिलता। यही दशा सौ, दो सौ वर्ष तक यदि बनी रही तो इन नियमों की भी आदत हो जावेगी और इन नियमों के बारे में भी लोगों को कुछ विशेष न मालूम होगा।

आज हम देखते हैं कि कुछ हिन्दू साहब की दावत के निमंत्रण में बडप्पन समझते हैं। कुछ लोग तो ऐसे हैं जो हृदय से यही समझते हैं कि "हिन्दुस्थानी लोग परतंत्र हुए और यहां यूरोपीयनों का राज्य हुआ यह हिन्दुस्थानी राष्ट्र का बडा सौभाग्य है" !! यह बात यहां कहने का कारण यह है कि ठीक इसी प्रकार के लोग पहले भी थे। प्राचीन काल में जब विजयी आर्य यहां आए, तब जित लोगों में से कुछ परतंत्र लोग आर्यों के पीछे पडकर तथा यह कहकर कि आर्यों का राज्य यहां हुआ सो बहुत ही अच्छा हुआ स्वजातियों को पराधीन दशा में रखने ही में भूषण मानते थे। आजकल काले साहब भी जैसे अपने को हिन्दुस्थानियोंसे श्रेष्ठ मानते हैं, वैसा ही वह हाल था। ऐसी दशा में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अंत्यजोंने उक्त नियमों को मंजूरी दी हो तो आश्चर्य की बात नहीं। आज कल आफ्रिका में एक एक नियमका हिन्दुस्थानी लोग स्वीकार कर ही रहे हैं। यही बात पहले भी हुई थी।

आर्यों की सभ्यता में और मूल निवासियोंकी सभ्यता में इतना अंतर था कि यदि मूल निवासी सोचते कि आर्य लोग यदि अपना जूठा अन्न भी दे दें तो उनकी बडी मिहरबानी ही होगी, तो यह उनका सोचना भी स्वाभाविक ही होता। इस संबंध में आर्यों की भूतान के 'भूत' लोगों से जो संधि हुई वह देखने योग्य है।

" हरिद्वार के पास कनखल नगर है। वहां दक्ष नामका राजा राज्य करता था। दक्ष के यज्ञ में देव और आर्य आते थे, बराबरीके नाते से वे वहां का कार्य करते थे और यज्ञ में इन दो जातियों की कई बार जेवनार भी होती थी। भूत जाति के लोगों को कोई भोजन के लिए बुलाता न था। इससे भूत जाति के लोगोंने एक बार उनके यज्ञ पर अचानक हम्ला किया। देव और आर्य जाति के सभी वीर असावधान थे, अतः भूत जाति के सामने उनकी कुछ न चली। देव, ऋत्विक और आर्य वीर सबको अच्छी मार पडी। किसी का सिर फूटा, किसीके दांत टूटे, किसीके पैर कट गए, इस प्रकार हाल हुआ। इस प्रकार यज्ञ का विध्वंस करने पर भूत जातिके वीरों ने यज्ञकुंड में मलमूत्र विसर्जन किया और यज्ञ पात्रों को नष्ट किया। इतना सब हो चुकने पर आर्य और भूत जातियों में जो संधि हुई वह देखने योग्य है। इस संधि में एक शर्त यह थी की यज्ञ का उच्छिष्ट अन्न भूत वीरों को मिले। "

यह कथा भागवत के (४; अ. ६, ७) में है। भूत वीरों ने यज्ञकुंडमें मलमूत्र विसर्जन किया इसीसे स्पष्ट होता है कि वे भिन्न संस्कृति के थे। एक ही धर्म के लोग यज्ञकुंड में इस प्रकार कभी भी भ्रष्टाकार न करते और उच्छिष्ट अन्न से उनका संतोष भी कभी नहीं हो सकता। संधि यह हुई देव, पितर, आर्य जब अन्नभाग सेवन कर चुकेंगे तब शेष अन्न भूत लोगों को बांटा जावे। इससे स्पष्ट है कि भूत लोगों को आद्य पूजा का मान प्राप्त करनेकी इच्छा ही न थी और अवशिष्ट अन्न मिलना ही उन लोगों के लिए पर्याप्त था।

इन भूत लोगों से बहुत नीची अंत्यजों की सभ्यता थी। उन्हे यदि आर्यों का उच्छिष्ट अन्न मिलता तो वे अनुग्रह ही समझते। इससे विदित होगा कि जिस समय राष्ट्र का एकीकरण हुआ, उस समय परिस्थिति के अनुसार अधिक से अधिक जो वे चाहते थे सो मिला। उसके बाद उनके हकों की वृद्धि का प्रश्न ही उपस्थित न हुआ। वे गांवमें जिस स्थिति में रहे उसी स्थिति में आजतक हैं।

यह सब इतिहास जैसा हुआ वैसा ही यदि अकलुषित दृष्टि से देखा जाय, तो विदित होगा कि स्मृतियोंने वे बातें लिखीं जो जारी थी, इनसे अधिक कडे और जबरदस्ती के कानून न बने, स्मृति बनने के पहले से जो बातें जारी थीं वे ही कायम रखी गई और अंत्यज आदि लोगों को उस समय हक्क के नाते जो कुछ चाहिए था वही उन्हे दिया गया। इतना ही नहीं प्रत्येक गांव में पहले के वतनदार के नाते अच्छी जमीन का वतनी हक्क भी उन्हे सदा के लिए दिया गया। इससे उस समय उन्हे जो कुछ आवश्यक था वह सब मिला था।

यदि वे उस समय प्राप्त स्थितिमें प्राप्त हुए हकों से संतुष्ट न होते, तो वे एक आर्य राजा का राज्य छोडकर जहां चाहते वहीं निकल जाते। आज के समान एकही अखंड, प्रचंड साम्राज्य उस समय न था। इसी भरतखंड में सौ, देड सौ साम्राज्य थे और दूसरे सैकडों छोटे आश्रित राज्य थे। उस समय के सब राजा भी एक मत से न चलते थे। अर्थात् असंतुष्ट वर्ग एक अत्याचारी राज्य से निकलकर दूसरे अच्छे राजाके पास चला जाता था। अब के विस्तृत अखंड साम्राज्य के कारण जैसे वह चारों ओर से बंद हैं वैसा बंद वह पहले कभी भी न था। इस दृष्टिसे जब हम देखते हैं तब कहना ही पडता है कि उस समय अंत्यजों की जो कुछ आकांक्षाएं थीं वे सब पूर्ण रीतिसे अंत्यजों को मिल चुकी थीं। इसीसे तो वे गांवोंमें स्थिर होकर रहे थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अस्पृश्यता (अछूत)

अस्पृश्यता वास्तव में अव्यवहार्यता से आरंभ हुई। अनंतर उसका रूपांतर कैसे हुआ सो देखिए। आजकल अंग्रेज लोग हिन्दुओं के घरमें पाहुने बनकर रहने को तैयार नहीं रहते। शहर और छावनी में क्रमशः हजारों हिन्दुस्थानी और अंग्रेज रहते हैं, पर वे एक दूसरे के घर कभी भी नहीं जाते। दोनों के व्यवहार परस्पर असहकारसे किन्तु प्रतिबंध के बिना चलते हैं। इससे अंग्रेज यदि हिन्दुस्थानियों को अस्वच्छ समझते होंगे और हिन्दुस्थानी लोग अंग्रेजों को अपवित्र भी समझते होंगे, तब भी किसी के भी दैनिक व्यवहार में दूसरे किसी भी प्रकार से रुकावट नहीं होती। पर यदि बस्ती का प्रमाण व्यस्त होने लगे, अंग्रेजों की बस्ती यदि बढने लगे और हिन्दुस्थानियों की वस्ती कम होने लगे, तो फिर हजारों वर्षों के बाद, आज जो अव्यवहार्यता का परस्पर व्यवहार है वह परस्पर तीव्रता से अखरेगा। उसी प्रकार सुधरे हुए विजयी आर्य और असभ्य, असंस्कृत मूल निवासी इन दोनों का सर्व प्रथम अव्यवहार्यता का संबंध था। वह उस समय किसी को न अखरनेवाला था। परन्तु कालान्तर से वही संबंध आज की अस्पृश्यता में परिणत हुआ और आज की उग्रता उसमें आगई! इसीसे यदि कोई कहे कि यह अस्पृश्यता इसी रूप में किसी ने बनाई और दूसरों पर लाद दी, तो वह सर्वथा असत्य है। प्रथम जो व्यवहार किसी कोभी जरा भी दुःखदायी न था, वही होते होते इस दशा को पहुंच गया। यदि लोग इस बात को समझ लेंगे, तो उन्हे आद्य स्मृति का दहन करने की आवश्यकता कदापि न होगी। और वे अच्छी तरह समझ जावेंगे कि उस समय की वास्तविक दशा क्या थी।

यदि जानना है कि अस्पृश्यता का पाप कहांसे आया और कैसे आया,तो वर्तमान समय की वस्तुस्थितिका बारीकी से अवलोकन करना चाहिए और पहले की स्मृतियों के नियमों का वर्तमान दशासे मिलान करके देखना चाहिए; तब सच्चा हाल दिखाई देगा। परन्तु यह बात विकृत दृष्टि को न दिखेगी। इसीसे हमारी आग्रहपूर्वक बिनती है कि लोग विकारी दृष्टि को दूर कर वस्तुस्थिति के निरीक्षण से स्मृति के नियमों का अवलोकन करें।

वर्तमान समय में अच्छूतों पर ज्यादती हुई है और वह जल्द ही दूर करना चाहिए। इस संबंध में दो मत हो नहीं सकते। कट्टर पुराने लोग ही इस दिशा में कदम बढा रहे हैं। ऐसी दशा में पुरानी कबरें उखाड कर उन में के नष्टप्राय प्रेतों को दुबारा जलाने की आवश्यकता नहीं दिखाई देती। वे स्मृतियां गई, वे लेखक गए और वह परिस्थिति भी नष्ट हो चुकी है।

अब तो बिलकुल ही भिन्न परिस्थिति है। अतः पुराने गुणों के लिए या दोषों के लिए एक दूसरे के सिर तोडना किसी को भी योग्य नहीं है।

सुधार का मार्ग।

अंत्यजों की जो हालत अब है उसके सुधारने का सच्चा मार्ग "बहिष्कार, सत्याग्रह अथवा आपस का कलह नहीं है"। अंत्यजोंको मंदिरों में प्रवेश करने मिलना चाहिए, पानी के स्थान से पानी भरने मिलना चाहिए और मनुष्यता के सब हक उन्हे मिलने ही चाहिए इसमें विरोध नहीं है। परन्तु वे अधिकार आपस में असहयोग करने से और द्वेष बढाने से कदापि प्राप्त नहीं हो सकते। जिन उपायों से आपस में सहयोग बढेगा और एक दूसरे के प्रति आदर बढेगा ऐसे ही उपायों से काम लेना चाहिए। तभी परस्पर सहानुभूति बढेगी और इष्ट कार्य त्वरित होगा। बहिष्कार और सत्याग्रह के उपायों से आपसी फूट भर बढेगी और राष्ट्रकार्य को विलंब होगा।

इसके सिवा साक्षरता का प्रसार, औद्योगिक प्रगति से आर्थिक दशा सुधारने के उपायों का अवलंबन आदि मुख्य बातों की ओर भी अछूतोद्धारक लोगों को विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है इन में से एक भी बात न कर पिछडे हुओं का पक्ष लेकर हलचल करनेवाले अछूतों की शक्ति ऐसे निरुपयोगी कार्यों में खर्च कर रहे हैं कि जिससे अछूतों की दशामें तो रत्तीमात्र का अंतर न होवे और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

आपस के झगडे भर बढ जावें तथा राष्ट्रीय सुधार का समय बढताही जावे!! इसीसे सर्व प्रथम आवश्यकता इस बात की है कि अछूतों की रहन सहन सुधरे और उनकी आर्थिक उन्नति हो । मृतमांसाशन, उच्छिष्ट - अन्न - भक्षण आदि अनाचार के दोष उनमें से निकाल देने चाहिए । और सबसे पहले अछूतों को आपस की अस्पृश्यता दूर करनी चाहिए ।

महात्मा बुकर टी. वाशिंगटन ।

अमेरिका के नीग्रो लोगों के सुधार के लिए सन्मान्य बुकर टी. वाशिंगटन महोदयने जो आंदोलन किया और जो आज भी जारी है उसका अध्ययन ये लोग करें । उस आत्मसुधार के मार्ग से ही अछूतोद्धार का आंदोलन चलाना चाहिए । आत्मसुधार के बिना बाह्य हक मिलना संभव नहीं और यदि मिले भी तो उनका कुछ उपयोग नहीं । इससे स्मृति दहन आदि जो अप्रयोजक बातें जारी की जा रहीं हैं, उनसे दबेहुओंको तनिक भी लाभ नहीं है । इतना ही नहीं इससे उनकी भारी हानि होगी ।

आत्मघात का नमूना ।

इसके लिए एक उदाहरण देखने योग्य है। पिछडे हुए लोगों की एक इच्छा यह है कि " जब तक हमे समानता के हक नहीं मिलते तब तक हिन्दुस्थान को स्वराज्य न मिले और तब तक हमारी मातृभूमि बिलकुल परतंत्र रहे।" अब्राह्मणों का भी यही मत है !! अपने ही अपने पैर किस प्रकार काट लेते हैं इसका यह ज्वलंत उदाहरण है । लिख पढ कर आगे बढे हुए एक करोड लोग हैं । अन्य बत्तीस करोड पीछे पडे हुए हैं । अतः यदि आज स्वराज्य मिलगया तो इन आगे बढे हुओं को अधिक लाभ शायद हो जाय, इसीसे सब पिछडे हुए लोग जब तक आगे न बढ जांय, तबतक हिन्दुस्थानको स्वराज न मिले । अर्थात् एक करोड लोग आगे बढे हुए हैं सो देखा नहीं जाता, इसीसे अन्य बत्तीस करोड लोग खुशीसे अनंत कालतक,स्वयं-निर्णयसे,स्वतः की इच्छासे दास्य और गुलामी का स्वीकार करने को आनंदसे तैयार हैं !!! यही वे लोग बोलते और लिखते हैं !! इतनी शिक्षा प्राप्त करनेपर भी यदि आजके शिक्षित समाजमें ऐसे आत्मघातक विचारके लोग रह सकते हैं तो क्या आश्चर्य है कि अस्पृश्यता का स्वतः स्वीकार करनेवाले अथवा यह मानने वाले कि मूल-हिंदुस्थान निवासियोंको पराधीन करनेवाले विजयी आर्य ही सदाके अधिकारी हों, अंत्यजोंके प्राचीन पूर्वज थे । उस जमानेमें यदि महार और मांगोंने इसी प्रकार की आत्मघातक हलचल की भी होगी तो क्या आश्चर्य ? क्यों महार मांग जैसे अछूतोंमें भी पिछडे हुए और उन्नति करनेवाले ऐसे दो भेद प्राचीन कालसे चले आये हैं । इन अछूतों में से जो पिछडे हुए थे, उन्होंने आगे बढे हुओं के पैर इसी प्रकार अवश्य ही पीछे खींचे होंगे !!

वाचक देख लें की वर्तमान समयके अब्राह्मणोंके विचार किस प्रकार पराधीनता को कायम रखनेवाले हैं । तब स्पष्ट दिखाई देगा कि इनके प्राचीन पूर्वजोंने स्वयं निर्णयसे भी इसी प्रकार पराधीनता स्वीकृत की होगी ।

स्वाध्याय मंडल के ग्रंथों के प्राप्तिस्थान ।

स्वाध्याय मंडलके सब पुस्तक अब बंबई,देहली, लाहौर,अलाहाबाद, काशी,और कलकत्ता नगरोंके सब भाषा - पुस्तक - विक्रेताओं के पास मिल सकते हैं। इस लिये इन नगरोंके लोग अपने नगरोंके पुस्तक विक्रेताओं से स्वाध्याय मंडलके पुस्तक ले सकते हैं । वी. पी. से मंगवाने की अपेक्षा वहांसे लेनेमें उनका अधिक लाभ होगा ।

मंत्री— स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यम और पितर ।

[ले० श्री० पं० मंगलदेव (तडित्कान्त) जी वेदालंकार(गु. कु. काङ्गडी) स्वाध्याय मंडल, औंध]

वर्तमान समयमें यम और पितर यह एक बडा-भारी विवादास्पद विषय है और इसीलिए बडे महत्वका होता हुआ विशेष विचारणीय है। वेद ही के हमारे पास अन्तिम साधन होनेसे तथा उसीकी प्रामाणिकतामें सबको विश्वास होनेसे इस संबन्धमें वेदके क्या विचार हैं यह जानना नितान्त जरूरी है। हमें पुनर्जन्ममें पूर्ण विश्वास है पर हम यह निश्चित रूपसे कदापि नहीं कह सकते कि मरनेके बाद जीव पहिले कहां जाता है और कब फिर जन्म लेता है। वर्तमान समयके पौराणिक लोक जो यम व पितर संबन्धी कल्पना मानते हैं व तदनुसार आचरण करते हैं उसका मूल क्या है? क्या पुराणोंकी ही यह कपोलकल्पना है वा वेदोंमें भी इसका कुछ मूल पाया जाता है? मरनेके बाद जीव कहां जाता है, किस रूपमें रहता है, कबतक विना पुनर्जन्म लिए रहता है, मरनेके बाद मृतककी जीवात्माका उसके सांसारिक संबन्धियोंसे कोई संबन्ध रहता है वा नहीं, यदि रहता है तो किस रूपमें, उस मृतके लिए जीवितोंको कुछ करना चाहिए वा नहीं, यदि करना चाहिए तो किस रूपमें, यम क्या है, कहां रहता है, मृत पितरोंसे उसका क्या संबन्ध है, यम के दूत क्या हैं, यम कहांका राजा है इत्यादि इत्यादि अनेक महत्वके प्रश्न हमारे सामने उपस्थित हो सकते हैं। क्यों कि मरनेके बादका वृत्तान्त जानना मनुष्यकी शक्तिसे बाहिर है और वेदके सिवाय और कोई उपाय हमारे पास नहीं है अतः हम इन उपरोक्त महत्वपूर्ण प्रश्नोंके संबन्धमें वैदिक विचार जाननेकी कोशिश करेंगे। जो सज्जन इस लेखमालाके विचारोंसे अर्थात् दिएगए मंत्रार्थ व उनसे निकाले गए परिणामोंसे असहमत हों, वे यदि अन्य अर्थ व अन्य परिमाण सयुक्तियुक्त व सप्रमाण दर्शाने का कष्ट करेंगे तो मैं उन्हें सहर्ष स्वीकार करता हुआ उनका विशेष आभार मानूंगा। पत्र व्यवहार द्वारा जो सज्जन उत्तर प्रत्युत्तर चाहेंगे उन्हें भी सहर्ष दिया जाएगा। इसके सिवाय यदि कोई सज्जन किसी अखबारमें कुछ लिखें तो वह अखबार 'स्वाध्याय मण्डल औंध' के पतेसे मेरे पास भेज दें ताकि मैं उसपर विचार कर सकूं। इस लेखमाला के प्रारंभ करनेसे पूर्व इतना और सूचित कर देना आवश्यक समझता हूं कि, हमने उपरोक्त विषयके संबन्धमें पूर्ण खोज करनेके लिए चारों वेदोंके वे सब मंत्र संग्रहित किए हैं, जिनमें कि सातों विभक्तियोंमें से पितृशब्दका कोईभी रूप आता है या जिन मंत्रोंके देवता पितर हैं। इन सब मंत्रोंको विचारार्थ यथा समय यथा स्थान पाठकोंके सामने रखा जाएगा। एकभी मंत्र छोडा नहीं जाएगा। उन सब मंत्रोंको दृष्टिमें रखते हुए जो परिणाम निकलेगा वह दर्शाया जाएगा। इन लेखोंमें संक्षेपसे विवेचन होगा। इतनी प्राथमिक आवश्यक विवेचना करनेके बाद अंतमें यह आशा करता हुआ कि जो सज्जन इस विषयमें खोज करनेके इच्छुक होंगे उन्हें संभव है इससे कुछ सहायता मिले, प्रकृत विषयका प्रारंभ करता हूं।

सबसे पहिले हमारे सामने यह सवाल उपस्थित हो सकता है कि ये पितर कौन हैं जिनके कि लोक पर यहांपर हमने विचार करना है। यूं तो जिन यम और पितर पर विवाद है वे तो प्रसिद्ध ही हैं तथापि हम यह चाहते हैं कि पितरों पर सबसे पहिले प्रकाश न डालते हुए अंतमें जबकि पितर संबन्धी वैदिक विचार पूर्णतया हमारे सामने उपस्थित हो जाएं और उसपर जो कुछ वक्तव्य हो वह प्रकाशित कर दिया जाए तब उसके बाद उन वैदिक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

विचारोंसेही परिणाम निकाला जाए, और यही हमें युक्तियुक्त व न्यायपूर्ण प्रतीत होता है। इस प्रकार का परिणाम पर्याप्त शुद्ध होगा। अतः इस प्रश्नको हम यहीं पर आगेके लिए छोडते हैं।

पितृलोक।

इस लेखमें हम पितृलोक पर विचार करेंगे। जिन जिन वेदमंत्रों में पितृलोक के संबन्ध में निर्देश या वर्णन होगा उन सब मंत्रों का उल्लेख किया जायगा, जिससे कि पितृलोक संबन्धी कोई भी वैदिक विचार छूटने न पावे। निम्न मंत्रमें सिर्फ पितृलोकका निर्देश मिलता है–

शुम्भन्तां लोकाः पितृषदनाः।
पितृषदने त्वा लोक आ सादयामि॥
अथर्व. १८।४।६७॥

अर्थ– (पितृषदनाः लोकाः शुम्भन्ताम्) जिनमें पितर बैठते हैं ऐसे लोक (शुम्भन्तां) शोभायमान हों। (त्वा)तुझे(पितृषदने लोके) जिसमें पितर बैठते हैं उस लोकमें (आसादयामि) बिठलाता हूं।

इस मंत्र से पता चलता है कि कोई ऐसे लोक हैं जिनमें कि पितर बैठते हैं तथा उनमें एक नवीन व्यक्तिको भी किसी अवस्थाविशेषमें बिठलाया जाता है।

एतदारोह वय उन्मृजानः स्वा इह बृहदुदीदयन्ते। अभिप्रेहि मध्यतो मापहास्थाः पितॄणां लोकं प्रथमो यो अत्र॥ अथर्व. १८।३।७३॥

अर्थ– (उन्मृजानः) अपने का शुद्ध करता हुआ (एतद् वयः आरोह) इस अंतरिक्षमें चढ। (इह) यहां (स्वाः) तेरे बन्धुबांधव (बृहत् उदीदयन्ते) बहुत प्रकाशमान हो रहे हैं– अर्थात् वे बहुत उन्नत हुए हुए हैं, उनकी तू चिन्ता मत कर। (मध्यतः अभिप्रेहि)उन बन्धु बांधवों के मध्यसे जा। (पितॄणां लोकं) पितरोंके लोकका (मा अपहास्थाः) त्याग मत कर अर्थात् तेरेसे पितृलोक छूटने न पावे। (यः) जोकि पितृलोक (अत्र) यहां (प्रथमः) मुख्य प्रसिद्ध है।

इस प्रकार हमने देखा कि पितृलोक का निर्देश हमें वेदमें मिलता है। अबहमें देखना है कि वे पितृलोक कौनसे हैं।

१ पितृलोक- 'पृथिवी'।

स्वधा पितृभ्यः पृथिविषद्भ्यः॥
अथर्व० १८।४।७८॥

अर्थ- (पृथिवीषद्भ्यः) पृथिवीपर बैठनेवाले (पितृभ्यः) पितरोंके लिए (स्वधा) स्वधा हो।

पृथिवीस्थ पितरों के लिए स्वधा का वर्णन यहांपर है। पूर्वोक्त बहुतसे पितृलोकोंमेंसे एक पृथिवी लोक है जहां कि पितर बैठते हैं ऐसा इस मंत्र से प्रतीत होता है।

२ पितृ लोक-'अंतरिक्ष'।

स्वधा पितृभ्यो अन्तरिक्षसद्भ्यः॥
अथर्व १८।४।७९॥

अर्थ - (अन्तरिक्षसद्भ्यः पितृभ्यः) अन्तरिक्ष में बैठनेवाले पितरों के लिए (स्वधा) स्वधा हो।

इस मंत्र में अंतरिक्ष में बैठनेवाले पितरोंका वर्णन है।

ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्वन्तरिक्षम्। तेभ्यः स्वराडसुनीतिर्नो अद्य यथावशं तन्वः कल्पयाति॥ अथर्व. १८।३।५९॥

अर्थ- (ये) जो (नः) हमारे (पितुः पितरः) पिताके पितर और (ये) जो (पितामहाः) पितामह (दादा) (ये) जो कि (उरु अंतरिक्षं) विस्तृत अंतरिक्षमें (आविविशुः) प्रविष्ट हुए हुए हैं (तेभ्यः)उनके लिए (स्वराट्) स्वयं प्रकाशमान (असुनीतिः) प्राणदाता परमात्मा (नः) हमारे (तन्वः) शरीरोंको (यथावशं) कामना के अनुकूल(कल्पयाति)समर्थ करता है।

इस मंत्र में पिता, पितामह तथा प्रपितामहोंका अन्तरिक्षमें प्रवेश स्पष्टरूपसे दर्शाया गया है। यद्यपि इस मंत्र के उत्तरार्धमें भी एक विशेष महत्वपूर्ण बात कही गई है पर उसका यहांपर विशेष मतलब नहीं है। उसपर अन्यत्र विचार करेंगे।

उत्तिष्ठ प्रेहि प्र द्रवौकः कृणुष्व सलिले सधस्थे।
तत्र त्वं पितृभिः संविदानः सं सोमेन मदस्व
सं स्वधाभिः॥ अथर्व. १८।३।८॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अर्थ- (उत् तिष्ठ) उठ, (प्रेहि) जा, (प्रद्रव) दौड । (सधस्थे) जहां सब इकट्ठे रहते हैं ऐसे (सलिले) अंतरिक्षमें (ओकः) घर (कृणुष्व) बना । (तत्र) वहां अंतरिक्षमें (त्वं) तू (पितृभिः संविदानः) अन्य पितरों के साथ मिला हुआ ऐकमत्य को प्राप्त हुआ हुआ (सोमेन) सोमसे (संमदस्व) अच्छीतरह आनन्दित हो और (स्वधाभिः) स्वधाओंसे (सं) अच्छीप्रकार तृप्त हुआ हुआ आनन्दित हो ।

इस मंत्र में स्पष्ट रूपसे अंतरिक्ष लोक में किसी को भेजा जाने का और वहां स्थित पितरों के साथ स्वधा आदिसे आनन्दित होने का निर्देश है । अतः यह मंत्र भी पितरोंका स्थान अंतरिक्ष बता रहा है।

उपरोक्त सब मंत्रों में हम यह स्पष्टरूपसे पाते हैं कि पितरअन्तरिक्ष में भी रहते हैं अर्थात् अन्तरिक्ष भी पितरों के लोकों में से एक लोक है जहां पितर निवास करते हैं ।

३ पितृलोक - 'द्यु' ।

स्वधा पितृभ्यो दिविषद्भ्यः ॥ अथर्व० १८।४।८०

अर्थ— (दिविषद्भ्यः पितृभ्यः) द्युलोक में बैठनेवाले पितरों के लिए (स्वधा) स्वधा हो ।

इस मंत्रमें ऐसे पितरोंका वर्णन है जो कि द्युलोक में बैठते हैं, और वहां बैठकर स्वधा लेते हैं ।

> आ नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवदश्वावद्गोमद्
> यवमत् सुवीर्यम् । यूयं हि सोम पितरो
> मम स्थन दिवो मूर्धानः प्रस्थिता वयस्कृतः
> ऋ० ९ । ६९ । ८ ॥

अर्थ —हे सोम ! तू (वः) हमें (वसुमत्) वसु युक्त (हिरण्यवत्) सोनाचांदीवाले (अश्वावत्) घोडोंवाले (गोमत्) गौओंवाले, (यवमत्) यवादि धान्यवाले (सुवीर्यम्) उत्तम पराक्रम को (आपवस्व) प्राप्त करा । अर्थात् हम में ऐसा सामर्थ्य दे कि हम ये सब उपरोक्त वस्तुओं को अपने पराक्रम से प्राप्त करें । हम को ऐसा पराक्रम दो। हे सोम ! (यूयं वयस्कृतः मम पितरः) तुम जीवन देनेवाले मेरे पितर (दिवः मूर्धानः प्रस्थिताः) द्युलोक के समान ऊंचे उठे हुए (स्थन) हैं ॥

इस प्रकार उपरोक्त मंत्रों ने हमें दर्शाया कि द्यु लोक में भी पितर रहते हैं । द्युलोक में पितर कहां रहते हैं यह निम्न मंत्र दर्शा रहा है-

> उदन्वती द्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा ।
> तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते ॥
> अथर्व० १८ । २ । ४८॥

अर्थ- (अवमा द्यौः उदन्वती) सबसे नीचे की द्यौ 'द्युलोक' वह है जिसमें कि जल रहता है। जिस द्युलोक में बादल रहते हैं वह सब से नीचेका द्युलोक है । (पीलुमती इति मध्यमा) और जिसमें ग्रह नक्षत्रादि स्थित हैं वह बीच का द्युलोक है । (ह) निश्चय से (तृतीया) तीसरा (प्रद्यौः इति) प्रद्यु नामका द्युलोक है (यस्यां) जिसमें कि (पितरः आसते) पितर स्थित होते हैं ।

इस मंत्र में यह बतलाया गया है कि द्युलोक तीन प्रकारका है । एक तो वह जो कि तीनों प्रकार के द्युलोको में से सबसे नीचा है और उसमें मेघमण्डल स्थित है । दूसरा इस से उपर है और उस में पीलु अर्थात् ग्रह नक्षत्रादि स्थित हैं। यह बीचका द्युलोक है । तीसरा इस से ऊपर है जो कि प्रद्यौ के नामसे प्रख्यात है और यही द्युलोक है जिसमें कि पितर निवास करते हैं ।

अबतक के सब मंत्रों के देखने से ऐसा पता चलता है कि पितर पृथिवी लोक से चलकर अंतरिक्ष लोक में आते हैं और वहां से चलकर सब से अंतमें इस द्युलोक में निवास करते हैं । यह द्युलोक ग्रह नक्षत्रादि के निवासक द्युसे भी परे है ऐसा इस मंत्र से पता चलता है; अतः इस के आधारपर यह अनुमान निकाला जा सकता है कि यह पितरों का निवासक द्युलोक सूर्यलोक से परे है ।

इसी मंत्र के भाव को निम्न ऋग्वेदकी ऋचा पुष्ट करती है ।-

> तिस्रो द्यावः सवितुर्द्वा उपस्थां एका यम-
> स्य भुवने विराषाट् । आणिं न रथ्यममृता-
> धि तस्थुरिह ब्रवीतु य उ तच्चिकेतत् ॥
> ऋ० १ । ३५ । ६ ॥

अर्थ—(तिस्रो द्यावः) तीन द्युलोक हैं। (द्वौ) उनमें से दो (सवितुः) सूर्य के (उपस्थां) समीप

CC-0. Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हैं। (एका) और एक (यमस्य भुवने) यमके लोक में स्थित है जो कि (विराषाट्) विराषाट् अर्थात् जिसमें वीर लोक आकार स्थित होते हैं। (रथ्यं आणिं न) जैसे रथ आणि पर आश्रित हो-कर स्थित होता है उसी प्रकार (अमृता=अमृता-नि) ये सब अमृत ग्रह नक्षत्रादि (अधितस्थुः) जिसके आश्रयमें स्थित हुए हुए हैं। (यः) जो कोई (तत्) इन उपरोक्त तत्वोंको (चिके-तत्) भली प्रकार जानता है, वह (इह) यहांपर हमें (ब्रवीतु) उन तत्वोंका विवेचन करे। 'आणि' नाम उस कीलका है,जोकि अक्षके किनारे-पर छेद करके पहिए को बाहिर निकल जानेसे रोकनेके लिए लगाई जाती है।

इस मंत्र से हमें इतना और पता चलता है कि पूर्व मंत्रमें निर्दिष्ट तीसरा द्युलोक कि जिसमें पितरों की स्थिति है वह सूर्य लोकसे परे होता हुआ यम लोकमें स्थित है अर्थात् यम का राज्य उस द्युलो-कमें है। पितर यमकी प्रजा हैं तथा यम उनका राजा है यह बात आगे चलकर हमें पता चलेगी। यहांपर उस बातका निर्देश मात्र है।

इस मंत्रमें यम लोकमें स्थित द्युका विशेषण 'विरा-षाट्' दिया है। अर्थात् उस द्युमें वीरगण आकर निवास करते हैं। इसी बातको निम्न लिखित अथर्व वेदका मंत्र पुष्ट करता हुआ साथमें पितरोंका द्युलोकमें जाना दर्शा रहा है।

> इत एत उदारुहन् दिवस्पृष्ठान्यारुहन्।
> प्र भूर्जयो यथा पथा द्यामंगिरसो ययुः॥
> अथर्व० १८।१।६१॥

इस मंत्र का देवता 'पितरः' है। उन्हीं का इसमें वर्णन है। अर्थ इस प्रकार है।-

(एते) ये पितर (इतः) यहांसे (उत् आ अरुहन्) ऊपर को चढते हैं। (दिवः पृष्ठानि आरु-हन्) और द्युके पृष्ठोंपर - प्रष्ठव्य स्थानोंपर - चढते हैं। (यथा पथा) जिस प्रकारके मार्गसे कि (भूर्जयः) भूमि जीतनेवाले (अंगिरसः) अंगिरस पितर (द्यां) द्युलोक को (प्रययुः) गए हुए हैं।

अबतक के विवेचनसे हमें इतना पता चला है कि पितर पृथिवी, अंतरिक्ष तथा द्यु, इन तीनों लोकों में निवास करते हैं। इसी परिणाम को निम्न मंत्र प्रमाणित कर रहा है। इस मंत्रमें तीनों लोकों का वर्णन है। मंत्र इस प्रकार है।-

> ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आविविशु-रुर्वन्तरिक्षम्। य आक्षियन्ति पृथिवीमुत द्यां तेभ्यः पितृभ्यो नमसा विधेम॥
> अथर्व० १८।२।४९

(ये) जो (नः पितुः पितरः) हमारे पिताके पितर हैं, (ये) और जो (पितामहाः) उनके भी पितामह हैं, (ये) जो कि (उरु अंतरिक्षं आवि-विशुः) विशाल अंतरिक्ष में प्रविष्ट हुए हैं, और (ये) जो (पृथिवीं उत द्यां) पृथिवी तथा द्युलोक में (आक्षियन्ति) निवास करते हैं (तेभ्यः पितृभ्यः) उन पितरों के लिए हम (नमसा विधेम) नमस्कार पूर्वक पूजा करते हैं।

यह मंत्र स्वयमेव अधिक स्पष्ट है। यह पितरों का तीनों लोकों में निवास होना स्पष्टतया प्रतिपा-दन कर रहा है।

४ पितृलोक - 'पिताका कुल वा घर'

इन उपरोक्त पितृलोकों के सिवाय हमें वेद में एक ऐसा भी मंत्र मिलता है कि जिस में पितृलोक का अर्थ पिताका घर या पिताका कुल प्रतीत होता है। मंत्र इस प्रकार है-

> उशतीः कन्यला इमाः पितृलोकात् पतिं यतीः अवदीक्षामसृक्षत स्वाहा॥
> अथर्व० १४।२।५२

अर्थ- (इमाः) ये (उशतीः कन्यलाः) पति लोक की कामना करती हुई शोभायमान कन्याएं (पितृलोकात्) पितृकुल से (पतिं यतीः) पति के पास जाती हुई (स्वाहा) उत्तम वाणी द्वारा (दीक्षां) दीक्षाको (अवसृक्षत) दें।

नियम व्रत आदि की शिक्षा का नाम दीक्षा है। यहांपर पितृकुल को पितृलोक के नाम से कहा गया है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

५ पितृलोक--पितरों का देश

(FATHER-LAND)

निम्न मंत्रमें पितृलोकका अर्थ पैत्रिक भूमि (Father-land) है। जिस भूमिमें वंशपरंपरासे रहते चले आए हैं उस भूमिका नाम पितृलोकसे यहां कहा गया है।

पंचापूपं शितिपादमविं लोकेन संमितम्।
प्र दातोप जीवति पितृणां लोकेऽक्षितम्॥
अथर्व० ३।२९।४॥

अर्थ- (पंच·अ·पूपं) पांचों जनोंको (ब्राह्मणादि चार वर्ण तथा पांचवां निषाद) न सडानेवाले अत-एव(लोकेन संमितं) जनता द्वारा संमत (शितिपादं अविं) हिंसकोंको दबानेवाले संरक्षक कर भागका (प्रदाता)देनेवाला (पितृणां लोके अक्षितं उपजी-वति) पितरोंके देशमें अक्षय होकर जीता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस मंत्रमें पितृलोक का अभिप्राय पितरोंका देश(Father-land) है।

पितृलोक के संबन्धमें यहां पर इतना ही विवेचन पर्याप्त है। विशेष खोज करनेवालों के लिए संक्षेपमें हमने सामग्री उपस्थित कर दी है। इसपर हमें जो विशेष वक्तव्य होगा वह फिर कभी हम पाठकों के सामने रखेंगे। अब हम 'पितृयाण' पर इसी प्रकार संक्षेपसे प्रकाश डालनेका प्रयत्न करेंगे।

पितृयाण।

पितृलोककी स्थापना के अनन्तर हमारे सामने यह सवाल उपस्थित होता है कि इन लोकोंमें कब और कैसे अर्थात् किस मार्ग द्वारा पितर जाते हैं। इस पृथिवी लोकसे अन्य लोकोंमें जानेके दो मार्ग हैं। जिस मार्गसे पितर जाते हैं वह पितृयाण मार्ग कहलाता है। तथा जिससे देवलोक जाते हैं वह देव-यान कहलाता है। इसी भावको निम्न मंत्र दर्शा रहा है। मंत्र इस प्रकार है।-

द्वे स्रुती अशृणवं पितृणामहं देवानामुत मर्त्या-
नाम्। ताभ्यामिदं विश्वमेजत् समेति यदन्त-
रा पितरं मातरं च॥ ऋ.१०।८८ १५॥
यजुः अ० १९।४७॥

अर्थ- (मर्त्यानां पितृणां उत देवानां) मनुष्यों, पितरों व देवोंके (द्वे स्रुती) दो मार्ग (देवयान और पितृयाणनामक) (अशृणवं) मैंने सुने हैं। (ताभ्यां)उन दोनों मार्गों द्वारा (इदं एजत् विश्वं) यह गतिमान् विश्व (यत्) जो कि (पितरं मातरं च अन्तरा) इस द्यु पिता और पृथिवी माता के बीचमें स्थित है, (सं एति) अच्छी प्रकार गति करता रहता है। अर्थात् इन मार्गोंसे आवागमन होता रहता है।

एवं इस मंत्र से इतना पता चलता है कि देवयान और पितृयाण नामक दो मार्ग हैं जिनसे आवागमन होता है। इसके अतिरिक्त हमें कुछ मंत्र ऐसे मिलते हैं जिनमें कि पितृयाण मार्ग से जानेका निर्देश पाया जाता है। वे सब मंत्र नीचे दिए जाते हैं।

आ रोहत जनित्रीं जातवेदसः पितृयाणैः सं व
आ रोहयामि। अव्याड् ढव्येषितो हव्यवाह
ईजानं युक्ताःसुकृतां धत्तलोके॥ अथर्व० १८।४।१॥

अर्थ - (जातवेदसः) हे अग्नियो! तुम (जनि-त्रीं आरोहत) अपनी उत्पन्न करनेवाली के पास पहुंचो। मैं (वः) तुम्हें (पितृयाणैः) पितृयाण-मार्गों से (सं आरोहयामि) अच्छी प्रकार पहुंचा-ता हूं। (इषितः हव्यवाहः) प्रिय हव्यों का वाहक अग्नि (हव्या = हव्यानि) हव्योंको (अव्याट्) वहन करता है। हे अग्नियो! (युक्ताः) तुम मिल-कर (ईजानं) यज्ञ करनेवाले को (सुकृतां लोके) श्रेष्ठ कर्म करनेवालों के लोकमें (धत्त) धारण करो अर्थात् वहां उसे ले जाओ।

अग्नि और पितरोंका एक विशेष संबन्ध प्रतीत होता है। यह संबन्ध कैसा व क्या है इस पर वि-स्तारसे विचार आगे 'अग्नि व पितर' इस शीर्षक के नीचे करेंगे। यहां पर तो सिर्फ पितृयाण मार्ग से ही मतलब है। इसी शीर्षक में आगे हम दिखा-एंगे कि अग्नि पितृयाण मार्ग को भी जानता है।

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिः यत्रा नः पूर्वे पितरः
परेयुः। उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं
पश्यासि वरुणं च देवम्॥ ऋ. १०।१४।७॥

यही मंत्र थोडसे पाठभेद से अथर्व वेद में निम्न प्रकारसे आया है-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्याणैः येना ते पूर्वे पितरः परेताः। उभा राजाना स्वधया मदन्तौ यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ॥ अथर्व० १८।१।५४ ॥

अर्थ- (यत्र) जहां (नः पूर्वे पितरः) हमारे पूर्व पितर (परेयुः) गए हुए हैं, वहां (पूर्व्येभिः पथिभिः) पहिलेके मार्गों द्वारा (प्रेहि प्रेहि) तू जा। वहां (स्वधया) स्वधासे (मदन्तौ) तृप्त होते हुए (उभौ राजानौ) दोनों राजा (यम वरुणं देवं च) यम और वरुण देव को (पश्यासि) देख।

इन उपरोक्त मंत्रोंसे पता चलता है कि पितरोंके जाने के मार्ग पितृयाण के नाम से प्रख्यात हैं। इस के सिवाय एक मंत्र ऐसा भी है जिसमें कि पितृयाण मार्ग से आनेका भी उल्लेख पाया जाता है।

आ यात पितरः सोम्यासो गंभीरैः पथिभिः पितृयाणैः। आयुरस्मभ्यं दधतः प्रजां च रायश्च पोषैरभि नः सचध्वम् ॥

अथर्व० १८।४।६२॥

अर्थ- (सोम्यासः पितरः) हे सोमपान करनेवाले पितरो ! (गंभीरैः) गंभीर (पितृयाणैः पथिभिः) पितृयाण मार्गों से (आ यात) आओ। (अस्मभ्यं आयुः, प्रजां च रायः च दधतः) हमारे लिए आयुष्य, प्रजा तथा धनसंपत्ति दो। (पोषैः) अन्य पुष्टियों से (नः) हमें (अभिसचध्वं) चारों ओर से युक्त करो।

इस मंत्र में पितरों के पितृयाण से आकर आयु प्रजा आदि देनेका उल्लेख है। इसके अतिरिक्त निम्न मंत्र में भी पितृयाण का उल्लेख मिलता है।

अनृणा अस्मिन्ननृणाः परस्मिन् तृतीये लोके अनृणाः स्याम। ये देवयानाः पितृयाणाश्च लोकाः सर्वान् पथो अनृणा आ क्षियेम।

अथर्व० ६।११७।३॥

अर्थ- (अस्मिन्) इस लोक में हम (अनृणाः) ऋण रहित होवें। (परस्मिन्) पर लोक में (अनृणाः) हम अनृण होवें। तथा (तृतीये लोके) तीसरे लोकमें (अनृणाः) ऋणरहित (स्याम) होवें। (ये देवयानाः पितृयाणाः च लोकाः) जो देवयान व पितृयाण मार्ग हैं उन (सर्वान् पथः) सब मार्गों में (अनृणाः) ऋणरहित हुए हुए (आ क्षियेम) विचरण करें।

इस लोकमें दो प्रकारका ऋण है। (१)भौतिक-धन, सोना आदि आदि उधार लेना। (२)वैदिक-"जायमानो ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणवान् जायते। ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः इति" तै. सं. ६।३। १० । ५ ॥ अर्थात् तीन प्रकारका वैदिक ऋण पैदा होते ही मनुष्य पर चढता है। वह तीन प्रकार का ऋण ऋषिऋण, देवऋण तथा पितृऋण है। ब्रह्मचर्यके पालन से ऋषिऋण उतरता है, यज्ञ करनेसे देव ऋण उतरता है तथा संतानोत्पत्ति से पितृऋण से मनुष्य मुक्त होता है।

निम्न मंत्र पितृयाण मार्गका उल्लेख करते हुए यह भी दर्शाते हैं कि कौन पितृयाण मार्गको जानता है। और कौन नहीं।

यं त्वा द्यावा पृथिवी यं त्वापस्त्वष्टा यं त्वा सुजनिमा जजान। पन्थामनु प्र विद्वान् पितृयाणं द्युमदग्ने समिधानो विभाहि ॥ ऋ० १०।२।७ ॥

इस मंत्रका देवता अग्नि है। अग्निको संबोधन करके कहा जा रहा है-

अर्थ-हे अग्ने!(यं त्वा)जिस तुझको(द्यावा पृथिवी) द्युलोक और पृथिवीलोक क्रमशः अग्नि और आदित्य रूपसे पैदा करते हैं और (यं त्वा) जिस तुझको (आपः) जल विद्युत् रूपसे पैदा करते हैं, और (यं त्वा) जिस तुझको (सुजनिमा) उत्तम उत्पादक (त्वष्टा) प्रजापति (जजान) उत्पन्न करता है, वह तू (पितृयाणं पंथां) पितृयाण मार्गको (अनु प्र विद्वान्) अच्छी प्रकारसे जानता हुआ (समिधानः) सुप्रज्वलित किया हुआ (द्युमत्) दीप्तिवाला होता हुआ (विभाहि) प्रकाशमान हो।

इस मंत्रमें अग्निको पितृयाण मार्गका जाननेवाला बताया गया है। हम पूर्वही निर्देश कर आए हैं कि अग्नि व पितरोंका विशेष संबन्ध है। उस संबंध पर विशेष विचार आगे किया जाएगा। अग्निको छोडकर और कौन पितृयाण मार्ग जानता है यह निम्न मंत्र दिखाता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

स य एवं विदुषा व्रात्येनातिसृष्टो जुहोति। अथर्व० १५।१२।४ ॥ प्र पितृयाणं पन्थां जानाति प्र देवयानम् ॥ अथर्व० १५।१२।५ ॥

अर्थ- (सः यः) वह जो (एवं) उपरोक्त प्रकारसे (विदुषा व्रात्येन) विद्वान् सत्यव्रती अतिथिसे (अतिसृष्टः) आज्ञा दिया हुआ (जुहोति) होम करता है। वह (पितृयाणं पन्थां) पितृयाण मार्ग को (प्रजानाति) अच्छी प्रकार जानता है और वह (देवयानं) देवयान मार्ग को भी अच्छी प्रकार जानता है।

इसके प्रतिकूल -

अथ य एवं विदुषा व्रात्येनानतिसृष्टो जुहोति॥ अथर्व० १५।१२।८ ॥ न पितृयाणं पन्थां जानाति न देवयानं ॥ अथर्व० १५।१२।९ ॥

जो उपरोक्त प्रकारसे (विदुषा व्रात्येन) विद्वान् व्रात्यसे (अनतिसृष्टः) न आज्ञा दिया हुआ (जुहोति) होम करता है। वह (न पितृयाणं पन्थां प्रजानाति) न तो पितृयाण मार्ग कोही भली भांति जानता है और नहीं (देवयानं) देवयान मार्गको जानता है।

अब पितृयाण मार्ग किसे प्राप्त नहीं होता यह नीचे दिया हुआ मंत्र बताता है। मंत्र इस प्रकार है-

देवपीयुश्चरति मर्त्येषु गरगीर्णो भवत्यस्थिभूयान्। यो ब्राह्मणं देवबन्धुं हिनस्ति न स पितृयाणमप्येति लोकम् ॥ अथर्व० ५।१८।१३ ॥

अर्थ-(देवपीयुः गरगीर्णः मर्त्येषु चरति) देवोंकी हिंसा करनेवाला जहर खाया हुआसा मनुष्योंमें विचरण करता है। वह (अस्थिभूयान् भवति) हड्डियोंकी बहुतायतवाला होता है, अर्थात् शरीरमें मांसादिके न रहनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि मानो इसके शरीरमें हड्डियां ही हड्डियां हैं और अतएव देखनेमें सिवाय हड्डियोंके और कुछ नहीं दीखता। (यः) जो (देवबन्धुं ब्राह्मणं हिनस्ति) देवोंके बन्धु ब्राह्मणकी हिंसा करता है (सः)वह (पितृयाणं लोकं) पितृयाण मार्गको (अपि) भी (न एति) नहीं प्राप्त होता।

इस प्रकार हमें इतने मंत्रोंसे पता चलता है कि पितृयाण एक खास मार्ग है जिससेकि पितृगण एक लोकसे दूसरे लोकमें आते जाते हैं। अब वह मार्ग कौनसा है यह प्रश्न हमारे सामने उपस्थित होता है। इस प्रश्नपर थोडासा प्रकाश निम्न मंत्र डाल रहा है। इस पर थोडासा प्रकाश अग्नि व पितरके प्रकरणमें भी डालेंगे। मंत्र इस प्रकार है -

आ भरतं शिक्षतं वज्रबाहू अस्माँ इन्द्राग्नी अवतं शचीभिः। इमे नु ते रश्मयः सूर्यस्य येभिः सपित्वं पितरो न आसन् ॥

ऋ १।१०९।७ ॥

अर्थ-(वज्रबाहू इन्द्राग्नी) बलवान भुजाओं वाले इन्द्र और अग्नि (अस्मान् आभरतं) हमारा अच्छी प्रकार भरण करें, (शिक्षतं) शिक्षा दें, और (शचीभिः अवतं) अपनी शक्तियोंसे हमारी रक्षा करें। (नु) निश्चयसे (सूर्यस्य इमे ते रश्मयः) सूर्यकी ये वे किरणें हैं (येभिः) जिनसे कि(नः) हमारे (पितरः) पितर (सपित्वं आसन्) सपित्व हैं।

यहांपर आया हुआ सपित्व शब्द बडे महत्व का है। इसीपर थोडासा विशेष विचार करेंगे क्यों कि जो कुछ परिणाम निकाला जासकता है वह इसी पर आश्रित है। सपित्वं- 'पि=गतौ' धातुसे औणादिक त्वन् प्रत्यय करनेसे पित्व बनता है। 'समानं च तत् पित्वं च इति सपित्वं' अथवा 'सह पित्वं सपित्वं।' गतिके तीन अर्थ हो सकते हैं ज्ञान,गमन और प्राप्ति। इस प्रकार इस शब्दके तीन अर्थ हो सकते हैं। (१) सहगमन, (२) सहप्राप्ति (३) सहज्ञान। सहगमन और सह प्राप्ति में विशेष भेद नहीं है क्योंकि सह गमन से सह प्राप्ति होती है। अब हमारे सामने दो पक्ष शेष रहते हैं (१) सहगमन वा सह प्राप्ति और (२) सहज्ञान। इन दो पक्षोंमें से कौनसा अर्थ लेना चाहिए यह विचारना है।

निरुक्तकार यास्काचार्य ने निरुक्त अ० ३, पाद ३, खण्ड १४ में 'कुहस्विद्दोषा कुहवस्तो रश्विना' इत्यादि ऋ. १०।१४।२ ॥ की व्याख्या करते हुए 'कुहाभि पित्वं करतः' इस पद समुदाय में आए हुए अभि पूर्वक पित्व शब्द का अर्थ 'प्राप्ति' ऐसा किया है। वे 'कुहाभिपित्वं करतः' का अर्थ करते हैं 'क्वाभि प्राप्तिं कुरुथः'।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सायणाचार्य ने सपित्वं का अर्थ 'सह प्राप्तव्यं स्थानं' ऐसा किया है। सह शब्द उपपद रखके 'आप्लृव्याप्तौ' धातुसे 'कृत्यार्थे तवैकेन्केन्यत्वनः' इस सूत्रसे 'त्वन्' प्रत्यय करके 'पृषोदरादीनि यथो. पदिष्टं' से पिभाव करके सपित्व शब्द व्याकरणानुसार सिद्ध किया है। सायणाचार्य सपित्व की सिद्धि अन्य रीतिसेभी करते हैं। 'षप समवाये' इस धातुसे 'इन् सर्वधातुभ्यः' से इन् करने से सपि शब्द बना। सपेर्भावः सपित्वं। अर्थ वही उपरोक्त।

इन दो उपरोक्त आचार्यों के मतानुसार सपित्व का अर्थ सह गमन वा सह प्राप्ति है। हम ऊपर पितृलोक के मंत्रों में देख आए हैं कि पितर द्युलोकमें पितृयाण मार्ग से जाते हैं। और यहां इस मंत्र में हम पाते हैं कि पितर सूर्य किरणों के साथ जाते हैं और उनके साथ वहां पहुंचते हैं। अतः इस से हम इस परिणाम पर पहुंच सकते हैं कि पितर पितृयाण द्वारा पितृलोक में जाते हैं और वह पितृयाण मार्ग संभव है 'सूर्य किरणें' हों। इस पितृयाण मार्ग पर विशेष प्रकाश 'अग्नि व पितर' इस प्रकरण में डाल सकेंगे ऐसी हमें आशा है। यहां पर यह संकेत रूपमें लिखा है। पितृयाण मार्ग विशेष विचारणीय है अतः इसके विषय में एकदम निश्चय पूर्वक कहना कठिन है। पाठक गण इसपर विचारकर कुछ सहायता करेंगे तो अच्छा होगा।

हिंदू समाज समर्थ कैसा बनेगा ?

(ले० - श्री० पं. महादेव शास्त्री दिवेकर। अनुवादक — पं. भोलानाथ राव)

हिंदूसमाज में जातिमत्सर, वर्णमत्सर, अस्पृश्यता इत्यादि दुर्गुण भरे हुए हैं इन्हीं कारणों से हिंदुओं के समाजबल की वृद्धि नहीं होती उसी प्रकार से कुछ बुराइयें और भी हैं जो कि मनोदौर्बल्य उत्पन्न करते हैं। इन सब बातों को दूर करके हिंदू समाज के लिये स्वर्गस्थिति प्राप्त करा देना ही प्रत्येक हिंदु का मुख्य कर्तव्य है। अब हिंदू समाज को विशेषतया सामाजिक स्वर्ग की ओर ही लक्ष रखना चाहिये। दिन प्रतिदिन अब समाज की ऐसी हीन अवस्था होती जा रही है कि स्वर्ग की वैयक्तिक कल्पना को तिरस्कार करके सामाजिक बल बढाने ही में स्वर्ग समझना चाहिये। धृत्युत्साहसमन्वित होकर निरभिमान वृत्तिसे अखंड कार्यतत्परता ही वैयक्तिक स्वर्ग है। सामाजिक स्वर्ग के लिये वैयक्तिक स्वर्ग को भी उसी कार्यरूपमें परिणित करने का सहर्ष प्रयत्न करना चाहिये।

समष्टि धर्म का सातवाँ तत्व हिंदूसमाज में समाजबंधुत्व के भाव को प्रचार करना है। हिंदुओं को भली भांति यह देख लेना चाहिये कि हमारे भाई बंधु कौन हैं ? हमारे संस्कृती का कौन है ? हमारे देव धर्मों पर प्राण निछावर करने के लिये कौन तयार हैं ? यह सब विचार कर सर्व व्यवहार हिंदूभाईयों से ही करना चाहिए। प्रत्येक हिंदु को हिंदुओंका ही वातावरण होना चाहिये। और ईश्वर से यही प्रार्थना करना चाहिये कि संसार में हिंदूधर्म की ही वृद्धि हो।

हिंदूसमाज में समाजबंधुत्व की अपेक्षा विश्वबंधुत्व का ही विशेष प्रचार है। विश्वबंधुत्व समाज की समर्थावस्थामें उपकारक होता है परंतु दुर्बल को विश्वबंधुत्व के तत्व को अंगीकार करना महान घातक है। समाज की उन्नति समाजबंधुत्व से ही होती है। हिंदुसमाज में कुटुंबबंधुत्व और जातिबंधुत्व तो है परंतु समाजबंधुत्व किंचित मात्र भी नहीं। हिंदू समाज की ऐसी आदत पड गई है कि जब तक स्वार्थ होता है तब तक उसकी ओर लक्ष रहता और जहाँ वह छूटा कि परमार्थ का विचार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

आ झपटता है इसी प्रकार जब तक शरीरपर प्रेम रहता है तब तक रहता है, उससे यदि मन त्रस्त हुआ कि वृत्ति एकदम देवता की ओर उलट पडती है। देह और देव की बीच में देशका स्थान है। कुटुंब बंधुत्व और विश्वबंधुत्व के बीच में समाज बंधुत्व है यह हिंदु समाज को ज्ञान नहीं है। विश्व-बंधुत्व की कल्पना को दूर करके समाज बंधुत्व के सद्यः फलदायी तत्वज्ञानको ग्रहण करना चाहिये। हिंदू नाम मात्र परही उसकी मदत करना, हिंदू स्त्री पर यदि किसीने भी हाथ उठाया, मूर्तीका अपमान किया, समाज का अपमान किया कि उसकी रक्षाके लिये प्राण दे देना भी उत्तम है ऐसे भाव हिंदूसमाजमें प्रकट होने चाहिये। जो हिंदू समाज को दुःख देते हैं, उसके संग जबरदस्ती करते हैं उनको भली भांती मुंह तोड उत्तर देना चाहिये तथा उनसे व्यवहार बंद कर देना चाहिये। श्रीमंत सेठ साहुकारों को भी अपने घरके किसी व्यवहारमें भी परधर्मीयों का संबंध वर्जित करना चाहिये। मोटर ड्राइवर, क्लीनर, तगादेवाले, चपरासी, पट्टेवाला, माली, नाई, धोबी, बागवान, राज, बढई, ग्वाला, दुकानदार, टांगेवाला, कुली, कलईवाला, चूडीवाला, फेरीवाला, सुनार, लोहार विशेष क्या जो जो अनेक व्यवहार व्यवहारमें वर्तने पडते हैं वे सब समाजबंधुत्वकी दृष्टिसे हिंदुओंसे ही बर्तने चाहिये। साहूकारों के दुकानोंमें व घरमें अच्छेसे अच्छे व्यवहार अहिंदु लोग ही करते हैं। घर की औरतों तक इनकी पहुंच होती है। यह इतनी बुरी प्रथा है कि उसका वर्णन न करना ही अच्छा है। दिल्लीमें ३१-१२-२६ के दिन तबलीक परिषद जमी हुई थी। उसके अध्यक्षने मुसलमानों को समाज-बंधुत्व का दिग्दर्शन करा कर हिंदुओंका बहिष्कार करनेके लिये इन शब्दोंमें प्रतिपादन किया--

"That Muslims should take a vow to buy all the requirements from the Muslims alone."

उपर कथित शब्दोंसे साधारणसे साधारण मनुष्य भी यह भली भांति समझ सकता है कि मुसलमान जाति समाज बंधुत्वमें कितनी दक्ष है। हिंदुओंको भी इसका प्रत्युत्तर कार्यरूपमें देना चाहिये। "To buy all the requirements from the Hindus alone" ऐसा कहकर मोहर्रमके त्यौहार का बहिष्कार करना चाहिये। मुसलमान टांगेवाला, जुलाहा, कुली, राज, ग्वाला, धोबी, कलईवाला इन सबका बहिष्कार करके इनके स्थानपर हिंदुओं का वर्ग निर्माण करना चाहिये। वास्तविक धंदों को करनेवाले हिंदुओं में भिन्न भिन्न वर्णव्यवस्था होने से मुसलमानों की बिलकुल भी आवश्यकता नहीं है; फिर विनाकारण परधर्मीयों का संग कैसा? हिंदुओं को सर्व व्यवहार हिंदुओं से करने में द्वेष, तिरस्कार किंवा हिंसा की कोई बात नहीं है। इसमें समाजबंधुत्व व एकता ही से तात्पर्य है। हिंदूसमाजमें समाजबंधुत्व पैदा करने का सबसे बडा उपाय अहिंदुओं से व्यवहार संबंध जोडना ही है। नागपूर ऐसे शहर में भी कलईवाले, फेरीवाले, लोहर इत्यादि बेचने वाले, छतरी ताली बेचनेवाले तथा आतशबाजी बेचनेवाले सब मुसलमान ही हैं। पहले अकोला में सर्व टांगेवाले मुसलमान ही थे, अब कुछ टांगे हिंदुओं के भी हो गए हैं। सहारा जिले में कराहाड व मध्यप्रांत जिलेके बुन्हानपुर में शायद ही कोई हिंदू टांगा वाला मिले। बन्हाणपूर, मालेगांव इत्यादि स्थानों में हिंदु जुलाहे शायद ही कहीं हो पर मुसलमान प्रत्येक स्थानपर दिखते हैं। वैसे ही बहुतसे गांवों मे राज भी मुसलमान ही हैं। बैंड बजाने का करोबार भी मुसलमानोंने अपने हाथ में ही कर रखा है। शराब व गोले बारुद की दुकान करनेवाले लोग शायद ही कहीं हिंदु हों। बहुत से जगहों में तो पटवे, तंबोली, बागवान जुलाहे, मोटरवाले भी मुसलमान ही हैं। इन कार्यों को करनेवाले मुसलमानों को छोडकर हिंदु दिखलाई ही नहीं देते। कितने ही स्थानों पर नाई, धोबी बढई सोनार बसफोड इत्यादि हरप्रकारके धंदे करनेवाले मुसलमान लोग हिंदू रोजगारियों पर अपनी प्रभुता बढाकर हिंदू समाज पर चढाई कर रहे हैं। यः कश्चित चुडिहारोंका धंदा तो ५० फीसदी मुसलमानों के हाथ ही में है। कितने ही गांवों में मुसलमानों ने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ऐसा प्रयत्न कर रखा है कि मुसलमान समाज का पैसा हिंदु धंदेवाली स्त्रियों * को मिले ही नहीं। छोटे से छोटा कार्य, मध्यम कार्य तथा उच्च कार्य सबमें अपना हाथ बढाने के कारण मुसलमान लोग शनैः शनैः हिंदुओंपर अपना प्रभुत्व स्थापित कर रहे हैं। महाराष्ट्र केन्द्र पूना ऐसे शहर में लग्न कार्य (विवाह) में मंडप बनाने का कार्य भी मुसलमान ही करता है। कितने ही तालुकों में तो मुसलमान के सिवाय दूसरा ग्वाला मिलता ही नहीं। ब्राह्मणेतर समाज पर मुसलमान पठान की साहुकारी इतनी उत्कृष्टता से चलती है कि उतनी किसी की भी नहीं चलती होगी। हिंदुओंके बहुतसे उद्योग धंदे तो पहले अंगरेजों ने ही आत्मसात कर लिये और जो कुछ बाकी बचे हैं उनका अपहरण मुसलमानों द्वारा हो रहा है। ऐसे समय में हिंदुओं को सब रोजगार अपने ही हाथ में ले लेना चाहिये। विशेषकर सुशिक्षित हिंदुओं को किसी भी रोजगार से नहीं हटना चाहिये। चाहे जो रोजगार हो उसे करने के लिये जब हिंदूलोग अग्रसर होंगे तभी हिंदूसमाज का आर्थिक न्हास कम होगा। बेकार सुशिक्षित हिंदू तरुण समाज यदि किंचित मात्र भी व्यापार का निरीक्षण करे तो उन्हें २५) से लेकर २००) मासिक तक की प्राप्ति के सैकडों रोजगार मिल सकते हैं। जब मुसलमान लोग हिंदुओं के रोजगार के नष्ट करने के लिये बद्धपरिकर हुए हैं तो क्या हिंदुओं को भी उन्हें (जैसे को तैसा) का व्यवहार कर के नहीं दिखलाना चाहिये ? ध्वनि से प्रतध्वनि, सेर को सवासेर, आघात करनेवाले को प्रत्याघात ऐसा सृष्टि का धर्म है। इस धर्म का अनुसरण करके हिन्दूसमाज के जीवन के मार्ग को सुव्यवस्थित बनाना चाहिये। प्रत्येक हिंदू को समाजबंधुत्व की दृष्टि से ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि सर्व उद्योग, धंदे, रोजगार, कलाकौशल हिंदुओं के ही हाथ में आ जांय। मंगलकार्य में मुसलमानों से बैंड बजवाना क्या अधर्म नहीं है। धर्मकार्य व मंगलकार्य में म्लेच्छों से सम्बन्ध रखने की कोई आवश्यकता नहीं। यदि बैंड बजवाना ही हो तो हिंदू बैंडवाला होना अत्यावश्यक है। मंगल कार्य के मंडप हिंदू लोग ही तय्यार करें, अहिंदुओं का वहाँ दर्शन भी नहीं होना चाहिये। मुसलमान दूधवाले के दूध में न मालूम क्या मिला हो, दूध निकालने के बर्तनों में उसने न मालूम कौन कौन सा घृणित पदार्थ बनाया होगा यह कहा नहीं जा सकता; इसलिये हिंदुओं को मुसलमानों के संग खाद्यविषयों का सम्बन्ध तो बिलकुल नहीं करना चाहिये। हिंदू स्त्रियों के हाथ में गोभक्षक मुसलमान लोग चूडी पहनाते हैं इससे और लज्जास्पद स्थिति क्या हो सकती है ? गोमांसभक्षक मुसलमानों के हाथ से चूडियें कभी भी न पहिनना चाहिये परंतु वह हिंदु चूडी पहनानेवाली के यहाँ ही पहिनना चाहिये। किंवा स्वतः ही पहन लेना सब से उत्तम है। दीपावली के उत्सव में पटाके फुलजरी इत्यादि बारुद के खेलों को भी हिंदुओं के ही यहाँ से खरीदना चाहिये। प्रत्येक हिंदू बालकों को भी प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि बारुद का सामान हिंदू दूकान पर नहीं मिलता है तो हमें उसकी आवश्यकता नहीं। जिन वर्तनों में हम खाते हैं उनमें कौन कलई करता है। जिन बैठकों मे हम बैठते हैं उनका निर्माणकर्ता कौन है, जिस दूध का हम उपयोग करते हैं वह कहाँ से आता है, जिस भाजी' फलफूल, पान का हम उपयोग करते हैं वह हिंदू के यहाँ की हैं या नहीं इसकी खोज समय समय पर अवश्य ही करनी उचित है। देवताओं पर फूल चढाना आवश्यक अवश्य है पर यदि वे गोभक्षक के हाथों से स्पर्शित हैं तो वे देवताओं पर कैसे चढ सकते हैं। इन सब बातोंपर जब हिंदू समाज का विचार होगा तभी समाज बंधुत्व का तत्व हिंदूलोग समझेंगे और तभी समाजबल की वृद्धि होगी।

देशकाल परिस्थिति के अनुसार किसी भी अर्थोत्पादक धंदा करनेमें किसी प्रकार का शास्त्रीय

* सूचना-मुसलमान लोग हिंदु स्त्रियों का हाथ पकडकर चूडी भरते हैं यह दृश्य कितना शोकजनक है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

रोक टोक नहीं है, कहीं स्फूर्ति का अभाव तो कहीं धर्मशास्त्र की अडचन व कहीं मन की अस्थिरता इन्हीं कारणों से हिन्दूसमाज का गला दबाया जाता है। मुसलमानों का मुंह इतना बडा है कि उसमें कुछ भी समा सकता है और हिंदुओंका इतना संकुचित कि उसमें कुछ भी नहीं आता ! सारांश यह है कि हिंदूसमाज इन्हीं कारणों से ही पिछडा हुआ है परन्तु मुसलमानों को किसी प्रकार की रोक टोक नहीं है इसी से वे लोग सब कामों में अग्रसर दिखाई पडते हैं।

हिंदू समाज की अशिक्षित मंडली एकदम से नए नए धंदों और रोजगारों में आगे नहीं बढ सकती। ऐसे समय में सुशिक्षित हिंदू तरुणों को ही अग्रसर हो कर आधुनिक स्थिति में नवीन धंदों का प्रचार करना चाहिये। यदि हमें सर्व व्यवहार हिंदुओं के बीच ही में करना है तो जिस प्रकार हमें अहिंदुओं का संबंध त्याग करना आवश्यक है उसी प्रकार हिंदुओं में अनेक प्रकार के धंदे करनेके लिये (जो की अबतक मुसलमान लोग करते थे) उत्साह बढाना चाहिये। प्रत्येक धंदों में हिंदू ही हिंदू दिखलाई दें। हिंदूसमाज के साथ रहकर उन्हीं के पैसे पर वृद्धि करके और उन्हीं पर चढाई करनेवाले मुसलमान समाज को नीचा दिखलाने और समाज में उद्योग धंदों की वृद्धि करनेका एक मार्ग समाजबंधुत्व ही है। गांव का यदि एक आध बैल मस्त हुआ कि लोग उसको चारापानी देना बंद कर देते हैं तभी वह शीघ्रही रस्ते पर आ जाता है। हिंदुओं ने समाज बल बढाकर उद्योग धंदों का प्रचार कर के सर्व व्यवहार हिंदुओं के बीच ही में हो ऐसा यदि निश्चय कर लिया तो मुसलमान समाज बात की बात में अपने हाथ में आजायगा। समिष्ट धर्म के समाजबंधुत्व का तत्व हिंदूसमाज के नस नस में जितनी ही शीघ्र मिलेगा उतनी ही शीघ्र यह कार्य सफल होगा।

समष्टि धर्म का आठवें तत्वानुसार भविष्यमें हिंदु-समाज का तत्वज्ञान चढाई और आक्रमशील ही होना चाहिये। कोई भी समाज चढाई के तत्वज्ञान ही से जयिष्णु होता है। समाजवृद्धि सहनशीलता द्वारा कभी भी संभव नहीं है। सहिष्णुता व बचाव मुमूर्षू समाज में ही विशेषकर पाई जाती हैं परंतु जीवित समाजका तत्वज्ञान उससे बिलकुल भिन्न होता है। हिंदूधर्म सहिष्णु है, सहिष्णुत्व हिंदू समाज का प्रधान स्वभाव है ऐसा जो कहा जाता है सो वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए ठीक ही है। परंतु हिंदुसमाज जिन भिन्न भिन्न वंशोंसे बना है उनमें से आर्यवंश तो जयिष्णु स्वभाव का है। हिंदुस्थान में तथा अन्य स्थानों में स्थान स्थान पर अर्यों की संस्कृति का अवशेष मिलता है उनसे यही सिद्ध होता है कि आर्यजाति आक्रमशील थी। क्यों कि यदि वे लोग ऐसे न होते तो उनकी संस्कृति का अवशेष मिलना कठीन था। सारांश यह है कि हिंदुओं को आर्यों के चढाई के तत्वज्ञान की अवश्यकता है।

वर्तमान स्थिति में हिंदुओं के सन्मुख दो सिद्धान्त है। पहिला 'शठं प्रति शाठ्यं और दूसरा 'शंठ प्रति सत्यं'। इन्हीं दो सिद्धांतों द्वारा संसार में व्यवहार का प्रतिपादन होता है। इन दोनों सिद्धांतों का उपयोग सब जगह एक ही प्रकार से हो ऐसा नहीं हो सकता। कारण कि कोई शठ मनुष्य सत्य से वश में होता है तो दूसरा विना शाठ्यता का व्यवहार किये ठीक ही नहीं होता। अर्थात् कहने का तात्पर्य यह है कि मनोवृत्ती द्वारा शाठ्य किंवा सत्य यह दोनों उपयोगों का समयानुसार कार्य में लाना पडता है। सब धान बारा पसेरी वाला सिद्धान्त नहीं चल सकता परंतु चढाई की निपुणता की दृष्टिसे यह दोनों तत्व कुछ काम के हैं। 'शठं प्रति शाठ्यं' और 'शठं प्रति सत्यम्' यह दोनों सिद्धान्त शठकी शठता को दूर ही करने के लिये हैं, अर्थात दुष्ट लोगों के उपद्रव करने पर या तो उनके प्रति शाठ्यता का व्यवहार करके उन को हटाया जाय अथवा सत्यता का व्यवहार करके। दोनों सिद्धान्तों का मुख्य उद्देश्य अपने को बचाना ही है। उपर कहे हुए सिद्धान्तों के विषयमें हमे यही विचार करना है कि यदि कोई मनुष्य हमें मूंहपर दो तमाचे लगाकर जाता है तो उसे सहन करके उसका बचाव करना चाहिये अथवा उसके उत्तर में उसको भी दो तमाचे जमाकर। इन दोनों तत्वों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

में पहले हम मारें या तुम मारो ऐसी बात नहीं है।

हिंदु समाज में पहले अग्रसर अरोपी होने तथा प्रतिवादी होनेका तत्वज्ञान आना चाहिये। हिंदू-समाज के पास संसार को बतलाने लायक बातें बहुत हैं इस कारण उसे अभिनिवेशसे वैसा तत्व ज्ञान निर्माण करना चाहिये। दूसरोंके प्रथम अग्रसर करनेपर उनसे कैसा व्यवहार करना चाहिये इस बात पर विचार करनेवाला समाज संसार में बहुत दिवस तक जीवित नहीं रह सकता।

अब हम समष्टि धर्मकी चार पांच और मुख्य मुख्य बातें बतलाकर हम इस प्रकरणको समाप्त करते हैं।

१ समष्टि धर्म की आज्ञानुसार प्रत्येक हिन्दू स्त्री पुरुष को प्रतिदिवस स्नान, सायं प्रातः सूर्योपासना व गीताके श्लोकों को अवश्य ही पढना चाहिये। प्रत्येक मनुष्य को अपनी इच्छानुसार व्यष्टिधर्म की पूर्ण स्वतंत्रता है। धर्म,जाति,पंथ व आचार इत्यादि व्यष्टि धर्म में किसी को किसी प्रकार की रोकटोक नहीं है केवल इतना ही देखना चाहिये कि प्रत्येक हिंदू समष्टि धर्म का पालन करता है या नहीं। इस देश के जल वायु को देखते हुए प्रत्येक हिंदू मात्र को प्रति दिवस अवश्य ही स्नान करना अपना मुख्य धर्म समझना चाहिये। केवल बीमार लोग इस नियमसे पृथक हो सकते हैं परंतु दूसरे लोगों के लिये इससे भागने का कोई मार्ग नहीं हैं स्नानोत्तर प्रातःकाल व सायंकाल गायत्री मंत्र का प्रवर जप करके गीता पाठ भी करना चाहिये।

२ हिंदूसमाज में बहुत से त्योहार पढते हैं पर सामुदायिक दृष्टि से किसी भी त्योहार का पालन नहीं होता। वर्षप्रतिपदा, विजयादशमी और मकर संक्रान्त यह तीन त्योहार सर्व हिंदू स्त्री पुरुषों को सामुदायिक स्वरूप से मनाना चाहिये। संक्रांत के तिलगुड का समारंभ तो बहुत सी जगह होने लगा है उसी प्रकार वर्षप्रतिपदा को पंचांगश्रवण और लिंब भक्षण होना चाहिये तथा स्त्रियों को आपस में हळदकुंकू करना चाहिये। सामाजिक व राष्ट्रीय दृष्टिसे विजयादशमी भी बडा महत्वपूर्ण त्योहार है। सर्व हिंदुओं को सामुदायिक पद्धति से इस सन को मनाना चाहिये। प्रेम, ऐक्य, सहकार्य इन गुणों के उत्पन्न करने के लिये यह त्योहार बडा उपयोगी है। समष्टि धर्म में दृढता पैदा करने के लिये उपर कहे हुए त्यौहारों की महान आवश्यकता है।

३ समष्टि धर्म के अनुसार प्रत्येक हिन्दूको गौ व तुलसी अत्यंत पूज्यनीय हैं। गौकी उपयुक्तता हिंदू-समाज में कितनी है यह यहाँ बतलाने की आवश्यकता नहीं है। इस विषय पर अनेक गोभक्तों ने बहुत कुछ कहा है। तुलसी यह वनस्पति भी सर्व दृष्टिसे अत्यंत उपयुक्त है इस कारण परंपरानुसार उसे भी पूज्य समझना चाहिये।

४ सर्व हिंदू स्त्री पुरुषों को महीने में कम से कम दोवार अर्थात अमावस्या व पूर्णिमा को एकत्र होकर सामुदायिक वैदिक प्रर्थना करनी चाहिये। इस प्रार्थना में प्रत्येक हिंदू स्त्री पुरुष को भाग लेना चाहिये। प्रार्थना का अर्थ भाषा में बतलाना चाहिये। इसके अनन्तर प्रतिदिवस के लिये भी खेल, भजन, श्रवण प्रार्थना इत्यादि कुछ न कुछ व्यवस्था करनी चाहिये जिससे सब लोग एक स्थान पर एकत्रित हों। शहरों की अपेक्षा यह कार्य गावों में शीघ्र ही साध्य होगा। वहाँ की परिस्थिती के अनुसार गांवके लोगों को दूसरा उपक्रम करना चाहिये।

५ सर्व हिंदुओं को समष्टि धर्मानुसार आपस में एक दूसरे से मिलने पर नमस्कार तथा राम राम काही प्रयोग करना चाहिये न कि सलाम का।

६ सर्व हिंदु स्त्री पुरुषों को बोलाचाल की भाषा में भी शिष्ट शब्दों का ही प्रयोग करना चाहिये।

७ सर्व हिंदुओं को मृत माँ बाप का श्राद्ध करना चाहिये।

हिंदुसमाज के सामाजिक बलवृद्धि के लिये विवेचित किये हुए समष्टि धर्म की कितनी आवश्यकता है यह बतलाने की जरूरत नहीं है। इस कथित समष्टि धर्म को समाज में प्ररूढ करने के लिये तथा समाजबल वृद्धिके लिये हिंदुसमाज को क्या करना उचित है इसका विवेचन हम अगले प्रकरणों में करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बृहस्पति और तारा।

आकाशमें बृहस्पति नामका एक सितारा है, जिसको 'गुरु' भी कहते हैं। यह प्रसिद्ध सितारा है, जो रात्रीके समय पाठक देख सकते हैं। आकाशस्थ अन्य नक्षत्रोंमें "तारा अथवा तारका" नामका एक नक्षत्र है, रूपकसे समझा जाता है कि यह 'गुरु' की 'धर्मपत्नी' है, अर्थात् बृहस्पति की यह भार्या है। यहां धर्मपत्नी कहनेका तात्पर्य इतना ही है कि यह बृहस्पति इस नक्षत्रमें बहुत देरतक और इसके बहुत समीप रहता है। इसलिये इनकी आपसमें पतिपत्नीकी कल्पना की है। बृहस्पति का 'ब्रह्मणस्पति' भी दूसरा नाम वेदमें है। इसका अर्थ 'ज्ञानी गुरु' होनेसे इसका वर्ण ब्राह्मण माना गया, अर्थात् इसकी धर्मपत्नी होनेसे तारा भी "ब्राह्मणी, गुरुपत्नी अथवा ब्रह्मजाया," कहलाती है। इस प्रकार यहां एक ब्राह्मण परिवार की कल्पना हुई। यह बृहस्पति देवोंका गुरु है और जब आकाशमें देवोंकी सभा रात्रीके समय लगती है, उस समय यह देव गुरू उसमें विराजते हैं और मानो, देवोंको सुयोग्य सलाह देते हैं।

इसी प्रकार राजा सोम भी देवसभामें उपस्थित होते हैं। इस समय ये एक क्षत्रिय राजा माने गये हैं। ये क्षत्रिय राजा अपनी राज्याधिकारकी धुंदमें अनेक तारागणोंसे संबंधित होते हैं अर्थात् अनेक स्त्रियोंसे संबंध करते हैं। इस अत्याचारके कारण उनको क्षयरोग होता है। इस अनाचारके कारण बिचारे राजासाहेब क्षीण होते जाते हैं, अमावास्याकी रात्रीमें तो इनकी हालत बहुत खराब होती है। उस समय कुछ उपचार के करनेपर शुक्लपक्षमें कुछ पुष्ट होने लगते हैं। ऐसी अवस्थामें गुरुपत्नी तारा का दर्शन होता है और उसका दर्शन होते ही क्षयी राजाका मन चञ्चल हो जाता है। राजा अपने शासनाधिकारके कारण उन्मत्त होनेके कारण गुरुपत्नीका गौरव और आदर न करता हुआ, उसका धर्षण करता है। इस प्रकार स्त्रीके पातिव्रत्यका नाश करनेके कारण जो पाप होता है, उस पापके कारण राष्ट्रमें बडा क्षोभ होता है। और सब प्रजा त्रस्त होजाती है। जहां गुरुपत्नीका इस प्रकार अपमान होता है, वहां अन्य स्त्रियोंके पातिव्रत्यका क्या होता होगा, ऐसा विचार करके अत्याचारी राजाका निषेध उपस्थित ऋषि और सदस्य देव करने लगते हैं। राजा अपने घमंडमें आकर विरोधक ऋषियों और देवोंको दबानेका यत्न करता है, इससे प्रजामें अधिक क्षोभ होता है। तत्पश्चात् राजा सोम देखता है कि अपनी प्रजा प्रतिकूल होगई है और अपनेको राज्यसे पदच्युत करनेका विचार करती है, इसपर प्रजाको अधिक दबानेके लिये असुर सेनाकी सहायता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

लेता है। और विदेशी असुर सेनासे अपनी प्रजाको दबानेकी चेष्टा करता है। इससे प्रजा अधिक क्षुब्ध होती है और बडी लडाई छिडती है। दोनों ओरका बहुत संहार होनेपर दोनों पक्षोंकी आपसमें कुछ सलाह होती है। इस संधिके अनुसार राजा सोम गुरुपत्नीको वापस करता है। उस समय वरुण और मित्र साथ रहते हैं और अग्नि मार्गदर्शक होता है। इस प्रकार चन्द्रमाको कलंक लग कर इस बुरे कर्मका फल उसको मिलता है।

इस समय सोम और तारा के संगमसे बुधकी उत्पत्ति होती है। तारा अग्नितापसे शुद्ध होकर फिर अपने घर पहुंचती है। इस प्रकारकी कथा बहुत पुराणोंमें है। इस विस्तृत कथाका कुछ मूल इस सूक्तमें दिखाई देता है। जिस प्रकार वृत्रकी कथा मेघ और सूर्य इस पर रूपकालंकार मानकर रची है, उसी प्रकार चंद्रमा, तारका, गुरु आदिके ऊपर यह बोधप्रद अलंकार रचा है। वेदमें इस प्रकारके अनेक अलंकार हैं। और उनसे अनेक प्रकारका बोध प्राप्त होता है।

यहां भी यह बोध मिलता है कि कोई राजा अपने अधिकारके मदसे उन्मत्त होकर स्त्रियोंपर अत्याचार न करे, यदि करेगा, तो उसको परमेश्वरके राज्यमें उसी प्रकार दण्ड मिलेगा जैसा कि सोम राजाको जन्मभर कलंकित होना पडा था। उसका अपमान हुआ, कलंकित होना पडा, रोगी होना पडा, राजविद्रोह हुआ, राष्ट्रमें बलवा होगया, और न जाने क्या क्या आपत्तियां आपडी होंगी। यदि इतने समर्थ सोम राजाकी यह अवस्था हुई, तो उसके बहुत छोटे पार्थिव राजाकी क्या अवस्था होगी। और यदि राजाकी ऐसी दुर्दशा होगई तो कोई प्रजाजन यदि ऐसा कुकर्म करेगा तो उसकी कितनी दुर्दशा होगी, ऐसा विचार मनमें लाकर हरएक पुरुषको स्त्रीके पातिव्रत्य की रक्षा करना उचित है। केवल गुरुपत्निके ही पातिव्रत्यकी रक्षा यहां अभीष्ट नहीं है, प्रत्युत संपूर्ण स्त्रीजातिके पातिव्रत्यकी रक्षाका यहां उपदेश है। गुरुपत्नी यहां केवल उपलक्षण मात्र है।

जिस राष्ट्रमें स्त्रियोंकी पातिव्रत्यरक्षा अच्छी प्रकार होती है और स्त्रीके इधर उधर सुखपूर्वक भ्रमण करनेमें स्त्रीको किसी प्रकार भी अपमानकी संभावना नहीं होती, वह राष्ट्र अत्यंत सुरक्षित होता है—

न दूताय प्रहेया तस्थ एषा
राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य ॥ (मं० ३)

" यह स्त्री दूतको ले जाने योग्य नहीं होती, अर्थात् किसीका दूत इस प्रकारका

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

भयानक कुकर्म करनेको जिस राष्ट्रमें साहस नहीं कर सकता, वह क्षत्रियका राष्ट्र सुरक्षित रहता है।" अर्थात् जिस राष्ट्रमें स्त्रीके ऊपर अत्याचार होते हैं वह राष्ट्र किसी सज्जनके रहनेके लिये योग्य नहीं होता है।

"जिस राष्ट्रमें स्त्रियोंपर अत्याचार होते हैं उस राष्ट्रमें गर्भपात भी होते हैं, प्राणी अकालमें मरते हैं, वीर लोग आपसमें लडते भिडते हैं" (मं० ७) इस लिये स्त्रियोंकी सुरक्षितता अवश्य होनी चाहिये।

क्षत्रिय वैश्योंमें नियोगके कारण और शूद्रोंमें पुनर्विवाहके कारण एकके पश्चात् दूसरा इस प्रकार दस तक पतियोंकी संख्या हो सकती है। परंतु ब्राह्मणोंके लिये तो न नियोगकी प्रथा और ना ही पुनर्विवाह की प्रथा उचित समझी जाती है, इसलिये ब्राह्मणीका ब्राह्मणके साथ एकबार विवाह हुआ तो उसका किसी भी कारण दूसरा पति नहीं हो सकता। क्यों कि ब्राह्मणोंको भोगमें फंसना नहीं चाहिये। इत्यादि विषय आठवें मंत्रमें देखने योग्य है। शेष मंत्रोंमें स्त्री पर अत्याचार करनेवाले राष्ट्रकी जो दुर्दशा होती है उसका वर्णन है। इस लिये उनके अधिक विचरणकी आवश्यकता नहीं है।

इस सूक्तमें कई प्रकारके बोध प्राप्त होते हैं। सबसे प्रथम लेनेयोग्य बोध यह है कि राजाको अपना आचरण बहुत ही निर्दोष रखना चाहिये। बहुत स्त्रियां करना और दूसरोंकी स्त्रियोंके साथ कुकर्म करना बहुत ही बुरा है। बहुपत्नी व्यवहार करनेसे सबसे पहिला जो कष्ट होता है वह ब्रह्मचर्य नाश और वीर्यनाशके कारण क्षयरोग होनेकी संभावना है। शरीरमें जबतक भरपूर वीर्य रहता है तब तक क्षयरोग होही नहीं सकता। वीर्य दोष उत्पन्न होनेसे क्षयरोग होता है और अन्तमें उससे मृत्यु निश्चित है। राजाका आचार व्यवहार देखकर अन्य लोग उसी प्रकार आचार करते हैं, राजाओंके ऊपर यह बडी भारी जिम्मेवारी है। राजा बिगड जानेसे राष्ट्रके लोग बिगड जाते हैं और इस प्रकार राष्ट्रका नाश होता है। अतः बडे लोगोंको अपने आचार व्यवहार धर्मानुकूल ही करने चाहिये। राजाके पास जो अधिकार होता है उसकी घमंड करके अपने अधिकारका दुरुपयोग करना राजाको योग्य नहीं है। प्रजाके कल्याण का उद्योग करनेके लिये राजाके पास अधिकार दिया होता है। इस अधिकार का उपयोग अपने स्वार्थ भोग भोगनेके लिये करनेसे ही राजा दोषी होता है। इसलिये राजाको उचित है कि वह सदा समझे कि मेरा निरीक्षण करनेवाला परमेश्वर है, इसलिये मुझे कोई अकार्य करना योग्य नहीं है। इस प्रकार विचार करके राजा अपना आचार व्यवहार सुधारे और अपने योग्य प्रबंधसे संपूर्ण राष्ट्रका उद्धार करे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ब्राह्मणकी गौ।

[१८]

(ऋषिः — मयोभूः । देवता — ब्रह्मगवी)

नैतां ते देवा अददुस्तुभ्यं नृपते अत्तवे ।
मा ब्राह्मणस्य राजन्य गां जिघत्सो अनाद्याम् ॥ १ ॥

अक्षद्रुग्धो राजन्यः पाप आत्मपराजितः ।
स ब्राह्मणस्य गामद्यादद्य जीवानि मा श्वः ॥ २ ॥

अर्थ— हे नृपते ! (ते देवाः एतां तुभ्यं अत्तवे न ददुः) उन देवोंने इस गौको तुम्हारे लिये खानेके अर्थ नहीं दिया है । हे (राजन्य) क्षत्रिय ! (ब्राह्मणस्य अनाद्यां गां मा जिघत्सः) ब्राह्मणकी न खाने योग्य गौको मत खा ॥ १ ॥

(अक्ष-द्रुग्धः पापः) जुआडी, पापी (आत्म-पराजितः राजन्यः) अपने कारण पराजित हुआ हुआ क्षत्रिय, (सः ब्राह्मणस्य गां अद्यात्) वह यदि ब्राह्मणकी गौको खावे, तो (अद्य जीवानि, मा श्वः) वह आज जीवे, कल नहीं ॥ २ ॥

भावार्थ—हे क्षत्रिय ! हे राजा ! यह सब तेरे ही उपभोगके लिये तुम्हारे पास देवोंने नहीं दिया है । ब्राह्मणकी भूमि, गाय आदि जो भी कुछ धन होगा वह बलसे हरण करना तुम्हें योग्य नहीं है ॥ १ ॥

जो जूएमें हरा हुआ, पापी, दुराचारी और आत्मघातकी क्षत्रिय होगा वही ब्राह्मण की भूमि और गौ आदिका बलसे हरण करके भोग करेगा, इससे वह आज जीवित रहा होगा, तो कल भी जीवित रहेगा, इस विषयमें निश्चय नहीं है ॥ २ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

आविष्टिताघविषा पृदाकूरिव चर्मणा।
सा ब्राह्मणस्य राजन्य तृष्टैषा गौरनाद्या ॥ ३ ॥
निर्वै क्षत्रं नयति हन्ति वर्चोऽग्निरिवारब्धो वि दुनोति सर्वम्।
यो ब्राह्मणं मन्यते अन्नमेव स विषस्य पिबति तैमातस्य ॥ ४ ॥
य एनं हन्ति मृदुं मन्यमानो देवपीयुर्धनकामो न चित्तात्।
सं तस्येन्द्रो हृदयेऽग्निमिन्ध उभे एनं द्विष्टो नभसी चरन्तम् ॥ ५ ॥

अर्थ-हे (राजन्य) क्षत्रिय! (एषा ब्राह्मणस्य गौः अनाद्या) यह ब्राह्मणकी गौ खाने योग्य नहीं है। क्योंकि (सा चर्मणा आविष्टिता) वह चर्मसे ढंकी (तृष्टा पृदाकूः इव अघविषा) प्यासी सांपिनके समान भयंकर विषसे भरी होती है ॥ ३ ॥

(यः ब्राह्मणं अन्नं एव मन्यते) जो क्षत्रिय ब्राह्मणको अपना अन्नही मानता है, (स तैमातस्य विषस्य पिबति) वह सांपका विषही पीता है। वह अपमानित ब्राह्मण (क्षत्रं वै निः नयति) क्षत्रियको निःशेष करता है, (वर्चः हन्ति) तेज नाश करता है, (आरब्धः अग्निः इव) आरंभ हुए प्रदीप्त अग्निके समान (सर्वं विदुनोति) सब नष्ट करता है ॥ ४ ॥

(यः देवपीयुः धनकामः) जो देवशत्रु धनलोभी (एनं मृदुं मन्यमानः न चित्तात् हन्ति) इस ब्राह्मणको कोमल मानता हुआ विना विचारे मारता है। (इन्द्रः तस्य हृदये अग्निं सं इन्धे) इन्द्र उसके हृदयमें अग्नि जला देता है (उभे नभसी चरन्तं एनं द्विष्टः) दोनों भूलोक और द्युलोक विचरते हुए इसका द्वेष करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे क्षत्रिय! ब्राह्मणकी भूमि अथवा गौ तुम्हारे उपभोगके लिये नहीं है। मानो, चर्मसे ढंकी हुई, विषभरी, क्रोधी सांपिनके समान वह तुम्हारे लिये नाशक सिद्ध होगी ॥ ३ ॥ जो क्षत्रिय विद्वान ब्राह्मणको अपने भोगका विषय मानता है, वह मानो सांपका विषही पीता है। उस प्रकार अपमानित हुआ ब्राह्मण क्षत्रियका नाश करता है, उसका तेज नष्ट करता है, और जलती आगके समान सब राष्ट्रको हिला देता है ॥ ४ ॥ जो क्षत्रिय धनलोभसे देवोंका अन्नभाग स्वयं खाता है, और ब्राह्मणको निर्बल मानकर उसको कष्ट देता है, उसके हृदयमें अग्नि जलाकर इन्द्र उसका नाश करता है और सब द्यावापृथिवीके निवासी उसकी निन्दा करते हैं ॥ ५ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

न ब्राह्मणो हिंसितव्यो३ऽग्निः प्रियतनोरिव ।
सोमो ह्यस्य दायाद इन्द्रो अस्याभिशस्तिपाः ॥ ६ ॥
शतापाष्ठां नि गिरति तां न शक्नोति निःखिदन् ।
अन्नं यो ब्रह्मणां मल्वः स्वाद्व१द्मीति मन्यते ॥ ७ ॥
जिह्वा ज्या भवति कुल्मलं वाङ्नाडीका दन्तास्तपसाभिदिग्धाः ।
तेभिर्ब्रह्मा विध्यति देवपीयून् हृद्बलैर्धनुर्भिर्देवजूतैः ॥ ८ ॥

अर्थ- (प्रियतनोः अग्निः इव) प्रियतनुरूप अग्निके समान (ब्राह्मणः न हिंसितव्यः) ब्राह्मणकी हिंसा नहीं करना चाहिये । (सोमः हि अस्य दायादः) सोम इसका संबंधी है और (इन्द्रः अस्य अभिशस्ति-पाः) इन्द्र इसका शापसे बचानेवाला है ॥ ६ ॥

(यः मल्वः ब्रह्मणां अन्नं) जो मलीन पुरुष ब्राह्मणोंका अन्न (स्वादु अद्मि इति मन्यते) स्वादसे खाता हूं ऐसा समझता है वह (शत-अपाष्ठां निगिरति) सैकडों प्रकारकी दुर्गतिको प्राप्त होता है और (निःखिदन् तां न शक्नोति) उसको प्राप्त करके सहन नहीं कर सकता है ॥ ७ ॥

ब्राह्मणकी (जिह्वा ज्या भवति) जीभ धनुषकी डोरी होती है । (वाक् कुल्मलं) वाणी धनुष्यका दण्डा होती है (तपसा अभिदिग्धाः दन्ताः नाडीकाः) तपसे तीक्ष्ण बने हुए दान्त बाणरूप होते हैं । (ब्रह्मा) ब्राह्मण (तेभिः देवजूतैः हृद्बलैः धनुर्भिः) उन देवसेवित आत्मबलके धनुष्योंसे (देव-पीयून् विध्यति) देव शत्रुओंपर आघात करता है ॥ ८ ॥

भावार्थ- अग्निके समान ही ब्राह्मण है, जिसको छेडना उचित नहीं है । क्यों कि सोम उसका संबंधी और इन्द्र उसका रक्षक है ॥ ६ ॥

जो पापी क्षत्रिय ब्राह्मणका धन अपने भोगके लिये है ऐसा मानता है और उसका मैं उत्तम भोग करता हूं ऐसा समझता है, उसपर सैंकडों आपत्तियां आती हैं और उसका सामर्थ्य ही नष्ट हो जाता है ॥ ७ ॥

उस समय ब्राह्मणकी जिह्वा दोरी, वाणी धनुष्य, और उसके तपसे युक्त दन्त बाण होते हैं । इन धनुष्योंसे वह ब्राह्मण देवतोंका अन्न खाने-वालेका नाश करता है ॥ ८ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

तीक्ष्णेषवो ब्राह्मणा हेतिमन्तो यामस्यन्ति शरव्यां३न सा मृषा ।
अनुहाय तपसा मन्युना चोत दूरादव भिन्दन्त्येनम् ॥ ९ ॥
ये सहस्रमराजन्नासन् दशशता उत ।
ते ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा वैतहव्याः पराभवन् ॥ १० ॥
गौरेव तान् हन्यमाना वैतहव्याँ अवातिरत् ।
ये केसरप्राबन्धायाश्चरमाजामपेचिरन् ॥ ११ ॥

अर्थ-(तीक्ष्ण-इषवः हेतिमन्तः ब्राह्मणाः) तीक्ष्ण बाणोंसे युक्त, अस्त्रोंसे युक्त ब्राह्मण (यां शरव्यां अस्यन्ति) जिस बाणप्रवाहको फेंकते हैं (न सा मृषा) वह मिथ्या नहीं होती है। (तपसा च उत मन्युना अनुहाय) तप के और क्रोधके साथ पीछा करके (एनं दूरात् अवभिन्दन्ति) इसको दूरसे ही भेद डालते हैं ॥ ९ ॥

(ये वैत-हव्याः सहस्रं अराजन्) जो देवोंका हव्य खानेवाले सहस्रों राजे होगये थे, (ये उत दशशताः आसन्) और जो दस सौ थे, (ते ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा) वे ब्राह्मणकी गौ खाकर (पराभवन्) पराभवको प्राप्त हुए ॥ १० ॥

(हन्यमाना गौः एव) कष्ट दी हुई गौने ही (तान् वैतहव्यान् अवातिरत्) उन देवतोंका अन्न खानेवालोंका विनाश किया है। (ये केसरप्रबन्धायाः चरम-अजां अपेचिरन्) जो केशोंकी रस्सीसे बांधी हुई अन्तिम अजाको भी पचाते हैं, हडप करते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ— ये ब्राह्मण बडे तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रोंवाले होते हैं, इसलिये उक्त अस्त्र ये जिसपर फेंकते हैं वे व्यर्थ नहीं होते। अपने तप और क्रोधसे पीछा करके दूरसेही ये उसका नाश करते हैं ॥ ९ ॥

देवतोंके उद्देश्यसे अलग रखा हुआ अन्न स्वयं भोग करनेवाले सहस्रों राजा लोग ब्राह्मणकी भूमि अथवा गौ हरण करके, उसका अपने लिये भोग करनेसे पराभूत होगये ॥ १० ॥

वह कष्टको प्राप्त हुई ब्राह्मणकी गायही उन देवतान्नभोजी क्षत्रियोंका नाश करनेके लिये कारण होती है ॥ ११ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

एकंशतं ता जनता या भूमिर्व्यधूनुत।
प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीमसंभव्यं पराभवन् ॥ १२ ॥
देवपीयुश्चरति मर्त्येषु गरगीर्णो भवत्यस्थिभूयान्।
यो ब्राह्मणं देवबन्धुं हिनस्ति न स पितृयाणमप्येति लोकम् ॥१३॥
अग्निर्वै नः पदवायः सोमो दायाद उच्यते।
हन्ताभिशस्तेन्द्रस्तथा तद् वेधसो विदुः ॥ १४ ॥

अर्थ-(ताः जनताः एक-शतं) वे जनताके लोग एकसौ एक थे (याः भूमिः व्यधूनुत) जिन्होंने भूमिको हिला दिया है। (ब्राह्मणीं प्रजां हिंसित्वा) ब्राह्मण प्रजाको कष्ट देकर (असंभव्यं पराभवन्) विना संभावनाके ही वे पराभव को प्राप्त हुए ॥ १२ ॥

(देव-पीयुः गर-गीर्णः मर्त्येषु चरति) देवशत्रु जहर पीये मनुष्यके समान मनुष्योंके बीचमें घूमता है। और (अस्थि-भूयान् भवति) वह केवल हड्डी ही हड्डीवाला होता है। (यः देव-बन्धुं ब्राह्मणं हिनस्ति) जो देवोंके बन्धुरूप ब्राह्मणको कष्ट देता है (सः पितृयाणं अपि लोकं न एति) वह पितृयाण लोकको भी नहीं प्राप्त होता ॥ १३ ॥

(अग्निः वै नः पदयावः) अग्नि ही हमारा मार्ग दर्शक है। (सोमः दायादः उच्यते) सोम संबंधी है, ऐसा कहा जाता है। (इन्द्रः अभिशस्ता हन्ता) इन्द्र यह शापदेनेवालेका नाशकर्ता है (तथा वेधसः तत् विदुः) उस प्रकार ज्ञानी वह बात जानते हैं ॥ १४ ॥

भावार्थ- सेकडों क्षत्रिय भूमिपर बडा पराक्रम करनेवाले होते हैं, परन्तु यदि उन्होंने ब्राह्मणोंको कष्ट देना शुरू किया तो वे सहजहीमें पराभूत होते हैं ॥ १२ ॥

देवोंका शत्रुरूप बनकर पृथ्वीपर संचार करनेवाला दुष्ट मनुष्य विष पीये अतिकृश मनुष्यके समान निर्बल होता है और जो देवोंके बन्धु ब्राह्मणकी हिंसा करता है उसको पितृलोक भी नहीं प्राप्त होता ॥ १३ ॥

सब ज्ञानी जानते हैं कि अग्नि हमारा मार्गदर्शक, सोम हमारा संबंधी, और इन्द्र हमारा रक्षक है ॥ १४ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इषुरिव दिग्धा नृपते पृदाकूरिव गोपते।
सा ब्राह्मणस्येषुर्घोरा तया विध्यति पीयतः॥ १५॥

अर्थ- हे नृपते! हे गोपते! (दिग्धा इषुः इव) विषभरे बाणके समान, (पृदाकुः इव) सांपके समान, (सा ब्राह्मणस्य घोरा इषुः) वह ब्राह्मणका भयंकर बाण (तया पीयतः विध्यति) उससे हिंसकका वेध करता है॥ १५॥

भावार्थ— हे राजन्! तू स्मरणमें धर कि विषयुक्त बाणके समान और सांपके समान ब्राह्मणका भयंकर बाण हिंसकका अवश्य नाश करता है॥१५॥

ब्राह्मणकी गौ।

"गौ" शब्दका अर्थ "वाणी, भूमि, गाय, इन्द्रिय, प्रकाश" आदि है। अर्थात् "ब्रह्मगवी" का अर्थ "ब्राह्मणकी वाणी, भूमि, गाय" आदि होता है। यही ब्राह्मणकी संपत्ति होती है। ब्राह्मण शम, दम, तप युक्त कर्म करता है, इसलिये शान्तवृत्तिवाला होता है, अतः उग्रवृत्तिवाले क्षत्रिय अशक्त ब्राह्मणको लूटमार कर उसकी संपत्ति हराकर उस धनसे अपना भोग बढा सकते हैं। परंतु ब्राह्मण तपस्वी और अध्यापन करनेवाला होनेके कारण यदि वह इस प्रकार दुःखी हुआ तो राष्ट्रमें अध्ययन अध्यापन बंद होजाता है और उस कारण अन्तमें सब राष्ट्रका ही नाश होता है। इस प्रकार ब्राह्मणके कष्ट राजाका नाश करनेके लिये कारण होते हैं।

"ब्राह्मणस्य गौ अनाद्या" (ब्राह्मणकी गौ खाने योग्य नहीं) ऐसा इस सूक्तमें वारंवार कहा है। कई लोग इस वाक्यसे "क्षत्रिय वैश्य और शूद्रकी गौ खाने योग्य है ऐसा अर्थ करते हैं और ब्राह्मण की गौ कोई नहीं खाता था, परंतु अन्य वर्णोंकी गौ लोग खाते थे," ऐसा अनर्थकारक अनुमान निकालते हैं। इसलिये इस विषयमें अवश्य विचार करना चाहिये। क्यों कि "गौ अघ्न्या" है ऐसा वेदमें सर्वत्र कहा है, उसके विरुद्ध इस सूक्तमें गौ खानेका उल्लेख कैसा आगया है। इसलिये यह बात अवश्य विचार करने योग्य है। इस सूक्तका आशय देखनेके लिये निम्नलिखित वचन सबसे प्रथम देखिये—

यो ब्राह्मणं अन्नं एव मन्यते, स विषस्य पिबति। (मं० ४)

"जो ब्राह्मणको अपना अन्न मानता है वह मानो, विषही पीता है।" इस मंत्रमें उग्र क्षत्रिय नरम स्वभाववाले ब्राह्मणको अपना अन्न मानता है ऐसा कहा है। इससे ब्राह्मणके टुकडे करके क्षत्रिय खाते थे यह भाव लेना उचित नहीं है, क्षत्रिय नरमांस

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

भोजी कदापि नहीं थे। फिर जो क्षत्रिय कदापि नरमांस नहीं खाते वे ब्राह्मणको ही अपना अन्न कैसा मान सकते हैं, इस शंकाको दूर करनेके लिये निम्नलिखित मंत्रका भाग देखिये।—

> यो मल्वः ब्रह्मणां अन्नं स्वादु अद्मि इति मन्यते।
> स शतापाष्ठां गिरति। (मं० ७)

"जो मलीन क्षत्रिय ब्राह्मणोंका अन्न सुखसे मैं भोगता हूं, ऐसा मानता है वह सेंकडों विपत्तियोंमें गिरता है।" यहां ब्राह्मणका अन्न लूट मारकर क्षत्रिय खावे, तो उसकी बडी दुर्गति होती है ऐसा कहा है। "ब्राह्मणको अन्न माननेका अर्थ" यह है कि ब्राह्मणके पासके सब उपभोगके पदार्थ लूटकर अथवा जबरदस्तीसे छीन कर, उनका उपभोग करना। हैहयवंशी क्षत्रियोंने ऐसा ही किया था। वे क्षत्रिय ब्राह्मणोंके आश्रम लूटते थे और अपने भोग बढाते थे, इस कारण परशुरामने उनका नाश करके पुनः धर्मका नियम शुरू किया। इस सूक्तमें भी वीतहव्य नामक राजाओंका पराभव ब्राह्मणोंको पीडा देनेसे हुआ ऐसा कहा है। वसिष्ठ ऋषिको इसी प्रकार विश्वामित्रने कष्ट दिये थे। इस सबका तात्पर्य ब्राह्मणका मांस खानेसे नहीं है, अपितु ब्राह्मणकी संपत्ति, गौवें, भूमि, तथा अन्य समृद्धि लूटना और उसका उपभोग स्वयं करना यही है।

ब्राह्मणके पासका धन यज्ञयाग और विद्यावृद्धिके लिये होता है, यदि वह धन लूटा जावे, तो यज्ञ नहीं होंगे और विद्याका नाश होगा। इससे अन्तमें सब जनताका नाश होगा। ब्राह्मणोंकी वाणीको प्रतिबंध करना, उनकी संपत्ति लूटना, गौ चुराना अथवा बलसे हरण करना, और अन्यान्य प्रकार ब्राह्मणोंके आश्रमोंको कष्ट देना अन्तमें राज्यका नाश होनेके लिये कारण होता है; ब्राह्मणको अन्न माननेका यह अर्थ है। इसी प्रकार ब्राह्मणकी गाय हरण करना और उसका दूध आदि स्वयं पीना, उसकी भूमि हरण करके उस भूमिका धान्य स्वयं खाना, इत्यादि प्रकार हानिकारक हैं यह भाव यहां है। ब्राह्मण जनताको विद्या देते हैं, जनताके रोगोंकी चिकित्सा करते हैं, धर्मोंका अनुष्ठान करते हैं, इसलिये जनताका प्रेम ब्राह्मणोंपर होता है, और जो क्षत्रिय ब्राह्मणोंको कष्ट देता है उसको जनता राज्य भ्रष्ट कर देती है। वेदमें 'गौ' शब्द "गायका दूध, दही, मक्खन, घी, छाछ, गौके दूधसे और घीसे बनी सब प्रकारकी मिठाई, गोचर्म, गायके सींग, और गौ" इतने पदार्थोंका वाचक है। इससे पाठक जान सकते हैं कि यहां "क्षत्रियके द्वारा ब्राह्मण की गौका खाना" ब्राह्मणकी गौ आदि सब संपत्ति हडप करना ही है। सब सूक्तका आशय ध्यानमें लानेसे यही आशय स्पष्ट प्रतीत होता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ब्राह्मणीं प्रजां हिंसित्वा असंभव्यं पराभवन्। (मं० १२)

ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा वैतहव्याः पराभवन्। (मं० १०)

यो देवबन्धुं ब्राह्मणं हिनस्ति स पितृयानं लोकं न एति।(मं० १३)

"ब्राह्मण प्रजाको कष्ट देनेसे सहज पराभव होता है। ब्राह्मणकी गौ हडप करनेसे वीतहव्य क्षत्रिय पराभूत हुए। जो क्षत्रिय ब्राह्मणको कष्ट देता है वह पितृलोकको भी प्राप्त नहीं होता है।" इन मंत्र भागोंसे स्पष्ट हो जाता है कि ब्राह्मणोंको कष्ट देना, उनको लूटना, उनके धर्म, कर्म चलानेमें रुकावटें उत्पन्न करना, राजाके लिये अनिष्ट है, यह बात यहां कही है। यहां ब्राह्मणको खाने अथवा उसकी गौको खानेका आशय बिलकुल नहीं है।

इसके अतिरिक्त "खानेका" अर्थ कई प्रकारसे होता है। 'वह ओहदेदार पैसा खाता है,' इस वाक्यका यह अर्थ कदापि नहीं है कि वह अन्न न खाते हुए रुपये आने और पाई खाकर हजम करता है। परंतु इसका अर्थ इतनाही है कि अयोग्य रीतिसे वह धन कमाता है। यही अर्थ संस्कृतमें भी है। ब्राह्मणको खानेका अर्थ ब्राह्मणकी धन दौलत लूटना और उसका स्वयं उपभोग करना। आजकल कहते हैं अनियंत्रित राजा प्रजाको खाता है, इसका यह अर्थ नहीं है कि राजा मनुष्योंका मांस खाता है, अपितु राजा प्रजाको सताता है यह इसका अर्थ है। शतपथमें—

तस्माद्राष्ट्री विशं घातुकः। श० प० ब्रा० १३।२।९।७

"अनियंत्रित राजा प्रजाके लिये घातक है।" यहां जो प्रजाका घात वर्णन किया है वह केवल प्रजाका काटना नहीं; अपितु प्रजाकी उन्नतिमें बाधा डालना है। इस सब वर्णनसे इस सूक्तका आशय ध्यानमें आसकता है।

राजाका कर्तव्य।

राजाका कर्तव्य है कि वह ज्ञानियोंको विद्यादान करनेमें, वैश्योंको व्यापार करनेमें, शूद्रोंको अपना कारीगरीके व्यवहार करनेमें उत्तेजना दें। अपने पास शक्ति है इस लिये निर्बलोंपर अत्याचार स्वयं न करे और ऐसा राज्यशासन करे कि जिससे सबकी उन्नति यथायोग्य रीतिसे होसके। जिस राज्यमें शमदम और तप करनेवाले ब्राह्मणोंपर अत्याचार होते हैं वहां अन्योंकी सुरक्षितता कहां रहेगी ?

पाठक पूर्व सूक्तके साथही इस सूक्तको पढें और उचित बोध प्राप्त करें। आगामी सूक्त भी इसी आशयका है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ब्राह्मणको कष्ट।

[१९]

(ऋषिः— मयोभूः । देवता–ब्रह्मगवी.)

अतिमात्रमवर्धन्त नोदिव दिवमस्पृशन् ।
भृगुं हिंसित्वा सृञ्जया वैतहव्याः पराभवन् ॥ १ ॥
ये बृहत्सामानमाङ्गिरसमार्पयन् ब्राह्मणं जनाः ।
पेत्वस्तेषामुभयादमविस्तोकान्यावयत् ॥ २ ॥
ये ब्राह्मणं प्रत्यष्ठीवन् ये वास्मिञ्छुल्कमीषिरे ।
अस्नस्ते मध्ये कुल्यायाः केशान् खादन्त आसते ॥ ३ ॥

अर्थ- (सृञ्जयाः) हमला करके जय प्राप्त करनेवाले वीर (अतिमात्रं अवर्धन्त) अत्यन्त बढे, (न दिवं इव उत्स्पृशन्) इतने की द्युलोकको जैसा उन्होंने स्पर्श किया। परंतु वे (वैत—हव्याः) देवोंका अन्न स्वयं भोगने लगे तब (भृगुं हिंसित्वा) भृगुऋषिकी हिंसा करके (पराभवन्) पराभूत होगये ॥ १ ॥ (ये जनाः बृहत्सामानं) जो लोग बडे साम गायक (आंगिरसं ब्राह्मणं आर्पयन्) आंगिरस ब्राह्मणको सताते रहे, (तेषां तोकानि) उनके संतानोंको (पेत्वः अविः) हिंसक (उभयादं आवयत्) दोनों दांतोंके बीचमें रगडता रहा ॥ २॥ (ये ब्राह्मणं प्रत्यष्ठीवन्) जो ब्राह्मणका अपमान करते हैं, (ये वा अस्मिन् शुल्कं ईषिरे) अथवा जो इससे धन छीनना चाहते हैं, (ते अस्नः कुल्यायाः मध्ये) वे रुधिर की नदीके बीचमें (केशान् खादन्त आसते) केशोंको खाते हुए बैठते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—विजयी सृंजय क्षत्रिय बहुत बढ गये थे, परंतु जब वे ब्राह्मणोंको सताने लगे और देवोंके लिये दिया हव्य स्वयं भोगने लगे, तब राज्यभ्रष्ट होगये ॥ १ ॥

जिन्होंने सामगायक आंगिरस ब्राह्मणको सताया था, उनके बालबच्चोंको हिंसक पशुओंने दांतोंसे पीसा था ॥ २ ॥

जो ब्राह्मणका अपमान करते हैं, और उससे धन छीनते हैं, वे रुधिरकी नदीमें बालोंको खाते रहते हैं ॥ ३ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ब्रह्मगवी पच्यमाना यावत् साभि विजङ्गहे ।
तेजो राष्ट्रस्य निर्हन्ति न वीरो जायते वृषा ॥ ४ ॥
क्रूरमस्या आशसनं तृष्टं पिशितमस्यते ।
क्षीरं यदस्याः पीयते तद् वै पितृषु किल्बिषम् ॥ ५ ॥
उग्रो राजा मन्यमानो ब्राह्मणं यो जिघत्सति ।
परा तत् सिच्यते राष्ट्रं ब्राह्मणो यत्र जीयते ॥ ६ ॥
अष्टापदी चतुरक्षी चतुःश्रोत्रा चतुर्हनुः ।
द्व्यास्या द्विजिह्वा भूत्वा सा राष्ट्रमव धूनुते ब्रह्मज्यस्य ॥ ७ ॥

अर्थ—(सा पच्यमाना ब्रह्मगवी) वह हडप की गई ब्राह्मणकी गौ (यावत् अभि विजङ्गहे) जिस कारण तडफती रहती है, उस कारण उस (राष्ट्रस्य तेजः निर्हन्ति) राष्ट्रका तेज मारा जाता है और वहां (वृषा वीरः न जायते) बलवान वीर भी उत्पन्न नहीं होता है ॥ ४ ॥ (अस्याः आशसनं क्रूरं) इसको कष्ट देना बडा क्रूरताका कार्य है, (पिशितं तृष्टं अस्यते) मांस तो तृषा बढानेवाला होनेके कारण फेंकने योग्य है। (यत् अस्याः क्षीरं पीयते) जो इस ब्राह्मणकी गौका दूध पीया जाता है (तत् वै पितृषु किल्बिषं) वह निःसंदेह पितरोंमें पाप कहा जाता है ॥५ ॥ (यः राजा उग्रः मन्यमानः) जो राजा अपने आपको उग्र मानता हुआ (ब्राह्मणं जिघत्सति) ब्राह्मणको सताता है, (तत राष्ट्रं परासिच्यते) वह राष्ट्र बहुत गिर जाता है (यत्र ब्राह्मणः जीयते) जहां ब्राह्मणको कष्ट पंहुचता है ॥ ६ ॥

(अष्टापदी चतुरक्षी) आठ पांववाली, चार आंखोंवाली, (चतुः श्रोत्रा चतुर्हनुः) चार कानोंवाली और चार हनुवाली (द्व्यास्या द्विजिह्वा भूत्वा) दो मुखवाली और दो जिह्वावाली होकर (ब्रह्मज्यस्य राष्ट्रं सा अवधूनुते) ब्राह्मणको सतानेवाले राजाके राष्ट्रको वह हिला देती है ॥ ७ ॥

भावार्थ-जो ब्राह्मणकी गाय हडप करता है उस क्षत्रियके राष्ट्रका तेज नष्ट होता है और उसमें बलवान वीर नहीं उत्पन्न होते ॥४॥ गायको कष्ट देना बडी क्रूरताका कार्य है। दूसरेकी गायका दूध पीना भी विषके समान ही है ॥ ५ ॥ अपने आपको बलवान मानता हुआ जो राजा ब्राह्मणको सताता है, उसका राष्ट्र गिर जाता है ॥ ६ ॥ ब्राह्मणकी गाय दुखी होनेपर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

तद् वै राष्ट्रमा स्रवति नावं भिन्नामिवोदकम् ।
ब्रह्माणं यत्र हिंसन्ति तद् राष्ट्रं हन्ति दुच्छुना ॥ ८ ॥
तं वृक्षा अप सेधन्ति छायां नो मोपगा इति ।
यो ब्राह्मणस्य सद्धनमभि नारद मन्यते ॥ ९ ॥
विषमेतद् देवकृतं राजा वरुणोऽब्रवीत् ।
न ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा राष्ट्रे जागार कश्चन ॥ १० ॥
नवैव ता नवतयो या भूमिर्व्यधूनुत ।
प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीमसंभव्यं पराभवन् ॥ ११ ॥

अर्थ- (यत्र ब्राह्मणं हिंसन्ति) जहां ब्राह्मणको कष्ट पहुंचाते हैं (तत् राष्ट्रं दुच्छुना हन्ति) वह राष्ट्र विपत्तिसे मरता है। और (तत् वै राष्ट्रं) वह राष्ट्रको (आ स्रवति) गिरा देता है (उदकं भिन्नां नावं इव) जैसा जल टूटी हुई नौकाको बहा देती है॥ ८॥ (नः छायां मा उपगाः इति) हमारी छायामें यह न आवे, इस इच्छासे (तं वृक्षाः अपसेधन्ति) उसको वृक्ष दूर हटा देते हैं। हे नारद ! (यः ब्राह्मणस्य धनं सत् अभिमन्यते) जो ब्राह्मणका धन बलसे अपना मानता है॥ ९॥ (राजा वरुणः अब्रवीत्) वरुण राजाने कहा है कि (एतत् देवकृतं विषं) यह देवोंका बनाया विष है। (ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा) ब्राह्मणकी गायको हडप कर (कश्चन राष्ट्रे न जागार) कोई भी राष्ट्रमें नहीं जागता है॥ १० ॥ (याः नव नवतयः) जो निन्यानवे प्रकारकी प्रजाएं हैं (ताः भूमिः एव वि अधूनुत) उनको भूमिने ही हटा दिया है। वे (कल्याणीं ब्राह्मणीं प्रजां हिंसित्वा) कल्याण करनेवाली ब्राह्मण प्रजाको कष्ट देकर (असंभव्यं पराभवन्) असंभवनीय रीतिसे परास्त हुए ॥ ११ ॥

द्विगुणित मारक सींग आदिसे युक्त होकर उसके राष्ट्रका नाश करती है ॥७॥ जहां ब्राह्मण सताया जाता है वह राष्ट्र विपत्तीमें गिरता है। टूटी नौका के समान वह बीचमें ही डूब जाता है ॥८॥ जो ब्राह्मणका धन छीनता है उसको वृक्षभी अपनी छायामें आने नहीं देते ॥९॥ राजा वरुण ने कहा है कि ब्राह्मणकी गौको हडप करना विष पीनेकेसमान हानिकारक है, उसको स्वीकार करने से कोईभी जीवित नहीं रह सकता ॥१०॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यां मृतायांनुबन्धन्ति कूद्यं पदयोपनीम् ।
तद् वै ब्रह्मज्य ते देवा उपस्तरणमब्रुवन् ॥ १२ ॥
अश्रूणि कृपमाणस्य यानि जीतस्य वावृतुः ।
तं वै ब्रह्मज्य ते देवा अपां भागमधारयन् ॥ १३ ॥
येनं मृतं स्नपयन्ति श्मश्रूणि येनोन्दते ।
तं वै ब्रह्मज्य ते देवा अपां भागमधारयन् ॥ १४ ॥
न वर्षं मैत्रावरुणं ब्रह्मज्यमभि वर्षति ।
नास्मै समितिः कल्पते न मित्रं नयते वशम् ॥ १५ ॥

अर्थ-(यां पद्योपनीं कूद्यं) जिस पादचिन्ह हटानेवाली कांटोंवाली झाड़ू को (मृताय अनुबध्नन्ति) मृतके साथ बांधते हैं, हे (ब्रह्म-ज्य) ब्राह्मणको सतानेवाले ! (देवाः तत् ते उपस्तरणं अब्रुवन्) देवोंने कहा है कि वह तेरा बिस्तर है ॥ १२ ॥ हे (ब्रह्म-ज्य) ब्राह्मणको सतानेवाले ! (यानि अश्रूणि) जो आंसू (कृपमाणस्य जीतस्य वावृतुः) निर्बल और जीते गये मनुष्यके बहते हैं। (देवाः तं वै ते अपां भागं अधारयन्) देवोंने उसको ही तेरा जलका भाग निश्चय किया है ॥ १३ ॥ हे (ब्रह्मज्य) ब्राह्मणको सतानेवाले ! (येन मृतं स्नपयन्ति) जिससे प्रेतको स्नान कराते हैं, (येन श्मश्रूणि च उन्दते) जिससे मोंछ दाढीके बाल गीले करते हैं (तं वै देवाः ते अपां भागं अधारयन्) उसको ही देवोंने तेरा जलभाग निश्चय किया है ॥ १४ ॥ (मैत्रावरुणं वर्षं) मित्रावरुणसे प्राप्त होनेवाली वृष्टि (ब्रह्मज्यं न अभिवर्षति) ब्राह्मणको कष्ट देनेवालेके ऊपर नहीं गिरती। और (अस्मै समितिः न कल्पते) इसको सभा सहमति नहीं देती (न मित्रं वशं नयते) और न मित्र वशमें रहते हैं ॥ १५ ॥

भावार्थ- निन्यानवे वीर जिन्होंने सब भूमिपर विजय प्राप्त किया था, वे जब ब्राह्मणोंको सताने लगे तब वे परास्त होगये ॥११ ॥ कांटेकी झाडू जो स्मशान झाडनेके लिये काम आती है, उसपर वह मनुष्य सोता है कि जो ब्राह्मणको सताता है ॥ १२ ॥ निर्बल होनेके कारण पराजित हुए मनुष्यके आंखमें जो आंसू आते हैं, उस आसुओंका जल उसको पीनेके लिये दिया जाता है, जो ब्राह्मणको सताता है ॥ १३ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

भावार्थ— जिस जलसे मुर्देको स्नान कराते हैं और जो जल हजामत करनेके समय दाढी मोंछ भिगोनेके काम आता है, वह जल उसको मिलता है, कि जो ब्राह्मणको कष्ट देता है ॥ १४ ॥

ब्राह्मणको कष्ट देनेवालेके राष्ट्रपर अच्छी वृष्टि नहीं होती, राष्ट्रसभा वैसे राजाके लिये अनुकूल नहीं होती, और वैसे क्षत्रियको कोई मित्र नहीं रहता ॥ १५ ॥

ज्ञानीका कष्ट।

ज्ञानी मनुष्यको दिया हुआ कष्ट राज्यका नाश करता है। जिस राज्य शासनमें ज्ञानी सज्जनोंको कष्ट भोगने पडते हैं वह राज्यशासन नष्ट हो जाता है। जिस राज्य शासनमें ज्ञानी लोगोंकी वाणीपर प्रतिबंध डाला जाता है, उनको उत्तम उपदेश देनेसे रोका जाता है, जहां सुविज्ञ ज्ञानी पुरुषोंकी धनसंपत्ति सुरक्षित नहीं होती, जहां अन्य प्रकारसे ज्ञानी सज्जनोंको क्लेश पहुंचते हैं, वह राष्ट्र अधोगतिको प्राप्त होता है।

यह आशय इस सूक्तका है। राष्ट्रमें ज्ञानकी और ज्ञानी की पूजा होती रहे। क्यों कि ज्ञानोपदेशसे ही राष्ट्रका सच्चा कल्याण हो सकता है। इसलिये हरएक राष्ट्रके लोग ज्ञानीका सत्कार करें और अपनी उन्नतिके भागी बनें।

अन्त्येष्टीकी कुछ बातें।

इस सूक्तका विचार करनेसे कुछ बातोंका पता लगता है, देखिये-

(१) मृतं स्नपयन्ति- मृत मनुष्यके शवको स्नान डालते हैं।

(२) मृताय पदयोपनीं कूद्यं अनुबध्नन्ति- मृतके लिये पांवका चिन्ह मिटानेवाली झाडूसे अथवा किसी अन्य चीजसे बांधते हैं। (इसमें 'कूद्य' का अर्थ ठीक प्रकार समझमें नहीं आता है। यह खोजका विषय है)

हजामत।

(३) श्मश्रूणि उन्दते-हजामत बनवानेके समय बाल भिगोये जाते हैं।

इस सूक्तके कुछ कथनोंका ठीक ठीक भाव समझमें नहीं आता है, इस कारण यह सूक्त क्लिष्टसा प्रतीत होता है। उन मंत्रोंका अधिक विचार पाठक करें।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दुन्दुभीका घोष।

[२०]

(ऋषिः— ब्रह्मा । देवता=वानस्पत्यो दुंदुभिः)

उच्चैर्घोषो दुन्दुभिः सत्वनायन् वानस्पत्यः संभृत उस्रियाभिः ।
वाचं क्षुणुवानो दमयन्त्सपत्नान्त्सिंह इव जेष्यन्नभि तंस्तनीहि ॥ १ ॥

सिंह इवास्तानीद् द्रुवयो विबद्धोऽभिक्रन्दन्नृषभो वासितामिव ।
वृषा त्वं वध्रयस्ते सपत्ना ऐन्द्रस्ते शुष्मो अभिमातिषाहः ॥ २ ॥

वृषेव यूथे सहसा विदानो गव्यन्नभि रुव सन्धनाजित् ।
शुचा विध्य हृदयं परेषां हित्वा ग्रामान् प्रच्युता यन्तु शत्रवः ॥ ३ ॥

अर्थ—(उच्चैर्घोषः सत्त्व-नायन्) जिसका ऊंचा शब्द है और जो बल बढाता है, उस प्रकारका (वानस्पत्यः दुन्दुभिः) वनस्पतिसे बना हुआ दुन्दुभी (उस्रियाभिः संभृतः) गोचर्मोंसे वेष्टित (वाचं क्षुणुवानः) शब्द करता हुआ, (सपत्नान् दमयन्) शत्रुओंको दबाता हुआ और (सिंह इव जेष्यन्) सिंहके समान विजय चाहता हुआ यह ढोल (अभिसंस्तनीहि) गर्जता रहे ॥ १ ॥

तू (द्रुवयः विबद्धः) वृक्षसे निर्माण हुआ और विशेष प्रकार बांधा हुआ (सिंह इव अस्तानीत्) सिंहके समान गर्जता है। (वासितां वृषभः अभिक्रन्दन् इव) गौके लिये जैसा बैल गर्जता है। (त्वं वृषा) तू बलवान् है (ते सपत्नाः वध्रयः)तेरे शत्रु निर्बल हुए हैं और (ते ऐन्द्रः शुष्मः अभिमातिषाहः) तेरा प्रभावयुक्त बल शत्रुनाशक है ॥ २ ॥

(यूथे गव्यन् वृषा इव) गौवोंके समूहमें गौकी कामना करनेवाले सांडके समान तू (सहसा संधनाजित्) बलसे विजय प्राप्त करनेवाला, और (विदानः) जाना हुआ (अभिरुव) गर्जना कर। (परेषां हृदयं शुचा विध्य) शत्रुओंका हृदय शोकसे युक्त कर। (शत्रवः ग्रामान् हित्वा प्रच्युताः यन्तु) शत्रु गांवोंको छोडकर गिरते हुए भाग जावें ॥ ३ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

संजयन् पृतना ऊर्ध्वमायुर्गृह्या गृह्णानो बहुधा वि चक्ष्व ।
देवीं वाचं दुन्दुभ आ गुरस्व वेधाः शत्रूणामुप भरस्व वेदः ॥ ४ ॥
दुन्दुभेर्वाचं प्रयतां वदन्तीमाशृण्वती नाथिता घोषबुद्धा ।
नारी पुत्रं धावतु हस्तगृह्यामित्री भीता समरे वधानाम् ॥ ५ ॥
पूर्वो दुन्दुभे प्र वदासि वाचं भूम्याः पृष्ठे वद रोचमानः ।
अमित्रसेनामभिजञ्जभानो द्युमद् वद दुन्दुभे सूनृतावत् ॥ ६ ॥
अन्तरेमे नभसी घोषो अस्तु पृथक् ते ध्वनयो यन्तु शीभम् ।
अभि क्रन्द स्तनयोत्पिपानः श्लोककृन्मित्रतूर्याय स्वर्धी ॥ ७ ॥
धीभिः कृतः प्र वदाति वाचमुद्धर्षय सत्वनामायुधानि ।

अर्थ-हे दुन्दुभे! (ऊर्ध्व-मायुः पृतनाः संजनयन्) ऊंचा शब्द करनेवाला, शत्रुसेनाओंको पराजित करता हुआ (गृह्याः गृणानः बहुधा विचक्ष्व) ग्रहण करने योग्योंको लेनेवाला तू बहुत प्रकार देख। (दैवीं वाचं आ-गुरस्व) दिव्य शब्द उच्चारण कर। (वेधाः शत्रूणां वेदः आभरस्व) विधाता होकर शत्रुओंके धन लाकर भर दे ॥ ४ ॥

(दुन्दुभेः प्रयतां वदन्तीं) दुन्दुभीका स्पष्ट बोला हुआ (वाचं आ-शृण्वती घोषबुद्धा) शब्द सुननेवाली और गर्जनासे जागी हुई (भीता नाथिता आमित्री नारी) डरी हुई दुखी शत्रुकी स्त्री (समरे वधानां पुत्रं) युद्धमें मरे वीरोंके पुत्रको (हस्तगृह्य धावतु) हाथ पकडकर भाग जावे ॥ ५॥

हे दुन्दुभे! (पूर्वः वाचं प्रवदासि) सबसे पहिले तू शब्द करता है। (भूम्याः पृष्ठे रोचमानः वद) भूमिके पृष्ठपर प्रकाशता हुआ तू शब्द कर। हे ढोल! (अमित्रसेनां अभिजञ्जभानः) शत्रुसेनाका नाश करता हुआ तू (द्युमत् सूनृतावत् वद) प्रकाशरीतिसे सत्य बोल ॥ ६ ॥

(इमे नभसी अन्तरा घोषः अस्तु) इन द्युलोक और पृथ्वीके मध्यमें तेरा घोष होवे। (ते ध्वनयः शीभं पृथक् यन्तु) तेरे ध्वनि शीघ्र चारों दिशाओंमें फैलें। (उत्पिपानः श्लोककृत) बढनेवाला और यश करनेवाला (मित्रतूर्याय स्वर्धी) मित्रहितके लिये संपन्न होता हुआ (अभिक्रन्द, स्तनय) शब्दकर और गर्जना कर ॥ ७॥

(धीभिः कृतः वाचं प्रवदाति) बुद्धिके द्वारा बनाया हुआ ढोल शब्द

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इन्द्रमेदी सत्वनो नि ह्वयस्व मित्रैरमित्राँ अव जङ्घनीहि ॥ ८ ॥
संक्रन्दनः प्रवदो धृष्णुषेणः प्रवेदकृद् बहुधा ग्रामघोषी ।
श्रेयो वन्वानो वयुनानि विद्वान् कीर्तिं बहुभ्यो वि हर द्विराजे ॥ ९ ॥
श्रेयःकेतो वसुजित् सहीयान्त्संग्रामजित् संशितो ब्रह्मणासि ।
अंशूनिव ग्रावाधिषवणे अद्रिर्गव्यन् दुन्दुभेऽधि नृत्य वेदः ॥ १० ॥
शत्रूषाण्नीषाडभिमातिषाहो गवेषणः सहमान उद्भित् ।
वाग्वीव मन्त्रं प्र भरस्व वाचं सांग्रामजित्यायेषमुद् वदेह ॥ ११ ॥

करता है। (सत्वनां आयुधानि उद्धर्षय) वीरोंके आयुधोंको ऊंचा उठा। (इन्द्रमेदी सत्वनः निह्वयस्व) शूरको आनन्द देनेवाला तू वीरोंको बुला (मित्रैः अमित्रान् अव जङ्घनीहि) मित्रोंके द्वारा शत्रुओंको मार डाल ॥८॥

(संक्रन्दनः प्र-वदः) शब्द करनेवाला और घोषणा करनेवाला, (धृष्णु-सेनः प्रवेदकृत्) विजयी सेनासे युक्त, चेतना देनेवाला, (बहुधा ग्राम-घोषी) अनेक प्रकारसे ग्राममें घोषणा करनेवाला, (श्रेयः वन्वानः) कल्याण प्राप्त करानेवाला, (वयुनानि विद्वान्) सब घोषणाके कार्य जाननेवाला तू दुंदुभी (द्वि-राजे) दो राजाओंमें होनेवाले युद्धमें (बहुभ्यः कीर्तिं विहर) बहुत मनुष्योंके लिये कीर्ति प्राप्त कर ॥ ९ ॥

हे (दुन्दुभे) ढोल ! तू (श्रेयःकेतः वसुजित) श्रेय करनेवाला, धन जीतनेवाला, (सहीयान् संग्रामजित्) बलवान्, युद्धोंको जीतनेवाला, (ब्रह्मणा संशितः असि) ज्ञानके द्वारा तयार किया हुआ है। (अधिषवणे अद्रिः ग्रावा अंशून् इव) सोमरस निकालनेके समय जिस प्रकार पत्थर सोमपर नाचते हैं, उस प्रकार तू (गव्यन् वेदः अधिनृत्य) भूमी जीतनेकी इच्छा करनेवाला तू शत्रुके धनपर नाच ॥ १० ॥

(शत्रूषाड् नीषाड्) शत्रुको जीतनेवाला, नित्यविजयी, (अभिमातिषाहः गवेषणः) वैरियोंको वशमें करनेवाला, खोज करनेवाला, (सहमानः उद्भित्) बलवान् और उखेडनेवाला, तू ढोल (वाचं प्रभरस्व) शब्दको सर्वत्र भर दे। (वाग्वी मंत्रं इव) जैसा वक्ता उपदेशको श्रोताओंमें भर देता है। (संग्राम—जित्याय इह इषं उत् वद) संग्रामको जीतनेके लिये यहां अन्नके विषयमें बडी घोषणा कर ॥ ११ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अच्युतच्युत् समदो गमिंष्ठो मृधो जेता पुरएतायोध्यः ।
इन्द्रेण गुप्तो विदथा निचिक्यद्धृद्योतनो द्विषतां याहि शीभम् ॥ १२ ॥

[२१]

विहृदयं वैमनस्यं वदामित्रेषु दुन्दुभे ।
विद्वेषं कश्मशं भयममित्रेषु नि दध्मस्यवैनान् दुन्दुभे जहि ॥ १ ॥
उद्वेपमाना मनसा चक्षुषा हृदयेन च ।
धावन्तु बिभ्यतोमित्राः प्रत्रासेनाज्ये हुते ॥ २ ॥
वानस्पत्यः संभृत उस्रियाभिर्विश्वगोत्र्यः ।
प्रत्रासममित्रेभ्यो वदाज्येनाभिघारितः ॥ ३ ॥

अर्थ-(अच्युत-च्युत्) न गिरे हुए शत्रुओंको गिरानेवाला (स-मदः गमिष्ठः) आनंदयुक्त, यात्रा करनेवाला, (मृधः-जेता) युद्धोंको जीतनेवाला, (पुर-एता अयोध्यः) आगे बढनेवाला और युद्ध करनेके लिये कठिन, (इन्द्रेण गुप्तः) इन्द्रद्वारा रक्षित, (विदथा निचक्यत) युद्धकर्मोंको जाननेवाला, (द्विषतां हृद्-घोतनः) शत्रुओंके हृदयोंको घबरानेवाला, तू ढोल (शीभं याहि) शीघ्र शत्रुपर गमन कर ॥ १२ ॥

[२१]

हे (दुन्दुभे) ढोल! तू (अमित्रेषु विहृदयं वैमनस्यं वद) शत्रुओंमें हृदयकी व्याकुलता और मनकी उदासीनता कह दे । (विद्वेषं कश्मशं भयं अमित्रेषु निदध्मसि) द्वेष, कश्मकश, झगडा, भय शत्रुओंमें रख दे । हे दुंदुभे ! (एनान् अव जहि) इनको निकाल दे ॥ १ ॥

(आज्ये हुते) घृतकी आहुती देने इतने थोडे समयमें (अमित्राः प्रत्रासेन) शत्रु घबडाहटसे (मनसा चक्षुषा हृदयेन च बिभ्यतः) मन, आंख और हृदयसे डरते हुए (धावन्तु) भाग जावें ॥ २ ॥

(वानस्पत्यः उस्रियाभिः संभृतः) वनस्पतिसे अर्थात् लकडीसे उत्पन्न ढोल जिसपर चमडेकी रस्सियां बांधी हैं, (विश्व-गो-त्र्यः) सब प्रकार भूमीका रक्षक और (आज्येन अभिघारितः) घृतसे सींचा हुआ तू (अमित्रेभ्यः प्रत्रासं वद) शत्रुओंके लिये कष्टोंकी घोषणा कर ॥ ३ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यथा मृगाः संविजन्त आरण्याः पुरुषादधि ।
एवा त्वं दुन्दुभेमित्रानभि क्रन्द प्र त्रासयाथो चित्तानि मोहय ॥ ४ ॥
यथा वृकादजावयो धावन्ति बहु बिभ्यतीः ।
एवा त्वं दुन्दुभेमित्रानभि क्रन्द प्र त्रासयाथो चित्तानि मोहय ॥५॥
यथा श्येनात् पतत्रिणः संविजन्ते अहर्दिवि सिंहस्य स्तनथोर्यथा ।
एवा त्वं दुन्दुभेमित्रानभि क्रन्द प्र त्रासयाथो चित्तानि मोहय ॥ ६ ॥
परामित्रान् दुन्दुभिना हरिणस्याजिनेन च ।
सर्वे देवा अतित्रसन् ये संग्रामस्येशते ॥ ७ ॥
यैरिन्द्रः प्रक्रीडते पद्घोषैश्छायया सह ।
तैरमित्रास्त्रसन्तु नोऽमी ये यन्त्यनीकशः ॥ ८ ॥

अर्थ-(यथा आरण्याः मृगाः पुरुषात् अधि संविजन्ते)जिस प्रकार वनके मृग मनुष्यसे डरकर भागते हैं, (एवा त्वं अमित्रान् अभिक्रन्द) इस प्रकार तू शत्रुओंपर गर्जना कर, (प्रत्रासय) उनको डरा दे और (अथो चित्तानि मोहय) उनके चित्तोंको मोहित कर ॥ ४ ॥

(यथा अजावयः वृकात् बहु बिभ्यतीः धावन्ति)जिस प्रकार भेड बकरियां भेडियेसे बहुत डरती हुई भाग जाती हैं,उस प्रकार हे दुंदुभी! तू शत्रुओं-पर गर्जना कर, उनको डरा दे, और उनके चित्तोंको मोहित कर ॥ ५ ॥

(यथा पतत्रिणः श्येनात् संविजन्ते) जिस प्रकार पक्षी श्येनसे डरकर भागते हैं, और (यथा स्तनथोः सिंहस्य अहः-दिवि) जिस प्रकार गर्जने वाले सिंहसे प्रतिदिन डरते हैं, उस प्रकार हे दुन्दुभि! तू शत्रुओंपर गर्जना कर, उनको डरा दे, और उनके चित्तोंको मोहित कर ॥ ६ ॥

(ये संग्रामस्य ईशते) जो युद्धके स्वामी होते हैं वे (सर्वे देवाः) सब देव (हरिणस्य अजिनेन दुन्दुभिना च) हरिणके चर्मसे बने हुए नगाडेसेही (अमित्रान् परा अतित्रसन्) शत्रुओंको बहुत डरा देते हैं ॥ ७ ॥

(इन्द्रः यैः पद्-घोषैः) इन्द्र जिन पादघोषोंसे और (छायया सह) छायारूप सेनाके साथ (प्रक्रीडते) युद्धकी क्रीडा करता है,(तैः नः अमीः अमित्राः त्रसन्तु) उनसे हमारे इन शत्रुओंको त्रास होवे कि (ये अनीकशः यन्ति) जो सेनाकी पंक्तियोंके साथ हमला करते हैं ॥ ८ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ज्याघोषा दुन्दुभयोऽभि क्रोशन्तु या दिशः।
सेनाः पराजिता यतीरमित्राणामनीकशः॥ ९॥
आदित्य चक्षुरा दत्स्व मरीचयोऽनु धावत।
पत्सङ्गिनीरा सजन्तु विगते बाहुवीर्ये॥ १०॥
यूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातर इन्द्रेण युजा प्र मृणीत शत्रून्।
सोमो राजा वरुणो राजा महादेव उत मृत्युरिन्द्रः॥ ११॥
एता देवसेनाः सूर्यकेतवः सचेतसः।
अमित्रान् नो जयन्तु स्वाहा॥ १२॥
॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः॥

अर्थ— (ज्या-घोषाः दुन्दुभयः) धनुष्यकी डोरीके शब्द के साथ ढोल (याः दिशः अभिक्रोशन्तु) जो दिशाएं हैं उनमें शब्द करें। जिससे (अमित्राणां अनीकशः पराजिताः यतीः) शत्रुओंकी संघशः पराजित हुई सेना भाग जावे॥ ९॥ हे (आदित्य) सूर्य! (चक्षुः आदत्स्व) शत्रुकी दृष्टि हर ले। (मरीचयः अनुधावत) प्रकाश किरण हमारें अनुकूल दौडें। (बाहुवीर्ये विगते) बाहु वीर्य कम होनेपर (पत्-संगिनीः आ सजन्तु) पांवोंको बांधनेकी रस्सियां शत्रुओंके पांवमें बांधी जावें॥ १०॥ (पृश्नि-मातरः उग्राः मरुतः) हे भूमिको माता माननेवाले,शूर,मरनेके लिये सिद्ध हुए वीरो! (इन्द्रेण युजा शत्रून् प्रमृणीत) इन्द्र अर्थात् शूर सेनापतिके साथ रहकर शत्रुओंको मार डालो। सोम, वरुण, महादेव, मृत्यु और इन्द्र ये सब शूरोंको सहायता करनेवाले देव हैं॥ ११॥ (एताः देवसेनाः सूर्य-केतवः) ये दिव्य सेनाएं सूर्यका ध्वज लेकर चलनेवाली (सचेतसः) उत्तम चित्तसे युक्त होकर (नः अमित्रान् जयन्तु) हमारे शत्रुओंका पराभव करें। विजयके लिये हमारा (स्व-आ-हा) आत्मसमर्पण हो॥ १२॥

नगारा।

ये दोनों सूक्त नगारेका वर्णन कर रहे हैं। यह वर्णन स्पष्ट और सहज समझने योग्य होनेसे इसका भावार्थ देने और विवरण करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

आर्योंका ध्वज। बारहवे मंत्रमें सूर्य चिन्हयुक्तकेतुका वर्णन है। यह वर्णन देखनेसे आर्योंका ध्वज सूर्य चिन्हयुक्त था यह बात स्पष्ट होजाती है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ज्वर निवारण।

[२२]

(ऋषिः— भृग्वङ्गिराः । देवता-तक्मनाशनः)

अग्निस्तक्मानमप बाधतामितः सोमो ग्रावा वरुणः पूतदक्षाः ।
वेदिर्बर्हिः समिधः शोशुचाना अप द्वेषांस्यमुया भवन्तु ॥ १ ॥
अयं यो विश्वान् हरितान् कृणोष्युच्छोचयन्नग्निरिवाभिदुन्वन् ।
अधा हि तक्मन्नरसो हि भूया अधा न्यङ्ङधराङ् वा परेहि ॥ २ ॥
यः परुषः पारुषेयोऽवध्वंस इवारुणः ।
तक्मानं विश्वधावीर्याधराञ्चं परा सुव ॥ ३ ॥

अर्थ— अग्नि, सोम, ग्रावा, वरुण, पूतदक्षाः वेदि, ये पवित्र बलवाले देव और वेदी (बर्हिः शोशुचानाः समिधः) कुशा, प्रदीप्त समिधाएं, (इतः तक्मानं अप बाधतां) यहांसे ज्वरादि रोगको दूर करें। (अमुया द्वेषांसि अप भवन्तु) इससे सब द्वेष दूर हों ॥ १ ॥

(अयं यः विश्वान् हरितान् कृणोषि) यह जो तू ज्वररोग सबको निस्तेज करता है। (अग्निः इव उच्छोचयन् अभि दुन्वन्) अग्निके समान तपाता और कष्ट देता है। हे (तक्मन्) ज्वर ! (अध हि अरसः भूयाः) और तू नीरस हो जा। (अधा न्यङ् अधराङ् वा परा इहि) और नीचेके स्थानसे दूर होजा ॥ २ ॥

(यः पुरुषः पारुषेयः) जो पर्वपर्वमें होता है और जो पर्वदोषके कारण उत्पन्न होता है और जो (अरुणः अवध्वंसः इव) रक्तवर्ण अग्निके समान विनाशक है। हे (विश्वधा-वीर्य) सब प्रकारके सामर्थ्यवाले ! (तक्मानं अधराञ्चं परासुव) ज्वरको नीचेकी गतिसे दूर कर ॥ ३ ॥

भावार्थ- यज्ञसे ज्वर दूर होता है, अग्नि, सोम, समिधा और हवनसामग्री ज्वरको दूर करती है ॥ १ ॥

ज्वर मनुष्यको निस्तेज बनाता है, उसको अग्नि तपाकर निर्वीर्य बनाता है, इस कारण यज्ञसे ज्वर हटता है ॥ २ ॥

ज्वरसे पर्व पर्वमें दर्द होती है, इस लिये ऐसे ज्वरको दूर हटाना चाहिये ॥ ३ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अधराञ्चं प्र हिणोमि नमः कृत्वा तक्मने ।
शकम्भरस्य मुष्टिहा पुनरेतु महावृषान् ॥ ४ ॥
ओको अस्य मूजवन्त ओको अस्य महावृषाः ।
यावज्जातस्तक्मंस्तावानसि बल्हिकेषु न्योचरः ॥ ५ ॥
तक्मन् व्याल वि गद व्यङ्ग भूरि यावय ।
दासीं निष्टक्वरीमिच्छ तां वज्रेण समर्पय ॥ ६ ॥
तक्मन् मूजवतो गच्छ बल्हिकान् वा परस्तराम् ।
शूद्रामिच्छ प्रफर्व्यं१तां तक्मन् वीव धूनुहि ॥ ७ ॥

अर्थ- (तक्मने नमः कृत्वा) ज्वरको नमन करके (अधराञ्चं प्रहिणोमि) नीचे उतार देता हूँ। (शकंभरस्य मुष्टिहा) शाक भक्षककी मुष्टिसे अर्थात् बलसे मरनेवाला यह रोग (महावृषान् पुनः एतु) महावृष्टिवाले देशोंमें पुनः पुनः आजाता है ॥ ४ ॥ (अस्य ओकः मूजवतः) इसका घर मूञ्जा घासवाला स्थान है तथा (अस्य ओकः महावृषाः) इसका घर बडी वृष्टिवाला स्थान है। हे (तक्मन्) ज्वर ! (यावत् जातः) जबसे तू उत्पन्न हुआ है। (तावान् बाल्हिकेषु गोचरः असि) तबसे बाल्हिकोंमें दीखता है ॥ ५ ॥ हे (व्याल व्यङ्ग तक्मन्)सर्पके समान विषवाले और विरूप अंग कराने वाले ज्वर! हे (वि गद) विशेष रोग ! तू (भूरि यावय) बहुत दूर चला जा। तू (निष्टकरीं दासीं इच्छ) निकृष्टता में रहनेके कारण क्षयको प्राप्त होनेवाली की इच्छा कर और (तां वज्रेण समर्पय) उसपर अपना वज्र चला ॥ ६ ॥ (तक्मन्! मूजवतः गच्छ) हे ज्वर! मूंजवाले स्थानकी इच्छा कर, (बाल्हीकान् वा परस्तराम्) दूरके बाल्हीक देशोंकी इच्छा कर। वैसे देशोंमें (प्रफर्व्यं शूद्रां इच्छ) भ्रमण करनेवाली शोकमय स्त्री की इच्छा कर। हे (तक्मन्) ज्वर! (तां वि इव धूनुहि) उसको कंपा दे ॥ ७ ॥

भावार्थ- बहुत वृष्टि जहां होती है, उन देशोंमें यह ज्वर होता है। शाकभोजी लोगोंमें एक विशेष बल होता है इस कारण उनसे यह ज्वर दूर भागता है ॥ ४ ॥ बहुवृष्टिवाले और मूंजा घास वाले देशोंमें यह ज्वर बहुत होता है ॥ ५ ॥ इस ज्वर का विष सर्पके समान होता है जिस से शरीर टेढा मेढा होता है। मलीन जीवन वाले लोगोंमें यह होता है॥६॥ घासवाले स्थानोंमें यह ज्वर होता है और यह ज्वर आनेपर शरीर कांपता है ॥७॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

म॒हावृ॑षान् मू॒जव॑तो बन्ध्व॑द्धि प॒रेत्य॑ ।
प्रैतानि॑ त॒क्मने॑ ब्रूमो अन्यक्षे॒त्राणि॒ वा इ॒मा ॥ ८ ॥
अ॒न्यक्षे॒त्रे न र॑मसे व॒शी सन् मृ॑डयासि नः ।
अभू॑दु प्रार्थ॒स्तक्मा स ग॑मिष्यति॒ बल्हि॑कान् ॥ ९ ॥
यत् त्वं शी॒तोऽथो॑ रू॒रः स॒ह का॒सावे॑पयः ।
भी॒मास्ते॑ तक्मन् हे॒तय॒स्ताभि॑: स्म॒ परि॑ वृङ्ग्धि नः ॥ १० ॥
मा स्मै॒तान्त्सखी॑न् कुरुथा ब॒लासं॑ का॒समु॑द्यु॒गम् ।
मा स्मा॒तोऽर्वाङैः पुन॒स्तत् त्वा॑ तक्म॒न्नुप॑ ब्रुवे ॥ ११ ॥

अर्थ—(महावृषान् मूजवतः बन्धु अद्धि) बडी वृष्टिवाले और मूंजा घास जहां होता है, उन बंधन करनेवाले स्थानोंको तू खा। (परेत्य) दूर जाकर (एतानि इमा अन्यक्षेत्राणि) इन सब अन्य क्षेत्रोंको (तक्मने वै प्रब्रूमः) हम ज्वरके लिये बतलाते हैं ॥ ८ ॥ (अन्यक्षेत्रे न रमसे) दूसरे क्षेत्रमें तू रमता नहीं, (वशी सन नः मृडयासि) वशमें रहकर हमें सुखी करता है। (तक्मा प्रार्थः अभूत् उ) ज्वर प्रबल होगया है। (स बल्हीकान् गमिष्यति) वह बाल्हीकोंके प्रति जावेगा ॥ ९ ॥

(यत् त्वं शीतः) जो तू सर्दी लगकर आनेवाला है, (अथो रूरः) अथवा अधिक पीडा देनेवाला रुक्ष है, (कासा सह अवेपयः) खांसीके साथ कंपा देता है। हे (तक्मन्) ज्वर! (ते हेतयः भीमाः) तेरे शस्त्र भयंकर हैं। (ताभिः नः परिवृङ्ग्धि स्म) उनसे हम सबको बचाये रख ॥ १० ॥

हे (तक्मन्) ज्वर ! (बलासं कासं उद्युगं) कफ, खांसी, और क्षय (एतान् सखीन् मा स्म कुरुथाः) इनको अपने मित्र मत बना। (अतः अर्वाङ् मा स्म ऐः) इससे समीप न आ। हे (तक्मन्) ज्वर ! (तत् त्वा पुनः उपब्रुवे) यह तुझे मैं पुनः कहता हूं ॥ ११ ॥

भावार्थ- बडी वृष्टिवाले और घासवाले प्रदेशोंसे अन्य उत्तम क्षेत्रोंमें यह ज्वर नहीं होता है ॥८॥ अन्य स्थानोंमें नहीं होता है। वहां नियमपूर्वक रहनेवाले लोगोंको यह नहीं होता। उनसे दूर भागता है ॥ ९ ॥ यह ज्वर शीत, रूक्ष, और कफयुक्त होता है। इसका परिणाम भयंकर होता है, इसलिये इससे बचना चाहिये ॥ १० ॥ इस ज्वरके कफ, खांसी और क्षय ये तीन मित्र हैं। यह ज्वर हमारे पास कभी न आवे ॥ ११ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

तक्मन् भ्रात्रा बलासेन स्वस्रा कासिकया सह ।
पाप्मा भ्रातृव्येण सह गच्छामुमरणं जनम् ॥ १२ ॥
तृतीयकं वितृतीयं सदन्दिमुत शारदम् ।
तक्मानं शीतं रूरं ग्रैष्मं नाशय वार्षिकम् ॥ १३ ॥
गन्धारिभ्यो मूजवद्भ्योऽङ्गेभ्यो मगधेभ्यः ।
प्रैष्यन् जनमिव शेवधिं तक्मानं परि दद्मसि ॥ १४ ॥

अर्थ- हे (तक्मन) ज्वर ! तू (भ्रात्रा बलासेन) अपने भाई कफके साथ, (स्वस्रा कासिकया सह) बहिन खांसीके साथ, (पाप्मा भ्रातृव्येन सह) पापी भतीजे क्षयके साथ (अमुं अरणं जनं गच्छ) उस मलीन मनुष्यके पास जा ॥ १२ ॥

(तृतीयकं) तीसरे दिन आनेवाले, (वितृतीयकं) तीन दिन छोडकर आनेवाले, (सदन्दिं) सदा रहनेवाले, (उत शारदं) और शरहतुमें होने वाले, (शीतं, रूरं) शीत अथवा पीडा करनेवाले, (ग्रैष्मं, वार्षिकं) ग्रीष्म और वर्षा ऋतुके संबंधसे आनेवाले ज्वरको (नाशय) हटा दे ॥ १३ ॥

(गन्धारिभ्यः मूजवद्भ्यः) गांधार, मूजवान् (अङ्गेभ्यः मगधेभ्यः) अंग और मगधोंको (प्रैष्यन् शेवधिं जनं इव) भेजे जानेवाले खजानेके रक्षक मनुष्यके समान (तक्मानं परि दध्मसि) ज्वरको हम भेज देते हैं ॥ १४ ॥

भावार्थ-इस ज्वरका भाई कफ; बहिन खांसी और भतीजा क्षय है । मलिन लोगों को यह होता है ॥ १२ ॥

तीसरे दिन आनेवाला, चौथे दिन या तीन दिन छोडकर आनेवाला, सदा अर्थात् प्रतिदिन आनेवाला, शरद्, ग्रीष्म और वर्षा ऋतुके कारण होनेवाला, शीत और रूक्ष, ये सब ज्वर हटाने चाहिये ॥ १३ ॥

जिस प्रकार रक्षक मनुष्य दूसरे देशको भेजे जाते हैं, उस प्रकार सब ज्वर दूर भेजे जांय, अर्थात् ये मनुष्योंको कष्ट न दें ॥ १४ ॥

ज्वर रोग ।

ज्वर रोगके विषयमें बहुतसी बडी विचारणीय बातें इस सूक्तमें कहीं हैं--

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ज्वरके भेद।

१ सदन्दिः- सदा, प्रतिदिन आनेवाला ज्वर।

२ तृतीयकः- तीसरे दिन आनेवाला ज्वर।

३ वि-तृतीयकः- तीन दिन छोडकर चौथे दिन आनेवाला चातुर्थिक आदि ज्वर। (मं० १३)

ये तीन भेद दिनोंके अन्तरके कारण होते हैं। ऋतुके कारण आनेवाले ज्वरके नाम ये हैं।—

१ ग्रैष्मः- ग्रीष्म ऋतुमें होनेवाला ज्वर।

२ वार्षिकः- वर्षा ऋतुके कारण आनेवाला ज्वर।

३ शारदः- शरदृतुके कारण आनेवाला ज्वर (मं० १३)

ये तीन भेद ऋतुके कारण आनेवाले ज्वरके हैं। अब इस ज्वरके स्वरूप भेद देखिये।

१ शीतः- शीत ज्वर, जिसमें प्रथम शीत लगकर पश्चात् ज्वर आता है।

२ रूरः= रूक्ष, पित्त ज्वर, अथवा पीडा देनेवाला ज्वर। (मं० १३)

ये भेद इसका स्वरूप बता रहे हैं। ज्वरके साथ होनेवाले रोग ये हैं।

१ बलासः= कफ, बलगम, यह ज्वरमें होता है।

२ कासः= खांसी भी ज्वरमें होती है। (मं० ११, १२)

ये दोनों लक्षण बहुत खराब हैं, इसका परिणाम—

३ उत्-युगं=ये दोनों अर्थात् कफ और खांसी इकट्ठी आती है, इसका नाम क्षय है। यह तो इसका भयङ्कर परिणाम होता है। (मं० ११)

देश विशेषके कारण होनेवाले ज्वरोंका परिगणन निम्न प्रकार इस सूक्तमें किया है।

१ महावृषः= बडी वृष्टिवाले प्रदेशमें होनेवाला ज्वर।

'अस्य ओकः महावृषः'=इसका घर बडी वृष्टिवाला प्रदेश है। (मं० ५)

२ मूजवान् - घास जहां होता है ऐसे कीचडके स्थानमें यह ज्वर होता है।

'अस्य ओकः मूजवतः'- इसका घर मूजावाला स्थान है। (मं० ५)

इस प्रकारके प्रदेश इस ज्वरके लिये बढानेवाले होते हैं, अन्य क्षेत्रोंमें यह नहीं बढता है, अर्थात् हुआ भी तो शीघ्र हट जाता है। इस ज्वरमें बहुत विष होता है, जो शरीरमें जाता है और वहां पीडा करता है—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

१ व्यालः— सर्पके समान यह ज्वरका विष है।

२ व्यंगः- अंगों और इंद्रियोंमें विरूपता करनेवाला यह ज्वर है। (मं० ६)

मलीन स्त्रीपुरुषोंको यह विशेषकर होता है, अर्थात् अन्तर्बाह्य पवित्र रहनेवालोंको नहीं होता, इस विषयमें मंत्रका प्रमाण देखिये—

१ अरणं जनं- नीच जीवन व्यतीत करनेवालेको होता है। (मं० १२)

२ निष्टक्करीं— क्षीण और मलीनको होता है। (मं० ६)

३ प्रफर्व्यं— फूला मनुष्य, जिसमें सच्चा बल नहीं होता उसको होता है। (मं० ७)

यम, नियम पालन करनेवाला संयमी पुरुष सुखसे रहता है। इस विषयमें निम्न लिखित मंत्र मननपूर्वक देखिये—

नः वशी मृडयासि। (मं० ९)

" हममें जो वशी अर्थात् संयमी पुरुष होता है, उसको सुख देता है, " अर्थात् यह ज्वर उसको कष्ट नहीं देता है। इस प्रकार यह संयम ज्वरादिसे और क्षयादिसे बचनेका एकमात्र उपाय है। पाठक इसका विचार करके ब्रह्मचर्यादि सुनियमोंके पालनद्वारा अपना स्वास्थ्य बढावें और रोगोंसे दूर रहें।

ज्वर निवृत्तिका उपाय।

संयम, ब्रह्मचर्य आदि उपाय ज्वरप्रतिबंधक हैं, परंतु ज्वर आनेपर उसको हटानेके उपाय निम्न लिखित हैं—

१ यज्ञः- अग्निमें सोमादि औषधियोंका हवन करनेसे ज्वर हटता है। (मं० १)

२ अधराङ् परेहि- नीचेके मार्गसे ज्वर दूर होता है, अर्थात् शौच शुद्धिसे, पेट साफ रहनेसे ज्वर दूर होता है। (मं० २)

३ शकं-भरस्य मुष्टि-हा= शाकभोजीकी मुष्टिसे मरनेवाला ज्वर होता है। मांसभोजी मनुष्यकी अपेक्षा शाकभोजी मनुष्यमें ज्वरप्रतिबंधकशक्ति अधिक होती है, इसलिये मानो शाकभोजी मनुष्य इस ज्वरको मुक्केसे मार देता है। (मं० ४)

इस प्रकार इस ज्वरके संबंधका विवरण इस सूक्तमें है। वैद्य इस सूक्तका अधिक विचार करें। इस सूक्तमें कहे लक्षणोंसे प्रतीत होता है कि यह तक्मा आजकलका शीतज्वर अथवा 'मलेरिया' है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

रोगजन्तुओंका नाश।

[२३]

(ऋषिः— कण्वः । देवता–इन्द्रः, क्रिमिजम्भनाय देवप्रार्थना)

ओते॑ मे॒ द्यावा॑पृथि॒वी ओता॑ दे॒वी सर॑स्वती ।
ओतौ॑ म॒ इन्द्र॑श्चा॒ग्निश्च॒ क्रिमिं॑ जम्भयता॒मिति॑ ॥ १ ॥
अ॒स्येन्द्र॑ कुमा॒रस्य॒ क्रिमी॑न् धनपते जहि ।
ह॒ता विश्वा॒ अरा॑तय उ॒ग्रेण॒ वच॑सा॒ मम॑ ॥ २ ॥
यो अ॒क्ष्यौ॑ परि॒सर्प॑ति॒ यो नासे॑ परि॒सर्प॑ति ।
द॒तां यो मध्यं॒ गच्छ॑ति॒ तं क्रिमिं॑ जम्भयामसि ॥ ३ ॥
सरू॑पौ॒ द्वौ विरू॑पौ॒ द्वौ कृ॒ष्णौ द्वौ रोहि॑तौ॒ द्वौ ।
ब॒भ्रुश्च॑ ब॒भ्रुक॑र्णश्च॒ गृध्रः॒ कोक॑श्च॒ ते ह॒ताः ॥ ४ ॥
ये क्रिम॑यः शिति॒कक्षा॒ ये कृ॒ष्णाः शिति॒बाह॑वः ।
ये के च॑ वि॒श्वरू॑पा॒स्तान् क्रिमी॑न् जम्भयामसि ॥ ५ ॥

अर्थ–द्यावापृथिवी, देवी सरस्वती, इन्द्र, अग्नि ये सब देव (ओते, ओता, ओतौ) परस्पर मिले जुले (मे मे क्रिमिं जम्भयतां) मेरे लिये क्रिमियोंका नाश करें ॥१॥ हे धनपते इन्द्र! (अस्य कुमारस्य क्रिमीन् जहि) इस कुमारके क्रिमियोंको हटा दे। (मम उग्रेण वचसा विश्वाः अरातयः हताः) मेरे पासकी उग्र वचासे सब दुखदायी क्रिमी मारे गये हैं ॥ २ ॥ (यः अक्ष्यौ परिसर्पति) जो आंखोंमें भ्रमण करता है, (यः नासे परिसर्पति) जो नाकमें घुसा होता है, (दतां यो मध्यं गच्छति) दांतोंके बीचमें जो जाता है, (तं क्रिमिं जम्भयामसि) उस क्रिमिको हम विनाश करें ॥ ३ ॥ (सरूपौ द्वौ, विरूपौ द्वौ) दो समान रूपवाले और दो विरुद्ध रूपवाले, (द्वौ कृष्णौ, द्वौ रोहितौ) दो काले और दो लाल, (बभ्रुः च बभ्रुकर्णः च) भूरा और भूरे कानवाला, (गृध्रः कोकः च) गिद्ध और भेडिया (ते हताः) वे सब मरगये ॥ ४ ॥ (ये क्रिमयः शितिकक्षाः) जो क्रिमि श्वेत कोखवाले, (ये कृष्णाः शितिबाहवः) जो काले और काली भुजावाले और (ये के च विश्वरूपाः) और जो बहुत रूपवाले हैं (तान् क्रिमीन् जम्भयामसि) उन क्रिमियोंका नाश करते हैं ॥ ५ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उत् पुरस्तात् सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा ।
दृष्टांश्च घ्नन्नदृष्टांश्च सर्वांश्च प्रमृणन् क्रिमीन् ॥ ६ ॥
येवाषासः कष्कषास एजत्काः शिपवित्नुकाः ।
दृष्टश्च हन्यतां क्रिमिरुतादृष्टश्च हन्यताम् ॥ ७ ॥
हतो येवाषः क्रिमीणां हतो नदनिमोत ।
सर्वान् नि मष्मषाकरं दृषदा खल्वाँ इव ॥ ८ ॥
त्रिशीर्षाणं त्रिककुदं क्रिमिं सारङ्गमर्जुनम् ।
शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः ॥ ९ ॥
अत्रिवद् वः क्रिमयो हन्मि कण्ववज्जमदग्निवत् ।
अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिनष्म्यहं क्रिमीन् ॥ १० ॥

अर्थ-(सूर्यः उत पुरस्तात् एति) सूर्य आगेसे चलता है वह (विश्वदृष्टः अदृष्ट-हा) सबको जो प्रत्यक्ष है और जो न दीखनेवाले कृमियोंका भी नाश करनेवाला है, वह (दृष्टान् च अदृष्टान् च सर्वान् क्रिमीन्) दीखने वाले और न दीखनेवाले सब क्रिमियोंको (घ्नन् प्रमृणन्) नाश करता है और कुचल डालता है ॥६॥ (येवाषासः कष्कषासः) येवाष, कष्कष, (एजत्काः शिपवित्नुकाः) एजत्क और शिपवित्नुक ये क्रिमी हैं । (दृष्टः क्रिमिः हन्यतां) दीखनेवाले क्रिमीको मारा जाय और (उत अदृष्टः च हन्यतां) और न दीखनेवाला भी मारा जाय ॥ ७ ॥ (क्रिमीणां येवाषः हतः) क्रिमियोंमेंसे येवाष नामक क्रिमी मारा गया (उत नदनिमा हतः) और नाद करनेवालाभी मरगया, । (सर्वान् मष्मषा नि अकरं) सबको मसल मसलकर नष्ट किया (दृषदा खल्वां इव) जिस प्रकार पत्थरसे चनोंको पीसते हैं ॥ ८ ॥ (त्रिशीर्षाणं त्रिककुदं) तीन शिरोंवाले, तीन कुदानवाले, (सारङ्गं अर्जुनं क्रिमिं) चित्रविचित्र रंगवाले और श्वेत रंगवाले क्रिमीको (शृणामि) मैं मारता हूं । (अस्य पृष्टीः अपि) इस की पसुलियों को भी तोडता हूं और (यत् शिरः वृश्चामि) जो सिर है उसको कुचलता हूं ॥ ९॥ हे (क्रिमयः) जंतुओं ! (अत्रिवत्, कण्ववत्, जमदग्निवत्) अत्रि, कण्व और जमदग्निके समान (वः हन्मि) तुमको मारता हूं। (अहं अगस्त्यस्य ब्रह्मणा) मैं अगस्तिके ज्ञानसे (क्रिमीन् संपिनष्मि) रोगके क्रिमियोंको

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हतो राजा क्रिमींणामुतैषां स्थपतिर्हतः ।
हतो हतमाता क्रिमिर्हतभ्राता हतस्वसा ॥ ११ ॥
हतासो अस्य वेशसो हतासः परिवेशसः ।
अथो ये क्षुल्लका इव सर्वे ते क्रिमयो हताः ॥ १२ ॥
सर्वेषां च क्रिमीणां सर्वासां च क्रिमीणाम् ।
भिनद्म्यश्मना शिरो दहाम्यग्निना मुखम् ॥ १३ ॥

पीसता हूं ॥ १० ॥

(क्रिमीणां राजा हतः) रोगक्रिमियोंका राजा मारा गया, (उत एषां स्थपतिः हतः) और इनका स्थानपति मारा गया। और (हत-माता हत-भ्राता) जिसके माता और भाई मारे गये हैं तथा (हत-स्वसा क्रिमिः हतः) जिसकी बहिन मारी गई है ऐसा क्रिमी भी मारा गया ॥ ११ ॥

(अस्य वेशसः हतासः) इसके घरवाले मारे गये, (परिवेशसः हतासः इसके परिवारवाले मारे गये। (अथो ये क्षुल्लकाः इव) और जो क्षुल्लक क्रिमी थे (ते सर्वे क्रिमयः हताः) वे सब क्रिमी मारे गये हैं ॥ १ ॥

(सर्वेषां च क्रिमीणां) सब पुरुष क्रिमियोंका और (सर्वासां च क्रिमीणां) सब स्त्री क्रिमियोंका (अश्मना शिरः भिनद्मि) पत्थरसे सिर तोडता हूं और (अग्निना मुखं दहामि) अग्निसे मुख जलाता हूं ॥ १३ ॥

रोगक्रिमियोंका नाश।

रोगके क्रिमि शरीरमें घुसते हैं और वहां विविध रोग उत्पन्न करते हैं, यह बात वेदके कई सूक्तोंमें कही है। अग्नि, वायु, जल आदि द्वारा इन क्रिमियोंका नाश होता है, यह प्रथम मंत्रका कथन है। छोटे बालकोंके शरीरमें भी क्रिमि होते हैं उनको दूर करनेके लिये वचा औषधिका उपयोग करना चाहिये यह द्वितीय मंत्रका उपदेश मननीय है।

आंख, नाक और दांतोंमें क्रिमि जाते हैं और वहां विविध रोग उत्पन्न करते हैं, यह तृतीय मंत्रका कथन प्रत्यक्ष देखने योग्य है। चतुर्थ और पञ्चम मंत्रमें क्रिमियोंके रंगोंका वर्णन है। सूर्यकिरणसे सब रोगक्रिमियोंका नाश होता है, यह अत्यंत महत्त्व पूर्ण बात षष्ठ मंत्रमें कही है। विपुल सूर्यकिरणोंके साथ अपना संबंध करके पाठक रोगक्रिमियोंसे अपना बचाव कर सकते हैं। अन्य मंत्रोंका कथन स्पष्ट है, इसलिये उस विषयमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सुरक्षितताकी प्रार्थना।

[२४]

(ऋषिः — अथर्वा । देवता-ब्रह्मकर्मात्मा, नाना देवताः)

सविता प्रसवानामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ १ ॥
अग्निर्वनस्पतीनामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ २ ॥
द्यावापृथिवी दातॄणामधिपत्नी ते मावताम् ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ ३ ॥
वरुणोऽपामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ ४ ॥
मित्रावरुणौ वृष्ट्याधिपती तौ मावताम् ।

अर्थ—(अस्मिन् ब्रह्मणि) इस ब्रह्मयज्ञमें, (अस्मिन् कर्मणि) इस कर्ममें, (अस्यां पुरोधायां) इस पुरोहितके अनुष्ठानमें, (अस्यां प्रतिष्ठायां) इस प्रतिष्ठामें, (अस्यां चित्यां) इस चिन्तनमें, (अस्यां आकूत्यां) इस संकल्पमें, (अस्यां आशिषि) इस आशीर्वादमें, (अस्यां देवहूत्यां) इस देवोंकी प्रार्थनामें, (स्व-आ-हा) आत्मसर्वस्वका समर्पण करता हूं, इस समय (सः प्रसवानां अधिपतिः सविता मा अवतु) वह सब चेतनाओंका अधिपति प्रेरक परमेश्वर मेरी रक्षा करे ॥ १ ॥ (सः वनस्पतीनां अधिपतिः अग्निः मा अवतु) वह वनस्पतियोंका अधिपति अग्नि मेरी रक्षा करे ॥ २ ॥ (ते दातॄणां अधिपत्नी द्यावापृथिवी मा अवतां) वे दाताओंके अधिपती द्यावापृथिवी मेरी रक्षा करें ॥ ३ ॥ (सः अपां अधिपतिः वरुणः मा अवतु) वह जलोंका अधिपति वरुण मेरी रक्षा करे ॥ ४ ॥ (तौ वृष्ट्या अधिपती

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ ५ ॥
मरुतः पर्वतानामधिपतयस्ते मावन्तु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ ६ ॥
सोमो वीरुधामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ ७ ॥
वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ ८ ॥
सूर्यश्चक्षुषामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ ९ ॥
चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ १० ॥
इन्द्रो दिवोऽधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ ११ ॥

मित्रावरुणौ मा अवतां) वे दोनों वृष्टिके अधिपती मित्र और वरुण मेरी रक्षा करें ॥ ५ ॥ (ते पर्वतानां अधिपतयः मरुतः मा अवन्तु) वे पर्वतोंके अधिपती मरुत् मेरी रक्षा करें ॥ ६ ॥ (सः वीरुधां अधिपतिः सोमः मा अवतु) वह औषधियोंका अधिपति सोम मेरी रक्षा करे ॥ ७ ॥ (सः अन्तरिक्षस्य अधिपतिः वायुः मा अवतु) वह अन्तरिक्षका अधिपति वायु मेरी रक्षा करे ॥ ८ ॥ (सः चक्षुषां अधिपतिः सूर्यः मा अवतु) वह नेत्रोंका अधिपति सूर्य मेरी रक्षा करे ॥ ९ ॥ (सः नक्षत्राणां अधिपतिः चन्द्रमाः मा अवतु) वह नक्षत्रोंका अधिपति चन्द्र मेरी रक्षा करे ॥ १० ॥ (सः

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मरुतां पिता पशूनामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ १२ ॥
मृत्युः प्रजानामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ १३ ॥
यमः पितॄणामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ १४ ॥
पितरः परे ते मावन्तु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ १५ ॥
तता अवरे ते मावन्तु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ १६ ॥
ततस्ततामहास्ते मावन्तु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ॥ १७ ॥

दिवः अधिपतिः इन्द्रः मा अवतु) वह द्युलोकका अधिपति इन्द्र मेरी रक्षा करे ॥ ११ ॥ (सः पशूनां अधिपतिः मरुतां पिता मा अवतु) वह पशुओंका अधिपति मरुत्पिता मेरी रक्षा करे ॥ १२ ॥ (सः प्रजानां अधिपतिः मृत्युः मा अवतु) वह प्रजाओंका अधिपति मृत्यु मेरी रक्षा करे॥१३॥ (सः पितॄणां अधिपतिः यमः मा अवतु) वह पितरोंका अधिपति यम मेरी रक्षा करे ॥ १४ ॥ (ते परे पितरः मा अवन्तु) वे पूर्व पितर मेरी रक्षा करें ॥ १५ ॥ (ते अवरे तताः मा अवन्तु) वे पिछले पितामह मेरी रक्षा करें ॥ १६ ॥ (ते ततः ततामहाः मा अवन्तु) वे बडे प्रपितामह मेरी रक्षा करें ॥ १७ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अपनी सुरक्षितता।

ज्ञानोपदेशका कर्म, अन्यान्य पुरुषार्थ, यजन याजन, सबकी स्थिरता और सुदृढता बढानेवाले कर्म, चित्तसे चिंतन मनन आदि कर्म, संकल्प, आशीर्वाद देना और लेना, ईश्वरकी स्तुति प्रार्थना आदि कर्म तथा जो जो अन्यान्य कर्तव्य कर्म मनुष्य करता है, उसमें संपूर्ण देवताएं और उन देवताओंका प्रेरक परमात्मा मेरी रक्षा करे। यह प्रार्थना इस सूक्तमें है। यह स्पष्ट आशय है इस लिये अधिक स्पष्टीकरणकी आवश्यकता नहीं है।

गर्भधारणा।

[२५]

(ऋषिः— ब्रह्मा। देवता-योनिगर्भः)

पर्वताद् दिवो योनेरङ्गांदङ्गात् समाभृतम्।
शेपो गर्भस्य रेतोधाः सरौ पर्णमिवा दंधत् ॥ १ ॥

यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे।
एवा दंधामि ते गर्भं तस्मै त्वामवसे हुवे ॥ २ ॥

अर्थ:— (पर्वतात् दिवः) पर्वतसे लेकर द्युलोकपर्यंत स्थित पदार्थों के (अंगात् अंगात सं आभृतं) अंग प्रत्यंगसे इकट्ठा किया हुआ (योनेः) योनिके स्थानमें (रेतोधाः शेपः) वीर्य की स्थापना करनेवाला पुरुषेन्द्रिय (सरौ पर्णं इव) जलप्रवाहमें पत्ता रखनेके समान (गर्भस्य आदधत्) गर्भका बीज आधान करता है ॥ १ ॥

(यथा इयं मही पृथिवी) जिस प्रकार यह बडी पृथिवी (भूतानां गर्भं आदधे) समस्त भूतोंके गर्भ को धारण करती है, (एवा ते गर्भं दधामि) इस प्रकार तेरा गर्भ धारण करती हूँ (तस्मै अवसे त्वां हुवे) उस रक्षा के लिये तुझे बुलाती हूं ॥ २ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।
गर्भं ते अश्विनोभा धत्तां पुष्करस्रजा ॥ ३ ॥
गर्भं ते मित्रावरुणौ गर्भं देवो बृहस्पतिः ।
गर्भं त इन्द्रश्चाग्निश्च गर्भं धाता दधातु ते ॥ ४ ॥
विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ।
आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ॥ ५ ॥
यद् वेद राजा वरुणो यद् वा देवी सरस्वती ।
यदिन्द्रो वृत्रहा वेद तद् गर्भकरणं पिब ॥ ६ ॥
गर्भो अस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम् ।
गर्भो विश्वस्य भूतस्य सो अग्ने गर्भमेह धाः ॥ ७ ॥

अर्थ— हे (सिनीवालि) अल्प चन्द्रवाली रात्री देवी ! (गर्भं धेहि) गर्भका धारण कर। हे (सरस्वति) ज्ञानदेवी ! (गर्भं धेहि) गर्भका धारण कर। (उभौ पुष्करस्रजौ अश्विनौ) दोनों कमलमाला धारण करनेवाले अश्विदेवो (ते गर्भं आधत्तां) तेरे गर्भका धारण करें ॥ ३ ॥

(मित्रावरुणौ ते गर्भं) मित्र और वरुण तेरे गर्भको पुष्ट करें (देवः बृहस्पतिः गर्भं) देव बृहस्पति गर्भको धारण करे। (इन्द्रः च अग्निः च ते गर्भं) इन्द्र और अग्नि तेरे गर्भका धारण करे। (धाता ते गर्भं दधातु) धाता तेरे गर्भका धारण करे ॥ ४ ॥

(विष्णुः योनिं कल्पयतु) विष्णु योनिको समर्थ बनावे। (त्वष्टा रूपाणि पिंशतु) त्वाष्टा रूपोंको अवयवोंवाला बनावे। (प्रजापतिः आसिंचतु) प्रजापति गर्भको सींचे और (धाता ते गर्भं दधातु) धाता तेरे गर्भका धारण करे ॥ ५ ॥

(यत् राजा वरुणः वेद) जो वरुण राजा जानता है, (वा यत् देवी सरस्वती) अथवा जो देवी सरस्वती जानती है। (यत् वृत्रहा इन्द्रः वेद) जो वृत्रका नाश करनेवाला इन्द्र जानता है (तत् गर्भ-करणं पिब) वह गर्भको स्थिर करनेवाला यह रस पान कर ॥ ६ ॥

(ओषधीनां गर्भः असि) तू औषधियोंका गर्भ है, और (वनस्पतीनां गर्भः असि) तू वनस्पतियोंका गर्भ है, तू (विश्वस्य भूतस्य गर्भः) सब

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अधि स्कन्द वीरयस्व गर्भमा धेहि योन्याम् ।
वृषासि वृष्ण्यावन् प्रजायै त्वा नयामसि ॥ ८ ॥
वि जिहीष्व बार्हत्सामे गर्भस्ते योनिमा शयाम् ।
अदुष्टे देवाः पुत्रं सोमपा उभयाविनम् ॥ ९ ॥
धातः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः ।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥ १० ॥
त्वष्टः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः ।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥ ११ ॥
सवितः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः ।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥ १२ ॥
प्रजापते श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः ।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥ १३ ॥

भूतमात्रका गर्भ है, हे अग्ने ! (सः इह गर्भं आधाः) वह तू यहां गर्भका धारण कर ॥ ७ ॥

(अधिस्कंध) उठकर खडा हो, (वीरयस्व) वीरता कर, (योन्यां गर्भं आधेहि) योनिमें गर्भकी स्थापना कर। हे (वृष्ण्यावन् ! वृषा असि) वीर्यवान् ! तू बलवान है। (त्वा प्रजायै नयामसि) तुझे केवल सन्तानके लिये ही ले जाते हैं ॥ ८ ॥

हे (बार्हत्सामे) बृहत्साम गानेवाली स्त्री ! तू (विजिहीष्व) विशेष प्रकार तैयार रह। (ते योनिं गर्भः आशयां) तेरी योनिमें गर्भ स्थिर होवे। (सोमपाः देवाः उभयाविनं पुत्रं ते अदुः) सोमपान करनेवाले देवोंने तुम दोनोंकी रक्षा करनेवाले पुत्रको तुझे दिया है ॥ ९॥

हे (धातः) धाता ! और हे (त्वष्टः) रूप बनानेवाले देव ! हे (सवितः) उत्पादक देव ! हे (प्रजापते) प्रजापालक देव ! (अस्याः नार्याः गवीन्योः) इस स्त्रीके दोनों गर्भधारक नाडियोंके बीचमें (श्रेष्ठेन रूपेण पुमांसं पुत्रं आधेहि) उत्तम सुंदर रूपके साथ पुरुष संतान स्थापन कर और (दशमे मासि सूतवे) दसवें मासमें उत्पत्ति होनेके लिये उसे योग्य कर ॥ १०-१३ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

गर्भकी सुरक्षितता।

गर्भकी सुरक्षितताके लिये परमेश्वरकी तथा अन्यान्य देवताओंकी प्रार्थना इस सूक्त में की गई है। इस प्रकार की प्रार्थना करनेसे मानस शक्तिकी जाग्रति द्वारा बहुत लाभ होता है। इसके अतिरिक्त इस सूक्तमें गर्भविषयक अन्यान्य बहुतसी उपयुक्त बातें कहीं हैं, उसका थोडासा विचार यहां करना आवश्यक है।

पृथ्वीके ऊपरके पर्वत से लेकर द्युलोक पर्यंत अर्थात् इस द्यावा पृथिवीके अन्दर जितने पदार्थ हैं, उन सबके अंग प्रत्यंगोंके अंश लेलेकर और उन सब अंशोंको विशेष योजनासे इकट्ठा करके यह गर्भ बनाया गया है। यह प्रथम मंत्रका कथन है। अर्थात् इस गर्भमें जिस प्रकार सूर्य और चंद्रके अंश हैं, उसी प्रकार वायु और जलके अंशभी हैं और उसी रीतिसे ओषधिवनस्पतियोंके भी अंश हैं। जो ब्रह्माण्डमें है वही पिण्डमें है। ब्रह्माण्डका एक अंश ही पिंड है। इसी प्रकार पिताके अंग प्रत्यंगोंका सत्त्व वीर्य बिन्दुमें आता है और उसी वीर्य बिन्दुसे गर्भ होता है, इस लिये गर्भमें पिताके अंग प्रत्यंगोंका सत्त्व आया हुआ होता है। इस प्रकार एक दृष्टीसे यह गर्भ सब ब्रह्माण्डका सत्त्वांश है और दूसरी दृष्टिसे यह गर्भ पिताका सत्त्वांश है। गर्भमें, मानो, इतनी प्रचण्ड शक्तियां हैं, इस लिये गर्भकी जितनी सुरक्षा हो उतनी करनी चाहिये और उसकी जितनी उन्नति हो सके उतना यत्न करना चाहिये।

मंत्र २ से ९ तक देवताओंकी प्रार्थना है कि सब देव इस गर्भकी रक्षा के लिये सहायता देवें। और जो देवताओंके अंश यहां रहे हैं उनको अपनी शक्तिसे सुरक्षित रखें और बढावें। पाठक यहां स्मरण रखें कि रक्षा तो देवोंद्वारा ही होनी है, मनुष्यका कार्य इतना ही है कि वह उसमें रुकावट न करे। जिस प्रकार बंद कमरेमें सदा रहनेसे सूर्यकी रक्षासे मनुष्य दूर रहते हैं, उसी प्रकार अन्यान्य देवोंकी रक्षासे मनुष्य अपनी अज्ञानताके कारण दूर रहता है। इस लिये मनुष्यको उचित है कि वह अपने आपको इन देवताओंके स्वाधीन करे। ऐसा करनेसे इसकी उत्तम रक्षा हो सकती है। गर्भकी भी सुरक्षितताके लिये गर्भिणी स्त्री शुद्ध वायुमें तथा धूप आदिमें अपने आपको रखेगी और सूर्यादि देवोंसे जो रक्षा प्राप्त होती है उससे लाभ उठावेगी तो अधिक लाभ हो सकता है।

गर्भ उत्तम रीतिसे बढकर दसवें मासमें माताके उदरसे बाहर आना चाहिये। यह समय उसकी पूर्ण वृद्धिका है। यह बात दशम मंत्रमें कही है।

अन्य मंत्र गर्भाधान विषयक हैं वे सुविज्ञ पाठक सहजहीमें समझ सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यज्ञ ।

[२६]

(ऋषिः— ब्रह्मा । देवता–वास्तोष्पतिः । मन्त्रोक्ताः)

यजूंषि यज्ञे समिधः स्वाहाग्निः प्रविद्वानिह वो युनक्तु ॥ १ ॥
युनक्तु देवः सविता प्रजानन्नस्मिन् यज्ञे महिषः स्वाहा ॥ २ ॥
इन्द्र उक्थामदान् यस्मिन् यज्ञे प्रविद्वान् युनक्तु सुयुजः स्वाहा ॥ ३ ॥
प्रैषा यज्ञे निविदः स्वाहा शिष्टाः पत्नीभिर्वहतेह युक्ताः ॥ ४ ॥
छन्दांसि यज्ञे मरुतः स्वाहा मातेव पुत्रं पिपृतेह युक्ताः ॥ ५ ॥

अर्थ— (प्र विद्वान् अग्निः इह यज्ञे) विशेष ज्ञानी अग्नि इस यज्ञमें (वः यजूंषि समिधः) आपके लिये यजुर्वेद मंत्र और समिधाएं (युनक्तु, स्वाहा) उपयोगमें लावे, मैं अपनी आहुतियां समर्पित करता हूं ॥ १ ॥

(महिषः प्रजानन् सविता देवः) महान् ज्ञानी सर्व प्रेरक सविता देव (अस्मिन् यज्ञे युनक्तु, स्वाहा) इस यज्ञमें हवन सामग्रीका उपयोग करे, मैं अपनी आहुतियां समर्पित करता हूं ॥ २ ॥

(प्रविद्वान् सुयुजः इन्द्रः) ज्ञानी सुयोग्य इन्द्र, (अस्मिन् यज्ञे उक्थ-मदानि युनक्तु, स्वाहा) इस यज्ञमें आनन्दकारक स्तुतिस्तोत्रोंको प्रयुक्त करे, इसमें मेरा समर्पण हो ॥ ३ ॥

(प्रैषाः निविदः इह यज्ञे युक्ताः शिष्टाः) आज्ञाएं और आत्मनिवेदन करनेकी रीतियां जाननेवाले इस यज्ञमें नियुक्त हुए शिष्ट लोग (पत्नीभिः वहत, स्वाहा) अपनी धर्मपत्नियोंके साथ यज्ञका भार उठावें, यज्ञमें मेरा समर्पण हो ॥ ४ ॥

(माता इव पुत्रं) माता जैसी पुत्रको पूर्ण करती है, उस प्रकार (इह यज्ञे युक्ताः मरुतः) इस यज्ञमें लगे हुए मरुत् देव (छंदांसि पितृत, स्वाहा) छंदोंको पूर्ण करें, मेरा समर्पण यज्ञके लिये होवे ॥ ५ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

एयमगन् बर्हिषा प्रोक्षणीभिर्यज्ञं तन्वानादितिः स्वाहा ॥ ६ ॥
विष्णुर्युनक्तु बहुधा तपांस्यस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ ७ ॥
त्वष्टा युनक्तु बहुधा नु रूपा अस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ ८ ॥
भगो युनक्त्वाशिषोन्वस्मा अस्मिन् यज्ञे प्रविद्वान् युनक्तु सुयुजः स्वाहा ॥९॥
सोमो युनक्तु बहुधा पयांस्यस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ १० ॥
इन्द्रो युनक्तु बहुधा वीर्याण्यस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ॥ ११ ॥
अश्विना ब्रह्मणा यातमर्वाञ्चौ वषट्कारेण यज्ञं वर्धयन्तौ।
बृहस्पते ब्रह्मणा याह्यर्वाङ् यज्ञो अयं स्वरिदं यजमानाय स्वाहा ॥ १२ ॥

॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

अर्थ-(इयं अदितिः बर्हिषा प्रोक्षणीभिः) यह अदिती देवी हवन सामग्री और शोधक साधनोंके साथ (यज्ञं तन्वाना आ अगन् स्वाहा) यज्ञका विस्तार करती हुई आई है। इस यज्ञमें मेरा समर्पण होवे ॥ ६ ॥

(सुयुजः विष्णुः अस्मिन् यज्ञे) सुयोग्य विष्णु देव इस यज्ञमें (तपांसि बहुधा युनक्तु, स्वाहा) अपनी तपन शक्तियोंका बहुत प्रकार उपयोग करे। इस यज्ञमें मेरा समर्पण होवे ॥ ७ ॥

(सुयुजः त्वष्टा अस्मिन् यज्ञे) सुयोग्य त्वष्टा देव इस यज्ञमें (रूपाः नु बहुधा युनक्तु, स्वाहा) विविध रूपोंको बहुत प्रकार प्रयुक्त करे। इस यज्ञमें मेरा समर्पण हो ॥ ८ ॥

(सुयुजः प्रविद्वान् भगः अस्मिन् यज्ञे) सुयोग्य ज्ञानी भग देव इस यज्ञमें (अस्मै नु आशिषः युनक्तु, स्वाहा) इस के लिये आशीर्वाद देवे। इस यज्ञमें मेरा आत्मसमर्पण होवे ॥ ९ ॥

(सुयुजः सोमः अस्मिन् यज्ञे) सुयोग्य सोम देव इस यज्ञमें (पयांसि बहुधा युनक्तु, स्वाहा) जलोंको बहुत प्रकार प्रयुक्त करे, मेरा समर्पण इस यज्ञमें होवे ॥ १० ॥

(सुयुजः इन्द्रः अस्मिन् यज्ञे) सुयोग्य इन्द्र देव इस यज्ञमें (वीर्याणि बहुधा युनक्तु, स्वाहा) अपने सामर्थ्योंका बहुत प्रकार उपयोग करे। इस यज्ञमें मेरा समर्पण हो ॥ ११ ॥

हे (अश्विनौ) अश्विदेवो! (ब्रह्मणा वषट् कारेण यज्ञं वर्धयन्तौ) ज्ञान

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

और दान द्वारा यज्ञको बढाते हुए (अर्वाञ्चौ आयातं) हमारे पास आवो। हे बृहस्पते! (ब्रह्मणा अर्वाङ् आयाहि) ज्ञानके साथ पास आ। (अयं यज्ञः यजमानाय स्वः) यह यज्ञ यजमान के लिये तेज बढानेवाला होवे। (स्वाहा) यज्ञमें आत्मसमर्पण होवे ॥ १२ ॥

यज्ञमें आत्मसमर्पण।

"स्वाहा" शब्दका अर्थ (स्व+आ+हा) 'अपना करके कहने योग्य जो जो पदार्थ हैं उन सबका जगत्की भलाईके लिये समर्पण करना' है। वास्तविक रीतिसे यज्ञमें यह आत्मशक्तिका समर्पण अत्यंत मुख्य भाग है। मानो, इसके बिना कोई यज्ञ हो नहीं सकता। यज्ञमें आहुति देते समय "स्वाहा, न मम" (यह पदार्थ मैंने यज्ञमें दिया है, अब यह मेरा नहीं है) यह मंत्र जो पढा जाता है उसका तात्पर्य आत्मसमर्पणका पाठ देना ही है। इस सूक्तके प्रत्येक मंत्रमें 'स्वाहा' शब्दका पाठ इसी लिये किया है।

अग्नि, सविता, इन्द्र, मरुत्, अदिति, विष्णु, त्वष्टा, भग, सोम, अश्विनौ, बृहस्पति आदि सब देवताएं जगत्के यज्ञमें अपना अपना कार्य कर रहीं हैं, अर्थात् अपनी अपनी शक्तियोंका समर्पण कर रही हैं, यह देवताओंका आत्मसमर्पण देखकर हरएक मनुष्यको उचित है कि, वह भी अपनी संपूर्ण शक्ति यज्ञमें समर्पित करे और अपने जीवनकी सार्थकता यज्ञद्वारा करे। अग्नि उष्णता देता है, सविता प्रकाश देता है, इन्द्र चमकता है, मरुत् जीवन देते हैं, अदिति आधार देती है, विष्णु सर्वत्र व्यापकर सबकी रक्षा करता है, त्वष्टा सब पदार्थोंके रूप बनाता है, भग सबको भाग्यवान बनाता है, सोम सबको शांति देता है, अश्विनी देव सबके दोष दूर करते हैं, बृहस्पति सबको ज्ञान देता है किंवा एक ही परमात्मदेव इतनी शक्तियों द्वारा जगत्का यज्ञ सांग संपूर्ण करता है। ये सब देव ये कार्य अपने सुखके लिये नहीं करते, परंतु सब जगत्की भलाईके लिये आत्मशक्तिका समर्पण करते हैं। इसी प्रकार मनुष्य भी अपनी तन मन धनादि सब शक्तियोंका यज्ञ जनताकी भलाईके लिये करें और इस आत्मसर्वस्व समर्पणके यज्ञद्वारा अपने जीवनकी सफलता करें। इस प्रकार यज्ञमय जीवन व्यतीत करनेका उपदेश इस सूक्तने दिया है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अग्निकी ऊर्ध्वगति।

[२७]

(ऋषिः- ब्रह्मा । देवता- अग्निः)

ऊर्ध्वा अस्य समिधो भवन्त्यूर्ध्वा शुक्रा शोचींष्यग्नेः ।
द्युमत्तमा सुप्रतीकः ससूनुस्तनूनपादसुरो भूरिपाणिः ॥१॥
देवो देवेषु देवः पथो अनक्ति मध्वा घृतेन ॥ २ ॥
मध्वा यज्ञं नक्षति प्रैणानो नराशंसो अग्निः सुकृद् देवः सविता विश्ववारः ॥३॥
अच्छायमेति शवसा घृता चिदीडानो वह्निर्नमसा ॥ ४ ॥
अग्निः स्रुचो अध्वरेषु प्रयक्षु स यक्षदस्य महिमानमग्नेः ॥ ५ ॥

अर्थ-(अस्य अग्नेः समिधः ऊर्ध्वाः भवन्ति) इस अग्निकी समिधाएं ऊंची होती हैं, तथा इस अग्निकी (शुक्रा शोचींषि ऊर्ध्वा भवन्ति) शुद्ध ज्वालाएं ऊंची होती हैं। यह अग्नि (द्युमत्तमा) अति प्रकाशवाला, (सु-प्रतीकः, ससूनुः) सुंदररूपवाला, पुत्रोंसहित रहनेवाला, (तनू-न-पात्, असु-रः) शरीरको न गिरानेवाला, जीवन देनेवाला, (भूरि-पाणिः) अनेक हाथोंसे अर्थात् ज्वलाओंसे युक्त है ॥ १ ॥

(देवेषु देवः देवः) सब देवोंमें मुख्य देव (मध्वा घृतेन पथः अनक्ति) मधुर घृतसे मार्गको प्रकट करता है ॥ २ ॥

(नराशंसः सुकृत् सविता विश्ववारः देवः अग्निः) मनुष्यों द्वारा प्रशंसित होने योग्य, उत्तम कर्म करनेवाला, प्रेरक, सबको स्वीकार करने योग्य दिव्य अग्नि (मध्वा यज्ञं प्रैणानः नक्षति) मधुरतासे यज्ञको प्रेरित करता हुआ चलता है ॥ ३ ॥

(अयं ईडानः वह्निः शवसा घृता नमसा चित्) यह स्तुति किया गया अग्नि बल, घृत और नमनादिके साथ (अच्छ एति) भली प्रकार चलता है ॥ ४ ॥

(अध्वरेषु स्रुचः प्रयक्षु अग्निः) यज्ञोंमें स्रुचाओं [चमसों] की इच्छा करनेवाला अग्नि होता है। (सः अस्य अग्नेः महिमानं यक्षत्) वह यजमान इस अग्निकी महिमाकी उपासना करे ॥ ५ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

तरी मन्द्रासु प्रयक्षु वसवश्चातिष्ठन् वसुधातरश्च ॥ ६ ॥
द्वारो देवीरन्वस्य विश्वे व्रतं रक्षन्ति विश्वहा ॥ ७ ॥
उरुव्यचसाऽग्नेर्धाम्ना पत्यमाने ।
आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्तेमं यज्ञमवतामध्वरं नः ॥८॥
दैव्या होतार ऊर्ध्वमध्वरं नोऽग्नेर्जिह्वयाभि गृणत गृणता नः स्विष्टये ।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तामिडा सरस्वती मही भारती गृणाना ॥ ९ ॥
तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु ।
देव त्वष्टा रायस्पोषं वि ष्य नाभिमस्य ॥ १० ॥

अर्थ-(तरी मन्द्रासु प्रयक्षु) तारण करनेवाला अग्नि हर्षके समयमें यजन करनेवाला होता है। (वसु-धा-तरः वसवः च अतिष्ठन्) धनोंका अधिक धारण करनेवाला अग्नि और वसु सबका अतिक्रमण करके स्थित हैं ॥ ६ ॥

(अस्य व्रतं देवीः द्वारः) इस के व्रतकी दिव्य द्वार और (विश्वे) सब अन्य देव (विश्व-हा अनु रक्षन्ति) सर्वदा अनुकूलतासे रक्षा करते हैं ॥ ७ ॥

(अग्नेः उरु-व्यचसा धाम्ना) अग्निके अतिविस्तृत धाम से (पत्यमाने सु-सु-अयन्ती उपाके यजते) पतिरूप बनने वाली, उत्तम रीतिसे चलनेवाली, समीपस्थित, परस्पर संगत, (उषासानक्ता नः इमं अध्वरं यज्ञं आ अवतां) प्रातःकाल और सायंकाल हमारे इस हिंसारहित यज्ञकी उत्तम रक्षा करें ॥ ८ ॥

हे (दैव्या होतारः) दिव्य होता गण! (नः ऊर्ध्वं अध्वरं अग्नेः जिह्वया अभिगृणत) हमारे ऊंचे यज्ञकी अग्निकी जिह्वा के द्वारा प्रशंसा करो और (नः स्विष्टये गृणत) हमारी उत्तम इष्टीके लिये प्रशंसा करो। (इडा सरस्वती भारती मही) मातृभाषा, मातृसभ्यता, और पोषण करनेवाली मातृभूमि ये (तिस्रः देवीः) तीन देवताएं (इदं बर्हिः सदन्तां) इस यज्ञमें विराजें ॥९॥

(देव त्वष्टः) हे त्वष्टा देव! (नः तत् तुरी-पं अद्भुतं) हमारे लिये वह त्वरासे रक्षा करनेवाला अद्भुत (पुरुक्षु रायः पोषं) निवास के लिये हितकारी धन और पुष्टि दे और (अस्य नाभिं विष्य) इसकी मध्य ग्रंथी को खोल दे ॥ १० ॥

*

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वनस्पतेऽव सृजा रराणः ।
त्मना देवेभ्यो अग्निर्हव्यं शमिता स्वदयतु ॥ ११ ॥

अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेदः ।
इन्द्राय यज्ञं विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम् ॥ १२ ॥

अर्थ-- हे वनस्पते ! (रराणः अवसृज) दान करता हुआ तू हमें दानकर। (शमिता अग्निः त्मना देवेभ्यः हव्यं स्वदयतु) शान्ति स्थापन करनेवाला अग्निदेव आत्मशक्तिसे देवोंके लिये हवनीय पदार्थोंका स्वाद देवे ॥ ११ ॥

हे (जातवेदः अग्ने) ज्ञानी प्रकाशस्वरूप देव! (स्वाहा कृणुहि) तू स्वाहा रूप यज्ञ कर। तथा (इन्द्राय यज्ञं) इन्द्रदेव के लिये यज्ञ कर। (विश्वे देवाः इदं हविः जुषन्तां) सब देव यह हवि सेवन करें॥ १२॥

यज्ञका महत्त्व।

यह सूक्त यज्ञकी प्रशंसापर है। यज्ञयाग करनेसे दिव्य लोकमें जानेका मार्ग खुला होता है यह बात द्वितीय मंत्रमें कही है। जिस प्रकार (अग्नेः उर्ध्वाः शोचींषि) अग्निकी ज्वाला ऊपर जाती है और कभी नीचेकी दिशामें नहीं जाती, ठीक इस प्रकार अग्निकी उपासना करनेवाला याजक सीधा उच्च मार्गसे उच्च गति प्राप्त करता है। यज्ञयागका यह महान फल है।

यज्ञके द्वारा मातृभाषा, मातृसभ्यता और मातृभूमिका आदर बढता है, क्यों कि यज्ञके द्वारा इनकी ही सेवा की जाती है। यज्ञमें इनके लिये अग्रस्थान मिलता है। यह बात नवम मंत्रमें कही है।

इस सूक्तमें कहे अग्निके विशेषण विचार करने योग्य हैं। उन गुणोंका मनन करके उनसे बोधित होनेवाले गुण उपासकको अपने अन्दर बढाना चाहिये। उन्नतिका यह सीधा मार्ग है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दीर्घायु और तेजस्विता ।

[२८]

(ऋषिः — अथर्वा । देवता-त्रिवृत्)

नव॑ प्राणान्नवभिः सं मिमीते दीर्घायुत्वाय॑ शतशा॑रदाय ।
हरि॑ते त्रीणि रज॒ते त्रीण्यय॑सि त्रीणि तप॒साविष्ठितानि ॥ १ ॥
अग्निः सूर्य॑श्चन्द्रमा भूमि॒रापो द्यौर॒न्तरि॑क्षं प्रदिशो दिश॑श्च ।
आर्त॒वा ऋतुभिः संविदा॒ना अने॑न मा त्रिवृता॑ पारयन्तु ॥ २ ॥

अर्थ- (शतशारदाय दीर्घायुत्वाय) सौ वर्षवाले दीर्घ जीवन के लिये (नव प्राणान् नवभिः सं मिमीते) नव प्राणोंको नव इंद्रियोंके साथ समानतासे मिलाता है । (हरिते त्रीणि, रजते त्रीणि, अयसि त्रीणि) सुवर्ण में तीन, चांदीमें तीन और लोहेमें तीन (तपसा आविष्ठितानि) उष्णतासे विशेष प्रकार स्थित हैं ॥ १ ॥

अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, भूमि, जल, द्यौ, अन्तरिक्ष, (प्रदिशः दिशः) उपदिशाएं और दिशाएं, (ऋतुभिः संविदानाः आर्तवः) ऋतुओंके साथ मिले हुए ऋतुविभाग (अनेन त्रिवृता मा पारयन्तु) इस तीनों के योग से मुझे पार ले जावें ॥ २ ॥

भावार्थ- दीर्घ आयुकी प्राप्तिके लिये नव प्राणोंको नव इंद्रियोंमें सम प्रमाणमें स्थिर करते हैं । सुवर्णके तीन, चांदीके तीन और लोहेके तीन मिलकर नौ धागे उष्णतासे इकट्ठे जोड देते हैं । यह सुवर्णका यज्ञोपवीत होता है ॥ १ ॥

जिसके तीनों धागोंमें क्रमशः भूमि, जल, अग्नि, चन्द्र, अन्तरिक्ष, सूर्य, द्युलोक, दिशा उपदिशाएं, और ऋतु आदि कालविभाग ये नव दिव्य तत्त्व रहते हैं, वह तीन धागोंवाला यज्ञोपवीत मुझे दुःखोंसे पार करके दीर्घ जीवन देवे ॥ २ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

त्रयः पोषास्त्रिवृति श्रयन्तामनक्तु पूषा पयसा घृतेन ।
अन्नस्य भूमा पुरुषस्य भूमा भूमा पशूनां त इह श्रयन्ताम् ॥ ३ ॥
इममादित्या वसुना समुक्षतेममग्ने वर्धय वावृधानः ।
इममिन्द्र सं सृज वीर्येणास्मिन् त्रिवृच्छ्रयतां पोषयिष्णुः ॥ ४ ॥
भूमिष्ट्वा पातु हरितेन विश्वभृदग्निः पिपर्त्वयसा सजोषाः ।
वीरुद्भिष्टे अर्जुनं संविदानं दक्षं दधातु सुमनस्यमानम् ॥ ५ ॥

अर्थ-(त्रिवृति त्रयः पोषाः श्रयन्तां) इस तिहरे उपवीतमें तीन पुष्टियां बनी रहें। (पूषा पयसा घृतेन अनक्तु) पूषा दूध और घीसे हमें भरपूर करे। (अन्नस्य भूमा) अन्नकी विपुलता, (पुरुषस्य भूमा) पुरुषों की अधिकता, तथा (पशूनां भूमा) पशुओंकी समृद्धि (ते इह श्रयन्तां) तेरे यहां ये सब स्थिर रहें ॥ ३ ॥

हे (आदित्याः) आदित्यो! (इमं वसुना सं उक्षत) इसको तुम वसुओं से सींचो। हे अग्ने! (वावृधानः इमं वर्धय) तू स्वयं बढता हुआ इसको बढा। हे इन्द्र ! (इमं वीर्येण सं सृज) इस को वीर्यसे युक्त कर। (अस्मिन् पोषयिष्णु त्रिवृत् श्रयतां) इसमें पोषण करनेवाला तिहरा उपवीत स्थिर रहे ॥ ४ ॥

(भूमिः हरितेन त्वा पातु) भूमि सुवर्णके द्वारा तेरी रक्षा करे। (विश्वभृत सजोषाः अग्निः अयसा पिपर्तु) सबका पोषण करनेवाला प्रेममय अग्नि लोहके द्वारा तुझे पूर्ण करे। (वीरुद्भिः संविदानं अर्जुनं सुमनस्यमानं दक्षं) औषधियों द्वारा प्राप्त होनेवाला कलंकरहित शुभसंकल्पमय बल (ते दधातु) तेरे लिये धारण करे॥ ५॥

भावार्थ— इस तिहरे उपवीतसे तीन पुष्टियाँ मिलती हैं। पोषण कर्ता परमेश्वर हमें दूध और घी भरपूर देवे। अन्नकी पुष्टि, मनुष्योंकी सहायता, पशुओंकी विपुलता ये तीन पुष्टियां हमें यहां मिलें ॥ ३ ॥ आदित्य हमें सब वसुओंकी शक्ति प्रदान करे। अग्नि हमारी वृद्धि करे। इन्द्र वीर्य बढावे। इस प्रकार यह तिहरा यज्ञोपवीत सब दुःखोंसे पार करनेवाला हमारे ऊपर स्थिर रहे ॥ ४ ॥ सुवर्णके धागेसे भूमि रक्षा करे। लोहेके धागेसे सबका पोषक अग्नि हमारी पूर्णता करे। तथा चांदीके धागेसे औषधियोंकी शक्तियोंके साथ हमें उत्तम मनयुक्त बल प्राप्त होवे ॥ ५ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

त्रेधा जातं जन्मनेदं हिरण्यमग्नेरेकं प्रियतमं बभूव सोमस्यैकं हिंसितस्य परापतत् ।
अपामेकं वेधसां रेत आहुस्तत् ते हिरण्यं त्रिवृदस्त्वायुषे ॥ ६ ॥
त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् ।
त्रेधामृतस्य चक्षणं त्रीण्यायूंषि तेऽकरम् ॥ ७ ॥
त्रयः सुपर्णास्त्रिवृता यदायन्नेकाक्षरमभिसंभूय शक्राः ।
प्रत्यौहन्मृत्युममृतेन साकमन्तर्दधाना दुरितानि विश्वा ॥ ८ ॥

अर्थ-(इदं हिरण्यं जन्मना त्रेधा जातं) यह सुवर्ण जन्मसेही तीन प्रकारसे उत्पन्न हुआ। उनमें से (एकं अग्नेः प्रियतमं बभूव) एक अग्निको अतिप्रिय हुआ है। (एकं हिंसितस्य सोमस्य परापतत) दूसरा निचोडे सोमसे बाहर निकलता है। (एकं वेधसां अपां रेतः आहुः) तीसरा सारभूत जलका वीर्य है ऐसा कहते हैं। (तत् त्रिवृत् हिरण्यं) वह तिहरा सुवर्ण (ते आयुषे अस्तु) तेरी आयुके लिये होवे॥ ६॥

(जमदग्नेः त्र्यायुषं) जमदग्निकी तिहरी आयु, (कश्यपस्य त्र्यायुषं) कश्यप की तिहरी आयु, यह (अमृतस्य त्रेधा चक्षणं) अमृतका तीन प्रकारका दर्शन है। इससे (ते त्रीणि आयूंषि अकरं) तेरे लिये तीन आयुष्यों को करता हूं॥ ७॥

(यत् शक्राः त्रयः सुपर्णाः) जब समर्थ तीन सुपर्ण (त्रिवृता एकाक्षरं अभि संभूय आयन्) तिहरे होकर एक अक्षरमें सब प्रकार मिलकर रहे हैं। वे (अमृतेन साकं विश्वा दुरितानि अन्तर्दधानाः) अमृतके साथ सब अनिष्टोंको मिटाकर (मृत्युं प्रति औहन्) मौत को दूर करते हैं॥८॥

भावार्थ-स्वभावतः सुवर्ण तीन प्रकारका है। एक अग्निके लिये प्रिय है, दूसरा सोमके रसके रूपसे प्राप्त होता है, और तीसरा सारभूत जल जो वीर्य रूपसे शरीरमें रहता है। यह तिहरा सुवर्ण है, यह मेरी आयु बढानेवाला होवे॥ ६॥ जमदग्नि और कश्यपकी बाल तरुण और वृद्ध अवस्थामें व्यापनेवाली तिहरी आयु, मानो, अमृतका साक्षात्कार करनेवाली है। यह तीन प्रकार की आयु हमें प्राप्त होवे॥ ७॥ तीन बडी शक्तियां हैं जो एक ही अक्षरमें रहती हैं। उस अमृतसे सब अनिष्ट दूर होते हैं और उससे मृत्युको दूर किया जाता है॥ ८॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दि॒वस्त्वा॑ पातु ह॒रितं॒ मध्या॑त् त्वा पात्वर्जु॑नम् ।
भूम्या॑ अय॒स्मयं॑ पातु प्रागा॑द् देवपु॒रा अ॒यम् ॥ ९ ॥
इ॒मास्ति॒स्रो दे॑वपु॒रास्तास्त्वा॑ रक्षन्तु स॒र्वत॑ः ।
तास्त्वं बिभ्र॑द् वर्च॒स्व्युत्त॑रो द्विष॒तां भ॑व ॥ १० ॥
पु॒रं दे॒वाना॑म॒मृतं॒ हिर॑ण्यं॒ य आ॑बे॒धे प्र॑थ॒मो दे॒वो अग्रे॑ ।
तस्मै॒ नमो॒ दश॒ प्राचीः॑ कृणो॒म्यनु॑ मन्यतां त्रि॒वृदा॒बधे॑ मे ॥ ११ ॥

अर्थ-(हरितं त्वा दिवः पातु) सुवर्ण तेरी द्युलोकसे रक्षा करे, (अर्जुनं त्वा मध्यात् पातु) श्वेत तेरी अन्तरिक्षसे रक्षा करे, (अयस्मयं भूम्याः पातु) लोहमय भूमिके स्थानसे तेरी रक्षा करे । (अयं देव-पुराः प्रागात्) यह देवोंकी पुरियोंमें प्राप्त हुआ है ॥ ९ ॥

(इमाः तिस्रः देव-पुराः) ये तीन देव नगरियां हैं, (ताः सर्वतः त्वा रक्षन्तु) वे सब प्रकारसे तेरी रक्षा करें । (त्वं ताः बिभ्रत् वर्चस्वी) तू उनको धारण करके तेजस्वी हो कर (द्विषतां उत्तरः भव) वैरियों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ हो ॥ १० ॥

(देवानां हिरण्ययं पुरं अमृतं) देवों की सुवर्णमय नगरी अमृत रूप है । (यः प्रथमः देवः अग्ने आबेधे) जिस पहिले देवने सबसे पूर्व इनको बांधा था । (तस्मै दश प्राचीः नमः कृणोमि) उसको मेरी दस अंगुलियां जोडकर नमस्कार करता हूं । (त्रिवृत् मे आबधे, अनुमन्यतां) यह तिहरा उपवीत मेरे शरीरपर बांधता हूं, इसके लिये अनुमति दें ॥ ११ ॥

भावार्थ- सुवर्ण द्युलोकसे, चांदी अन्तरिक्षसे, और लोहा भूमीसे तेरी रक्षा करे । ये देवोंकी नगरियां ही प्राप्त हुई हैं ॥ ९ ॥

ये तीन देवनगरियां हैं । ये तीनों सबकी रक्षा करें । इनका धारण करनेवाला तेजस्वी होकर शत्रुओंको नीचे कर देता है ॥ १० ॥

देवोंकी सुवर्णमय नगरी अमृतसे परिपूर्ण है । जो पहिला देव इसको सबसे पहिले स्थिर करता है, उसको हाथ जोडकर नमस्कार करते हैं । यह तिहरा उपवीत मैं अपने शरीरपर बांधता हूं, मुझे अनुमति दीजिये ॥ ११ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वर्ष १०

अंक ९

क्रमांक ११८

आश्विन संवत् १९८६

अक्तूबर सन १९२९

वैदिक धर्म.

वैदिक तत्त्वज्ञान प्रचारक मासिक पत्र।

संपादक—श्रीपाद दामोदर सातवळेकर।

स्वाध्यायमंडल, औंध (जि. सातारा)

" निष्कलंक वीर ! "

परा शुभ्रा अयासो यव्या साधारण्येव मरुतो मिमिक्षुः।
न रोदसी अपनुदन्त घोरा जुषन्त वृधं सख्याय देवाः॥

ऋ. १।१६७।४

" (अयासः शुभ्राः) गतिशील और कलंकरहित, (यव्याः घोराः) मिलजुलकर रहनेवाले और शूरवीर, (मरुतः देवाः) मरनेके लिये तैयार देववीर जिस प्रकार (रोदसी न-अपनुदन्त) अपने मातापितारूप द्यावा पृथिवी का कदापि तिरस्कार नहीं करते, प्रत्युत उनको (साधारण्या इव मिमिक्षुः) साधारण स्त्री के समान जलसिंचन द्वारा शान्त करते हैं और (सख्याय वृधं जुषन्त) उनके साथ मित्रता करनेके लिये ही धनादि ऐश्वर्य का स्वयं सेवन करते हैं, उस प्रकार अन्य मनुष्य व्यवहार करें।

मनुष्य प्रगतिशील, निष्कलंक, मिलजुलकर रहनेवाले, उग्रवीर और मरनेतक उत्साह से कार्य करनेवाले होकर, ऐसा आचरण करें कि जिससे मातापिताका नाम और यश बढे और मातृभूमिका गौरव होवे। अपनी योग्यता कितनी भी बढ गयी तो भी हम साधारण मनुष्य हैं, ऐसा मान कर, अपना जीवन मातृभूमिके हितके लिये समर्पित करना, सब जानों में मित्रता बढाना और जिससे सब जनताका हित हो, ऐसे शुभकर्म में अपने तनमन धन का उपयोग करना सबको योग्य है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यम और पितर।

'यम और पितर' यह विषय बडा मनोरंजक है। हरद्वार कांगडी गुरुकुल के सन्मान्य स्नातक पं० मंगलदेव (तडित्कांत) जी वेदालंकार यहां आकर उक्त विषयकी खोज गत वर्ष से कर रहे हैं। चारों वेदों में इस विषय के साथ संबंध रखनेवाले जितने मंत्र और सूक्त हैं उतने सब मंत्रो और सूक्तोंका संग्रह करके उनको योग्य प्रकरणों में विभक्त करके, अपनी ओर से अधिक टिप्पणी न देते हुए जो बात मंत्र स्वयं बोलते हैं, उतना ही भाव बताकर लेख लिखनेका कार्य कर रहे हैं। इस कारण पं० तडित्कांतजीका यह लेख खोज करनेवालों के लिये निःसन्देह अपूर्व सहायक सिद्ध होगा। खोज करने के लिये जितना निष्पक्षपाती मन बनाना चाहिये, उतना बनाने का यत्न वे कर रहे हैं।

हमारा धर्म वही है, जो कि वेदके मंत्रों में कहा हुआ है। इस लिये सभी धार्मिक बातों के विषय में वेद मंत्र क्या उपदेश देते हैं, यह निष्पक्षपात की दृष्टिसे देखना चाहिये। परंतु कई लोग कुछ मानी हुई बातों को मन में धर कर उन कल्पित बातों की मर्यादा में वेद मंत्रोंका अर्थ करनेका यत्न करते हैं, और वेद मंत्रों के अर्थ को उतना खींचते हैं कि जितना उनकी मनःप्रवृत्ति चाहती है। इस प्रकार के प्रयत्न सर्वथा और सर्वदा त्याज्य हैं।

हमें निश्चय है इस लेख में वैसा दोष नहीं हो रहा है और विशुद्ध दृष्टिसे ही मंत्रोंका सरल अर्थ करनेका यत्न करने के कारण यह लेख जनता के आदर के लिये पात्र होगा।

इस लेख की भूमिका गतांकमें दी है, उसके आगे का विषय इस अंक में विस्तृत रूपसे इस लिये दिया है कि इस विषयका विचार करनेवाले पाठक इस लेख को एक ही स्थानपर पढें। पहिले यह लेख वैदिक धर्म में थोडा थोडा देने का विचार था, परंतु वैसा करने से पाठकों को विषयका अनुसन्धान नहीं रहेगा, ऐसा विचार करके लेख का पहिला भाग इसी एक अंक में विस्तारपूर्वक दिया है। आगे इस विषय के कई भाग हो रहे हैं वे भी तैयार होते ही "वैदिक धर्म" में इसी प्रकार दिये जायेंगे।

इस विषय के ऊपर विचार करनेवाले पाठक पढते ही एकदम अनुकूल अथवा प्रतिकूल लिखने के लिये कलम न उठावें। इसके संपूर्ण भाग विचारपूर्वक पढकर पश्चात् जो भी लिखना हो, लिखें। यह प्रकाशन अन्तिम सिद्धान्त बतानेके लिये नहीं हो रहा है। ये लेख इकट्ठे करके देश के विद्वानों के पास भेजे जायंगे और उनकी अनुकूल प्रतिकूल संमति जान कर, तत्पश्चात् पुनः विचार करके इस विषय पर अन्तिम लेख पुस्तक रूपसे प्रकाशित किया जायगा। इस समय करीब एक वर्ष की खोज के लेख सार रूपसे विचारार्थ पाठकों के सन्मुख रखे जाते हैं। इस विषय के सब मंत्रोंका समन्वय इस समय तक किसीने नहीं किया है। यदि किसी को इस लेखमालासे कुछ लाभ न भी हुआ, तो भी इस विषय के मंत्रोंका संग्रह अर्थ सहित एकत्रित करनेका श्रेय तो सबसे पहिले इन को मिलेगा ही, इस में कोई संदेह नहीं है। जो लोग वेदसमन्वय का महत्त्व समझते हैं और वैदिक विषयोंकी खोज करने के लिये टक्करें मारते हैं, उन के लिये इस प्रकार के एक एक विषय के मंत्रसंग्रह भी बहुत लाभकारी हैं।

आशा है कि पाठक इस लेख मालासे लाभ उठावेंगे। "संपादक"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बौद्धोंकी एकतामें पंथभेदकी उत्पत्ति।

भगवान् शाक्यमुनि गौतम बुद्धजीने अपने धर्मकी स्थापना ईसा के पूर्व की पांचवीं शताब्दिमें की। इसके पहले की दो शताब्दियों में न्हास होनेवाले वैदिक धर्म में अव्यवस्था हो चली थी और भिन्न भिन्न वैदिक वा वेदबाह्य ऐसे द्विविध धर्ममतों का प्रचार हो रहा था। उपनिषद की ब्रह्मविद्या की प्राप्तिके लिए साधन चतुष्टय की आवश्यकता है। यह साधन चतुष्टय इस प्रकार है। नित्यानित्यवस्तु विवेक, इहामुत्र-फलभोग-विराग, शमादि संपत्ति और मुमुक्षुत्व। इन्हीके आधार पर संन्यास मार्ग उत्पन्न हुआ। ब्रह्ममीमांसा के लिए विवाद बढ गए, आचार और भेष के संबंधमें इन मुमुक्षुओं में एकता न थी। इसीसे 'नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्' की स्थिति उत्पन्न हुई। सभीका ध्येय एकहीः ब्रह्मप्राप्ति मोक्ष वा निर्वाण। परन्तु इस ध्येय को प्राप्त करने के मार्ग प्रत्येक के मत के अनुसार भिन्न भिन्न थे। विविधता में भी कुछ बातें ऐसी थीं जिन्हे सब लोग मानते थे। किसी गुरु के पास ब्रह्मचर्य से निवास करना और उसके उपदेशों के अनुसार बर्ताव करना आवश्यक था। इससे परिव्राजक (मस्करिन्) तापस, जटिल और मुंडी इन चतुर्विध भेष के आचार्य दिखाई देने लगे।

परिव्राजक पंथ के लोग हाथ में बांसका लठ्ठ ले गांव गांव में घूमते और वहां के विद्वानोंसे वादविवाद करते। यदि विजयी हो जाते तो वे विद्वान इनके शिष्य बन जाते और यदि ये खुद ही हार जाते तो येही उनके शिष्य बन जाते। तापस पंथवाले देहदंडनरूप तपस्यापर अधिक जोर देते थे। जटिल पंथ के लोग जटा धारण करते और मुंडी लोग शिरोमुंडन करते थे। श्रमण और ब्राह्मण इस प्रकार इन आचार्यों का द्विविध वर्गीकरण कई जगह किया गया है। वह अवैदिक और वैदिक से साधारणतः समानार्थक है। यह साधारणतः इस लिए कहा गया है कि परिव्राजकादि पंथोंमें भी कुछ लोग वैदिक मार्गानुयायी रहते थे। यह बात सुत्तनिपात के सुंदरिक भारद्वाजसुत्त के "मुण्डापि हि इधेकच्चे ब्राह्मणा भवन्ति" इस उलेख से दिखाई देता है। अवैदिक धर्मपंथों में कई प्रकार थे। जैनों के ही धर्मग्रंथों में इस प्रकार के पंथों की संख्या ६६३ दी गई है। बौद्ध ग्रंथों में वह ६३ ही दी गई है। बौद्ध ग्रंथोंमें इसके सिवा छः बुद्धपूर्व प्रमुख आचार्यों का उलेख है। तिस पर भी वैदिक धर्मानुयायी लोगों के सिवा बौद्ध धर्मके विरोधक पंथ दोही थे। वे थे आजीविक और निर्ग्रंथ अर्थात् जैन।

इनमें से आजीविक पंथ का बुद्धपूर्व या बुद्ध समकालीन आचार्य मस्करि गोशाल (पाली-मक्खलि गोसाल। प्राकृत-गोसाल मंखलि पुत्त) था। इस पंथ के लोग उसे तीसरा तीर्थंकर कहते थे। वे मानते थे कि गोशाल के पूर्व नंदवच्छ और किस संकिच्च नामक दो तीर्थंकर हो गए हैं। इस पंथ का कोई भी धर्म ग्रंथ आज उपलब्ध नहीं है तब भी उसका भारी महत्व था। ईसाके पूर्व छटीं शताब्दि से ईसवी सन की तेरहवीं शताब्दि तक यह पंथ मौजूद था, इस बात का ऐतिहासिक सबूत है। गोशाल के मतों के संबंध में जो कुछ हाल मिलता है वह बौद्ध और जैन धर्मग्रंथों सेही मिलता है; इससे वह हाल पूर्वग्रहदूषित होनेका संभव अधिक है। उसका मत था कि संसार के चक्कर को पार किये बिना शुद्धि नहीं होती। शीतोदकसेवन, बीजभक्षण और स्त्रीसेवन ये जैनधर्म की निषिद्ध बातें आजीविक पंथ के लोग मान्य समझते थे। पात्र न लेना चाहिए, हाथमें लेकर ही अन्न खाना चाहिए, नग्न रहना चाहिए, स्त्री के संबंध में निर्बंध न होना चाहिए आदि विचार अन्य धर्म संस्थापक पसंद नहीं कर सकते थे। गोशाल कहते कि कोई

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

भी बात करने के लिए प्रयत्नकी (वीर्यकी) आवश्यकता नहीं, तो जैनों के तीर्थंकर महावीर कहते कि सजीव प्राणियों की तो बात ही दूर है निर्जीव मटका भी मानवी प्रयत्न के बिना हो नहीं सकता।

जैनों के २४ वें तीर्थंकर महाविरजी गौतम बुद्धके कुछ पहले हुए और तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वजी उनसे भी पहले हुए। इन दोनों तीर्थंकरों का अस्तित्व अब ऐतिहासिक सबूतों से सिद्ध हो चुका है। इन दोनों के मतों में आरंभ में कुछ अंतर था। परन्तु पार्श्वजीका शिष्य केशिकुमार और महावीरजी का शिष्य गौतम ये दोनों जब श्रावस्ति नगर में मिले तब दोनों संप्रदाय एक हुए। इस बात का उल्लेख जैनों के उत्तराध्ययनसूत्र में आया है। जैन धर्म आजभी विद्यमान है अतएव उसके तत्त्वज्ञान के संबंध में यहां चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है। यहां केवल इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि जिस समय बौद्ध धर्म उत्पन्न हुआ उस समय जैन धर्म के अनुयायियों की संख्या बहुत बडी थी।

उस समय के धर्ममतों का अवलोकन करने से विदित होता है कि कुछ पंथों में यह कल्पना दृढमूल थी कि चार्वाक-पंथ के समान ऐहिक विषयों के उपभोग से आत्यंतिक सुख होता है। इसे गौतम बुद्ध ने कामसुखल्लिकानुयोग नाम दिया है। दूसरे पंथों में देह-दंडनपर अधिक जोर होने से उसे अत्तकिलमथानुयोग नाम दिया है। गौतम बुद्ध का मत था कि इन दोनों छोरों के बीच का मार्ग ही सच्चा निर्वाणप्राप्ति का मार्ग है। इसी से उन्होंने अपने मार्ग को मध्यमा प्रतिपत् (पाली-मज्झिमा पटिपदा) अर्थात् बीच का मार्ग नाम दिया है। बौद्धधर्म की चतुःसूत्री क्या है आर्य सत्य हैं। और ये आर्य सत्य चार कल्पनाएं हैं:-

" संसार में दुःख है, उस दुःख को कारण हैं, उन कारणों को दूर करना शक्य है, और उनको दूर करने के मार्ग हैं। " इन सादी और साधारण जनों की समझ में सहज ही में आनेवाली बातों पर बौद्धधर्म की रचना है। धर्म में प्रवेश करनेकी इच्छा करनेवालों को विशेष कष्ट न उठाते हुए भी प्रवेश (उपसंपदा) मिलने का सुभीता है।

" बुद्धं सरणं गच्छामि, धम्मं सरणं गच्छामि, संघं सरणं गच्छामि "

इस त्रिपदा चतुर्विंशत्यक्षरा सावित्रीमंत्रका केवल उच्चार करने ही से काम होता है। इस नवीन धर्म का सादपन देखकर, वैदिक धर्म का चातुर्वर्ण्य, यज्ञयागादि के लिए होनेवाली तकलीफ और उस में होने वाला प्राणिवध शब्दप्रामाण्य की नीव पर स्थित गूढ तत्त्वज्ञान आदि बातोंसे उकताकर कई लोगोंने विशेषतः वैश्य, शूद्र तथा कुछ क्षत्रियों ने बौद्ध धर्म का स्वीकार कर लिया। आगे चलकर धीरे धीरे अन्य पंथीय आचार्योंके, आजीविक, निर्ग्रंथ आदि पंथों के अनुयायी भी बौद्ध हो गए। धीरे धीरे वैदिकधर्मानुयायी, वेदविद्यापारंगत ब्राह्मणों ने भी इस नवीन धर्म का स्वीकार कर लिया। इस प्रकार बौद्ध धर्म के अनुयायियों की संख्या तो बढती गई, पर आकस्मिक और जल्द वृद्धि में ही बौध्द धर्म की फूटका और आगे चल कर होनेवाली उसकी अवनति की जड है। नये आनेवाले लोगों के पूर्वधर्म के संस्कार नष्ट न हुए थे, बौद्धधर्म में भी आरंभ में काफी सुसूत्रिपन न था; व्यक्तिस्वतंत्रता की बहुत गुंजाइश थी इससे बौद्ध धर्म का मूल स्वरूप धीरे धीरे विकृत होने लगा।

अचारके कारण मतभेद।

बौध्दों के धर्मग्रंथ को त्रिपिटक कहते हैं। इस त्रिपिटक का द्विविध वर्गीकरण है यथा धम्म और विनय। उनमें से सुत्तपिटक और अभिधम्मपिटक में मुख्यतः तत्त्वज्ञान का उहापोह है। यह उहापोह गौतम बुद्ध के उपदेशों द्वारा किया गया है। विनयपिटक में भिक्षुके आचार आदि के नियम हैं तथा यह भी बतलाया गया है कि वे किस अवसर में और किस कारण से बनाना आवश्यक हुआ। इन धर्म ग्रंथों के दो पक्षों के अनुसार तद्धर्मियों के मतभेद के भी दो प्रकार हैं। अर्थात् कुछ मतभेद तो आचार के नियमों के कारण हुए हैं और कुछ तत्त्वज्ञान के संबंध के विवादों के कारण हुए।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

नियमोंके कारण भेद ।

कालानुक्रम से देखा जाय तो मालूम होता है कि विनयनिमित्तक मतभेद प्रथम उत्पन्न हुआ, और वह भी गौतमबुद्ध के समय में ही। बौद्ध भिक्षुओं के आचारों के संबंध में जो नियम प्रातिमोक्ष (पाली पातिमोक्ख) नामक ग्रंथ में दिये हैं। वे एक ही समय बनाए हुए नहीं हैं। किन्तु जैसा मौका आया वैसे बनाए हुए हैं। बौद्धधर्मीय मानते हैं कि ये सब नियम गौतमबुद्धने स्वतः बनाए थे। परन्तु ये नियम सब स्थानों के भिक्षुओं को मालूम होने में देरी लगती थी और इस संधिकाल में नियमों के अज्ञान से क्वचित् किसी भिक्षु से प्रायश्चित्तार्ह अपराध हो जाता था। इस प्रकार का एक क्षुल्लक अपराध गौतम बुद्ध के जीतेजी कौशांबी नगर के एक भिक्षुसे हो जाने का उल्लेख महावग्ग और मज्झिमनिकाय ग्रंथोंमें आया है। इस अपराध के लिए वहां के भिक्षुओंने उसे बहिष्कृत (पालीः- उक्खेपण) किया भिक्षू का कहना था कि अज्ञान से यह अपराध हुआ अतः उत्क्षेपण की सजा अपराध के हिसाब से बहुत कडी है। दूसरे लोगोंने यह माना अतः वहां के भिक्षुओं में दो पक्ष हो गए। परन्तु गौतम बुद्ध उस समय जीवित थे अतः झगडा न बढा और जल्द ही शांत हो गया।

संबंधीयोंसे मतभेद ।

दूसरे मतभेद का अवसर गौतम बुद्ध के जीवित रहते ही हुआ था। इसका वर्णन चुल्लवग्ग ग्रन्थ में आया है। गौतमबुद्ध के चचेरे भाई देवदत्त का मत था कि भिक्षुओं का आचार जैसा है उससे भी कडा होना चाहिए, और उसके लिए प्रत्यक्ष भिक्षुको (१) जन्मभर जंगल में ही रहना चाहिए, नगर में न रहना चाहिए; (२) भीखपर ही निर्वाह करना चाहिए, अन्य रीति से मिले हुए अन्नपर उपजीविका न करनी चाहिए; (३) घूरे पर टंगे हुए चिथडों का ही चीवर धारण करना चाहिए; (४) सदैव वृक्ष के नीचे ही रहना चाहिए, कभी भी किसी भी प्रकार के मकान में न रहना चाहिए; और (५) मत्स्य और मांस का सेवन कभी भी न करना चाहिए। देवदत्तने विनती की थी कि गौतम बुद्धजी इस प्रकार के नियम भिक्षुओं के लिए निश्चित कर दें। परन्तु बुद्धजी ने उसे न माना क्यों कि बुद्धजी समझते थे कि इन नियमों का पालन करना प्रत्येक भिक्षु की इच्छा पर छोड देने से उसकी धार्मिक उन्नति होगी। देवदत्त को यह पसंद न आया अतः वह पांच सौ अनुयायियों के साथ गयाशीर्ष में चला गया।

शिष्योंमें मतभेद ।

तीसरा प्रसंग बुद्ध निर्वाण के बाद करीब सौ वर्ष के पश्चात् हुआ। इस समय के मतभेद के कारण स्थविरवादी और महासंघिक नाम के दो पंथ हुए। वैशाली के वज्जि भिक्षुओं के मतानुसार आगे लिखीं दस बातें (पाली—दस वत्थूनि) करने को कोई रुकावट न होनी चाहिए, परन्तु दूसरों को यह बात पसंद नहीं थी। वे दस बातें इस प्रकार हैंः—

(१) सिंगलोण- अडचण के समय काम आने के लिए पोले किए हुए सींग में भरकर नमक ले जाने को इजाजत होनी चाहिए। इस प्रकार का वर्ताव प्रातिमोक्ष के पाचित्तिय प्रकरण के ३८ वें नियम के विरुद्ध होता है इससे वह स्थविरवादी लोगों को पसंद न था।

(२) द्वंगुलं-माध्यान्ह के बाद दो अंगुल छाया होने तक भिक्षु को भोजन लेने की इजाजत होवे। परन्तु स्थविरवादियों का मत था कि पाचित्तिय ३७ वें नियम के अनुसार माध्यान्ह के बाद भिक्षु भोजन नहीं कर सकता।

(३) गामान्तर- एक गांव में भीख मांग कर भोजन करने के पश्चात् पुनः पास के दूसरे गांव में जाकर भीख मांग कर भोजन करना। यह मत पाचित्तिय ३५ वें नियम के विरुध्द है।

(४) आवास- एक ही सीमा में दो स्थानमें उपोसथ के दिन प्रातिमोक्ष का पारायण करना। यह मत महावग्ग २. ८. ३. नियम के विरुध्द है।

(५) अनुमति- प्रथम कोई बात करके पश्चात संघ से उसके लिए अनुमति प्राप्त करना। यह महा-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वग्ग ९. ३. ५ के विरुद्ध है ;

(६) आचिण्ण- पहले हुई बात को प्रमाण मानना, Precedents as authoriy.

(७) अमथित- भोजन के बाद मही पीना। यह भी पाचित्तिय ३५ के विरुध्द है।

(८) जलोगी- ताडी बनने के पहले ताड के झाड का रस पीना। यह बात पाचित्तिय ५१ वे नियम के विरुध्द है।

(९) अदसकं नीसीदनं- उस आसन का उपयोग करना जिसमें धागे निकले न हों। यह बात पचित्तिय ८९ वें नियम के विरुध्द है।

(१०) जातरूपरजत- सोना और चांदी का स्वीकार। यह बात निस्सग्गिय १८ वें नियम के विरुध्द है।

इन दस बातों का निर्णय करने के लिए वैशाली में मुख्य मुख्य बौध्द भिक्षुओं की एक सभा (संगीति) हुई। इस सभा में निश्चय हुआ कि उक्त दसों बातें शास्त्र निषिध्द हैं। इससे वैशाली के भिक्षू क्रोधित हुए और वे विभक्त हो गए। इन्हीं को महासंघिक कहते हैं।

तत्त्वज्ञान के भेद।

बौध्दों के तत्त्वज्ञान विषयक मतभेद के कारण प्रस्थान भेद हुआ। बुध्द के जीवन कालमें एक ही धर्म नायक सबका शासक था। पर निर्वाण के बाद ऐसा शासक कोई न रहा। भगवान् बुध्द स्वयं कहते हैं कि " मेरे निर्वाण के बाद धर्म ही तुह्मारा शासक है।"

यो वो आनन्द मया धम्मो च विनयो च देसितो
पञ्चतो सो वो ममच्चयेन सत्था॥

(दीघनिकाय, १६ - ६ - १)

बुद्धजी ने सुना था कि महावीरजी के निर्वाण के अनंतर जैन धर्मियों में मतभेद हुआ था। यह बात मज्झिमनिकाय के सामगामसुत्तसे मालूम होती है। तब भी बुद्धजी का अपने धर्मपर तथा अपने अनुयायियों पर इतना दृढ विश्वास था कि वे समझते थे कि विना शासक के भी सब काम ठीक ठीक चलेगा। परन्तु बुद्धजी का यह विश्वास अयोग्य था यह बात बुद्ध निर्वाण के पश्चात् की बातों ने सिद्ध की है।

अनुयायियोंमें भेद।

बौद्ध धर्म में ऐसे भी उदाहरण हैं जिनमें किसी भिक्षू के पास शिष्य वर्ग इकत्रित हो जाने से प्रस्थान हुए। बुद्धजीने भिन्न भिन्न अवसर पर प्रसिद्ध किया था कुछ प्रधान शिष्य अमुक अमुक विषय के लिए प्रसिद्ध हैं। संयुक्त निकाय में बुद्धवचन है कि सारिपुत्त, महामोग्लान, महाकस्सप, कच्चायन, राहुल, आनन्द और उपालि आदि शिष्य विशिष्ट विषयों में पारंगत हैं और उनके शिष्यसमुदायों में भी गुरू की विशिष्टता कायम है। इस शिष्यवर्ग में एक प्रकार का एकांगीपन था अतः वे अपने गुरु को छोड दूसरों के मत मानते न थे। और कालान्तर में उस उस गुरु के नामसे एक एक नया पंथ उत्पन्न हुआ। बुद्ध निर्वाण के करीब एक हजार वर्ष बाद जब चीनी यात्री हुएनत्संग हिन्दुस्थान में आया, उस समय उसने देखा कि अभिधर्म पिटक का अध्ययन करनेवाले भिक्षु खास खास दिन सारिपुत्त की पूजा करते थे, भिक्षुणियां आनन्द की पूजा करती थीं, और महायन पंथी लोग मंजुश्री और अन्य बोधिसत्व की पूजा करते थे।

ग्रंथ विभागके अध्ययनसे भेद।

बौद्धों का त्रिपीटक विस्तृत है। अतः उसे मुखोद्गत करना सब के लिए असंभव था। धीरे धीरे भिक्षुवर्ग में सुत्तन्तिक अर्थात् सुत्तपिटक का अध्ययन करनेवाले विनयधर अर्थात् विनय पिटक का अध्ययन करनेवाले, मतिकाधर अर्थात् अभिधम्मपिटक का अध्ययन करनेवाले, दीघभाणक, माज्झिम भाणक, आदि विशिष्ट भाग का ही अध्ययन करनेवाले भिक्षु नजर आने लगे। यद्यपि बहुश्रुत एवं संपूर्ण त्रिपिटक का अध्ययन करनेवाले भिक्षुओं की महत्ता को सब लोग मानते थे तब भी भिक्षुओं में ऐसी प्रवृत्ति देखाई देने लगी कि हम जिस भाग का अध्ययन करते हैं वही भाग मुख्य तथा अधिक महत्व का है। धम्मकथिक और विनयधर का झगडा तो स्वयं बुद्धजीने मिटाया था। एक वर्ग दूसरे वर्गसे ईर्षा करता था। चुलवग्ग में कहा है कि सभा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

आदि स्थानों में प्रयत्न इस बात का किया जाता था कि अपने ही पंथ को अग्रस्थान मिले ।

भाषाके कारण भेद ।

वेदों की भाषा संस्कृत थी। इससे साधारण जनता इसे समझती न थी । बुद्धजीने कहा है कि अपने धर्मग्रंथ देशवासियों की भाषा में ही लिखे जावें जिससे अपना धर्म सब लोगों की समझ में अच्छी प्रकार से आ जावे तथा भिक्षु भी धर्मोपदेश लोक भाषा में करें । इससे त्रिपीटक भिन्न भिन्न भाषाओं में लिखा गया । अब तक पाली भाषा को छोड अन्य किसी भाषा में लिखा हुआ संपूर्ण त्रिपीटक नहीं मिला, तब भी जो भाग अब तक मिले हैं उनकी तुलना से विदित होता है पंथ भेद होने का एक कारण भाषा भेद भी रहा होगा । भिक्षु तारानाथ ने तिब्बति भाषा में जो बौद्ध धर्म का इतिहास लिखा है उससे मालूम होता है कि स्थविर वादियों का त्रिपिटक पाली भाषा में, महासंघकों का पैशाची भाषा में, सर्वास्तिवादियों का संस्कृत भाषा में और सांमितियों का अपभ्रंश भाषा में लिखा गया था । इस प्रकार की भिन्न भिन्न भाषा ओं में लिखी हुई संहिताओं से यद्यपि आरंभ में धर्म प्रसार का कार्य सुलभ हुआ तथापि इस भाषाभेद के कारण ही, मालूम होता है प्रत्येक पंथ को यही लगता होगा कि हमारी संहिता ही सत्य है और अन्य संहिताओं का प्रामाण्य कम दर्जे का है ।

जैसा कि इस लेख के आरंभ में कहा गया है भिन्न भिन्न वैदिक विधि और देह-दण्डन आदि तपस्या के प्रकार कम करने के उद्देश्य सेही गौतम बुद्ध ने अपने धर्म की स्थापना की और उसमें जितना बन सका सादापन लाने की चेष्टा की गई । स्वयं बुद्धजीका विश्वास था कि तपस्या से देहदण्डन से निर्वाण प्राप्ति असंभव है । तद भी जैसे जैसे बुद्ध का अनुयायी वर्ग बढने लगा वैसे ही वैसे उनके पूर्व संस्कारों ने बल पकडा और उन्हे तपस्या विधि आदि के बिना बेचैनी सी मालूम होने लगी । तपस्या के कुछ प्रकारों को धुतङ्ग कहते हैं । बुद्धजीने भी इन धुतङ्गों की प्रशंसा की है । यद्यपि इस कारण से पंथ भेद होने के उदाहरण कम हैं, तब भी बौद्ध धर्म का स्वरूप धीरे धीरे बदलने में यह एक महत्व का कारण निःसंशय हुआ । महायान और हीनयान नाम के दो पंथ मुख्यतः इसी मतभेद के कारण हुए कि तपस्या का अंतिम साध्य बुद्धत्व है या बोधिसत्त्वत्व है । इन दो पंथों में भी आगे चलकर अन्य मतभेद उत्पन्न हुए ।

बौद्ध धर्म का प्रसार जैसे जैसे देशभरमें होने लगा वैसे ही वैसे भिन्न भिन्न स्थानों में विहार बनने लगे और वहां के किसी प्रसिद्ध भिक्षुके पास शिष्य समुदाय इकट्ठा होने लगा । इन विहारों का और भिक्षुओं का अन्य देश के भिक्षुओं से विशेष संबंध न रहा । इससे पूर्वशैलीय, अपर शैलीय, राजगिरीय, हैमवत आदि पंथ उत्पन्न हुए । ताम्रशाटीय नामक पंथ तो केवल भिक्षुओं की शाटी के रंगके कारण ही उत्पन्न हुआ ।

इन बाह्य कारणोंके सिवा तत्त्वज्ञान संबंधी महत्व की बातों पर मतभेद होने से कई पंथ निर्माण हुए थे, परन्तु उन सब का उल्लेख इस स्थान पर करने की आवश्यकता नहीं । हीनयान और महायान नामके बौद्धोंके दो पंथ आज भी विद्यमान हैं उनके उपपंथों का उल्लेख तथा सौत्रांतिक, वैभाषिक, माध्यमिक और योगाचार इन चार पंथों का खंडन शांकरभाष्य में भी आया है । हिन्दुस्थान के बाहर इस धर्म का प्रचार हो जाने पर खासकर चीन और जापान में यह धर्म पहुंचनेपर वहां भी भिन्न भिन्न पंथ उत्पन्न हुए । परन्तु विस्तार के भय से उनका हाल यहां नहीं दिया जा सकता । इस प्रकार बौद्धों के प्रस्थानभेदों की कारणमीमांसा आज यहीं समाप्त की जाती है ।

जो लोग मानते हैं कि बौद्ध धर्म ने ब्राह्मण धर्म के वर्णभेद तोडदिए और सबको समता की सतह पर स्थित किया वे इस लेख का मनन करें जिससे उन्हे विदित होगा कि समता के लिए अवतीर्ण हुए बौद्ध धर्म में ही विषमता किस प्रकार हुई ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

स्वागतम् ।

१ आविष्कारविज्ञान

(ले० श्री. उदयभानुशर्माजी । प्रकाशक श्री मध्य भारत हिंदी साहित्य समिति, इन्दौर, मूल्य ॥=)

श्री. उदयभानुजी हिंदी के प्रसिद्ध लेखक हैं। "संकल्प शक्ति" के ऊपर आपकी एक उत्तम पुस्तक प्रकाशित हुई है। उसी प्रकार यह पुस्तक भी बडी लाभकारी सिद्ध होगी। इस पुस्तक में अन्तर्जगत्, इन्द्रियां, ध्यान, मेधाविभाग, बोध,इत्यादि विषयोंपर अतिसुबोध और बोधप्रद लेख आगये हैं। इस विज्ञान का अभ्यास करनेवालों को यह पुस्तक बडी उपयोगी है।

२ तपेदिककी यज्ञद्वारा चिकित्सा

(ले० डा० फुन्दनलाल. भूड. बरैली। प्रकाशक श्री. बाबू राजकुमार सक्सेना, स्टेशनमास्तर, लखनऊ सिटी.)

यह अत्यन्त उपयुक्त पुस्तक डाक्टरसाहेब द्वारा लिखी गई है। भाषाके सुप्रसिद्ध पत्रों में इस विषय के इनके लेख प्रसिद्ध हो चुके हैं। डाक्टरसाहेब के इस प्रयत्नके लिये हम उनका धन्यवाद करते हैं। क्यों कि यह विषय अत्यंत महत्वका है और यज्ञसे रोगनिवारण के विषयमें यदि कुछ निश्चित विज्ञान प्राप्त हुआ तो जनता के ऊपर महा उपकार हो सकता है।

३ वैदिक विवाह पद्धति।

(ले०श्री. पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय तथा पं. सत्यव्रत उपाध्याय। प्र० ट्रैक्ट विभाग, चौक, प्रयाग। मूल्य. ।-)

वैदिक विवाहविधी नामक इस पुस्तकमें विवाह संस्कार के प्रयोग प्रकरणशः लिखे हैं। कोई मनुष्य इस पुस्तक को पढ कर विवाहसंस्कार उत्तम प्रकार कर सकता है। इस पुस्तकको देखकर हम लेखकों से सानुरोध प्रार्थना करते हैं, कि वे सोलह संस्कारोंके ऊपर इसी प्रकारके पुस्तक लिखें। हमें आशा है कि ऐसे पुस्तकों से संस्कार करना सुगम हो जायगा।

४ कर्ण वेधमहिमा

(ले० श्री आत्मारामजी अमृतसरी,कन्यागुरुकुल इटोला बडोदा। प्र. जयदेव ब्रदर्स बडोदा। मूल्य=)

कर्ण वेध संस्कार से जो लाभ हो सकते हैं उनका संग्रह इस पुस्तक में है। पाठक इस ज्ञान के लिये इस पुस्तक को अवश्य पढें।

५ योग जीवन

(ले० श्री स्वा. अभयानन्दजी सरस्वती। योग मंडल, काशी। मू. ।) योगसुलभमालाका यह पहिला पुष्प है। इसकी भाषा अति सुबोध होनेसे इसके पाठसे लोग बहुत लाभ उठा सकेंगे।

आविष्कार विज्ञान

मूल्य ॥=) डा.व्य. =)

प्राप्तिस्थान - स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यम और पितर।

[ले०-श्री. पं. मंगलदेव (तडित्कान्त) जी वेदालंकार (गु. कु. काङ्गडी) स्वाध्याय मंडल, औंध]

(गताङ्कसे आगे)

२ पितरोंके कार्य ।

इस लेखमें पितरों के जो कार्य दर्शाए जायंगे उससे यह परिणाम कदापि नहीं निकालना चाहिए कि पितरोंके कार्य प्रदर्शक मंत्र इतने ही हैं और येही पितरोंके कार्य हैं । पितरोंके अन्य विशेष कार्य दर्शानेवाले और भी बहुतसे मंत्र हैं परन्तु वे अन्य प्रकरणों के लिए अधिक उपयुक्त होनेसे उनको वहीं दिया जायगा ।

१ रक्षा करना

उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः । असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥ ऋ. १०।१५।१ ॥
यजुः अ० १४।४९ ॥
अथर्व० १८।१।४४ ॥

अर्थ- (सोम्यासः) सोम संपादन करनेवाले (अवरे उत् मध्यमाः उत् परासः पितरः) कनिष्ठ, मध्यम तथा उत्कृष्ट पितर (उत् ईरताम्) उन्नति करें। (ये अवृकाः ऋतज्ञाः) जिन हिंसारहित सत्य वा यज्ञ के जाननेवाले पितरोंने (असुं ईयुः) प्राण, बल वा जीवनको प्राप्त कर लिया है (ते पितरः) वे पितर (हवेषु) संग्रामोंमें-युद्धोंमें वा बुलाए जानेपर (नः अवन्तु) हमारी रक्षा करें ।

गन्धर्वाप्सरसः सर्पान् देवान् पुण्यजनान् पितॄन्। दृष्टानदृष्टानिष्णामि यथा सेनाममूं हनन् ॥
अथर्व० ८।८।१५ ॥

अर्थ- (गंधर्वाप्सरसः) गन्धर्व तथा अप्सराओंको, (सर्पान्) सर्पोंको, (देवान्) देवोंको (पुण्य जनान्) पुण्यजनोंको, (पितॄन्) पितरों को (दृष्टान् अदृष्टान्) चाहे ये देखे हुए हों या न हों इन सब को (इष्णामि) प्राप्त करता हूं। (यथा) जिससे कि ये सब (अमूं सेनां) उस शत्रु सेनाको (हनन्) मार डालें-नष्ट कर दें ।

वनस्पतीन् वानस्पत्यानोषधीरुत वीरुधः।
गन्धर्वाप्सरसः सर्पान् देवान् पुण्यजनान् पितॄन्।
सर्वांस्तां अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्रदर्शय ॥ अथर्व० ११।९।२४

अर्थ- (वनस्पतीन्) वनस्पतियोंको, (वानस्पत्यान्) वनस्पतियोंसे उत्पन्न पदार्थोंको (ओषधीः) औषधियोंको (उत) और (वीरुधः) लताओंको (गंधर्वाप्सरसः) गंधर्व तथा अप्सराओंको (सर्पान्) सर्पोंको (देवान्) देवोंको (पुण्यजनान्) पुण्यजनोंको (पितॄन्) पितरोंको (तान् सर्वान्) इन सबको तथा (उदारान्) उदारोंको (अर्बुदे) हे अर्बुदि! (त्वं) तू (अमित्रेभ्यः दृशे कुरु) शत्रुओंके देखने लिए कर। अर्थात् इन्हें शत्रुओंको दिखा, ता कि ये शत्रुओं का विनाश करें । इनकी घातक शक्तिका उपयोग शत्रुओंके लिए हो ।

अर्बुदिका अर्थ ऐतरेय ब्राह्मणने इस प्रकार किया है-' अर्बुदः काद्रवेयः सर्पऋषिः मंत्रकृत् ' (ऐ. ब्रा. ६।१) अर्बुदनामका कोई सर्पऋषि था उसका पुत्र अर्बुदि। ' अतइञ् ' इस सूत्रसे इञ्। 'संज्ञापूर्वको विधिरनित्यः' इस नियमानुसार आदि वृद्धि न होकर अर्बुदि बनता है। क्षेमकरणदासजीने इसका अर्थ सेनापति किया है । ' अर्ब गतौ हिंसायां' इस धातुसे उदिच् प्रत्यय करनेसे अर्बुदि बनता है ।

उदारका अर्थ क्षेमकरण दासजीने गंभीर उपाय-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वाले ऐसा अर्थ किया है पर सायणाचार्यने इसका अर्थ ' अंतरिक्षचर राक्षस व पिशाच अथवा सूर्य रश्मिसे होनेवाले उल्कादि पात यानि आंतरिक्ष्य उत्पात ' ऐसा किया है। इस अर्थ की पुष्टि में उन्होंने तै० ब्रा० का प्रमाण दिया है कि ' तस्मात् ते पानाद् उदारा अजायन्त ' तै० ब्रा० २।२।९।२॥ 'उत् आरयन्ति आर्ति उद्भावयन्ति इति उदाराः।'

अस्तु, उदार शब्द का कुछ भी अर्थ माना जाए, तो भी हमारे उद्देश में उससे किसी भी प्रकार की क्षति नहीं पहुंचती। उदार शब्द का विचार करने के लिए पाठकों के सामने उपरोक्त दोनों मत रखे हैं।

इन उपरोक्त मंत्रों से स्पष्ट पता चलता है कि पितर युद्ध में हमारी रक्षा करते हैं। हमारे शत्रुओं से लडकर उनका विनाश कर हमें बचाते हैं। इन उपरोक्त मंत्रों में पितरों की युद्ध विषयक रक्षा का विधान है। अब हम ऐसे मंत्र पेश करते हैं कि जिनमें सामान्य रक्षा का विधान है।

अवन्तु नः पितरः सु प्रवाचनाः उत देवी देव-
पुत्रे ऋतावृधा। रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो
विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥

ऋ. १।१०६।३॥

अर्थ- (सुप्रवाचनाः पितरः नः अवन्तु) उत्तम प्रवचन करनेवाले पितर हमारी रक्षा करें। (उत) और (देवपुत्रे ऋतावृधा देवी) देव अर्थात् सूर्य व चन्द्रमा जिनके पुत्र - रक्षक - हैं तथा जो सत्य से बढने वाली हैं ऐसी द्यावा पृथिवी भी हमारी रक्षा करें। हे (सुदानवः) उत्तम दानवाले (वसवः) वसुओ! (दुर्गात् रथं न) दुर्गमनीय स्थान से रथ की तरह तुम (विश्वस्मात् अहंसः) सब पापों से (नः निष्पिपर्तन) हमें निकालकर पालो।

अवन्तु मामुषसो जायमाना अवन्तु मा सिन्ध-
वः पिन्वमानाः। अवन्तु मा पर्वतासो ध्रुवासो
ऽवन्तु मा पितरो देवहूतौ ॥

ऋ० ६।५२।४॥

अर्थ- (जायमानाः उषसः मां अवन्तु) उत्पन्न होती हुई उषायें मेरी रक्षा करें। (पिन्वमानाः सिन्धवः मा अवन्तु) जलका सिंचन करती हुई नदियां मेरी रक्षा करें। (ध्रुवासः पर्वतासः मा अवन्तु) निश्चल पर्वत मेरी रक्षा करें, और (देवहूतौ) देवों के अह्वान करने में (पितरः) पितृगण (मा अवन्तु) मेरी रक्षा करें।

इस प्रकार इस मंत्र में पितरों को देवों के आह्वान के कार्य में रक्षा करने के लिए कहा गया है।

इन्द्रघोषस्त्वा वसुभिः पुरस्तात्पातु प्रचेता-
स्त्वा रुद्रैः पश्चात्पातु मनोजवास्त्वा पितृभि-
र्दक्षिणतः पातु विश्वकर्मा त्वादित्यैरुत्तरतः पा-
त्विदमहन्तप्तं वा र्बहिर्द्धा यज्ञान्निःसृजामि ॥

यजुः अ० ५।११॥

अर्थ- (इन्द्रघोषः त्वा वसुभिः पुरस्तात् पातु) इन्द्र की वाणी तेरी आगेसे वसुओं द्वारा रक्षा करे। (प्रचेताः रुद्रैः त्वा पश्चात् पातु) प्रचेता रुद्रोंद्वारा तेरी पीछेसे रक्षा करे। (मनोजवाः पितृभिः त्वा दक्षिणतः पातु) मनोजव पितरों द्वारा तेरी दक्षिण से रक्षा करे। (विश्वकर्मा आदित्यैः त्वा उत्तरत्तः पातु) विश्वकर्मा आदित्यों द्वारा तेरी उत्तर से रक्षा करे। (अहं) मैं (इदं तप्तं वाः) यह गरम जल (यज्ञात्) यज्ञसे (बहिर्द्धा) बाहिरकी ओर (निःसृजामि) फैंकता हूं।

पितर हमारी दक्षिण दिशासे रक्षा करते हैं, अर्थात् दक्षिण दिशासे आनेवाले विघ्नों को पितर दूर करते हैं ऐसा इस मंत्र से सूचित होता है।

निम्न मंत्रमें यह दर्शाया गया है कि पितर किन किन कार्योंमें हमारी रक्षा करते हैं। मंत्र इस प्रकार है।-

पितरः परे ते मावन्तु। अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मि
न् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठाया-
मस्यां चित्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां
देवहूत्यां स्वाहा ॥ अथर्व० ५।२४।१५॥

अर्थ- (ते) वे (परे पितरः मा अवन्तु) पूर्वकालीन वा उत्कृष्ट पितर मेरी निम्न कर्मोंमें रक्षा करें। (अस्मिन् ब्रह्मणि) इस ब्रह्मयज्ञमें। (अस्मिन्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कर्मणि) इस कर्मयज्ञमें । (अस्यां पुरोधायां) इस पुरोहितके (Leading) कार्य में । (अस्यां प्रतिष्ठायाम्) इस प्रतिष्ठामें । (अस्यां चित्याम्) इस चेतनायुक्त कार्योंमें । (अस्यां आकूत्याम्) इस संकल्प में । (अस्यां आशिषि) इस आशीर्वाद कार्यमें (अस्यां देवहूत्यां) इस देवोंके आह्वानमें । (स्वाहा) ।

इस प्रकार हमने इन मंत्रोंसे देखा कि कहां कैसे पितर हमारी रक्षा का कार्य करते हैं। अब हम पितरों के अन्य कार्योंपर दृष्टि डालते हैं।

२ सूर्य प्रकाश देना

अस्माकमत्र पितरो मनुष्या अभिप्रसेदुर्ऋत माशुषाणाः । अश्मव्रजाः सुदुघा वव्रे अन्त-रुदुस्रा आजन्नुषसो हुवानाः ।

ऋ० ४।१।१३ ॥

अर्थ- (अत्र) यहां (ऋतं आशुषाणाः) यज्ञ वा सत्यको प्राप्त करते हुए (मनुष्याः पितरः) मननशील पितर (अभिप्रसेदुः) प्रसन्न होते हैं, और (अश्म-व्रजाः सुदुघाः) मेघों में गमन करनेवालीं, सुखसे कामनाओं को पूर्ण करनेवालीं (उषसः) उषाओं को (हुवानाः) बुलाते हुए (वव्रे अन्तः) अन्ध-कार में (उस्राः) सूर्य किरणोंको (उत् आजन्) प्राप्त करते हैं। अथवा अंधकारमें सूर्य की किरणें फेंकतें हैं यानि सूर्य किरणों द्वारा सर्वत्र प्रकाश करते हैं।

एवं इस मंत्रमें पितरोंका सूर्य प्रकाश देना बताया गया है।

अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्न ऋतमाशुषाणाः । शुचीदयन् दीधिति-मुक्थशासः क्षामाभिन्दन्तो अरुणीरपव्रन् ॥

ऋ० ४।२।१६ ॥ तथा यजुः अ० १९।६९ ॥

यह मंत्र अथर्व में थोडेसे पाठभेदके साथ निम्न प्रकारसे आया है।

अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्न ऋतमाशशानाः । शुचीदयन् दीध्यत उक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरपव्रन्॥

अथर्व० १८।३।२१ ॥

अर्थ इस प्रकार है- (यथा नः परासः प्रत्नासः पितरः) जैसे हमारे श्रेष्ठ पुराने पितरोंने (ऋतमा-शुषाणाः) सत्य वा यज्ञ को प्राप्त करते हुए (शुचि-दीधितिं) शुद्ध सूर्य किरणको (इत्) ही (अयन्) प्राप्त किया था और (उक्थशासः) उक्थों से प्रशंसा-स्तुति करते हुए (क्षामा=क्षाम) क्षयकारी अंधकारको (भिन्दन्तः) नष्ट करते हुए (अरुणीः) उषाओं की किरणोंको (अपव्रन्) प्रकाशित किया था, उसी प्रकार हे अग्ने! तूभी कर ।

उक्थ वेदों के खास सूक्तों का नाम है । ब्राह्मणों व उपनिषदोंमें उक्थ शब्द प्राणके लिए भी आता है । कहीं कहीं अन्न प्रजा आदिके लिए भी प्रयुक्त हुआ हुआ है ।

क्षामा=क्षाम । ' संहितायां ' से दीर्घ हुआ हुआ है । यद्यपि क्षाम शब्दका पाठ निघण्टु में पृथिवी वाचक नामोंमें किया हुआ है तथापि यहां क्षाम शब्दका अर्थ प्रसंगसे 'अंधकार' ही करना उचित है और यही ठीक जंचता है । इसके अतिरिक्त इस विभागमें दिए गए सब मंत्रभी इसी अर्थको पुष्टकर रहे हैं। पृथिवी को भेदन करने का यहां कोई संबन्ध प्रतीत नहीं होता ।

अरुणीका अर्थ उषःकालकी किरणें ऐसा है। ' अरुण्यः गावः उषसाम् ' अर्थात् उषाओं की किर-णोंका नाम अरुणी है । निघण्टुः १।१५ ॥

इसी प्रकार निम्न मंत्रभी उपरोक्त मंत्र के कथन को ही पुष्ट कर रहा है ।-

त इद्देवानां सधमाद आसन्नृतावानः कवयः पूर्व्यासः । गूळ्हं ज्योतिः पितरो अन्वविन्द न्सत्यमंत्रा अजनयन्नुषासम् ॥

ऋ. ७।७६।४ ॥

अर्थ— (ते इत् ऋतावानः, कवयः, पूर्व्यासः, सत्यमंत्राः, पितरः) वे ही सत्ययुक्त, क्रान्तदर्शी, पूर्व कालीन, सत्य मंत्रणावाले पितर (देवानां सधमादः आसन्) देवोंके साथ मिलकर आनन्दित होने वाले थे कि जिन पितरोंने (गूळ्हं ज्योतिः) छिपे हुए प्रकाश को (अनु अविन्दन्) प्राप्त किया और (उषासं) उषाको (अजनयन्) उत्पन्न किया ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इस प्रकार इस मंत्रमें भी पितरों के उषा पैदा करके सूर्य प्रकाश देनेकी बात को कहा गया है।

वीळु चिद्दृळ्हा पितरो न उक्थैरद्रिं
रुजन्नङ्गिरसो रवेण । चक्रुर्दिवो बृहतो
गातुमस्मे अहः स्वः विविदुः केतुमुस्राः ॥
ऋ. १।७१।२ ॥

अर्थ-- (नः अङ्गिरसः पितरः) हमारे अङ्गिरस पितरोंने (उक्थैः) शस्त्रोंसे, (रवेण) और उक्थ अर्थात् वेदके स्तोत्रोंसे उत्पन्न घोषसे (वीळु चित्) बलवान् तथा (दृळ्हा) दृढ (अद्रिं) मेघको (रुजन्) तोड गिराया। अर्थात् वेद मंत्रोंके पाठसे इतना बडा शब्द हुआ कि उससे बादल टूट कर नीचे आगिरे। और तब (बृहतः दिवः गातुं चक्रुः) बडे भारी द्युलोकमें से मार्ग बनाबा। और इस प्रकार (अस्मे) हमारे लिए (स्वः अहः केतुं) सुख से प्रापणीय सूर्यको तथा (उस्राः) सूर्य किरणों को (विविदुः) प्राप्त किया।

इस मंत्रमें उक्थों की महिमा का वर्णन किया गया है और साथही में उन उक्थों की सहायतासे पितरोंने हमारे लिए दिन व सूर्य को प्राप्त किया जिससे कि हमें प्रकाश प्राप्त हो सके, यह दर्शाया गया है। पितर बादलों को हटाकर उन्हें छिन्न भिन्न कर हमारे लिए सूर्य प्रकाश पहुंचाते हैं यह इससे स्पष्ट होता है। उपरोक्त मंत्रके इसी भावको निम्न मंत्रभी प्रकट कर रहा है।-

स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो मीढ्वाँ
अभि नो ज्योतिषावीत्। येना नः पूर्वे
पितरः पदज्ञाः स्वर्विदो अभि गा अद्रिमु-
ष्णन् ॥ ऋ. ९।९७।३९ ॥

अर्थ— (सः) वह (वर्धनः) बढता हुआ (वर्धिता) बढानेवाला (पूयमानः) पवित्र करता हुआ (मीढ्वान्) सुख वा कामनाओंका वर्षक (सोमः) सोम (नः ज्योतिषा अभि आवीत्) हमारी प्रकाशसे चारों ओर से रक्षा करे। (येन) जिस सोमसे कि (नः पदज्ञाः, स्वर्विदः,पूर्वे पितरः) हमारे परम पदको जाननेवाले, व सूर्यको जाननेवाले पूर्व पितरोंने (गाः) किरणोंको (अभि=अभिलक्ष्य) उद्देश्य करके अर्थात् किरणों की प्राप्तिका उद्देश्य करके (अद्रिं उष्णन्) मेघका अपहरण किया अर्थात् उसे दूर हटाया जिससे कि सूर्य किरणों के आनेमें रुकावट न हो।

पूर्व मंत्रोक्त भावको इस मंत्र में भिन्न रूपसे दर्शाया गया है। उसी बातकी यह मंत्र पुष्टि करता है। 'स्वर्विदः' का अर्थ है सूर्य को जाननेवाले। द्युलोक कोभी स्वः कहते हैं अतः द्युलोक को जाननेवाले भी अर्थ है। यास्काचार्य भी यही अर्थ स्वीकार करते हैं। उन्होंने स्वः शब्दका निर्वचन निरु० अ० २। पा० ४। खण्ड १४ में निम्न प्रकारसे किया है-

"स्वः आदित्यो भवति। सु अरणः, सु ईरणः, स्वृतो रसान्, स्वृतो भासं ज्योतिषां, स्वृतो भासेति वा। एतेन द्यौर्व्याख्याता।" अर्थात् स्व आदित्य का नाम है क्योंकि यह सूर्य (सु-अरणः सु ईरणः) पूर्णतया अंधकार को दूर भगानेवाला है।

सु अर् = स्वः। अथवा 'स्वृतो रसान्' यह रसों के प्रति ग्रहण के लिए जाता है। सूर्यका रस लेना प्रसिद्ध ही है। सूर्य के रस लेने की बात को कालिदास ने रघुवंश में इस प्रकार कहा है—

' सहस्रगुणमुत्स्रष्टुं आदत्ते हि रसं रविः '

अर्थात् सूर्य हजार गुणा वापिस करने के लिए रसों को पृथिवी परसे लेता है। सु पूर्वक ऋगतौ। सु+अर् = स्वः। अथवा ' स्वृतो भासं ज्योतिषां ' अर्थात् चन्द्रादि प्रकाशमानों को प्रकाशित करनेवाला। अथवा ' स्वृतो भासा ' दीप्ती से युक्त होने से सूर्य का नाम स्वः है। इसीसे द्युलोक की भी व्याख्या हो गई ऐसा समझना चाहिए।

इस मंत्र में पितरों को सूर्य का जाननेवाला कहा गया है अतः इससे यह अनुमान निकाला जा सकता है कि संभव है पितर सूर्यलोक में भी विचरण करते हों। पितरों की सूर्य से घनिष्ठता प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त हमें पितृयाण के प्रकरण में एक ऐसा मंत्र भी मिला है जिस में कि पितरों की सूर्य किरणों के साथ सहप्राप्ति व सहगमन बताया गया है यहांपर पितरों को सूर्य को जाननेवाले बतलाया गया है। अतः इन दोनों बातों को लक्ष्य में रखकर विचारने से ऐसा प्रतीत होता है कि पितर पृथिवी लोक से सूर्य किरणों के साथ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सूर्य लोकमें जाते हैं और वहां से फिर द्युलोक में स्थित पितर लोक में जाते हैं। अतः संभव है यही पितृयाण मार्ग हो। अस्तु, तथापि इस विषय में निश्चित कहना तबतक कठिन है जबतक कि और कोई अधिक स्पष्ट प्रमाण न मिले। अभीतक यह बात पर्याप्त खोज के लिए अवकाश रखती है। उपरोक्त दोनों मंत्रों के भाव को निम्न मंत्र और भी स्पष्ट रूपमें पुष्ट कर रहा है-

अभिश्यावं न कृशनेभिरश्वं नक्षत्रेभिः पितरो द्यामपिंशन्। रात्र्यां तमो अदधुर्ज्योतिरहन् बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद्गाः ॥ ऋ० १०।६८।११॥
तथा अथर्व० २०।१६।११

अर्थ- (बृहस्पतिः अद्रिं भिनत्) जब बृहस्पतिने मेघको तोड गिराया और (गाः विदत्) सूर्य किरणों को प्राप्त किया तब (कृशनेभिः श्यावं अश्वं न) जैसे सुवर्ण के अलंकारों से काले घोडे को शोभायमान किया जाता है वैसे (पितरः) पितरोंने (नक्षत्रेभिः द्यां अपिंशन्) पितरोंने नक्षत्रों द्वारा द्युलोकको दीप्त कियां व शोभायमान किया। और फिर (रात्र्यां तमः अदधुः) रात्रिमें अंधकारको रखा तथा (अहन् ज्योतिः अदधुः) दिनमें प्रकाश को स्थापित किया। अतएव दिनमें प्रकाश होता है और रातमें अंधेरा। इस प्रकार इस मंत्रमें 'प्रकाश व अंधेरा पितर करते हैं' यह दर्शाया गया है।

आविरभून्महि माघोनमेषां विश्वं जीवं तमसो निरमोचि। महि ज्योतिः पितृभिर्दत्तमागादुरुः पन्था दक्षिणाया अदर्शि ॥
ऋ० १०।१०७।१ ॥

अर्थ- (एषां माघोनं महि आविरभूत्) इन पितरोंका मघवा संबन्धी महान् प्रकाश प्रकट हुआ, और प्रकट होकर उसने (विश्वं जीवं) सारे संसारको (तमसः निरमोचि) अंधकारसे छुडाया। (पितृभिः दत्तं महि ज्योतिः आगात्) वह पितरों से दिया हुआ प्रकाश आया और आकर उसने (दक्षिणायाः उरुः पन्थाः अदर्शि) दक्षिणा का विस्तृत मार्ग दर्शाया।

'माघोनं' का अर्थ है मघवा अर्थात् इन्द्र संबन्धी प्रकाश। सूर्य की चैत्र मासमें इन्द्र संज्ञा होती है अर्थात् सूर्य चैत्रमास में इन्द्र कहलाता है। अतएव माघोनं का यहां अर्थ सूर्य का प्रकाश ऐसा किया है। इसके अतिरिक्त प्रकृत प्रकरण भी इसी अर्थ की पुष्टि करता है।

इस मंत्रमें पितरों के प्रकाश देनेके महत्व को दर्शाया गया है। इन उपरोक्त मंत्रोंके देखनेसे हमें स्पष्ट पता चलता है कि पितरोंका काम उषाओंका उत्पन्न करना, अन्धकारको दूर करके सूर्यप्रकाश प्राप्त करना, तथा बादलोंको तोड फोडकर उनसे छिपे हुए प्रकाश को प्राप्त करना है। द्युलाक को नक्षत्रोंसे सुशोभित करके दिनरात बनानाभी पितरों का कार्य है। इस प्रकार पितर सूर्य प्रकाश प्रदाता हैं यह हमने देखा।

३ पापसे छुडाना

अरायान् ब्रूमो रक्षांसि सर्पान् पुण्यजनान् पितॄन्। मृत्यूनेकशतं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥
अथर्व ११।६।१६

अर्थ- (अरायान्) न दान देनेवालोंको, (रक्षांसि) राक्षसोंको, (सर्पान्) सर्पोंको, (पुण्यजनान्) पुण्यजनोंको और (पितॄन्) पितरोंको (ब्रूमः) कहते हैं तथा (एकशतं मृत्यून्) एकसो मृत्युओंको (ब्रूमः) कहते हैं कि (ते) वे सब (नः अंहसः) हमें पापसे (मुञ्चन्तु) छुडावें।

यहांपर अन्यों के साथ पितर भी पापसे छुडाते हैं यह दर्शाया गया है।

४ सुख व कल्याण करना

विश्वामित्र जमदग्ने वसिष्ठ भरद्वाज गोतम वामदेव। शर्दिर्नो अत्रिरग्रभीन्नमोभिः सुसंशासः पितरो मृडता नः ॥ अथर्व. १८।३।१६॥

अर्थ- हे (विश्वामित्र) सबके मित्र, (जमदग्ने) हे अग्निके प्रकाशक, (वसिष्ठ) हे अतिशय श्रेष्ठ, (भरद्वाज) हे अन्नबल धारक, (गोतम) हे उत्तम स्तोता, (वामदेव) हे प्रशंसनीय व्यवहारवाले, (सुसंशासः) उत्तम तथा स्तुति करने योग्य (पितरः) पितरो! तुम (नः मृडत) हमें सुखी करो क्योंकि (शर्दिः अत्रिः) बलविशिष्ट अत्रिने (नमोभिः)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अन्नोंसे हमें (अग्रभीत्) ग्रहण किया है अर्थात् वह हमें अन्न देता है !

अथवा शर्दिः=छर्दिः=घर। शर्दिका अर्थ घरकरने पर छर्दिका विभक्ति व्यत्यय करना पडेगा। शर्दिः= शर्दिम्। इस अवस्था में तृतीय पादका अर्थ होगा कि क्यों कि अत्रिने हमारे घरोंको अन्नोंसे भर दिया है अतः हे उपरोक्त विशेषण विशिष्ट पितरो हमें सुखी करो। अत्रिका अर्थ है जिसके तीनों ताप नहीं रहे। (निरु० ३। १७।)

इस मंत्रमें विश्वामित्र, जमदग्नि आदि शब्द पितरों की विशेषता दर्शाते हैं।

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः। शं नः ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥ ऋ० ७।३५।१२ तथा अथर्व० १९।११।११

अर्थ—(सत्यस्य पतयः) सत्य की रक्षा करनेवाले (नः शं भवन्तु) हमारा कल्याण करें। और (अर्वन्तः नः शं) घोडे हमारे लिए कल्याणकारी हों।(उ) और (गावः शं सन्तु) गौएं हमारे लिए कल्याणकारी हों। (सुकृतः सुहस्ताः ऋभवः नः शं) श्रेष्ठकर्मवाले कार्यकुशल कारीगर लोक हमारे लिए कल्याणकारी हों। (हवेषु) बुलाए जानेपर (पितरः नः शं भवन्तु) पितर हमारा कल्याण करें।

ऋभु का अर्थ निघण्टुमें मेधावी जन व कारीगर ऐसा है। (निघण्टु ३। १५ ॥)

५ गर्भधारण करना

अरुरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा बिभर्ति भुवनानि वाजयुः। मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमादधुः ॥ ऋ० ९।८३।३॥

अर्थ—(अग्रियः) अग्रणी-मुख्य-प्रसिद्ध (उषसः पृश्निः) उषासे संबन्ध रखनेवाला सूर्य (अरुरुचत्) सबको प्रकाशित करता है। (वाजयुः) भूतजातके लिए अन्नकी कामना करता हुआ अतएव (उक्षा) जलोंका सिंचन करनेवाला सूर्य (भुवनानि बिभर्ति) भुवनों का धारण पोषण करता है। (अस्य मायया) इसकी मायासे (मायाविनः) मायावीगण (ममिरे) पदार्थों का निर्माण करते हैं और (नृचक्षसः पितरः गर्भं आदधुः) मनुष्यों के देखनेवाले पितर गर्भ को धारण करते हैं।

सम्पूर्ण मंत्रके भावको लक्ष्यमें रखते हुए विचार करने से यहां सूर्य किरणों को पितर कहा गया है ऐसा प्रतित होता है। सूर्य किरण जलको अपने गर्भ में धारण करती हैं। सूर्य का किरणोंद्वारा जल ऊपर लेजाकर पुनः वृष्टिके समय बरसाना प्रसिद्ध ही है।

आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम्।
यथेह पुरुषोऽसत् ॥ यजुः अ० २।३३॥

अर्थ—(पितरः) हे पितरो ! (पुष्करस्रजं कुमारं गर्भं आधत्त) पुष्करस्रक् कुमारको गर्भमें धारण करो। (यथा) जिससे कि (इह पुरुषः असत्) यहां यह पुरुष बन जावे।

इस मंत्रपर भाष्य करते हुए उवटाचार्य तथा महीधराचार्यने पुष्करस्रक् कुमार का अर्थ अश्विनी कुमार जो कि देवोंके वैद्य हैं उनकासा सुन्दर कुमार,ऐसा किया है। पितरों से प्रार्थना की गई है कि देवोंके वैद्यकासा सुन्दर पुत्र उत्पन्न करो। महर्षि स्वामी दयानंदजी ने इस मंत्रपर भाष्य करते हुए पुष्करस्रक् कुमार का अर्थ 'विद्याग्रहणार्थ फूलकी माला धारण किया हुआ कुमार' ऐसा किया है। इस अर्थानुसार यह मंत्र विद्याभ्यासके प्रारंभके समय का वर्णन करता है ऐसा प्रतीत होता है, तथा इससे निम्न परिणाम निकाले जा सकते हैं—

(१) यहां आचार्यों के लिए पितृ शब्द का प्रयोग किया गया है।

(२) विद्याभ्यासके प्रारंभ करनेके लिए गुरुके पास जाते हुए विद्यार्थी को फूलोंकी माला अपने गलेमें डालकर जाना चाहिए।

(३) बहुवचनान्त पितृशब्द एकही समयमें एक शिष्य के अनेक आचार्यों का होना दर्शाता है।

पाठकों के सामने हमने दोनों भाष्यों का दिग्दर्शन करा दिया है। इस पर विशेष विचार पाठक स्वयं करें।

पितरों का संतति बढाना आदि।

द्विधासूनवोऽसुरं स्वर्विदमास्थापयन्त तृतीयेन कर्मणा। स्वां प्रजां पितरः पित्र्यं सह आवरेष्वदधुस्तन्तुं आततम् ॥ ऋ० १०। ५६। ६ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अर्थ- (सूनवः) आदित्यके पुत्र देवोंने (असुरं स्वर्विदं) बलवान् द्यु लोक को जानने वाले आदित्य को (तृतीयेन कर्मणा) प्रजोत्पत्ति नामक तीसरे कर्म से (द्विधा) दो प्रकारका अस्त व उदय वाला (अस्थापयन्त) स्थापित किया। (पितरः) पितरोंने (स्वां प्रजां) अपनी प्रजा को उत्पन्न करके (अवरेषु पित्र्यं सहः आदधुः) आनेवाली संतति में पैत्रिक तेज-बल स्थापित किया और इस प्रकार (तन्तुं आततं) संतति को विस्तृत बनाया।

पितर संतति बढाकर उसमें पैत्रिक तेज स्थापन करते हैं ऐसा इस मंत्रमें बतलाया गया है।

६ मनके प्रत्यावर्तन अर्थात् पुनर्जन्म में पितरों की सहायता

पुन र्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः।
जीवं व्रातं सचेमहि ॥ ऋ० १० । ५७ । ५ ॥
तथा यजुः अ० ३ । ५५ ॥

अर्थ - (नः पितरः) हमारे पितर तथा (दैव्यः जनः) देवोंका संघ (पुनः नः मनः ददातु) फिरसे हमें मनको देवे। हम (जीवं व्रातं सचेमहि) प्राणादि इन्द्रिय समूह को प्राप्त करें।

जन शब्द यहां संघ के लिए प्रयुक्त हुआ हुआ है। यह मंत्र पुनर्जन्मपर प्रकाश डालता हुआ पितरोंका मनादि इन्द्रियों के देनेमें सहायक होना दर्शा रहा है।

मनो न्वा हुवामहे नाराशंसेन सोमेन।
पितॄणां च मन्मभिः ॥ ऋ० १० । ५७ । ३ ॥

यह मंत्र थोडेसे पाठभेदसे यजुर्वेद में निम्नप्रकार से आया हुआ है—

मनोन्वा ह्वामहे नाराशंसेन स्तोमेन। पितॄणां च मन्मभिः ॥ यजुः अ. ३ । ५३ ॥

अर्थ -हम (नाराशंसेन सोमेन) नर जिसकी प्रशंसा करते हैं ऐसे सोम (चंद्रमा) से (च) और (पितॄणां मन्मभिः) पितरों के मनन करने योग्य स्तोत्रोंसे (नु) निश्चयसे (मनः) मनको (आ हुवामहे) बुलाते हैं।

यजुर्वेद में 'सोमेन' के स्थान में 'स्तोमेन' ऐसा पाठ है। वहां पर 'स्तुतियोंसे' ऐसा अर्थ होगा। मनकी उत्पत्ति सोम अर्थात् चन्द्रमासे है यह हमें पुरुषसूक्त (यजुः अ० ३१) से पता चलता है। यहां पर मनके प्रत्यावर्तनमें सोम व पितरों की स्तुतियोंको साधन बताया गया है। उपरोक्त दोनों मंत्रोंमें मन की पुनः प्राप्ति पितरों द्वारा होती है यह स्पष्टतया दिखाया गया है।

७ पितरोंके स्तोत्र

तमूषु समना गिरा पितॄणां च मन्मभिः।
नाभाकस्य प्रशस्तिभि र्यः सिन्धूनामुपोदये
सप्तस्वसा मध्यमो नभन्तामन्यके समे ॥
ऋ० ८ । ४१ । २ ॥

अर्थ-- (तं उ समानया गिरा) उस वरुणकी समान स्तुति से (च) और (पितॄणां मन्मभिः) पितरोंके मननीय स्तोम अर्थात् स्तुतियों से तथा(नाभाकस्य प्रशस्तिभिः) नाभाक के प्रशंसापरक स्तोत्रोंसे (सु अभिष्टौमि) अच्छी प्रकार स्तुति करता हूं। (यः) जो (मध्यमः) मध्यम वरुण (सिन्धूनां उप उदये सप्त स्वसा) नदियोंके उद्गम स्थान में सात बहिनोंवाला है। (समे) सब (अन्यके) जो हमसे द्वेष करते हैं ऐसे दुष्ट बुद्धिवाले-पापबुद्धिवाले-पापसंकल्प (नभन्तां) न रहें।

इस मंत्रसे हमें पता चलता है कि पितरों के कोई खास स्तोत्र हैं। वे स्तोत्र अपना विशेष परिणाम रखते हैं ऐसा नीचे दिए जाने वाले मंत्रसे प्रतीत होता है।

यह मंत्र विशेष विचारणीय है। उपरोक्त मंत्रकी व्याख्या निरुक्तकार यास्काचार्यने अपने निरुक्त में इस प्रकार की है-

'तं स्वभिष्टौमि समानया गिरा गीत्या स्तुत्या पितॄणांच मननीयैः स्तोमैः, नाभाकस्य प्रशस्तिभिः।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

* ऋषिर्नाभाको बभूव । यः स्यन्दमानानामुपोदये सप्त स्वसारमेनमाहवाग्भिः । स मध्यमः इति निरुच्यते । अथैष एव भवति । नभन्तामन्यके समे, मा भूवन्नन्यके सर्वे, ये नो द्विषन्ति दुर्धियः पापधियः पापसंकल्पाः ॥

निरुक्त १०। ५॥

हमने जो ऊपर अर्थ किया है वह निरुक्तानुसार ही किया है।

नाभाक ऋषि के प्रशंसापरक स्तोत्रोंसे तथा पितरों के मननीय स्तोत्रों से वरुण की स्तुति करने से पाप संकल्प नष्ट होते हैं अर्थात् पितरों के स्तोत्र पाप संकल्पों को दूर करने में सहायक हैं यह इस मंत्र के कथन का अभिप्राय प्रतीत होता है। इसके सिवाय पितरों की स्तुतियों से और क्या विशेष लाभ हैं यह निम्न मंत्र दर्शाता है -

त्वेह यत् पितरश्चिन्न इन्द्र विश्वा वामा जरितारो असन्वन्। त्वे गावः सुदुघास्त्वे ह्यश्वास्त्वं च सुदेवयते वनिष्ठः॥ ऋ० ७। १८। १॥

---

* हमें निरुक्त के अध्ययन से पता चलता है कि शब्दोंका निर्वचन करते हुए जो जो अर्थ यास्काचार्य को संभव प्रतीत हुए अथवा उनके समयतक जो अर्थ प्रचलित थे, उन हीं अर्थोंके अनुसार उन्होंने शब्दों के निर्वचन किए हैं। अतएव मंत्रोंकी व्याख्या करते हुए उन्होंने प्रत्येक शब्द पर विशेष विचार न करते हुए मुख्य मुख्य शब्दोंका निर्वचन किया है। निरुक्त निघण्टुकी टीका होता हुआ खास खास मंत्रों की एक अपने विशेष ढंगकी टीका है ऐसा कहें तो कुछ अनुचित न होगा। उपरोक्त मंत्र की व्याख्या करते हुए यास्काचार्य ' नाभाकस्य प्रशस्तिभिः ' में आए हुए नाभाक के लिए लिखते हैं कि 'ऋषिर्वै नाभाको बभूव।' अर्थात् नाभाक नामक ऋषि हुआ था। यदि उस समय तक के भाष्यकारों की, वेदार्थज्ञों की अथवा उनकी सम्मति नाभाक शब्दके अर्थमें विवादास्पद होती अर्थात् कोई पक्षान्तर होता तो अवश्यमेव यास्काचार्य नाभाक शब्द पर विशेष प्रकाश डालते। तत् संबन्धी पक्षान्तरोंकी सम्मतियां प्रकट करते। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उनके समयतक तथा वे स्वयं 'नाभाक नामक कोई ऋषि हुआ है' ऐसाही एकमतसे मानते थे।

' यः सिन्धूनामुपोदये सप्तस्वसा ' इस के भावको स्पष्टतया जानने के लिए ऋ. ८। ६९। १२॥ को अवश्य देखना चाहिए। उस मंत्रका भाव इस मंत्रसे पर्याप्त मिलता है। दोनों मंत्रोंका देवता वरुण है और उसीका वर्णन है। मंत्र इस प्रकार है।-

सु देवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः। अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्म्यं सुषिरामिव ॥

ऋ० ८। ६९। १२॥

यास्काचार्यने इसका अर्थ निरुक्तमें इस प्रकार किया है-

सुदेवस्त्वं कल्याणदेवः कमनीय देवो वा भवसि वरुण! यस्य ते सप्तसिन्धवः। सिन्धु स्रवणात्। यस्य ते सप्त स्रोतांसि, तानि काकुदं अनुक्षरन्ति, सूर्मि कल्याणोर्मि स्रोतः सुषिरमनु यथा॥ निरुक्त अ० ५। पा० ४। खण्ड २७॥

भावार्थ- हे वरुण ! तू सुदेव अर्थात् कल्याणकारी देव अथवा कामना करने योग्य देव है। तेरे सात छन्दरूपी स्रोत (झरने) काकुद अर्थात् तालुमें इस प्रकार बहते हैं, जिसप्रकार कि कल्याणकारी तरंगोंवाला स्रोत सुछिद्रनाली में बहता है।

पतंजलि मुनिने इसी मंत्रको महाभाष्य में उद्धृत करते हुए सप्त सिन्धु का अर्थ सात विभक्तियां किया है। महाभाष्य में इस मंत्रका अर्थ निम्न प्रकार है-

हे वरुण ! तू सत्य देव है। तेरे तालुमें सात विभक्तियां उस प्रकार प्रकाशित हो रही हैं जिसप्रकार कि सुछिद्र लोह प्रतिमामें जलती हुई अग्नि प्रकाशमान होती है।

मंत्रार्थ को स्पष्ट करने के लिए इतना वक्तव्य पर्याप्त है; परन्तु ऊपर जो कुछ हम इस मंत्र पर वक्तव्य प्रकट कर आए हैं वह विचारणीय है। वैदिक शोध के लिए यह मंत्र पर्याप्त सहायक है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अर्थ- हे इन्द्र ! (त्वे) तेरेमें (जरितारः नः पितरः विश्वा= विश्वानि वामा= वामानि) स्तुति करते हुए हमारे पितरों ने सारे प्रशंसनीय पदार्थों वा धनों को(असन्वत्) प्राप्त किया। (यत्) क्योंकि (त्वे सुदुघाः गावः) तेरे पास सुखसे दोही जाने वालीं गौएं हैं। (त्वे अश्वाः) तेरे पास घोडे हैं। और साथ ही तू (हि) निश्चयसे (देवयते वसु वनिष्ठः) कामना करने वाले के लिए या स्तुति करने वाले के लिए धनका संभाजक अर्थात् विभाग करके देनेवाला है।

इस मंत्र में यह बताया गया है कि पितरों ने स्तुति करके सब कुछ प्राप्त किया और जो कोई अन्य चाहे तो वह भी स्तुति कर के प्राप्त कर सकता है। पितरोंकी स्तुति का फल यहांपरदिखाया गया है।

अब कुछ ऐसे मंत्र नीचे दिए जाते हैं जिनमेंसे कि प्रत्येक में पितरों के भिन्न भिन्न कार्योंका उल्लेख है।

पितरोंसे दीर्घायु ।

वर्चसा मां पितरः सोम्यासो अञ्जन्तु देवा मधुना घृतेन । चक्षुषे मा प्रतरं तारयन्तो जरसे मा जरदष्टिं वर्धन्तु ॥ अथर्व० १८।३।१०

अर्थ- (सोम्यासः पितरः मां वर्चसा अञ्जन्तु) सोम संपादन करनेवाले पितर मुझे तेजसे व्यक्त करें । (देवाः मधुना घृतेन) देव मुझे माधुर्योपेत घृत से व्यक्त करें । (चक्षुषे मां प्रतरं तारयन्तः) देखने के लिए मुझे अच्छी तरह तराते हुए अर्थात् समर्थ बनाते हुए, (जरदष्टिं मां) जिसका खान पान शिथिल हो गया है ऐसे मुझको (जरसे) वृद्धावस्था तक (वर्धन्तु) बढावें अर्थात् जिस बुढापेमें खाने पीने की शक्ति जीर्ण हो जाती है उस बुढापेतक मुझे पहुंचावें। यथा संभव दीर्घायुवाला मुझे बनाएं, उससे पूर्व मैं क्षीण न होऊं ।

इस मंत्रमें पितरों से दीर्घायुष्यके लिए कहा गया है । दीर्घायु देना व प्रत्येक को उसकी पूर्णावस्थातक पहुंचाना पितरों का कार्य है ऐसा इस मंत्र से पता चलता है ।

पुनन्तु मा पितरः सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः । पवित्रेण शतायुषा । पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः । पवित्रेण शतायुषा विश्वमायुर्व्यश्नवै ॥ यजुः अ० १९ । ३७ ॥

अर्थ- (सोम्यासः पितरः मा पुनन्तु) सोम संपदान करनेवाले पितर मुझे पवित्र करें । (पितामहाः मा पुनन्तु) पितामह मुझे पवित्र करें । (प्रपितामहाः) प्रपितामह मुझे पवित्र करें ।(पवित्रेण शतायुषा) पवित्र सौ वर्ष की आयुसे । अर्थात् ये उपरोक्त पितृगण मुझे पवित्र सौ वर्ष की आयु दें । मेरा सौ वर्ष का जीवन पवित्रता पूर्वक व्यतीत हो, और इस प्रकार पवित्रतासे आयु व्यतीत करता हुआ (विश्वं आयुः व्यश्नवै) सम्पूर्ण आयु को जितनी कि मनुष्य की हो सकती है, प्राप्त करूं । पवित्रता पूर्वक जीवन व्यतीत करनेसे ही पूर्णायुष्य भोगी जा सकती है अन्यथा नहीं ।

निम्न मंत्रसे ऐसा प्रतीत होता है कि पितर मृतको पुनरुज्जीवित करते हैं । मंत्र इस प्रकार है ।

यत्ते अङ्गं प्रतिहितं पराचैरपानः प्राणो य उ वा ते परेतः । तत्ते संगत्य पितरः सनीडा घासाद् घासं पुनरावेशयन्तु ॥ अथर्व० १८ । २। २६

अर्थ- (ते यत् अङ्गं पराचैः अतिहितम्) तेरा जो अंग उलटा होकर हट गया है, और (यः ते प्राणः, अपानः परेतः) जो तेरा प्राण वा अपान दूर चला गया है- शरीर से निकल गया है, (तत् ते) उस उपरोक्त तेरे अङ्ग वा प्राण या अपान को (सनीडाः पितरः) साथ रहनेवाले पितर (संगत्य) मिलकर (घासाद् घासं इव) (यहां लुप्तोपमा प्रतीत होती है) जैसे घास से घास बांधी जाती है उसी प्रकार (पुनः आवेशयन्तु)फिर प्रविष्ट करावें अर्थात् फिरसे प्राण अपान आदि तुझे दें यानि पुनरुज्जीवित करें ।

प्राणों के निकल जानेपर शरीर चेष्टारहित हो जाता है । वह उस हालतमें शव वा मृत देह कहलाता है । इस मंत्रमें निकले हुए प्राणों का पुनः समावेश करनेका वर्णन है । इससे मृत को पुनरुज्जीवित करनेका निर्देश इस मंत्रमें मिलता है । इस के सिवाय कोई शरीर का अवयव उलटा हो गया

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हो वा दूर गया हो तो उसे भी पितर ठीक ठीक यथा स्थान बैठाते हैं ऐसा ज्ञात होता है।

सायणाचार्यने 'घासाद् घासं' का अर्थ इस प्रकार किया है- 'अद्यते भुज्यते अस्मिन्निति घासः। भोगायतनं शरीरम्। घासात् भोजनाधिकरणशरीरात् घासं अन्यत् शरीरं पुनः आवेशयन्तु।' अर्थात् जिसमें खाया जावे उसका नाम है घास। भोगायतन शरीर का नाम घास है क्यों कि इसमें भोग भोगे जाते हैं। अतः घासात् अर्थात् भोजनाधिकरण शरीरसे घासं यानि दूसरे शरीर को फिर देते हैं। मरने के बाद एक शरीर छुडाकर दूसरा शरीर देते हैं यह अभिप्राय है।

इस प्रकरण में संक्षेपसे इतना ही पितरों के कार्यों के विषयमें लिखना पर्याप्त है। इसके अतिरिक्त अन्य पितरों के कार्य दर्शानेवाले मंत्र अन्य प्रकरणों में यथास्थान दिए जाएंगे। उन की वहां उपयुक्तता अधिक होनेसे यहां पर वे नहीं दिए हैं।

पितरोंके प्रति हमारे कर्तव्य।

इस प्रकरण के हम दो विभाग करेंगे। प्रथम विभागमें उन मंत्रों का उल्लेख होगा जिनमें कि पितरों के लिए दान, नमस्कार, स्वधा आदि देनेका वर्णन है। द्वितीय विभाग में पितरों के लिए यज्ञ अथवा पितरों से यज्ञ का सबन्ध दर्शानेवाले मंत्रों का उल्लेख करेंगे। इस दूसरे विभाग का शीर्षक 'पितर और यज्ञ' होगा। प्रथम विभागमें छोटे छोटे कई शीर्षक होंगे। इस विभाग का सामूहिकरूप से शीर्षक देना कठिन है।

१— पितरोंके लिए नमस्कार

'नमः' का अर्थ अन्नभी होता है परन्तु पितरोंके लिए आए हुए 'नमः' का अर्थ नमस्कार ही है, क्योंकि पितरोंके अन्नका खास नाम 'स्वधा' है और अतएव जहां पितरोंके लिए अन्न अभिप्रेत होता है वहां स्वधा का प्रयोग होता है।

इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य अपरास ईयुः। ये पार्थिवे रजस्यानिषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु॥ ऋ. १०।१५।२॥
तथा यजुः अ० १९। ६८॥

यही मंत्र अथर्व में थोडे से पाठभेदसे निम्न प्रकारसे है—

इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य अपरास ईयुः। ये पार्थिवे रजस्यानिषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु दिक्षु॥ अथर्व० १८।१।४६।

अर्थ— (ये) जोकि (पूर्वासः) पूर्व कालीन पितर (ईयुः) स्वर्गको गए हुए हैं और (ये) जोकि (अपरासः) अर्वाचीन कालके पितर (ईयुः) स्वर्ग को गए हैं, (पितृभ्यः अद्य इदं नमः अस्तु) उन पितरोंके लिए आज यह नमस्कार हो। (ये पार्थिवे रजसि आनिषत्ताः) और जो कि पितर पृथिवी लोक पर स्थित हैं (वा) अथवा (ये) जो कि (नूनं) निश्चयसे (सुवृजनासु विक्षु) उत्तम बल वा धन युक्त प्रजाओं में स्थित हैं, उन पितरों के लिए भी नमस्कार हो। अथर्व वेदमें विक्षु के स्थान पर दिक्षु पाठभेद है। वहांपर 'ये वा नूनं सुवृजनासु दिक्षु' का अर्थ इस प्रकार होगा- 'अथवा जो कि पितर निश्चय से उत्तम बलवाली दिशाओं में स्थित हैं'।

नमो यमाय नमो अस्तु मृत्यवे नमः पितृभ्यः उत ये नयन्ति। उत्पारणस्य यो वेद तमग्निं पुरो दधे स्मा अरिष्टतातये॥ अथर्व० ५।३०।१२

अर्थ— (यमाय नमः अस्तु) यमके लिए नमस्कार हो। (मृत्यवे नमः) मृत्यु के लिए नमस्कार हो। (पितृभ्यः नमः) पितरों के लिए नमस्कार हो। (उत ये नयन्ति) और जो कि ले चलते हैं अर्थात् जो नायक (Leaders) हैं उनके लिए भी नमस्कार हो। (यः उत्पारणस्य वेद) जो उत्पारण अर्थात् पार लगानेके उपाय वा मार्ग को जानता है (तं अग्निं) उस अग्नि को (अस्मै अरिष्टतातये) इस जीवके कल्याणके विस्तारके लिए (पुरो दधे) आगे रखता हूं अर्थात् उस ऐसी अग्निको सदा मैं अपने सामने धारण करता हूं।

यदा गार्हपत्यमसपर्यैत् पूर्वमग्निं वधूरियम्।
अधा सरस्वत्यै नारि पितृभ्यश्च नमस्कुरु॥
अथर्व० १४।२।२०॥

अर्थ- (यदा पूर्वं इयं वधूः गार्हपत्यं अग्निं असपर्यैत्) जब पहिले यह वधू गार्हपत्य अग्नि की पूजा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

करे (अथ) तब उसके बाद (नारि) हे नारी! तू (सरस्वत्यै पितृभ्यः च) सरस्वती व पितरों के लिए (नमः कुरु) नमस्कार कर।

इस प्रकार हमनें देखा कि इन उपरोक्त मंत्रोंमें पितरों के लिए नमस्कार का विधान है।

२ पितरोंके लिए स्वधा।

अग्ने वाजजित् वाजन्त्वा सरिष्यन्तं वाजजितं सम्मार्ज्मि। नमो देवेभ्यः स्वधा पितृभ्यः सुयमे मे भूयास्तम्॥ यजुः अ० २।७॥

अर्थ- (वाजजित् अग्ने) हे अन्न को जीतनेवाली अग्नि! (वाजं सरिष्यन्तं त्वा) अन्नके प्रति जाती हुई तुझको (सं मार्ज्मि) शुद्ध करता हूं। (देवेभ्यः नमः) देवों के लिए नमस्कार हो तथा (पितृभ्यः स्वधा) पितरों के लिए स्वधा हो। (मे) मेरे लिए (सुयमे भूयास्तम्) नमः और स्वधा बल व पराक्रम देनेवाले हों। अथवा नमःऔर स्वधा,मुझे नियम में रखनेवाले हों।

यहां पर देवोंके लिए नमः और पितरों के लिए स्वधा का निर्देश है। 'वाजं सरिष्यन्तं त्वा संमार्ज्मि' से पता चलता है कि अन्न पकानेके लिए शुद्ध अग्नि का ही प्रयोग करना चाहिए। अशुद्ध वह्नि अन्न पकाने के लिए अनुपयुक्त है।

पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः। पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः। प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः। अक्षन् पितरोऽमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्त पितरः। पितरः शुन्धध्वम्॥ यजुः अ० १९।३६॥

अर्थ- (स्वधायिभ्यः पितृभ्यः) स्वधा प्राप्त करना जिनका शील (स्वभाव) है ऐसे पितरोंके लिए (स्वधा नमः) स्वधा और नमस्कार हो। (स्वधायिभ्यः पितामहेभ्यः स्वधा नमः) स्वधा लेनेवाले पितामहोंके लिए स्वधा और नमस्कार हो। (स्वधायिभ्यः प्रपितामहेभ्यः स्वधा नमः) स्वधा लेनेवाले प्रपितामहों के लिए स्वधा व नमस्कार हो। (पितरः) हे पितृगणो! (अक्षन्) उस स्वधा को खाओ। (पितरः) हे पितरो (अमीमदन्त) उस स्वधाको खाकर आनन्दित होओ। (पितरः) हे पितरो! उस स्वधा को खाकर (अतितृपन्त) अत्यन्त तृप्त होओ। (पितरः शुन्धध्वम्) हे पितरो शुद्ध होओ। इससे स्पष्ट है कि पितरोंका स्वभावही स्वधा खानेका है।

ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये।
तेषां लोकः स्वधा नमो यज्ञो देवेषु कल्पताम्॥
यजुः अ. १९। ४५॥

अर्थ— (यमराज्ये) यम के राज्यमें (ये पितरः समानाः समनसः) जो पितर समान तथा समनस अर्थात् एक विचार वा संकल्पवाले हैं, (तेषां लोकः स्वधा नमः यज्ञः) उन पितरों का लोक, स्वधा, नमस्कार व यज्ञ (देवेषु कल्पतां) देवोंमें समर्थ होवे।

व्याकरोमि हविषाहमेतौ तौ ब्रह्मणा व्यहं कल्पयामि। स्वधां पितृभ्यो अजरां कृणोमि दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि।। अथर्व. १२।२।३२

अर्थ— मैं (एतौ) इन दोनों को (हविषा) हविद्वारा (व्याकरोमि) प्रसिद्ध करता हूं। (तौ अहं) उन दोनों को मैं (ब्रह्मणा विकल्पयामि) ब्रह्मद्वारा विशेष सामर्थ्यवान् बनाता हूं। (पितृभ्यः स्वधां अजरां कृणोमि) पितरों के लिए स्वधा को अक्षय करता हूं। (इमान् दीर्घेण आयुषा) इन्हें दीर्घायु द्वारा (संसृजामि) संयुक्त करता हूं अर्थात् इन्हें दीर्घायु देता हूं। इस मंत्रमें पितरों के लिए अक्षय्य स्वधा का वर्णन है।

स्वधाकारेण पितृभ्यो यज्ञेन देवताभ्यः।
दानेन राजन्यो वशाया मातुर्हेडं न गच्छति॥
अथर्व० १२।४।३२

अर्थ— (पितृभ्यः स्वधाकारेण) पितरों के लिए स्वधाकारसे अर्थात् स्वधा देने से और (देवताभ्यः यज्ञेन) देवताओं के लिए यज्ञ करने से तथा (दानेन) दान करने से (राजन्यः वशायाः मातुः हेडं न गच्छति) क्षत्रिय वशामाता के तिरस्कार को प्राप्त नहीं होता। यहां पर स्वधा का महत्व दर्शाया गया है। पितरों के लिए स्वधा न देनेसे वशामाता गुस्से होती है। स्वधा न देने वाले का वह तिरस्कार करती है।

एतत् ते प्रततामह स्वधा ये च त्वामनु॥
अथर्व० १८।४।७५॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अर्थ- हे (प्रततामह !) प्रपितामह ! (ते एतत्) तेरे लिए यह दिया हुआ पदार्थ (स्वधा) स्वधा होवे । (ये च त्वां अनु) और जो तेरे अनुगामी हैं उनके लिए भी यह स्वधा हो ।

तत शब्द पितृवाचक है। इसमें निम्न ऐतरेय आ. का प्रमाण है - ' एतां वाव प्रजापतिः प्रथमां वाचं व्याहरद् एकाक्षर द्व्यक्षरां ततेति तातेति । तथैवैतत् ततवत्या वाचा प्रति पद्यते । ' इति ऐ० आ० १ । ३ । ३ ॥ आश्वालायनने भी 'अपने पितरों का नाम न जानता हुआ पुत्र तत शब्द का प्रयोग करे' इस आशयवाला सूत्र बनाया हैं- ' नामान्यविद्वाँस्तत पितामहप्रपितामहेति ' । आश्व० २ । ६ ॥ इस मंत्र में प्रपितामह के लिए स्वधा का विधान है ।

एतत् ते ततामह स्वधा ये च त्वामनु ॥
अथर्व १८ । ४ । ७६ ॥

अर्थ- (ततामह) हे पितामह! (ते एतत् स्वधा) तेरे लिए यह दिया हुआ पदार्थ (हवि) स्वधा होवे । (ये च त्वां अनु) और जो तेरे अनुगामी हैं उनके लिए भी यह स्वधा होवे ।

एतत् ते तत स्वधा ॥ अथर्व० १८ । ४ । ७७ ॥

अर्थ- हे (तत) पिता ! (ते एतत् स्वधा) तेरे लिए यह हवि स्वधा होवे ।

इन उपरोक्त अथर्व वेदके ३ मंत्रों से पता चलता है कि प्रपितामह, पितामह तथा पिता, इन तीनों में से प्रत्येक के नामपर अलग अलग स्वधा दी जाती है ।

नमो वः पितरः स्वधा वः पितरः ॥
अथर्व० १८ । ४ । ८५ ॥

अर्थ- हे (पितरः) पितरो (वः) तुम्हारे लिए (नमः) नमस्कार होवे । (पितरः) हे पितरो ! (वः) तुम्हारे लिए (स्वधा) स्वधा होवे ।

इस मंत्र में पितरों के लिए स्वधा व नमस्कार दोनों के देने का उल्लेख है ।

श्येनो नृचक्षा दिव्यः सुपर्णः सहस्रपाच्छतयोनि र्वयोधाः । स नो नि यच्छाद् वसु यत् पराभृतमस्माकमस्तु पितृषु स्वधावत् ॥
अथर्व० ७ । ४१ । २ ॥

अर्थ- (नृचक्षाः) मनुष्यों को देखनेवाला, (दिव्यः) दिव्य अर्थात् देवगुणों से युक्त, (सुपर्णः) उत्तम गतिवाला (सहस्रपात्) हजारों पैरोंवाला अर्थात् शीघ्रगामी (शतयोनिः) सैंकडों का कारण यानि सैंकडों का उत्पन्न करनेवाला (वयोधाः) अन्न, बल, आयु को देनेवाला जो (श्येनः) श्येन है (सः) वह (नः) हमें (यत् पराभृतं वसु) जो शत्रुओं से हरण किया हुआ धन है उसे (नियच्छात्) वापस दे । और वह धन (अस्माकं पितृषु स्वधावत्) हमारे पितरों में स्वधा की तरह होवे अर्थात् पितरों में जो स्थान स्वधा को प्राप्त है वही स्थान उसे प्राप्त होवे या वह धन पितरों में स्वधावत् अर्थात् आत्मधारण शक्ति करानेवाला होवे । उस धन से पितर स्वावलंबी बनें- स्वाश्रयी होवें । यहांपर स्वधा का अर्थ आत्मधारण ऐसा प्रतीत होता है । स्वधा क्या चीज है यह एक विचारणीय विषय है तथापि आगे चलकर हम थोडासा स्वधापर प्रकाश डालने की कोशीश करेंगे ।

३ पितरों को स्वधा देनेसे लाभ

सोदक्रामत् सा पितॄनगच्छत् तां पितर उपाह्वयन्त स्वध एहीति ॥ अथर्व० ८ । १३ । ५॥
तां स्वधां पितर उपजीवन्ति उपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ अथर्व० ८ । १३ । ८

अर्थ- (सा) वह विराट् (उत् अक्रामत्)ऊपर को उछली । (सा) वह (पितॄन् अगच्छत्) पितरों के पास गई । (तां) उसे (पितरः उप आह्वयन्त) पितरों ने अपने पास बुलाया कि (स्वधे) हे स्वधा ! (एहि इति) तू हमारे पास आ ॥ अथर्व० ८ । १३ । ५ ॥ (पितरः तां स्वधां उपजीवन्ति) पितर उस स्वधा का उपभोग करते हैं यानि उस स्वधा को खाकर जीते हैं । (यः एवं वेद)जो इस प्रकार जानता है कि पितर उस स्वधा को खाकर जीते हैं वह भी (उपजीवनीयः भवति) उस स्वधा का उपभोग करने योग्य बनता है अर्थात् उस स्वधा के आश्रय से जीता रहता है ।

इन मंत्रों से यह बात स्पष्ट है कि पितर स्वधा के आश्रय से जीते हैं अतः पितरों को स्वधा देनी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

चाहिए और जो पुरुष इस रहस्यको जानता है उसे भी स्वधा मिलती रहेगी और इस प्रकार वह भी स्वधा खाकर सुखपूर्वक जीवन निर्वाह कर सकेगा।

इन मंत्रोंपर विशेष विचार अपेक्षित है। अभीतक ये मंत्र अस्पष्ट से हैं।

४ जलद्वारा पितृतर्पण।

हिंदू लोक मृत पितरों का जो जलद्वारा तर्पण करते हैं उसका आधार संभवतः निम्न तीन मंत्र हैं। इन मंत्रों में जलद्वारा पितृतर्पण का विधान पाया जाता है। मंत्र इस प्रकार हैं-

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम्।
स्वधा स्थ तर्पयत मे पितॄन् ॥

यजु० अ० २। मं. ३४ ॥

इस मंत्रका देवता 'आपः' अर्थात् जल है। मंत्रार्थ- (ऊर्जं) बल को, (अमृतं) अमृत को, (घृतं)घीको (पयः) दूध को(कीलालं)अन्न को तथा (परिस्रुतं) फूलों फलों से निकले हुए सार भाग को (वहन्ती) वहन करते हुए (आपः) हे जलो तुम (स्वधा स्थ) स्वधा होवो। अर्थात् पितरों का अन्न बनो और (मे पितॄन् तर्पयत) मेरे पितरों को अपने उपरोक्त रसभागों से तृप्त करो।

मंत्र स्पष्ट है इसपर विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं है। स्पष्ट शब्दों में जलद्वारा पितृतर्पण का निर्देश है। दूसरा मंत्र इस प्रकार है-

ये ते पूर्वे परागता अपरे पितरश्च ये।
तेभ्यो घृतस्य कुल्यैतु शतधारा व्युन्दती ॥

अथर्व० १८। ३। ७२ ॥

अर्थ- (ते) वे (ये पूर्वे परागताः) जो पूर्व कालीन पितर परे चले गए हैं अर्थात् परलोकवासी हुए हैं और (ये अपरे पितरः) जो अर्वाचीन पितर परलोकवासी हुए हैं (तेभ्यः) उन प्राचीन व अर्वाचीन पितरों के लिए (शतधारा) व्युन्दती) सैंकडों धाराओं वाली उमडती हुई (घृतस्य कुल्या) जलकी कुल्या-क्षुद्र नदी(एतु)प्राप्त होवे। यह मंत्र भी उपरोक्त प्रथम मंत्रके भाव कोही पुष्ट कर रहा है। पहिले मंत्रकी तरह यह मंत्र भी स्पष्ट है। कुल्याका अर्थ निघण्टुमें 'कृत्रिमा सरित्' अर्थात् बनावटी नदी यानि नहर ऐसा दिया है। पितरोंको जलसे तर्पण करनेके लिए नहर बहानी चाहिए ऐसा भाव इस मंत्र का मालूम पडता है। उपरोक्त दोनों मंत्रों के भावको ही पुष्ट करता हुआ तीसरा मंत्र इस प्रकार है—

पुत्रं पौत्रमभि तर्पयन्तीरापो मधुमतीरिमाः।
स्वधां पितृभ्यः अमृतं दुहाना आपो देवीरुभयांस्तर्पयन्तु ॥ अथर्व० १८।४। ३९ ॥

अर्थ-(पुत्रं पौत्रं अभि तर्पयन्तीः) पुत्र पौत्रादियोंको पूर्णतया तृप्त करते हुए (इमाः मधुमतीः आपः) ये मधुर जल हैं। (पितृभ्यः स्वधां अमृतं दुहानाः) पितरोंके लिए स्वधा व अमृतका दोहन करते हुए (देवीः आपः) ये दिव्यजल (उभयान्) दोनों पुत्र पौत्रोंको (तर्पयन्तु) तृप्त करें।

उपरोक्त तीनों मंत्रोंमें जल द्वारा पितृतर्पणका उल्लेख है। हिंदुओं का जल द्वारा पितृतर्पण करना इन मंत्रोंके आधार पर होना चाहिए। पाठकों के सामने हमने इन मंत्रोंको उनके सरलार्थ सहित रख दिया है। वे इन पर विचार करें। हमारा कार्य तो सिर्फ वैदिक विचारोंको पाठकोंके सामने रखना है।

मंत्रार्थ से जो परिणाम निकल सकता है वह नीचे दे दिया जाता है। किन पितरोंका जलद्वारा तर्पण करना चाहिए यह अभीसे नहीं कहा जा सकता तथापि इतना जरूर पता चलता है कि जल द्वारा पितृतर्पण करना चाहिए।

यत् ते पितृभ्यो ददतो यज्ञे वा नाम जगृहुः।
संदेश्यात् सर्वस्मात् पापादिमा मुञ्चन्तु त्वौषधीः ॥ अथर्व० १०। १। ११ ॥

अर्थ- (यत् यज्ञे पितृभ्यः ददतः ते नाम जगृहुः) यदि यज्ञमें पितरोंके लिए दान करते हुए तेरा नाम उन्होंने लिया हो अर्थात् तेरे पर दोषारोपण किया हो तो(सर्वस्मात् संदेश्यात् पापात्) उस सर्व संदेश्य अर्थात् किसीके आदेशसे- कहनेसे किए गए पापसे (इमाः औषधीः त्वा मुञ्चन्तु) ये औषधियां तुझे छुडाएं।

इस मंत्रमें पितरोंके लिए यज्ञमें दान देनेका उल्लेख है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

४ पितरोंका भाग ।

पितॄणां भागस्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त । प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥ अथर्व० १०।५।१३॥

अर्थ-इस मंत्रका 'आपः' देवता है। हे जलो! तुम (पितॄणां भागः स्थ) पितरोंका भाग-अंश हो। (देवीः आपः) हे दिव्य जलो! (अपां शुक्रं वर्चः अस्मासु धत्त) जलोंका वीर्य व तेज हमारेमें धारण करो अर्थात् हमें दो। (अस्मै लोकाय) इस लोकके लिए, (प्रजापतेः धाम्ना वः सादये) प्रजापतिके तेजसे तुम्हें बिठलाता हूं-स्थित करता हूं।

इस मंत्रमें जलों को पितरोंका भाग-अंश बतलाया है।

त्रेधा भागो निहितो यः पुरा वो देवानां पितॄणां मर्त्यानाम्। अंशान् जानीध्वं विभजामि तान् वो यो देवानां स इमां पारयाति ॥ अथर्व० ११।१।५॥

अर्थ- (वः देवानां पितॄणां मर्त्यानां) तुम देवों, पितरों व मनुष्यों का (यः त्रेधा भागः) जो तीन प्रकार का भाग (पुरा निहितः) पहिलेसे रखा है उसमें से अपने अपने (अंशान्) अंशोंको-भागोंको (जानीध्वं) जानो अर्थात् मनुष्य, पितर व देवों का जो तीन प्रकारका भाग हमने कर रखा है उसमें से अपने अपने भागको जानते हुए लो। (तान् विभजामि) उन भागों को मैं बांटता हूं। (वः देवानां यः सः इमां) तुम देवों का जो अंश है वह इस ब्रह्मौदन पाचक पत्नी को (पारयाति) पार लगावे अर्थात् जिस कार्य का इसने प्रारंभ किया है उसमें वह पार हो जावे।

इस मंत्र में देव, मनुष्य व पितरों के लिए अलग अलग भाग देनेका उल्लेख है।

५ पितरों के शर्म (Father Land) का विस्तार करना।

यत्र शूरास स्तन्वो वितन्वते प्रिया शर्म पितॄणाम्। अध स्मा यच्छ तन्वे तने च छर्दिरचित्तं यावय द्वेषः ॥ ऋ० ६।४६।१२

अर्थ- (यत्र शूरासः तन्वः) जहां पर शूरवीर अर्थात् शूरवीर गण शरीर (पितॄणां प्रिया शर्म वितन्वते) पितरोंके प्यारे घरों का विस्तार करते हैं वहांपर (तन्वे तने च) अपने शरीर के लिए व हमारी संतानके लिए (अचित्तं छर्दिः यच्छ स्म) शत्रुओंसे अज्ञात घरको दे जिससे कि शत्रु हमारा व हमारी संतानका विनाश न कर सकें। (द्वेषः) द्वेष करनेवालों को-वैरभाव रखनेवालों को (यावय) दूर कर। हम सब मित्रता पूर्वक शत्रु रहित हुए हुए रहें।

शर्मका अर्थ निघण्टुमें सुख व घर इन दोनों अर्थोंमें आया है। शर्म=गृह। निघण्टु ३।४॥

शर्मः सुख। निघण्टु ३।६॥

'पितॄणां प्रिया शर्म' इस पद समुदाय का अभिप्राय पितरों के देशसे है अर्थात् जहां पर वंश परंपरा से पितृगण निवास करते चले आ रहे हैं। हम मातृभूमि के नाम से स्वदेश को पुकारते हैं पर अंग्रेजीमें Father land व mother land ये दोनों नाम स्वदेश के लिए प्रयुक्त होते हैं। यहां पर वेदमें भी स्वदेश को Falherland के नामसे कहा गया है। इस प्रकार इस मंत्रमें स्वदेश के विस्तार करने का निर्देश है। 'छर्दिः-गृह।' निघण्टु ३।४॥ 'अचित्तं छर्दिः' से यह दर्शाया है कि गुप्त रूप से भी शत्रु हमारे घरमें न रहने चाहिए अन्यथा हमारा भेद उन्हें मिलता रहेगा।

पितर और यज्ञ।

इस विभाग में प्रायः वे मंत्र दिए जायंगे जिनमें कि पितरों के यज्ञ में आने जाने व हवि खाने आदि का वर्णन होगा। इस विभागसे हमें यह बात सुगमतया पता लग सकेगी कि पितरों के लिए यज्ञादि करने चाहिए उन्हें हवि देना चाहिए और इस प्रकार करनेसे पितर हमारी आयु संपत्ति आदि की वृद्धि करते हैं तथा अन्य कष्टों के दूर करनेमें सहायक होते हैं।

उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु। त आगमन्तु त इह श्रुवन्त्वधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥ ऋ. १०।१५।५॥ तथा यजुः अ० १९।५७॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यह मंत्र अथर्व वेद में भी है। वहां प्रारंभमें थोडासा पाठभेद है। 'उपहूताः पितरः' के स्थान पर 'उपहूता नः पितरः' है। केवल 'नः' और अधिक है शेष समान है। देखो अथर्व० १८। ३। ४५॥

अर्थ- (प्रियेषु बर्हिष्येषु निधिषु) प्रीतिकारक यज्ञ संबन्धी निधियोंमें (सोम्यासः) सोम संपादन करनेवाले (पितरः) जो पितर (उपहूताः) बुलाए गए हैं (ते आगमन्तु) वे पितर आवें। (ते) वे पितर (इह) इस यज्ञमें (अधिश्रुवन्तु) हमारी प्रार्थनायें ध्यान पूर्वक सुनें और (अधि ब्रुवन्तु) हमें उपदेश करें तथा (ते अस्मान् अवन्तु) वे हमारी रक्षा करें।

'बर्हिष्य' - बर्हिष् नाम है यज्ञका; उसमें होनेवाला बर्हिष्य, अर्थात् यज्ञ संबन्धी। इसके अतिरिक्त 'सोम्यासः' पद भी इसी अर्थकी पुष्टि करता है। यास्काचार्यने निरुक्तमें सोम्यासः का अर्थ सोमका संपादन करनेवाले ऐसा किया है। और सोम यज्ञमें संपादन किया जाता है। प्रकरणसे भी यही अर्थ होता है क्योंकि इससे पूर्वके मंत्रोंमें यज्ञ प्रकरण का वर्णन है।

निधिका अर्थ निरुक्ताचार्य यास्क ने अपने निरुक्त की भूमिकामें निम्न प्रकार किया है—

निधिः शेवधिरिति । शेवधि का अर्थ है सुखका भण्डार। निरु० अ० २। पा० १। खं० ४॥

इस प्रकार इस मंत्रमें पितरोंके यज्ञमें आने, प्रार्थना सुनने, उपदेश करने व रक्षा करनेका उल्लेख हमें मिलता है।

> आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभि
> गृणीत विश्वे। मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो
> यद्व आगः पुरुषता कराम ॥ ऋ. १०।१५।६ ॥
> तथा यजुः अ० १९।६२ ॥

यह मंत्र अथर्व वेदमें थोडेसे पाठ भेदकेसाथ आया है—

> आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येदं नो हविरभि
> गृणन्तु विश्वे। मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो
> यद्व आगः पुरुषता कराम ॥ अथर्व. १८।१।५२ ॥

अर्थ- (विश्वे) सब तुम पितरो! (जानु-आच्य) दायां घुटना टेककर (दक्षिणतः निषद्य) दाईं ओर बैठकर (इमं यज्ञं) इस यज्ञका (अभिगृणीत) स्वीकार करो। (पितरः) हे- पितरो! (यत् वः आगः पुरुषता कराम) जो तुम्हारा अपराध पुरुषत्व अर्थात् मनुष्यत्वके कारण हम करते हैं (केन चित्) ऐसे किसी भी अपराध के कारण (मा हिंसिष्ट) हमें मत मारो अर्थात् क्यों कि हम मनुष्य हैं और मनुष्य मात्र भूलका पात्र होता है अतः यदि अपराध होभी जाए तोभी क्षमा करो, हमारी हिंसा मत करो।

'जानु आच्य' का अर्थ हमने दायां घुटना टेककर ऐसा किया है जो कि शतपथ ब्राह्मण के निम्न वाक्य के आधारपर है। अथैनं पितरः। प्राचीनावीतिनः सव्यं जान्वाच्योपासीदंस्तानब्रवीत्' ...इत्यादि ॥ शतपथ. २। ४। २। २॥ शतपथके इस वाक्य से प्रतीत होता है कि दांया घुटना टेकर पितर यज्ञमें बैठते हैं।

निम्न मंत्र में पितरों के लिए मासिक यज्ञका विधान है।

> परा यात पितरः सोम्यासो गंभीरैः पथिभिः
> पूर्याणैः। अधा मासि पुनरायात नो गृहान्
> हविरत्तुं सुप्रजसः सुवीराः ॥ अथर्व० १८।४।६३

अर्थ- (सोम्यासः पितरः) -हे सोम संपादक पितरो! (गंभीरैः पूर्याणैः पथिभिः) गंभीर पूर्याण-मार्गोंद्वारा (परायात) वापस चले जाओ। जहां से आए थे वहां पर लौट जाओ। (अथ पुनः) और फिर (सुप्रजसः सुवीराः) हे उत्तम प्रजा वाले तथा सुवीर पितरो! (मासि) मासके अन्तमें यानि महीने महीने के बाद (नः गृहान्) हमारे घरोंमें (हविः अत्तुं) हवि के खाने के लिए (आयात) आओ।

'पूर्याण- पुरं यातीति पूर्याणः।' नगरको जानेवाले रस्ते का नाम पूर्याण है।

प्रत्येक मासमें पितृयज्ञ करना चाहिए तथा उसमें देश देशान्तर व ग्राम ग्रामान्तर में स्थित पितरों को आमन्त्रित करना चाहिए ऐसा इस मंत्र का भाव है।

> अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदः सदः
> सदत सुप्रणीतयः। अत्ता हवींषि प्रयतानि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बर्हिष्यधा रयिं सर्ववीरं दधातन ॥ ऋ० १०।१५।११

यह मंत्र यजुर्वेद व अथर्व वेदमें भी थोडेसे पाठ भेदसे आया है। देखो यजु. १९।५९। तथा अथर्व १८।३।४४। अर्थ इस प्रकार है —

(अग्निष्वात्ताः सुप्रणीतयः पितरः) हे अग्निष्वात्त व उत्तम नेता पितरो! (इह) इस यज्ञमें (आगच्छत) आओ। (सदः सदः सदत) घर घर में स्थित होओ। (अथ) और (बर्हिषि प्रयतानि हवींषि अत्त) यज्ञमें दिए गए हवियोंको खाओ। और हमें (सर्ववीरं रयिं दधातन) सर्व प्रकारकी वीरतासे पूर्ण धन को दो।

अग्निष्वात्त शब्द विशेष विचारणीय है। इस पर हम आगे चलकर 'अग्नि व पितर' इस प्रकरणमें विचार करेंगे।

इस मंत्रमें पितरों को यज्ञमें हवि खिलानेका व उनसे वीरता पूर्ण धन मांगनेका वर्णन है।

सहस्रधारं शतधारमुत्समक्षितं व्यच्यमानं सलिलस्य पृष्ठे। ऊर्जं दुहानमनपस्फुरन्तमुपासते पितरः स्वधाभिः ॥ अथर्व. १८।४।३६ ॥

अर्थ- (शतधारं सहस्रधारं उत्सं) सैंकडों व हजारों धाराओंवाले स्रोतकी तरह जो हजारों व सैंकडों धाराओंसे युक्त है ऐसे, और जो (सलिलस्य पृष्ठे व्यच्यमानं) अंतरिक्षके ऊपर व्याप्त है ऐसे, (ऊर्जं दुहानं) अन्न व बलको देनेवाले, (अनपस्फुरन्तं) कभी भी चलायमान न होनेवाले अर्थात् स्थिर हविको (पितरः) पितर (स्वधाभिः) स्वधाओंके साथ (उपासते) सेवन करते हैं।

यहां पर हवि शब्द का अध्याहार पूर्व मंत्रसे करना पडता है क्यों कि संपूर्ण मंत्रमें आए हुए विशेषणों का कोई भी विशेष्य नहीं है।

पितृगण स्वधा के साथ हवि खाते हैं इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि स्वधा कोई भिन्न वस्तु ही है। यहांपरभी पूर्व मंत्रकी तरह पितरों के हवि सेवन का उल्लेख है।

पितरों का यज्ञमें धन दान।

आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय। पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्रयच्छत त इहोर्जं दधात ॥ ऋ. १०।१५।७॥ यजु. अ. १९।६३॥ तथा अथर्व० १८।३।४३॥

अर्थ — (अरुणीनां उपस्थे) यज्ञमें प्रदीप्त की गई अग्निकी लाल लाल चमकती हुई ज्वालाओं के समीपमें (आसीनासः) बैठे हुए पितरो! (दाशुषे मर्त्याय) दानी मनुष्य के लिए (रयिं धत्त) धन को दो। (तस्य) और उस दानी मनुष्य के (पुत्रेभ्यः वस्वः प्रयच्छत) पुत्रोंके लिए भी धनको दो। (ते) उपरोक्तानुसार धन दान करने वाले तुम (इह) इस यज्ञ में (ऊर्जं) अन्न को धारण करो।

अरुणी का अर्थ अग्नि ज्वाला किया है। इस मंत्र में पूर्वके मंत्रोंसे यज्ञ का प्रकरण चला आरहा है। उसी प्रकरण का अनुसरण करते हुए यही अर्थ उचित बैठता है।

परायात पितर आ च यातायं वो यज्ञो मधुना समक्तः। दत्तो अस्मभ्यं द्रविणेह भद्रं रयिं च नः सर्ववीरं दधात ॥ अथर्व० १८।३।१४॥

अर्थ- (पितरः) हे पितरो! (परायात) यज्ञ समाप्ति पर वापस लौट जाओ। (च) और फिर (आयात) आओ क्यों कि (अयं यज्ञः वः मधुना समक्तः) यह यज्ञ तुम्हारे लिए (मधुना समक्तः) मधुर आज्यसे तैयार किया हुआ है। (इह) इस यज्ञमें (द्रविणा) धनों को (दत्तो) दो। (भद्रं सर्ववीरं रयिं च) और कल्याण कारी तथा सर्व वीरता से युक्त रयि अर्थात् सम्पति-समृद्धि से (नः)हमें (दधात) पुष्ट करो। मधु का अर्थ है मधुररसपूर्ण आज्य। देखो. ऐ. ब्रा. २।२।-'एतद् वै मधु दैव्यं यद् आज्यम्'।

आपो अग्निं प्र हिणुत पितॄँरुपेमं यज्ञं पितरो मे जुषन्ताम्। आसीनामूर्जमुप ये सचन्ते ते नो रयिं सर्ववीरं नियच्छात्॥ अथर्व० १८।४।४०

अर्थ- (आपः) हे आप! तुम (अग्निं पितॄन् उपप्रहिणुत) अग्नि को पितरों के पास भेजो। (मे पितरः) मेरे पितृगण (इमं यज्ञं जुषन्ताम्) इस यज्ञका सेवन करें। (ये) जो पितर (आसीनां ऊर्जं उपसचन्ते) उपस्थित अर्थात् हमारे से दिए गए अन्नका

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सेवन करते हैं (ते) वे पितर (नः) हमें (सर्ववीरं रयिं) सब प्रकारकी वीरतासे युक्त धन-संपत्ति को (नियच्छात्) निरन्तर देते रहें।

इस मंत्र में आप अर्थात् जलोंसे कहा गया है कि वे अग्नि को पितरों के पास ले जाएं जिससे कि अग्नि में होमा हुआ हवि पितरों को पहुंच सके। इस भावका दूसरा मंत्र अभीतक हमारी दृष्टिमें नहीं पड़ा है। जल यज्ञाग्निको पितरों के पास कैसे ले जाते हैं यह एक विचारणीय विषय है। इस मंत्रके विषयमें विशेष विचार अपेक्षित है।

इन उपरोक्त मंत्रोंके देखनेसे हम इस परिणाम पर पहुंच सकते हैं कि पितृगण यज्ञमें आकर हवि का ग्रहण करते हैं तथा प्रार्थीको धन देते हैं। इससे पितरोंका यज्ञसे संबन्ध प्रतीत होता है। पितरोंको यज्ञमें बुलाया जाता है वह वहांपर उन्हें हवि दी जाती है जो कि हवि वे अग्नि द्वारा स्वीकृत करते हैं। यह बात अथर्व० १८।४।४० से स्पष्ट होती है। इसका अभिप्राय यह है कि जिस रूपमें हवि होमी जाती है उस रूपमें पितर नहीं लेते परन्तु अग्नि द्वारा सूक्ष्म अदृश्य रूपमें परिणत हुई हुई हवि लेते हैं अर्थात् यज्ञमें अग्निमें होमी हुई हवि पितरोंको पहोंचती है। इसलिए जिसको सर्व वीरोपेत धन सम्पत्ति चाहिए उसे यज्ञ करना चाहिए व पितरोंको हवि देनी चाहिए। इन उपरोक्त बातों का हम इन मंत्रोंसे सहज अनुमान कर सकते हैं।

सं विशन्त्विह पितरः स्वा नः स्योनं कृण्वन्तः
प्रतिरन्त आयुः। तेभ्यः शकेम हविषा नक्षमाणा ज्योग् जीवन्तः शरदः पुरूचीः॥

अथर्व. १८।२।२९।

अर्थ- (इह) इस यज्ञमें (नः) हमारे (स्वाः पितरः) ज्ञातिके पितृगण (स्योनं कृण्वन्तः) सुख उत्पन्न करते हुए (सं विशन्तु) प्रविष्ट होवें। और (आयुः प्रतिरन्त) आयुष्यकी वृद्धि करें। और उसके बदलमें (नक्षमाणाः) गतिशील अर्थात् सर्वदा कार्य तत्पर हम (ज्योक् पुरूचीः शरदः) निरन्तर बहुतसे वर्षोंतक (जीवन्तः) जीवन धारण करते हुए (तेभ्यः) उन दीर्घ आयु देनेवाले पितरोंकी (हविषा) हविद्वारा (शकेम) सेवा करनेमें समर्थ बने रहें।

यह मंत्र भी उपरोक्त परिणाम को पुष्ट कर रहा है। निम्न मंत्र विशेष विचारणीय हैं क्योंकि इनमें पितरोंके लिए मांस व वपा के हवनका विधान मिलता है। संभव है ऐसे मंत्रों के देखनेसे ब्राह्मण कालमें यज्ञमें मांस आदि होमने की प्रथा प्रचलित हुई हो।

वह वपां जातवेदः पितृभ्यो यत्रैनान्वेत्थ निहितान् पराके। मेदसः कुल्या उपतान्स्स्रवन्तु सत्या एषामाशिषः सं नमन्तां स्वाहा॥

यजुः अ० ३५। २०॥

अर्थ- (जातवेदः) हे अग्नि! (पितृभ्यः वपां वह) पितरोंके लिए वपाका वहन कर, (यत्र) जहां (पराके) दूरपर (निहितान्) स्थित (एतान् वेत्थ) इन पितरोंको तू जानता है। (मेदसः कुल्याः तान् उपस्रवन्तु) चरबीकी छोटी छोटी नदियां उनको प्राप्त होवें और (एषां सत्याः आशिषः) उनके सत्य आशीर्वाद (सं नमन्ताम्) हमें प्राप्त होवें। (स्वाहा) उपरोक्त कथन सत्य है।

यहांपर अग्निको पितरोंके लिए चरबीकी नहरें पहुंचानेके लिए कहा गया है।

निम्न मंत्रमें पितरोंके लिए मांसवाले चरुके देने का विधान है-

अपूपवान् मांसवाँश्चरुरेह सीदतु। लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुत भागा इहस्थ॥ अथर्व, १८।४।२०॥

अर्थ-अपूपों व मांस वाला चरु यहां वेदी पर आवे। (लोककृतः पथिकृतः) स्थानोंके बनानेवाले व मार्गोंके बनाने वालोंको (यजामहे) हम पूजते ह। (ये) जोकि तुम (इह) यहां (देवानां हुतभागाः) देवोंमें दिए हुए भागको लेनेवाले हो।

वेदमें मांस शब्द मांस (Meat)के लिए आता है। यास्काचार्यने इसके जो निर्वचन किए हैं वे इसी बातको सिद्ध कर रहे हैं। साथ ही जो उन्होंने मंत्र पेश किया है उसमें भी स्पष्ट शब्दोंमें बकरीके मांस खानेका निषेध है। यास्काचार्यने मांसके निर्वचन मेंनिम्न किए हैं—देखो निरुक्त- ४।१।३।३।

(१) मांसं माननं- (मा+अननं) अर्थात् मांस भक्षणसे आयु प्राप्त नहीं होती।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

(२) मानसं -- मांस खानेसे मानसिक पाप पैदा होते हैं।

(३) मनोऽस्मिन्सीदति- मांस खानेमें मन जाता है। मांस भक्षणको मन बहुत चाहता है।

इसके अतिरिक्त मनुने मनुस्मृतिमें मांसका जो निर्वचन किया है वह भी देखने लायक है। वह इस प्रकार है-

मां स भक्षयिताऽमुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम्।
एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः॥५।५५॥

अर्थात् जिस प्राणीका मांस मैं इस जन्ममें खाता हूं, परजन्ममें वह मुझे खाएगा। यह मांसका मांसत्व है ऐसा विद्वान् लोकोंका कथन है।

इसी सूक्तके ४२ वें मंत्रमेंभी ऐसा ही वर्णन है। वह मंत्र इस प्रकार है-

यं ते मन्थं यमोदनं यन्मांसं निपृणामि ते।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः॥
अथर्व० १८।४।४२॥

अर्थ-(ते) तेरे लिए (यं मन्थं) जिस मंथ अर्थात् मथनेसे-विलोडनेसे प्राप्त पदार्थ मक्खन आदि को और (यं ओदनं) जिस भातको (यत् मांसं) जिस मांसको (ते) तेरे लिए (निपृणामि) देता हूं। (ते) वे सब (स्वधावन्तः मधुमन्तः घृतश्चुतः) स्वधावाले, मधुरतासे युक्त तथा घीसे परिपूर्ण (ते सन्तु) तेरे लिए होवें।

इस मंत्र में मांसका विधान है। प्राचीन सूत्रकारों के सूत्रोंमें भी कई स्थानों पर मांस विधान पाया जाता है। अतः उन सब ग्रंथों के अवलोकन के साथ साथ इन मंत्रों पर विचार करने से कुछ प्रकाश पडने की संभावना है। ऐसे ऐसे आपत्ति जनक मंत्र व शब्दों के यौगिक अर्थ करके अर्थ बदलनेसे पूर्व प्रामाणिक खोज करनी एक निष्पक्षपाती शोधक के लिए परमावश्यक है। हम इन मंत्रों को अभी पाठकों पर विचारार्थ छोडते हैं। वे इन पर विशेष विचार करने का प्रयत्न करेंगे। हम आगे इसपर स्वतंत्र प्रकरणमें विचार करेंगे। यहां एक बात और भी कह देनी आवश्यक है और वह यह कि वेदोंमें अग्निका विशेषण ' क्रव्यात् ' अर्थात् मांसभक्षक ऐसा आता है। इससे अग्निमें मांस जलानेका अनुमान हो सकता है; परन्तु जब तक पूर्ण शोध इस विषयमें न हो जाए तब तक किसी खास परिणाम पर पहुंचना अनुचित होगा।

अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वम्।
अमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषायिषत
यजुः अ० २।३१॥

अर्थ— (पितरः) हे पितरो! (अत्र) इस यज्ञमें (मादयध्वम्) प्रसन्न होओ और (यथाभागं) अपने अपने भागके अनुसार हवि लेते हुए (आवृषायध्वम्) वृष की तरह आचरण करो अर्थात् मस्त होकर खाओ। जिस प्रकार कि (अमी पितरः) वे पितर (यथाभागं) अपने अपने भाग के अनुसार हवि लेकर (मदन्त) प्रसन्न हुए और (आवृषायित) उन्होंने उसे खाया।

शतपथ ब्राह्मणमें 'यथाभागमावृषायध्वं' का अर्थ किया है ' यथाभागं अश्नीतेति ' श० २।४।२।२०। पितरों के लिए यज्ञ में खास हवि का भाग करके रखा जाता है जिसे खा कर वे प्रसन्न होते हैं यह इससे सूचित होता है। अतः यज्ञमें पितरों के लिए भाग रखना चाहिए।

यद् वो मुद्रं पितरः सोम्यं च ते नो सचध्वं
स्वयशसो हि भूत॥ ते अर्वाणः कवय आ
शृणोत सुविदत्रा विदथे हूयमानाः॥
अथर्व० १८।३॥१९॥

अर्थ- (पितरः) हे पितरो! (वः यत् मुद्रं सोम्यं च) तुम्हारा जो हर्षप्रद व सौम्य कार्य है (ते नो) उस द्वारा (सचध्वं) हमें सेवित करो अर्थात् युक्त करो। (हि) निश्चयसे तुम (स्वयशसः) अपने यशसे ही यशस्वी (भूत) होते हो। (अर्वाणः) गतिवाले अर्थात् निरालसी, (कवयः) क्रान्तदर्शी तथा (सुविदत्राः) उत्तम धनवाले, (हूयमानाः) बुलाए गए (ते) वे तुम (विदथे) यज्ञमें हमारी उपरोक्त प्रार्थनायें (आशृणोत) आकर सुनो।

अबतकके मंत्रोंसे हमने देखा कि पितरोंको यज्ञमें बुलाया जाता है और वहां पर उन्हें हवि देकर प्रसन्न किया जाता है। प्रसन्न हुए हुए वे आयु, धनादि की इच्छा पूर्ति करते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि पितरोंसे कामपूर्ति करानेके लिए यज्ञ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

साधनभूत है।

पितरोंके लिए प्रत्येक मासमें दान।

सोदक्रामत् सा पितॄनागच्छत् तां पितरो-
ऽघ्नत सा मासि समभवत् ॥ अथर्व० ८।१२।३॥
तस्मात् पितृभ्यो मास्युपमास्यं ददति प्र पितृ-
याणं पन्थां जानाति य एवं वेद॥ अथर्व० ८।१२।४

अर्थ- (सा) वह विराट् (उत् अक्रामत्) ऊपरको उछली और (सा) वह (पितॄन् अगच्छत्) पितरोंके पास गई। (तां) उसको (पितरः अघ्नत) पितरोंने प्राप्त किया। फिर (सा) वह विराट् (मासि) मासमें (संभवत्) संयुक्त हुई ।। अथर्व० ८।१२।३ ॥ (तस्मात्) इस लिए (पितृभ्यः मासि) पितरोंके लिए महीनेमें (ददति) देते हैं। (यः एवं वेद) जो इस प्रकार अर्थात् पितरोंको महीनेमें दिया जाता है ऐसा जानता है वह (पितृयाणं पन्थां) पितृयाण मार्गको (प्रजानाति) अच्छी प्रकार जानता है।

अथर्व वेदका यह सूक्त विशेष क्लिष्ट है। इसका रहस्य क्या है यह अभीतक स्पष्ट नहीं हुआ है। तथापि यहां पर जो कहा गया है उससे इतना परिणाम अवश्य निकलता है कि पितरोंके लिए प्रत्येक मासमें दान करना चाहिए उनके लिए कुछ देना चाहिए।

पितरोंका आसन।

येऽस्माकं पितरस्तेषां बर्हिरसि॥ अथर्व० १८।४।६८

अर्थ- (ये) जो (अस्माकं पितरः) हमारे पितर हैं (तेषां) उनका (बर्हिः) आसन (असि) है।

कुशाघासका नाम बर्हि है। बर्हिको संबोधन करके कहा गया है। यज्ञमें पितरोंके बैठनके लिए कुशाघास निर्मित आसन होना चाहिए, ऐसा इससे पता चलता है।

अग्नि और पितर।

(१)

इस प्रकरण में हम अग्नि व पितरोंका संबन्ध तथा पितरोंके प्रति अग्नि के कार्यों को दर्शायेंगे। पाठक इस प्रकरणान्तर्गत मंत्रों को ध्यान पूर्वक पढें व उनसे निकलते हुए परिणामोंपर गौर करें।

यज्ञमें अग्निका पितरोंको लाना।

ये तातृषुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्कैः। आग्ने याहि सुविदत्रेभिः अर्वाङ्
सत्यैः कव्यैः पितृभिः घर्मसद्भिः ॥ऋ. १० ।१५।९॥

अर्थ- (देवत्रा जेहमाना) देवों को प्राप्त होते हुए अर्थात् देव बनते हुए (होत्राविदः) यज्ञों के जाननेवाले (स्तोम तष्टासः) स्तोमों के बनानेवाले (ये) जो पितर (अर्कैः) पूजनीय स्तुतियोंसे (तातृषुः) अत्यन्त प्रसन्न होते हैं, ऐसे (सुविदत्रेभिः, सत्यैः, कव्यैः, घर्मसद्भिः पितृभिः,) उत्तम धनवाले अर्थात् समृद्ध सत्यवचनी, कवि अथवा कव्य नाम है पितरों के लिए दिए गए हव्य का। अतः कव्यों के लेनेवाले, यज्ञों में बैठनेवाले पितरों के साथ (अग्ने) हे अग्नि तू (आयाहि) आ।

ये सत्यासो हविरदो हविष्पा इन्द्रेण देवैः सरथं
दधानाः। आग्ने याहि सहस्रं देववन्दैः परैः
पूर्वैः पितृभिर्घर्मसद्भिः ॥ ऋ. १० । १५ । १० ॥

अर्थ- (ये) जो पितर (सत्यासः) सत्यवचनी (हविरदः) हविके खानेवाले (हविष्पाः) हवि की रक्षा करने वाले तथा (इन्द्रेण देवैः सरथं दधानाः सन्ति) इन्द्र व देवों के साथ एकही रथ पर चढते हैं ऐसे (सहस्रं देववन्दैः) हजारों बार देवों से स्तुति किए गए (पूर्वैः परैः) प्राचीन व अर्वाचीन (घर्मसद्भिः पितृभिः) यज्ञमें बैठनेवाले पितरों के साथ (आ याहि) आ। उपर निर्दिष्ट दोनों मंत्र एकही बात कह रहे हैं। इन दोनों में अग्निको, पितरों को अपने साथ लाने के लिए कहा गया है। पितरों को यज्ञादिमें साथ लाना अग्निका कार्य है यह इन मंत्रों से स्पष्ट होता है। यह अग्नि कौन है इसका निर्णय मंत्रोंसे स्वयं पाठक कर सकेंगे। इस अग्नि का यज्ञ व हवि से विशेष संबन्ध है यह आगे आनेवाले मंत्रोंसे स्वयं स्पष्ट हो जायगा। उन सब मंत्रों को लक्ष्य में रखते हुए ही अग्नि के विषयमें निर्णय करना चाहिए। यह अग्नि विषयक निर्णय पितरों पर पर्याप्त प्रकाश डाल सकेगा ऐसा हमारा मानना है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अग्निका पितरोंको हवि खाने के लिए ले आना

उशन्तस्त्वा निधीमह्युशन्तः समिधीमहि ।
उशन्नुशत आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥
ऋ० १०।१६।२॥
तथा यजुः अ० १९।७०॥
तथा अथर्व० १८।१।५६॥

अर्थ- हे अग्ने ! (उशन्तः) कामना करते हुए हम (त्वा निधीमहि) तेरी स्थापना करते हैं। और (उशन्तः समिधीमहि) कामना करते हम तुझे प्रदीप्त करते हैं। (उशन्) कामना करती हुई हे अग्नि तू (हविषे अत्तवे) हविके खाने के लिए (उशतः पितॄन्) कामना करते हुए पितरों को (आ वह) ले आ।

यहां पर अग्नि से हवि खाने के लिए पितरों के ले आनेके लिए कहा गया है।

द्युमन्तस्त्वेधीमहि द्युमन्तः समिधीमहि ।
द्युमान् द्युमत आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥
अथर्व० १८ । १ । ५७॥

अर्थ- हे अग्नि ! (द्युमन्तः) दीप्तिमान होते हुए हम (त्वा इधीमहि) तुझे प्रकाशित करें। (द्युमन्तः और दीप्तिमान हम (समिधीमहि)तुझे भली प्रकार प्रदीप्त करें। (द्युमान्) दीप्त हुआ हुआ तू (द्युमतः पितॄन्) प्रकाशमान् पितरों को (हविषे अत्तवे) हवि भक्षणार्थ (आवह) ले आ। उपरोक्त मंत्रके भाव का ही यह मंत्रभी समर्थन कर रहा है।

ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः ।
सर्वास्तानग्न आवह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥
अथर्व० १८।२।३४॥

अर्थ- (अग्ने !) हे अग्नि ! (ये निखाताः) जो पितर जमीनमें गाडे गए हैं और (ये परोप्ताः) जो पितर दूर बहा दिए गए हैं तथा (ये दग्धाः) जो पितर अग्नि से जलाए गए हैं (ये च) और जो पितर (उद्धिताः) जमीनके ऊपर रखे गए हैं (तान् सर्वान्) उन सब पितरों को तू (हविषे अत्तवे) हविभक्षणार्थ (आवह) ले आ।

इस मंत्रमें यह बताया है कि चार प्रकारका अंत्येष्टि संस्कार होता है। (१)गाडना (२)बहाना(३)जलाना (४)हवामें खुला छोडना। यहां पर इन चारों संस्कारों से संस्कृत पितरों को हवि खाने के लिए अग्निको बुलालाने के लिए कहा गया है। इस मंत्रपर विशेष प्रकाश 'प्रेत व अंत्येष्टि नामक' शीर्षक के नीचे डालेंगे।

अग्निका पितरों को हवि पहुंचाना

ऊपर हमने देखा कि अग्नि पितरों को हवि खानेके लिए अपने साथ ले आती है। अब हम देखेंगे कि वह पितरों के पास हवि ले भी जाती है और वहां उन्हें देती है।

त्वमग्न ईळितो जातवेदोऽवाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वी । प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥
ऋ० १० । १५ । १२॥
तथा अथर्व० १८ । ३ । ४२॥

यह मंत्र यजुर्वेद में पाठभेद से निम्न प्रकार आया है—

त्वमग्न ईळितः कव्यवाहनावाड् ढव्यानि सुरभीणि कृत्वी। प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥
यजुः अ० १९ । ६६॥

अर्थ- (जातवेदः अग्ने !) हे जातवेदस् अग्नि ! (ईळितः त्वं) स्तुति किया गया तू (हव्यानि) हव्यों को (सुरभीणि कृत्वी) सुगन्धित बनाकर (अवाट्) वहन कर। और फिर (पितृभ्यः प्रादाः) पितरों को दे। (ते) वे पितर (प्रयता हवींषि) दी गई हवियों को (स्वधया अक्षन्) स्वधाके साथ खावें। (देव) हे प्रकाशमान अग्नि ! (त्वं) तू भी (अद्धि) उन हवियों को खा।

इस मंत्र में अग्नि से कहा गया है कि वह हवियों को ले जाकर पितरों को दे ताकि वे उन्हें खावें। यजुर्वेद में स्थित उपरोक्त मंत्र में अग्नि का विशेषण 'कव्य वाहन' आया हुआ है। पितरों के लिए दी गई हवि का नाम कव्य है। और क्यों कि अग्नि उस कव्य को पितरों को पहुंचाती है अतः उसे कव्यवाहन के नाम से पुकारा गया है। हम आगे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

भी देखेंगे कि पितरों के प्रति हवि को ले जानेवाली अग्नि को कव्य वाहन के नाम से कहा गया है।

अभूद् दूतः प्रहितो जातवेदाः सायं न्यह्न उपवन्द्यो नृभिः । प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥
अथर्व० १८ । ४ । ६५ ॥

अर्थ- (सायं न्यह्ने) सायं काल और प्रातः काल (नृभिः उपवन्द्यः) नरों से वन्दना की जाती हुई (जातवेदाः) जातवेदस् अग्नि (प्रहितः दूतः अभूत्) भेजा हुआ दूत है। क्यों कि तू भेजा हुआ दूत है अतः हे (देव) प्रकाशमान अग्नि! (प्रयता हवींषि) हमारे से दी गई हवियों को (पितृभ्यः प्रादाः) पितरों के लिए दे जिस से कि (ते) वे पितर जिन्होंने कि तुझे दूत बना कर भेजा है, (स्वधया अक्षन्) स्वधा के साथ हमारे द्वारा दी गई हवियों को खावें। (त्वं अद्धि) तू भी उन हवियों को खा। इस मंत्र से हमें पता चलता है कि जिस अग्नि की सायं व प्रातः वंदना की जाती है उस अग्नि को पितर अपना दूत बनाकर हमारे पास भेजते हैं और वह अग्नि हमारे पास से हवियों को ले जाकर पितरों को पहुंचाती है। हमारे से दी गई हवियों को पितरों तक पहुंचाने के लिए अग्नि माध्यम है यह यहां पर स्पष्ट होता है।

उपरोक्त दोनों मंत्र इस बात को स्पष्ट कर रहे हैं कि अग्नि पितरों के पास हवि पहुंचाती है और पितर उसे अपना दूत बनाकर हवि लाने के लिए भेजते हैं।

यो अग्निः कव्यवाहनः पितॄन् यक्षदृतावृधः ।
प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्य आ ।
ऋ० १० । १६ । ११ ॥
तथा यजुः अ० १९ । ६५ ॥

अर्थ-(यः अग्निः) जो अग्नि (कव्यवाहनः) कव्य का अर्थात् पितरों की हवि का वहन करनेवाली है और जो (ऋतावृधः पितॄन् यक्षत्) यज्ञ वा सत्य से बढने वाले पितरों का यजन करती है वह अग्नि (देवेभ्यः पितृभ्यः च हव्यानि प्रवोचति) देवों और पितरों के लिए हव्यों को कहे अर्थात् देवों व पितरों से कहे कि मैं तुम्हारे लिए हव्य ले आई हूं।

पूर्व मंत्र में हम अभी देख आए हैं कि अग्नि पितरों का दूत बनकर उनके लिए हवियों को ले आती है। हवि ले आनेपर पितरों को वह सूचीत करती है कि तुम्हारे लिए मैं हवि ले आई हूं इसी भावको इस मंत्र में कहा गया है। यहांपर अग्नि को कव्यवाहन कहा गया है। देवों व पितरों दोनों को ही अग्नि हवि पहुंचाती है यह भी इससे पता चलता है।

निम्न मंत्र में भी अग्नि को कव्यवाहन के नाम से कहा गया है।

अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः ॥
अथर्व० १८ । ४ । ७१॥

अर्थ--(कव्य वाहनाय अग्नये) कव्य का वहन करनेवाली अग्नि के लिए (स्वधा नमः) स्वधा और नमस्कार होवे।

पितरों के लिए दी जाती हविका नाम कव्य है और देवों के लिए दी जाती हवि का नाम हव्य है।

अग्निका दूरगत पितरोंको जानना।

समिन्धते अमर्त्यं हव्यवाहं घृतप्रियम् ।
स वेद निहितान् निधीन् पितॄन् परावतो गतान् ॥ अथर्व० १८।४।४१ ॥

अर्थ- (अमर्त्यं) मरणधर्मसे रहित (घृतप्रियं) जिसको घी बहुत प्रिय है ऐसी (हव्यवाहं) हव्यों का वहन करनेवाली अग्निको पितृगण (समिन्धते) अच्छी प्रकार प्रदीप्त करते हैं। और (सः) वह अग्नि (निहितान् निधीन्) छिपेहुए खजानों की तरह [यहां लुप्तोपमा है] (परावतो गतान् पितॄन्) दूरगत पितरोंको (वेद) जानती है।

यहांपर यह बताया गया है कि छिपे हुए खजानों की तरह जो पितर सर्वथा आंखोंसे ओझल हैं अर्थात् सर्वथा अदृश्य हैं (चाहे वे दूर देशमें जानेसे अदृश्य हों या परलोकवासी होनेसे अदृश्य हों) उन्हें अग्नि जानती है। इसी लिए अग्निसे कहा गया है कि वह पितरोंको हवि पहुंचाए और इसी लिए वही पहुंचा सकती है।

ये चेह पितरो ये च नेह यांश्च विद्म यां उ च न प्र विद्म । त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभि-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यज्ञं सुकृतं जुषस्व ॥ ऋ. १०।१५।१३ ॥

अर्थ- (ये च इह पितरः) जो पितर यहां पर हैं, (ये च न इह) और जो यहांपर नहीं हैं, (यान् च विद्म:) तथा जिन पितरोंको हम जानते हैं,(यां च न प्र विद्म) तथा जिन पितरोंको हम नहीं जानते, इस प्रकारके (यति ते) जितने भी वे पितर हैं उन सबको (जातवेदः) हे जातवेदस् अग्नि (त्वं वेत्थ) तू जानती है । (स्वधाभिः) स्वधाओंके साथ (सुकृतं यज्ञं) उत्तम प्रकारसे किए हुए यज्ञको (जुषस्व) प्रीति पूर्वक ग्रहण कर ।

इस मंत्रमें स्पष्ट रूपसे अग्निको विद्यमान अविद्यमान, ज्ञात अज्ञात, आदि सब प्रकारके पितरोंको जाननेवाला बताया गया है ।

निम्नमंत्रमें अग्निका पितरोंको पितृलोकमें पहुंचानेका निर्देश है ।

यद् वो अग्निरजहादेकमङ्गं पितृलोकं गमयं जातवेदाः । तद् व एतत् पुनराप्याययामि साङ्गाः स्वर्गे पितरो मादयध्वम्।

अथर्व० १८ । ४ । ६४

अर्थ— हे पितरो ! (वः यत् एकं अङ्गं) तुम्हारे जिस एक अङ्गको (पितृलोकं गमयन् जातवेदाः अग्निः) पितृलोकमें ले जाती हुई जातवेदस् अग्निने (अजहात्) छोड दिया है (वः तत् एतत्)तुम्हारे उस इस अङ्ग को मैं (पुनः) फिर (आप्याययामि) पूर्ण करता हूं । (साङ्गाः पितरः)अपने सब अङ्गों से युक्त हुए हुए पितरो! (स्वर्गे मादयध्वम्) स्वर्ग में आनन्दित होओ ।

इस मंत्र से ऐसा पता चलता है कि अग्नि मरने के अनन्तर पितरों को पितृलोक में ले जाती हुई उनके शरीर के किसी अवयव को यहांपर छोड जाती है। परन्तु इस कथन का क्या अभिप्राय है यह कुछ समझमें नहीं आता। अंत्येष्टि संस्कार में शवका अग्नि से दाह करने पर प्रत्यक्ष रूपमें तो कोई भी अङ्ग अवशिष्ट नहीं रह जाता ! इस मंत्र का कोई अवश्य गूढार्थ होना चाहिए । और जबतक इस विषय में कुछ पता नहीं चलता तबतक यह एक समस्या के रूपमें हमारे सामने उपस्थित है। पाठक विचार कर इस समस्या को हल करनेका प्रयत्न करेंगे ऐसी आशा है ।

इसके सिवाय पितृयाण में हम निर्देश कर आए थे कि अग्नि पितृयाण मार्ग को जानती है। यहां हमें पता चलता है कि अग्नि पितरों को जानती है, पितृलोक को जानती है। इतना ही नहीं अपितु पितृलोकमें जाकर पितरों को हवि पहुंचाती है और वहांसे उन को हमारे यज्ञों में भी अपने साथ ले आती है । हमने पितृयाण में यह भी देखा कि पितर सूर्य किरणों के साथ जाते हैं। इन बातों से ऐसा पता चलता है कि पृथिवी लोक की हदतक पार्थिव अग्नि पितरों को ले जाती है तथा द्युलोक में वही अग्नि सूर्य रूप में परिणत होकर ले जाती है । इस प्रकार द्युलोक में जाने के पितृयाण मार्ग का कुछ पता किया जा सकता है । अबतक का विवेचन इतना हमें जरूर बतलाता है कि पितरों को अग्नि अपने साथ पितृलोकमें ले जाती है और वहांसे अपने साथ पुनः यज्ञादिमें हवि आदि खानेके लिए ले भी आती है ।

अग्निका मृत पुरुषको पितरोंके पास पहुंचाना !

पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वाननष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः । स त्वैतेभ्यः परिददत् पितृभ्योऽग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः॥ ऋ. १०।१७।३ ॥

तथा अथर्व-१८।२।५४॥

अर्थ- (अनष्टपशुः भुवनस्य गोपाः पूषा) हे मृत मनुष्य ! निरन्तर प्रकाशमान प्राणिमात्रका रक्षक पूषा, (विद्वान् त्वा इतः प्रच्यावयतु) जानता हुआ अपनी रश्मियों द्वारा तेरी आत्माको इस पृथिवी लोकसे प्रकृष्ट मार्गकी ओर ले जावे । (सः अग्निः) वह अग्नि (त्वा) तुझे (एतेभ्यः पितृभ्यः) इन पितरोंके लिए या (सुविदत्रियेभ्यः देवेभ्यः) उत्तम धनवाले देवोंके लिए (परि ददत्) देवे ।

यह मंत्र भी उपरोक्त परिणाम को स्पष्ट रूपसे पुष्ट कर रहा है । यास्काचार्यने पूषाका अर्थ आदित्य किया है । (निरु० ७।३।९). तदनुसार सूर्य मृत पुरुषकी आत्माको अपनी रश्मियोंसे ले जाता है ऐसा प्रतीत होता है। पितृयाणमें जो मंत्र (ऋ. १।१०९।७) हमने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दिया है उसीकी यह मंत्र पुष्टि करता हुआ प्रतीत होता है।

मैनमग्ने विदहो माभि शोचो मास्यत्वचं चिक्षिपो मा शरीरम्। यदाशृतं कृणवो जात-वेदोऽथेमेनं प्र हिणुतात् पितृभ्यः॥
ऋ० १० । १६ । १॥

यह मंत्र अथर्व वेद में थोडेसे पाठभेदके साथ निम्न प्रकार आया है।

मैन मग्ने विदहो माभि शूशुचो मास्यत्वचं चिक्षिपो मा शरीरम्। शृतं यदा करसि जात-वेदोऽथेमेनं प्र हिणुतात् पितृभ्यः॥
अथर्व० १८।२।४॥

अर्थ— (अग्ने) हे अग्नि! (एनं मा विदहः) इस प्रेतको इस प्रकारसे मत जला कि जिससे इसे विशेष कष्ट हो। (मा अभि शोचः) इसे शोकाकुल मत कर। (अस्य त्वचं मा चिक्षिपः) इसकी चमडी को मत फेंक। (मा शरीरं) और इस प्रेतके शरीर कोभी मत फेंक अर्थात् इसकी त्वचा व शरीर पूर्णतया जला दे कोईभी भाग दहनक्रियासे अवशिष्ट न रहे। और (जातवेदः) हे जातवेदस् अग्नि! (यदा शृतं कृणवः) जब तू इस प्रेतको परिपक्व बनादे अर्थात् पूर्णतया जला दे (अथ) तब(एनं) इसको (पितृभ्यः प्रहिणुतात्) पितरोंके लिए भेज दे अर्थात् पितृलोकमें पितरोंके पास पहुंचा दे।

यह मंत्र अद्यपि अंत्येष्टि संस्कार विषयक है तथापि अग्निका पितरोंके लिए प्रेत देनेका कार्य दर्शानेके लिए यहां दिया गया है।

इस मंत्रके उत्तरार्धसे ऐसा पता चलता है कि जबतक देह संपूर्णतया जल नहीं जाती तबतक आत्मा देहके आसपास ही मंडलाती रहती है। इस परिणामानुसार तो आत्मा को शीघ्र मुक्त करनेके लिए व उसके लिए निर्धारित स्थान पर भेजनेके लिए शरीरका दहन करना अधिक उत्तम प्रतीत होता है।

शृतं यदा करसि जातवेदोऽथेमेनं परिदत्तात् पितृभ्यः। यदागच्छात्यसुनीतिमेतामथा देवानां वशनीर्भवाति॥ ऋ. १०।१६।२॥

अर्थ— (जातवेदः) हे जातवेदस् अग्नि! (यदा शृतं करसि) जब इस प्रेतको पूर्णतया पक्व अर्थात् दग्ध करदे, (अथ एनं पितृभ्यः परिदत्तात्) तब इसको पितरोंके लिए सौंपदे। (यदा) जब यह प्रेत (एतां असुनीतिं गच्छाति) इस प्राणोंके नयन को प्राप्त होता है अर्थात् जब इसके प्राण निकल जाते हैं (अथ) तब प्राणों के निकल जाने के बाद प्रेत(मृत शरीर)(देवानां वशनीः भवाति) देवों के वश हो जाता है।

प्रेत देवोंके वश किस प्रकार होता है वह इसी मंत्र के बाद के मंत्र अर्थात् ऋ. १०।१६॥३॥ में दर्शाया है।

सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा। अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रतितिष्ठा शरीरैः ऋ. १०।१६।३॥

अर्थ- हे प्रेत तेरी (चक्षुः सूर्यं गच्छतु) आंख सूर्य को जावे। (आत्मा वातं) तेरी आत्मा (प्राण) वायु को जावे। और हे प्रेत (धर्मणा) धर्मसे अर्थात् कर्म फल जन्य धर्म से अथवा पार्थिवादि तत्वों के धर्म से अर्थात् जो पार्थिव तत्व है वह पृथिवी में जावे इत्यादि रीतिसे (द्यांच पृथिवीं च गच्छ) द्यु व पृथिवी को जा, अर्थात् जो द्युका अंश तेरे में है वह द्युमें जावे व पृथिवीका है वह पृथिवी में जावे। (वा) अथवा (अपो गच्छ) जलों में जलांश जावे (यदि तत्र ते हितं) यदि वहां का कोई अंश तेरेमें विद्यमान हो। और इसी प्रकार (ओषधीषु शरीरैः प्रतितिष्ठा) ओषधियों में शरीरांशोंसे स्थित हो अर्थात् ओषधि का अंश ओषधिमें चला जावे।

यह ऋग्वेदके १०वें मण्डलका सम्पूर्ण १६वां सूक्त अंत्येष्टि संस्कार विषयक है अतः हम इस संपूर्ण सूक्त पर आगे चलकर स्वतंत्र विचार करेंगे। यहां पर हमें इतनाही देखना था कि अग्नि प्रेतको क्या करती है, और तदनुसार हमने देखा कि प्रेतको अग्नि पितृलोकमें पितरोंके पास पहुंचाती है।

मरनेपर पितृलोकमें जाना।

जीवानामायुः प्रतिरत्वमग्ने पितृणां लोकमपि गच्छन्तु ते मृताः। सु गार्हपत्यो वितपन्नरातिमुषामुषां श्रेयसीं धेह्यस्मै॥ अथर्व० १२।२।४५॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अर्थ- (अग्ने) हे अग्नि ! (त्वं जीवानां आयुः प्रतिर) तू जीवितोंकी आयु को बढा और जब (ते मृताः) वे मर जावें तब (पितॄणां लोकं अपि गच्छन्तु) पितृलोकमें जावें, अर्थात् जबतक वे जीवित हैं तबतक उनकी आयु वृद्धि करता रह और जब मरें तब पितृलोकमें पहुंचा दे(अरातिं वितपन्) न दान देने वालेको विशेष रूपसे तपाता हुआ (सुगार्हपत्यः) उत्तम गार्हपत्य तू (अस्मै) इस जीवके लिए (श्रेयसीं उषां उषां) कल्याण कारिणी प्रत्येक उषाको (धेहि) धारण कर, अर्थात् इसके लिए प्रत्येक उषा कल्याण करनेवाली हो।

इस मंत्रमें अग्निसे उषा देनेकी प्रार्थना की गई है, परन्तु उषा तो सूर्य देता है अतः यहां अग्नि सूर्य के लिए आया है ऐसा प्रतीत होता है। इसके सिवाय सूर्य से भी दीर्घायु की प्रार्थना करने वाले मंत्र हैं तथा पहिले हम यह भी देख आए हैं कि सूर्य किरणोंसे पितर पितृलोक में जाते हैं, अतः अग्निसे यहां सूर्यका ग्रहण है और सूर्यसे कहा गया है कि वह मृत को पितृलोक में ले जावे।

पितृलोककी अवधि पूर्ण होने पर अग्नि फिर वापिस मर्त्यलोकमें जीवात्माको लौटा लाती है यह निम्न मंत्र हमें दर्शा रहा है -

अवसृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्च
रति स्वधाभिः। आयुर्वसान उपवेतु शेषः
संगच्छतां तन्वा जातवेदः ॥ ऋ॰ ॥ १०। १६। ५॥

यही मंत्र अथर्व वेदमें थोडेसे पाठ भेदके साथ निम्न प्रकार आया है।-

अवसृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुत-
श्चरति स्वधावान् आयुर्वसान उपयातु शेषः
संगच्छतां तन्वा सुवर्चाः॥ अथर्व. १८। २। १०॥

अर्थ-(अग्ने) हे अग्नि ! (यः) जो (ते आहुतः) तेरेमें अंत्येष्टि के समय आहुत किया हुआ (स्वधाभिः चरति) स्वधाओं द्वारा अर्थात् स्वधाओंको खाता हुआ विचरण करता है उसको (पितृभ्यः) पितरोंसे (पुनः) फिर लाकर (अवसृज) यहां छोड, जिससे कि (शेषः) यह पुनर्जन्म लिया हुआ अपत्य (उपयातु) कुटुंबियों को प्राप्त करे तथा (जातवेदः) हे जातवेदस् अग्नि (तन्वा संगच्छतां) यह शरीर से युक्त होवे।

शेष नाम संतान का है।

'शेष इत्यपत्यनाम शिष्यते इति '। निरु० ३। २॥

अथवा इस मंत्रका अर्थ निम्न प्रकारभी किया जा सकता है।

हे अग्ने ! जो पुरुष तेरेमें अंत्येष्टिके समय आहुत किया हुआ स्वधाओंसे विचरण कर रहा है उसे पितरों के लिए दे अर्थात् उसे पितृलोकमें पहुंचा। यहां शेष अर्थात् मृत पुरुष की संतान दीर्घजीवन धारण करती हुई अपने घर जाए। वह तेजयुक्त शरीर को प्राप्त होवे।

इस अर्थ के अनुसार इस मंत्र का भी विनियोग अंत्येष्टि संस्कार में किया जा सकता है। मंत्रके पूर्वार्ध से मृत पुरुष के लिए प्रार्थना की गई है तथा उत्तरार्ध से दाह संस्कार में आई हुई मृत पुरुष की संतान के लिए दीर्घायु की प्रार्थना है।

क्रव्यात् अग्नि।

जिस अग्नि का अंत्येष्टि संस्कार में विनियोग किया जाता है उस अग्नि का नाम क्रव्यात् अग्नि है ऐसा प्रतीत होता है। क्रव्यात् अग्नि का अर्थ है मांसाहारी अग्नि अर्थात् जिसमें मांस होमा जाता है वह अग्नि। अंत्येष्टि संस्कारमें मृत देह को होमा जाता है अतः इसका नाम क्रव्यात् अग्नि है। इसके सिवाय कइयोंका ऐसा भी मत है कि अन्यत्र पितृ यज्ञादिमेंभी मांस होमा जाता है और अतः उस अग्निका नाम क्रव्यात् अग्नि है। हम पीछे ' पितरोंके प्रति हमारे कर्तव्य ' इस शीर्षक के नीचे देख आए हैं कि दो एक मंत्र हमें ऐसे भी मिले हैं जिनमें कि पितरोंके लिए वपा मांस आदि देनेका निर्देश मिलता है। श्राद्ध करनेवाले लोक पितरोंके लिए मांसका विधान मानते हैं परंतु मांस देनेके समय उसके स्थान पर माश (उडद) देते हैं। परंतु हमें ऐसा प्रतित होता है कि मृत शरीर होमा जानेके कारण ही वपा और मांस के होमने की कल्पना वेदमें की गई है, क्यों कि मृत

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

शरीरमें वपा और मांस तथा मेद होते हैं ।

अस्तु, अब हम देखते हैं कि क्रव्यात् अग्नि के क्या कार्य हैं व पितरोंसे उस का क्या विशेष संबन्ध है ।

> क्रव्यादमग्निं प्रहिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः । इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥ ऋ. १०।१६।९ ॥
>
> यजुः अ० ३५।१९ ॥ अथर्व० १२।२।८

अर्थ- (क्रव्यादं अग्निं दूरं प्रहिणोमि) मांस भक्षक अग्निको दूर भिजवाता हूं । (रिप्रवाहः) पापका वहन करनेवाली वह अग्नि (यमराज्ञः गच्छतु) जहांका यम राजा है उन प्रदेशोंको चली जावे । (इह) यहां पर (अयं इतरः जातवेदाः प्रजानन्)यह दूसरी क्रव्यात् अग्निसे भिन्न जातवेद-स् अग्नि जानती हुई (देवेभ्यः हव्यं वहतु) देवोंके लिए हव्यों का वहन करे अर्थात् उन्हें पहुंचावे ।

इस मंत्रमें क्रव्यात् अग्निको यमराजके देशमें भेजनेका निर्देश है और साथही क्रव्यात् अग्नि देवोंके हव्यके वहन करनेके लिए अनुपयुक्त है यहभी बताया गया है । इसका अभिप्राय यह है कि क्रव्यात् अग्निका संबन्ध यम लोकसे है जहां कि पितर रहते हैं ।

> यो अग्निः क्रव्यात् प्रविवेश वो गृहमिमं पश्य-न्नितरं जातवेदसम् । तं हरामि पितृयज्ञाय देवं स घर्ममिन्वात् परमे सधस्थे ॥
>
> ऋ० १० । १६ । १० ॥

यह मंत्र थोडेसे पाठान्तरसे अथर्ववेदमें निम्न प्रकार आया है ।

> यो अग्निः क्रव्यात् प्रविवेश गृहमिमं पश्य-न्नितरं जातवेदसम् । तं हरामि पितृयज्ञाय दूरं स घर्ममिन्धां परमे सधस्थे ॥
>
> अथर्व. १२ । २ । ७ ॥

अर्थ - (यः क्रव्यात् अग्निः) जो मांसाहारी अग्नि (इमं इतरं जातवेदसं पश्यन्) इस दूसरी जातवेदस नामक अग्निको देख कर (वः गृहं प्रविवेश) तुम्हारे घर में घुस गई है (तं देवं) उस दीप्यमान क्रव्यात् अग्निको(पितृयज्ञाय हरामि) पितृयज्ञके लिए हरता हूं । (सः) वह (परमे सधस्थे) परम सधस्थमें (घर्मं) यज्ञको (इन्वात्) प्राप्त होवे । यहांपर इस बातको स्पष्ट किया गया है कि क्रव्यात् अग्नि पितृयज्ञके लिए काम आती है । इसका यह मतलब प्रतीत होता है कि पितृ-यज्ञमें मांसकी आहुतियां हैं जिसके लिए दूसरी अग्नि अनुपयुक्त है । इसी अग्निमें पितरोंके लिए मांस व वपाका होम (जैसा कि पूर्व देख आए हैं) होता होगा । इसके साथ साथ हम यह भी देखते हैं कि क्रव्यात् अग्निसे भिन्न दूसरीको जात-वेदस् के नामसे कहा गया है । क्रव्यात् अग्निको जातवेदस् से नहीं कहा गया । इसका मतलब यह है कि पितृयज्ञको छोडकर अन्यत्र सर्वत्र जात-वेदस् अग्निका विनियोगही होता है। खास पितृयज्ञ वा पितरोंके अन्य कार्योंके लिए जैसे शवदहनादिके लिए क्रव्यात् अग्निका प्रयोग होता है ।

> क्रव्यादमग्निमिषितो हरामि जनान् दृहन्तं वज्रेण मृत्युम् । नि तं शास्मि गार्हपत्येन विद्वान् पितॄणां लोकेऽपि भागो अस्तु ॥
>
> अथर्व० १२ । २ । ९ ॥

अर्थ- (इषितः) प्रेरणा किया गया मैं (जनान् मृत्युं दृहन्तं) मनुष्यों को मृत्युसे दृढ करती हुई अ-र्थात् मनुष्यों में मृत्यु संख्या को बढाती हुई (क्र-व्यादं अग्निं) क्रव्यात् अग्निको (वज्रेण) वज्रद्वारा (हरामि) दूर भगाता हूं । (विद्वान्) ज्ञानी मैं (तं गार्हपत्येन निशास्मि) उस क्रव्यात् अग्नि को गार्हपत्य द्वारा पूर्णतया शासित करता हूं ताकि मृत्यु मनुष्यों में दृढ न होने पावे । इस प्रकार क्रव्या-त् अग्नि पर शासन करने के कारण (पितॄणां लोके ऽपि) पितरों के लोक में भी (भागः अस्तु) मेरा भाग हो ।

क्रव्यात् अग्नि पर शासन करने से अर्थात् उसे वश में करनेसे पितृलोक में भाग मिलता है ऐसा इस मंत्रसे प्रतीत होता है अर्थात् पितृ लोकमें यदि भाग चाहिए तो क्रव्यात् अग्नि को वशमें करना चाहिए ।

क्रव्यात् अग्नि के रहने का स्थान मुख्यतया पितृलोक ही है ऐसा इस नीचे के मंत्रसे ज्ञात होता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

क्रव्यादमग्निं शशमानमुक्थ्यं प्रहिणोमि पथिभिः पितृयाणैः। मा देवयानैः पुनरागा अत्रैवैधि पितृषु जागृहि त्वम् ॥ अथर्व० १२ । २। १०

अर्थ- (शशमानं उक्थ्यं क्रव्यादं अग्निं) शशमान, प्रशंसा के योग्य, मांस भक्षक अग्नि को (पितृयाणैः पथिभिः) पितृयाणमार्गों द्वारा (प्रहिणोमि) पितृलोकमें भेजता हूं। (देवयानैः पुनः मा अत्र आगाः) देवयान मार्गों द्वारा फिर यहां वापिस लौट कर मत आ। (एधि) वहीं पर वृद्धि को प्राप्त हो। (पितृषु एव त्वं जागृहि) पितरों में ही तू जागती रह, अर्थात् उन्हीं में तू सावधानता पूर्वक रह।

क्रव्यात् अग्निका पितरों से कोई विशेष संबन्ध है अतएव उसे पितरों में ही रहने के लिए तथा वापिस न आने के लिए आदेश इस मंत्र में दिया गया है।

शशमान-शशप्लुतगतौ से यह शब्द बना है। प्लुत गति का अर्थ उछल उछलकर जाना है। यहां पर क्रव्यात् अग्नि का शशमान विशेषण दिया है। इसका मतलब यह प्रतीत होता है कि क्रव्यात् अग्नि मांस को चटक चटक कर जलाती है। उस चटकने को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि मानो उछल उछल कर जल रही है इसी कारण संभव है इसे शशमान से पुकारा गया है।

अपावृत्य गार्हपत्यात् क्रव्यादा प्रेत दक्षिणा।
प्रियं पितृभ्यः आत्मने ब्रह्मभ्यः कृणुता प्रियम्॥
अथर्व० १२। २। ३४॥

अर्थ- (गार्हपत्यात्) गार्हपत्य अग्निसे (अपावृत्य) हटकर अर्थात् गार्हपत्य अग्निको छोडकर (क्रव्यादा) क्रव्यात् अग्नि के साथ (दक्षिणा प्रेत) दक्षिण दिशा को जा ओ। (आत्मने पितृभ्यः प्रियं कृणुत) अपने लिए तथा पितरों के लिए प्रिय करो। (ब्रह्मभ्यः प्रियं) ब्रह्म ज्ञानियोंके लिए प्रिय करो।

हमें वेद मंत्रों के देखने से पता चलता है कि पितरों की दक्षिण दिशा है। और उपरोक्त मंत्रों से यह भी भली प्रकार ज्ञात हो चुका है कि क्रव्यात् अग्नि पितरोंमें रहती है। इन दो बातों को लक्ष्यमें रखते हुए इस मंत्र को देखने से इस का भाव समझमें आ सकता है। यहांपर क्रव्यात् अग्नि के साथ दक्षिण दिशामें जानेका आदेश है। इसके सिवाय यह भी हमें पता चलता है कि क्यों कि पितरों की दक्षिण दिशा है अतः पितृलोक दक्षिण में है।

क्रव्यात् अग्नि के इतने विवेचन से क्रव्यात् अग्नि के कार्य क्या हैं व उसका पितरों से क्या संबन्ध है इत्यादि बातें पाठकों के ध्यान में आगई होंगी।

अब अग्नि के अन्य कार्यों को दर्शाने वाले मंत्रों को दिया जाता है।

निम्न मंत्र में अग्नि का पितरों में प्रविष्ट हुए हुए दस्युओं का यज्ञ से हटाना बतलाया गया है। मंत्र इस प्रकार है।

ये दस्यवः पितृषु प्रविष्टा ज्ञातिमुखा अहुतादश्चरन्ति। परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टानस्मात् प्र धमाति यज्ञात् ॥ अथर्व० १८ ।२।२८॥

अर्थ- (ज्ञातिमुखाः) ज्ञातियों के सदृश मुखवाले अर्थात् जो सजातीय हैं और जो कि (अहुतादः) अहुत अर्थात् न दिए हुए को खानेवाले हैं यानि जबरदस्ती जो छीनकर खा जानेवाले हैं ऐसे (ये दस्यवः) जो उपक्षय करनेवाले (पितृषु प्रविष्टाः) पितरों में प्रविष्ट हुए हुए (चरन्ति) विचरण करते हैं, और (ये) जो (परापुरः) पुत्रों को तथा (निपुरः) पौत्रों को (भरन्ति) हरण करते हैं (तान्) उन दस्युओं को (अग्निः) अग्नि (अस्मात् यज्ञात्) इस यज्ञसे (प्र धमाति) दूर भगा देता है, यज्ञमें आने नहीं देता।

भरन्ति = हरन्ति। 'हृग्रहोर्भश्छन्दसि' से ह को भ हो गया है।

इस मंत्र से यह प्रतीत होता है कि अन्य ज्ञाति गण जिनकी कि पितरों में गिनती नहीं है और जो हमारा व हमारी संतति का चुपके चुपके नाश करते रहते हैं, और जो हमारे न जानते हुए हवियों को जो कि पितरों के उद्देश से दी गई हैं खाते रहते हैं। पर जब यज्ञमें वे आकर ऐसा करते हैं तो अग्नि उन्हें यज्ञसे दूर भगा देती है, उन्हें पितरों में बैठकर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हवि खाने नहीं देती। इससे यह भी परिणाम निकाला जा सकता है कि पितरों के लिए जो भी कुछ देना हो वह अग्नि द्वारा अर्थात् यज्ञ करके ही देना चाहिए ताकि वह पितरों को ही मिले। अग्नि ज्ञाति मुख लोकों को न लेने देगी।

अग्निके शरीरका पितरोंमें प्रवेश।

यस्ते देवेषु महिमा स्वर्गो या ते तनूः पितृष्वाविवेश। पुष्टिर्या ते मनुष्येषु प्रपथेऽग्ने तया रयिमस्मासु धेहि ॥ अथर्व० १९ । ३ । ३॥

अर्थ—(अग्ने) हे अग्नि ! (यः ते महिमा) जो तेरी महिमा (देवेषु स्वर्गः) देवों में सुख पहुंचाने वाली है और (या ते तनूः) जो तेरा शरीर (पितृषु आविवेश) पितरों में प्रविष्ट हुआ हुआ है तथा (या ते पुष्टिः) जो तेरी पोषकता (मनुष्येषु पप्रथे) मनुष्यों में फैली हुई है (तया) उस से (अस्मासु रयिं धेहि) हमारे अन्दर रयि को धनसम्पत्ति को स्थापित कर अर्थात् हमें धनसम्पत्ति दे।

यहां पर अग्नि अपने शरीर से पितरों में प्रविष्ट हुई हुई है यह बात दिखाई गई है। अग्नि सदा पितरों में विद्यमान रहती है, ऐसा इसका अभिप्राय मालूम पडता हे।

निम्न मंत्र में पितरों से यह प्रार्थना की गई है कि न तो अग्नि हमसे द्वेष करे और नहीं हम अग्नि से द्वेष करें। मंत्र निम्न है —

यो नो अग्निः पितरो हृत्स्वन्तरा विवेशामृतो मर्त्येषु। मय्यहं तं परि गृह्णामि देवं मा सो अस्मान् द्विक्षत मा वयं तम् ॥
अथर्व० १२ । २ । ३३ ॥

अर्थ-(पितरः) हे पितरो ! (यः अमृतः अग्निः) जो अमरणशील अग्नि (वः मर्त्येषु हृत्सु) हम मरणशीलों के हृदयों में (आविवेश) प्रविष्ट हुई हुई है (तं देवं) उस प्रकाशमान अग्नि को (अहं मयि परि गृह्णामि) मैं अपने अन्दर सब ओरसे ग्रहण करता हूं-- स्थापित करता हूं। (सः) वह अग्नि (अस्मान् मा द्विक्षत) हम मर्त्यों से द्वेष मत करे और (वयं मा तं) हम उससे द्वेष मत करें। दोनों परस्पर द्वेष न करते हुए मिलकर रहें।

उपरोक्त मंत्र में पितरों से प्रार्थना की गई है कि अग्नि हमसे द्वेष न करे व हम अग्निसे द्वेष न करें। नीचे लिखे मंत्र में अग्नि से प्रार्थना की गई है कि देव तथा पितर हमारे साथ जबरदस्ती न करें। मंत्र इस प्रकार है--

मो षू णो अत्र जुहुरन्त देवा मा पूर्वे अग्ने पितरः पदज्ञाः। पुराण्योः सद्मनोः केतुरन्तर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ऋ० ३ । ५५ । २ ॥

अर्थ -- (अग्ने) हे अग्नि ! (अत्र) यहांपर (देवाः मो नः सुजुहुरन्त) देवगण हमारे साथ जबरदस्ती मत करें। और (पूर्वे पदज्ञाः पितरः मा) पुरातन अर्थात् पूर्वकालीन पदज्ञ पितृगण जबरदस्ती मत करें। क्योंकि हे अग्नि ! (केतुः) प्रकाशक तू (पुराण्योः सद्मनोः) पुरातन द्यावापृथिवीके (अन्तः) अन्दर सूर्य रूपसे प्रकाशित होती है (अध्याहार)। और क्योंकि तू (देवानां एकं महत् असुरत्वं) देवोंका एक महान् प्राणदाता है।

यहांपर अग्निसे कहा गया है कि देव तथा पितर हमारे साथ जबर्दस्तीका व्यवहार न करें। हमारी इच्छाके विरुद्ध हठ करके वे हमें किसीभी कार्यमें प्रवृत्त न करें। सूर्यके लिए यहां पर अग्नि शब्दको प्रयुक्त किया गया है ऐसा ज्ञात होता है क्यों कि द्यु तथा पृथिवी दोनोंपर सूर्य प्रकाशित होता है अग्नि नहीं। इसके अतिरिक्त 'महद्देवानां असुरत्वमेकं' सेभी यही पता चलता है। सूर्यमें सब देवोंको प्राणशक्ति देनेका सामर्थ्य है,जैसा कि असुरत्व बता रहा है।

असुरत्व- असु नाम है प्राणका। 'प्राणो वा असुः' श० ६।६।२।६ ॥ असुं प्राणं राति ददातीति असुरः प्राणदाता आत्मा। असुरस्य भावः असुरत्वम्- आत्माकी प्राण देनेकी शक्ति। सूर्यको देवोंकी आत्मा कहा गया है। 'सूर्यो वै सर्वेषां देवानामात्मा' ॥ श० १४।३।२।९ ॥

जुहुरन्त — हृ प्रसह्यकरणे धातु के लङ् लकार का रूप है। 'प्रसह्यकरणे' का अर्थ होता है हठ पूर्वक जबरदस्ती कोई काम करना।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पितरोंकी रक्षार्थ अग्निकी उत्पत्ति ।

होता जनिष्ट चेतनः पिता पितृभ्य ऊतये ।
प्रयक्षञ्जेन्यं वसु शकेम वाजिनो यमम्॥ ऋ० २।५।१

अर्थ- (चेतनः) चेतनावाला व चेतना देनेवाला (पिता)पालक व रक्षक(होता)लेने व देनेवाला (अग्निः)अग्नि (पितृभ्यः ऊतये) पितरों की रक्षाके लिए(अजनिष्ट) उत्पन्न हुआ है। उस अग्निकी सहायतासे (वाजिनः) बलवान वा अन्नसे युक्त हुए हुए हम (प्रयक्षं) अत्यन्त पूजनीय (जेन्यं) जयशील-जीतने लायक (वसु) धनका (यमं शकेम) नियमन करनेमें समर्थ हों॥ अर्थात् इस प्रकारके धन को हम अपने पास स्थिर रखने में समर्थ हो सकें।

इस मंत्रमें अग्निकी उत्पत्तिका प्रयोजन पितरोंकी रक्षा बताया गया है। हम ऊपर देख आए हैं कि अग्नि पितरोंकी पर्याप्त सहायक है। उसके विना पितरोंकी रक्षा संभव नहीं। इसीको यह मंत्र प्रतिपादित कर रहा है।

वैश्वानर अग्निका पितरोंको धारण करना ॥

वैश्वानरे हविरिदं जुहोमि साहस्रं शतधारमुत्सम्। स बिभर्ति पितरं पितामहान् प्रपितामहान् बिभर्ति पिन्वमानः ॥ अथर्व० १८।४।३५॥

अर्थ— (वैश्वानरे इदं हविः जुहोमि) वैश्वानर अग्निमें यह हवि डालता हूं जो कि हवि (शतधारं साहस्रं उत्सं इव) सैंकडों व हजारों धाराओंवाले स्रोतके समान सैंकडों व हजारों धाराओंवाली है। (सः) वह वैश्वानर अग्नि (पिन्वमानः) उस हविसे तृप्त हुई हुई (पितरं पितामहान् प्रपितामहान् बिभर्ति) पिताका, दादाओंका तथा परदादाओं का धारण पोषण करती है।

यहां पर अग्निको वैश्वानरके नामसे कहा गया है। वैश्वानरका अर्थ है सब नरोंको लेजाने वाला। अग्नि सब मनुष्योंको ले जाती है। अंत्येष्टिमें सब मनुष्योंको अग्निमें जलाया जाता है और फिर अग्नि सबको पितृलोकमें ले जाती है जैसा कि हम ऊपर देख आए हैं। इस प्रकार अग्नि वैश्वानर है। इस मंत्रमेंभी उपरोक्त कथनोंकी ही पुनरावृत्ति की गई है। पितरोंके लिए जो कुछ देना हो वह अग्निको देना चाहिए वह उन्हें पहुंचाती है और इस प्रकार उनका धारण पोषण करती है।

(२)

अग्निष्वात्त पितर।

अग्निष्वात्त का क्या अर्थ है यह एक विचारणीय विषय है। क्योंकि भिन्न भिन्न भाष्यकर्ताओंने इसका भिन्न भिन्न अर्थ किया है। वेद मंत्रोंसे इसका क्या अर्थ निकलता है यह हमने देखना है। अग्निष्वात्तका शब्दार्थ इस प्रकार है- ' अग्निना स्वात्ताः स्वादिता ते अग्निष्वात्ताः ' अर्थात् जिनका अग्निने स्वाद लिया है यानि जो अग्निमें जलाए गए हैं। इसी विग्रहकी तथा इस अर्थ की पुष्टि शतपथ ब्राह्मण कर रहा है- ' यानग्निरेव दहन्त्स्वदयति ते पितरो अग्निष्वात्ताः '। श० २।६।१।७॥ अर्थात् जिनको अग्नि ही जलाती हुई स्वाद लेती है वे पितर अग्निष्वात्त कहलाते हैं। इस विवेचन से अग्निष्वात्त पितरोंके विषयमें हमारे सामने यह परिणाम निकला कि जिनका अंत्येष्टि संस्कार अग्निद्वारा होता है उन पितरोंका नाम अग्निष्वात्त पितर है। अब हम वेद मंत्रोंपर दृष्टि डालेंगे और देखेंगे कि उनसे क्या पता चलता है।

ये अग्निष्वात्ता ये अनग्निष्वात्ता मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते। तेभ्यः स्वराडसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयाति ॥ यजुः १९।६०॥

अर्थ- (ये) जो (अग्निष्वात्ताः) अग्निष्वात्त पितर और (ये) जो (अनग्निष्वात्ताः) अनग्निष्वात्त पितर (दिवः मध्ये स्वधया मादयन्ते) द्युलोक के बीचमें स्वधासे आनन्दित हो रहे हैं, (तेभ्यः) उन पितरों के लिए(स्वराट्) स्वयं प्रकाशमान अग्नि वा यम (यथावशं) कामनाके अनुसार अर्थात् कर्मानुसार (एता असुनीतिं तन्वं कल्पयाति) इस प्राणों द्वारा ले जाए जाने वाले शरीर को बनाता है।

असुनीतिका अर्थ है जो प्राणों द्वारा ले जाया जावे यानि जिसका प्राणों द्वारा संचालन होवे। यह शरीर असुनीति है क्योंकि प्राण निकल जाने पर इसका

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

संचालन बन्द हो जाता है। इस मंत्र से यह बात स्पष्ट है कि पितृलोकस्थ पितरों का पुनर्जन्म होता है।

उपरोक्त मंत्र ठीक ऐसा का ऐसा ही ऋग्वेदमें मिलता है। वहांपर जो थोडासा परिवर्तन है वही अग्निष्वात्त के अर्थका स्वयं निर्णय कर रहा है।

ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते। तेभ्यः स्वराडसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयाति॥ ऋ. १०। १५। १४॥

अर्थ उपरोक्त मंत्रानुसार ही है इन दोनों मंत्रों की तुलना करके देखनेसे पाठकों को स्वयमेव अग्निष्वात्त का अर्थ ज्ञात हो जाएगा। यजुर्वेदस्थ इस मंत्र में जहां 'अग्निष्वात्ताः' और 'अनग्निष्वात्ताः' पद हैं वहां पर ऋग्वेदमें 'अग्निदग्धाः' व 'अनग्निदग्धाः' पद हैं। शेष मंत्र सर्वथा समान है। इसका अभिप्राय यह है कि जो अर्थ अग्निष्वात्त का है वही अर्थ अग्निदग्ध का है। अग्निदग्धका अर्थ सुस्पष्ट है कि जो अग्नि द्वारा जलाया गया हो। अतः अग्निष्वात्त का भी अर्थ हुआ कि जो अग्नि द्वारा जलाया गया हो। हम प्रारंभ में देख आए हैं कि शतपथ ब्राह्मणने भी वही अर्थ किया है जो कि वेदमंत्रों से पता चल रहा है। इस प्रकार वेद व ब्राह्मण अग्निष्वात्त के इसी अर्थ पर सहमत हैं कि 'जो अग्नि द्वारा जलाया गया हो।' पाठक इसपर विचार करें क्यों कि इससे पितरों पर विशेष प्रकाश पडता है। अग्निष्वात्त का उपरोक्त अर्थ होनेपर निश्चय से अग्निष्वात्त पितर मृत पितर ही हैं यह साबित होता है और उनसे जैसा कि आगे देखेंगे यज्ञमें बुलाकर रक्षा करने धनादि देनें वह हवि खिलाने का उल्लेख हैं। इस का अभिप्राय स्पष्ट रूपसे यह है कि मृत पितरों के लिए कुछ न कुछ अवश्य करना चाहिए।

इतना अग्निष्वात्त शब्दपर प्रकाश डालनेके बाद अब हम अग्निष्वात्त पितरों के यज्ञादि में आने, हमारी रक्षा करने आदि दर्शानेवाले मंत्रों को उद्धृत करते हैं।

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदः सदः सदत सुप्रणीतयः। अत्ता हवींषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिं सर्ववीरं दधातन॥
ऋ. १०। १५। ११॥

यह मंत्र थोडेसे पाठ भेदके साथ यजुर्वेद तथा अथर्ववेदमें भी आया है। देखो- यजुः १९।५९॥ तथा अथर्व० १८।३।४४॥ अर्थ इस प्रकार है—

हे उत्तम नेता अग्निष्वात्त पितरो! इस यज्ञमें आओ। घर घरमें स्थित होओ, और यज्ञमें दिए गए हवियोंको खाओ। हमें सब प्रकारकी वीरतासे पूर्ण धनको दो।

इस मंत्रमें अग्निष्वात्त पितरोंको यज्ञमें बुलाने, हवि खिलाने तथा धन मांगनेका स्पष्ट रूपसे उल्लेख है।

आयान्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभि र्देवयानैः। अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान्॥ यजु. अ० १९।५८॥

अर्थ- (सोम्यासः) सोम संपादन करनेवाले (नः अग्निष्वात्ताः पितरः) हमारे अग्निष्वात्त पितर (देवयानैः पथिभिः) देवयान मार्गों द्वारा (अस्मिन् यज्ञे आयान्तु) इस यज्ञ में आवें। (स्वधया मदन्तः) स्वधासे तृप्त होकर आनन्दित होते हुए (अधिब्रुवन्तु) हमें उपदेश करें और (ते अस्मान् अवन्तु) वे हमारी रक्षा करें।

इस मंत्रमेंभी पूर्व मंत्रानुसार यज्ञमें पितरोंके आने, स्वधासे तृप्त होने, उपदेश करने व हमारी रक्षा करनेकी प्रार्थना है।

अग्निष्वात्तानृतुमतो हवामहे नाराशंसे सोमपीथं य आशुः। ते नो विप्रासः सुहवा भवन्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥ यजुः अ० १९।६१॥

अर्थ-(ऋतुमतः) ऋतुओंवाले (अग्निष्वात्तान्) अग्निष्वात्त पितरोंको (हवामहे) हम बुलाते हैं, (ये) जोकि (नाराशंसे सोमपीथं आशुः) जिसमें मनुष्य प्रशंसाको पाते हैं ऐसे यज्ञमें सोमपानको करते हैं, (ते विप्रासः) वे मेधावी पितर(नः सुहवाः भवन्तु) हमारे लिए सुखपूर्वक बुलाने लायक होवें अर्थात् हमें उन्हें बुलाने में कष्ट न हो, बुलाते ही वे हमारी प्रार्थनाको स्वीकार कर आ जावें। (वयं) हम (रयीणां पतयः स्याम) धनोंके स्वामी होवें।

'ऋतुमतः' का अभिप्राय कुछ स्पष्ट नहीं होता। आशुः 'अश-भोजने' से बना है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इस मंत्रमें अग्निष्वात्त पितरोंको सोमपान करनेके लिए आमन्त्रित किया गया है। तथा प्रार्थना की गई है कि वे सुगमतासे हमारे आमंत्रण को स्वीकार करें।

निम्न मंत्र में भिन्न भिन्न प्रकारके पितरोंके लिए भिन्न भिन्न प्रकारके पशु वा पदार्थोंका उल्लेख है। मंत्रार्थ तथा भाव अभीतक सर्वथा अस्पष्ट है। पाठक गण इस पर विशेष विचार करके सहायता करनेका प्रयत्न करेंगे ऐसी आशा है। मंत्र इस प्रकार है —

धूम्रा बभ्रूनीकाशाः पितॄणां सोमवतां, बभ्रवो धूम्रनीकाशाः पितॄणां बर्हिषदां, कृष्णा बभ्रुनीकाशाः पितॄणामग्निष्वात्तानां कृष्णाः पृषन्तस्त्रैयम्बकाः ॥
यजुः २४।१८॥

अर्थ- (धूम्राः) धूएंके रंग जैसे तथा (बभ्रूनिकाशाः) भूरे रंग जैसे पशु वा पदार्थ (सोमवतां पितॄणां) सोम रसपान करने वाले पितरोंके हों। (बभ्रवः) भूरे तथा (धूम्रनीकाशाः) धूएं जैसे पशु वा पदार्थ (बर्हिषदां पितॄणां) कुशाघास पर बैठनेवाले पितरोंके हों। (कृष्णाः) काले तथा (बभ्रुनीकाशाः) भूरे रंग जैसे पशु वा पदार्थ (अग्निष्वात्तानां पितॄणां) अग्निष्वात्त पितरोंके हों। शेष ' कृष्णाः पृषन्तस्त्रैयम्बकाः ' इस मंत्र भागका कोई संबन्ध प्रतीत नहीं होता और नहीं अर्थ स्पष्ट होता है।

इस प्रकार अग्निष्वात्त पितरोंका प्रकरण यहां पर प्रायः समाप्त होता है। यह प्रकरण विशेष विचारणीय एवं महत्वपूर्ण है।

(३)

बर्हिषत् पितर।

आहं पितॄन्त्सुविदत्राँ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः। बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ॥
ऋ० १०।१५।३ ॥ यजुः १९।५६ ॥
अथर्व० १८।१।४५ ॥

अर्थ- (सुविदत्रान् पितॄन् अहं विष्णोः आ अवित्सि) उत्तम धनवाले पितरोंको मैंने व्यापक परमात्मा से प्राप्त किया है। (न पातं विक्रमणं च) और न गिरानेवाले अर्थात् अजेय विक्रम यानि पराक्रम को मैने व्यापक परमात्मासे प्राप्त किया है। अतः (ये बर्हिषदः स्वधया सुतस्य पित्वः भजन्त) जो बर्हि अर्थात् कुशा (दर्भ) पर बैठने वाले पितर स्वधाके साथ निचोडकर उत्पादित सोम रूपी अन्नका सेवन करते हैं (ते) तुम पितरो ! (इह) इस यज्ञमें (आगामिष्ठाः) बार बार आओ।

यहां पर बर्हिषत् पितरों को यज्ञमें बुलाने का निर्देश है।

बर्हिषदः पितरः ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम्। त आ गता वसा शन्तमेनाथा नः शंयोररपो दधात ॥ ऋ० १०।१५।४ ॥
यजु. अ. १९।५५ ॥
अथर्व० १८।१।५१।

अर्थ- (बर्हिषदः पितरः) हे कुशासन पर बैठने वाले पितरो ! (ऊती) रक्षा द्वारा (अर्वाक्) हमारी ओर होओ अर्थात् हमारी रक्षा करो। (वः) तुम्हारे लिए (इमा हव्या चकृम) इन हव्यों को करते हैं, (जुषध्वम्) इनको सेवन करो। (ते) वे तुम (शंतमेन अवसा) कल्याणकारी रक्षण के साथ (आ गत) आ ओ। (अथ) और (नः) हमें (शं) रोगों का शमन तथा (योः) भयों का दूर भगाना और (अरपः) पाप रहित आचरण दो।

यहां पर बर्हिषद् पितरों से रक्षण, रोगों का शमन, भयों का दूरी करण आदि करने की प्रार्थना है।

इस प्रकार ये अग्नि व पितरों संबंधी विचार वेद में हमें मिलते हैं। इस प्रकरण में कई मननीय विचार हमें मिलते हैं जिनपर विशेष विचार करना नितान्त जरूरी है। जिन जिन मंत्रोंसे वे विचार मिलते हैं उन उन मंत्रोंको उनके मंत्रार्थ सहित हमने पाठकों के सामने रख दिया है। निष्पक्षपात भावसे पाठक जैसा उचित समझें विचार करें।

प्रेत व अंत्येष्टि।

इस प्रकरण में हम शरीर से प्राण निकलने के बादसे अर्थात् प्रेत बननेके प्रारंभ से उसके अंति-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

म संस्कार दहन तक की सब क्रियाओं पर प्रकाश डालेंगे और अन्तमें उस प्रेत संबन्धी जो प्रार्थनायें हैं उनका उल्लेख करेंगे।

(१) प्राण निकलने के कुछ समय पूर्व।

मनुष्य देहसे प्राण के निकल जानेपर उसकी प्रेत संज्ञा होती है। जब प्राण निकल जानेको हो उस समय क्या करना चाहिए यह निम्न मंत्र दर्शा रहा है।

इदं हिरण्यं बिभृहि यत्ते पिताबिभः पुरा। स्वर्गं यतः पितुर्हस्तं निर्मृड्ढि दक्षिणम्॥
अथर्व० १८।४।५६

अर्थ- हे मरणासन्न पुरुष! (इदं हिरण्यं बिभृहि) इस सोने को धारण कर, (यत्) जिस सोनेको कि (पुरा) पहिले (ते पिता अबिभः) तेरे पिता ने धारण किया था। इस प्रकार हे मनुष्य! (स्वर्गं यतः पितुः दक्षिणं हस्तं निर्मृड्ढि) स्वर्ग को जाते हुए पिताके दांये हाथको सुशोभितकर।

निर्मृड्ढि- 'मृज् शौचालङ्कारयोः' से बना है। मृज् धातुका अर्थ शुद्ध करना व सुशोभित करना है।

इस मंत्रमें दर्शाई गई क्रिया हम अभीतक कई हिन्दु ✻ जातियों में पाते हैं। मरनेसे पूर्व मरणासन्न के दांये हाथमें सोनेकी अंगूठी पहनाई जाती है। सायणाचार्यने 'हिरण्यं' का अर्थ सोनेकी अंगूठी किया है अतः संभव है उनके समय में यह रिवाज हिन्दुजाति में सर्व साधारण होगा।

इस मंत्र पर उनका भाष्य भी इसी बातका समर्थन कर रहा है।

(२) प्राण निकलनेपर प्रेतका जल स्नान।

प्राण निकल जानेपर मृत देहको जलसे स्नान कराया जाता है। इस बातका निर्देश निम्न मंत्रमें मिलता है।

येन मृतं स्नपयन्ति श्मश्रूणि येनोन्दते।
तं वै ब्रह्मज्य ते देवा अपां भागमधारयन्॥
अथर्व० ५।१९।१४॥

अर्थ- हे (ब्रह्मज्य) ब्राह्मण को सतानेवाले! (येन मृतं स्नपयन्ति) जिससे मृत पुरुषको स्नान कराते हैं, (येन श्मश्रूणि च उन्दते) जिससे दाढीमूंछके बाल गीले करते हैं, (तं वै अपां भागं देवाः ते अधारयन्) उस जलोंके भागको अर्थात् जलको देवोंने तेरे लिए निर्धारित किया है।

यहां पर जल द्वारा प्रेतको स्नान करानेका स्पष्ट रूपसे निर्देश हमें मिलता है।

(३) स्नानके बाद वस्त्र पहिनाना।

स्नान करानेके बाद नवीन स्मशानोचित वस्त्रके पहिनानेका निम्न मंत्रमें निर्देश है-

एतत् त्वा वासः प्रथमं न्वागन्नपैतदूह यदिहा-
बिभः पुरा। इष्टापूर्तमनु संक्राम विद्वान् यत्र ते
दत्तं बहुधा विबन्धुषु॥ अथर्व० १८।२।५७॥

अर्थ-हे मृत पुरुष! (एतत् प्रथमं वासः) यह स्मशानोचित मुख्य वस्त्र (त्वा नु आ अगन्) तुझे प्राप्त हुआ है। (यत् इह पुरा अबिभः) जिस वस्त्र को पहिले यहांपर तू पहिना करता था (तत्) उस वस्त्रको (अप ऊह) छोडदे। (यत्र) जहां (ते बहुधा विबन्धुषु दत्तं) तेरा प्रायः विबन्धुओंमें जो दान है उसको (विद्वान्) जानता हुआ (इष्टापूर्तं) इष्टापूर्तको अर्थात् तज्जन्य फलको (अनुसंक्राम) प्राप्त हो।

विबन्धु = जिसका बन्धु नहीं रहा है अर्थात् अनाथ, गरीब आदि।

इस मंत्रमें मरनेपर पुराने वस्त्रोंको त्यागकर शव को नवीन स्मशानोचित वस्त्र पहिनानेका उल्लेख है।

✻ जैसा कि हमें ज्ञात हुआ है यह मृत को सुवर्णसे अलंकृत करने का रिवाज गुजरात प्रांत, युक्तप्रांत, व महाराष्ट्रमें कसी न किसी रूप में अभीतक विद्यमान है। संभव है संपूर्ण भारत में भी यह रिवाज प्रचलिच होगा। कच्छ प्रांतकी 'लुहाणा' जाति में कोई कोई प्रेत के शरीर पर एकाध सुवर्ण अलंकार रहने देते हैं और मरने के बाद भी गोबर से लीपी हुई जमीन पर प्रेत को सुलाकर तुलसी सुवर्णादि उसे देते हैं। युक्तप्रांत में भी प्रेत को सुवर्ण देनेका रिवाज है। कोई कोई तो प्रेत के दांतों में सोने की छोटी छोटी कीलें भी लगवाते हैं, ताकि प्राण जाते हुए मुख सुवर्ण हीन न रहे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

४— स्मशान भूमिकी तरफ प्रयाण। स्मशान का ग्रामसे बाहिर होना।

अपेमं जीवा अरुधन् गृहेभ्यस्तं निर्वहत परि- ग्रामादितः। मृत्युर्यमस्यासीद्दूतः प्रचेता असून् पितृभ्यो गमयां चकार॥ अथर्व० १८।२।२७

अर्थ- (जीवाः) प्राणधारी लोकोंने (इमं) इस प्रेतको (गृहेभ्यः) घरोंसे (अप अरुधन्) बाहिर कर दिया है (तं) उसको तुम लोक (इतः ग्रामात्) इस ग्रामसे (परि निर्वहत) बाहिरकी ओर स्मशान भूमिमें ले जाओ। क्योंकि (यमस्य मृत्युः दूतः आसीत्)यमका जो मृत्यु दूत है उस (प्रचेताः) प्रकृष्ट ज्ञानी मृत्युने इसके (असून्) प्राणोंको (पितृभ्यः गमयां चकार) पितरोंके लिए अर्थात् पितरोंके पास पितृलोकमें (गमयां चकार) भेज दीए है। अतः क्योंकि यह विगतप्राण हो चुका है इस लिए इसके शवको ग्रामसे बाहिर दहनादि क्रियाके लिए ले जाओ।

इस मंत्रमें यह दर्शाया है कि शरीरसे प्राण छूटने पर उसे घरसे बाहर कर देना चाहिए व तदनन्तर ग्रामसे बाहिर लेजाना चाहिए। स्मशान भूमि ग्रामसे बाहिर होनी चाहिए ऐसा इसका अभिप्राय है।

अप पूर्वक रुध धातुका अर्थ बाहिर करना (to exclude) है। यहां पर मृत्यु को यमका दूत बताया गया है।

शरीरसे प्राणोंके छूट जानेपर स्नान आदि करा कर वस्त्र बदलकर उसे स्मशान भूमिमें लेजानी की वारी आती है। हिन्दुलोक शवको, बांसोकी शय्या बनाकर उस पर घास फूस डालकर उसे चार आदमी कंधे पर रखकर स्मशानमें ले जाते हैं। मुसल्मान लोक भी इसी प्रकारसे ले जाते हैं। ईसाई लोक गाडीमें शव डाल कर स्मशान भूमिमें ले जाते हैं। नीचे दिए गए तीन मंत्रोंके सायण भाष्यसे शव को बैलगाडीमें लेजाना चाहिए ऐसा पता चलता है। चाहे इन मंत्रोंके अर्थ बदल कर हम कोई और परिणाम निकालें तथापि इतना जरूर मानना पडेगा कि सायणाचार्यके समयमें शवको बैल गाडीमें ले जानेका रिवाज होगा या कमसे कम सायणाचार्य यही मानते हैं कि शवको बैलगाडीसे स्मशान भूमिमें लेजाना वेद सम्मत है। वे मंत्र सायण भाष्य सहित इस प्रकार हैं--

इमौ युनज्मि ते वह्नी असुनीताय वोढवे।
ताभ्यां यमस्य सादनं समितीश्चाव गच्छतात्॥
अथर्व० १८।२।५६॥

अर्थ= हे मृतपुरुष! (वह्नी) वहन करनेवाले इन दो बैलोंको (ते वोढवे) तेरे वहन करनेके लिए (युनज्मि) बैलगाडीमें जोडता हूं। किस लिए? (असुनीताय) जिसमेंसे प्राण निकाल लिए गए हैं उस असुनीत अर्थात् गत प्राण देहके वहन करनेके लिए। अथवा असुनीतका अर्थ है जो कि सुखपूर्वक न लेजाया जा सके। जिसके उठानेमें तकलीफ होती हो। (ताभ्यां) उन बैलोंसे (यमस्य सदनं इति) यह यमका घर है इस प्रकार (सं अवगच्छतात्) भली भांति जान।

इदं पूर्वमपरं नियानं येना ते पूर्वे पितरः
परेताः। पुरो गवा ये अभिशाचो अस्य ते त्वा
वहन्ति सुकृतामु लोकम्॥ अथर्व० १८।४।४४॥

अर्थ- (इदं) यह सामने स्थित (पूर्वं) पुरातन तथा (अपरं) आज की (नियानं) बैलगाडी है। (येन) जिस पुरानी बैलगाडी से (ते पूर्वे पितरः परेताः) तेरे पुरातन पितर यहां से गए हैं। (अस्य) इस आज की बैलगाडी के (अभिशाचः) दोनों ओर जुतकर जाते हुए, (जैसा कि बैलगाडी में बैल दोनों और पार्श्वों में जुते हुए होते हैं) (पुरोगवाः) अगले भागमें अर्थात् धुरा में जुते हुए जो बैल हैं (ते) वे बैल (त्वा) तुझे (सुकृतां लोकं) सुकृतों के लोकमें (वहन्ति) प्राप्त करावें।

नियानं- नीचीनं पराङ्मुखं यान्ति अनेन प्रेता इति नियानं शकटम्। स्मशान में पहुंचनेपर बैलोंका गाडी से खोलना-

आ प्रच्यवेथामपतन्मृजेथां यद् वामभिभा
अत्रोचुः। अस्मादेतमघ्न्यौ तद् वशीयो दातुः
पितृष्विह भोजनौ मम॥ अथर्व० १८।४।४९॥

अर्थ— हे प्रेतवाहक बैलो! (युवां) तुम दोनों (आ प्रच्यवेथाम्) बैलगाडी से वियुक्त होओ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

(तत्) उस वक्ष्यमाण (जो आगे कहा जायगा) निन्दारूप वाक्य से (अप मृजेथां) शुद्ध होओ। उस निन्दारूप वाक्य को जिससे कि ऊपर शुद्ध होने को कहा गया है, कहते हैं- (अभिभाः) दोष देनेवाले पुरुषों ने (वां) तुम दोनों को 'पुंगवौ किल अस्पृश्यं अनिरीक्ष्यं प्रेतं ऊढवन्तौ' इत्यादि निन्दारूप, (यत् ऊचुः) जो वाक्य कहा है उससे शुद्ध होओ। (अघ्न्यौ) हे हिंसा करने के अयोग्य बैलो! (अस्मात्) इस निन्दा की कारणभूत गाडी से (एतं) जो छूट आना है (तत्) वह (वशीयः) श्रेष्ठ होवे। और तब (इह) इस पितृमेध में (पितृषु दातुः मम) पितरोंका उद्देश्य करके अग्नि को देते हुए वा हविको देते हुए मेरे (भोजनौ) पालना करनेवाले होओ।

इन उपरोक्त तीनों मंत्रोंसे जैसा कि हम ऊपर दर्शा आए हैं सायणाचार्यने बैलगाडी द्वारा प्रेतके वहनको दर्शाया है। उसके अनुसार बैलगाडी द्वारा प्रेतका स्मशान में ले जाना वैदिक प्रथा प्रतीत होती है।

५-स्मशान भूमिसे विघ्नकारियोंका भगाना।

अब स्मशान में प्रेतके पहुंच जानेपर जिस स्थान पर प्रेतको जलाना वा गाडना है वहां से दुष्टोंके दूर करनेकी प्रार्थना का निम्न मंत्रोंमें उल्लेख है। तदनुसार प्रार्थना करके अगली विधि करनी चाहिए।

अपेतो यन्तु पणयोऽसुम्ना देवपीयवः अस्य लोकः
सुतावतः। द्युभिरहोभिरक्तुभि र्व्यक्तं यमो
ददात्ववसानमस्मै॥ यजुः अ० ३५।१॥

अर्थ- (देवपीयवः) देवोंकी हिंसा करने वाले (असुम्नाः) दुःख देनेवाले (पणयः) दुष्ट व्यवहार करनेवाले लोक (इतः) इस स्थानसे जहांकि प्रेत की अंत्येष्टि करनी है, (अपयन्तु) दूर हट जावें। क्योंकि (लोकः) यह स्थान (अस्य सुतावतः) इस सोमाभिषव करनेवाले याज्ञिक का है। (अस्मै) इसके लिए (यमः) यम (द्युभिः अहोभिः) प्रकाशमान दिनों व (अक्तुभिः) रात्रियोंसे (व्यक्तं अवसानं) स्पष्ट समाप्ति (ददातु) देता है। अर्थात् इस जीवनमें अब उसके लिए दिन व रात्रिकी समाप्ति हो चुकी है। भावार्थ यह है कि यमने उसका यह जीवन समाप्त कर दिया है, अब उसके लिए दिन व रात्रि नहीं होनी हैं।

इस मंत्रमें यह दर्शाया गया है कि हे दुष्टलोको! इस स्थान से भाग जाओ जहां कि हमने इस प्रेतका अंत्येष्टि संस्कार करना है, जिससे कि संस्कारमें तुम विघ्न न डाल सको।

इसी प्रकार निम्न मंत्रमें भी ऐसी ही प्रार्थना है। मंत्र इसप्रकार है—

अपेत वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एतं पितरो
लोकमक्रन्। अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो
ददात्ववसानमस्मै॥ ऋ. १०।१४।९॥
अथर्व० १८।१।५५॥

अर्थ- हे दुष्टो! (अपेत) यहांसे चले जाओ। (वीत) भाग जाओ। (विसर्पतातः) सर्वथा हट जाओ। क्योंकि (अस्मै) इस मृत पुरुषके लिए (पितरः एतं लोकं अक्रन्) पितरोंने यह स्थान (स्मशान भूमिका) किया है- चुना है- निर्धारित किया है। शेष उत्तरार्ध का अर्थ उपरोक्त मंत्रानुसार ही है। केवल 'अद्भिः' पद विशेष है, जिसका शब्दार्थ है जलोंसे। परन्तु यह पेय पदार्थोंके लिए यहां आया है। मरनेपर सांसारिक पेय पदार्थोंकी भी समाप्ति हो जाती है।

इस प्रकार यह मंत्र भी उपरोक्त प्रयोजन के लिए ही है।

अपेत वीत वि च सर्पतातो येऽत्र स्थ पुराणा
ये च नूतनाः। अदाद् यमोऽवसानं पृथिव्या
अक्रन्निमं पितरो लोकमस्मै॥ यजुः १२।४५॥

अर्थ- (ये) जो तुम (पुराणाः) पुरातन विघ्नकर्ता और (ये नूतनाः) जो तुम नवीन विघ्नकारी लोक (अत्र) यहां स्मशान भूमिमें (स्थ) हो वे तुम (अपेत) वहांसे चले जाओ। (वीत) भाग जाओ। (विसर्पतातः) सर्वथा हट जाओ। क्योंकि (यमः) यमने (अस्मै) इस मृत के लिए (पृथिव्याः अवसानं अदात्) पृथिवीकी समाप्ति दी है यानि इसका पृथिवी परका जीवन समाप्त कर दिया है इसलिए (पितरः) पितरोंने इसके लिए (इमं लोकं) यह स्मशान भूमिका स्थान (अक्रन्) किया

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

है यानि चुना है क्योंकि इसका यहां अंत्येष्टि संस्कार होना है।

इस प्रकार इन मंत्रोंमें स्मशानमें विघ्नकारीओं के भगाने का उल्लेख है तदनुसार उन्हें भगा कर अगली विधि करनी चाहिए ऐसा इन मंत्रों का आशय है।—

६- प्रेतको जलाना, गाडना आदि।

प्रेतके स्मशान भूमिपर पहुंच जानेके अनन्तर उसे गाडने, बहाने, जलाने वा हवा में खुला छोडने की क्रिया की जाती है। नीचे लिखे मंत्रमें इन चारों क्रियाओंका उल्लेख पाया जाता है।—

ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः।
सर्वांस्तानग्ने आवह पितॄन् हविषे अत्तवे॥
अथर्व० १८।२।३४॥

अर्थ- (अग्ने) हे अग्नि! (ये निखाताः) जो पितर जमीन में गाडे गए हैं और (ये परोप्ताः) जो पितर दूर बहा दिए गए हैं तथा (ये दग्धाः) जो जला दिए गए हैं (च) और (ये उद्धिताः) जो पितर जमीन के ऊपर हवामें रखे गए हैं, (तान् सर्वान्) उन सब पितरों को तू (हविषे अत्तवे) हवि भक्षणार्थ (आ वह) ले आ।

यहांपर चार प्रकारके स्मशान कर्म दर्शाए गए हैं। (१) गाडना, (२) बहाना, (३) जलाना और (४) हवामें जमीनपर खुला छोडना।

(१) गाडना-कुछ प्रेत जमीन में गाडे जाते हैं जिनका कि अंत्येष्टि संस्कार अग्नि द्वारा नहीं किया जाता। ये कौन हैं इसपर हमने थोडासा विचार करना है। जो मनुष्य संन्यासी होकर अपना देह त्याग करते हैं उनके देहको न जलानेकेलिए स्मृतियों में कहा गया है, क्यों कि संन्यासाश्रम में प्रवेश करते हुए पुरुषको सर्वमेध याग करना पडता है। इस यागमें वह अग्नि संबन्धी सर्व कार्यों से मुक्त हो जाता है। अतएव उसे मरने पर अग्नि द्वारा नहीं जलाया जाता। संन्यासी के शरीर को जलाना चाहिए वा नहीं इस विषय में अभीतक हमें श्रुतिका निश्चय ज्ञात नहीं है, पर स्मृति इनकार करती है। अतः 'निखात' से संन्यासी का भी ग्रहण किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त वर्तमान समयमें खास करके मुसलमान व ईसाई लोक मुर्दोंको न जलाते हुए गाडते हैं। अतः उनके प्रेतों का भी निखात से ग्रहण किया जा सकता है। जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं। मुर्दे की चार अवस्थायें हो सकती हैं उनमें से एक निखात है।

(२) जलाना वा
(३) जलमें बहाना] ये दो अवस्थायें खास कर हिन्दुओंमें पाई जाती हैं।

(४) जमीनपर वायुमें रखना-यह चौथी अवस्था पारसीओंमें पाई जाती है।

इस प्रकार ये चारों अवस्थायें वर्तमान समयमें हमें मिलती हैं। वेदमें मृतों के दो विभाग मिलते हैं (१) अग्निदग्ध अर्थात् जो अग्नि में जलाए जाते हैं तथा (२) अनग्निदग्ध अर्थात् जो अग्निमें नहीं जलाए जाते। अनग्निदग्ध में जलाने की अवस्था को छोडकर शेष तीनों अवस्थायें अन्तर्हित हो सकती हैं।

यदि हम सूक्ष्म रीतिसे हिन्दुओं के अंत्येष्टि संस्कार का अवलोकन करें तो हम देखेंगे कि उपरोक्त चारों अवस्थायें चिन्ह रूपमें उनके अंत्येष्टि संस्कार में विद्यमान हैं। इससे यह अनुमान भी किया जा सकता है कि किसी न किसी समय ये चारों प्रथायें हिन्दुओंमें प्रचलित होंगी। यद्यपि इस समय वे संकेत रूपमें ही अवशिष्ट रह गई हैं। इस समयका हिन्दुओंका प्रेत संस्कार इन संकेतों सहित इस प्रकारसे होता है। इसे देखनेसे ऊपरका परिणाम स्पष्ट प्रतीत होगा।

(१) प्रायः आजकल हिन्दुलोक मुर्दा अग्नि में जलाते हैं और जलानेके बाद तीसरे दिन (२) एक अश्मा (पत्थर) लेकर उसको जमीनमें रख देते हैं। इसी प्रकार मृतकी हड्डियां चुनकर एक मिट्टीके बरतनमें रखते हैं अथवा वृक्षपर लटका देते हैं। अथवा (३) बहुतसे लोक समीपस्थ नदी या समुद्रमें बहा देते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ लोक सीधा मुर्देकोही नदीमें बहा देते हैं। यदि इतनाभी न हो सका तो चावलों वा आटेका पिण्ड बनाकर उसके ऊपर मृत पितरोंकी पूजाकर उस पिण्डको बहा देते हैं। (४) मरनेके बाद दसवे दिन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उपरोक्तानुसार पिण्ड बनाकर घरके बाहिर खुला रख देते हैं ताकि उसे कौवा स्पर्श करे। जबतक कौवा स्पर्श नहीं करता तबतक अंत्येष्टि क्रिया पूर्ण नहीं हुई ऐसा समझा जाता है। यह संकेत हवामें मुर्देको पारसियोंकी तरह खुला छोडने की क्रिया का है।

इस प्रकार ये चारों विधियां केवल हिन्दुओंमें भी किसी रूपमें पाई जाती हैं यह हम देख सकते हैं।

उपरोक्त मंत्रमें जो चार विधियां दर्शाई गई हैं वे ये ही हैं ऐसा हम कह सकते हैं। अतएव 'ये उद्धिताः' अर्थात् जो ऊपर रख दिए हैं यानि जो हवामें जमीनके ऊपर रख दिए हैं, यही प्रतीत होता है। इसी प्रकार 'ये परोप्ताः' का अभिप्राय जो जल-द्वारा दूर बहा दिए हैं यही प्रतीत होता है। अस्तु इसमें कही गई अवस्थाओंपर हमने यथाशक्ति प्रकाश डालनेकी कोशिश की है। पाठक इसपर विशेष विचारकर उचित निष्कर्ष निकालें।

नीचे लिखे तीन मंत्रोंमें प्रेतके जमीनमें गाडनेका उल्लेख है। मंत्र इस प्रकार हैं।

अभित्वोर्णोमि पृथिव्या मातु र्वस्त्रेण भद्रया।
जीवेषु भद्रं तन्मयि स्वधा पितृषु सा त्वयि॥
अथर्व० १८।२।५२॥

अर्थ- हे प्रेत! (त्वा) तुझे (मातुः पृथिव्याः) माता पृथिवीके (भद्रया वस्त्रेण) कल्याणकारी वस्त्रसे (अभि ऊर्णोमि) आच्छादित करता हूं अर्थात् जमीनमें तुझे गाडता हूं। (जीवेषु भद्रं तत् मयि) जीवितोंमें जो कल्याण है वह मेरेमें हो अर्थात् मुझे प्राप्त हो और (पितृषु स्वधा) जो पितरोंमें स्वधा है (सा त्वयि) वह तेरेमें हो अर्थात् तुझे प्राप्त हो। यहां पर स्पष्ट शब्दोंमें प्रेतके गाडनेका निर्देश है।

इदमिद् वा उ नापरं दिवि पश्यसि सूर्यम्।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि॥
अथर्व० १८।२।५०॥

अर्थ- हे मृत पुरुष (इदं इत् वा उ) यही है (न अपरं) दूसरा नहीं है। (दिवि सूर्यं पश्यसि) जो द्युलोकमें तू सूर्य देखता है। (यथा पुत्रं माता सिचा) जिसप्रकार पुत्र को माता अपने आंचलसे ढांपती है उस प्रकार हे (भूमे) पृथिवी तू (एनं) इस मृत पुरुषको (अभि ऊर्णुहि) चारों ओर से ढांप।

इस मंत्रके पूर्वार्धकी उत्तरार्धसे कैसे संगति है यह अभी तक कुछ स्पष्ट नहीं हुआ। उत्तरार्ध का भाव स्पष्ट है।

असौ हा इह ते मनः ककुत्सलमिव जामयः।
अभ्येनं भूम ऊर्णुहि॥ अथर्व० १८।४।६६॥

अर्थ- (असौ) हे फलाने नामवाले प्रेत! (इह ते मनः) यहां तेरा मन है। हे (भूमे) पृथिवी! (जामयः ककुत्सलं इव) जिस प्रकार स्त्रियां अपने बच्चेको वस्त्रसे ढांपती हैं या कुल स्त्रियां अपने सिरको ढांपती है उस प्रकार (एनं) इस प्रेतको (अभि ऊर्णुहि) भली प्रकार ढांप।

इन उपरोक्त मंत्रोंमें प्रेतके जमीन में गाढने का उल्लेख है। इससे गाढनेकी प्रथाभी वैदिक ही है यह पता चलता है। अब तक अत्यंष्टिके मंत्रोंको देखनेसे हम कह सकते हैं कि हिन्दु, मुसलमान, ईसाई, पारसी आदियोंमें जो मुर्देके जलाने गाडने आदिकी प्रथायें प्रचलित हैं वे सब वैदिक हैं। या यूं कह सकते हैं कि वे सब वेदोंसे उनके पास गई हुई हैं। उनका आदि स्रोत वेद ही है।

७ अंत्येष्टि संस्कार।

इसके अनन्तर काष्ठ संचय करके उस पर प्रेत रखकर अग्नि प्रज्वलित की जाती है। अग्नि के प्रज्वलित हो जानेपर निम्न मंत्रोंसे अग्नि से प्रार्थना की जाती है। आवश्यक दो एक मंत्र हम यहां देते हैं।

मैनमग्ने विदहो माभिशोचो मास्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम्। यदा श्रृतं कृणवो जातवेदोऽथेमेनं प्रहिणुतात् पितृभ्यः॥ ऋ० १०।१६।१॥

अर्थ- (अग्ने) हे अग्नि! (एनं मा विदहः) इस प्रेतको इस प्रकार से मत जला कि जिससे इसे विशेष कष्ट हो। (मा अभिशोचः) इसे शोकाकुल मत कर। (अस्य त्वचं मा चिक्षिपः) इसकी त्वचा को मत बखेर। (मा शरीरं) इसके शरीर को भी मत बखेर। अर्थात् इसकी त्वचा व शरीर को पूर्णतया जला दे कोई भी भाग जलने से अवशिष्ट

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

न रह जावे । और (जातवेदः) हे जातवेदस् अग्नि (यदाऽशृतं कृण्वः) जब इसे पूर्णतया पक्व बना दे अर्थात् जलादे, (अथ) तब (एनं) इसको (पितृभ्यः प्रहिणुतात्) पितरों के लिए भेज दे यानि पितृलोकमें पितरों के पास पहुंचा दे ।

यह मंत्र अथर्व वेदमें (१८ । २ । ४) भी आया है। इस मंत्र को हम पहिले 'अग्नि व पितर' में दे आए हैं । । वहांपर जो कुछ विशेष वक्तव्य इस मंत्रपर था वह दे आए हैं अतः यहां पुनः लिखना व्यर्थ है ।

शृतं यदा करसि जातवेदोऽथेमेनं परिदत्तात्
पितृभ्यः। यदा गच्छात्यसुनीतिमेता मथा देवानां वशनीर्भवाति ॥ ऋ० १० । १६ । २ ॥

अर्थ—हे जातवेदस् अग्नि ! जब इस प्रेत को पूर्णतया दग्ध कर दे तब इसे पितरों के लिए सौंप दे । जब इस प्रेत के प्राण निकल जाते हैं तब यह देवों के वशमें होता है ।

यह मंत्र भी पूर्ण व्याख्या सहित उपरोक्त मंत्रके साथ 'अग्नि व पितर' में दे आए हैं । वहांपर देखने से यह मंत्र स्पष्ट हो जायगा ।

अजो भागस्तपसा तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः ॥ यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभि र्वहैनं सुकृतामु लोकम्॥ ऋ० १०।१६।४॥
अथर्व० १८ । २ । ८॥

अर्थ-(अजः भागः) हे अग्नि इस प्रेत का जो अज भाग (आत्मा) है (तं) उसे तू (तपसा तपस्व) अपने तपसे तपा । (तं) उस अज भाग को (ते शोचिः) तेरी दीप्यमान ज्वाला (तपतु) तपावे। (तं) उस अज भागको (ते अर्चिः) भासमान ज्वाला (तपतु)तपावे । और फिर (जातवेदः) हे जातवेदस् अग्नि ! (याः ते शिवाः तन्वः) तेरे जो कल्याणकारी ज्वालारूपी तनू हैं (ताभिः) उन द्वारा इस अज भाग को (सुकृतां लोकं) सुकर्म करनेवालों के लोकमें (वह) प्राप्त करा।

इस मंत्र से भी वही परिणाम निकलता है जैसा कि हम पहिले दर्शा आए हैं यानि शरीर के जल जाने तक आत्मा शरीर के पासही रहती है और शरीर दहन के अनन्तर अग्नि द्वारा अन्यत्र ले जाई जाती है ।

यह सम्पूर्ण सूक्त इसी भावके मंत्रोंवाला है जिसका कि अंत्येष्टि में विनियोग होता है । इस सम्पूर्ण सूक्त पर हम अन्यत्र स्वतंत्र प्रकरण में विचार करेंगे ।

इस प्रकार प्रेत दहन के समय अग्नि से प्रार्थना यें करनी चाहिए ऐसा इन मंत्रों का अभिप्राय है ।

उपरोक्तानुसार अग्नि से प्रार्थनायें करके अंत्येष्टि परक मंत्रों से अग्निमें आहुतियां देनी चाहिए। यजुर्वेद का ३९ वां अध्याय अंत्येष्टि परक है । हम यहां वेही मंत्र देंगे जिनका कि हमारे प्रकरण से संबन्ध है अर्थात् जिन मंत्रों में यम वा पितर विषयक किसी प्रकार का निर्देश है ।

यमाय स्वाहान्तकाय स्वाहा मृत्यवे स्वाहा ।
ब्रह्मणे स्वाहा ब्रह्महत्यायै स्वाहा विश्वेभ्यो
देवेभ्यः स्वाहा द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा ॥
यजुः ३९ । १३ ॥

अर्थ- (यमाय स्वाहा) यम के लिए स्वाहा । (अन्तकाय स्वाहा) अन्तक के लिए स्वाहा । (मृत्यवे स्वाहा) मृत्युके लिए स्वाहा । (ब्रह्मणे स्वाहा) ब्रह्मके लिए स्वाहा । (ब्रह्महत्यायै स्वाहा) ब्रह्महत्या के लिए स्वाहा । (विश्वेभ्यः देवेभ्यः स्वाहा) सर्व देवों के लिए स्वाहा । (द्यावा पृथिवीभ्यां स्वाहा) द्यु तथा पृथिवी के लिए स्वाहा ।

इस मंत्रमें यम के लिए भी एक आहुति का निर्देश है ।

इसी प्रकार के अन्य मंत्रों से आहुतियां देकर प्रेत से कहा जाता है कि हे प्रेत-

सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा । अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रतितिष्ठा शरीरैः ॥
ऋ० १० । १६ । ३ ॥
अथर्व० १८ । २ । ७ ॥

अर्थ- तेरी आंख सूर्यको जावे । तेरे प्राण वायु को जावें । और हे प्रेत ! तू कर्मफलजन्य धर्म से वा पार्थिवादि तत्वोंके धर्म से (पृथिवीका अंश पृथिवीमें जावे इस प्रकारसे) द्यु व पृथिवी को जा, उन उन के अंश उनमें मिल जावें । इसी प्रकार जलों में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जलांश जावे यदि जलों का कोई अंश तेरे में स्थित हो। इसी प्रकार ओषधियों में शरीरांशों से स्थित हो।

इस मंत्रपर जो विशेष वक्तव्य था वह हम पहिले दे आए हैं।

इस प्रकार प्रेत का अग्नि संस्कार हो जानेपर उसकी आत्मा से कहा जाता है कि-

सहस्रणीथाः कवयो ये गोपायन्ति सूर्यम्।
ऋषीन् तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात्॥
ऋ० १० । १५४ । ५ ॥
अथर्व० १८।२।१८ ॥

अर्थ- (सहस्रणीथाः कवयः) हजारों को ले जानेवाले अर्थात् हजारों के नायक, क्रान्तदर्शी, (ये) जो कि (सूर्य गोपायन्ति) सूर्य की रक्षा करते हैं, ऐसे (तपस्वतः) तपोयुक्त, (तपोजान्) तप से उत्पन्न (ऋषीन्) ऋषियों को (यम) हे नियमवान् तू (गच्छतात्) प्राप्त हो, अर्थात् इनमें जाकर तू जन्म ले।

८- प्रार्थनायें।

इस प्रकार प्रेत दहन की क्रिया समाप्त हो जानेपर उसके लिए पीछेसे की जानेवाली प्रार्थनाओंका उल्लेख निम्न मंत्रों में है।

सप्त प्राणानष्टौ मन्यस्तांस्ते वृश्चामि ब्रह्मणा।
अया यमस्य सादनमग्निदूतो अरङ्कृतः॥
अथर्व० २। १२। ७॥

अर्थ- (ते) तेरे (तान् सप्त प्राणान्) सात प्राणों को, (अष्टौ मन्यः) आठों नाडियों को (ब्रह्मणा) ब्रह्म से (वृश्चामि) काटता हूं। तू (अग्निदूतः)अग्नि को दूत बनाकर (अरंकृतः) शीघ्रता करता हुआ (यमस्य) यमके (सादनं) घरको (अयाः) जा।

सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन्। हित्वायवद्यं पुनरस्तमेहि संगच्छस्व तन्वा सुवर्चाः॥ ऋ० १०। १४। ८॥
अथर्व० १८। ३।। ५८॥

अर्थ -(परमे व्योमन्) उत्कृष्ट व्योममें अर्थात् स्वर्ग में (पितृभिः) पितरों के साथ (संगच्छस्व) तू जा। (यमेन सं) और यमके साथ स्वर्ग में जा। (इष्टापूर्तेन) इष्टा पूर्त के साथ स्वर्ग में जा। (अवद्यं हित्वाय) निन्द्य कर्मों का त्याग करके (पुनः) फिर (अस्तं एहि) घरको आ अर्थात् पुनर्जन्म ले। और (सुवर्चाः) उत्तम तेजसे युक्त हुआ हुआ (तन्वा संगच्छस्व) शरीर धारण करके दुनियामें विचरण कर।

भिन्न भिन्न अर्थमें बहुवचनान्त पितृशब्दका प्रयोग।

पितृ शब्द वाले मंत्रोंको देखनेसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि बहुवचनमें प्रयुक्त पितृशब्द खास अभिप्राय से प्रयुक्त किया गया है। एकवचन व द्विवचनमें आया हुआ पितृ शब्द खास महत्वका नहीं है यह बात आगे दीये जानेवाले मंत्रोंके समन्वय से पाठक सुगमतासे जान सकेंगे। अबतक आए हुए मंत्रोंके देखनेसे पाठकोंके लक्ष्यमें यह बात अवश्यमेव आगई होगी कि उन मंत्रोंमें सर्वत्र बहुवचनान्त पितृशब्द ही प्रयुक्त है। इस प्रकरणमें हम उन थोडेसे मंत्रों को देंगे कि जिनमें बहुवचनान्त पितृशब्दका प्रयोग उस अभिप्राय से नहीं किया गया जिस अभिप्रायसे कि अबतक के मंत्रोंमें किया गया है। पाठक वर्ग हमारे इस कथनका अनुभव स्वयमेव मंत्रोंके देखनेसे कर सकेंगे। यह प्रकरण, अबतक के मंत्रोंमें विद्यमान पितृशब्दके प्रयोगका अभिप्राय आगे आनेवाले मंत्रोंमें विद्यमान पितृशब्दके अभिप्रायसे भिन्न है। यह दर्शाता हुआ हमें पूर्वोक्त मंत्रोंमें विद्यमान पितृ शब्दके अभिप्राय निर्णयमें पूर्ण सहायक होगा ऐसी आशा है। इस प्रकार यह प्रकरण बहुवचनान्त पितृ शब्दके अभिप्राय निर्णयमें महत्वशाली होगा, यह पाठकोंको यहांपर ध्यानमें रखना चाहिए।

१ हिंसा अर्थमें।

प्र नु वोचा सुतेषु वां वीर्या यानि चक्रथुः।
हतासो वां पितरो देवशत्रवः इन्द्राग्नी जीवथो युवम्॥ ऋ० ६। ५९। १॥

अर्थ- हे इन्द्राग्नी! (वां) तुम दोनों (सुतेषु यानि वीर्या चक्रथुः) उत्पन्न पदार्थोंमें जो पराक्रम करते हो, उनका (नु) निश्चयसे (प्रवोचा) मैं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

प्रवचन करता हूं। अब प्रवचन का प्रकार बताते हैं- हे इन्द्राग्नी! (वां) तुम्हारे (पितरः) हिंसा करने वाले (देवशत्रवः) देवोंसे शत्रुता करनेवाले (हतासः) नष्ट होगए हैं। (युवं) तुम दोनों (जीवथ) जीवित हो।

पितरः- पियति हिंसाकर्मा धातुसे पितर शब्द बनाया गया है क्यों कि देवशत्रुका यह विशेषण है। अतः यहां पितरका अर्थ हिंसाकरनेवाले ही है। मंत्र भी इस अर्थका पोषक है।

२ ज्ञानीलोक पितर।

कत्यग्नयः कति सूर्यासः कत्युषासः कत्यु स्विदापः। नोपस्पिजं वः पितरो वदामि पृच्छामि वः कवयो विद्मने कम्॥ऋ. १०।८८।१८

अर्थ- (अग्नयः कति) अग्नियां कितनी हैं? (सूर्यासः कति) सूर्य कितने हैं? (उषासः कति) उषायें कितनी हैं? (आपः कतिस्वत्) भला आप् कितने हैं? (कवयः पितरः) हे क्रान्तदर्शी ज्ञानी पितरो! (वः उपस्पिजं न वदामि) तुम्हारी स्पर्धा करता हुआ यानि परीक्षा लेनेके अभिप्रायसे उपरोक्त प्रश्न नहीं पूछता हूं अपितु मैं नहीं जानता अतः (विद्मने) जाननेके लिए (वः पृच्छामि) तुमसे पूछता हूं। मंत्र स्पष्ट है। ज्ञानी लोकोंको पितरसे संबोधन किया गया है।

३- राज सभाके सभासद-पितर।

सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने। येना संगच्छा उप मा स शिक्षाच्चारु वदानि पितरः संगतेषु॥ अथर्व० ७।१२।११

अर्थ-(संविदाने) परस्पर मेल रखनेवालीं एक मतको प्राप्त हुई हुई (प्रजापतेः) प्रजापति राजाकी (दुहितरौ) दो दुहितायें (सभा च समितिः च) सभा और समिति (मा) मेरी (अवतां) रक्षा करें। (येन संगच्छै) जिस जिस सभासदसे मैं संगत होऊं यानि उसकी संगति करूं (सः) वह वह सभासद (मा उपशिक्षात्) मुझे शिक्षा दे। (पितरः) हे सभासदो! (संगतेषु) संमेलनोंमें मैं (चारु वदानि) प्रिय बोलूं।

इस मंत्रमें राजाकी राजसभासदोंके प्रति उक्ति है। उनको पितरके नामसे कहा गया है।

४- सैनिक पितर।

स्वादुषंसदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराः। चित्रसेना इषुबला अमृध्राः सतोवीरा उरवो व्रातसाहाः॥

ऋ० ६।७५।९॥
यजुः २९।४६॥

इस मंत्रका देवता 'रथगोपाः' अर्थात् लडाईमें रथ रक्षक सैनिक हैं। अर्थ इस प्रकार है-

(स्वादुषंसदः) शत्रुओंके अन्न में बैठनेवाले वा शत्रुओंके अन्नका नाश करनेवाले, (वयोधाः) अन्न देनेवाले (कृच्छ्रेश्रितः) कठिनाईयोंमें भी स्थिर रहनेवाले (शक्तीवन्तः) शक्तिवाले या शक्ति नामक अस्त्रसे युक्त (गभीराः) गंभीर, (चित्रसेनाः) दर्शनीय सेनावाले, (इषुबलाः) बाण है बल जिनका अर्थात् बाणसे लडनेवाले (अमृध्राः) जिनकी शत्रुओंसे हिंसा नहीं हो सकती ऐसे, (सतोवीराः) वीर्यशाली, (उरवः) विशाल काय, (व्रातसाहाः) शत्रु समुदाय का पराजय करनेवाले (पितरः) रक्षा करनेवाले रथ रक्षक होते हैं।

ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा। पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा मा किं नो अघशंस ईशत॥

ऋ० ६।७५।१०॥
यजुः २९।४७॥

यह मंत्र ऊपरोक्त मंत्रसे अगला मंत्र है। यह संपूर्ण सूक्त युद्ध विषयक है। इस मंत्रका अर्थ इस प्रकार है-

(ब्राह्मणासः) हे ब्रह्मज्ञानी, (सोम्यासः) सोम संपादन करनेवाले अर्थात् यज्ञादि कर्मोंके करने वाले (ऋतावृधः) सत्यसे बढनेवाले वा सत्यको बढानेवाले (पितरः) रक्षको! (अनेहसा द्यावा पृथिवी) अहिंसक द्यु तथा पृथिवी (नः शिवे) हमारे लिए कल्याण के करने वाले हों। (पूषा) पोषक सेनापति (नः) हमारी (दुरितात्) पापसे (पातु) रक्षा करे और (मा किः अघशंसः नः ईशत) कोईभी पापी हमारे ऊपर शासन मत करे। (रक्षा) उससे पूषा हमारी रक्षा करे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इन मंत्रोंमें सैनिकोंको पितर कहा गया है क्योंकि वे हमारी रक्षा करते हैं।

५-प्राण-पितर

योयज्ञो विश्वतस्तन्तुभिस्तत एक शतं देवकर्मेभिरायतः। इमे वयन्ति पितरो य आययुः प्रवयाप वयेत्यासते तते॥

ऋ० १०। १३०। १॥

अर्थ-(यः यज्ञः) जो यह जीवन रूपी यज्ञ (विश्वतः तन्तुभिः) चारोंओरसे क्षण, दिन, मास वा वर्षरूपी तन्तुओंसे (ततः) लम्बाईमें विस्तृत है और (एकशतं देवकर्मेभिः) एक सौ देवकर्मोंसे अर्थात् सौ वर्षकी आयुसे (आयतः) चौडाईमें फैला हुआ है उस यज्ञको (इमे पितरः) ये जीवनाधार प्राण पितर (वयन्ति) बुनते हैं। (ये आययुः) जो कि प्राण इस यज्ञमें आए हुए हैं। वे (तते आसते) इस विस्तृत जीवन यज्ञमें बैठते हैं व कहते हैं कि (प्रवय अपवय) आगे बुनते जाओ और पीछेका ठीक करते जाओ।

इस मंत्रमें कपडे बुननेके अलङ्कारसे जीवनरूपी वस्त्रका वर्णन है। प्राण इस जीवनके रक्षक होनेसे पितर हैं।

स्वाहा पूष्णे शरसे स्वाहा ग्रावभ्यः स्वाहा प्रतिरवेभ्यः। स्वाहा पितृभ्यः ऊर्ध्वबर्हिभ्यो घर्मपावभ्यः स्वाहा द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः॥ यजुः अ० ३८। १५॥

इस संपूर्ण मंत्रका अर्थ हम यहां नहीं देंगे क्यों कि हमारा प्रयोजन सिर्फ 'स्वाहा पितृभ्यः ऊर्ध्व बर्हिभ्यः' इतनेसे ही है। अतः इतने ही मंत्र खण्डका अर्थ हम देंगे।

(ऊर्ध्व बर्हिभ्यः पितृभ्यः स्वाहा)- शरीरमें जिनकी उत्कृष्ट स्थिति है ऐसे प्राणों के लिए स्वाहा। संपूर्ण मंत्रमें 'पूष्णे, शरसे' आदि प्राण के लिए हैं। अतः 'ऊर्ध्वबर्हि' विशेषण प्राणों का है। यह मंत्र शतपथ में इसी प्रकार व्याख्यात है। देखो श० १४। २। २। ३२॥

६ पालक-रक्षक आदि अर्थ में।

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम्। पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः॥ ऋ० १।८९।९॥ यजुः २५। २२॥

अर्थ—(देवाः) हे देवो! (नु) निश्चयसे (शतं इत्) सौ ही (शरदः) वर्ष (अन्ति) मनुष्यके पास हैं। (यत्र) जिन सौ वर्षोंमें आप देवगण (नः तनूनां जरसं चक्रा) हमारे शरीरों में बुढापा लाते हो। (यत्र) और जिन सौ वर्षोंमें (पुत्रासः) पुत्र गण (पितरः) संतानोत्पत्ति के लायक होकर व अन्योंका पालन करने लायक होकर पितर बनते हैं। इस सौ वर्ष की (आयुः)आयुको (गन्तोः मध्ये) पूर्ण रूपसे प्राप्त करने से पहिले ही बीचमें (नः) हमें (मा रीरिषत) मत नष्ट करो।

त्राता नो बोधि दद्दशानः आपिरभिख्याता मर्डिता सोम्यानाम्। सखा पिता पितृतमः पितृणां कर्तेमु लोकमुशते वयोधाः॥

ऋ० ४। १७। १७॥

अर्थ—वह इन्द्र (नः) हमारा (त्राता) रक्षक, (दद्दशानः) हमारा देखनेवाला, (अभिख्याता) उपदेश करनेवाला, (मर्डिता) सुख देनेवाला, (सखा) मित्र, (पिता) पालक, (सोम्यानां पितृणां पितृतमः) सोम्य पितरों में श्रेष्ठ पिता, (कर्ता) बनानेवाला, तथा (लोकं उशते) लोकों की कामना करनेवाले के लिए (वयोधाः) अन्न-बल-आयु का देनेवाला है, इस प्रकार हे उपासक (बोधि) तू जान।

ते हि द्यावा पृथिवी मातरा मही देवी देवाञ्जन्मना यज्ञिये इतः। उभे बिभृत उभयं भरीमभिः पुरु रेतांसि पितृभिश्च सिञ्चतः॥ ऋ० १०।६४।१४॥

अर्थ- (मातरा) सब जगत् की निर्माण करनेवालीं, (मही) बडी (देवी) दिव्य गुणोंवालीं (यज्ञिये) पूजनीय (ते द्यावा पृथिवी) वे द्यावा पृथिवी (देवान्) देवोंको (जन्मना इतः)जन्मसे प्राप्त करती हैं अर्थात् उनको उत्पन्न करती हैं। (उभे) दोनों द्यु और पृथिवी (भरीमभिः) भरण पोषणसे (उभयं बिभृतः) दोनों, मनुष्य व देवोंका धारण पोषण करती हैं। और (पितृभिः) पालक इन्द्रादि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

देवोंके साथ मिलकर (पुरु रेतांसि) बहुत जलोंसे (सिञ्चतः) सिंचन करती हैं अर्थात् प्रखर वृष्टि करती हैं।

७ · इषु ·पितर

दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ अथर्व० ३।२७।२ ॥

अर्थ— दक्षिण दिशाका इन्द्र अधिपति है। वह तिर्यक् गति वाले सर्पादिसे रक्षा करने वाला है। उसके बाण पितर हैं अर्थात् रक्षक हैं। इत्यादि।

इस मंत्रमें बाणोंको पितर कहा गया है क्योंकि वे हमारी रक्षा करते हैं।

जनक·पितर

वातासो न ये धुनयो जिगत्नवोऽग्नीनां न जिह्वा विरोकिणः । वर्मण्वन्तो न योधाः शिमीवन्तः पितॄणां न शंसाः सुरातयः॥ ऋ. १०।७८।३॥

अर्थ- (ये) जो मनुष्य (वातासः न) वायुओंकी तरह (धुनयः) शत्रुओंको कंपानेवाले हैं, तथा जो (जिगत्नवः) क्रियाशील (Active) (अग्नीनां जिह्वाः न) अग्नियों की ज्वालाओंकी तरह (विरोकिणः) दीप्यमान हैं; और जो (वर्मण्वन्तः योधाः न) कवचधारी योद्धाओंकी तरह (शिमीवन्तः) शूरता के कार्योंके करनेवाले हैं, व (पितॄणां शंसाः न) जनक पितरोंकी वाणियों की तरह (सुरातयः) उत्कृष्ट दान देनेवाले हैं, ऐसे मनुष्य हमारी सर्वदा रक्षा किया करें।

ध्रुवा एव वः पितरो युगे युगे क्षेमकामासः सदसो न युञ्जते । अजुर्यासो हरिषाचो हरिद्रव आ द्यां रवेण पृथिवीमशुश्रवुः ॥ ऋ० १०। ९४। १२ ॥

अर्थ-(वः) तुम्हारे (पितरः) उत्पन्न करने वाले (ध्रुवा एव) निश्चयसे स्थिर हैं। तुम(युगे युगे) युग युगमें (क्षेमकामासः) कल्याण करनेकी इच्छावाले हो इत्यादि। इस संपूर्ण सूक्तमें 'यज्ञमें सोमलता से सोम निकालने के लिए लाए हुए पत्थरोंका वर्णन है ' ऐसा सायणाचार्यने माना है। और तदनुसार मंत्रार्थ किए हैं। साधारणतया मंत्रोंको देखनेसे ऐसाही वर्णन प्रतीत होता है तथापि संपूर्ण सूक्त विचारणीय है। इसपर हम फिर कभी प्रकाश डालनेका प्रयत्न करेंगे। और अतः यहांपर हमें जितना अभिष्ट अर्थ था उतनाही दिया है।

८-पूर्वज-पितर

चाक्लृप्रे तेन ऋषयो मनुष्या यज्ञे जाते पितरो नः पुराणे । पश्यन्मन्ये मनसा चक्षसा तान्य इमं यज्ञमयजन्त पूर्वे ॥ ऋ० १०। १३०। ६॥

अर्थ- (पुराणे यज्ञे जाते) पुरातन यज्ञके हो जानेपर (तेन) उस यज्ञ द्वारा (ऋषयः) ऋषिगण, (मनुष्याः) अन्य मनुष्य समुदाय व (नः पितरः) हमारे पूर्वज (Fore-fathers)(चाक्लृप्रे) उत्पन्न हुए। (ये पूर्वे इमं यज्ञं अयजन्त) जिन पूर्व के देवोंने इस सृष्ट्युत्पत्तिरूपी यज्ञको किया था (तान्) उन देवोंको (मनसा चक्षसा) मनरूपी आंखसे अथवा (चक्षसा मनसा) सूक्ष्म पदार्थोंके देखनेके साधनभूत मनसे (पश्यन्) देखता हुआ मैं (मन्ये) उन देवोंका मनन करता हूं।

यह सूक्त सृष्ट्युत्पत्तिपर कुछ कुछ प्रकाश डालता हुआ प्रतीत होता है। इस मंत्रमें आए हुए ऋषि, पितर व मनुष्य संभवतः क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्यके द्योतक प्रतीत होते हैं जैसा कि पुरुष सूक्त में सृष्ट्युत्पत्तिमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यकी उत्पत्ति दर्शाई गई है। क्षत्रियोंके लिए पितरका प्रयोग वेदमें हुआ है जैसा कि अभी हम ऊपर दर्शा आए हैं।

ऋतु-पितर।

नमो वः पितरो रसाय नमो वः पितरः शोषाय नमो वः पितरो जीवाय, नमो वः पितरः स्वधायै, नमो वः पितरो घोराय, नमो वः पितरो मन्यवे,नमो वः पितरः पितरो नमो वः गृहान्नः पितरो दत्त सतो वः पितरो देष्मै तद्वः पितरो वासः ॥ यजुः अ० २। ३२॥

इस मंत्र पर शतपथ ब्राह्मणने इतनीही टिप्पणी चढाई है कि ' इस मंत्रमें ६ बार नमस्कार है वह इस लिए है कि क्योंकि ६ ऋतुएं होती हैं। शतपथका वचन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इसप्रकार है -'षट्कृत्वो नमस्करोति षड्वा ऋतवः ऋतवः पितरः तस्मात् षट् कृत्वो नमस्करोति--।

शo २। ४। २। २४॥

इस प्रकार इस मंत्रमें ऋतुओंको पितर कहा गया है ऐसा प्रतीत होता है। ब्राह्मणोंमें स्थान स्थानपर ऋतुओंको पितर कहा गया है। उदाहरणार्थ- शo २।६।१। ४

कौo ५ ७॥ गो उo १। २४ ॥ तथा ६। १५॥

शo २। ६।१। ३२ ॥ तैo १।४।१०।८॥ तथा १।३। १०। ५॥ इत्यादि। इस स्थापनानुसार मंत्रार्थ इस प्रकार है--

(पितरः) हे पितरो ! (वः रसाय) तुम्हारी रस भूत वसंतके लिए (नमः) नमस्कार है। वसन्तऋतु में मधु आदि रसका बाहुल्य होता है अतः रससे यहां वसन्त ऋतुका उपलक्षण है। (पितरः वः शोषाय नमः) हे पितरो तुम्हारी शोषक ग्रीष्मके लिए नमस्कार है। ग्रीष्ममें गरमी पडनेसे सब रस सूख जाते हैं अतः शोषकसे ग्रीष्मका यहां ग्रहण किया गया है। (पितरः वः जीवाय नमः) हे पितरो ! तुम्हारी जीवन दात्री वर्षाके लिए नमस्कार है। जीवन नाम जलका है क्योंकि वह जीवन देता है। वर्षाऋतु जीवन दात्री है। (पितरः वः स्वधायै नमः) हे पितरो ! तुम्हारी अन्न देनेवाली शरदृतुके लिए नस्मकार है। स्वधाना म अन्नका है ! और शरद्ऋतुमें अन्न बहुत होता है। स्वधा शरद्ऋतुकी उपलक्षण है। (पितरः वः घोराय नमः) पितरो ! तुम्हारी शीतयुक्त हेमन्तके लिए नमस्कार है। हेमन्तमें बडा घोर शीत पडता है अतः घोरसे हेमन्तका ग्रहण है। (पितरः वः मन्यवे नमः) हे पितरो ! तुम्हारी मन्युभूत शिशिर के लिए नमस्कार है। शिशिरऋतुमें औषधियां जल जाती हैं अतः तत् सादृश्यसे मन्यु शिशिरका उपलक्षण है। (पितरः) हे पितरो ! (नः गृहान् दत्त) हमें घर दो अर्थात् हमारे घरोंको समृद्ध करो। (पितरः) हे पितरो ! (वः) तुम्हारे लिए (सतः देष्म) जो कुछ हमारे घरमें है हम देंगे। हे पितरो (वः एतत् वासः) तुम्हारा यह वस्त्र है अर्थात् यह ओढने पहिननेका साधन है उसे लो। यह मंत्र अभीतक विशेष विचारणीय है यद्यपि ब्राह्मणने इस मंत्र में आए हुए पितर को ऋतुवाची बताया है पर जिस प्रकरण में यह मंत्र है उसमें यह अर्थ संगत नहीं होता। अभीतक इस मंत्रका पूर्णतया स्पष्टी करण नहीं हुआ है। फिरभी पाठकोंके सामने विचारार्थ पेश कर दिया है। शतपत ब्राह्मणने इस मंत्रकी व्याख्यामें नमः का अर्थ यज्ञ किया है इसका अभिप्राय यह प्रतीत होता है कि इन प्रत्येक ऋतुमें यज्ञ करना चाहिए व उस उस ऋतुमें उत्पन्न पदार्थकी यज्ञमें हवि डालनी चाहिए।

गो-संयामक पितर।

न किरेषां निन्दिता मर्त्येषु येऽस्माकं पितरो गोषु योधाः। इन्द्र एषां दृंहिता माहिनावानुद्गोत्राणि ससृजे दंसनावान् ॥ ऋo ३।३९।४ ॥

अर्थ- (ये अस्माकं पितरः) ये जो हमारे पितर (गोषु योधाः) इन्द्रयोंसे लडने वाले हैं (एषां) इनका (मर्त्येषु) मनुष्योंमें (न किः निन्दिता) कोई भी निन्दक नहीं है। (माहिनावान्) अत्यन्त पूजनीय वा महिमावाला तथा (दंसनावान्) कर्मशील (इन्द्रः) आत्मा (एषां गोत्राणि) इनके इन्द्रिय समूहोंको (दृंहिता उत्ससृजे) दृढ बनाता है

इस मंत्रमें गोशब्द इन्द्रिय वाची है। इन्द्रियोंको वश करनेके लिए मनुष्यको उनके साथ युद्ध करना पडता है। जो योद्धा इन्द्रियोंपर विजय पालेता है अर्थात् उन्हें अपने काबुमें कर लेता है उसका फिर दुनियामें कोई भी निन्दक नहीं रहता क्योंकि इन्द्रियां ही निन्दाकी जड हैं। इन्द्रिय संयम करना वस्तुतः एक बडी भारी लडाई फतेह करना है। अतएव यहां इन्द्रिय संयम करने वाले पितरोंको योद्धाके नामसे पुकारा गया है। इन्द्रिय संयम होनेपर आत्मा उन्हें दृढ बनाती है। संयमित इन्द्रियों वाले पुरुष को सुख दुःख आदि द्वन्द्व कदापि सता नहीं सकते। उसका इन्द्रिय समूह इतना दृढ बन जाता है कि उसे सांसारिक कोईभी आपत्ति सता नहीं सकती। इस प्रकार इस मंत्रमें इन्द्रिय संयमका महत्व बताया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar. IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सोम और पितर ।

त्वं सोम प्रचिकितो मनीषा त्वं रजिष्ठमनु नेषि पंथाम्। तव प्रणीती पितरो न इन्द्रो देवेषु रत्न मभजन्त धीराः ॥ ऋ० १।९१।१ ॥
यजुः १९।५२ ॥

अर्थ- हे सोम ! (त्वं मनीषा प्रचिकितः) तू अपने मनकी गतिसे यानि अपनी बुद्धिसे सब उचित अनुचितको जानता है, इसलिए (त्वं) तू (रजिष्ठं पन्थां अनुनेषि) सरल व सुगम मार्गपर अपने पीछे पीछे लेजाता है। (इन्दो) हे इन्दु ! (तव प्रणीती) तेरे नेतृत्व (Leading) से (नः धीराः पितरः) हमारे धीर पितर (देवेषु रत्नं अभजन्त) देवोंमें रत्नको प्राप्त करते हैं अर्थात् देवोंमें शिरोमणि बन जाते हैं या देवोंसे रत्न यानि संपत्ति प्राप्त करते हैं।

इन्दु-उन्दी क्लेदनेसे इन्दु शब्द बनता है। क्लेदनका अर्थ है गीला होना। अमृतसे गीला करने वाला यानि अमृत देनेवाला। सौम्य गुणोंसे युक्त।

इस मंत्रमें सोमके नेतृत्व की महिमा दर्शाई है। पितर सोमके नेतृत्वसे देवोंमें उच्च पदको प्राप्त करते हैं ऐसा यहां से पता चलता है।

यो न इन्दुः पितरो हृत्सु पीतोऽमर्त्यो मर्त्यां आविवेश । तस्मै सोमाय हविषा विधेम मृळीके अस्य सुमतौ स्याम् ॥ ऋ० ८।४८।१२ ॥

अर्थ- हे (पितरः) पितरो ! (यः हृत्सु पीतः) जो हृदयोंमें पिया गया (अमर्त्यः इन्दुः) मरण रहित इन्दु (नः मर्त्यान्) हम मरण धर्मा मनुष्योंमें (आविवेश) प्रविष्ट हुआ हुआ है, (तस्मै सोमाय) उस सोमके लिए (हविषा) हवि द्वारा (विधेम) हम पूजा करते हैं। (अस्य) इस सोमके (मृळीके) सुखमें और (सुमतौ) सुमतिमें (स्याम) हम रहें।

इस मंत्रमें सोमको हवि देनेका व सुखेच्छु को सोमकी सलाहमें रहनेका निर्देश है। यह सोम हमारेमें प्रविष्ट हुआ हुआ है, यह बातभी यहांसे पता चल रही है।

त्वं सोम पितृभिः संविदानोऽनु द्यावापृथिवी आ ततन्थ । तस्मै त इन्दो हविषा विधेम वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ऋ० ८।४८।१३ ॥
यजुः १९।५४ ॥

अर्थ- हे सोम ! (त्वं)तू (पितृभिः संविदानः) पितरोंके साथ मिला हुआ (द्यावा पृथिवी) द्युलोक व पृथिवी लोकका (अनुआ ततन्थ) अनुकूलतासे विस्तार करता है। (इन्दो) हे इन्दु ! (तस्मै ते) उस तेरे लिए हम (हविषा विधेम) हवियोंसे पूजा करते हैं, जिससेकि (वयं) हम (रयीणां पतयः स्याम) धनोंके स्वामी होवें। इस मंत्रमें यह दर्शाया गया है कि सोम पितरोंके साथ मिलकर द्यु व पृथिवीका विस्तार करता है। उसको हवि देनेसे धन संपत्ति मिलती है।

त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्माणि चक्रुः पवमान धीराः। वन्वन्नवातः परिधीँ रपोर्णु वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा नः ॥ ऋ० ९।९६।११ ॥
यजु० १९।५३॥

अर्थ- (पवमान सोम) हे पवित्र सोम ! (त्वया हि) तेरसेही अर्थात् तेरी सहायता द्वाराही (नः पूर्वे धीराः पितरः) हमारे धीर पूर्वज पितरोंने (कर्माणि चक्रुः) श्रेष्ठ कर्मोंको किया।

इस मंत्र में यह दर्शाया गया है कि सोम की सहायता द्वारा हमारे पूर्वज पितर श्रेष्ठ कर्म करने में समर्थ हुए। सोम राक्षसोंका विनाश करता है। वीर अश्वोंवाला होकर सोमको शासक बननेके लिए कहा गया है इससे ऐसा पता चलता है कि यहां सोमसे सेनापति वा राजाका ग्रहण है।

पितृमान् सोम।

अग्नये कव्य वाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहा। अपहता असुरा रक्षांसि वेदिषदः ॥
॥ यजुः २। २९॥

अर्थ- कव्यका वहन करनेवाली अग्निके लिए स्वाहा हो। उत्तम पितावाले सोमके लिए स्वाहा हो। (वेदिषदः असुराः रक्षांसि) पृथिवीपर स्थित असुर व राक्षस (अपहताः) नष्ट हो जावें। यहां सोमको उत्तम पितावाला कहागया है। अग्नि व सोम पृथिवीस्थ असुर व राक्षस नष्ट करते हैं ऐसा मंत्र की संगति लगानेसे पता चलता है॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सोमाय पितृमते स्वधानमः॥
अथर्व० १८।४।७२॥

श्रेष्ठ पितावाले सोमके लिए स्वधा और नमस्कार हो। यहां सोमके लिए स्वधा व नमः देनेका उल्लेख है।

पितृभ्यः सोमवद्भ्यः स्वधा नमः॥ अथर्व० १८।४।७३॥

सोमवान् पितरोंके लिए स्वधा व नमस्कार हो। इन मंत्रोंके देखने से इतना स्पष्ट होता है कि सोम व पितरोंका परस्पर विशेष संबन्ध है। यह सोम कौन है यह कहना कठिन है जब तक कि संपूर्ण सोम विषयक मंत्रोंका समन्वय न किया जासके। हम फिर कभी हुआ तो समन्वय करके पाठकों के सामने रखनेका प्रयत्न करेंगे। पाठक स्वयं सोमपर विचार करेंगे तो उत्तम होगा।

अङ्गिरस् पितर।

प्र वो महे महि नमो भरध्वमाङ्गूष्यं शवसानाय साम। येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञा अर्चन्तो अङ्गिरसो गा अविन्दन्॥ ऋ० १।६२।२॥
यजुः ३४।१७॥

अर्थ — हे मनुष्यो! (वः) तुम (महे शवसानाय) बडे भारी बलवान् इन्द्रके लिए (महि नमः) महान् नमस्कार तथा (आङ्गूष्यं साम) आङ्गूष्य नामक सामसे (प्रभरध्वं) गायन करके स्तुतिकरो (येन) जिस आङ्गूष्य सामद्वारा (अर्चन्तः) अर्चनाकरते हुए (नः) हमारे (पूर्वे पदज्ञाः अङ्गिरसः पितरः) पुरातन पदज्ञ अङ्गिरस् पितरोंने (गाः अविन्दन्) सूर्य किरणोंको प्राप्त कियाथा।

हम पहिलेभी देख आए हैं कि पितरोंके सूर्य किरणोंके प्राप्त करनेका उल्लेख हमें मिलता है। यहां पर पुनः अङ्गिरस् पितरों द्वारा सूर्यकिरण की उपलब्धिका जिक्र है। आङ्गूष्य साम की महिमा यहां व्यक्त होरही है। आङ्गिरस् पितर किन पितरोंका नाम है इसका विचार हम फिर करेंगे।

आङ्गूष्यं साम- आङ्गूष का अर्थ है स्तुति समूह अथवा आघोष। आघोषका अर्थ है जोर का शब्द आवाज॥ देखो-निरुक्त- आङ्गूषः स्तोमः आघोषः। नि० अ. १। पा० १। खं. १२। श. ४५। अतः आङ्गूष्यका अर्थ हुआ स्तुति समूहवाला या आघोषवाला यानि जो जोर जोरसे बोलागया है ऐसा। अतएव आङ्गूष्य सामका अर्थ हुआ कि जो साम-स्तुति पूर्ण मंत्रोंसे युक्त है अथवा जो साम जोर जोर से गाया गया है। क्योंकि सामसे दुःख दूर होते हैं अतः इस कानाम साम है। स्यन्ति खण्डयन्ति दुःखानि येन तत् साम। पदज्ञ-परम पद (परमात्मा) को जाननेवाला। आत्मज्ञ। आत्मा वै पदं कौ०२।३६।

वः- प्रथमार्थमें द्वितीया का प्रयोग हुआ हुआ है। अथवा इसे षष्ठयन्त भी माना जा सकता है। गाः- सूर्य किरणें।

उपरोक्त मंत्रके भावका ही निम्न लिखित मंत्रभी समर्थन कर रहा है।

य उदाजन् पितरो गोमयं वस्वृतेनाभिन्दन् परिवत्सरे बलम्। दीर्घायुत्वमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ऋ० १०।६२।२

अर्थ — (ये पितरः) जिन अङ्गिरस् पितरोंने (परिवत्सरे) परिवत्सरमें (बलं) मेघको (ऋतेन) यज्ञ वा सत्य द्वारा (अभिन्दन्) विदारण किया और (गोमयं वसु) सूर्य किरण रूपी धनको (उत् आजन्) प्राप्त किया ऐसे हे (सुमेधसः) उत्तम मेधावाले (अङ्गिरसः) अङ्गिरस् पितरो! (वः) तुम्हारी (दीर्घायुत्वं अस्तु) दीर्घायु होवे। (मानवं प्रति गृभ्णीत) तुम मनुष्य जातिपर अनुग्रह करो।

इस मंत्रमें भी पूर्वोक्त मंत्रानुसार अङ्गिरस् पितरों द्वारा मेघ भेदन करके सूर्यकिरणोंकी प्राप्तिका उल्लेख है। साथही ऐसे पितरोंकी दीर्घायुकी प्रार्थना की गई है व उनसे मनुष्य जातिपर कृपा दृष्टि रखनेको कहा गया है।

द्यावा पृथिवी अनु मा दीधीथां विश्वे देवासो अनु मा रभध्वम्। अङ्गिरसः सोम्यासः पापमार्छत्वपकामस्य कर्ता॥ अथर्व० २।१२।५॥

अर्थ-(द्यावा पृथिवी) द्यु और पृथिवी (मा अनु दीधीथां) मेरे अनकूल प्रकाशित होवें। (विश्वे देवासः) हे सब देवो! (मा अनु रभध्वम्) मेरे अनुकूल कार्यका प्रारंभ करो। (अङ्गिरसः

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सोम्यासः पितरः) हे अङ्गिरस् तथा सोम संपादन करनेवाले पितरो ! (अपकामस्य कर्ता) बुरी कामनाओंका करने वाला (पापं आ ऋच्छतु) पापको प्राप्त होवे।

इस मंत्रमें अङ्गिरस् पितरों से प्रार्थना की गई है कि वे पाप कामनाओं के करनेवाले को पाप के कुण्ड में डालदें ता कि आगे से वह पाप कामनायें करना भूल जावे।

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः। तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम॥ ऋ. १० । १४ । ६॥
अथर्व० १८ । १ । ५८॥
यजुः १९ । ५०॥

अर्थ- (नः नवग्वाः अथर्वाणः भृगवः सोम्यासः अङ्गिरसः पितरः) हमारे नवग्व, अथर्वा, भृगु, सोम संपादन करने वाले अङ्गिरस् पितर हैं। (वयं) हम (तेषां) उन उपरोक्त विशेषण विशिष्ट पितरों की (सुमति) उत्तम सलाहमें और (भद्रे) कल्याणकारी (सौमनसे) उत्तम संकल्पमें (स्याम) स्थित होवें।

इस मंत्रमें पितरों की शुभ सला हमें तथा शुभसंकल्प में रहने का निर्देश किया गया है।

नवग्व शब्दपर थोडासा निर्देश हम कर आए हैं। इसपर विशेष विचार अपेक्षित है।

अथर्वाणः— अथर्वाणोऽथनवन्तः, थर्वतिश्चरति कर्मा तत्प्रतिषेधः॥ निरु० ११ । २ । १८॥

अर्थात् अथर्वन् अथर्वण वाले यानि स्थिर-निश्चल प्रकृति वाले होते हैं। चलनार्थक थर्व धातुसे थर्वन् शब्द बनता है। जो निश्चल हो वह अथर्व।

भृगवः-अर्चिषि भृगुः संबभूव। भृगुः भृज्यमानः, न देहे। निरु० ३ । ३॥

अर्थात् भृगु ऋषि ज्वालाओंमें पैदा हुआ था। भृगुका अर्थ है जो आगमें भुना हुआ हो। अतएव इसकी शरीरमें आस्था नहीं होती।

यज्ञिय-यज्ञके योग्य-पूजा, दान सत्कारादिके योग्य। अथवा यज्ञमें बैठाने लायक।

परिशिष्ट।

इस प्रकरण में उन मंत्रों का उल्लेख किया जायगा जो कि अबतक के विभागों में नहीं आ सके हैं। यद्यपि इन मंत्रोंमें पितृ शब्द बहुवचनान्त ही प्रयुक्त हुआ हुआ है तथा ये मंत्र पहिले दिए गए मंत्रों का सा ही महत्व भी रखते हैं परन्तु हमने जो मंत्रों के विभाग बनाए हैं उनमें से किसी में भी ये नहीं आ सके हैं और अत एव ऐसे बचे हुए मंत्रों को इकट्ठा कर उपरोक्त शीर्षक के नाम से यहां पर दिया गया है।

पितरों की उत्पत्ति।

निम्न लिखित मंत्रों में पितरों की उत्पत्ति संबन्धी निर्देश मिलता है।

नवभिरस्तुवत पितरोऽसृज्यन्तादितिरधिपत्न्यासीत्॥ यजुः १४ । २९॥

अर्थ- (नवभिः अस्तुवत) नव प्राणोंसे प्रजापतिने स्तुति की जिससे (पितरः असृज्यन्त) पितर उत्पन्न हुए। (अदितिः अधिपत्नी आसीत्) प्रजापतिकी अखण्डशक्ति पालन करने वाली थी।

इस मंत्रकी व्याख्या श० ८ । ४ । ३ । ७ । में है। शतपथ के अनुसार यह अध्याय सृष्टि उत्पत्तिपर प्रकाश डाल रहा है ऐसा ज्ञात होता है। इस अध्याय की व्याख्या प्रारंभ करते हुए शतपथ ब्राह्मण ने लिखा है कि ' अथ सृष्टीरुपदधाति। एतद्वै प्रजापतिः सर्वाणि भूतानि पाप्मनो मृत्यो र्मुक्त्वा कामयत प्रजाः सृजेय प्रजायेयेति ' " इत्यादि।

' नवभिरस्तुवत ' की शतपथने निम्नलिखित व्याख्या की है- ' नवभि रस्तुवतेति। नव वै प्राणाः

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सप्त शीर्षण्यवाञ्चौ द्वौ तैरेव तदस्तुवत।'

यजुर्वेद पर शतपथ ब्राह्मणभाष्य होते हुए भी यजुर्वेदस्थ बहुत से मंत्रों का भाव स्पष्ट नहीं होता है। तथापि हमने प्रयत्न किया है। पाठक यजुर्वेदस्थ मंत्रोंपर स्वयं अधिक विचार कर उनको हल करने का प्रयत्न करेंगे तो उत्तम होगा।

इस मंत्र से ऐसा प्रतीत होता है कि ऋतु, सूर्य, चन्द्र आदि अन्यों की तरह पितरों की भी खास ढंग से उत्पत्ति होती होगी क्यों कि मनुष्य सामान्य की उत्पत्ति में पितरों की उत्पत्ति का समावेश हो सकता था फिर भी इस मंत्रमें विशिष्ट रूपसे पितरों की उत्पत्तिका उल्लेख किया गया है।

वशामेवामृतमाहुर्वशां मृत्युमुपासते।
वशेदं सर्वमभवद् देवा मनुष्या असुराः
पितर ऋषयः॥ अथर्व० १० । १० ।२६॥

अर्थ- (वशां एव अमृतं आहुः) वशाको ही अमृत कहते हैं और (वशां मृत्युं उपासते) वशा को ही मृत्यु मानते हुए उसकी उपासना करते हैं। (देवाः मनुष्याः असुराः पितरः ऋषयः) देव,मनुष्य असुर, पितर तथा ऋषि गण (इदं सर्वं) यह सब (वशा अभवत्) वशा ही हुई हुई है।

वशा पर विचार करना प्रसंगान्तर हो जाएगा अतः उसपर हम यहां विचार नहीं करेंगे। इस मंत्र से हमारा इतना ही अभिप्राय है कि पितर भी वशा से उत्पन्न होते हैं।

देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिवि श्रितः॥
अथर्व० ११ । ७ । २७॥

अर्थ- (देवाः पितरः मनुष्याः) देव, पितर, मनुष्य (ये च) और जो (गंधर्वाप्सरसः) गन्धर्व तथा अप्सरस् हैं वे तथा (दिविश्रितः) द्यु लोक के आश्रय में स्थित (देवाः) सूर्य चन्द्र आदि देव गण हैं (सर्वे) ये सब (उच्छिष्टात्) उच्छिष्ट से (जज्ञिरे) उत्पन्न हुए हैं।

उच्छिष्ट- यह परमात्मा का नाम है क्यों कि परमात्मा उत् अर्थात् सब को उत्क्रमण करके भी शिष्ट अर्थात् शेष बच रहा है।

यहांपर उच्छिष्टसे पितरों की उत्पत्ति दर्शाई गई है।

इस प्रकार इन मंत्रों में पितरों की उत्पत्ति विषयक वर्णन मिलता है।

दक्षिणा व पितर।

पयमगन् दक्षिणा भद्रतो नो अनेन दत्ता सुदुघा वयोधाः। यौवने जीवानुप पृञ्चती जरा पितृभ्यः उप संपराणयादिमान्॥
अथर्व० १८ । ४ । ५०॥

अर्थ- (सुदुघा) उत्तम तया कामनाओं को पूर्ण करनेवाली (वयोधाः) अन्न को देनेवाली (अनेन दत्ता) इससे दी हुई (इयं दक्षिणा) यह दक्षिणा (भद्रतः नः आ आगन्) कल्याणकारी स्थान से अथवा कल्याणकारी स्वरूपसे हमें प्राप्त हुई है। इससे हमारा अकल्याण नहीं होगा। (यौवने जीवान् उपपञ्चती जरा इव)जिस प्रकार युवावस्थाके चले जानेपर जीवों को वृद्धावस्था अवश्य आती है उस प्रकार यह दक्षिणा(इमान्)इन जीवों को(पितृभ्यः) पितरों के लिए भली प्रकार (उप संपराणयात्) प्राप्त करावे अर्थात् पितरों के पास उत्तम रीति से पहोंचावे।

इस मंत्र में स्पष्ट शब्दों में दक्षिणा का माहात्म्य दर्शाया गया है। दक्षिणा देनेसे पितरों की प्राप्ति होती है। जिस प्रकार युवावस्थाके चले जानेपर वृद्धावस्था अवश्यं भाविनी है उसी प्रकार दक्षिणा देनेवाले की पितरों की प्राप्ति भी अवश्यं भाविनी है ऐसा इस मंत्र में उपमा द्वारा स्पष्ट सूचित किया गया है। पाठक दक्षिणा के इस महत्वपर अवश्यमेव विचार करें।

मरनेपर पितरों में गणना।

पृथिवीं त्वा पृथिव्या मावेशयामि देवो नो धाता प्रतिरात्यायुः। परा परैता वसुविद् वो अस्त्वधा मृताः पितृषु संभवन्तु॥
अथर्व० १८ । ४ । ४८॥

अर्थ- (पिथिवीं त्वां पृथिव्यां आवेशयामि) मिट्टी से बने हुए हे मृतपुरुष तुझको मिट्टी में मिला देता हूं अर्थात् तुझे पृथिवी में गाडता हूं। (धा-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ता देवः नः आयुः प्रतिराति) धारक देव हमारी आयु को बढावे। हे (परापरैताः) प्रकृष्ट तया हम से दूर चले गए पितरो ! (वः) तुम्हारे लिए धाता देव (वसुविद् अस्तु) वास करनेवाला हो-तुम्हारा आश्रय दाता हो। (अध) और (मृताः) मृत (पितृषु संभवन्तु) पितरों में अच्छीतर होवें अर्थात पितरों में जा मिलें।

इस मंत्र के पूर्वार्ध में मृत देह के गाडने का निर्देश मिलता है। यह मानव देह पार्थिव तत्वों के आधिक्य से बना हुआ है अत एव यहांपर मृतदेह को पृथिवी (मिट्टी) के नाम से पुकारा गया है। इसी भावको निम्न लिखित दोहे में कहा गया है--

खाक का पुतला बना खाक की तसबीर है।
खाक में मिल जायगा खाक दामन गीर है॥

मंत्र के उतरार्ध में मृतों के पितरों में होनेका निर्देश है। इसका अभिप्राय यह है कि मरनेपर पितरों में मनुष्य जा मिलता है यानि मरने के बाद से उस की पितृसंज्ञा हो जाती है।

आश्विनौ तथा पितर।

युवं भुज्युं भुरमाणं विभि र्गतं स्वयुक्तिभि र्निवहन्ता पितृभ्यः आ। यासिष्टं वर्ति र्वृषणा विजेन्यन् दिवो दासाय महि चेति वामवः॥
ऋ० १। ११९। ४॥

अर्थ-- (वृषणा) हे कामनाओं की वर्षा करने वाले अश्विनौ ! (युवं) तुम दोनों (भुरमाणं) पुष्टिकारक (भुज्युं) भोगलायक और जोकि (विभिः गतं) घोडों द्वारा लादकर लाया जाता है ऐसे पदार्थ को (स्वयुक्तिभिः) अपनी युक्तियों अर्थात् योजनाओं द्वारा (पितृभ्यः) पितरों के लिए (आ निः वहन्तौ) चारों ओर से लाकर पहुंचाते हो। इसलिए (विजेन्यं वर्तिः) दूरस्थ विद्यमान पदार्थों के लाने के लिए (यासिष्टं) जाओ। (दिवोदासाय) दिवो दासके लिए (वां अवः) तुम्हारा संरक्षण (महि) महान् है यह सब को (चेति) मालूम है।

दिवो दास-- प्रकाशका देनेवाला, चाहे वह ज्ञान प्रकाश हो वा अन्य कोई हो।

इस मंत्रमें पितरों के लिए भोग्य पदार्थ अश्विनौ पहुंचाते हैं ऐसा उल्लेख है।

सरस्वती और पितर।

सरस्वति या सरथं ययाथ स्वधाभि र्देवि पितृभि र्मदन्ती। आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयस्वानमीवा इष आधेह्यस्मे॥ ऋ० १०। १७। ८॥

यह मंत्र थोडेसे पाठ भेदके साथ अथर्व वेदमें इसप्रकार आया है-

सरस्वति या सरथं ययाथोक्थैः स्वधाभि र्देवि पितृभि र्मदन्ती। सहस्रार्घमिळो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानाय धेहि॥ अथर्व० १८। १। ४३॥

अर्थ- (सरस्वति देवि) हे सरस्ती देवी (या) जो तू (पितृभिः स्वधाभिः मदन्ती) पतरोंके साथ मिलकर स्वधाओंसे आनन्दित होती हुई (सरथं) पितरोंके साथ समान रथ पर आरोहण करती हुई (ययाथ) आई है वह अस्मिन् बर्हिषि इस यज्ञमें (आसद्य) बैठकर प्रसन्न हो। (अस्मे) हमें (अनमीवः इषः) रोगरहित अन्नोंको अर्थात् जिनके खाने से किसी भी प्रकारका रोग न होवे ऐसे अन्नोंको (आ धेहि) दे।

अथर्व वेद में जो पाठ भेद है वह विशेषकरके उत्तरार्धमें ही है। उस उत्तरार्धका अर्थ इस प्रकार है हे सरस्वती ! तू (अत्र) इस यज्ञमें (यजमानाय) यजमानके लिए (सहस्रार्घं इडः भागं) हजारोंसे पूजनीय अन्नके भागको और (रायस्पोषं) धनकी पुष्टिको (धेहि) दे।

इस मंत्रमें सरस्वतीका पितरोंके साथ समान रथपर चढना स्वधा खाना व यज्ञमें आना दर्शाया गया है।

सरस्तीं यां पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः। सहस्रार्घमिळो अत्रभागं रायस्पोषं यजमानेषु धेहि॥
ऋ० १०।१७। ९॥

अथर्ववेदमें यह मंत्र थोडसे पाठ भेदके साथ है—

सरस्वतीं पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः। आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वमनमीवा इष आधह्यस्मे॥ अथर्व० १८। १। ४२॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अर्थ- (दक्षिणा) दक्षिण दिशासे आकर (यज्ञं अभिनक्षमाणाः पितरः) यज्ञको सब ओरसे प्राप्त करते हुए पितर (यां सरस्वतीं हवन्ते) जिस सरस्वतीको बुलाते हैं, ऐसी हे सरस्वती ! तू (अत्र) यहां इस यज्ञमें (यजमानेषु) यजमानोंमें (सहस्रार्घं इडः भागं) हजारोंसे पूजनीय अन्नके भागको तथा (रायस्पोषं) धनकी पुष्टिको (धेहि) दे ।

पितरोंकी दक्षिण दिशा है यह हमें अन्य वेद मंत्र दर्शाते हैं अतः हमने ऊपर दक्षिणाके साथ(आगत्य) आकर इतना अध्याहार करके अर्थ किया है। इस मंत्रमें पितर सरस्वती को यज्ञमें बुलाते हैं यह दर्शाया गया है ।

इदं ते हव्यं घृतवत्सरस्वतीदं पितॄणां हविरास्यं यत् । इमानि ते उदिता शंतमानि तेभिर्वयं मधुमन्तः स्याम ॥ अथर्व० ७।६८।२॥

अर्थ- (सरस्वति) हे सरस्वती ! (इदं ते घृतवत् हव्यं) यह तेरे लिए घृतवाला यानि घीसे मिश्रित हव्य है । (यत् इदं हविः पितॄणां आस्यं) जो यह हवि पितरोंके लिए दिया जाने वाला है। (इमानि ते शंतमानि उदितानि) ये तेरे लिए कल्याण कारी वचन हैं । (तेभिः) इन से वयं हम (मधुमन्तः स्याम) मधुयुक्त बनें ।

आस्य-असु क्षेपणेसे बना है। शब्दार्थ फेंका जाने वाला है भावार्थ दिया जाने वाला ॥

इस मंत्रमें पितरों के लिए जो हव्य दिया जाता है वह सरस्वती को भी दिया जाता है यह दर्शाया गया है और साथ ही में सरस्वती को हव्यादि देने का लाभ दर्शाया है ।

इस प्रकार इन उपरोक्त मंत्रों से सरस्वती व पितरों का संबन्ध विशेष है यह हमें यहां स्पष्ट पता चलता है ।

गौ व पितर ।

देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये ।
ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति सातिरात्रमतिद्रव ॥
अथर्व० १० । ९ । ९ ॥

अर्थ (देवाः पितरः मनुष्याः) देव, पितर, मनुष्य (ये च) और जो (गंधर्वाप्सरसः) गन्धर्व तथा अप्सरस् हैं, (ते सर्वे) वे सब (त्वा गोप्स्यन्ति) तुझ गौकी रक्षा करेंगे (सा) वह तू (अतिरात्रं) अतिरात्र नामक यज्ञ को (अतिद्रव) शीघ्रता से प्राप्त कर ।

यहांपर अतिरात्र में आनेवाली गौ की पितर भी रक्षा करते हैं ऐसा दर्शाया है ।

प्रजापतिर्मह्यमेता रराणो विश्वै देवैः पितृभिः संविदानः। शिवाः सतीरुप नो गोष्ठमाकस्तासां वयं प्रजया सं सदेम ॥ ऋ० १०।१६९।४॥

अर्थ- (प्रजापतिः) प्रजापति (विश्वैः देवैः पितृभिः संविदानः) सब देवों व पितरोंके साथ मिला हुआ एक मतसे (मह्यं) मेरेलिए (एताः) ये गायें (रराणः) देता है । वह प्रजापति (शिवा सतीः) कल्याण कारिणी होती हुई उन गौओं को (नः) हमारे (उपगोष्ठं आ अकः) गोष्ठ के समीप करे अर्थात् हमारे गोष्ठमें वे गौयें स्थित होवें । और इस प्रकार उन गौओं के प्राप्त करनेपर (वयं) हम (तासां प्रजया सं सदेम) उन गौओं की संतान से संगत होवें अर्थात् उन गौओं की संतान हमें प्राप्त होती रहे ताकि ऐसी गौओं का वंशोच्छेद न हो जावे ।

गोष्ठ- जहांपर गौयें बांधी जाती हैं उसस्थानको गोष्ठ कहा जाता है ।

इस मंत्र में उत्तम गौयें पितरों की सहमति से हमें मिलती हैं यह दर्शाया गया है ।

इन्द्र व पितर ।

स तु श्रुधीन्द्र नूतनस्य ब्रह्मण्यतो वीर कारुधायः । त्वं ह्यापिः प्रदिवि पितॄणां शश्वद् बभूथ सुहव एष्टौ ॥ ऋ० ६।२१।८ ॥

अर्थ- हे वीर इन्द्र ! (सः) वह (कारुधायः) स्तोताओं शिल्पियों वा का धारक तू (नूतनस्य ब्रह्मण्यतः) नवीन धनको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले की अथवा नवीन स्तोत्रकरनेकी इच्छा वाले की (श्रुधि) प्रार्थनाको सुन। (हि)क्योंकि(आ इष्टौ) आयजन करने पर अथवा कामनाके होनेपर (सुहवः) सुखसे बुलाने योग्य तू (त्वं) तू (पितॄणां प्रदिवि) पितरोंके प्रकृष्ट व्यवहारमें (शश्वत्)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सदा (आपिः) बन्धु प्राप्त रहनेवाला (बभूथ) होता है।

इस मंत्रमें इन्द्र को पितरों का बन्धु कहा गया है। क्यों कि वह पितरों को उनके कार्योंमें बन्धुवत् सहायता करता है।

जुष्टी नरो ब्रह्मणा वः पितृणामक्षमव्ययं न किलारिषाथ। यच्छक्वरीषु बृहता रवेणेन्द्रे शुष्ममदधाता वसिष्ठाः॥ ऋ० ८।३३।४॥

अर्थ- (वसिष्ठाः) हे उत्तम वास कराने वालो ! (यत्) क्योंकि तुम (शक्वरीषु) ऋचाओं में अर्थात् ऋचाओं के गान में (बृहता रवेण) बडे भारी शब्द से यानि ऋचाओं के ऊंचे स्वरमें गानेसे (इन्द्रे शुष्मं) इन्द्रमें बलको (अदधात) स्थापित करते हो अतः हे (नरः) नेतागणो ! (जुष्टी) प्रसन्नता वा सेवासे और (ब्रह्मणा) ज्ञान से तुम (वः पितृणां) तुम्हारे पितरोंका (अव्ययं अक्षं) न नष्ट होनेवाले अक्षको (किल) निश्चय से (न रिषाथ) नष्ट होने नहीं देते। इस मंत्र में सैनिकों के लिए पितर आया है ऐसा प्रतीत होता है। यह मंत्र पूर्ण रूपसे स्पष्ट नहीं हुआ है। (अपूर्ण)

कल्याण का भगवद्गीताङ्क ।

(संपादकीय समालोचना।)

गोरख पुरसे प्रकाशित होते हुए 'कल्याण' नामक मासिक पत्रका भगवद्गीताङ्क' नामक विशेषाङ्क हमारे सामने अभिप्रायार्थ मौजूद है। ५०० से भी अधिक पृष्ठों के इस विशाल अङ्क की छपाई व कागज बढिया हैं। इसमें रंगीन व सादे चित्र कुल मिलाकर १६५ के करीब हैं चित्र में प्रायः सभी चित्र उत्तम हैं। लेखों का संग्रह उत्तम रीति से किया गया है। प्रायः सभी अनुभवी विद्वानों के महत्वपूर्ण लेख उनके चित्रों सहित दिए गए हैं। ये लेख पठनीय एवं मननीय हैं। गीता विषयक सभी मतमतान्तरों के लेख व विचार भी इस में हमें देखने को मिलते हैं। कथन का अभिप्राय यह है कि गीता सम्बन्धी सर्वप्रकार की सामग्री इसमें मौजूद है। गीता विषयक इतनी सामग्री अन्यत्र एक स्थानपर मिलनी नितान्त दुष्कर है। इस अंक का प्रकाशन करके वस्ततः कल्याण के संचालकों ने गीता संबन्धी साहित्य की अमूल्य सेवा बजाई है। इस अंकपर कितना परिश्रम पडा होगा यह पाठक स्वयमेव अनुमान कर सकते हैं। इतना सब होते हुए भी इसकी किंमत सिर्फ २॥) है। इतनी किंमत में तो केवल गीताङ्क में विद्यमान चित्र भी नहीं मिल सकते ! इस अंक के प्रकाशन के लिए इस के संचालकों को हम बधाई देते हैं। अंत में हम देश के शिक्षा विभागों के तथा जनता के पुस्तकालयों से साग्रह निवेदन करते हैं कि वे इस अंक की एक एक प्रति अवश्यमेव मंगाकर अपने पुस्तकालयको सुशोभित करें। ऐसा सुवर्णीय अवसर हाथ से गंवाना बुद्धिमानी न होगी।

इसके मिलने का पता निम्नलिखित है:-

प्रकाशक-घनश्यामदास
गीताप्रेस-गोरखपुर ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

आ त्वा॑ चृतत्व॒र्य॒मा पू॒षा बृ॒ह॒स्पति॑ः ।
अह॑र्जातस्य॒ यन्नाम॒ तेन॒ त्वाति॑ चृतामसि ॥ १२ ॥

ऋ॒तुभि॑ष्ट्वार्त॒वैरायु॑षे॒ वर्च॑से त्वा ।
सं॒व॒त्स॒रस्य॒ तेज॑सा॒ तेन॒ संह॑नु कृण्मसि ॥ १३ ॥

घृ॒ताद्दुल्लु॑प्तं॒ मधु॑ना॒ सम॑क्तं भूमि॒दृंहमच्यु॑तं पारयि॒ष्णु ।
भि॒न्दत् स॒पत्ना॒नध॑रांश्च कृ॒ण्वदा मा॑ रोह म॒ह॒ते सौभ॑गाय ॥ १४ ॥

अर्थ- अर्यमा, पूषा, बृहस्पति (त्वा आ चृततु) तुझे बांधे । (अहः-जातस्य यत् नाम) प्रतिदिन उत्पन्न होनेवाले का जो नाम है (तेन त्वा अति चृतामसि) उससे तुझको अत्यन्त बांधते हैं ॥ १२ ॥

(आयुषे वर्चसे) आयुष्य और तेजके लिये (ऋतुभिः आर्तवैः) ऋतुओं और ऋतुविभागोंसे और (संवत्सरस्य तेन तेजसा) संवत्सरके उस तेज-से (सं-हनु कृण्मसि) संयुक्त करता हूं ॥ १३ ॥

(घृतात् उल्लुप्तं)घीसे भरा हुआ, (मधुना समक्तं) मधुसे सींचा हुआ (भूमिदृंहं अच्युतं पारयिष्णु) भूमीके समान स्थिर और पार ले जाने वाला (सपत्नान् भिन्दत्) वैरियोंको छिन्न भिन्न करनेवाला और उनको (अधरान् कृण्वत् च) नीचे करनेवाला तू (महते सौभगाय मा आरोह) बडे सौभाग्यके लिये मेरे ऊपर आरोहण कर ॥ १४ ॥

भावार्थ-अर्यमा, पूषा, बृहस्पति और दिनमें प्रकाशने वाला सूर्य ये सब देव यज्ञोपवीत धारण करनेके लिये तुझे अनुमति देवें ॥ १२ ॥

संवत्सर, ऋतु और अन्य कालविभागोंके तेजसे तुझे संयुक्त करके तुझे दीर्घ आयु और उत्तम तेज देते हैं ॥ १३ ॥

यह घृतादि पौष्टिक पदार्थोंसे युक्त, मधु आदि मधुर पदार्थोंसे परिपूर्ण, भूमिके समान सुदृढ, न गिरानेवाला और सब दुःखोंसे पार करनेवाला है । यह शत्रुओंको छिन्नभिन्न करता और उनको नीचे करता है । यह उपवीत बडा सौभाग्य मुझे देकर मेरे ऊपर रहे ॥ १४ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यज्ञोपवीत का धारण।

इस सूक्तमें यज्ञोपवीत का महत्त्व वर्णन किया है। यज्ञोपवीतके वर्णनके विषयमें अत्यंत थोडेसे मंत्रभाग वेदमें हैं। परंतु यह संपूर्ण सूक्तका सूक्त दीर्घ आयु और तेजस्विताका उपदेश करते करते यज्ञोपवीतके महत्त्वका वर्णन कर रहा है इसलिये इस सूक्तका महत्त्व विशेष है। इस सूक्तका पठन करके पाठक यज्ञोपवीतका महत्त्व जानें और यज्ञोपवीत धारण करते समय मनमें समझें की मैं इतने महत्त्वका यह यज्ञसूत्र धारण कर रहा हूं।

तीन धागे।

सब जानते हैं कि यज्ञोपवीतमें तीन सूत्र होते हैं और प्रत्येक सूत्रमें फिर तीन तीन धागे होते हैं, अर्थात् सब मिलकर नव सूत्र होगये। ये तीन धागे इस प्रकार बनें—

हरिते त्रीणि, रजते त्रीणि, अयसि त्रीणि। (मं० १)

' सुवर्णके तीन, चांदीके तीन और लोहेके तीन ' अर्थात् प्रत्येक सूत्रके अंदर सोना, चांदी और लोहेकी तारें हों। इस प्रकार तीन धातुओंसे बना हुआ यह यज्ञोपवीत होना चाहिये। ' अयस् ' शब्दका प्रसिद्ध अर्थ ' लोहा ' है, परंतु इसका दूसरा अर्थ ' केवल धातुमात्र ' ऐसा भी है। अर्थात् तांबा भी इसका अर्थ हो सकता है।

सुवर्णका यज्ञोपवीत।

यह यज्ञोपवीत सोना, चांदी और तांबेका बने अथवा सोना, चांदी और लोहेका बने, इस विषयमें अधिक खोज करना चाहिये। ये तीनों धातु इस प्रकार शरीरपर धारण करनेसे शरीरमें कुछ मंदसा विद्युत्प्रवाह शुरू होता है, जिससे शरीरस्वास्थ, बल और दीर्घायु प्राप्त होना संभव है। ये तीनों धातुओंकी तारें (तपसा आविष्ठितानि) उष्णतासे परस्पर जोडी हुई हों अर्थात् एक दूसरेके साथ जुडी हुई अवस्थामें रहें, तभी ये तारें कार्य करती होंगी। जिस प्रकार—

इन्द्रिय और प्राण।

शतशारदाय दीर्घायुत्वाय नव प्राणान् नवभिः संमिमीते। (मं० १)

" सौ वर्षकी दीर्घायुके लिये जिस प्रकार नव प्राणोंको नव इंद्रियोंमें मिलाना चाहिये" अर्थात् दीर्घायु प्राप्त करना हो तो प्राणोंका शरीरसे, इंद्रियोंसे और अवयवोंसे वियोग शीघ्र न हो सके ऐसा प्रबंध करना चाहिये। अर्थात् प्राणको अपने शरीरके सब अवयवोंमें कार्य

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

करने योग्य बनाना चाहिये। यह बात प्राणायामसे उत्पन्न होनेवाली अग्निसे होती है। जो प्राणायामसे अपना बल नहीं बढाते उनकी किसी अवयवमें प्राण शक्ति नहीं कार्य करती। ऐसा होनेसे वह अवयव अपना कार्य करनेमें असमर्थ होता है। कई मनुष्योंके कई अवयव कमजोर होते हैं, इसका कारण यही है। यही कमजोरी आयुको क्षीण करती है।

इसी प्रकार तीन धातुओंके ये नव धागे उष्णतासे इकट्ठे हुए शरीरका आरोग्य, बल और दीर्घ आयु बढाते हुए शरीरमें उत्साह कायम रखते हैं। इस यज्ञोपवीतके नव धागोंमें निम्न लिखित नव देवतायें रहती हैं—

अग्निः सूर्यश्चन्द्रमा भूमिरापो द्यौरन्तरिक्षं प्रदिशो दिशश्च ॥
आर्तवा ऋतुभिः संविदाना अनेन मा त्रिवृता पारयन्तु ॥ (मं० २)

" भूमि-अग्नि-आपः, अन्तरिक्ष-चन्द्रमा-दिशा; और द्यौः-सूर्य-ऋतु ये नव देवताएं इस तिहरे यज्ञोपवीतमें रहकर मुझे दुःखोंसे पार करें। "

पृथ्वीस्थानीय तीन देव, अन्तरिक्ष स्थानीय तीन देव और द्युस्थानीय तीन देव, ये सब नव देव यज्ञोपवीतके नव धागोंमें रहकर मुझे दुःखोंसे पार करें। यह इच्छा इस मंत्रमें प्रकट हुई है। यज्ञोपवीत धारण करनेका आशय इतने देवताओंका तेज और वीर्य अपने अंदर धारण करना तथा इनके विषयमें अपने कर्तव्य करना है। यज्ञोपवीत केवल भूषणके लिये नहीं धारण किया जाता है; यह तो बडी भारी जिम्मेवारीका कार्य है। तीन लोकों और उनमें स्थित सब दैवी शक्तियोंके साथ अपना संबंध व्यक्त करनेके लिये यह त्रिवृत्त सूत्र धारण किया जाता है। इस संबंधसे अपना उनके विषयक कर्तव्य जानना और उनसे दिव्य तेज प्राप्त करना चाहिये। जो यह न करेगा, उसके लिये यज्ञोपवीत यज्ञोपवीत नहीं रहता। यज्ञोपवीत धारण करनेवालोंको इस मंत्रका उपदेश अपने मनमें अवश्य धारण करने योग्य है। इस यज्ञोपवीतमें तीन प्रकारकी पोषण शक्तियां हैं, इस विषयमें निम्न लिखित मंत्र देखिये—

त्रयः पोषास्त्रिवृति श्रयन्ताम् ।
अन्नस्य भूमा। पुरुषस्य भूमा। पशूनां भूमा। (मं० ३)

" तीन पुष्टियां इस तिहरे यज्ञोपवीतके आश्रयसे रहें। अन्नकी विपुलता, अनुयायी मनुष्योंकी विपुलता, और पशुओंकी विपुलता, " ये तीनों विपुलतायें इस यज्ञोपवीतके आश्रयसे रहें।

यज्ञोपवीत धारण करनेवाले यज्ञ करते हैं, उस यज्ञमें बहुत मनुष्य संमिलित होते हैं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

और संगठन होकर मनुष्योंकी संघ शक्ति बढती है, यज्ञके कारण पर्जन्यादि ठीक रीतिसे होते हैं इस कारण विपुल अन्न प्राप्त होता है, और यज्ञमें दूध और घीके हवनके लिये गौ आदि बहुत पशु लाये जाते हैं, पशुओंकी शक्तियां बढाई जाती हैं, इस कारण पशुओंकी भी उन्नति होती है। ये तीनों लाभ यज्ञसे होते हैं और यज्ञका अधिकार इस यज्ञोपवीतसे प्राप्त होता है, इस लिये यज्ञोपवीतसे उक्त लाभ होते हैं ऐसा इस मंत्रमें कहा है।

चतुर्थ मंत्रमें कहा है कि 'आदित्यसे शक्ति, अग्निसे वृद्धि और इन्द्रसे वीर्य प्राप्त हो' और इस त्रिवृत् सूत्रसे हमारा उत्तम प्रकार पोषण होवे। इस यज्ञोपवीतके एक एक धागेमें एक एक देवताकी शक्ति विद्यमान है, इस लिये जो मनुष्य इस भावनासे यज्ञोपवीतका धारण करता है उसको बहुत लाभ हो सकता है। इस विषयमें निम्न लिखित मंत्र देखिये—

भूमिः हरितेन पातु।
अग्निः अयसा पिपर्तु।
अर्जुनं वीरुद्भिः दक्षं दधातु॥ (मं० ५)

"भूमि सुवर्णके धागेसे रक्षा करे, लोहे या तांबेके धागेसे अग्नि पूर्णता करे, तथा चांदीके धागेसे औषधियोंकी सहायतासे बल धारण होवे।" इस प्रकार ये तीन देव यज्ञोपवीतके तीन धागोंमें रहकर मनुष्यकी उन्नति करते हैं। अर्थात् यज्ञोपवीत केवल सूत्रकाही बना नहीं है, प्रत्युत वह इन देवताओंकी शक्तियोंसे बना है, यह भाव यहां देखने योग्य है। जो यज्ञोपवीतको केवल धागाही समझते हैं वे उसके महत्त्वको नहीं जानते। जो सुवर्ण, चांदी और तांबेसे अथवा लोहेसे बने हुए आभूषण रूप यज्ञोपवीतको धारण करेंगे उनको तो निःसन्देह विद्युत्संचार शरीरमें होनेके कारण बडा लाभ होगा ही, परंतु जो सुवर्ण यज्ञोपवीत धारण करनेमें असमर्थ हों, वे सूत्रका यज्ञोपवीत भी धारण करें, परंतु वह धारण करनेके समय इस भावनासे धारण करें, जिससे इसके मनोबल द्वारा आकर्षित हुई उक्त देवताएं इसकी अवश्य सहायता करेंगी।

षष्ठ मंत्रमें सुवर्णके तीन भेद कहे हैं, एक सुवर्ण अर्थात् सोना, दूसरा सोमादि औषधीका रस और तीसरा वीर्य जो शरीरमें होता है। यज्ञोपवीत धारियोंको उचित है कि वे इन तीनों सुवर्णोंका उपार्जन करें। ब्रह्मचर्य पालन द्वारा वीर्य स्थिर करें, शरीरमें वीर्य बढावें और ऊर्ध्वरेता बनें। शरीरपोषण के लिये सोमादि औषधियोंका रस, कंदमूल फल का ही सेवन करें और उसके साथ दूध घृत आदि हविष्य पदार्थोंका ही सेवनकरें,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अर्थात् मद्यमांसादिका सेवन न करें। और तीसरा सोना अर्थात धन आदि प्राप्त करें। ये तीनों पदार्थ इस मंत्रमें उपलक्षण रूप हैं और इनसे 'वीर्य, अन्न और धन' का बोध मुख्यतया होता है। यज्ञोपवीत धारण करने वालोंको उचित है कि वे इन तीनोंका उचित प्रमाणसे उपार्जन करें। यज्ञोपवीत धारण करनेवालोंके ऊपर इतने कार्यका भार रखता है।

मनुष्यमें बाल, तरुण और वृद्ध ये तीन अवस्थाएं हैं, यज्ञोपवीतके तीन धागोंसे इन तीन अवस्थाओंका बोध होता है। इन तीन अवस्थाओंमें ब्रह्मचर्य पालन पूर्वक धर्मानुष्ठान करनेसे यज्ञोपवीत धारण करनेका सार्थक होता है। यह बात सप्तम मंत्रके 'त्र्यायुषं,' 'त्रीणि आयूंषि ते अकरं।' (मं० ७) इन शब्दोंसे व्यक्त होती है। बाल्य, तारुण्य और वार्धक्य ये तीन आयुकी अवस्थाएं तीन आयु नामसे इस मंत्रमें कही हैं। जिस प्रकार सारे यज्ञोपवीतमें एकही धागा तीनों सूत्रोंमें परिणत हुआ है, उसी प्रकार मनुष्यके धर्माचरण का एकही धागा पूर्वोक्त तीनों आयुओंमें आयुरूप हो जाना चाहिये।

ओंकार की तीन शक्तियां।

एकही 'ओं' रूपी अक्षरमें 'अ-उ-म्' ये तीन महाशक्तियां रहती हैं, 'त्रयः...एकाक्षरं...आयन्' (मं० ८) तीन शक्तियां एकही अक्षरमें बसतीं हैं। ये तीनों शक्तियां मृत्युको दूर करती हैं और अनिष्ट दुःखादिकोंको हटातीं हैं। ओंकारनामक एकही अक्षरमें अकार-उकार-मकार नामक तीन शक्तियां हैं। ये तीन अक्षर यज्ञोपवीतके तीन सूत्र समझिये। जिस प्रकार इन तीनों अक्षरोंके एकरूप संयोगसे ओंकार रूप महानाद उत्पन्न होता है; उसी प्रकार तीनों सूत्रोंसे मिलकर एक यज्ञोपवीत होता है। इसलिये यह यज्ञोपवीत पूर्वोक्त तीनों महाशक्तियोंका बोध करता है। अ-उ-म इन तीन अक्षरोंसे क्रमशः 'जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति' ये तीनों अवस्थाएं बोधित होती हैं। मनुष्यका संपूर्ण जीवन इन तीन अवस्थाओंमें व्याप्त है, मानो मनुष्यका जीवन रूपी जो एक महायज्ञोपवीत है उसके तीन धागे जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति ये ही तीन हैं। इनको यज्ञरूप बनानेका कार्य यज्ञोपवीत धारण करनेवालोंको अवश्यमेव करना चाहिये। अ-उ-म के अनेक अर्थ हैं, उनका विचार यहां पाठक करेंगे तो उनको पता लग जायगा कि इस यज्ञोपवीत द्वारा कितने शुभ कर्मोंको करनेका भार यज्ञोपवीत धारियोंपर रखा गया है। विस्तार होनेके भयसे हम इन अक्षरोंके तत्त्वज्ञानका विचार यहां करके

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

लेख का विस्तार बढाना नहीं चाहते । ओंकार के ऊपर बहुतसे ग्रंथ निर्माण हुए हैं, यदि पाठक उनके आशयको यहां विचारार्थ ध्यानमें लायेंगे तो उनको पता लग जायगा कि इस मंत्रने कितना महत्त्व पूर्ण उपदेश किया है ।

देवोंके नगर ।

हरितं दिवः पातु । अर्जुनं मध्यात् पातु ।
अयस्मयं भूम्याः पातु ॥ (मं० ९)

" सुवर्णका द्युलोकसे, चांदीका मध्य भागसे और लोहेका भूमि स्थानसे रक्षा करे । " इस मंत्रमें शरीरके तीनों भागोंका रक्षण करनेका कार्य तीन धातुओंसे निर्मित तीन धागे करें ऐसा कहा है । शरीरमें द्युलोक सिरमें, मध्यभाग अथवा अन्तरिक्ष लोक नाभीमें और भूलोक पांवमें है । इसलिये सिरपर सुवर्ण, मध्यभागमें चांदी और पांवमें लोहा रखनेके समान यह एकही (त्रिवृत्) तिहरा यज्ञोपवीत धारण करनेवालेकी रक्षा करे । ' अयस् ' शब्दका अर्थ यद्यपि यहां हमने लोहा ऐसा किया है तथापि सुवर्ण और चांदीसे कुछ भिन्न अन्य धातु ऐसा लेनेसे किसी अन्य धातुका बोधक यह शब्द हो सकता है । यह कौनसी धातु है इस विषयमें खोज करना आवश्यक है । लोहा, तांबा या कुछ अन्य धातु यहां अपेक्षित है जिसके आभूषण बन सकते हैं ।

तिस्रः देवपुराः त्वा सर्वतः रक्षन्तु ।
त्वं ताः बिभ्रत् वर्चस्वी द्विषतां उत्तरः भव ॥ (मं० १०)

" यज्ञोपवीतके ये तीन धागे (देव-पुराः) देवोंके, मानो, नगर ही हैं, इनमें दैवी शक्ति भरी है, इसलिये ये सब प्रकार तेरी रक्षा करें । तू उन तीनोंको धारण करके (वर्चस्वी) तेजस्वी बन और शत्रुओंकी अपेक्षा अधिक ऊंचे स्थानपर आरूढ हो । "

यज्ञोपवीतके तीन धागे ये केवल धागे नहीं हैं, ये देवोंके नगर ही हैं, अर्थात् इनमें अनंत दैवी शक्तियां भरी हैं । जो इस श्रद्धासे इस त्रिवृत यज्ञोपवीतको धारण करेगा वह तेजस्वी होगा और उसके तेजके प्रभावके कारण उसके सब शत्रु नीचे हो जांयगे ।

यह देवोंकी शक्तियोंसे परिपूर्ण त्रिवृत् यज्ञोपवीत जो मनुष्य अपने शरीरपर धारण करता है, (यः देवानां अमृतं आबेधे) जो इस देवोंके अमृतको अपने शरीर धारण करता है (तस्मै नमः कृणोमि । मं० ११) उसको नमस्कार करता हूं । अर्थात् जो यज्ञोपवीत धारण करते हैं वे नमस्कार करने योग्य हैं । यह सूत्र धारण करनेसे देवत्व प्राप्त होता है । इतने महत्त्व का यह यज्ञोपवीत होनेके कारण इसके धारण करनेका अधिकार तब प्राप्त हो सकता है, जब कि श्रेष्ठ लोग धारण करनेकी अनुमति देवें—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

त्रिवृत् मे आबेधे । अनुमन्यताम् । (मं० ११)

" यह (त्रिवृत्) तिहरा यज्ञोपवीत अपने शरीरपर मैं बांधता हूं अथवा धारण करता हूं, इस लिये मुझे अनुमोदन दीजिये । " आप जैसे श्रेष्ठ लोगों की अनुमती हुई तो ही मैं धारण कर सकता हूं, इस लिये आप अनुमोदन देकर मुझे कृतार्थ कीजिये । इस प्रकार की प्रार्थना पहिले की जाय, तत्पश्चात् महाजनोंकी आज्ञा मिलनेके नन्तर ही वह मनुष्य यज्ञोपवीत अपने शरीरपर धारण करे । जिसके मनमें आवे वह मनुष्य एकदम इस यज्ञोपवीत को धारण नहीं कर सकता, महाजन, महात्मा श्रेष्ठ लोग जिसको आज्ञा देवें, अर्थात् पूर्वोक्त मंत्रों द्वारा सूचित हुए कर्तव्य करनेमें जो पुरुष समर्थ हो उसीको वे आज्ञा देवें, और वही पुरुष यज्ञोपवीत धारण करे । ऐसा करनेसे यज्ञोपवीतका महत्त्व स्थिर रह सकता है । विना योग्यताके यदि मनुष्य धारण करेगा, तो उसका वह केवल सूत्र ही होगा, परंतु पूर्वोक्त प्रकार जिसने अपना जीवन यज्ञमय बनाया है, उसके शरीर पर धारण किया हुआ यह यज्ञोपवीत देवोंके नगरोंके समान अनंत दिव्य शक्तियोंसे युक्त हो जाता है । यज्ञोपवीतको केवल सूतका धागा बनाना, अथवा उसको दिव्य शक्तियोंका केन्द्र बनाना, इस प्रकार मनुष्य समाजके आधीन है ।

न्याय, पुष्टि और ज्ञान ।

इस त्रिवृत यज्ञोपवीतके तीन सूत्र ' अर्यमा, पूषा और बृहस्पति ' (मं० १२) इन तीन देवताओंके साथ संबंध रखते हैं । ' अर्यमा ' = (अर्यं मिमीते) श्रेष्ठ कौन है और हीन कौन है इसका निश्चय जो करता है, उसको अर्यमा कहते हैं । पुष्टि करनेवालेका नाम ' पूषा ' होता है, और ज्ञानीका नाम ' बृहस्पति ' है । अर्थात् इन तीन धागोंसे ज्ञान, पोषण और न्यायकारिता इन तीन दैवी गुणोंकी सूचना मिलती है । जो यज्ञोपवीत धारण करना चाहते हैं, वे मानो, इन तीन गुणोंको अपने जीवन में डालनेके उत्तरदाता हैं । देखिये यज्ञोपवीतने कितनी बडी भारी कर्तव्य दक्षता मनुष्य पर रखी है । जो ये कर्तव्य पालन करेंगे वेही यज्ञोपवीत धारणके अधिकारी होते हैं ।

जिस प्रकार एक वर्षमें छः ऋतु होते हैं, उसी प्रकार मनुष्यकी संपूर्ण आयुमें छः ऋतु होते हैं । मनुष्यकी आयु १२० वर्षोंकी मानी है उसमें प्रायः वीस वीस वर्षोंका एक एक ऋतु होता है । आयु कम माननेपर कम वर्षोंका भी ऋतु हो सकता है । इन ऋतुओं द्वारा आयु, बल और तेजकी प्राप्ति करनेके कर्तव्य यज्ञोपवीत द्वारा सूचित होते हैं, यह कथन तेरहवे मंत्रका है ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

मनुष्यकी आयुमें जो छः ऋतु होते हैं, उन सब ऋतुओंमें अर्थात् मनुष्य अपनी आयुभरमें ऐसा यत्न करे कि जिससे उसको तेज और बल प्राप्त होकर दीर्घजीवन भी प्राप्त हो। ब्रह्मचर्यादि सुनियम पालन करनेद्वारा यह सब हो सकता है। इसलिये इस मंत्र द्वारा ये तीन गुण अपनेमें बढानेकी सूचना मिली है। यज्ञोपवीतके तीन सूत्र तेज, बल और दीर्घ आयु प्राप्त करनेकी सूचना देते हैं, यह बात तेरहवें मंत्रसे मिलती है। पाठक यह उपदेश ठीक प्रकार ध्यानमें रखें और उचित अनुष्ठान करके लाभ उठावें।

अन्तिम चौदहवे मंत्रमें इस त्रिवृत् यज्ञोपवीतके कौनसे विशेष गुण हैं, इसके धारण करनेसे कौनसे लाभ हो सकते हैं इसका वर्णन किया है। वे गुण बोधक शब्द विशेष मनन करने योग्य हैं—

यज्ञोपवीतसे लाभ।

१ पारयिष्णु=दुःखोंसे पार करनेवाला, कष्टोंसे बचानेवाला,

२ अ-च्युतं=न गिरनेवाला अथवा न गिरानेवाला, इसके पहननेसे मनुष्य गिरावटसे बच सकता है,

३ भूमि-दृंहं=मातृभूमिको बलवान बनानेवाला,

४ सपत्नान् भिन्दत्=शत्रुओंका नाश करनेवाला,

५ अधरान् कृण्वत्=वैरियोंको नीचे करनेवाला, दुष्टोंको हीनबल करनेवाला,

६ मधुना समक्तं=सब मधुरतासे युक्त, मधुरताको देनेवाला,

७ घृतात् उल्लुप्तं=घृत आदि पुष्टिकारक पदार्थ देनेवाला और पोषण करनेवाला,

इस प्रकारका सामर्थ्यशाली यह यज्ञोपवीत है इसलिये हे यज्ञोपवीत! तू—

८ महते सौभगाय मा आरोह=बडे सौभाग्यके लिये मेरे शरीरपर आरोहण कर, अर्थात् मेरे शरीर पर चढ कर विराजमान हो।

हर एक द्विजको उचित है कि वह इस प्रकारकी भावनासे और पूज्य भावसे यज्ञोपवीत पहने और अपने कर्तव्यकर्म करके अपनी उन्नतिका साधन करे।

यज्ञोपवीतकी यह महिमा है। पाठक इसका विचार करें और इस यज्ञोपवीत धारण से अपना भाग्य बढावें। यज्ञोपवीत की महिमा बढे और यज्ञोपवीत धारण करनेवालोंसे सब जगत्का कल्याण होवे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

रोग-क्रिमि-निवारण ।

[२९]

(ऋषिः- चातनः । देवता—जातवेदाः, मन्त्रोक्ताः ।)

पुरस्तांद् युक्तो वंह जातवेदोऽग्ने विद्धि क्रियमाणं यथेदम् ।
त्वं भिषग् भेषजस्यांसि कर्ता त्वया गामश्वं पुरुषं सनेम ॥ १ ॥
तथा तदंग्ने कृणु जातवेदो विश्वेभिर्देवैः सह संविदानः ।
यो नो दिदेवं यतमो जघास यथा सो अस्य परिधिष्पताति ॥ २ ॥
यथा सो अस्य परिधिष्पताति तथा तदंग्ने कृणु जातवेदः । विश्वेभिर्देवैः सह संविदानः ॥३॥

अर्थ— हे जातवेद अग्ने! (त्वं भिषक्) तू वैद्य और (भेषजस्य कर्ता आसि) औषध का करनेवाला है । (पुरस्तात् युक्तः वह) पहिलेसे सब कार्योंमें नियुक्त होकर कार्यके भारको उठा । (यथा इदं क्रियमाणं विद्धि) जैसा यह कार्य किया जा रहा है उसको तू जान । (त्वया गां अश्वं पुरुषं सनेम) तेरी सहायतासे गौ, घोडे और मनुष्योंको उत्तम प्रकार नीरोग अवस्थामें हम प्राप्त करेंगे ॥ १ ॥

हे जातवेद अग्ने ! (विश्वेभिः देवैः सह संविदानः) सब देवोंके साथ मिलता हुआ (तथा तत् कुरु) वैसा प्रबंध कर कि (यथा अस्य सः परिधिः पताति) जिससे इस रोगकी वह मर्यादा गिर जावे, (यः नः दिदेव) जो हमें पीडा देता है और (यतमः जघास) जो हमें खा जाता है ॥ २ ॥

हे जातवेद अग्ने ! (विश्वेभिः देवैः सह संविदानः) सब देवोंके साथ मिलता हुआ तू (तथा कुरु) वैसा आचरण कर कि (यथा अस्य सः परिधिः पताति) जिससे इस रोगकी वह सब सीमा नष्ट हो जावे ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे तेजस्वी वैद्य! तू स्वयं वैद्य है और औषध बनानेमें प्रवीण है । रोगनिवारणके उपाय जो यहां किये जाते हैं वे ठीक हैं वा नहीं, इसका निरीक्षण कर। तेरी चिकित्सासे हम गौवें, घोडे और मनुष्योंको उत्तम नीरोग अवस्थामें प्राप्त कर सकेंगे ॥१॥ तूं जल, औषधि, वायु आदि देवताओंको अनुकूल बनाकर ऐसा प्रबंध कर कि जिससे पीडा देनेवाले और मांस को क्षीण करनेवाले रोगजन्तुओंकी शरीरमें बनी मर्यादा नष्ट हो जावे ॥२-३॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अक्ष्यौ३नि विंध्य हृदयं नि विंध्य जिह्वां नि तृन्धि प्र दतो मृणीहि।
पिशाचो अस्य यतमो जघासाग्ने यविष्ठ प्रति तं शृणीहि ॥ ४ ॥
तदस्य हृतं विहृतं यत् पराभृतमात्मनो जग्धं यतमत् पिशाचैः।
तदग्ने विद्वान् पुनरा भर त्वं शरीरे मांसमसुमेरयामः ॥ ५ ॥
आमे सुपक्के शबले विपक्के यो मा पिशाचो अशने ददम्भ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो३यमस्तु ॥ ६ ॥

अर्थ-हे अग्ने! (अस्य अक्ष्यौ निविध्य) इसके आंखोंको छेद डाल, (हृदयं निविध्य) हृदयको वेध डाल, (जिह्वां नितृन्धि) जिह्वाको काट दे, (दतः प्र मृणीहि) दांतोंको भी तोड डाल। हे (यविष्ठ) बलवाले! (अस्य यतमः पिशाचः जघास) इसको जिस रक्तभक्षकने खाया है (तं प्रतिशृणीहि) उसका नाश कर ॥ ४ ॥

हे विद्वन् अग्ने! (पिशाचैः अस्य आत्मनः) मांस भक्षकोंने इसके अपने शरीरका (यत् हृतं, विहृतं, यत् पराभृतं) जो भाग हरा गया, छीना गया और जो लूट दिया है और (यतमत् जग्धं) जो भाग खाया गया है, (त्वं तत् पुनः आभर) तू वह फिर भर दे। और (शरीरे मांसं असुं आ ईरयामः) शरीरमें मांस और प्राणको स्थापित करते हैं॥ ५॥

(यः पिशाचः आमे सुपक्के) जो मांस भोजी क्रिमी कच्चे, अच्छे पक्के, (शबले विपक्के अशने मा ददम्भ) आध पके, विशेष पके भोजनमें प्रविष्ट होकर मुझे हानि पंहुचाता है, (तत् आत्मना प्रजया पिशाचाः) वह स्वयं और प्रजाके साथ वे सब मांस भोजी क्रिमी (वि यातयन्तां) हटाये जांय। और (अयं अगदः अस्तु) यह पुरुष नीरोग होवे ॥ ६ ॥

भावार्थ—जिस मांस भक्षक रोगक्रिमीने इस के मांस को खाया है, उसका नाश कर, उसके सब अवयव नष्ट कर दे ॥४॥

मांस भक्षक रोगक्रिमियोंने इस रोगीके जो जो अवयव क्षीण किये हैं, उनको फिर पुष्ट कर और इसके शरीर में पुनः मांसकी वृद्धि होवे ॥५॥

जो शरीर क्षीण करनेवाला क्रिमी कच्चे, आधपके, पक्के और अधिक पके हुए भोजनमें प्रविष्ट होकर सताते हैं, उनका समूल नाश किया जावे और यह मनुष्य नीरोग होवे ॥६॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

क्षीरे मा मन्थे यतमो ददम्भाकृष्टपच्ये अशने धान्ये३ यः ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो३ यमस्तु ॥ ७ ॥
अपां मा पाने यतमो ददम्भ क्रव्याद् यातूनां शयने शयानम् ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो३ यमस्तु ॥ ८ ॥
दिवा मा नक्तं यतमो ददम्भ क्रव्याद् यातूनां शयने शयानम् ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो३ यमस्तु ॥ ९ ॥

अर्थ—(यतमः क्षीरे मन्थे अकृष्टपच्ये धान्ये) जो दूधमें, मठेमें, विना खेती उत्पन्न हुए धान्यमें तथा (यः अशने मा ददम्भ) जो भोजन में प्रविष्ट होकर मुझे दबाता है। (तत् आ०) वह मांसभक्षक क्रिमि अपनी संतातिके साथ दूर हट जावे और यह पुरुष नीरोग होवे ॥ ७ ॥

(यतमः क्रव्यात्) जो मांसभक्षक क्रिमि (अपां पाने) जलके पान करनेमें और (यातूनां शयने शयानं) यात्रियोंके बिछोने पर सोते हुये (मा ददम्भ) मुझको दबा रहा है (तत् आ०) वह मांसभक्षक क्रिमि अपनी संततिके साथ दूर हटाया जावे और यह मनुष्य नीरोग होवे ॥ ८ ॥

(यतमः क्रव्यात्) जो मांसभोजी क्रिमी (दिवा नक्तं यातूनां शयने शयानं मां ददम्भ) दिनमें वा रात्रीमें यात्रियोंके शयन स्थानमें सोते हुए मुझको दबाता है (तत् आ०) वह अपनी संततिके साथ दूर किया जावे और यह मनुष्य नीरोग बने ॥ ९ ॥

भावार्थ -दूध, छाछ, धान्य तथा अन्य भोजन के पदार्थोंद्वारा शरीरमें प्रविष्ट होकर जो रोगकृमी सताते हैं उनको दूर किया जावे, और यह मनुष्य नीरोग बने ॥ ७ ॥

जो मांसक्षीण करनेवाले कृमि जलपानके द्वारा तथा अनेक मनुष्योंके साथ सोनेसे शरीरमें प्रविष्ट होकर सताते हैं उनको दूर करके यह मनुष्य नीरोग बने ॥८॥

जो कृमि दिनके समय अथवा रात्रीके समय अनेक मनुष्योंके साथ सोनेके कारण शरीरमें प्रविष्ट होकर सताते हैं उनको दूर करके यह मनुष्य नीरोग बने ॥९॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

क्रव्यादमग्ने रुधिरं पिशाचं मनोहनं जहि जातवेदः ।
तमिन्द्रो वाजी वज्रेण हन्तु च्छिनत्तु सोमः शिरो अस्य धृष्णुः ॥ १० ॥

सनादग्ने मृणसि यातुधानान् न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।
सहमूरानतु दह क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥ ११ ॥

समाहर जातवेदो यद्धृतं यत् पराभृतम् ।
गात्राण्यस्य वर्धन्तामंशुरिवा प्यायतामयम् ॥ १२ ॥

अर्थ- हे जातवेद अग्ने ! (क्रव्यादं रुधिरं मनोहनं पिशाचं जहि) मांस भक्षक, रुधिररूप, मनको मारनेवाले, रक्त खानेवाले, क्रिमी को नाश कर। (वाजी इन्द्रः तं वज्रेण हन्तु) बलवान इन्द्र उसको वज्रसे मार देवे, (धृष्णुः सोमः अस्य शिरः छिनत्तु) निर्भय सोम इसका सिर काट देवे॥ १० ॥

हे अग्ने ! (यातुधानान् सनात् मृणसि) पीडा देनेवाले क्रिमियों को तू सदा नष्ट करता है। (त्वा रक्षांसि पृतनासु न जिग्युः) तुझे राक्षस संग्रामोंमें पराभूत नहीं करते। (सह-मूरान क्रव्यादः अनुदह) समूल मांस-भक्षकों को जला दे। (ते दैव्यायाः हेत्या मा मुक्षत) तेरे दिव्य शस्त्रसे कोई न छूटने पावे ॥ ११ ॥

हे जातवेदः! (अस्य यत् हृतं यत पराभृतं) इस का जो भाग हर लिया और नष्ट कर लिया है उस भागको (समाहर) पुनः ठीक प्रकार भर दे। (अस्य गात्राणि वर्धन्तां) इसके अंग पुष्ट हो जावें, (अयं अंशुः इव आ-प्यायतां) यह मनुष्य चन्द्रमा के समान वृद्धिको प्राप्त होवे ॥१२॥

भावार्थ- रक्त और मांसकी क्षीणता करनेवाले, मनको मोहित करनेवाले रोग क्रिमी हैं, उनको इन्द्र और सोम के प्रयोगसे दूर किया जावे ॥१०॥

अग्नि इन क्रिमियोंको सदा दूर करता है, ये क्षीणता करनेवाले क्रिमी अग्निको परास्त नहीं कर सकते। अतः अग्निद्वारा इन रोगक्रिमियोंका कुल समूल नाश किया जावे ॥११॥

इस रोगीका जो अवयव क्षीण हुआ था, वह फिर पुष्ट होवे और उसके सब अवयव पुनः पुष्ट हों, जिस प्रकार चंद्रमा बढता है उस प्रकार यह बढे ॥१२॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सोम॑स्येव जातवेदो अंशुरा प्या॑यतामुयम् ।
अग्ने॑ विरप्शिनं॒ मेध्य॑मयक्ष्मं कृणु जीव॑तु ॥ १३ ॥
एतास्ते॑ अग्ने सुमिध॑: पिशाचुजम्भ॑नीः ।
तास्त्वं जु॑षस्व प्रति॑ चैना गृहाण जातवेद: ॥ १४ ॥
तार्ष्टाघीर॑ग्ने सुमिध॑: प्रति॑ गृह्णाह्यर्चिषा॑ ।
जहा॑तु क्रुव्याद्रूपं यो अ॑स्य मांसं जिही॑र्षति ॥ १५ ॥

अर्थ-हे जातवेदः। (अयं सोमस्य अंशुः इव आप्यायतां) यह मनुष्य चंद्रमाकी कलाके समान बढे। हे अग्ने! इसे (विरप्शिनं मेध्यं अयक्ष्मं कुरु) निर्दोष, पवित्र व नीरोग कर और यह (जीवतु) जीवित रहे॥१३॥

हे अग्ने! (एताः ते समिधः पिशाचजम्भनीः) ये तेरी समिधाएं मांस खानेवाले रोगक्रिमियोंको दूर करनेवाली हैं। हे जातवेद! (त्वं ताः जुषस्व) तू उनका सेवन कर और (एनाः प्रति गृहाण) इनको स्वीकार कर॥१४॥

हे अग्ने! (तार्ष्ट-अघीः समिधः अर्चिषा प्रतिगृह्णाहि) तृषारोग का शमन करनेवाली इन समिधाओंको तूं अपनी ज्वालाओंसे स्वीकृत कर। (यः अस्य मांसं जिहीर्षति) जो इसके मांसको क्षीण करना चाहता है वह (क्रव्यात् रूपं जहातु) मांसभोजी इसके रूपको छोड देवे॥१५॥

भावार्थ— चन्द्रमाकी कलाके समान यह बढे, यह रोगी दोष रहित, पवित्र व निरोग होवे और दीर्घ कालतक जीवित रहे॥ १३॥

जो समिधाएं यज्ञमें होमी जाती हैं वे रोगक्रिमियोंका नाश करने वाली हैं। इनको जलाकर अग्निद्वारा ये रोगक्रिमी दूर हों॥१४॥

जो क्रिमी रोगीके मांस को क्षीण करते हैं उनका पूर्ण रीतिसे नाश होवे। इन समिधाओंको जलाकर प्रदीप्त की हुई अग्नि इन रोगक्रिमियों का नाश करे॥१५॥

रोगोंके कृमि।

इस सूक्तमें रोगजन्तुओंका वर्णन है! कुछ जातीके कृमि हैं जो शरीरमें प्रविष्ट होते हैं और विविध यातनाएं उत्पन्न करते हैं, मनुष्यको इनसे बडे क्लेश होते हैं। इन क्रिमियोंको दूर करनेका साधन इस सूक्तमें बताया है। यह साधन वैद्य, औषधि और अग्नि है। इस सूक्तमें इन क्रिमियोंका जो वर्णन है वह पहिले देखिये—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

(१) यः दिदेव-जो शरीरमें पीडा देते हैं, जिनके कारण शरीर मथित हुए समान अशक्त होता है, अवयव टूट जानेके समान जिसमें अशक्तता आती है। (मं०३)

(२) यतमः जघास-जो शरीरको खा जाता है और क्षीण करता है। (मं.३,४)

(३) पिशाच्- (पिशिताच्) मांस खानेवाला, रक्त पीनेवाला। जो रोगक्रिमि शरीरमें घुसनेके बाद रक्त मांस आदि धातु क्षीण होने लगते हैं। (मं० ४-१०)

(४) हृतं, विहृतं, पराभृतं, जग्धं- शरीरके रक्त मांसका हरण करते हैं, विशेष प्रकार लूटते हैं, शरीरकी जीवन शक्तिको नष्ट करते हैं, और खा जाते हैं। (मं० ५)

(५) क्रव्याद्- (क्रवि-अद्) जो शरीरका कच्चा मांस खाते हैं। (मं० ८-११)

(६) रुधिरः-यह रक्तरूप होता है, रक्तमें मिलजानेवाला है, रक्तमें रहता है। (मं० ११)

(७) मनोहनः-मनकी मनन शक्तिका नाश करता है। जब ये रोगक्रिमी शरीर में जाते हैं, तब मननशक्ति नष्ट होती है, मन क्षीण होता है। (मं०१०)

(८) यातुधानः -- (यातु) यातना (धानः) धारण करनेवाला। ये क्रिमी शरीरमें गये तो रोगी को यातनाएं होती हैं। (मं० ११)

(९) रक्षः-(क्षरणः) क्षीण करनेवाला। (मं०११)

ये सब शब्द रोजगन्तुओंके गुण बताते हैं। पाठक इन शब्दोंका विचार करके रोग-क्रिमियोंका स्वरूप जानें और उनसे होनेवाले रोगोंके कष्टोंका विचार करें। ये क्रिमी किस प्रकार शरीरमें प्रवेश करते हैं इस विषयमें अब देखिये--

रोगजन्तुओंका शरीरमें प्रवेश।

आमे, शबले सुपक्के, विपक्के, अकृष्टपच्ये धान्ये, अशने, क्षीरे,
मन्थे, अपां पाने, यातूनां शयने ददम्भ। (मं० ६-८)
दिवा नक्तं ददम्भ। (मं० ९)

"कच्चा, आधपका, अच्छा पूर्ण पका, अधिक पका जो अन्न होता है, खेतीके विना जो उत्पन्न होता है वह धान्य, आदि पदार्थोंका भोजन, दूध, दही, मठा, छाछ, पानी आदी का पान करना, और अमंगल लोगोंके बिस्तरेपर सोना, इन कारणोंसे रोगक्रिमी दिनमें तथा रात्रीमें शरीरमें जाते हैं और रोग उत्पन्न करते हैं। यही बात अन्य रीतिसे यजुर्वेदमें आगई है देखिये—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ये अन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान् । (यजु० १६ । ६२)

" जो अन्नमें और पीनेके पात्रोंमें रहकर जनोंके शरीरोंमें घुसते हैं और उनके स्वास्थको वेध डालते हैं । " अर्थात् बीमार करते हैं । इसी मंत्रका स्पष्टीकरण ऊपर लिखे दो तीन मंत्र हैं । पाठक इस दृष्टीसे यजुर्वेद मंत्र और अथर्ववेद मंत्र की तुलना करके मंत्रका ठीक भाव ध्यानमें धारण करें ।

आरोग्य प्राप्ति ।

उक्त प्रकार रोगकृमि शरीरमें जाते हैं फिर वहांसे उनको किस रीतिसे हटाना होता है इसका विचार अब करना है । इसकी पहिली रीति यह है—

युक्तः भिषक् । भेषजस्य कर्ता । क्रियमाणं अग्रे वेत्ति । (मं० १)

" सुयोग्य वैद्य, जो औषध बनाना जानता है । किया जानेवाला प्रयोग पहिलेसे जानता है । " इस प्रकारका सुयोग्य वैद्य अपने इलाजसे रोगी मनुष्यको निरोग करे । यह वैद्य—

विश्वेभिः देवैः संविदानः अस्य परिधिः पताति । (मं० २, ३)

" सब देवोंसे सहायता प्राप्त करनेकी रीति जानता हुआ, इस रोगकी अन्तिम मर्यादाको तोड डालता है । " इस प्रकार उसकी मर्यादा गिरानेके पश्चात् रोगकी जड स्वयं नष्ट हो जाती है । देवोंके साथ परिचय रखनेका तात्पर्य यही है कि प्रत्येक देवता की शक्तिसे जो चिकित्सा हो सकती है वह चिकित्सा करके रोग दूर करनेकी शक्ति रखना । मृत्तिका-चिकित्सा, जलचिकित्सा, अग्निचिकित्सा, सौरचिकित्सा, विद्युच्चि-कित्सा, वायुचिकित्सा, औषधिचिकित्सा, मानसचिकित्सा, हवनचिकित्सा, आदि सब चिकित्साएं देवताओंकी शक्तियोंकी सहायतासे होती हैं, देवोंके साथ मिलकर रोग दूर करनेका तात्पर्य यही है । चिकित्सक उक्त देवोंके साथ रहता हुआ रोग दूर करता है । इस प्रकार—

तं प्रतिगृणीहि । (मं० ४)

अयं अगदः अस्तु । (मं० ५-९)

' उस रोगक्रिमि का नाश कर । और यह मनुष्य नीरोग होजावे और—

विरप्शिनं मेध्यं अयक्ष्मं कृणु । जीवतु । (मं० १३)

'इस रोगीको दोषरहित, पवित्र और नीरोग कर। यह मनुष्य दीर्घ आयु प्राप्त करे।' वैद्यको उचित है कि वह रोगी की ऐसी चिकित्सा करे कि रोगीके शरीरके सब दोष दूर हो जांय, रोगीका शरीर पवित्र बने और उसके शरीरसे यक्ष्म रोग हट जावे। केवल

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

रोगको रोकनेवाले वैद्य अच्छे नहीं होते, रोका हुआ रोग किसी न किसी रूपसे कभी न कभी बाहर प्रकट होगा ही। इस लिये शरीर निर्दोष और मलरहितकरके रोग का बीज दूर करना चाहिये। चौदहवे मंत्रमें—

पिशाचजम्भनीः समिधः। (मं० १४)

'इन खून सुखानेवाले कृमियोंका नाश करनेवाली समिधाओंका वर्णन है।' यज्ञीय वृक्षोंकी लकडियों का यह गुण है। हवन सामग्रीको साथ रखनेसे भी यही गुण बढ जाता है। हवन चिकित्साका यह तत्त्व है, पाठक इसका अधिक विचार करें। इस प्रकार की चिकित्सासे—

गां अश्वं पुरुषं सनेम। (मं० ९)

'गौवें, घोडे, और मनुष्योंको निरोग अवस्थामें प्राप्त कर सकते हैं।'

ग्यारहवे मंत्रमें अग्निचिकित्सासे इन रोगजन्तुओंको दूर करनेका संकेत है। जहां ये क्रिमि होते हैं वहां अग्नि जलानेसे अथवा हवन करनेसे वहांका स्थान नीरोग होता है।

संसर्ग रोग।

कई रोग एक दूसरेके संसर्गसे होते हैं, मलीन लोगोंके बिस्तरेमें (शयने शयानं) सोनेसे तथा उनके संसर्गमें रहनेसे रोग होते हैं। संसर्गके स्थानमें अग्नि प्रदीप्त करनेसे संसर्ग दोष दूर होता है। मिलकर हवन करनेसे भी इसी कारण संसर्ग दोष दूर होता है।

रोग हटनेका लक्षण।

रोग हटते ही मनुष्यका शरीर पुष्ट होने लगता है, यही आरोग्य प्राप्तिका लक्षण है—

शरीरे मांसं भर। असुं ऐरयामः। (मं० ५)
सोमस्य अंशु इव आप्यायतां। (मं० १२, १३)

"शरीरमें मांस बढना, प्राणकी चेतना प्राप्त होना, चन्द्रमाकी कलाओंके समान वृद्धिको प्राप्त होना।" यह नीरोगताका चिन्ह है। चन्द्रमाके समान मुख दिखाई देने लगा तो समझना की यह मनुष्य नीरोग है।

इस प्रकार इस सूक्तका विचार करनेसे अनेक बोध प्राप्त हो सकते हैं। आशा है कि पाठक इस प्रकार विचार करके बोध प्राप्त करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वर्ष १०

अंक ११

क्रमांक ११९

कार्तिक

संवत् १९८६

नवंबर

सन १९२९

वैदिक धर्म.

वैदिक तत्त्वज्ञान प्रचारक मासिक पत्र।

संपादक—श्रीपाद दामोदर सातवळेकर।

स्वाध्यायमंडल, औंध (जि. सातारा)

परोपकार.

त्वे राय इन्द्र तोशतमाः प्रणेतारः कस्यचिदृतायोः ।
ते षु णो मरुतो मृळयन्तु ये स्मा पुरा गातूयन्तीव देवाः ॥

ऋ. १।१६९।५

" हे (इन्द्र) प्रभो ! (ये) जो (कस्य चित् ऋतायोः) किसी भी सत्याग्रही मनुष्य को (रायः प्रणेतारः) धन देते हुए उसको (तोशतमाः) अत्यंत संतोष भी देते हैं, (ते मरुतः देवाः) वे मरनेके लिये भी सिद्ध हुए देव वीर (त्वयि) तेरे आश्रय में रहकर (पुरा गातूयन्तीव) पहिलेसे ही परोपकार करने के लिये सिद्ध होकर आगे बढनेवाले लोगों के समान (नः सु मुळयन्तु) हम सबको उत्तम सुख देवें । "

ईश्वर के देवदूत सब मनुष्यों को सहायता करनेके लिये सदा ही कटिबद्ध रहते हैं। कैसा भी कठिन प्रसंग आ पडा, अथवा विशेष अवसर पर मृत्यु भी आ गया, तो भी वे अपना कर्तव्यकर्म कभी छोडते नहीं। जो लोग अपनी आयु सत्य के लिये और परोपकार के लिये पूर्णतया लगा देते हैं, उनको येही देवदूत धन, बल व यश देते हैं, ये देवदूत ईश्वर की प्रेरणासे हम सब को सुखी करें।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

महाभारत ।

महाभारत की योग्यता बहुत थोडे लोग जानते हैं। आजकल आधुनिक यूरोपीय ज्ञानका प्रसार होने के कारण महाभारत का पाठ करनेके लिये लोगों को फुरसत कम मिलती है और प्राचीन काल के समान " पौराणिक सूत " भी आजकल रहे नहीं, जो महाभारत सुनकर अपनी आजीविका करते हैं। प्राचीन काल में इन सूतोंने ही जनता के हृदयोंपर महाभारत प्रभाव स्थिर किया था।

पौराणिक सूत एक जाती थी, जो प्राचीन इतिहास को मनोरंजक कथाओं के रूपमें जनता को कहकर जनता को प्राचीन इतिहास का उत्तम ज्ञान देती थी, और इस ज्ञान के द्वारा धर्म की जाग्रती भी करती थी। यह जाती अब नाम शेष हो चुकी है और जो भी कोई सूत होंगे वे अब इस कार्य को नहीं करते हैं।

महाभारत ऐसा ग्रंथ है कि जिसके पढने से अथवा सुनने से श्री. छत्रपती शिवाजी महाराज और राणाप्रताप जैसे धुरंधर वीर इस भारतभूमी में उत्पन्न हो सकते हैं, स्त्रियों में भी वीर प्रसवा लक्ष्मीबाई और अहल्याबाई जैसी स्त्रियें हो सकती हैं। आजकल चारों ओर प्रभविष्णुता का जोर कम दिखाई देने का कारण यही है कि, महाभारत का पाठ कम हुआ है और अन्य विदेशी गप्पाष्टकी पुस्तकों का पाठ अधिक हुआ है। महाभारत में धर्म के साथ राज्यकारण का जैसा उपदेश है वैसा किसी भी अन्य पुस्तक में नहीं है।

पंचम वेद ।

" महाभारत " को " पंचमवेद " कहते हैं। यह उसके महत्त्व का सूचक शब्द है। जैसे वेद बहुमोल ग्रंथ है, उसी प्रकार का यह महाभारत ग्रंथ है। वेद समझना कठिन होने के कारण भगवान व्यास देवजीने वेद का आशय बतानेवाला यह अपूर्व महाभारत ग्रंथ निर्माण किया। " सब जगत् में जो ज्ञान है वह इस महाभारत में है, परंतु जो ज्ञान इस महाभारत में है वह किसी अन्य पुस्तक में नहीं है" यह वर्णन स्वयं वेदव्यास ने महाभारत का किया है, वह नितान्त सत्य है। आज भी महाभारत जैसा उत्तम ग्रंथ हम किसी अन्य देश में देखते नहीं। वेद का आशय सुबोध रीतिसे इसमें देने के कारण इस ग्रंथ की योग्यता इतनी बडी हुई है। अर्थात् जो लोग महाभारत का पाठ करेंगे, और उसमें कहा हुआ ज्ञान अपनायेंगे, उनको करीब वेदज्ञान प्राप्त करने का फल कई अंशों में मिल सकता है।

वास्तव में प्रतिदिन एक एक अध्याय का पाठ करने का नियम पाठकों को करना चाहिये। जो लोग इस प्रकार प्रतिदिन महाभारत का पाठ करेंगे वे निःसन्देह वीर पुरुष बन सकते हैं। और परम पुरुषार्थी होकर इहपरलोक में उत्तम प्रगति प्राप्त कर सकते हैं।

यदि इतना भी नहीं हो सकता है, तो कम से कम शान्तिपर्व का तो एक एक अध्याय पाठक अवश्य पाठ करें। शान्तिपर्व ऐसा ग्रंथ है कि जिस के लिये तुलना करने के लिये दूसरा मनुष्यरचित ग्रंथ ही नहीं है। जो महाभारत के पाठ के विरोधी होंगे वे भी यदि प्रतिदिन शान्तिपर्व का पाठ नियमपूर्वक करेंगे तो वे निःसन्देह महाभारत का महत्त्व जानने में समर्थ हो जांयगे।

आजकल स्वाध्यायमंडल में महाभारतके शान्तिपर्व की छपाई चल रही है। शान्तिपर्व में प्रथम " राजधर्मपर्व " है वह करीब अगलेमास में समाप्त होगा। सात अंकोका यह पर्व इकट्ठा ही अगलेमास में ग्राहकों के पास भेजा जायगा। आशा है कि पाठक इसका अवश्य अवलोकन करेंगे।

महाभारत का अग्रिम मूल्य ६५) है और जो खंडशः लेना चाहते हैं उनके लिये १२०० पृष्ठों के लिये केवल ६) रु. मूल्य रखा है। म० आ०से मूल्य भेजनेपर आधा डा० व्य० माफ होता है। छः रु. मूल्य के महाभारत के ग्रंथ के लिये डा० व्य० १) से अधिक होता है।

पाठक इस अवसर से लाभ उठावें।

" संपादक "

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

आर्यों की सभ्यता का संसारपर प्रभाव।

आर्यों की सभ्यता का जितना ही अधिक विचार करें यही दिखाई देता है कि आज के ज्ञात जगत पर एक समय इस सभ्यता का खासा प्रभाव पडा था। आज भी निश्चय से कह सकते हैं कि एशिया, यूराप, आफ्रिका, अमेरिका आदि महाद्वीपों में प्राचीन आर्य-सभ्यता के अवशेष आज भी उपलब्ध हैं। एक समय मध्य एशिया अखिल मानव जाति का आद्य जन्मस्थान माना जाता था। इस बात को सिद्ध करने योग्य शिला-लेख भी मध्य एशिया में मिले हैं। परदेश के लोग सदैव हिन्दुस्थानियों पर आक्षेप किया करते हैं कि ये लोग मनहूस हैं इन्हे यात्रा करने का उत्साह नहीं है, अतएव इनकी दृष्टि बहुत आकुंचित है। इन आक्षेपों का जबाब देने के लिए भारती विद्वानों को आगे बढना चाहिए। तथा वर्तमान जगत के सन्मुख सिद्ध करना चाहिये कि हिन्दुस्थानियों के उपनिवेश अनेक थे। हमार साहित्यमें देशोंके शहरोंके तथा नदियोंके जो नाम दिखाई देते हैं वे ही नाम आर्य लोगोंने जहाँ बस्ती की वे अपने साथ ले गए। यह तो निश्चित ही है कि जहाँ लोग उपनिवेश बनाते हैं वहाँ अपनी सभ्यता भी ले जाते हैं। अमेरिका या आस्ट्रेलिया जहाँ कहीं अंग्रेज लोग गए वे अपने साथ इंग्लैड के शहरों के नाम ले गए।

भरतखण्ड के चारों ओर की सभ्यता भी भारतीय सभ्यता ही थी। कम्बोडिया, सयाम, अनाम, मलाया, जावा, सुमात्रा, बाली आदि द्विपों में आर्य-सभ्यता का पालन करनेवाले लोग अब भी हैं। आर्यों का उपनिवेश सर्व प्रथम अगस्ति ऋषिने बनाया। इस अगस्ति ऋषि के कुल के लोगोंने चारों ओर यात्रा की थी। प्रथम वे सिन्धु से विंध्याचल तक आये। फिर विंध्याचल को पार कर दक्षिण में आये। यहाँ आर्य और द्रविड सभ्यताओं का मिलाप होकर अगस्ति सीधे दक्षिण दिशा में गए। अनन्तर इसी वंश का एक पुरुष सयाम मलाया की ओर गया दूसरा कम्बोडिया, जावा और सुमात्रा की ओर गया।

इन चार पांच छोटे बडे द्विपों का समूह विशेष महत्त्व का है। कम्बोडिया देश के नाम की उत्पत्ति बहुत चमत्कृतिजन्य है। अगस्ति का दूसरा नाम "कुम्भज" है। इसी कुम्भज से 'काम्भोज, काम्बोडियन' बना है। एक गांव का नाम है बोरोबुदुर। यह 'बोरोबदुर' शब्द संभवतः 'वीरभद्र' का ही बिगडाहुआ रूप होगा। आनाम देशमें भी पांडुरंग, द्वारावति आदि नाम मिलते हैं। सयाम देश का नाम भी शाम शब्द से बना होगा। शाम का अर्थ है सूर्य। पेरु, मेक्सिको जैसे दूरस्थ देशों में भी आर्य सभ्यता के अवशेष पाये जाते हैं। पेरु = पार इसका अर्थ है सूर्य. हम लोग समझते हैं कि 'पाताल' नीचे है। यह खुला प्रदेश ही पाताल है।

पाताल में जानेपर मनुष्य नहीं लौटता। वहाँ नाग-लोग में नागकन्या के साथ विवाह करके रहता है। हमारे पुराणों में उक्त अर्थ की जो दन्तकथा है उसका मूल इसी बात में है। जब कोई टोली उपनिवेश स्थापित करने के लिए हिंदुस्थान से बाहर जाति थी वह फिर लौट कर न आति थी। इसीको पाताल में जाना कहते हैं। मेक्सिको देश में 'राम सीता' के जुलूस निकलते हैं! यह निःसंदेह है कि यह सभ्यता उस देशमें गई थी।

मेक्सिको शब्द का 'माक्षिक' शब्द से संबन्ध है। अपने देश में माक्षिक शब्द प्रचार में है। मेक्सिको में सोना, चांदि पहले से बहुत मिलती है। वहाँ से सोना, चाँदी आती थी और उसका माक्षिक भस्म यहाँ बनता था। दूसरी मुख्य बात सूर्य की उपासना का प्रचार है। वैदिक कालसे अपने साहित्य में सूर्य की उपासना का प्रचार दिखाई देता है। उन दिनों में सूर्य देव के बडे बडे मंदिर रहते थे। सिंध में मोहों-जे-दारो और हराप्पा में खोज हुआ है। उनसे भी स्पष्ट होता है कि ये मन्दिर कैसे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

होते थे। अब भरतखण्ड के उत्तर के देशों का विचार करें। इन में तातार और अफगानिस्थान शामिल हैं। रूसी तातार और उत्तर तातार देश भी ऐसे हीं महत्त्व के हैं। इसी में बल्ख शहर है। इससे मालूम होता है कि संस्कृत साहित्य में जिसका उल्लेख है वह वाल्हीक देश यही होना चाहिए। 'अफगानिस्थान' शब्द अफ (हाफो) + गानि (गण) + स्थान शब्दोंसे बना है। अर्थात् वह सर्प - गण - स्थान था। सर्प = साप = हाफ इस प्रकार का अपभ्रंश होता है। कंदहार पहले का गांधार देश है। एक फ्रेंच पुरा-तत्त्व वेत्ता का 'गांधार आर्किटेक्चर पर व्याख्यान हुआ। उस समय आपने एकमूर्तिका चित्र दिखलाया जिसमें फन निकाले हुए एक सर्प था। तब हमे विदित हुआ कि यह देश सर्पगण याने नाग-देश ही है। कुछ परिचय के पश्चात्।

मेडिटरेनियन = मध्यधरा;
हिरात = हैराट = हयराज

जैसे शब्द मिलते हैं।

अश्व (घोडा सूर्य) = आशिया;
यूरोप = लुरूप

ये शब्द भी ऐसे ही हैं। हेटिया, ग्रीस, फोनिशियन, फेजिनशियनस आदि लोगों की सभ्यताएँ भी इसी प्रकार समान हैं। आर्य सभ्यता इंग्लैण्ड में भी दिखाई देती है। 'ग्रीनविच' शब्द में विच् = विश् = विट अर्थात् 'देश' शब्द दिखाई देता है। इसी प्रकार 'केंट' शब्द 'कण्ठ' शब्द का अपभ्रंश दिखता है। वेल्स लोगों की भाषा के कुछ शब्द संस्कृत शब्दों से मिलते जुलते हैं।

हिप हिप हुरा = सिप सिप हरा = "शिव शिव हरा।"

अर्थात् 'हिप हिप हुरा' भारतियों के 'शिव शिव हरा' रणगीत का अपभ्रंश मालूम होने लगता है। मराठों का रणगीत जो 'हर हर महादेव' सो भी नष्ट होने के मार्गपर है। हम लोगों को सिंहावलोकन कर अपनी सभ्यता का पता लगाना चाहिए।

सुप्रजा और शराब- बंदी।

(इंग्लैण्ड के सुविख्यात डॉक्टर सी. डब्ल्यू. सैलीबी महाशयने टॉरान्टो कनेडा में The International convention of the world league against Alcoholism 'संसार की सार्वराष्ट्रीय शराबखोरी तोडक सभा' के अधिवेशन में जो वक्तृता दी उसका सारांश।)

राष्ट्रके ह्रास का कारण।

संसार के इतिहास में अनेकानेक राष्ट्रों का उदय और अस्त देखने मिलता है। विचारणीय प्रश्न तो यह है कि जिन राष्ट्रोंका उत्कर्ष हुआ उनकी अवनति क्यों होनी चाहिए। राष्ट्र को गिरने के अनेक कारण हो सकते हैं। इतिहासकारोंने उनका विवेचन भी खूब किया है। परन्तु कुछ ऐसे भी कारण हैं जिनका उल्लेख सर्वमान्य इतिहास-ग्रंथों में भी नहीं है। उनमें से राष्ट्र के नाश का एक प्रमुख कारण शराबखोरी है। अबतक इस शराब ने कई राष्ट्रों को मिट्टी में मिला दिया, और अब भी कई राष्ट्रों को इस शराबखोरी के कारण कीडा लग गया है। मानव जाति का अधःपात करनेवाला शराब यह एक जातिय विष (Racial Poison) है। अन्य कई हानिकर बातें हैं, परन्तु उनका पुश्तोतक समाजपर विषतुल्य परिणाम नहीं होता। यदि कोई सिपाई लडाईमें घायल हुआ तो उसका भावी पीढीपर कोई अनिष्ट परिणाम नहीं होता। उसे जो संतती होती है वह लूली, लंगडी नहीं होती। परन्तु शराबखोरी ऐसा विष है जिसके विषका परिणाम

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पुश्तान् पुश्त भुगतना पडता है । शराबखोरी बंद करना क्या है ? केवल अपघातों की संख्या घटाना है । इतना ही नहीं राष्ट्र का पुश्तान पुश्त संरक्षण करना है ।

इतिहास का सबूत ।

दूसरी शताब्दि से रोमन साम्राज्य की अवनति आरंभ हुई । उस समय रोम की स्त्रियां मातृधर्म से च्युत हो चुकीं थीं । वे अपने बालबच्चों को अपना खुद का दूध न पिलाती थीं किन्तु यह पवित्र काम उन्होंने गुलाम वर्गकी दाइयों के सुपुर्द कर दिया था। ये दाइयां प्रायः शराबी तथा नीतिभ्रष्ट हुआ करती थी। शराबी स्त्रियों के खून में शराब का 'अल्कोहोल' होना ही चाहिए । और नीतिभ्रष्ट होने के कारण उनमें उपदंश और प्रमेह का प्रसार भी होना स्पष्ट ही है । इस प्रकार उस समय के रोमन बालकों के खून में दुहरा विष आ रहा था । ऐसी दशा में यदि उस राष्ट्रका अंत हुआ तो आश्चर्य ही क्या ? बाइबि में Book of Judges के तेरहवें अध्याय में निम्न लिखित वाक्य है:-

" Beware, I pray thee and drink no wine, nor strong drink, for lo, thou shalt conceive and bear a son, and he shall be a nazarite unto God from the womb and he shall begin to delivers his people from the hands of their enemies."

इसमें देवदूतनें एक माता को शराब न पीने का मद्यपान से अलिप्त रहने का उपदेश किया है। क्यों कि उस माता के पेट से परमेश्वर के पराक्रमी वीर पुरुष का अवतार होनेवाला था। अर्थात् इससे यह स्पष्ट होता है कि पराक्रमी संतती चाहनी हो, तो माता पिता को मद्यपान से अलिप्त रहना चाहिए । १९१४ के महायुद्ध में हमारे उत्तम युवक चुनकर रणक्षेत्र पर भेज दिए गए। वे जर्मनों की मशीनगन्स के भक्ष्य बन गए। उनकी जगह में हमें ऐसे लोगों को फौज में भरती करना पडा जो घृणित बस्ति में तथा शराब की दुकानों की परिस्थिति में पले थे और जिनका जन्म शराबी कुटुम्बी में हुआ था । पुरुष तो शराब पीते ही हैं पर स्त्रियों में भी शराब पीने की चाल पडी हुई है । कई मूर्ख डाक्टर कहते हैं प्रसूति काल में शराब पीना आवश्यक है । और इससे शराबका विष स्त्रियों के शरीर में भी घुस जाता है । मैं तो समझता हूं कि शराब पीने की सलाह देनेवाले डाक्टर "डाक्कर" संज्ञा को पात्र ही नहीं हैं ।

शास्त्रीय प्रयोग ।

न्यूयॉर्क के " कॉर्नेल हॉस्पिटल मेडिकल स्कूल" के प्रो. स्टॉकॉर्ड स्वयं मद्यपान शौकीन हैं । आपने गिनिपिग्ज नामके प्राणियों को आलकोहोल मिश्रित वायु में प्रतिदिन एक घण्टा रखा । इस प्रकार दस वर्ष तक शास्त्रीय प्रयोग के पश्चात् आपने सिद्ध किया है कि उनके पिण्ड तत्त्व पर अनिष्ट असर होता है । मद्यार्क (Alcohol) से मनुष्य का यकृत (Liver) और मूत्राशय बिगड जाते हैं । यही नहीं बल्कि पुरुष और स्त्रियों के पिण्डतत्त्वों (Germ plasm) पर भी बहुत ही बुरा असर होता है । यह निश्चित अनुमान लॉन्सेन के डॉ. बर्थोलेट का है । आपने यह अनुमान अनेक वर्ष मुर्दों की चीरफाड करनेबाद् निकाला हुआ है ।

शिष्ट शराबखोरी भी बुरी ही है ।

बहुतेरे लोग कहते हैं कि शराब नियम से थोडी पी जाय तो कोई हानि नहीं होती । परन्तु यह केवल भ्रम मात्र है । साल छः माह में एकबार बहुत शराब पीकर बेहोश हो जानेवाला मनुष्य कुछ अच्छा, परन्तु प्रतिदिन नियम से थोडी शराब पीनेवाला तो बिलकुल ही बुरा है । क्यों कि वह अपनी आगामी पीढी की भारी हानि करता है । शराब पीना आरंभ हो जाने के बाद जो पहला बालक पैदा होता है वह कुछ वर्ष बाद राजयक्ष्मा या ऐसी ही किसी अन्य बीमारी से मर जाता है । उसके बाद का बालक छुटपन में ही अपनी जीवन यात्रा समाप्त कर देता है । इसके बाद प्रायः लडके बच्चे पैदा ही नहीं होते । अर्थात् शराब के कारण निरोगी और सुदृढ कुटुम्ब की भी वृद्धि रुक जाती है ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

होते थे। अब भरतखण्ड के उत्तर के देशों का विचार करें। इन में तातार और अफगानिस्थान शामिल हैं। रूसी तातार और उत्तर तातार देश भी ऐसे हीं महत्त्व के हैं। इसी में बल्ख शहर है। इससे मालूम होता है कि संस्कृत साहित्य में जिसका उल्लेख है वह वाल्हीक देश यही होना चाहिए। 'अफगानिस्थान' शब्द अफ (हाफो) + गानि (गण) + स्थान शब्दोंसे बना है। अर्थात् वह सर्प - गण - स्थान था। सर्प = साप = हाफ इस प्रकार का अपभ्रंश होता है। कंदहार पहले का गांधार देश है। एक फ्रेंच पुरातत्त्व वेत्ता का 'गांधार आर्किटेक्चर पर व्याख्यान हुआ। उस समय आपने एकमूर्तिका चित्र दिखलाया जिसमें फन निकाले हुए एक सर्प था। तब हमे विदित हुआ कि यह देश सर्पगण याने नाग-देश ही है। कुछ परिचय के पश्चात्।

मेडिटरेनियन = मध्यधरा;
हिरात = हैरार =हयराज

जैसे शब्द मिलते हैं।

अश्व (घोडा सूर्य) = आशिया;
यूरोप = सुरूप

ये शब्द भी ऐसे ही हैं। हेटिया, ग्रीस, फोनिशियन, फेजिनशियनस आदि लोगों की सभ्यताएँ भी इसी प्रकार समान हैं। आर्य सभ्यता इंग्लैण्ड में भी दिखाई देती है। 'ग्रीनविच' शब्द में विच् = विश् = विट अर्थात् 'देश' शब्द दिखाई देता है। इसी प्रकार 'केंट' शब्द 'कण्ठ' शब्द का अपभ्रंश दिखता है। वेल्स लोगों की भाषा के कुछ शब्द संस्कृत शब्दों से मिलते जुलते हैं।

हिप हिप हुरा = सिप सिप हरा = "शिव शिव हरा।"

अर्थात् 'हिप हिप हुरा' भारतियों के 'शिव शिव हरा' रणगीत का अपभ्रंश मालूम होने लगता है। मराठों का रणगीत जो 'हर हर महादेव' सो भी नष्ट होने के मार्गपर है। हम लोगों को सिंहावलोकन कर अपनी सभ्यता का पता लगाना चाहिए।

सुप्रजा और शराब- बंदी।

(इंग्लैण्ड के सुविख्यात डॉक्टर सी. डब्ल्यू. सैलीबी महाशयने टॉरॉन्टो कनेडा में The International convention of the world league against Alcoholism 'संसार की सार्वराष्ट्रीय शराबखोरी तोडक सभा' के अधिवेशन में जो वक्तृता दी उसका सारांश।)

राष्ट्रके ऱ्हास का कारण।

संसार के इतिहास में अनेकानेक राष्ट्रों का उदय और अस्त देखने मिलता है। विचारणीय प्रश्न तो यह है कि जिन राष्ट्रोंका उत्कर्ष हुआ उनकी अवनति क्यों होनी चाहिए। राष्ट्र को गिरने के अनेक कारण हो सकते हैं। इतिहासकारोंने उनका विवेचन भी खूब किया है। परन्तु कुछ ऐसे भी कारण हैं जिनका उल्लेख सर्वमान्य इतिहास-ग्रंथों में भी नहीं है। उनमें से राष्ट्र के नाश का एक प्रमुख कारण शराबखोरी है। अबतक इस शराब ने कई राष्ट्रों को मिट्टी में मिला दिया, और अब भी कई राष्ट्रों को इस शराबखोरी के कारण कीडा लग गया है। मानव जाति का अधःपात करनेवाला शराब यह एक जातिय विष (Racial Poison) है। अन्य कई हानिकर बातें हैं, परन्तु उनका पुश्तोतक समाजपर विषतुल्य परिणाम नहीं होता। यदि कोई सिपाई लडाईमें घायल हुआ तो उसका भावी पीढीपर कोई अनिष्ट परिणाम नहीं होता। उसे जो संतती होती है वह लूली, लंगडी नहीं होती। परन्तु शराबखोरी ऐसा विष है जिसके विषका परिणाम

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पुश्तान् पुश्त भुगतना पडता है । शराबखोरी बंद करना क्या है ? केवल अपघातों की संख्या घटाना है । इतना ही नहीं राष्ट्र का पुश्तान पुश्त संरक्षण करना है ।

इतिहास का सबूत ।

दूसरी शताब्दि से रोमन साम्राज्य की अवनति आरंभ हुई । उस समय रोम की स्त्रियां मातृधर्म से च्युत हो चुकीं थीं । वे अपने बालबच्चों को अपना खुद का दूध न पिलाती थीं किन्तु यह पवित्र काम उन्होने गुलाम वर्गकी दाइयों के सुपुर्द कर दिया था। ये दाइयां प्रायः शराबी तथा नीतिभ्रष्ट हुआ करती थी। शराबी स्त्रियों के खून में शराब का 'अल्कोहोल' होना ही चाहिए। और नीतिभ्रष्ट होने के कारण उनमें उपदंश और प्रमेह का प्रसार भी होना स्पष्ट ही है। इस प्रकार उस समय के रोमन बालकों के खून में दुहरा विष आ रहा था। ऐसी दशा में यदि उस राष्ट्रका अंत हुआ तो आश्चर्य ही क्या ? बाइबि में Book of Judges के तेरहवें अध्याय में निम्न लिखित वाक्य है:-

" Beware, I pray thee and drink no wine, nor strong drink, for lo, thou shalt conceive and bear a son, and he shall be a nazarite unto God from the womb and he shall begin to delivers his people from the hands of their enemies."

इसमें देवदूतनें एक माता को शराब न पीने का मद्यपान से अलिप्त रहने का उपदेश किया है। क्यों कि उस माता के पेट से परमेश्वर के पराक्रमी वीर पुरुष का अवतार होनेवाला था। अर्थात् इससे यह स्पष्ट होता है कि पराक्रमी संतती चाहनी हो, तो माता पिता को मद्यपान से अलिप्त रहना चाहिए। १९१४ के महायुद्ध में हमारे उत्तम युवक चुनकर रणक्षेत्र पर भेज दिए गए। वे जर्मनों की मशीन-गन्स के भक्ष्य बन गए। उनकी जगह में हमें ऐसे लोगों को फौज में भरती करना पडा जो घृणित बस्ति में तथा शराब की दुकानों की परिस्थिति में पले थे और जिनका जन्म शराबी कुटुम्बी में हुआ था। पुरुष तो शराब पीते ही हैं पर स्त्रियों में भी शराब पीने की चाल पडी हुई है। कई मूर्ख डाक्टर कहते हैं प्रसूति काल में शराब पीना आवश्यक है। और इससे शराबका विष स्त्रियों के शरीर में भी घुस जाता है। मैं तो समझता हूं कि शराब पीने की सलाह देनेवाले डाक्टर "डाक्कर" संज्ञा को पात्र ही नहीं हैं।

शास्त्रीय प्रयोग ।

न्यूयॉर्क के " कॉर्नेल हॉस्पिटल मेडिकल स्कूल" के प्रो. स्टॉकॅर्ड स्वयं मद्यपान शौकीन हैं। आपने गिनिपिग्ज नामके प्राणियों को आलकोहोल मिश्रित वायु में प्रतिदिन एक घण्टा रखा। इस प्रकार दस वर्ष तक शास्त्रीय प्रयोग के पश्चात् आपने सिद्ध किया है कि उनके पिण्ड तत्त्व पर अनिष्ट असर होता है। मद्यार्क (Alcohol) से मनुष्य का यकृत (Liver) और मूत्राशय बिगड जाते हैं। यही नहीं बल्कि पुरुष और स्त्रियों के पिण्डतत्वों (Germ plasm) पर भी बहुत ही बुरा असर होता है। यह निश्चित अनुमान लॉन्सेन के डॉ. बर्थोलेट का है। आपने यह अनुमान अनेक वर्ष मुर्दों की चीरफाड करनेबाद् निकाला हुआ है।

शिष्ट शराबखोरी भी बुरी ही है ।

बहुतेरे लोग कहते हैं कि शराब नियम से थोडी पी जाय तो कोई हानि नहीं होती। परन्तु यह केवल भ्रम मात्र है। साल छः माह में एकबार बहुत शराब पीकर बेहोश हो जानेवाला मनुष्य कुछ अच्छा, परन्तु प्रतिदिन नियम से थोडी शराब पीनेवाला तो बिलकुल ही बुरा है। क्यों कि वह अपनी आगामी पीढी की भारी हानि करता है। शराब पीना आरंभ हो जाने के बाद जो पहला बालक पैदा होता है वह कुछ वर्ष बाद राजयक्ष्मा या ऐसी ही किसी अन्य बीमारी से मर जाता है। उसके बाद का बालक छुटपन में ही अपनी जीवन यात्रा समाप्त कर देता है। इसके बाद प्रायः लडके बच्चे पैदा ही नहीं होते। अर्थात् शराब के कारण निरोगी और सुदृढ कुटुम्ब की भी वृद्धि रुक जाति है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

शराबखोरी और जननेंद्रिय विकार ।

जननेन्द्रिय के उपदंश और प्रमेह ये विकार शराबी के पीछे पीछे ही चलते हैं। इन रोगों से समाज की कार्यक्षमता का भारी क्षय होता है। जो व्यक्ति इनके वशमें हो जाते हैं उनके जीवन का तो सत्यानाशही हो जाता है। सब से बुरी बात यह है कि इन रोगों का असर पुश्तानुपुश्त भुगतना पडता है और इससे समाज की भारी हानि होती है। मद्य और वेश्याव्यवसाय का संबंध भी देखने योग्य है। महायुद्ध के बाद अमेरिका के जिन भागोंमें शराबखोरी बंद करने के लिए शराब की दूकाने बंद करही गई और पान गृह (Saloons) भी उठा दिए गए उन भागों के कुंटन खाने भी आपही आप बंद पड गए अमेरिकन सरकारद्वारा प्रसिद्ध हुए अंकों से दिख पडता है कि शराबी रोकने के कानून के चलाने से उपदंश और प्रमेह इन रोगों का प्रसार भी बहुत कुछ घट गया है।

यह चिल्लाहट मची हुई है कि मनुष्यसंख्याके हिसाब से अन्न काफी नहीं होता। परन्तु तब भी शराब बनाने के लिए लाखों मन अन्न- धान्य आदि पदार्थों का नाश किया जाता है। शराब के लिए जिस अन्न का नाश किया जाता है वह अन्न यदि बच जांय तो करोडों गरीबों को दो मुट्ठी भोजन निसंदेह अधिक मिलेगा।

शराबखोरी और बालमृत्यु ।

शराब का प्रसार और बालकों की मृत्यु का भी बहुत निकट संबंध है। १९२१ में न्यूयार्क शहर में बालकों की मृत्यु का प्रमाण हजार में केवल ७१ था। इसका कारण वहां शराब - बंदी का कानून जारी हो गया है। शराब - बंदी पर आक्षेप करनेवाले कहते हैं कि कानून से शराब बेचना रोक दिया जाय तो चोरी से शराब बेची जाती है। होता होगा; परन्तु अब चोरी से शराब पीना गरीबों के लिए असंभव हो गया। पैसेवालों में कुछ मूर्ख लोग अवश्य ही होते हैं। वे शराबी-रोकने के कानून को बचाकर अपनी मद्यतृष्णा को शांत करते हैं। परंतु इतना अवश्य हुआ है कि गरीब लोगोंका बचाव हुआ है और यह भी भारी महत्व की बात है। मांट्रील नगर को देखिए। वहां की बालकों की मृत्यु संख्या हजार पीछे १५५ है। मांट्रील के बालकों की मृत्यु संख्या ऐसी भारी है। परंतु न्यूयॉर्क के समान जहां शराबखोरी रोक दी गई है ऐसे बोस्टन और टॅरान्टो नगरों में बालकों की मृत्युसंख्या क्रमशः हजार में ७७ और ८६ ही है। इंग्लैण्ड और वेल्स देशों में जहां शराब की खपत सब में अधिक है वहां अर्भकों की मृत्युसंख्या भी सब से अधिक है।

शराबखोरी और क्षयरोग ।

क्षयरोग का प्रसार घटाने के लिए न्यूयॉर्क शहर में पचीस वर्ष से प्रयत्न जारी था। १९१८ में क्षयरोग के कारण होनेवाली मृत्युसंख्या एक लाख में १६० थी। परन्तु शराब की रोक शुरू हो जाते ही मृत्यु की यह संख्या एकदम उतरने लगी। १९२१ साल में क्षयरोग के कारण होनेवाली मृत्युसंख्या न्यूयॉर्क शहर में केवल एक लाख में ८९ ही थी। याने शराब की रोक के कारण तीन साल में आधी हो गई। यदि कोई पूछे कि शराब की रोक से क्षयरोग का प्रसार कैसे घटा ? तो जबाब यह है कि पहले लोग शराब पीकर नालियों गिर पडते थे या सकरे कमरे में बंद हो पडे रहते थे। अब वेही लोग शुद्ध हवा में व्यायाम करने लगे, सूर्यप्रकाशमें घूमने फिरने लगे, जो पैसा पहले शराब पीने में खर्च होता था सो अब अच्छा अन्न खाने में खर्च होने लगा और इसीसे उनकी रोग- प्रतिकारक शक्ति बढ गई। फ्रांन्स में जहां शराबखोरी अधिक है वहां क्षयरोग का प्रसार भी अधिक है।

शराब की रोकथाम की झूटी खबरें ।

उपरोक्त सब हाल संसार भर में जाहिर किया जाना चाहिए। क्यों कि एक ऐसा भी पक्ष है जो शराब बंदी के विरुद्ध सारे संसार भर में हलचल करता है। यह पक्ष झूटी खबरें सब दूर फैलाया करता है। कुछ लोग योग्य जानकारी के अभाव में फंसते हैं। मिसेस ॲस्क्विथ इसी प्रकार फंस गई थीं। जब सच्चा हाल उन्हें समझाया गया और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

आंकडों का पूरा सबूत उनके सन्मुख रखा गया तब उन्होंने कबूल किया कि उनका ख्याल गलत था । स्मरण रखना चाहिए कि मिसेस ॲस्क्विथ का जो गलत ख्याल हुआ वह उनका सच्चा ख्याल इसीसे काफी सबूत मिलने पर जब भूल स्पष्ट दिखाई दी तब उन्होने अपना मत बदल दिया । परतु जो इस विषय में लोगों की दिशाभूल ही करना चाहते हैं वे भला ऐसी सचाई क्यों दिखलावेंगे । कई लोग अमेरिका की शराबबंदी के संबंध में चिडानेवाले भूल भरे बयान करते हैं । ऐसे बयानों पर एकदम विश्वास न कर उसकी सत्यासत्यता के निश्चयपर ध्यान देना आवश्यक है ।

यदि प्रजा को नीरोग सुदृढ एवं कार्यक्षम बनाना है तो शराबखोरी को नष्ट ही कर देना चाहिए ।

Guard your race. It is your all and for that reason you must turn out the ra ci-al poison.

" अपनी भावी पिढी पर नजर रखिए । क्यों कि वही तुम्हारा सर्वस्व है । इसलिए मद्य नामका मानव जाति का संहार करनेवाला जो विष है उसे समूल नष्ट कर डालिए । "

विद्यार्थी वर्ग और गुरुजन ।

(ले-श्री० व्यं. ग. जावडेकर धुळें)

ब्रह्मचारी अर्थात् विद्यार्थी गणों के गुरू के प्रति जो कर्तव्य हैं उनके बारे में लिखने का यहां विचार किया है । वर्तमान विद्यार्थी आचार्य ,उपाध्याय, पुरोहित, अध्यापक, गुरू आदि शब्द सुना करते हैं । परन्तु उनके अर्थों में जो फरक है, उसे शायदही कोई कह सकेगा ।

सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥

(मनुस्मृति)

इस प्रकार आचार्य शब्द की शास्त्रीय परिभाषा है । आचार्य पैसे के लिये या धन के लोभसे पढाने वाले नहीं होते । इनका दर्जा बहुत ऊंचा होता है । अब उपाध्याय किसे कहना चाहिए देखें —

एकदेशं तु वेदस्य वेदांगान्यपि वा पुनः ।
योऽध्यापयति वृत्त्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते ॥

इसी को दूसरे शब्दों में इस प्रकार कह सकते हैं कि प्राचीन "आचार्य " आधुनिक "प्रिन्सिपाल" हैं और प्राचीन "उपाध्याय" आधुनिक "प्रोफेसर" हैं । पुरोहितों का काम यही है कि अपने यजमान के घर का हव्य, कव्य, विवाह, व्रतबंध, आदि कर्म करना । कई विद्यार्थियों को और कुछ गृहस्थाश्रमियों को भी शायद यह न मालूम होगा कि हव्य और कव्य किसे कहते हैं । इसलिये यहां उसे कह डालना ठीक होगा । हव्य माने देवताओं के लिये किये हुए होम, हवनादि कर्म और कव्य माने पितरों के लिये किये हुए कर्म ।

जिस प्रकार आजकल के विद्यार्थी सच्चे ब्रह्मचारी नहीं रहते, उसी प्रकार आजकल के शिक्षक भी आचार्य या उपाध्याय नहीं रहते । उन्हें ज्यादा से ज्यादा अध्यापक या गुरू कह सकते हैं । गुरू के भी दो प्रकार होते हैं । एक मोक्ष गुरू और दूसरा विद्या गुरू । गुरू किसी भी प्रकार का हुआ तो भी जब शिष्य उसके पास जाता है तब शिष्य को " भिद्यते हृदयग्रंथिः छिद्यन्ते सर्व संशयाः " मालूम होना चाहिये । गुरू शब्द से पिता या पूज्य मनुष्य का बोध होता है । गुरू के नाते विद्यार्थियों को शिक्षक पूज्यही होना चाहिये । और इसलिये विद्यार्थियों को जिन नियमों का पालन करना आवश्यक है उनका विचार करना चाहिये । आचार्य या गुरू के सन्मुख ब्रह्मचारी को किस तरह बैठना चाहिये, किस तरह उठना चाहिये आदिके बारे में भी शास्त्रकर्ताओं ने नियम बना रखे हैं । केवल महत्वपूर्ण नियम यहां लिखता हूं ।

नोदाहरेदस्य नाम परोक्षमपि केवलम् ।
न चैवास्यानकुर्वीत गतिभाषितचेष्टितम् ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

शास्त्रकर्ता कहते हैं कि गुरू के नाम का उच्चार उसके पश्चात भी नहीं करना चाहिये। आधुनिक रीति के अनुसार यह कुछ विचित्रसा मालूम होगा। परन्तु गत काल की रीति को देखने से मालूम होगा कि यह कुछ विचित्र नहीं है।

प्राचीन काल में विद्यार्थी गुरू का बहुत आदर करते थे। उसी तरह वे उनपर विश्वास रखते थे। चाहे जिसे यदि उनका नाम वह बतलावें तो उनके संबंध की कोई अनादर या अश्रद्धा दर्शक बात सुनने का संभव है। अनादर या अश्रद्धा उत्पन्न होनेसे उसके अध्ययन में बाधा आने का भी संभव है। इसलिये ऐसी बातों को टालने के लिये शायद यह नियम बनाया होगा। ऊपर दिये हुए श्लोक के द्वितीयार्ध में जो कुछ बतलाया है उसका महत्व आज भी उतनाही है जितना पहले था। आजकलके लडके कितने कुत्सित बन गये हैं इसका प्रमाण मेरे विद्यार्थीदशा का एक प्रसंग दे सकता है। आजकल निवृत्तसेवा वेतन पानेवाले एक पहले दर्जे के दीवानी न्यायाधीश सन १८९३-९४ में सोलापूर हाईस्कूल की सांतवीं कक्षाके उपशिक्षक थे। उन्हें आंखोंकी कमजोरीसे बहुत कम दिखता था। उनके इस दृष्टिदोषसे अनुचित लाभ उठाकर कुछ नीच लडके उनकी ओर कंकड फेंका करते थे। वे " What is that ? What is that ? " कहते थे। परन्तु नीच लडके उसकी पर्वाह न करते थे।

कई शिक्षकों को लंगडाते हुए चलने की, तुतला कर बोलने की, कंधे हिलाने आदि की आदतें रहती हैं। तो भी विद्यार्थियों को उनकी नकल करना उचित नहीं। क्यों कि उनकी आदतें स्वाभाविक ही होती हैं। परन्तु आजकलके विद्यार्थी शिक्षकों की नकल करने में ही भूषण मानते हैं।

गुरोर्यत्र परीवादो निंदा वापि प्रवर्तते। कर्णौ
तत्रापिधातव्यौ गंतव्यं वा ततोऽन्यतः॥

यह भी एक नियम है। परिवाद का अर्थ है मौजूदा दोषों को कहना, और निन्दा से अभिप्राय हैं उन दोषों को बतलाना जो न हो। यदि कोई मनुष्य अपने गुरूके वास्तविक या अवास्तविक दोष बतला रहा हो तो शिष्य को कान बंद कर लेना चाहिए या वहाँ से उठ जाना चाहिए। तब शिष्य का खुद ही गुरूके दोषों की चर्चा करना कितना निन्दनीय है? आजकल के विद्यार्थि तो ऐसी बातें बेखटके किया करते हैं। कैसी भारी अशास्त्रीयता है?

भगवान् मनूने यह भी बतला दिया है कि जो शिष्य ऐसी बातें करेगा, उसका आगे क्या होगा?

परिवादात्खरो भवति श्वा वै भवति निंदकः।

जो परिवाद करेगा वह गधे का जन्म पावेगा और यदि वह निन्दा करेगा तो वह कुत्ते का जन्म पावेगा। संप्रति अश्रद्धा का समय है। इस समय आगे क्या होगा सो छोड भी दें, तो भी जिससे विद्या प्राप्त कर अपन भविष्यत् में अपनी जीवनी सुधारेंगे उसके संबंध में ऐसी बातें स्वयं ही करना अत्यंत अनुचित हैं। मेरी धारणा है कि आज भी ऐसी बातों को अनुचित न समझने का जडत्व सभी की बुद्धि में नहीं आया है। विद्यार्थीदशा अत्यंत पवित्र दशा है। आजकल विद्यार्थियों पर बडा अनवस्था प्रसंग गुजरा है क्यों कि स्कूलों में धार्मिक शिक्षा नहीं मिलती और घर में उस विषय का कोई योग्य नियंता नहींहै। इस दशामें से कब और किस प्रकार उचित मार्ग निकलेगा सो ईश्वर ही जान सकता है।

मेरे ब्रह्मचर्य के विवेचन पर कुछ संशयात्माएँ आक्षेप करेंगी कि प्राचीन कालके ब्रह्मचारी वेदाध्ययन करते थे, अतः उस समय लिए शास्त्रकारों ने नियम बनए होंगे। तब आजके अंग्रजी विद्या सीखनेवालों को उन नियमों से कैसे कामयाबी होगी? इसलिये ब्रह्मचर्य की व्याख्या ही इस स्थान पर देखिये—

ब्रह्मणे वेदविद्यायै कस्यै विद्यायै वा चर्यते इति ब्रह्मचर्यम्।

इस बात से हमारे प्राचीनों की बुद्धिमानी जैसे प्रकट होती है वैसे ही आजकल के दो अक्षरधारी 'पण्डितों' की मूर्खता प्रकट होती है। दण्डक ही ऐसा है कि कोई विद्या सीखनी हो- ब्रह्मविद्या हो वेद-विद्या हो अथवा अन्य कोई भी विद्या हो- विद्यार्थी को सभी नियमों का पालन करना आवश्यक है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यम और पितर।

[ले. श्री. पं. मंगलदेव (तडित्कान्त) जी वेदालंकार (गु. कु. कांगडी.) औंध.]

नवग्व पितर।

तमु नः पूर्वे पितरो नवग्वाः सप्त विप्रासो अभिवाजयन्तः। नक्षद्दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठामद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठाम्॥

ऋ ६।२२।२॥

अथर्व. २०।३६।२॥

अर्थ- (सप्त विप्रासः) सात संख्यावाले मेधावी तथा (नवग्वाः नः पूर्वे पितरः) नवग्व हमारे पुरातन पितर (तं) उस इन्द्रको (नु) निश्चयसे (अभिवाजयन्तः) चारों ओरसे बलवान् बनाते हुए, (नक्षद्दाभं) आगत शत्रु वा पापका नाश करनेवाले (ततुरिं) तारक (पर्वतेष्ठां) पर्वतस्थ (अद्रोघवाचं) द्रोह रहित वा अनतिक्रमणीय वाणी वाले (शविष्ठं) बलवत्तम इन्द्रकी (मतिभिः) मननीय स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं।

सप्तविप्रासः- ५ प्राण, मन व बुद्धि ऐसा महर्षि दयानन्दजीने अर्थ किया है।

नवग्व- यह शब्द विशेष खोज करने लायक है। हम यहांपर भिन्न भिन्न आचार्योंके मतको देंगे जिससे पाठकोंको शोध करनेमें मदद मिल सके।

निरुक्तकार यास्काचार्यने ऋ. १०।१४।६ की व्याख्या करते हुए नवग्व शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है — 'नवगतयो नवनीत गतयो वा'। अर्थात् नव प्रकारकी गतिवाले अथवा नवनीत यानि मक्खन जैसी गतिवाले शुद्धाचरण वाले।

महर्षि स्वामी दयानन्दजीने 'नवीन गतिवाले' ऐसा अर्थ किया है।

सायणाचार्य निम्न लिखित अर्थ करते हैं- नवग्वाः नवभिर्मासैः सत्रमनुतिष्ठवन्तः'। अर्थात् जो नवमासवाले सत्र (यज्ञ विशेष) को करनेवाले हैं।

वेदमें नवग्व व दशग्व शब्द मिलते हैं पर उनका अभिप्राय ठीक तौरपर पता नहीं चलता है। इनपर विशेष खोजकरनी आवश्यक है। अन्य मंत्रोंकी सहायतासे इनके अर्थ जाननेका प्रयत्न करना चाहिए।

यद्यपि इस मंत्रका स्पष्ट रूपसे भाव अभीतक व्यक्त नहीं हुआ है तथापि ऐसा पता चलता है कि इस मंत्रमें आत्माका वर्णन व 'सप्त विप्रासः' से ५ प्राण मन व बुद्धिका अभिप्राय है। और इसप्रकार इस मंत्रमें प्राणोंको पितरसे कहा गया जान पडता हैं।

काम और पितर।

कामो जज्ञे प्रथमो नैनं देवा आपुः पितरो न मर्त्याः। ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महाँस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि॥

अथर्व. ९।२।१९॥

अर्थ- (कामः प्रथमः जज्ञे) काम प्रथम पैदा हुआ। (एनं) इस को (न देवाः आपुः न पितरः न मर्त्याः) न तो देवोंने ही पाया न पितरोंने और नही मनुष्योंने। (ततः) इस कारण से हे काम! तू (विश्वहा) सब प्रकारसे (ज्यायान्) बडा है। हे महान् काम! (तस्मै ते) उस तेरे लिये (नमः इत् कृणोमि) मैं नमस्कार करता हूं।

यहांपर कामको जाननेमें पितरों की भी असमर्थता दर्शाई गई है।

मणि और पितर

यं देवाः पितरो मनुष्या उपजीवन्ति सर्वदा।
स मायमधि रोहतु मणिः श्रेष्ठयाय मूर्धतः॥

अथर्व० १०।६।३२॥

अर्थ- (देवाः पितरः मनुष्याः यं सर्वदा उपजीवन्ति) देव पितर व मनुष्य सदा जिस ...

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

आश्रय से जीते हैं (सः अयं मणिः) वह यह मणि (श्रेष्ठ्याय) श्रेष्ठ पद की प्राप्ति कराने के लिए (मां मूर्धतः अधिरोहतु) मेरे सिरपर स्थित होवे अर्थात् ऐसे मणि को मैं सिरपर धारण करता हूं।

इस मंत्र में यह बतलाया गया है कि देव पितर व मनुष्य मणि के आश्रय से जीते हैं। यहां यह भी पता चलता है कि पितर देव व मनुष्य से भिन्न हैं।

ब्रह्मौदन पाचक पितर।

उरुः प्रथस्व महता महिम्ना सहस्रपृष्ठः सुकृतस्य लोके। पितामहाः पितरः प्रजोपजाहं पक्ता पञ्चदशस्ते अस्मि॥ अथर्व० ११।१।१९॥

अर्थ- हे ब्रह्मौदन! (सहस्रपृष्ठः) हजारों पीठों वाला अर्थात् अत्यंत फैला हुआ तू (सुकृतस्यलोके) सुकृत के लोकमें (महता महिम्ना) अपनी बडी भारी महिमासे (उरुः) विस्तीर्ण होता हुआ। (प्रथस्व) फैल। (पितामहाः पितरः प्रजा उपजा) पितामहों का समूह, पितर, संतति तथा संततिकी संतति और (पंचदशः अहं) पंचदश मैं (ते पक्ता अस्मि) तेरा पकानेवाला हूं।

पंचदश- पंद्रहवां अथवा ५ प्राण, ५ इन्द्रियां व ५ भूतोंसे बना हुआ।

इस मंत्र में पितामह, पितर आदियोंको ब्रह्मौदन पाचक कहा गया है। अर्थात् ये सब ब्रह्मौदन पकाते हैं।

ब्रह्मचारी व पितर

ब्रह्मचारिणं पितरो देवजनाः पृथग् देवा अनुसंयन्ति सर्वे। गन्धर्वा एनमन्वायन् त्रयस्त्रिंशत् त्रिशताः षट् सहस्राः सर्वान्त् स देवांस्तपसा पिपर्ति॥ अथर्व० ११।५।२॥

अर्थ- (पितरः देवजनः देवाः) पितरः देवजन तथा देव (सर्वे) ये सब (पृथक्) अलग अर्थात् स्वतंत्र रूप से (ब्रह्मचारिणं अनुसंयन्ति) ब्रह्मचारी का रक्षार्थ अनुगमन करते हैं। (गन्धर्वाः एनं अनुआयन्) गन्धर्व गण इस ब्रह्मचारीके पीछे पीछे चलते हैं। (षट् सहस्राः त्रिशतः त्रयः त्रिंशत्) छे हजार तीन सौ तेंतीस (६३३३), (सर्वान् देवान्) इन सब देवों को (सः) वह ब्रह्मचारी (तपसा पिपर्ति) अपने तप द्वारा पूर्ण करता है-पालन करता है।

इस मंत्रमें दर्शाया गया है कि पितरभी ब्रह्मचारी की रक्षाके लिए उसके पीछे पीछे सदा फिरते रहते हैं ता कि ब्रह्मचारी को किसी भी प्रकार का कष्ट न पहुंच सके।

पितरों की शक्ति का नियंत्रण

मा छेद्म रश्मीँ रिति नाधमानाः पितृणां शक्ती रनुयच्छमानाः। इन्द्राग्निभ्यां कं वृषणो मदन्ति ता ह्यद्री धिषणाया उपस्थे॥ ऋ० १।१०९।३॥

अर्थ- (रश्मीन् मा छेद्म इति नाधमानाः)संततिरूपी रश्मियों को हम मत काटें, इस प्रकार याचना करते हुए, तथा (पितृणां शक्तीः अनुयच्छमानाः) पितरों की शक्तियों को नियंत्रित करते हुए और अतएव (वृषणः) वीर्य युक्त हुए हुए (धिषणायाः उपस्थे) बुद्धि के समीपमें अर्थात् बौद्धिक कार्योंमें (इन्द्राग्नीभ्यां) इन्द्र व अग्नि से (कं मदन्ति) सुख प्राप्त करके प्रसन्न होते हैं। (हि) निश्चय से (तौ) वे इन्द्राग्नी (अद्री) न नष्ट होनेवाले हैं।

इस मंत्र में यह दर्शाया गया है कि न तो सर्वथा संततिका उच्छेद ही करना चाहिए और नहीं सर्वथा संतति की वृद्धि ही करनी चाहिए। पितरों की शक्ति अर्थात् उत्पादक शक्तिका नियंत्रण करना चाहिए जिससे बुद्धि की व बलकी वृद्धि होती है। यहां पितरों की शक्तिसे उत्पादक शक्ति का अभिप्राय है।

देवों के पितर

ये वो देवाः पितरो ये च पुत्राः सचेतसो मे शृणुतेदमुक्तम्। सर्वेभ्यो वः परि ददाम्येतं स्वस्त्येनं जरसे वहाथ॥ अथर्व० १।३०।२॥

अर्थ-(देवाः) हे देवो! (ये वः पितरः ये च पुत्राः) जो तुम्हारे पितर हैं और जो पुत्र हैं वे सब तुम (सचेतसः) सावधान हुए हुए (मे इदं उक्तं) मेरे इस कथन को (शृणुत) सुनो। (वः सर्वेभ्यः) तुम सब के लिए मैं (एतं) इस मनुष्य को (परि-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ददामि)सौंपताहूं, (एनं) इसे (स्वस्ति) कल्याणपूर्वक (जरसे वहाथ) वृद्धावस्था के लिए पहुंचाओ अर्थात् यह वृद्धावस्था आने के पूर्व ही अल्पायु में मरने न पावे।

परिददामि - रक्षाके लिए सौंपताहूं। परि उपसर्ग पूर्वक दा धातुका अर्थ रक्षणार्थ देना है। इस मंत्र में देवों के पितर व पुत्रों का उल्लेख है।

देवाः पितरः पितरो देवाः। यो अस्मि सो अस्मि।
अथर्व० ६।१२३।३॥

अर्थ- (देवाः पितरः) देवगण पितर हैं और (पितरः देवाः) पितर देव हैं। (यः अस्मि) जो मैं हूं (सः अस्मि) वह मैं हूं।

इस मंत्रका वास्तविक क्या भाव है यह अभीतक ठीक नहीं कहा जा सकता। सायणाचार्यने इस मंत्रका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है जो देव वसु रुद्रादि रूप हैं वे हमारे पितर हैं और जो हमारे पितर हैं वे वसु रुद्रादि रूप हैं। इस प्रकार परस्पर के व्यतिहारसे पितरोंका देवात्मक होना दृढ किया है। (यः अस्मि) जिसका मैं हूं उसका ही मैं हूं। अर्थात् एकही पिताका हूं। क्यों कि स्त्रियां संभावितव्यतिक्रम होती हैं अतःमैं निश्चयसे कहता हूं कि मैं अपने पिताका ही पुत्रहूं। अपने इस अभिप्रायकी पुष्टिके लिए सायणाचार्यने मीमांसा सूत्रका प्रमाण दिया है- 'स्त्र्यपराधात् कर्तुश्च पुत्रदर्शनात्'।

अस्तु इस मंत्रका कुछभी अभिप्राय हो तथापि हमें इतना पता चलता है कि पितर देवत्वको प्राप्त होते हैं। इस मंत्रके अभिप्रायवाले और मंत्र पहिले आचुके हैं।

पितरोंके ऊर्ज, रस आदिके लिए नमस्कार

नमो वः पितरः ऊर्जे नमो वः पितरो रसाय॥
अथर्व० १८।४।८१॥

अर्थ- (पितरः) हे पितरो ! (वः ऊर्जे नमः) तुम्हारे अन्न वा बलके लिए नमस्कार है। (पितरः) हे पितरो ! (वः रसाय नमः) तुम्हारे रस-अन्नरस (दुग्ध आदि) के लिए नमस्कार है।

नमो वः पितरो भामाय नमो वः पितरो मन्यवे
॥ अथर्व० १८।४।८२ ॥

अर्थ- (पितरः) हे पितरो ! (वः) तुम्हारे (भामाय) क्रोधके लिए (नमः) नमस्कार हो। (पितरः) हे पितरो ! (वः) तुम्हारे (मन्यवे) मन्युके लिए (नमः) नमस्कार हो। भाम तथा मन्यु दोनों क्रोधके विशेष भेद हैं। भाम साधारण क्रोधका नाम है। मन्युको हम सात्विक क्रोध कह सकते हैं।

नमो वः पितरो यद् घोरं तस्मै नमो वः
पितरो यत् क्रूरं तस्मै॥ अथर्व० १८।४।८३॥

अर्थ-(पितरः) हे पितरो!(वः)तुम्हारा(यत् घोरं) जो घोर कर्म है (तस्मै)उसके लिए(नमः) नमस्कार है। (पितरः) हे पितरो ! (वः) तुम्हारा (यत् क्रूरं) जो क्रूर कर्म है, (तस्मै) उसके लिए (नमः) नमस्कार है।

नमो वः पितरो यच्छिवं तस्मै नमो वः पितरो
यत् स्योनं तस्मै अथर्व० १८।४।८३॥

अर्थ— (पितरः) हे पितरो ! (वः) तुम्हारा (यत्) जो (शिवं) कल्याणमय कर्म है (तस्मै) उसके लिए (नमः) नमस्कार है। (पितरः) हे पितरो ! (वः) तुम्हारा (यत् स्योनं) जो सुखमय कर्म है (तस्मै नमः) उसके लिए (नमः) नमस्कार है।

इस प्रकार इन मंत्रोंमें पितरोंके विविध कर्मोंके लिए नमस्कार किया गया है।

पितरों का इष्टापूर्त

अशीतिभिः तिसृभिः सामगेभिरादित्येभिर्वसुभिरङ्गिरोभिः। इष्टापूर्तं भवतु नः पितॄणामामुदे हरसा दैव्येन॥ अथर्व० २।१२।४॥

अर्थ- (तिसृभिः अशीतिभिः) तीन अशीतियोंके साथ (सामगेभिः) साम गायकों के साथ (आदित्येभिः) आदित्यों के साथ (वसुभिः) वसुओं के साथ तथा (अङ्गिरोभिः) अङ्गिरसों के साथ मिलकर (पितॄणां) पितरोंका (इष्टापूर्तं) इष्टापूर्त (नः अवतु) हमारी रक्षा करे। (दैव्येन हरसा) दिव्य तेजद्वारा (अमुं) इस दुष्ट पुरुषको (आददे)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इस मंत्रमें आएहुए अशीति आदि पदोंपद भिन्न भिन्न भाष्यकारोंने भिन्न भिन्न अर्थ किए हैं। अस्तु हमें उन पदोंसे यहां विशेष अभिप्राय नहीं है अतः उन-पर विचार नहीं करेंगे। इष्टापूर्तका लक्षण निम्न लिखित है—

अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चानुपालनम्।
आतिथ्यं वैश्वदेवं च इष्ट मित्यभिधीयते ॥ १ ॥
वापीकूपतडागादि देवतायतनानि च।
अन्नप्रदानमारामाः पूर्त्तमित्यभिधीयते ॥ २ ॥

इस मंत्रमें पितरोंका इष्टापूर्त हमारा रक्षण करता है यह दर्शाया है। हमारे रक्षणार्थ पितरोंको इष्टापूर्त करना चाहिए ऐसी प्रतिध्वनि यहांसे निकलती है।

यदीदं मातुर्यदि वा पितु नः परिभ्रातुः पुत्रा-
च्चेतसः एन आगन्। यावन्तो अस्मान् पितरः
सचन्ते तेषां सर्वेषां शिवो अस्तु मन्युः ॥
अथर्व. ६।११६।३ ॥

अर्थ- (यदि यत् इदं एनः) यदि यह जो पाप (नः मातुः, पितुः भ्रातुः, पुत्रात् चेतसः वा) हमारी माताके पाससे, पिताके पाससे भाईके पाससे, पुत्रके पाससे अथवा मनके पाससे (परि आगत्) प्राप्त हुआ है अर्थात् इनके कारण यह पाप आया है तो (यावन्तः पितरः अस्मान् सचन्ते) जितनेभि पितर हमारे साथ संगत हुए हुए हैं (तेषां सर्वेषां) उन सबका (मन्युः) क्रोध (शिवः अस्तु) कल्याण कारी होवे। उससे हमारा नुकसान न होने पावे।

इस मंत्र में पाप के कारण से उत्पन्न पितरों के क्रोध को शांत करके उसे कल्याण कारी बनाने की प्रार्थना है।

पितरों से मिलकर श्रेष्ठ होना।

येऽत्र पितरः पितरो येऽ त्रयूयं स्थ युष्माँस्ते नु
यूयं तेषां श्रेष्ठा भूयास्थ ॥ अथर्व० १८।४।८६ ॥

अर्थ- (ये पितरः अत्र) ये जो अन्य पितर यहां हैं और (ये) जो (यूयं पितरः) तुम पितृगण (अत्रस्थ) यहां पर हो, (ते) वे अन्य पितर (युष्मान् अनु) तुम्हारे अनुकूल होवें और (यूयं) तुम (तेषां श्रेष्ठाः भूयास्थ) उन में श्रेष्ठ होवो।

ये इह पितरो जीवा इह वयं स्मः। अस्माँस्तेऽनु
वयं तेषां श्रेष्ठा भूयास्म अथर्व० १८।४।८७ ॥

(ये) जो (पितरः) पितृगण (इह) यहां हैं उनके अनुग्रहसे (वयं) हम (इह) यहां (जीवाः स्मः) जीवित हैं। (ते पितरः अस्मात् अनु) वे पितर हमारे अनुकूल बने रहें। (वयं) हम (तेषां श्रेष्ठाः भूयास्म) उन में श्रेष्ठ होवें। अथवा वे हमारे अनुकूल हों और हम उनके। दोनों मिलकर परस्पर श्रेष्ठ होवें।

इन मंत्रों में पितरों के साथ पारस्परिक अनुकूल व्यवहारोंसे श्रेष्ठ बननेका उल्लेख है।

पितरों के लिए धन, बल व आयु

दमूनाः देवः सविता वरेण्यो दधद् रत्नं दक्षं
पितृभ्यः आयूंषि। पिबात् सोमं ममदेनमिष्टे
परि ज्मा चित् क्रमते अस्य धर्मणि ॥
अथर्व० १।१४।४ ॥

अर्थ- (दमूनाः) दानशील (वरेण्यः) श्रेष्ठ स्वीकार करने योग्य (सविता देवः) सूर्य देव (पितृभ्यः) पितरों के लिए (रत्नं) रत्न को (दक्षं) बलको और (आयूंषि) आयुको (दधत्) धारण करता हुआ (सोमं) सोमको (पिबात्) पीए। (एनं) इस सविता देवको (इष्टे) यज्ञ में सोमपान कराके (ममत्) प्रसन्न करे। (अस्य धर्मणि) इस सविता - सूर्य के धर्म में स्थित हुई हुई (ज्मा) पृथिवी (चित्) भी (परि क्रमते) परिक्रमा करती है। इस मंत्र में यह दर्शाया गया है कि सूर्य पितरों के लिए धन बल आयुको देता है। यहांपर हमें 'परि ज्मा चित् क्रमते अस्य धर्मणि' से यह भी स्पष्ट पता चलता है कि पृथिवी सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करती है। पृथिवी के सूर्य के चारों ओर घूमने के भौगोलिक सिद्धान्त को यह मंत्र पुष्ट कर रहा है। ज्मा शब्द निघण्टु में पृथिवी वाची नामों में पठित है। देखो निघण्टु।

पितर व तृतीय ज्योति।

एतद् वो ज्योतिः पितरस्तृतीयं पञ्चौदनं ब्रह्म-
णेऽजं ददाति। अजस्तमांस्यप हन्ति दूरमस्मि-
ल्लोके श्रद्धानेन दत्तः ॥ अथर्व० ९।५।११ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अर्थ- (पितरः) हे पितरो ! (वः)तुह्मारे लिए (एतद् तृतीयं ज्योतिः) यह तीसरी ज्योति परमात्मा (ब्रह्मणे) ब्रह्मज्ञानार्थ (पञ्चौदनं अजं) पंचौदन वाले अर्थात् ५ भूत से बने शरीर से युक्त जन्म रहित जीवात्माको (ददाति) देता है। (श्रद्धानेन दत्तः) श्रद्धा रखने के कारण दिया हुआ (अजः) यह अज जीवात्मा (अस्मिन् लोके) इस लोक में (तमांसि) अज्ञानान्धकारों को (अपहन्ति) नष्ट करता है दूर करता ह।

इस मंत्र में यह दर्शाया कि श्रद्धा रखने के कारण परमात्मा पितरों को ऐसी आत्मा देता है कि जो सारे अज्ञानान्धकारों को दूर करके प्रकाश का मार्ग दर्शाती है। यहां श्रद्धा का माहात्म्य प्रकट हो रहा है।

परेत को पितरों का जानना !

इदं पितृभ्यः प्रभरामि बर्हिर्जीवं देवेभ्य उत्तरं स्तृणामि। तदारोह पुरुष मेध्यो भवन् प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम्॥ अथर्व १८।४।५१॥

अर्थ- (इदं बर्हिं पितृभ्यः प्रभरामि) यह कुशासन पितरों के लिए रखता हूं बिछाताहूं। (देवेभ्यः जीवं उत्तरं स्तृणामि) देवों के लिए जीवको उससे ऊंचा बिछाता हूं। (पुरुष) हे पुरुष ! (मेध्यः भवन्) पवित्र होता हुआ तू (तत् आरोह) उस पर बैठ। (परेतं त्वां पितरः प्रति जानन्तु) परेत अर्थात् परे गए हुए वा उच्चासनको प्राप्त हुए हुए तुझे पितर जानें।

एदं बर्हिरसदो मेध्यो भूः प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम्। यथा परु तन्वं संभरस्व गात्राणि ते ब्रह्मणा कल्पयामि॥

अथर्व. १८।४।५२।

अर्थ— हे पुरुष ! (इदं बर्हिः असदः)इस कुशासन पर तू बैठा है। (मेध्यः भूः) पवित्र हुआ है। (पितरः परेतं त्वां जानन्तु) इसलिए पितर परेत हुए हुए तुझको जानें। (यथा परु तन्वं संभरस्व) जोडोंके अनुसार शरीरको भर, अर्थात् जहां जोड चाहिए वहां जोड बनाता हुआ शरीरको पूर्ण कर। मैं (ते गात्राणि) तेरे अंगोंको (ब्रह्मणा) ब्रह्मद्वारा (कल्पयामि) समर्थ बनाता हूं यानि तेरे शरीरमें ब्रह्म द्वारा शक्ति देताहूं।

उपरोक्त दोनों मंत्रों का क्या अभिप्राय है यह अभीतक हमें स्पष्ट नहीं हुआ है। अतएव इन मंत्रों का कहां विनियोग होना चाहिए इस बातका निश्चय नहीं हो सकता है। संपूर्ण सूक्तोंपर विचार करते हुए हम इन मंत्रोंपर पुनः विचारकर प्रकाश डालनेका प्रयत्न करेंगे। यहा पाठकोंके सामने विचारार्थ इनको पेशकर दिया है।

पितरोंमें सुखद रस्ता बनाना।

इदं मे ज्योतिरमृतं हिरण्यं पक्वं क्षेत्रात् कामदुघा म एषा। इदं धनं निदधे ब्राह्मणेषु कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः॥

अथर्व. ११।१।२८॥

अर्थ—(इदं हिरण्यं) यह सोना (मे अमृतं ज्योतिः) मेरा अनश्वर प्रकाश है। (क्षेत्रात्) खेतसे उत्पन्न यह (पक्वं) पका हुआ अन्न (मे एषा कामदुघा) मेरी यह कामनाओंकी पूर्ति करनेवाली गौ है। (इदं धनं ब्राह्मणेषु निदधे) यह धन मैं ब्राह्मणोंमें स्थापित करता हूं अर्थात् उन्हें देता हूं। और इस प्रकार (पितृषु पन्थां कृण्वे) पितरोंमें रस्ता बनाता हूं (यः) जो कि रस्ता (स्वर्गः) स्वर्ग है—सुख प्रापक है।

इस मंत्रमें यह दर्शाया गया है कि ब्राह्मणोंका धन दान करनेसे पितरोंके बीचमें सुखप्रद मार्ग बनाया जा सकता है। पितरोंके बीचमें यदि सुख पूर्वक विचरण करना हो तो ब्राह्मणोंको धन दान करना चाहिए ऐसा इस मंत्रका आशय प्रतीत होता है।

बभ्रेरध्वर्यो मुखमेतद् विमृड्ढ्याज्याय लोकं कृणुहि प्रविद्वान्। घृतेन गात्रानु सर्वा विमृड्ढि कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः॥

अथर्व. ११।१।३१॥

अर्थ- (अध्वर्यो) हे अध्वर्यु (बभ्रेः) पोषण करनेवाले ब्रह्मौदन के (एतत् मुखं) इस मुख को अर्थात् उस के ऊपर के छिलके को (विमृड्ढि) विशेष रूपसे साफ कर। (प्रविद्वान्) हे प्रकृष्ट ज्ञान-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वान ! (आज्याय लोकं कृणुहि) उन चावलों में घीडालनेके लिए स्थान बना। (घृतेन सर्वाणि गात्राणि विमृड्ढि) घी द्वारा उस ब्रह्मौदनके सर्व अवयवोंको परिमार्जित कर। इस ओदन द्वारा मैं (पितृषु पन्थां कृण्वे) पितरों में मार्ग बनाता हूं (यः) जो कि मार्ग (स्वर्गः) सुख प्रापक है।

इस मंत्र में यह दर्शाया गया है कि यदि पितरों में सुख पूर्वक विचरण करना हो तो खूब घी मिश्रित चावलों (ब्रह्मौदन) का होम करना चाहिये।

मृत पितरोंका अनुगमन निषेध।

आवतस्त आवतः परावतस्त आवतः।
इहैव भव मानुगा मा पूर्वाननुगाः।
पितॄनसुं बध्नामि ते दृढम् ॥ अथर्व० ५।३०।१॥

अर्थ- (ते आवतः आवतः) तेरे समीपसे समीप और (ते परावतः) तेरे दूरसे भी (आवतः) दूर देशसे (ते असुं) तेरे प्राणको (दृढं बध्नामि) दृढता से बांधता हूं। (इह एव भव) तू यहां ही रह। (मा पूर्वान् अनुगाः) पूर्व मृत पुरुषों के पीछे मत जा अर्थात् विनष्ट मत हो। और (मा पितॄन् अनुगाः) इसी प्रकार पूर्व मृत पितरों के पीछे भी मत जा।

मा ते मनस्तत्र गान्मा तिरो भून्मा जीवेभ्यः
प्रमदो मानु गाः पितॄन्। विश्वे देवा अभिरक्षन्तुत्वेह ॥ अथर्व. ८।१।७॥

अर्थ- हे आयु की कामना करनेवाले मनुष्य ! (ते मनः) तेरा मन (तत्र मा गात्) वहां मृत्यु लोक में मत जाए। (मा तिरः भूत्) और तेरा मन अन्तर्हित भी मत होवे। (मा जीवेभ्यः प्रमदः) तू जीवों के लिए अर्थात् जीवित रहने के लिए असावधान मत रह। (पितॄन् मा अनुगाः) मृत पितरों के पीछे मत जा। (विश्वे देवाः) सब देवगण (त्वा इह अभिरक्षन्तु) तेरी यहां ही रक्षा करें अर्थात् सब देव तुझे यहींपर बनाए रखें, मरने न दें।

इन उपरोक्त मंत्रों में मृत पितरों के अनुगमन करने का अर्थात् मरने के विषय में अनुगमन का निषेध किया गया है। दीर्घायु प्राप्त करने के लिए कहा गया है।

पितरोंमेंसे यक्ष्मा के दूर करने की प्रार्थना।

अङ्गादङ्गाद् वयमस्या अपयक्ष्मं निदध्मसि ।
तन्माप्रापत् पृथिवीं मोत देवान् दिवं मा प्रापदुर्वन्तरिक्षम् अपो मा प्रापन् मलमेतदग्ने
यमं मा प्रापत् पितॄंश्च सर्वान् ॥
अथर्व० १४।२।६९॥

अर्थ- (अस्या अङ्गात् अङ्गात्) इसके प्रत्येक अंगसे (वयं यक्ष्मं नि अप दध्मसि) हम यक्ष्मको बिलकुल बाहिर निकाल देते हैं। (तत् पृथिवीं मा प्रापत्) वह यक्ष्म पृथिवी को मत प्राप्त होवे। (उत देवान् मा) और देवों को भी मत प्राप्त होवे। (दिवं मा) द्यु लोक को भी मत प्राप्त होवे। (उरु अंतरिक्षं मा) विशाल अंतरिक्ष को भी मत प्राप्त होवे। (एतत् मलं) यह यक्ष्म रूपी मैल (अपः मा प्रापत्) जलों को भी मत प्राप्त होवे। (अग्ने) हे अग्नि ! (यमं मा प्रापत्) यम को भी मत प्राप्त होवे, (च) और (सर्वान् पितॄन्) सब पितरों को भी मत प्राप्त होवे।

इस मंत्र में यक्ष्म रोग के दूर करने की तो प्रार्थना है ही पर यहां एक बात विशेष लक्ष्य में रखने जैसी है और वह यह कि यम व पितरों को यक्ष्म के न प्राप्त होने की प्रार्थना अग्नि से की गई है। इसका कारण स्पष्ट ही है। हम पहिले देख आए हैं कि अग्नि यम लोक में पितरों के पास जाती है। अतः अग्निद्वारा ही यक्ष्म रोग के वहां पहुंचने की संभावना है। अतएव अग्नि से कहा गया है कि यम व पितरों को यक्ष्म प्राप्त मत होवे।

वधूदर्श पितर।

ये पितरो वधूदर्शा इमं वहतुमागमन्।
ते अस्यै वध्वै संपत्न्यै प्रजावच्छर्म यच्छन्तु ॥
अथर्व० १४।२।७३॥

अर्थ- (ये) जो (वधूदर्शाः) वधू को देखने की इच्छा वाले (पितरः) पितृगण (इमं वहतुं)

CC-0.In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इस रथको (आगमन्) प्राप्त हुए हैं, (ते) वे पितर (संपत्न्यै अस्यै वध्वै) उत्तम पत्नी इस वधू के लिए (प्रजावत् शर्म) संततिवाले सुख को (यच्छन्तु देवें)। अर्थात् इसे संततिजन्य सुख देवें।

जब कन्या विवाहानन्तर पति गृह को जाने लगती है तब रथमे वा अन्य वाहन में सवार होनेपर उसे जो पितर देखने आए हैं उनसे प्रार्थना की गई है कि इस वधू को उत्तम संतान देकर सुखी करो।

कन्याका सदा पितरों (श्वसुरकुल) में रहना।

भगमस्या वर्च आदिष्यधि वृक्षादिव स्रजम्।
महाबुध्न इव पर्वतो ज्योक् पितृष्वास्ताम्॥
अथर्व० १। १४।१॥

अर्थ- (वृक्षात् स्रजं इव) जिस प्रकार वृक्ष से फूलों की माला ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार मैं वर (अस्याः) इस कन्या का (भगं वर्चः) ऐश्वर्यशाली तेज को मैं (आदिषि) ग्रहण करता हूं अर्थात् इस कन्या को पत्नी रूप से मैं स्वीकृत करता हूं। यह वधू (महाबुध्नः पर्वतः इव) बडे मूलवाले पर्वत की तरह (ज्योक) सदा (पितृषु आस्ताम्) पितरों में अर्थात् अपने (कन्या के) श्वसुर कुल में स्थिर रह। जिस प्रकार बडी मूलवाला पर्वत जडों के खूब जमीन के अन्दर गहरा जाने से निश्चल होता है उसी प्रकार यह निश्चल श्वसुरकुल में रहे।

एषा ते कुलपा राजन् तामु ते परि दद्मसि।
ज्योक् पितृष्वासाता आशीर्ष्णः शमोप्यात्॥
अथर्व० १। १४।३॥

अर्थ- इस मंत्र में वरके श्वसुरकुल की वर के प्रति उक्ति है। कन्या का पिता कन्यादान करता हुआ वरसे कहता है कि- (राजन्) हे राजमान वर! (एषा) यह वधू (ते कुल पा) तेरे कुलका रक्षण करनेवाली है। (तां) इस प्रकारकी इस वधू को (ते परिदद्मसि) तुझे हम सौंपते हैं। यह कन्या (ज्योक्) सर्वदा (पितृषु आसातै) तेरे (वरके) पितरों में अर्थात् श्वसुरकुल में स्थित रहे। (आशीर्ष्णः सं ओप्यात्) सिर से लेकर सब अङ्गों में इसकी वृद्धि होती रहे अर्थात् श्वसुरकुल में यह क्षीण न होवे सर्वदा वृद्धि को प्राप्त होती रहे।

इस प्रकार इन मंत्रों में पितरों का अभिप्राय श्वसुरकुल प्रतीत होता है।

पूषाकी पितरों को प्रेरणा।

आ तत्ते दस्रमन्तुमः पूषन्नवो वृणीमहे।
येन पितॄनचोदयः॥ ऋ० १। ४२। ५॥

अर्थ- (दस्र) हे दर्शनीय वा दुष्टों के नाश करने वाले (मंतुमः) ज्ञानवान् (पूषन्) पूषा (ते तत् अवः वृणीमहे) हम तेरी उस रक्षा को चाहते हैं (येन) जिस से कि तू पितॄन् अचोदयः) पितरों को प्रेरित करता रहता है।

पूषा पितरों को अपनी रक्षा द्वारा प्रेरित करता रहता है ऐसा यहांपर ज्ञात होता है।

ब्रह्मगौके दूध पीने से पितरों में पाप

क्रूरमस्या आशसनं तृष्टं पिशितमस्यते।
क्षीरं यदस्याः पीयते तद् वै पितृषु किल्बिषम्॥
अथर्व० ५। १९। ५॥

अर्थ—(अस्याः) इस ब्रह्मगौका (आशसनं) मारना (क्रूरं) क्रूरता का काम है। यदि (पिशितं अस्यते) उसका मांस खाया जावे तो वह (तृष्टं) प्यास लगानेवाला होता है। (अस्याः यत् क्षीरं पीयते) इसका जो पिया जाता है (तद्) वह दूध पीना (वै) निश्चय से (पितृषु किल्बिषं) पितरों में पाप पैदा करनेवाला होता है।

संपूर्ण सूक्त देखने से ब्रह्म - गौका अर्थ ब्राह्मण की जमीन वा गाय प्रतीत होता है। यदि राजा ब्राह्मण की जमीन को छीन ले वा उसपर कर लगावे अथवा अन्य किसीप्रकार का अत्याचार करे तो उसे इससे क्या नुकसान होता है, इस का यहांपर वर्णन है। इसके अनुसार पितर शब्द से राजकर्मचारियों का ग्रहण है।

पालक अर्थमें पितर

खण्वखाई खैमखाइ मध्ये तदुरि।
वर्षं वनुध्वं पितरो मरुतां मन इच्छत॥
अथर्व० ४। १५। १५॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अर्थ- (खण्वखे, खैमखे तदुरि) हे खण्वखा, खैमखा तथा तदुरि नामक जातिवाले मण्डूको ! (वर्षं मध्ये वनुध्वं) वर्षाकेबीचमें आनन्दित होओ। (पितरः) हे पालक जनो ! तुम (मरुतां मन इच्छत) वायुओंका (मनः) मनन करने योग्य ज्ञान प्राप्त करो। अर्थात् किस वायुसे कब व कैसी वृष्टि होती है इत्यादि वायु संबन्धी ज्ञानके मनन करने का प्रयत्न करो।

इस मंत्रके आध्यात्मिक अर्थमें पितर इन्द्रियोंके लिए आया प्रतीत होता है। आध्यात्मिक अर्थ इस प्रकार है-

(खण्वखे) हे इडानाडि ! (खैमखे) हे पिंगलानाडि। (तदुरि) हे ब्रह्म तक पहुंचानेवाली नाडि ! तथा (मध्ये) हे मध्यमें रहनेवाली सुषुम्नानाडि ! तुम (वर्षं वनुध्वं) ब्रह्मज्ञानसे उत्पन्न आनन्द वृष्टिसे आनन्दित हो ओ। (पितरः) हे इन्द्रिय गणो ! तुम (मनः इच्छत) मनके साथ संगत होने की इच्छा करो अर्थात् मनके साथ एकाग्र होओ, ताकि ब्रह्म ज्ञानका लाभ होसके। 'खण्वखाः कण्वं आत्मानं खनतीति खण्वखाः। खकारः छांदसः। खैमखाः खैस्थैर्येसे मन् प्रत्यय। जो स्थिरता उत्पन्न करे। तदुरी तत् ब्रह्म इयर्तीति तदुरी।

मेधाके उपासक पितर

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरुस्वाहा॥
यजुः ३२।१४॥

अर्थ- (यां मेधां) जिस बुद्धिकी (देवगणाः पितरः च) देवगण तथा पितृगण (उपासते) उपासना करते हैं, हे अग्ने ! (तया मेधया) उस मेधासे (अद्य) आज (मां) मुझे (मेधाविनं) मेधावी (कुरु) कर। (स्वाहा)।

इस मंत्रमें उस मेधाको मांगा गया है जिसकी कि पितर उपासना करते रहते हैं।

पितरोंका देवत्व लाभ

महिम्न एषां पितरश्च नेशिरे देवा देवेष्वदधुरपि क्रतुम्। सम विव्यचुरुत यान्यत्विषु रैषां तनूषु नि विविशुः पुनः॥ ऋ. १०।५६।४॥

अर्थ— (एषां महिम्नः पितरः चन ईशिरे) इन देवोंकी महिमाके पितरभी स्वामी बने अर्थात् पितरोंने देवोंकी महिमाको प्राप्त किया यानि देव बनगए। और इस प्रकार (देवाः) देव हुए हुए (देवेषु अपि क्रतुं अदधुः) देवोंमेंभी कर्म करने लगे ताकि देवत्वसे भी ऊंचे पदका लाभ हो। (उत) और (यानि अत्विषुः) जो तेज प्रकाशित हो रहे हैं वे (सम विव्यचुः) एकत्रित हुए। तथा (पुनः फिर (एषां) इन पितरोंके (तनूषु) शरीरोंमें (निविविशुः) पूर्णतया प्रविष्ट होगये।

इस मंत्रका भाव स्पष्ट नहीं होता तथापि पितरोंके देवत्व लाभका इस मंत्रसे पता चलता है।

यज्ञका पितरोंमें जाना

देवान् दिवमगन् यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु मनुष्यानन्तरिक्षमगन् यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु पितॄन् पृथिवीमगन् यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु यंकंच लोकमगन् यज्ञस्ततो मे भद्रमभूत्॥ यजुः ८।६०॥

अर्थ- (यज्ञः) यज्ञ (देवान् दिवं अगन्) देवोंको व द्युको गया है (ततः) इसकारणसे (मा द्रविणं अष्टु) मुझे धनसे व्याप्त करे अर्थात् धन मिले।

इसी प्रकार यज्ञ मनुष्य व अंतरिक्ष, पितर व पृथिवी, तथा जिस किसी लोकको गया हुआ है वहांसे मुझे धन प्राप्ति करावे।

पितरोंके लिए यज्ञ करनेसे धन लाभ होता है ऐसा यहां हमें मंत्रसे पता चल रहा है। इस मंत्रमें यज्ञके महत्व का वर्णन है।

जनक अर्थमें पितर।

ऐन्द्रः प्राणो अङ्गेऽङ्गे निदीध्यदैन्द्र उदानो अङ्गे अङ्गे निधीत। देवत्वष्टर्भूरि ते संसमेतु सलक्ष्मा यद्विषुरूपं भवाति। देवत्रा यन्तमवसे सखायोऽनु त्वा माता पितरो मदन्तु॥ यजुः ६।२०॥

अर्थ- (ऐन्द्रः प्राणः) आत्मा संबन्धी प्राण (अङ्गे अङ्गे) प्रत्येक अङ्गमें (निदीध्यत्) प्रकाशित होवे। (उदानः अङ्गे अङ्गे निधीत)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उदान वायु प्रत्येक अङ्गमें स्थित होवें। (देवः त्वष्टः) त्वष्टा देव (यत् सलक्ष्मा विषुरूपं भवाति) जो एकसा होते हुएभी विविध रूपवाला होगया है उसे (सं समेतु) भली प्रकार एकत्रित करे वा एकसा बनावे। (अवसे) रक्षाके लिए (देवत्रा यंतं त्वा) देवोंके प्रति जाते हुए तेरे (माता पितरः) माता पिता (अनु मदन्तु) प्रसन्न होवें।

पितरोंके लिए भिन्न भिन्न प्राणी।

आखुः कशः मन्थालस्ते पितॄणाम्॥ यजुः २४।३८।

अर्थ-- (पितॄणां) पितरोंके निमित्त (ते) वे (आखुः) चूहा, (कशः) छुछुंदर तथा (मान्थालः छिपकली होवें।

इस मंत्रका क्या अभिप्राय है यह कुछ पता नहीं चलता। महर्षि स्वामी दयानन्द जीका भाष्य भी कुछ प्रकाश नहीं डालता। पाठक वर्ग इस पर विचार करें। यजुर्वेदके मंत्र प्रायः करके इसी ढंगके अस्पष्ट हैं।

विषाणका ओषधि व पितर

रुद्रस्य मूत्रमस्यमृतस्य नाभिः। विषाणका नाम वा असि पितॄणां मूलादुत्थिता वातीकृत-नाशिनी॥ अथर्व० ६।४४।३॥

इस मंत्रमें विषाणका नामक ओषधिका वर्णन है। हे ओषधि! तू (रुद्रस्य मूत्रं असि) भयंकर रुलाने वाले रोगसे छुडाने वाली है। अर्थात् तेरे सेवनसे भयंकर रोगका भी शमन होजाता है। तूं (अमृतस्य नाभिः) अमरताकी जननी है। तेरे सेवनसे अमरत्व प्राप्त हो सकता है। (विषाणका नाम असि) तू विषाणका नामवाली है। तू (पितॄणां मूलात् उत्थिता) पितरोंके मूलसे प्रकट हुई हुई है तथा तू (वातीकृत-नाशिनी) वायुसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंका नाश करनेवाली है।

इस मंत्र में विषाणका ओषधि को पितरों के मूल से उत्पन्न हुई हुई बताया गया है। पितरों के मूल से उत्पन्न होने का क्या अभिप्राय है तथा ये पितर कौन हैं जिनके कि मूल से इस ओषधिकी उत्पत्ति होती है इत्यादि वैद्यों के खोज करनेका विषय है। संभव है वैद्यगण इस पर विशेष प्रकाश डाल सकें। अतः यदि वैद्यगण इस विषय में सहायता करेंगे तो उत्तम होगा।

स्वर्ग-वर्णन।

यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वः स्वायाः। अश्लोणा अङ्गैरहुता स्वर्गे तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान्॥ अथर्व० ६।१२०।३॥

अर्थ - (यत्र) जहांपर (सुहार्दः सुकृतः) साधु हृदयवाले श्रेष्ठ कर्मों के करनेवाले (स्वायाः तन्वः रोगं विहाय) अपने शरीर के रोग का त्याग करके अर्थात् रोग रहित शरीर से युक्त हुए हुए (मदन्ति) आनन्द भोगते हैं (तत्र स्वर्गे) वहां पर स्वर्ग में (अश्लोणाः) अपङ्ग न होते हुए (अङ्गैः अहुताः) शरीरावयोंसे कुटिल गति वाले न होते हुए अर्थात् अङ्गादि के ढेढे न होनेसे सुन्दर गति करते हुए (पितरौ) माता पिता तथा (पुत्रान्) पुत्रों को देखें।

इस मंत्र में स्वर्ग का वर्णन है। जहां पर नीरोगी होते हुए मनुष्य सुखी रहते हैं वह स्वर्ग है, ऐसा मंत्र का आशय प्रतीत होता है।

पितरों का धन आदि देना।

यन्माहुतमहुतमाजगाम दत्तं पितृभिरनुमतं मनुष्यैः। यस्मान्मे मन उदिव रारजीत्यग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु॥

अथर्व० ६।७१।२॥

अर्थ—(यत्) जो प्रथम मंत्रोक्त गाय, घोडा, सोना आदि धन (हुतं) दिया हुआ अथवा (अहुतं) किसी से न दिया हुआ स्वयं कमाया हुआ और जो (पितृभिः दत्तं) पितरों से दिया हुआ जिसकी कि (मनुष्यैः अनुमतं) मनुष्यों ने अनुमति दी है अर्थात् जो साधिकार न्याय से (मा) मुझे (आजगाम) प्राप्त हुआ है, और (यस्मात्) जिस धन से (मे मनः उत् इव रारजीति) मेरा मन उदय को प्राप्त हुआ हुआ अत्यंत शोभायमान हो रहा है (तत्) उस धन को (होता अग्निः) दाता अग्नि (सुहुतं) उत्तमतासे दिया हुआ बना- (अर्थात् उसको) में सन्मार्ग में लगाऊं ऐसी मुझे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सन्मति प्रदान करे।

व्रात्य व पिता, पितामह आदि

स सर्वानन्तर्देशाननु व्यचलत् ॥
अथर्व० १५।६।२४

तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पिता च पितामहश्चा-नुव्यचलन् ॥ अथर्व० १५।६।२५ ॥

प्रजापतेश्च वै स परमेष्ठिनश्च पितुश्च पिता-महस्य च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥
अथर्व० १५।६।२६॥

अर्थ— (सः) उस व्रात्यने (सर्वान् अन्तर्देशान्) सब भीतरी देशों में (अनुव्यचलत्) विचरण किया ॥ १५।६।२४ ॥ (तं) उस व्रात्यके (अनु) पीछे (प्रजापतिः च परमेष्ठी च पिता च पितामहः च) प्रजापति अर्थात् राजा परमेष्ठी यानि ऊंचेपदवाले विद्वान् वा संन्यासी पिता तथा पितामह विचरने लगे ॥ १५।६।२५ ॥ (यः) जो व्यक्ति (एवं) इस प्रकार अर्थात् द्वितीय मंत्र (१५।६।२५) में कहे अनुसार (वेद) जानता है वह प्रजापति, परमेष्ठी, पिता तथा पितामहका (प्रियं धाम) प्रिय॰ घर बनता है अर्थात् उसीके घरमें यह पूजनीय वर्ग आता है दूसरेके घरमें नहीं।

व्रात्य अर्थात् अतिथिका महत्व यहां दिखाया गया है। अतिथिके पीछे पीछे ये सब घूमते रहते हैं ताकि अतिथि इनके घरको अपने अगमनसे पवित्र करे।

स महिमा सद्रुर्भूत्वान्तं पृथिव्या अगच्छत् स समुद्रो भवत् ॥ अथर्व. १५।७।१ ॥

तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पिता च पितामह-श्चापश्च श्रद्धा च वर्षं भूत्वानुव्यवर्तयन्त ॥
अथर्व० १५।७।२ ॥

अर्थ— (सः) उस व्रात्यने (महिमा) अपनी महिमासे (सद्रुः भूत्वा) वेगवान् होकर (पृथिव्याः अन्तं अगच्छत्) पृथिवीके अन्तको प्राप्त किया। और (सः) वह व्रात्य (समुद्रः अभवत्) समुद्र हुआ ॥ १५।७।१ ॥ (तं) उस व्रात्यके (अनु) पीछे पीछे प्रजापति, परमेष्ठी, पिता, पितामह, (आपः) श्रेष्ठ कर्म, श्रद्धा (वर्षं भूत्वा) वर्ष बनकर (व्यवर्तयन्त) वर्तमान हुए वा वर्ताव करने लगे।

यहां परभी व्रात्यकी महिमा गाई गई है। इसमंत्रका स्पष्टीकरण करना कठिन है। आसपासके ५-६ सूक्त व्रात्यके संबन्धमें हैं, उन सबपर विचार करनेसे संभव है इस मंत्रपर विशेष प्रकाश डाला जासके।

पितरोंका जल्पिके विषयमें अज्ञान

नैतां विदुः पितरो नोत देवाः येषां जल्पिश्च-रत्यन्तरेदम्। त्रिते स्वप्नमदधुराप्त्ये नर आदित्यासो वरुणेनानुशिष्टाः॥ अथर्व. १९।५६।४॥

अर्थ- (येषां) जिन ३३ देवोंकी (जल्पिः) दुःस्वप्नकी कारण भूत जो यह वाणी (इदं अन्तर) इस जगत्के बीचमें (चरति) विचरण कर रही है (एतां) इस वाणोको (न पितरः विदुः न उत देवाः) न तो पितर ही जानते हैं और नहीं देव। (वरुणेन अनुशिष्टाः) वरुण द्वारा भली प्रकार उपदेश किए गए (आदित्यासः नरः) आदित्य नरोंने (स्वप्नं) स्वप्नका (आप्त्ये त्रिते) आप्त्य त्रितमें (अदधुः) स्थापित किया। आप्त्य त्रित क्या चीज है यह जबतक आप्त्य त्रितवाले सब मंत्रोंको न देखा जाए तब तक कहना कठिन है यहांपर इस पर विशेष विचार करना भी प्राकरणान्तर हो जाएगा।

इस मंत्रसे प्रकृत विषयमें इतना ज्ञात होता है कि पितर जल्पि को नहीं जानते। इस मंत्रका पूर्णतया स्पष्टीकरण करना कठिन है क्यों कि इस मंत्र विषयक खोज करनी अभी अवशिष्ट है।

नराशंस पितर।

.... पितरो नाराशंसाः॥ यजुः ८।५॥

(नाराशंसाः) नर जिनकी प्रशंसा करते हैं वे (पितरः) पितर नाराशंस पितर कहलाते हैं।

पिता-पितामह आदि पितर।

जीवं रुदन्ति विमयन्ते अध्वरे दीर्घामनु प्रसितिं दीधियुर्नरः। वामं पितृभ्यो य इदं समेरिरे मनः पतिभ्यो जनयः परिष्वजे॥
ऋ० १०।४०।१०॥

यह मंत्र थोडेसे पाठ भेदके साथ अथर्व वेदमें है-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जीवं रुदन्ति विनयन्त्यध्वरं दीर्घामनु प्रसितिं दीध्युर्नरः। वामं पितृभ्यो य इदं समीरिरे मयः पतिभ्यो जनयः परिष्वजे ॥

अथर्व० १४ । १ । ४६ ॥

अर्थ- (नरः) जो नर (जीवं रुदन्ति) पत्नियोंके जीवन के उद्देश्य से रोते हैं अर्थात् जो स्त्रियों की बहुत परवाह करते हैं, उनकी दुर्दशापर रोते हैं तथा जो (अध्वरे विनयन्ते) यज्ञमें उन स्त्रियों को प्रविष्ट कराते हैं अर्थात् उनके साथ यज्ञ में बैठते हैं अथवा जो स्त्रियों की हिंसा नहीं करते, और जो (दीर्घां प्रसितिं) भुजाओंका लंबा लंबा आलिंगन स्त्रियोंको (अनुदीधियुः) देते हैं अर्थात् उनसे खूब प्रेम करते हैं, और (ये) जो (पितृभ्यः) पितरों के लिए (वामं) सुन्दर संतान को (समेरिरे) पैदा करते हैं, ऐसे (पतिभ्यः) पतियोंके लिए (जनयः) पत्नियां (परिष्वजे) आलिंगन के लिए (मयः) सुख देती हैं अर्थात् ऐसे पतियों को ही वास्तव में पत्नी सुख मिलता है।

इस मंत्रमें पत्नी सुख अर्थात् गार्हस्थ्य सुख किनको मिलता है यह उत्तमतया दर्शाया गया है। पितरों के लिए संतानोत्पत्ति करने व यज्ञमें पत्नीके बैठाने का भी यहां निर्देश है।

यम।

अबतक के प्रकरणों में पितरों का विषय था वह प्रायः समाप्त हुआ है। अब हम आगे के प्रकरणों में यम पर विचार करेंगे। यम विषयक मंत्रों के हम दो विभाग करेंगे। प्रथम विभाग में उन मंत्रों का उल्लेख होगा जिनमें यमके कोई खास विशेषण प्रयुक्त हुए हुए न होंगे। द्वितीय विभागमें विशेषण विशिष्ट यम होगा। विशेषण विशिष्ट यम वाले मंत्रों में यम की उत्पत्ति स्थिति आदि विषयों मेंकुछ प्रकाश डालने में सहायक हो सकेंगे ऐसा प्रतीत होता है। 'द्वितीय विभाग के शीर्षक का नाम ' वैवस्वत यम' रखेंगे क्योंकि वैवस्वत विशेषण ही प्रायः यमके लिए प्रयुक्त हुआ हुआ मिलता है।

प्राणापहारी यम.

यम मृत्युकी अधिष्ठात्री देवता है। प्राणियों के जीवन के अपहरण का कार्य यम करता है। मृत्यु यमका ही दूत है यह हमें आगे पता चलेगा। प्राणियोंके मारनेका काम यम करता है यह निम्न मंत्रों से स्पष्ट हो रहा है।

यदुलूको वदति मोघमेतद् यत्कपोतः पदमग्नौ कृणोति। यस्य दूतः प्रहितः एष एतत्तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥ऋ० १०।१६ ५।४ ॥

अर्थ- (उलूकः यत् वदति)उल्लू जो अशुभ बोलता है (एतत्) यह उसका बोला हुआ (मोघं) निष्फल हो, अर्थात् इस उल्लूने जिस आनेवाली आपत्तिकी सूचना दी है वह निष्फल होवे। (कपोतः) और कबूतर (अग्नौ यत् पदं कृणोति) अग्निमें जो पैर करता है अर्थात् पैरसे अग्नि सेकता है वह भी निष्फल हो। इस अपशकुन से सूचित आपत्ति का भी निराकरण हो। (एषः) यह उलू वा कबूतर (यस्य प्रहितः दूतः) जिसका भेजा हुआ दूत है उस (मृत्यवे यमाय) मारनेवाले यम के लिए (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे।

इस मंत्र में उलु के बोलने वा कबूतर के पैर से अग्नि सेकनेआदि अपशकुन से उत्पन्न आपत्ति निवारण की प्रार्थना है। अथर्व वेद सू० ६ मंत्र २७, २८ तथा २९ में भी ऐसा ही वर्णन मिलता है। पाठक वहां देख सकते हैं, ऐसे अपशकुन मृत्यु की संभावना को सूचित करते हैं, ऐसा जान पडता है। अतएव इन अपशकुनोंके करनेवालों को यमका दूत कह कर पुकारा गया है। शकुन व अपशकुन संबन्धी वेदमंत्र हैं यह पाठकों को लक्ष्य में रखना चाहिए। हिन्दुओं में शकुन अपशकुन का जो रिवाज है उस का मूल वेद ही है ऐसा कहना अनुचित न होगा। अस्तु, यहां यम उसी अर्थ में है जिस अर्थ में कि वह प्रसिद्ध है।

यः प्रथमः प्रवतमाससाद बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानः। योऽस्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदस्तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥

अथर्व० ६ । २८ । ३ ॥

अर्थ- (यः) जिसे यमने (अनुपस्पशानः) खोज करते हुए (बहुभ्यः प्रथमः) बहुतोंसे पहिले होकर (प्रवतं पन्थां आससाद) प्रकृष्ट मार्ग को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

प्राप्त किया तथा (यः) जो (अस्य द्विपदः) इस दोपैरोंवाले मनुष्य जगत् का व (अस्य चतुष्पदः) इस चारपैरोंवाले पशु जगत् का (ईशे) स्वामी है (तस्मै) उस (मृत्यवे यमाय) मृत्यु करनेवाले यम के लिए (नमः अस्तु) नमस्कार होवे।

इस मंत्र के पूर्वार्धका भाव पता नहीं चलता। अस्तु, तथापि हमारा अभिप्राय यम से है। यहां पर भी यम उसी अर्थ में है जिस अर्थ में कि पूर्व मंत्र में प्रयुक्त हुआ हुआ है।

नमोऽस्तु ते निर्ऋते तिग्म तेजोऽयस्मयान् वि-
चृता बन्ध पाशान्। यमो मह्यं पुनरित् त्वां
ददाति तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे॥
अथर्व० ६। ६३। २॥

अर्थ- हे (तिग्मतेजः निर्ऋते) हे तेज नष्ट करनेवाली निर्ऋति ! (ते नमः अस्तु) तेरे लिए नमस्कार है ! (अयस्मयान् बन्धपाशान्) लोहे की बनी हुई बेडियों को(विचृत)खोलदे काटदे। (यमः)यमने (त्वां) तुझ (मह्यं)मेरे लिए (पुनःइत्) फिर भी (ददाति) दिया ह अर्थात् पुनः यमने मुझको तुझे सौंपा है। (तस्मै) उस (मृत्यवे यमाय) प्राणापहरण करनेवाले यम के लिए (नमः अस्तु) नमस्कार होवे।

तिग्म तेज- 'तिग गतौ हिंसायांच' से हिंसा अर्थ में तिग शब्द बनानेपर इसका अर्थ होगा कि जो तेज का नाश करे वह तिग्मतेज।

निर्ऋति का अर्थ है कष्ट, दुःख, अनिष्ट।

यम यहां पर भी उपरोक्त अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ हुआ है।

एवोष्वस्मान् निर्ऋते नेहा त्वमयस्मयान् वि-
चृता बन्धपाशान्। यमो मह्यं पुनरित् त्वा
ददाति तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे॥
अथर्व० ६। ८४। ३॥

अर्थ-(निर्ऋते) हे निर्ऋति ! (त्वं) तू (अनेहा)न मारनेवाली होती हुई(अस्मान्) हमारे (एवो) उसी पूर्वोक्त प्रकारसे (अयस्मयान्)लोहमय लोह के बने हुए(बन्ध पाशान्) बेडियों को(विचृत)खोलदे काटदे (यमः त्वा पुनः इत्)यमने तुझको फिर भी मह्यं ददाति) मुझे सौंपा है। (तस्मै मृत्यवे यमाय) उस प्राणापहरण करने वाले यम के लिए (नमः अस्तु) नमस्कार होवे।

'यमो मह्यं पुनरित् त्वां ददाति' का भाव पता नहीं चलता। इसपर पाठक आशा है विचार कर किसी परिणामपर पहुंचेंगे।

मा वो मृगो न यवसे जरिता भूदजोष्यः।
पथा यमस्य गादुप॥ ऋ० १। ३८। ५॥

अर्थ- हे मरुतो ! (यवसे मृगः न) जिस प्रकार पशु घास आदि भक्ष्य पदार्थोंसे पृथक् नहीं होता अर्थात् सृष्टि में उसे जैसे सदा घास आदि भक्ष्य पदार्थ स्वतंत्रासे मिलते रहते हैं, उसी प्रकार (वः जरिता)तुम्हारी स्तुति करनेवाला (अजोष्यः)अप्रीतिकर अथवा असेवनीय अर्थात् उपभोग सामग्री की प्राप्तिसे रहित (मा) मत होवे। उपासकको भी मृग की तरह स्वतंत्रतासे उपभोग सामग्री प्राप्त होती रहे। और वह उपासक (यमस्य पथा)यम के मार्ग से (मा उपगात्)मत जावे यानि शीघ्र मृत्युको प्राप्त मत होवे।

इस मंत्र में भी स्पष्ट रूपसे प्राणापहरण करनेवाले यम का ही उल्लेख है।

देवेभ्यः कमवृणीत मृत्युं प्रजायै किममृतं नावृ-
णीत। बृहस्पतिं यज्ञमकृण्वत ऋषिं प्रियां यम-
स्तन्वं प्रारिरेचीत्॥ ऋ० १०। १३। ४॥

इस मंत्र का उत्तरार्ध थोडे से पाठभेद के साथ अथर्व वेद में इस प्रकार से आया है।-

बृहस्पतिर्यज्ञमतनुत ऋषिः प्रियां यमस्तन्वं
मा रिरेच॥ अथर्व- १८।३।४१॥

अर्थ- (देवेभ्यः) देवोंके लिए (कं मृत्युं) किस मृत्युको (अवृणीत) स्वीकृत किया है अर्थात् देवोंके लिए मृत्यु कौनसी है? (प्रजायै) उत्पन्न होनेवाली मनुष्यादि संतति के लिए (किं अमृतं न अवृणत) क्यों अमरता स्वीकृत नहीं की ? अर्थात् प्रजाको अमर क्यों नहीं बनाया? मनुष्योंने (बृहस्पतिं ऋषिं) बृहस्पति ऋषिको अमरता प्राप्तिके लिए (यज्ञं अकृण्वत) यज्ञ बनाया, तोभी (यमः) यमने उनके(प्रियां तनूं) प्रिय शरीरको छीन लिया अर्थात् तोभी उन्हें अमरता का लाभ न हुआ। अथवा अथर्व वेदके पाठभेदानुसार इस मंत्रका अर्थ इस प्रकारभी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हो सकता है-

(देवेभ्यः कं मृत्युं न अवृणीत) देवोंमेंसे कौन मरता न था? अर्थात् देवभी सब मरते थे। तब (बृहस्पतिः ऋषिः यज्ञं अतनुत) देवोंमेंसे बृहस्पति ऋषिने अमरताकी प्राप्तिके लिए यज्ञ किया और देवों के लिए (अमृतं अवृणीत) अमरताको प्राप्त किया पर (प्रजायै) प्रजाके लिए (किं अपि अमृतं) कोईभी अमरता न प्राप्त की अतएव (यमः) प्राणोंके अपहरण करनेवाला यम प्रजाओंसे (प्रियां तन्वं) उनकी प्यारी देह (प्रारिरेचीत्) छीन लेता है अर्थात् प्रजाकी मृत्यु होती है।

यहां पर आलंकारिक रूपसे देवोंकी अमरता व मनुष्योंकी नश्वरता का वर्णन किया गया है।

ये दक्षिणतो जुह्वति जातवेदो दक्षिणाया दिशो-
भि दासन्त्यस्मान्। यममृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां
प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि॥ अथर्व. ४।४०।२॥

अर्थ- (हे जातवेदः) हे जातवेद!(ये) जो शत्रु (दक्षिणतः) दाहिनी ओरसे (जुह्वति) यज्ञ करके हमारे पर आक्रमण करते हैं और जो (दक्षिणायाः दिशः) दक्षिण दिशासे (अस्मान् अभिदासन्ति) हमें दास बनानेके लिए आकमण करते हैं (ते) वे शत्रु (यमं ऋत्वा) यमको प्राप्त करके (पराञ्चः) पीठ मोडकर भागते हुए (व्यथन्तां) व्यथित होवें अर्थात् उनका दुर्दशा पूर्वक नाश होवे। (एनान्) इन शत्रुओंको मैं (प्रतिसरेण) प्रति सरसे (हन्मि) मारता हूं।

प्रतिसर- सायणाचार्य ने इसका अर्थ किया है कि जिससे आभिचारिक कर्मका निवारण हो। यह किस अस्त्र वा शस्त्रका नाम है यह कहना कठिन है।

रुद्रो वो ग्रीवा अशरैत् पिशाचाः पृष्टीर्वोऽपि-
शृणातु यातुधानाः। वीरुद् वो विश्वतो वीर्या
यमेन समजीगमत्॥ अथर्व ६।३२।२॥

अर्थ-(पिशाचाः)हे पिशाचो! (वः ग्रीवाः) तुह्मारी गर्दनोंको(रुद्रः)रुद्रने(अशरैत्) काट डाला है।(यातुधानाः)हे पीडा देनेवालो! (वः पृष्टीः अपि) तुह्मारी पसलियां भी वह रुद्र(शृणातु)काट डाले। (विश्वतः वीर्या वीरुद्)सम्पूर्ण तथा वीर्यसे युक्त ओषधि(वः) तुम्हें (यमेन सं अजीगमत्) यमके साथ भली भांति संयुक्त करे अर्थात् मार डाले।

इस मंत्रमें शत्रु विनाशार्थ झहरी औषधियोंके प्रयोग करनेका निर्देश है। यमका अर्थ यहां अत्यन्त स्पष्ट है।

यमो मृत्युरघमारो निर्ऋथो बभ्रुः शर्वोस्ता
नीलशिखण्डः। देवजनाः सेनयोत्तस्थिवां-
सस्ते अस्माकं परिवृञ्जन्तु वीरान्
अथर्व० ६।९३।१।

अर्थ- (यमः)यम,(मृत्युः)मृत्यु,(अघमारः) पापसे वा पाप के कारण मारनेवाला, (निर्ऋथः) निरन्तर पीडा देनेवाला,(बभ्रुः)पालक,(शर्वः)हिंसक(अस्ता) उठाकर फैंक देनेवाला,(नील शिखण्ड)नील शिखण्ड ते उपरोक्त (देवजनाः) तथा देवजन मिलकरके (सेनया उत्तस्थिवांसः)सेना द्वारा आक्रमण के लिए तैयारहुए हुए (अस्माकं वीरान्)हमारे वीर सैनिकोंको (परिवृञ्जन्तु) छोड देवें अर्थात् लडाई में हमारे सैनिकों का विनाश न हो, अपितु उपरोक्त सब शत्रु सैन्यका विनाश करें। यहां पर भी यम की गिनती मारने वालों में की गई है।

ज्येष्ठघ्न्यां जातो विचृतोर्यमस्य मूलबर्हणात्
परि पाह्येनम्। अत्येनं नेषद् दुरितानि विश्वा
दीर्घायुत्वाय शतशारदाय॥ अथर्व० ६।११०।२॥

अर्थ- (ज्येष्ठघ्न्यां जातः) ज्येष्ठघ्नीमें पैदा हुए हुए तथा (विचृतोः) विचृत् में पैदा हुए हुए इस कुमारकी (यमस्य मूलबर्हणात्) यम के मुलोच्छेदन से हे अग्नि! (परि पाहि) रक्षा कर। इसे मरनेसे बचा। (एनं) इस पुत्र को (विश्वानि दुरितानि) सर्व पापों विघ्नों से (अति) बचाकर (शतशारदाय दीर्घायुत्वाय) सौ वर्ष की दीर्घायु के लिए (नेषत्) लेचल। इसे सौ वर्ष की पूर्ण दीर्घायु प्राप्त होवे।

ज्येष्ठघ्नी- ज्येष्ठा नामक नक्षत्रमें उत्पन्न संतान ज्येष्ठका नाश करती है। इस विषयमें-
तैत्तिरीय ब्राह्मण का निम्न वचन है- 'ज्येष्ठ एषां अवधिष्मेति तज्जेष्ठघ्नी'। तै० ब्रा० १।५।२।८॥

विचृत्- हिंसक स्वभाववाले मूल नक्षत्र का नाम है। इसमें पैदा हुई हुई संतान नष्ट हो जाती है। इसमें निम्न तै० ब्रा० का वचन है- 'मूलं एषां

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अवृक्षामेति तन्मूलबर्हिर्णी ' ॥ तै० ब्रा० १।५।२।८

यहांपर यम का जो संततिका मूलोच्छेदन अर्थात् जडसे नाश करना है उससे बचानेकी प्रार्थना है। एवं यम यहांपर विनाश करने के अर्थमें ही प्रयुक्त है।

> विवस्वान् नो अमृतत्वे दधातु परैतु मृत्यु रमृतं न एतु। इमान् रक्षतु पुरुषाना जरिम्णो मोष्वेषामसवो यमं गुः ॥
>
> अथर्व० १८।३।६२

अर्थ- (नः) हमें (विवस्वान् अमृतत्वे) विवस्वान् सूर्य अमरतामें (दधातु) स्थापित करे। (मृत्युः पराएतु) मृत्यु दूर भाग जाए। (अमृतं नः एतु) हमें अमरत्व प्राप्त होवे। (इमान् पुरुषान्) इन पुरुषोंकी (विवस्वान्) सूर्य (जरिम्णः आरक्षतु) बुढापेतक रक्षा करे। (एषां असवः मो यमं गुः) इनके प्राण यमको मत जावें।

इस प्रकार इन मंत्रोंकेअवलोकनसे यम एक नाशक शक्ति है, यह प्राणियोंके प्राण हरण करनेवाला है यह हमें स्पष्ट रूपसे पता चलता है। यम अन्य अर्थों में भी वेदों में प्रयुक्त है जैसा कि हम आगे चल कर दिखायंगे भी, पर इसके साथ साथ यम नाश करने के अर्थ में भी प्रयुक्त है। इसीको हम यूंभी कह सकते हैं कि प्राणियों को प्राण हरण करने के महकमे के अधिकारी का नाम यम है। हम आगे चलकर देखेंगे कि यम इस महकमेका राजा है। इसकी बाकायदा प्रजा है, इसका लोक है, इसके दूत हैं इत्यादि।

अश्विनौ व यम

> वीळुपत्मभिराशुहेमभिर्वा देवानां वा जूतिभिः शाशदाना। तद्रासभो नासत्या सहस्रमाजा यमस्य प्रधने जिगाय ॥
>
> ऋ० १।११६।२

अर्थ- हे (शाशदाना) चीरा फाडी करनेवाले, (नासत्या) अश्विनौ ! (वीळुपत्मभिः) बलसे गिरनेवाले अर्थात् शक्तिशाली, (आशुहेमभिः) शीघ्र गामी घोडोंसे (वा) अथवा (देवानां जूतिभिः) देवोंकी प्रेरणाओंसे (तत् रासभः) उस रासभ अर्थात् गर्दभ ने जो कि तुह्मारी अश्विनौकी (सवारी है) (यमस्य) यम के (प्रधने आजौ) जिसमें बहुत धनकी प्राप्ति होती है ऐसे संग्राममें (सहस्रं) हजारोंको जीत लिया।

इस मंत्रमें अश्विनौ व यमकी लढाई का आलंकारिक वर्णन है। यम मारनेवाला है, वह अश्विनौ देवोंके वैद्य होनेसे जीलानेवाल हैं। यहांपर यमका पराजय व अश्विनौके रासभकी जीतका वर्णन है।

शाशदाना- शद्लृशातने से यह शब्द बना है। इसका अर्थ चीराफाडी करनेवाले अर्थात् Surgery के जानने वाले।

रासभ- गर्दभ, गधा। यह अश्विनौ की सवारी है। देखो निघण्टु १।१५

> अमुत्र भूयादध यद् यमस्य बृहस्पते अभिशस्तेरमुञ्चः। प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्माद्देवानामग्ने भिषजा शचीभिः ॥
>
> यजुः २७।९ अथर्व० ७।५३।१

अर्थ- (बृहस्पते) हे बृहस्पति! (यमस्य अमुत्र- भूयात् अभिशस्तेः) इस परलोक में यमके कष्टसे (अमुंचः) हमें छुडा अर्थात् यम हमें मारने न पावे। (अग्ने) हे अग्नि! (देवानां भिषजा अश्विना) देवोंके वैद्य अश्विनौ (शचीभिः) अपनी शक्तियों से-सामर्थ्यों से (अस्मत् मृत्युं) हमारी मृत्यु को (प्रत्यौहतां) दूर करें।

आश्विनौ मृत्यु दूर करने में समर्थ हैं ऐसा यहां पर व्यक्त होता है। यम की हिंसा से बचाने के लिए प्रार्थना की गई है।

इस प्रकार अश्विनौ का जिस यम से मुकाबला पडता है वह भी यम वही है जो हम ऊपर दर्शा आए हैं। उपरोक्त यम की ही पुष्टि इन मंत्रों से हो रही है।

विष्टारी ओदन व यम

> विष्टारिणं ओदनं ये पचन्ति नैनानवर्त्तिः सचते कदाचन। आस्ते यम उपयाति देवान्त्सं गन्धर्वैर्मदते सोम्येभिः ॥ अथर्व० ४।३४।३॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अर्थ— (ये) जो (विष्टारिणं ओदनं) विस्तार वाले अर्थात् फैले हुए ओदन को (पचन्ति) पकाते हैं, (एनान्) उनको (अवर्तिः) दरिद्रता (कदाचन) कभी भी (न सचते) प्राप्त नहीं होती अर्थात् वे कभी भी गरीब नहीं होते। वह ओदन पाचक (यमे आस्ते) यममें स्थित होता है, (देवान् उपयाति) देवों को प्राप्त होता है और (सोम्येभिः गन्धर्वैः) सोम्य गंधर्वों के साथ (संमदते) आनन्दित होता है।

विष्टारी ओदन पाचक की यम में स्थिति होती है ऐसा यहां दर्शा गया है।

एवं इस मंत्रमें विष्टारी ओदन की महिमा का वर्णन किया गया है। यहां यम का अर्थ योगशास्त्रोक्त अहिंसादि षड्‌यम प्रतीत होता है। परन्तु इससे अगले मंत्र अर्थात् ४ । ३४ । ४ में यम उपरोक्त अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ हुआ प्रतीत होता है। वह मंत्र इस प्रकार है—

विष्टारिणमोदनं ये पचन्ति नैनान् यमः परि मुष्णाति रेतः। रथीह भूत्वा रथयान ईयते पक्षी ह भूत्वाति दिवः समेति ॥

अथर्व० ४ । ३४ । ४॥

अर्थ- (ये) जो (विष्टारिणं ओदनं पचन्ति) विस्तृत ओदनको पकाते हैं (एनान् रेतः यमः न परिमुष्णाति) उनका वीर्य-सामर्थ्य यम अपहरण नहीं करता। (ह) निश्चयसे वह ओदन पाचक (रथी भूत्वा) रथ पर सवार होकर (रथयाने) रथ से जाने योग्य अर्थात् उत्तम मार्ग में (ईयते) विचरण करता है। अर्थात् वह रथादि यानों से संपन्न हुआ हुआ सर्वत्र विचरण करता है। (पक्षी भूत्वा) पक्ष-पंखों वाला होकर अर्थात् विमानादि वायुयानों में सवार होकर (दिवः समेति) द्युलोक में विचरण करता है। वह आकाश भूमि आदि सर्वत्र स्थानों में अव्याहत गति से विचरण कर सकता है। उसके जाने के लिए कहीं भी रोक टोक नहीं।

यम जो सब का सामर्थ्य हरण कर लेता है वह भी इसका वीर्य नहीं हरता। इस प्रकार इन दोनों मंत्रों में विष्टारी ओदन की महिमा गाई गई है। यम को भी इसके पाचक के सामने हार माननी पडती है ऐसा इस सारे का अभिप्राय व्यक्त होता है।

विष्टारी ओदन-विष्टारी का अर्थ है विस्तारवाला अर्थात् जिसका परिणाम बडा विस्तृत है। ओदन शब्द यहांपर अन्न का उपलक्षण है। विष्टारी यज्ञ ओदन से किया जाता है। इस अन्नदान यज्ञ की महिमा इस सूक्त में दर्शाई गई है।

यम का कर्ता अग्नि

अयं यो होता किरु स यमस्य कमप्यूहे यत्सम‍ञ्जन्ति देवाः। अहरहर्जायते मासि मास्यथा देवा दधिरे हव्यवाहम्॥ ऋ० १० । ५२ । ३॥

अर्थ- (अयं यः होता) यह जो दान-आदान करनेवाली अग्नि है (स) वह (यमस्य किः) यमकी कर्ता है। वह (कं अपि ऊहे) अन्नका भी वहन करती है (यत्) जिस अन्न को (देवाः समञ्जन्ति) देवलोक खाते हैं। यह अग्नि (अहः अहः जायते), प्रतिदिन हवन के समय उत्पन्न होती है अर्थात् इसे प्रज्वलित किया जाता है। और यह (मासि मासि) प्रत्येक मासमें वा प्रत्येक पक्षमें मासिक व पाक्षिक यज्ञमें प्रकट होती है। (अथ) और (देवाः) देवगण (हव्यवाहं) हव्य का वहन करनेवाली इस अग्नि को (दधिरे) स्थापित करते हैं।

इस मंत्रमें अग्नि को यम की करनेवाली बताया गया है। यहांपर यम का अर्थ वायु भी हो सकता है क्यों कि अग्नि वायु को शुद्ध करती है। प्रचण्ड अग्नि की उद्दीप्त होनेपर हवा खूब जोर से चलने लगती है।

इसके अतिरिक्त इस मंत्रसे यह भी पता चलता चलता है कि दैनिक, पाक्षिक तथा मासिक यज्ञ करने चाहिए।

क = अन्न। मास = मास तथा पक्ष।

यमकी बेडी।

मुञ्चन्तु मा शपथ्यादथो वरुण्यादुत।
अथो यमस्य पड्वीशात् सर्वस्माद्देवकिल्बिषात्।

॥ ऋ० १०।९७।१६ ॥ यजुः १२।९० ॥
अथर्व० ६।९६।२ ॥ तथा ७।११२।२ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अर्थ- (मा) मुझे औषधियां (शपथ्यात्) शाप देनेसे होनेवाले पापसे (मुञ्चन्तु) छुडावें। (अथ उत) और (वरुण्यात्) वरुण संबन्धी किए गए पापसे छुडावें। (अथ) और (यमस्य) यमकी (पड्वीशात्) पैरोंके बेडियोंसे छुडावें। (सर्वस्मात् देवकिल्बिषात्) सभी देवोंके संबन्धी पापोंसे औषधियां मुझे छुडावें। पड्वीश- पाद बंधन शृंखला= पैरोंकी बेडी।

उत् त्वाहार्षं पञ्च शलादथो दशशलादुत।
अथो यमस्य पड्वीशाद् विश्वस्माद् देवकिल्बिषात्॥ अथर्व. ८।७।२८॥

अर्थ- (त्वा) तुझे (पंचशलात्) पंचभूतमें होनेवाले पापसे (अथ उत) और (दशशलात्) दशों दिशाओंमें होनेवाले पापसे (अथ) और (यमस्य पड्वीशात्) यमकी पैरोंकी बेडियोंसे तथा (विश्वस्मात्) सारे (देवकिल्बिषात्) देवोंके प्रति किए गए पापोंसे (उत् आहार्षं) बचाकर ऊपर ले गया हूं।

इन मंत्रोंमें यमकी बेडियोंसे छूटनेकी प्रार्थना है। यहां पर भी यम मारनेवाला ही है यह स्पष्ट पता चला रहा है। आगे चलकर यम विषयक वर्णन जब हम देखेंगे तो यमकी पड्वीश आदिका खुलासा स्वयमेव हो जाएगा।

२ वैवस्वत यम।

यत्ते यमं वैवस्वतं मनो जगाम दूरकम्। तत्त आवर्तयामसीह क्षयाय जीवसे॥ ऋ० १०।५८।१

अर्थ- (ते) तेरा (यत् मनः) जो मन (दूरकं) बहुत दूर (वैवस्वत यमं) विवस्वान् के पुत्र यमके पास (जगाम) चला गया है (ते तत्) तेरा वह मन पुनः (इह) इस लोकमें (क्षयाय) निवास करनेके लिए व (जीवसे) जीवन धारण करनेके लिए हम (आवर्तयामसि) लौटाते हैं।

यहां पर वैवस्वत यम के पास चले गए मनके प्रत्यावर्तनका उल्लेख है। यमको वैवस्वत विशेषण दिया गया है। वैवस्वतका अर्थ है विवस्वान् की संतान। इससे यह पता चलता है कि मारनेवाला यम विवस्वान् का लडका है इसपर हम थोडासा प्रकाश आगे चलकर डालेंगे।

क्षयाय= निवास करनेके लिए, रहनेके लिए ' क्षि निवासगत्योः '॥

यमादहं वैवस्वतात् सुबन्धोर्मन आभरम्।
जीवातवे न मृत्यवेऽथो अरिष्टतातये॥
ऋ. १०।६०।१०

अर्थ- (अहं) मैं (वैवस्वतात् यमात्) विवस्वान् के पुत्र यमसे (सुबन्धोः मनः आभरम्) सुबन्धु अर्थात् उत्तम बन्धुका मन छीन करके ले आता हूं। किस लिए ? (जीवातवे) इस लोकमें जीनेके लिए (मृत्यवे न) मरनेके लिए नहीं। (अथ) और (अरिष्टतातये) सुखके विस्तारके लिए।

इस मंत्रका भाव भी पूर्वके मंत्रसे मिलता है। यहां परभी यमको विवस्वान् के पुत्रके नामसे कहा गया है।

निम्न लिखित मंत्र हमारी ऊपरकी स्थापनाको स्पष्ट रूपसे पुष्ट कर रहा है इसमें यमकी माता व पिता विवस्वान् दोनोंका उल्लेख है। विवस्वान् कौन है यहभी पाठकोंको इससे स्पष्ट रूपमें पता चल जायगा। मंत्र इस प्रकार है-

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोतीतीदं विश्वं भुवनं समेति। यमस्य माता पर्युह्यमाना महोजाया विवस्वतो ननाश॥ ऋ० १०।१७।१
अथर्व० १८।१।५३॥

अर्थ- (त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोति) त्वष्टा अपनी पुत्री का विवाह रचता है (इति) इस कारण (इदं विश्वं भुवनं) यह सारा भुवन (समेति) इकट्ठा होता है। परि (उह्यमाना) व्याही जाती हुई (यमस्य माता) यम की जननी व (महः विवस्वतः जाया) महान् विवस्वान् की पत्नी (ननाश) नष्ट हो जाती है।

इसी सूक्तके प्रथम मंत्रसे पता चलता है कि त्वष्टा की पुत्री का नाम सरण्यू है और उस का त्वष्टा विवस्वान् के साथ विवाह करता है। इस मंत्र से हमें यह पता चलता है कि त्वष्टा की पुत्री सरण्य

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यमकी माता है व विवस्वान् की पत्नी है अर्थात् विवस्वान् यम का पिता है। अब हमें यह देखना है कि यम का पिता यह विवस्वान् कौन है।

यास्काचार्य इस मंत्र के उत्तरार्ध की व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि 'यमस्य माता पर्युह्य माना महतो जाया विवस्वतो ननाश, रात्रिरादित्यस्यादित्योदयेऽन्तर्धीयते।' अर्थात् यम की माता व्याही जाती हुई जो कि महान् विवस्वन् की जाया है नष्ट हो गई। आगे 'जाया विवस्वतो ननाश' का स्पष्टीकरण करते हैं कि-'रात्रि सूर्य की जाया, सूर्य के उदय होनेपर छिप जाती है।'

इस प्रकार विवस्वान् का अर्थ हुआ आदित्य अर्थात् सूर्य। इस उपरोक्त विवेचन से हम निम्न परिणाम पर पहुंचते हैं- यम की माता का नाम सरण्यू है व पिता का नाम विवस्वान् अर्थात् सूर्य है अर्थात् यम विवस्वान् (सूर्य) का पुत्र है अतएव उसे वेदमंत्रों में 'वैवस्वत' के नाम से पुकारा गया है। वैवस्वत यम का ही सर्वत्र विशेषण है अन्य का नहीं, अत एव वैवस्वत के साथ यम न भी प्रयुक्त हुआ हुआ हो, तो भी उसीका ग्रहण होता है।

निम्न लिखित मंत्रों में अकेले 'वैवस्वत' शब्द का ही प्रयोग है।

भद्रं वै वरं वृणते भद्रं युञ्जन्ति दक्षिणम्।
भद्रं वैवस्वते चक्षुर्बहुत्रा जीवतो मनः॥
ऋ० १०। १६४। २॥

इस मंत्र में दुष्ट स्वप्नके नाश करने की प्रार्थना है। अर्थ इस प्रकार है—

अर्थ— सब लोक (वै) निश्चयसे (भद्रं वरं वृणते) कल्याणकारी वर को ही चाहते हैं। (दक्षिणं भद्रं) बढे हुए कल्याण से ही अपना (युञ्जन्ति) योग रखना चाहते हैं। (वैवस्वते भद्रं चक्षुः) विवस्वान् के पुत्र की मैं कल्याणकारी चक्षु को अर्थात् उसकी कृपादृष्टि चाहता हूं ताकि दुःस्वप्न हमें बाधा न पहुंचावे। क्यों कि (बहुत्रा) बहुत से विषयों में (जीवतः) जीते हुए अर्थात् लगे हुए मेरा (मनः) मन उनमें विचरण करता रहता है अतः दुःस्वप्न आने की संभावना है।

इस मंत्र में यह दर्शाया गया है कि कल्याणकारी विचार व वातावरण रहनेसे दुःस्वप्न नहीं आ सकता। दुःस्वप्न न आने के लिए वैवस्वतसे प्रार्थना की गई है। यह वैवस्वत यम ही है यह उपरोक्त विवेचनसे तो पुष्ट हो ही रहा है पर आगे चलकर 'यम व स्वप्न' इस प्रकरण में हमें स्पष्ट रूपसे ज्ञात होगा कि स्वप्नका यम से कितना संबन्ध है। दुःस्वप्न यम का साधन है अर्थात् दुःस्वप्न से मृत्यु भी हो सकती है। अस्तु वहां पर यह सब स्पष्ट रूप से हम दर्शानेका प्रयत्न करेंगे।

वैवस्वतः कृणवद् भागधेयं मधुभागो मधुना सं सृजाति। मातुर्यदेन इषितं न आगन् यद् वा पितापराद्धो जिहीडे॥ अथर्व. ६।११६।२॥

अर्थ- (वैवस्वतः) विवस्वान् का पुत्र (भागधेयं कृणवत्) भागको करे अर्थात् बँटवारा करे। (मधुभागः) उत्तम भाग करने वाला वह हमें (मधुना संसृजाति) हमें मधुसे युक्त करे। अर्थात् हमभी उत्तम बंटवारा करनेवाले हों व सर्वप्रिय बनें। (यत् एनः) जो पाप (मातुः नः आगन्) मातासे हमें प्राप्त हुआ है अर्थात् माताका अपराध करनेसे यदि हमने कोई पाप किया है तो वह (यद् वा) अथवा जिस पापसे (पिता अपराद्धः) हमने पिता का अपराध किया है जिससे कि पिता (जिहीडे) क्रोधित हुआ है वह सब उपरोक्त शांत होवे।

इस प्रकार इस प्रकरणमें हमें यमके संबन्धमें निम्न लिखित मुख्य बातोंका पता चलता है-

(१) यम नामक कोई प्राणियोंके जीवनोंका अपहरण करनेवाला है।

(२) उसके पिताका नाम विवस्वान् (सूर्य) है अतएव उसका दूसरा नाम वैवस्वत भी है।

(३) उसकी माताका नाम सरण्यू है जो कि त्वष्टाकी पुत्री है।

इतने यम संबन्धी विवेचन के बाद हम यह देखेंगे कि यम का रहने का कोई स्थान है वा नहीं वह प्राणियोंको मार कर कहां पर लेजाता है इत्यादि।

यमलोक व यमराज्य।

इस प्रकरणमें हम यमके लोक व उसके राज्यके संबन्धमें विचार करेंगे अर्थात् यम लोक यदि है,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

तो कहां पर है इस पर प्रकाश डालनेका प्रयत्न करेंगे।

निम्न लिखित मंत्र यह प्रतिपादन कर रहे हैं कि यमका एक खास लोक है—

उग्रंपश्ये राष्ट्रभृत् किल्बिषाणि यदक्षवृत्तमनु-
दत्तं न एतत्। ऋणान्नो नर्णमेर्त्समानो यमस्य
लोके अधि रज्जुरायात्॥
अथर्व० ६। ११८। २॥

अर्थ- हे (उग्रंपश्ये) तीव्रदृष्टिवाली तथा हे (राष्ट्रभृत्) राष्ट्र का भरण पोषण करनेवाली अप्सराओ ! (किल्बिषाणि) सर्व पाप व (यत् अक्षवृत्तं) जो पाप इन्द्रियों द्वारा किया है (तत्) वह पाप (नः) हमें (अनुदत्तं) अनुकूलतासे दिया हुआ हो अर्थात् उस पापसे हमें हानि न पहुंचे इस प्रकार से दो-उस पापको दूर करो। और (ऋणात् ऋणं एर्त्समानः) ऋण से व्याज आदि द्वारा ऋण को बढाता हुआ उत्तमर्ण अर्थात् ऋण देनेवाला (यमस्य लोके) यम के लोक में (अधि-रज्जुः) हाथ में रस्सी लिए हुए (नः न आयात्) हमें प्राप्त न होवे अर्थात् हमें ऋण से भी मुक्त कर दो ताकि यम लोक में हम सुख पूर्वक रह सकें।

इस मंत्र से ऐसा पता चलता है कि जब तक ऋण न चुकाया जावे तब तक मनुष्य उससे मुक्त नहीं हो सकता। मरने वाला यदि ऋण बिनाचुकाए मरेगा तो यम लोक में भी उसे वह ऋण चुकाना पडेगा। उत्तमर्ण वहां पर भी अपना ऋण लेने के लिए पीछा करता हुआ आ पहुंचेगा। ऋण लेना कितना कष्ट प्रद है यह इस से पता चलता है।

पुनर्देहि वनस्पते य एष निहितस्त्वयि।
यथा यमस्य सादन आसातै विदथावदन्॥
अथर्व० १८। ३। ७०॥

अर्थ- (वनस्पते) हे वनस्पति ! (यः एषः) जो यह (त्वयि निहितः) तेरे में रखा है उसे (पुनः) फिर वापिस (देहि) दे। (यथा) जिस से (यमस्य सादने) यमके घरमें यह (विदथा वदन्) विज्ञानों को (वदन्) बोलता हुआ (आसातै) स्थित होवे।

इस मंत्र का आशय क्या है यह व्यक्त नहीं होता। पाठक इसपर विचार कर सहायता करेंगे ऐसी आशा है।

यथायाद् यमसादनात् पापलोकान् परावतः॥
अथर्व० १२। ११। ३॥

इस मंत्र के अर्थ के स्पष्टीकरण के लिए पूर्व मंत्र को भी साथ में लेना चाहिए। पूर्व मंत्र इस प्रकार है—

ब्रह्मज्यं देव्यघ्न्य आ मूलादनु संदह॥
अथर्व० १२। ११।२॥

हे (अघ्न्ये) अहिंसा करने के अयोग्य ! हे देवी ब्रह्मगौ ! (ब्रह्मज्यं) ब्रह्मकी हिंसा करनेवाले घात को (आमूलात्) जडसे लेकर ऊपरतक (अनुसंदह) संपूर्ण ला दे॥ १२। ११। २॥ (यथा)जिस से कि वह ब्रह्म घातक (यमस्य सादनात्) यमके सदन से भी (परावतः) दूर स्थित (पाप लोकान्) पापियों के लोक को (अयात्) जावे।

इस मंत्र से ऐसा पता चलता है कि घोर कर्म करनेवाली पापियों को यम लोक में स्थान नहीं मिलता वे उस यम लोक से भी परेस्थित पाप लोक में जाते हैं। इस के उलट यह भी ज्ञात होता है कि यम लोक में जानेवाले पापियों के अतिरिक्त जन हैं। अतः यम लोक निकृष्ट स्थान नहीं है।

इदं यमस्य सादनं देवमानं यदुच्यते।
इयमस्य धमते नाळीरयं गीर्भिः परिष्कृतः॥
ऋ० १०। १३५। ७॥

अर्थ (इदं यमस्य सादनं) यह यम का घर है। (यत् देवमानं उच्यते) जो कि देवों द्वारा बनाया गया है इस प्रकार कहा जाता है। (अस्य इयं नाळीः) इस यम की प्रीति के लिए यह स्तुतिरूपी वाणी (धमते) उच्चारण की जाती है। (अयं) यह यम (गीर्भिः) स्तुति युक्त वाणियों से (परिष्कृतः) शोभित होवे।

इन मंत्रों से हमें साधारणतया इतना पता चलता है कि यम लोक करके कोई स्थान अवश्य है। निम्न लिखित मंत्रों के देखने से ऐसा पता चलता है कि यम का उस लोकमें राज्य है अर्थात् यम वहां का राजा है। उस लाक का यम राजा होने से उस का नाम यम लोक पडा है। अतएव वह लोक उस

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

के नामसे अर्थात् यम लोक के नाम से प्रसिद्ध है।

पुमान् पुंसोधितिष्ठ चर्मेहि तत्र ह्वयस्व यतमा प्रिया ते। यावन्तावग्रे प्रथमं समेयथुस्तद् वां वयो यमराज्ये समानम्॥

अथर्व० १२। ३। १॥

अर्थ- (पुमान् पुंसः अधितिष्ठ) हे पुरुष! पुरुषों का अधिष्ठाता बन अर्थात् उच्चाधिकार को प्राप्त कर। (चर्म) सुख को (इहि) प्राप्त कर। (तत्र) उस सुख में (यतमा ते प्रिया) जो तेरी प्यारी है उसे (ह्वयस्व) बुला। (अग्रे) पहिले (यावन्तौ) जितने समर्थ हुए हुए तुम पतिपत्नी दोनों (प्रथमं) मरने से पूर्व की आयु में (समेयथुः) प्राप्त किया है (तत् वां वयः) वह तुम्हारा अन्न वा आयु (यमराज्ये) यम के राज्य में समान हो।

इस मंत्र में बडे महत्व का उपदेश है। सब से पूर्व मनुष्य को उन्नति करनेके लिए कहा गया है। तदनन्तर सुख प्राप्त कर के अपने अनुसार पत्नी के चुनने के लिए कहा गया है। इसी को स्वयंवर कह सकते हैं अथवा जिसे अंग्रेजी में Choice marriage कहते हैं इस प्रकार के विवाह के बाद दम्पती मिलजुलकर अपने भविष्य को उज्वल बनाने का प्रयत्न करें। जितना वे इस लोक में कमावेंगे उतना यमलोक में मिलेगा यह 'वां वयः यमराज्ये समानं' से दर्शाया है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि स्त्रियां भी पति के साथ यम लोक में जाती हैं। अर्थात् जितना मृत पितरों के प्रति हमारा कर्तव्य है उतना ही मृत मामा, दादी आदि स्त्री वर्ग के लिए भी है।

समस्मिंल्लोके समु देवयाने सं स्मा समेतं यमराज्येषु। पूतौ पवित्रैरुप तद्ध्वयेथां यद् यद् रेतो अधिवां संबभूव॥ अथर्व० १२। ३। ३॥

अर्थ- (अस्मिन् लोके) इस लोक में (सं) अच्छी तरह वा साथ साथ तुम पतिपत्नी (एतं) विचरण करो। (उ) और (देवयाने) देवों के मार्ग में (सं) मिलकर विचरण करो। (यमराज्येषु) यम राज्यों में (सं एतम्) साथ मिलकर विचरण करो। (यत् यत् रेतः) जो वीर्य (त्वां अधि संबभूव) तुम दोनों में उत्पन्न हुआ है (तत्) उस वीर्य को (पवित्रैः) पवित्राचरणों द्वारा (पूतौ) पवित्र हुए हुए तुम दोनों (उपह्वयेथां) अपने पास बुलाओ, अर्थात् पवित्र कार्योंमें ही वीर्य का उपयोग करो व्यर्थ नष्ट मत करो।

इस मंत्र में वीर्य के सदुपयोग के लिए गृहस्थ दंपतीको उपदेश दिया गया है।

इसके सिवाय एक महत्वपूर्ण बात यह दर्शाई गई है कि पतिपत्नी में इतना अधिक प्रेम होना चाहिए कि वे सर्वत्र साथ ही रहें। चाहे वे इस लोकमें हों चाहे यम लोक में वा अन्य किसी लोकमें। उन्हें ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि वे किसी भी हालत में जुदा न हो सकें। मरें भी तो साथ ही मरें। यह वैदिक आदर्श यहां स्पष्ट रूपसे दर्शाया गया है। इस प्रकार यह मंत्र विशेष महत्वका है। इस का मनन करना चाहिए।

सर्वान् कामान् यमराज्ये वशा प्रददुषे दुहे। अथाहुर्नारकं लोकं निरुन्धानस्य याचिताम्॥

अथर्व० १२। ४। ३६॥

अर्थ- (वशा) वशा गौ (यमराज्ये) यम के राज्य में (प्रददुषे) प्रकृष्टके दानीके लिए (सर्वान् कामान्) सर्व प्रकार की कामनाओं को (दुहे) पूर्ण करती है। (अथ) और (याचितां) मांगी हुई के (निरुन्धानस्य) रोकनेवालेका अर्थात् यदि कोई सुपात्र वशा को मांगे और उसको यदि न दी जावे तो न देनेवालेका (लोकं) लोक को (नारकं) महाकष्टप्रद (आहुः) कहते हैं अर्थात् न देनेवाले को नरक मिलता है।

इस मंत्र में वशा गौकी महिमा का वर्णन है। वशा गौके दान करनेवाले को यमराज्यमें किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं होता। उसकी सर्व कामनायें पूर्ण होती हैं और इसके प्रतिकूल वशा को न देनेवाले को नरक मिलता है।

एतत् ते देवः सविता वासो ददाति भर्तवे। तत्वं यमस्य राज्ये वसानस्तार्प्यं चर॥

अथर्व० १८। ४। ३१॥

अर्थ- हे पुरुष! (सविता देवः) प्रेरक देव (ते) तेरे लिए (भर्तवे) पहिननेके लिए (एतत्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वासः) यह वस्त्र (ददाति) देता है। (तत्-तार्प्यं) उस तृप्ति करनेवाले वस्त्र को (वसानः) पहिनकर (यमस्य राज्ये) यम के राज्य में (चर) विचरण कर।

इस मंत्रपर हम विशेष विचार संपूर्ण सूक्त में करेंगे। इस मंत्र में मृत पुरुष को जो कि यम लोक में पहुंच गया है उसको वस्त्र देने का विधान है।

निम्न लिखित मंत्रमें उस मृत पुरुष को तिल मिश्रित धान देने का उल्लेख है तथा यम राजासे इन को उस पुरुष के देने के लिए अनुमति मांगी गई है-

यास्ते धानाः अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधा-
वतीः। तास्ते सन्तूद्भ्वीः प्रभ्वीः तास्ते यमो
राजानुमन्यताम्॥ अथर्व० १८।४।४३॥

अर्थ- (ते) तेरे लिए (याः तिलमिश्राः स्वधा वतीः धानाः) जिन तिलों से मिश्रित अर्थात् तिल मिले हुए स्वधावाले धानों को (अनु किरामि) अनुकूलता से फैंकतां हूं, (ताः) वे धान (ते) तेरे लिए (उद्भ्वीः) उदय करनेवाले व (प्रभ्वीः) प्रभूत मात्रामें यानि बहुत मात्रा में (सन्तु) होवें। (ताः) उन्हें (ते) तुझे देने के लिए (यमः राजा) यम राजा (अनुमन्यतां) अनुमति देवे। यम के राज्यमें बिना यम की अनुमतिके किसीको कुच्छ नहीं दिया जा सकता अतः उसकी अनुमति मांगी है।

इस मंत्र में यमलोक में गए हुए के लिए अर्थात् मृतके लिए तिलमिश्रित धाना देने का उल्लेख है। ये तिलमिश्रित धान यमराज्यमें जाकर किस रूप-में परिणत हो जाते हैं यह निम्न लिखित मंत्र बतला रहा है—

धाना धेनुरभवद् वत्सो अस्यास्तिलोऽभवत्।
तां वै यमस्य राज्ये अक्षितामुपजीवति।
अथर्व० १८।४।३२॥

अर्थ- यम लोकमें जाकर ऊपरोक्त मंत्रानुसार दिए गए (धाना) धान (धेनुः) तृप्त करनेवाली गौ (अभवत्) बनता है। (अस्याः) और इस धान रूपी गौका (वत्सः) बछडा (तिल) तिल (अभवत्) बनता है। (वै) निश्चयसे (यमस्य राज्ये) यमके राज्यमें वह (तां) उस धानों की बनी हुई गाय परही (उप जीवति) अश्रित हुआ हुआ जीता है।

यहां पर धान तथा तिल यम राज्यमें जाकर किस स्वरूप में परिणत हो जाते हैं यह दर्शाया गया है। इन दोनों मंत्रानुसार धान व तिल यम लोकमें रहते हुए के लिए देने चाहिए क्यों कि उसके जीने के ये एक मात्र आधार हैं।

इन मंत्रों में हमने देखा कि यम लोक में यम का राज्य है। यमराज्य सेभी यमलोक का ही ग्रहण है। वहीं पर यम मृतों को ले जाकर रखता है।

निम्न लिखित मंत्रमें यम का आए हुए मृत पुरुष को अपने राज्यमें स्थान देनेका उल्लेख है-

ददाम्यस्मा अवसानमेतद् य एष आगन्
मनचेदभूदिह। यमश्चिकित्वान् प्रत्येतदाह
ममैष राय उपतिष्ठतामिह॥
अथर्व० १८।२।३७॥

अर्थ- (अस्मै) इस मृत पुरुष के लिए (एतत् अवसानं) इस स्थानको (ददामि) मैं देता हूं। क्योंकि (एषः यः) यह जो है वह (आगन्) यम लोकमें आया है और (इह) यहांपर आकर (मम चेत्) मेराही (अभूत्) होगया है अर्थात् क्योंकि यह यहां आकर मेरी ही प्रजा बन गया है, अतः मैं इसे स्थान देता हूं। अपने राज्य से नहीं निकालता। इस उपरोक्त प्रकार से (चिकित्वान् यमः) ज्ञान-वान् यम (एतत्) यह उपरोक्त 'ददाम्यस्मै' इत्यादि वाक्य (प्रति आह) यमलोक में आए हुए के प्रति कहता है। और यहभी कहता है कि (एषः) यह आगन्तुक (मम राये) मेरे धनके लिए (इह) यहां यम राज्यमें (उप तिष्ठताम्) उपस्थित होवे अर्थात् उसेभी इस मेरे धन का भाग मिले अथवा यह भी अन्य प्रजाजनकी तरह मेरे धन का भाग मिले अथवा यह भी अन्य प्रजा जनकी तरह मेरे लिए दिया जानेवाला उचित कर प्रदान करे।

इस प्रकार इस मंत्रमें यमकी यमराज्यमें आए हुए के प्रति उक्ति है। अबतक के मंत्रोंसे यह पता चला कि यम का यमलोकमें राज्य है अर्थात् वह वहां का राजा है। अब हम यह देखेंगे कि यमलोक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कहांपर है अर्थात् इसकी स्थिति कहां है।

यमकी दक्षिण दिशा।

इन्द्रः प्राङ् तिष्ठन् दक्षिणा तिष्ठन् यमः॥
अथर्व० ९।७।२०

अर्थ— (इन्द्रः प्राङ् तिष्ठन्) इन्द्र पूर्व दिशामें स्थित हुआ हुआ है। (यमः) और यम (दक्षिणा तिष्ठन्) दक्षिण दिशामें ठहरा हुआ है।

इस मंत्र से हमें इतना पता चलता है कि यम दक्षिण दिशामें रहता है यानि यम लोक दक्षिण दिशामें है।

द्युलोकमें यम लोक

नरा वा शंसं पूषणमगोह्यमग्निं देवेद्धमभ्यर्चसे गिरा। सूर्यामासाचन्द्रमसा यमं दिवि त्रितं वात मुषसमक्तुमश्विना॥
ऋ० १०।६४।३

अर्थ- (नराशंसं, पूषणं, अगोह्यं, देवेद्धं अग्नि) नरोंसे प्रशंसा करने योग्य, पुष्टि करनेवाले, सर्व साधारण से जानेके अयोग्य तथा जिसको देवोंने प्रज्वलित किया है ऐसी अग्नि की (गिरा अभ्यर्चसे) स्तुति युक्त वाणियोंसे तू अभ्यर्चना करता है। (सूर्यामासा चन्द्रमसौ) सूर्य तथा पक्षोंके निर्माण करने वाले चन्द्रमा की, (दिवि यमं) द्युलोकमें विद्यमान यम की, (त्रितं वातं) तीनों लोकों में विस्तृत वायुकी, (उषसं) उषाकी, (अक्तुं) रात्रिकी व (अश्विनौ) देवों के वैद्य अश्विनौ की भी स्तुति कर।

यहांपर इतना बताया गया है कि यम की द्युलोकमें स्थिति है। पूर्व मंत्रसे यह पता चला था कि यम की दिशा दक्षिण है। इसका मतलब यह हुआ की द्युमें दक्षिण की ओर कहीं पर यम लोक है।

हमें पितृलोक के प्रकरण में 'उदन्वती द्यौरवमा' इत्यादि मंत्रसे पता चलाथा कि तीन द्यु हैं।। उनमें से प्रथम में जल रहता है, द्वितीयमें सूर्यादि नक्षत्र गण रहते हैं तथा तृतीय में पितर रहते हैं।

अब हमने यह देखना है कि इन तीनमेंसे यमकी द्यु कौनसी है। इसके निर्णय के लिए हमें पितृलोक में आया हुआ 'तिस्रो द्यावः सवितुर्द्वा उपस्थां' इत्यादि मंत्र सहायता देता है। इस मंत्र में यह कहा गया है कि तीन द्युलोक हैं जिनमेंसे दो सूर्यके समीप हैं। ये दो सूर्य के समीप की द्यु जलवाली व नक्षत्रोंवाली है। बीचमें सूर्य है और उसके ऊपर नीचे ये दोनों द्यु हैं। आगे चलकर इसी मंत्रमें कहा है कि तीसरी जो द्यू है वह यमलोक में है जिसमें वीरगण निवास करते हैं। इसी द्यु को लक्ष्यमें रखते हुए संभवतः गीता में कहा है कि 'हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं'। वीर लडाईमें मरनेपर स्वर्गमें जाता है और वह स्वर्ग यही यम लोकमें विद्यमान द्यु है। जैसा कि 'विरा-षाट्' विशेषण से प्रतीत हो रहा है।

इस प्रकार इन दोनों मंत्रोंका अभिप्राय यह हुआ कि यमलोकमें जो द्यु है, वह उदन्वती अर्थात् जिसमें जल रहता है वह भी नहीं है और जिसमें नक्षत्र रहते हैं वह भी नहीं है। परिशेष न्यायसे जो तीसरी बच गई वह यम लोकमें है, यह मानना पडेगा। तीसरी द्यू में पितर रहते हैं अतः पितर यमलोक में रहते हैं यह भी इसका अभिप्राय हुआ। यमलोकका यमराजा है, अतः पितर उसकी प्रजा हुए। पितर यम राज्यमें रहते हैं इस परिणाम को निम्न मंत्र पुष्टि कर रहा है-

ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये।
तेषां लोकः स्वधा नमो यज्ञो देवेषु कल्पताम्॥
यजुः १९।४५

अर्थ— (यम-राज्ये) यमके राज्यमें (ये पितरः समानाः समनसः) जो पितर समान तथा समनस अर्थात् एक संकल्प वाले हैं, (तेषां) उन पितरोंके अर्थ दिए गए (लोकः, स्वधा, नमः, यज्ञः) लोक, स्वधा, नमस्कार व यज्ञ (देवषु कल्पतां) देवोंमें समर्थ होवे अर्थात् विफल न हो।

इस मंत्र में पितर यमराज्यमें हैं यह दर्शाया है। पितरों का स्थान तीसरी द्यू है। अतः वह द्यू यमके राज्यमें ही है यह इस मंत्रसे स्पष्ट हो रहा है।

यमका राज्य तीसरी द्युमें है और उसके आगे द्युलोक समाप्त हो जाता है यह निम्म लिखित मंत्र बता रहा है—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यत्र राजा वैवस्वतो यत्रावरोधनं दिवः ।
यत्रामूर्यह्वतीरापस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥ ९।११३।८॥

अर्थ... (यत्र) जहां का (वैवस्वतः राजा) विवस्वान् का पुत्र यम राजा है, जहां कि (दिवः अवरोधनं) द्यु लोकको समाप्ति है वहां तथा जहां (अमूः) ये (पयस्वतीः आपः) बडे बडे जल हैं (तत्र) वहां (मां अमृतं कृधि) मुझे अमृत बना। (इन्दो) हे इन्दु ! (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिए (परिस्रव) चारों ओर से बह अर्थात् मुझे ऐश्वर्य दे ।

इस उपरोक्त विवेचन से हम निम्न लिखित परिणाम पर पहुंच सकते हैं...

यमलोक जहां कि यम का राज्य है, दक्षिण दिशा की ओर स्थित तृतीय द्यु में है। वहां पितर रहते हैं। यम उनका राजा है व वे उसकी प्रजा हैं । यह बात 'पितर व यमके सहकार्य' नामक शीर्षक में और भी अधिक स्पष्ट हो जाएगी।

निम्न मंत्रमें अलंकार रूपमें उस विराट् का वर्णन प्रतीत होता है । उस विराट को बैल की कल्पना करके उसका वर्णन किया गया है—

प्रजापतिश्च परमेष्ठी च शृङ्गे इन्द्रः शिरो अग्निर्ललाटं यमः कृकाटम् ॥ अथर्व० ९।७।१

अर्थ-उस विराट् बैलको (प्रजापतिः च परमेष्ठी च) प्रजापति व परमेष्ठी ये दोनों (शृङ्गे) दो सींग हैं यानि शृङ्ग स्थानीय हैं। (इन्द्रः) इन्द्र उसका सिर है अर्थात् इन्द्र शिरःस्थानीय है। (अग्निः) अग्नि उसका ललाट (माथा) है। और (यमः) यम उसकी (कृकाटं) गरदन का भाग है ।

यम को विराट् की रचनामें गरदन में स्थान मिलता है अर्थात् यमकी स्थिति उसके शरीरमें गर्दन स्थानीय है ।

इस प्रकरण से हमें यमलोक, यमराज्य तथा उस की स्थिति का पता लगा है । अब अगले प्रकरणमें हम यम राजा के दूतों पर विचार करेंगे ।

यमके दूत ।

इस प्रकरण में यम के दूतों का अस्तित्व, स्वरूप तथा कार्य दर्शाया जाएगा ।

निम्न लिखित मंत्रों में यम के दूत होने के विषय में उल्लेख है-

कृणोमि ते प्राणापानौ जरां मृत्युं दीर्घमायुः स्वस्ति । वैवस्वतेन प्रहितान् यमदूतांश्चरतो ऽप सेधामि सर्वान् ॥ अथर्व० ८ । २ । ११

अर्थ- (ते) तेरे (प्राणापानौ) प्राण और अपान को (कृणोमि) स्थिर करता हूं। और (दीर्घ आयुः) दीर्घ आयु को तथा (स्वति) कल्याण को भी तेरे लिए स्थिर करता हूं । (जरां मृत्युं) बुढापे व मृत्यु को दूर भगाता हूं। (वैवस्वतेन प्रहितान् चरतः सर्वान् यमदूतान्) विवस्वान् के पुत्र यमद्वारा भेजे हुए, संसार में विचरण करते हुए सब यम के दूतों को (अपसेधामि) दूर भगा देता हूं ।

इस मंत्र में यमदूतों का उल्लेख है । यम उन्हें प्राणियों को ले आने के लिए संसार में भेजता है ; उन दूतों को दूर भगाने का निर्देश यहां है ।

नयतामून् मृत्युदुता यमदूता अपोम्भत ।
परः सहस्रा हन्यतां तृणेढ्वेनान् मत्यं भवस्य ॥
अथर्व० ८।८।११॥

अर्थ- (मृत्युदूताः) हे मृत्यु के दूतो ! (अमून्) इन शत्रुओं को (नयत) ले जाओ । हे (यमदूताः) यम के दूतो ! (उप अम्भत) इन्हें कसकर बांध लो ताकि छूट कर भाग न जावें । (परः सहस्राः) हजारों की संख्याओं से भी अधिक (हन्यताम्) मारडालो । (एनान्) इन शत्रुओं को (भवस्य मत्यं) भवकी मुट्ठी अर्थात् घूंसा (तृणेढु) चूर चूर कर डाले ।

इस मंत्रमें शत्रुओं के विनाश के लिए यम दूतों से कहा गया है । मारना यमदूतों का कार्य है यह यहांपर स्पष्ट हो रहा है ।

इस प्रकार इन मंत्रों में यम दूतों का उल्लेख व कार्य दर्शाया गया है । अब हम देखेंगे कि ये यम दूत कौन हैं व इनका स्वरूप क्या है ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यमदूत—श्वान (कुत्ते)

अतिद्रव सारमेयौ श्वानौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा। अथा पितॄन्त्सुविदत्रां उपेहि यमेन ये सधमादं मदन्ति॥

ऋ० १०।१४।१०॥

यही मंत्र अथर्व वेदमें थोडेसे पाठ भेद के साथ इस प्रकार है -

अतिद्रव श्वानौ सारमेयौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा। अथा पितॄन्त्सुविदत्रां अपीहि यमेन ये सधमादं मदन्ति॥

अथर्व० १८।२।११॥

अर्थ- (सारमेयौ) सारमेय, (चतुरक्षौ) चार आंखोंवाले (शबलौ) चित्र विचित्र रंग बिरंगी (श्वानौ) दो कुत्तों से (अति) बचकर के (साधुना पथा) उत्तम मार्ग से (द्रव) जा। (अथ) और (सुविदत्रान् पितॄन्) उत्तम ज्ञान वा धन से उपेत- युक्त - पितरों के (उप इहि) समीप जा। (ये) जो कि पितर (यमेन सधमादं मदन्ति) यम के साथ अत्यन्त आनन्दित हो रहे हैं।

सारमेयौ-सायणाचार्यने इसका अर्थ किया है कि सरमा नाम की देवोंकी कुत्ती है उसके बच्चे। सरमा शब्द सृगतौ धातुसे बाहुलकसे अम करनेपर बनता है। जिसका अर्थ है बहुत दौडनेवाली'। उसका पुत्र सारमेय। स्त्रीभ्यो ढक् से ढक्। लौकिक साहित्य में सारमेय का अर्थ कुत्ता प्रचलित है। अस्तु तथापि हम सारमेय का अर्थ बहुत दौडनेवाला ऐसा कर सकते हैं।

इस मंत्र में इस प्रेतको कहा गया है कि यमके दोनों कुत्तोंसे जो कि रंग बिरंगे हैं, उनसे बचाकर उत्तम मार्गसे पितरों के पास जा, जो कि पितर यम के साथ आनन्दित हो रहे हैं। यद्यपि यहां इस मंत्र में यम के कुत्तोंको यम दूतके नामसे नहीं कहा गया है तथापि आगे आने वाले मंत्रोंमें उन्हें यमदूतके नामसे कहा गया है। व उन में से प्रत्येक के रंग आदिका वर्णन है। यहांपर उन्हें शबल कहा है जिसका कि स्पष्टीकरण वहां है।

यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ। ताभ्यामेनं परिदेहि राजन् स्वस्ति चास्मा अनमीवञ्च धेहि॥ ऋ० १०।१४।११॥

अथर्व० १८।२।२॥

अर्थ- (यम) हे यम (ते यौ) तेरे जो (रक्षितारौ) रक्षाकरनेवाले (चतुरक्षौ) चार आखोंवाले (पथिरक्षी) यम लोक में जाने के रस्ते की रक्षा करनेवाले तथा (नृचक्षसौ) मनुष्यों के देखनेवाले (श्वानौ) दो कुत्ते हैं, हे राजन्। ताभ्यां) उन दोनों कुत्तों द्वारा (एनं) इसको (स्वस्ति) कल्याण (देहि) दे अर्थात् वे कुत्ते इसे हानि न पहुंचावें ऐसा कर। (च) और (अस्मै अनमीवं धेहि) इसके लिए नीरोगिता रोगरहितता दे। इसे कभी रोग न सतावें।

इस मंत्र में यम से कहा गया है कि वह अपने कुत्तों से किसी भी प्रकार का अकल्याण न होने देवे सर्वदा कल्याण व आरोग्य देता रहे।

उरूणसावसुतृपा उदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु। तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम्॥ ऋ० १०।१४।१२॥

अथर्व० १८।२।१३॥

अर्थ- (उरूणसौ) लम्बी नाकवाले, (असुतृपौ) प्राणों के भक्षण से तृप्त होनेवाले, (उदुम्बलौ) विस्तृत बलवाले अर्थात् अत्यन्त बलवान् (यमस्य दूतौ) यम के दूत उपरोक्त दोनों कुत्ते (जनाँ अनुचरतः) मनुष्यों के पीछे पीछे विचरण करते रहते हैं। ताकि अवसर मिलते ही उनके प्राणों से अपनी तृप्ति करें। (तौ) ऐसे वे यम दूत कुत्ते (अस्मभ्यं) हमारे लिए (सूर्याय दृशये) सूर्य के दर्शनार्थ अर्थात् इस लोकमें जीने के लिए (अद्य) आज (इह) यहां (भद्रं असुं) कल्याणकारी प्राण को (पुनः) फिर (दातां) देवें। वे हमारे प्राणों को छीनकर हमें मार न डालें अपितु उलटा प्राणों को देवें ताकि हम यहां जीवित रह सकें।

इस मंत्र में पूर्व मंत्रोक्त यमदूत कुत्तों के स्वरूप का वर्णन है। वे लम्बी लम्बी नाकवाले अत्यन्त बलवान् व प्राणों के भक्षण से तृप्त होनेवाले हैं। उनसे प्राणों की भिक्षा उत्तरार्ध में मांगी गई है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

श्यामश्च त्वा मा शबलश्च प्रेषित्तौ यमस्य यौ पथिरक्षी श्वानौ अर्वाङेहि मा वि दीध्यो मात्र तिष्ठः पराङ्मनाः ॥ अथर्व० ८।१।९॥

अर्थ-(श्यामः) काला (च) और (शबलः) चितकबरा ऐसे रंग बिरंगी (यौ) जो दो(यमस्य) यमके (पथिरक्षी) यम लोकके मार्ग की रक्षा करने वाले (श्वानौ) कुत्ते हैं वे (त्वा) तुझे (मा) मत बाधा पहुंचावें। (अर्वाङ् एहि) हमारे सन्मुख आ। (मा विदीध्यः) विरुद्ध मत हो अर्थात् हमें छोडकर चले जाने की कोशिश मत कर। अत्र यहां इस संसारमें (पराङ्मनाः) विक्षिप्त चित्त हुआ हुआ (मा तिष्ठः) मत स्थित हो। संसारसे उदासीन वृत्ति धारण मत कर।

इस मंत्रसे ऐसा पता चलता है कि यमके जो दोनों कुत्ते हैं उनमेंसे एक तो काले रंगका है तथा दूसरा काले सफेद आदि रंगोंसे मिश्रित चितकबरा है।

इस मंत्रमें जो काला व चितकबरा करके यमके दूत कुत्तोंका वर्णन है वह आलंकारीक रूपसे रात व दिनका वर्णन प्रतीत होता है। काला कुत्ता रात है वह शवल कुत्ता दिन है। वे दिवरात मनुष्योंके पीछे प्राण हरण करने के लगे हुए हैं। ज्यों ज्यों दिन व रात गुजरते जाते हैं त्यों त्यों मनुष्यकी आयु क्षीण होती जाती है। अतः संभव है ये दिन व रात वास्तवमें यमके दूत हों और उनका यमके श्वान(कुत्ते) करके वर्णन किया हो। यहां पर एक और भी शंका उठ सकती है और वह यह कि श्वान शब्दसे ही क्यों यमके इन कुत्तोंका उल्लेख किया गया ? कुत्तेके लिए दूसरे अनेक शब्द विद्यमान हैं ही। परन्तु पाठकोंको ध्यानमें रखना चाहिए कि श्वान शब्द हमारी उपर कि कल्पना को औरभी दृढ करता है। श्वान शब्दके अर्थ पर विचार करनेसे उपरोक्त शंका स्वयमेव शांत हो जाती है और इस श्वान द्वारा किए गए आलंकारिक वर्णन का महत्त्व प्रतीत होने लगता है। श्वानका अर्थ है (श्वा=श्वः= कल, न=नहीं) जो आनेवाली कलमें न रहे अर्थात् जो आज तो है पर वह कल न रहेगा। जो दिन व रात एक वार निकल गए वे फिर दुबारा लौटकर नहीं आते। अब पाठक श्वान शब्दके महत्त्व को समझ गए होंगे कि क्यों यमके दूतोंको श्वानके नामसे कहागया है और उससे किससे किस प्रकार दिन व रातका वर्णन किया गया है। परन्तु जबतक इस विषयमें पूर्ण खोजन की जावे तबतक निश्चयसे कुछभी नहीं कहा जासकता। पाठक इस पर विचार करेंगे ऐसी आशा है।

उपरोक्त मंत्रके उत्तरार्धके भावको नीचे लिखे मंत्रमें अधिक स्पष्ट किया गया है।

इहैधि पुरुष सर्वेण मनसा सह ।
दूतौ यमस्य मानुगा अधि जीवपुरा इहि ॥
अथर्व० ५।३०।६

अर्थ- हे पुरुष! (सर्वेण मनसा सह) संपूर्ण मनकेसाथ अर्थात् मन लगाकर (इह) यहां इस संसारमें रहता हुआ (एधि) वृद्धिको प्राप्त कर (यमस्य दूतौ) उपरोक्त यमके दोनों दूतों के (मा अनुगाः) पीछे मतजा अर्थात् यम लोकमें मतजा। (जीवपुराः) जीवोंके पुरों को अर्थात् शरीरोंको (अधि इहि) प्राप्त कर। शरीर को छोडकर यमलोकमें मतजा।

उपरोक मंत्रके उत्तरार्धका इस मंत्र में स्पष्ट रूपसे पक्षपोषण किया गया है। यमके दूतों का अनुकरण करने अर्थात् मरनेका निषेध करते हुए देहधारण कर मन लगाकर संसारमें रहनेका उपदेश है।

इन ऊपरोक मंत्रोंसे निम्न सारांश निकलता है-

(१) यम के दूत दो कुत्ते हैं।
(२) वे दोनों कुत्ते लम्बी नाक वाले व चार आंखों वाले हैं।
(३) उनमें से एक कुत्ता काला व एक चितकबरा है
(४) उनकी तृप्ति प्राणों के भक्षण सेहोती है। वे मनुष्यों के पीछे सर्वदा प्राणापहरण के लिए- लगे रहते हैं। यम लोकमें जानेके मार्ग की वे सर्वदा रक्षा करते रहते हैं।

यमका दूत—मृत्यु ।

अपेमं जीवा अरुधन् गृहेभ्यस्तं निर्वहत् परिग्रामादितः। मृत्युर्यमस्यासीद्दूतः प्रचेता असून्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पितृभ्यो गमयां चकार ॥ अथर्व० १८।२।२७॥

अर्थ-प्राणधारीलोकोंने इस शवको घरोंसे बाहिर कर दिया है। उसको तुम लोक इस ग्रामसे बाहिर अंत्येष्टि संस्कार के लिए स्मशान भूमिमें ले जाओ यम का दूत जो मृत्यु है उसने इसके प्राणों को पितरोंके पास यम लोकमें भेज दिया है। अतः क्योंकि यह विगत प्राण हो चुका है इसवास्ते इसके शवको ग्राम से बाहिर दहनादि क्रिया के लिए ले जाओ।

इसमंत्रमें यह दर्शाया गया है कि मृत्यु यमका दूत है वह मृतके प्राणोंको पितरों के पास पहुंचता-है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि मरनेपर जीव पितृलोकमें जाता है।

यह मंत्रभी पूर्वोक्त निम्न लिखित परिणामों को पुष्ट करता है।

(१) यम प्राणोंका अपहरण करनेवाला है, क्यों कि मृत्यु उसका ही दूत है।

(२) पितृलोक यम के राज्यमें है, क्यों कि मृतके प्राणों को पितरों के पास पितृलोकमें यमका दूत मृत्यु पहुंचाता है।

पाठक गण यमके दूतों संबन्धी इस उपरोक्त विवेचनसे यह कदापि न समझें कि यमके ये तीन दा कुत्ते व तीसरा मृत्यु ही दूत हैं। और भी अनेक दूत हैं पर ये उनमें से प्रधान-मुख्य हैं, अतः इनका विशद रूपसे वर्णन किया गया है। हम इस प्रकरण के प्रारंभमें ही एक ऐसा मंत्र देख आए हैं जिससे सहज पता चलता है कि यम के अनेक दूत हैं। उनका निर्देश मात्र है। विशेषों का मात्र विगतवार वर्णन है। उस यमके अनेक दूत बतानेवाले मंत्रको मूल रूप से हम पुनः यहां दिग्दर्शन कराते हैं-

नयतामून् मृत्युदूता यम दूता अपोम्भत । पर सहस्त्राः हन्यतां तृणेढ्वेनान् मत्यं भवस्य ॥
अथर्व० ८। ८।११ ॥

इसके अतिरिक्त अन्य भी ऐसे मंत्र हैं जिनमें यम के अनेक दूत होनेका उल्लेख है।

यमके कार्य

यमका पितृयाणमार्ग जानना।

यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नेषा गव्यूति रपभर्तवा उ। यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पथ्या अनु स्वाः ॥ ऋ० १०। १४। २॥
अथर्व० १८। १। ५०॥

अर्थ- (प्रथमः यमः) वह प्रसिद्ध यम (नः गातुं विवेद) हमारे मार्ग को जानता है। (एषागव्यूतिः) यह मार्ग किसीसेभी (अपभर्तवै न) अपहरण नहीं किया जा सकता। (यत्र) जिस मार्ग में (नः पूर्वे पितरः) हमारे पुरातन पितर (परेयुः) गए हुए हैं। (एना) इस मार्गसे (जज्ञानाः) उत्पन्न प्राणीमात्र (स्वाः पथ्याः) अपने अपने पथ्यों के अनुसार (अनु) जाते हैं।

यहांपर यम उस मार्ग को (पितृयाणको) जानता है जिससे कि पितर जाते हैं व अन्य उनका अनुगमन करते हैं यह दर्शाया है।

यमकी स्वर्गमें पहुंचानेके लिए सहमति।

नमः सुते निर्ऋते तिग्मतेजोऽयस्मयं विचृता बन्धमेतम्। यमेन त्वं यम्या संविदानोत्तमे नाके अधि रोहयैनम् ॥ यजुः १२।६३ ॥

अर्थ- हे (निर्ऋते) निऋति! (ते नमः) तेरे लिए नमस्कार है। (तिग्मतेजः) उत्कट तेजवाली तू (अयस्मयं एतं बन्धं) लोहेके इस बन्धनको (विचृत) काट डाल। (त्वं) तू (यमेन यम्या संविदाना) यम व यमीके साथ मिलकर (एनं) इसको (उत्तमे नाके) उत्तम स्वर्गमें (अधिरोहय) पहुंचा।

इस मंत्रमें निर्ऋतिका यमके साथ एकमत होकर स्वर्गमें पहुंचानेका उल्लेख है। अर्थात् यम स्वर्गमें जानेके लिए यमकी भी सहमति चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यमका दीर्घायु देना

ऊर्जो भागो य इमं जजानाश्मान्नानामाधिपत्यं जगाम। तमर्चत विश्वमित्रा हविर्भिः स नो यमः प्रतरं जीवसे धात्॥ अथर्व. १८।४।५४॥

अर्थ- (यः)-जिस (ऊर्जः भाग) अन्नके विभाग करनेवालेने (इमं) इस अन्नको (जजान) पैदा किया है और जो (अश्मा) अश्मा होनेसे (अन्नानां अधिपत्यं) अन्नोंके स्वामीत्वको प्राप्त हुआ है ऐसे (तं) उसकी हे सबके मित्रो ! (हविर्भिः) हवियों-द्वारा (अर्चत) पूजा करो। (सः) वह (यमः) यम (नः) हमें (प्रतरं जीवसे धात्) बहुत जीनेके लिए धारण करे अर्थात् दीर्घायु देवे।

यमकी मनुष्योंसे रक्षा।

सूर्यो माह्नः पात्वग्निः पृथिव्या वायुरन्तरिक्षाद् यमो मनुष्येभ्यः सरस्वति पार्थिवेभ्यः ॥
अथर्व० १६।४।४॥

अर्थ- (सूर्यः) सूर्य (अह्नः) दिनसे अर्थात् दिन में होनेवाले कष्टों से (मा पातु) मेरी रक्षा करे। (अग्निः) अग्नि (पृथिव्याः) पृथिवीसे, (वायुः अन्तरिक्षात्) वायु अंतरिक्षसे, (यमः मनुष्येभ्यः) यम मनुष्यों से तथा (सरस्वती पार्थिवेभ्यः) सरस्वती पार्थिव पदार्थोंसे मेरी रक्षा करे।

यम की मृत्यु से रक्षा

अपन्यधुः पौरुषेयं वधं यमिन्द्राग्नी धाता सविता बृहस्पतिः। सोमो राजा वरुणो अश्विना यमः पूषास्मान् परिपातु मृत्योः ॥
अथर्व १९।२०।११॥

अर्थ- (यं पौरुषेयं वधं) जिस पुरुष संबन्धी वधको अर्थात् पुरुष के खूनको शत्रुओंने (अपन्यधुः) छिपकर किया है, उस वध के कारण होनेवाली (मृत्योः) मृत्युसे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि, (धाता) धारण करनेवाला, (सविता) प्रेरणा करनेवाला, (बृहस्पतिः वाणियोंका अधिपति, (सोमः राजा) सौम्य स्वभाव वाला राजा, (वरुणः)वरुण, (अश्विना) देवों के वैद्य अश्वीनौ, (यमः) यम तथा (पूषा) पोषक देव (अस्मान्) हमारी (पातु)रक्षा करें।

मंत्रोक्त प्रत्येक देवतासे पुरुष की हिंसा से रक्षा करने की प्रार्थना की गई है। सबके साथ यम से भी मृत्युसे रक्षा करके लिए कहा गया है। यम के अनेक कार्य हैं जैसा कि पाठकोंको यम के प्रकरणसे-पता चलेगा। यहां पर सिर्फ थोडेसे मंत्रों को जिनका-कि अन्यत्र समावेश नहीं हो सका है दर्शाए गए हैं।

यम के प्रति हमारे कार्य।

यमके लिए हवि।

परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्था मनुपस्पशानम्। वैवस्वतं सङ्गमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य॥ ऋ० १०।१४।१॥

अर्थ- (प्रवतः) प्रकृष्ट, उत्तम तथा निकृष्ट योनिगत प्राणियों का (अनु) लक्ष्य करे (मही परेयिवांसं) पृथिवीपर आए हुए तथा (बहुभ्यः) बहुतोंके लिए (पन्थां) यम लोकके मार्ग को (अनुपस्पशानं) दर्शाते हुए (जनानां सङ्गमनं) जिसमें मनुष्य जमा होते हैं ऐसे (वैवस्वतं) विवस्वान् के पुत्र (यमं राजानं) यम राजा की (हविषा. दुवस्य) हवि देकर पूजा कर।

हमने पहिले देखा है कि यम के दूत मनुष्यों के पीछे सर्वदा लगे हुए हैं। यहांपर उसी भाव को भिन्न रूप से दर्शाया है। यम सबके पीछे लगा हुआ है। जिस जिसकी अवधि पूर्ण हुई कि उसे यमलोक का मार्ग वह दर्शाता है।

यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहता हविः
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरङ्कृतः ॥
ऋ० १०।१४।१३॥

यम मंत्र थोडे से पाठ भेदके साथ अथर्व वेद में है—

यमाय सोमः पवते यमाय क्रियते हविः।
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्नि दूतो अरङ्कृतः॥
अथर्व० १८।२।१॥

अर्थ- (यमाय सोमं सुनुत) यम के लिए यज्ञमें सोम को निचोडो। (यमाय हविः जुहुत) यमके लिए यज्ञ में हवि दो। (ह) निश्चयसे (अरङ्कृतः

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अग्निदूतः यज्ञः यमं गच्छति) शीघ्रता करता हुआ, अग्नि जिसका दूत है ऐसा यज्ञ यम को जाता है।

इस मंत्र में यम के लिए सोम व हवि देनेका उल्लेख है। यम के लिए किया गया यज्ञ उसे प्राप्त होता है यह भी साथ दर्शाया गया है।

यमाय घृतवद्धविर्जुहोत प्र च तिष्ठत।
स नो देवेष्वा यमद्दीर्घायुः प्रजीवसे॥
ऋ० १०।१४।१४॥

अथर्व वेदमें थोडेसे पाठभेदके साथ यह मंत्र इस प्रकार है—

यमाय घृतवत् पयो राज्ञे हविर्जुहोतन।
स नो जीवेष्वा यमद्दीर्घायुः प्रजीवसे॥
अथर्व० १८।२।३॥

अर्थ- (यमाय) यम के लिए (घृतवत् हविः) घी से परिपूर्ण हविको (जुहोत) दो। और इस प्रकार (प्रतिष्ठत) प्रतिष्ठित होओ। (सः) वह यम (नः) हमें (प्रजीवसे) उत्तम प्रकार से जीनेके लिए (देवेषु) देवोंमे (नः)हमें (दीर्घायुः आयमत्) दीर्घायुष्य को देवे।

इस मंत्र में यम के लिए घीसे परिपूर्ण हवि क देने का व दीर्घायु देने की प्रार्थना का उल्लेख है।

यम के लिये अन्न की हवि।

यद् यामं चक्रु निखनन्तो अग्रे कार्षीवणा अन्नविदो न विद्यया। वैवस्वते राजनि तज्जुहोम्यथ यज्ञियं मधुमदस्तु नोऽन्नम्॥
अथर्व० ६।११६।१॥

अर्थ— (अग्रे) पहिले (निखनन्तः) भूमि खोदते हुए अर्थात् कृषि करते हुए (अन्नविदः) अन्नको जाननेवाले अर्थात् अन्नकी प्राप्ति किस प्रकारसे होती है इस बातके जाननेवाले अथवा अन्नकी प्राप्ति करनेवाले (कार्षीवणाः) किसानोंने (न विद्यया) अज्ञान के कारण (यत् यामं चक्रुः) जो यम संबंधी अपराध किया अथवा (अन्न विदः न) अन्नोंको प्राप्त करनेवालोंकी तरह (यत् यामं चक्रुः) जो कृषि संबन्धी नियम समूह बनाया (तत्) उस उत्पन्न अन्नको (वैवस्वते राजनि) वैवस्वत राजा यममें (जुहोमि) देता हूं (अथ) और तब (नः) हमारा (यज्ञियं अन्नं मधुमत् अस्तु) यज्ञके योग्य जो अन्न है वह मधुरतावाला होवे।

इसमंत्रमें नवीन उत्पन्न अन्न का अंश यमके लिये देनेका निर्देश है।

यमकी पूजा !

ते हि द्यावापृथिवी भूरिरेतसा नराशंसश्चतुरङ्गो यमोऽदितिः। देवस्त्वष्टा द्रविणोदा ऋभुक्षणः प्ररोदसी मरुतो विष्णुरर्हिरे
ऋ० १०।९२।११

अर्थ— (ते भूरि रेतसा द्यावा पृथिवी) वे बहुत जलवालीं द्यु और पृथिवी, (यमः) यम, (अदितिः) अदिति, (त्वष्टा देवः) त्वष्टा देव (द्रविणोदाः) अग्नि, (ऋभुक्षणः) ज्ञानी वा कारीगर गण, (रोदसी) रुद्रकी पत्नी, (मरुतः) देव गण तथा (विष्णुः) विष्णु ये सब (नराशंसः चतुरङ्ग) नराशंस चतुरंग यज्ञमें (अर्हिरे) पूजे जाते हैं। यहां अन्योंके साथ यम की भी पूजाका उल्लेख है।

यम के लिए घर बनाना।

यथा यमाय हर्म्यमवपन् पंचमानवाः।
एवा वपामि हर्म्यं यथा मे भूरयोऽसत॥
अथर्व० १८।४।५५

अर्थ- (यथा) जिस प्रकार (पंचमानवाः) पांचमानवोंने (यमाय) यमके लिए (हर्म्यं) घरको (अवपन्) बनाया है (एव) उसी प्रकार मैं भी (हर्म्यं वपामि) घर बनाता हूं (यथा) जिससे कि (मे) मेरे (भूरयः) बहुत से घर (असत) हो जावें।

पंचमानवाः- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र ये चार वर्ण व पांचवा निषाद। अथवा देव मनुष्यादि पूजन, जैसा कि ऐतरेय ब्राह्मण में कहा है- 'सर्वेषां वा एतत् पंचजनानां उक्थ्यं देवमनुष्याणां गन्धर्वाप्सरसां सर्पाणां पितृणांच। एतेषां वा एतत् पंचजनानां उक्थाम्' इति। ऐ. ब्रा. ३।३१॥

इस मंत्रमें यह दर्शाया गया है कि जिसको अपने घरोंके बढाने की इच्छा हो वह यमके लिए घर बंधवावे। पंच मानव यमके लिए घर बनाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यमके लिये स्वधा-नमः

यमाय पितृमते स्वधा नमः॥ अथर्व० १८।४।७४

अर्थ- (पितृमते यमाय) उत्कृष्ट पिता के पुत्र यमके लिए स्वधा और नमस्कार है। यहां यमके लिए स्वधा का निर्देश है।

इस प्रकार इस विभागमें संक्षेप से यमके लिए हमें क्या करना चाहिए यह दर्शाया गया है।

यम और स्वप्न।

इस प्रकरण में यमके साथ स्वप्नका क्या संबन्ध है उसकी उत्पत्ति कैसे होती है इत्यादि बातों की चर्चा होगी।

स्वप्नका पिता यम।

यो न जीवोसि न मृतो देवानाममृतगर्भोऽसि स्वप्न। वरुणानी ते माता यमः पिताररुर्नामासि॥ अथर्व० ६।४६।१॥

अर्थ— हे स्वप्न ! (यः) जो तू (न जीवः असि न मृतः) न तो जीवित ही है और नहीं मरा हुआ ही है वह तू (देवानां अमृतगर्भः असि) देवोंका अमृत गर्भ है अर्थात् देवोंमें सर्वदा रहनेवाला है। (ते) तेरी (वरुणानी माता) वरूणानी माता है और (यमः पिता) यम पिता है। (अररुः नाम असि) तू अररु नामवाला है।

देवानां- यहां देवानां का अर्थ इन्द्रियोंका है। स्वप्न इन्द्रियोंमें अमृत रूपसे बसा हुआ है। क्योंकि जागृत अवस्थामें इन्द्रियोंके अनुभवों से उत्पन्न वासनाओंसे उत्पन्न होता है। हमारे अन्दर वासनायें स्थायी हैं अतः स्वप्न उन वासनाओंसे उत्पन्न होनेसे अमृत हैं अतएव उसे यहां अमृत गर्भसे कहा गया है।

अररुः- पीडा देनेवाला। हिंसक। 'ऋगतिर्हिंसयोः' से बना है। तै.ब्रा. ३।२।९।४ के अनुसार अररु नामवाला असुर।

वरुणानी- वरुण अर्थात् अंधकार की पत्नी।

इस प्रकार इस मंत्रमें यमको स्वप्नका पिता कहा गया है। अर्थात् स्वप्न यमका पुत्रहै। अतएव कईवार स्वप्नसे मृत्युभी हो जाती है।

यमस्य लोकादध्या बभूविथ प्रमदा मर्त्यान् प्रयुनक्षि धीरः। एकाकिना सरथं यासि विद्वान्त्स्वप्नं मिमानो असुरस्य योनौ॥ अथर्व० १९।५६।१॥

अर्थ- हे स्वप्न ! तू (यमस्य लोकात्) यम के लोक से (अधि आबभूविथ) प्रकट हुआ हुआ है। (धीरः) धीठ (Bold) तू (प्रमदा) बडे अभिमान से (मर्त्यान्) मरणधर्मा मनुष्यों को (प्रयुनक्षि) अपने साथ संयुक्त करता है-अर्थात् अपने प्रभाव से उनमें प्रविष्ट हो जाता है, अतएव मनुष्यों को स्वप्न आता है। (विद्वान्) जानता हुआ अर्थात् जानबूझकर तू (असुरस्य योनौ) आत्मा के उपलब्धि के स्थान हृदय में (स्वप्नं मिमानः) स्वप्न को उत्पन्न करता हुआ (एकाकिना) अकेले स्वप्नदर्शी पुरुष वा मृत्यु के साथ (सरथं) समान वाहनपर सवार हुआ हुआ (यासि) विचरण करता है।

पूर्व मंत्र में यम को स्वप्न का पिता दर्शाया गया है। इस मंत्र में उसी की पुष्टि के रूपमें बताया गया है कि स्वप्न यमलोक में उत्पन्न होकर यहांपर संसार में आकर मनुष्यों में प्रविष्ट हुआ हुआ है।

स्वप्न, यम का करण

विद्म ते स्वप्न जनित्रं देवजामीनां पुत्रोऽसि यमस्य करणः। अन्तकोऽसि मृत्युरसि। तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि॥ अथर्व० ६।४६।२॥

अर्थ-हे स्वप्न ! (ते जनित्रं विद्मः) तेरी उत्पति को हम जानते हैं। तू (देवजामीनां पुत्रोऽसि) देवों की पत्नियों का पुत्र है। और (यमस्य करणः) यम के कार्यों का साधक है। तू (अंतकः असि) अंत करनेवाला है। (मृत्युः असि) तू मारनेवाला है। हे स्वप्न ! (तं त्वा) उस तुझ को (तथा) वैसा उपरोक्त जैसा (सं विद्म) हम जानते हैं। (सः) वह तू स्वप्न ! (नः दुष्वप्न्यात्) बुरे स्वप्न से हमारी (पाहि) रक्षा कर।

इस मंत्र में स्वप्न को देव पत्नियों का पुत्र कहा गया है। पूर्व मंत्र की टिप्पणी में हमने स्वप्न की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उत्पत्ति दर्शाते हुए यह बताया था कि देव अर्थात् इन्द्रियों के विषयों से उत्पन्न वासनाओं से स्वप्नकी उत्पत्ति होती है । उसी कथन की पुष्टि इस मंत्र में 'देवजामीनां पुत्रः असि' से की गई है । देवों अर्थात् इन्द्रियों की पत्नियां इन्द्रिय विषयजन्य वासनायें हैं । उनका स्वप्न पुत्र है । यहां पर विशेष बात कही गई वह यह कि स्वप्न को यमका करण बताया गया है । पाणिनि मुनिने करण का लक्षण अष्टाध्यायी में किया है कि- 'साधकतमं' (अष्टा. १।४।४२) अर्थात् जो कार्य साधनेमें समीपतम साधन है वह करण है । कार्य साधक सब साधनों में जो साधन अधिक आवश्यक है वह करण कहलाता है । इस लक्षणानुसार यमका स्वप्न करण है इसका अभिप्राय यह हुआ कि यम के मारने के कार्य में स्वप्न सब से अधिक आवश्यक साधन है। पाठक स्वप्न के इस विशेषण से उसकी भयंकरता का अनुमान सहज कर सकते हैं ।

इसी मंत्र के भाव को ही नीचे लिखे मंत्र में शब्द भेदसे कहा गया है-

देवानां पत्नीनां गर्भ यमस्य कर यो भद्रः स्वप्न ।
स मम यः पापस्तद्द्विषते प्रहिण्मः ।
मा तृष्टानामसि कृष्णशकुनेर्मुखम्॥
अथर्व. १९।५७।३

अर्थ- हे (देवानां पत्नीनां गर्भ) देवों की पत्नियों के गर्भ रूप तथा (यमस्य कर) यमके हाथ स्वप्न ! (यो भद्रः) जो कल्याणकारी तेरा अंश है (सः) वह अंश (मम) मेरा होवे । (यः पापः) और जो तेरा पापी - अनिष्टकारी अंश है (तत्) उस अंश को (द्विषते) द्वेष करनेवाले के प्रति (प्रहिण्म) हम भेजते हैं । (तृष्टानां) तृषितों-लोभियों - क्रूरों के बीचमें तू (कृष्ण शकुनेः) काले पक्षी के (कौएके) (मुखं) मुखकी तरह तू (मा असि) हमारे लिए बाधक मत हो, अर्थात् जिस प्रकार लोभियों को वा क्रूरों के लिए कौए का मुख अनिष्टकारी होता है उस प्रकार तू हमारे लिए अनिष्टकारी मत हो ।

विद्म ते स्वप्न जनित्रं ग्राह्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥　अथर्व० १६।५।१॥

अर्थ—हे स्वप्न ! (ते जनित्रं विद्म) तेरी उत्पत्ति को हम जानते हैं । तू (ग्राह्याः पुत्रः असि) ग्राही का पुत्र है और (यमस्य करणः) यम के कार्यों का साधक है ।

इस मंत्र में स्वप्न को ग्राही का बेटा कहा गया है। गठिया आदि शरीर के जकडनेवाले रोग ग्राही कहलाते हैं । उन रोगों के कारण शरीर में पीडा बनी रहती है जिससे निद्रा नहीं आती और यदि आई भी तो स्वप्नकीसी अवस्था बनी रहती है । अतएव स्वप्न को ग्राही का पुत्र कहा है । यमस्य करण की व्याख्या ऊपर कर आए हैं ।

अन्तकोऽसि मृत्युरसि ॥　अथर्व० १६।५।२
　　　　　　　　　　" 　१६।५।९॥

हे स्वप्न तू (अन्तकः असि) प्राणान्त करनेवाला है । तू (मृत्युः असि) मारनेवाला है ।

निद्रा बराबर न आनेसे व रोज स्वप्न आने से स्वास्थ्य बिगडकर अंतमें मृत्यु हो जाती है अतएव स्वप्न को यहां अन्तक व मृत्यु के नामसे कहा गया है ।

विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्ऋत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः। अन्तकोऽसि मृत्युरसि । तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ॥　अथर्व० १६।५।४॥

मंत्रका अर्थ हम ऊपर दे आए हैं । वहां पर ऐसा ही मंत्र आया है । इस मंत्र में स्वप्न को निर्ऋति का पुत्र कहा गया है । निर्ऋति से स्वप्न की उत्पत्ति का अभिप्राय यह है कि निर्ऋति अर्थात् कष्ट, दुःख आदि से मनुष्य को निद्रा नहीं आती । स्वप्न वह अवस्था है जिस अवस्था में कि गाढ निद्रा का अभाव होता है । और कष्टादि की दशामें मनुष्य को गाढ निद्रा नहीं आती । इसी अभिप्राय से स्वप्नको निर्ऋति का पुत्र कहा है। शेष मंत्र की व्याख्या पूर्ववत् ही है ।

विद्म ते स्वप्न जनित्रमभूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः । अन्तऽकोसि० इत्यादि०
अथर्व० १६।५।४ वत् ॥
अथर्व० १६।५।५।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अर्थ पूर्ववत् । इस मंत्रमें स्वप्न को अभूति अर्थात् अनैश्वर्य-दारिद्र्य का पुत्र कहा है । दरिद्रता के परितापसे भी मनुष्य को निद्रा नहीं आती। इस प्रकार गरीबी से भी स्वप्न (वास्तविक निद्रा का न आने) की उत्पत्ति है । शेष व्याख्या पूर्ववत् ही समझनी चाहिए ।

विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्भूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः । अन्तकोऽसि० । इत्यादि पूर्ववत् ॥ अथर्व० १६।५।६॥

अर्थ पूर्ववत् । इस मंत्रमें स्वप्न को निर्भूति का पुत्र कहा गया है। निर्भूति का अर्थ है ऐश्वर्य-सम्पत्ति का निकल जाना-नष्ट हो जाना । सम्पत्तिशाली की सम्पत्ति नष्ट हो जानेसे उसे भी निद्रा नहीं आती । वह सुखकी निद्रा से नहीं सो सकता। इस प्रकार संपत्ति विनाश का भी स्वप्न पुत्र है ।

विद्म ते स्वप्न जनित्रं पराभूत्याः पुत्रो सि यमस्य करणः । अन्तकोऽसि० । इत्यादि ॥ अथर्व० १६। ५ । ७ ॥

अर्थ पूर्ववत् । इस मंत्र में स्वप्न को पराभूतिका पुत्र कहा गया है । पराभूतिका अर्थ है पराभव अर्थात् हारजाना, तिरस्कार को प्राप्त होना । पराभवसे वा तिरस्कार से मनुष्य को इतना मानसिक कष्ट होता है कि उसके लिए निद्रा हराम हो जाती है । और इस प्रकार पराभूति से स्वप्न की उत्पत्ति होती है।

विद्म ते स्वप्न जनित्रं देवजामीनां पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥ अथर्व० १६ । ५ । ८ ॥

हे स्वप्न तेरी उत्पत्ति को हम जानते हैं तू देवोंकी पत्नियों का पुत्र है और यमके कार्यों का साधक है। इस मंत्रका भाव हम पूर्व दर्शा आए हैं। देव पत्नियोंका पुत्र स्वप्न किस प्रकार है यह वहां विशद रूप से दर्शा आए हैं।

इस प्रकार यह अथर्ववेदके १६ वें काण्ड का ५ वां सूक्त संपूर्ण यम व स्वप्न विषयक है जो कि हमने ऊपर दिया है। इस सूक्त से व इससे व दिए गए पहिले के मंत्रोंसे यम व स्वप्न का संबन्ध स्पष्ट होता है। स्वप्न यमलोकमें रहता है वहांसे मनुष्यों में प्रविष्ट हुआ हुआ है, उसका पिता यम है, वरुणानी उसकी माता है । वह अपने पिता यम के कार्योंका निकटतम साधक है ॥ इसके अतिरिक्त स्वप्न अर्थात् वास्तविक निद्रा का अभाव किन किन कारणोंसे होती है तथा उससे क्या दुष्परिणाम होते हैं, स्वप्न यम का करण किस प्रकार है इत्यादि बातों का उल्लेख इस सूक्त में स्पष्ट रूपसे हमें देखने को मिला है। इस प्रकार यह सूक्त तथा स्वप्न विषयक अन्य मंत्र भी यमके स्वरूप दर्शानेमें पर्याप्त सहायक हैं । यम विषयक पूर्व स्थापना को ये मंत्रभी पुष्ट कर रहे हैं यह पाठक इस विवेचनसे समझ सके होंगे ।

परिशिष्ट ।

इस प्रकरण में यम विषयक वे मंत्र दिए जायंगे जो कि निर्धारित प्रकरणोंमें से किसी में भी शालीम नहीं किए जा सके हैं। इस से पूर्व पितर विषयक प्रकरणोंके अंतमें जो परिशिष्ट करके प्रकरण दिया गया है वह पितर विषयक मंत्रोंका परिशिष्ट है। इस प्रकरण में दिए गए मंत्र भी अबतक आए हुए यम से ही संबन्ध रखते हैं यह बात पाठकों को भूलनी नहीं चाहिए। परिशिष्टसे यह न समझना चाहिए कि इस प्रकरणान्तर्गत मंत्रोंमें शायद यम अन्य अर्थों वाला हो। अन्य अर्थोंमें प्रयुक्त यम हम सबसे अंतमें

यम कौन है ?

यो ममार प्रथमो मर्त्यानां यः प्रेयाय प्रथमो लोकमेतत् । वैवस्वतं सङ्गमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत ॥ अथर्व० १८।३।१३

अर्थ- (यः) जो (मर्त्यानां प्रथमः ममार) मनुष्यों में सबसे प्रथम मरा और (यः) जो (एतं लोकं प्रथमः प्र ईयाय) इस लोक यम लोक को सब से पहिले गया उस (जनानां संगमनं) जनों के संगमन(वैवस्वतं यमं राजानं)विवस्वान् के पुत्र यम राजाकी (हविषा सपर्यत) हवि द्वारा पूजा करो ।

इस मंत्र से ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्योंमेंसे सबसे प्रथम मनुष्य विवस्वान् का पुत्र, सबसे पहिले

CC-0. In Public Domain. eGangotri

Digitized by eGangotri

मृत्यु लोकमें गया अतः उस लोक का नाम उसके नामसे यमलोक ऐसा पडा। इस का अभिप्राय यह हुआ कि जो मनुष्य सबसे प्रथम मरता है वह इस कल्पमें यम बनता है।

संगमनका अर्थ है जिसमें प्राणी जाकर जमा होते हैं। यमराजाकी हवि द्वारा पूजा करनेकाभी यहां निर्देश है। अर्थात् यम को भी हवि देनी चाहिए।

यम व विवस्वान्।

यमः परोवरो विवस्वान् ततः परं नातिपश्यामि किंचन। यमे अध्वरो अधि मे निविष्टो भुवो विवस्वानन्वाततान॥

अथर्व० १८।२।३२॥

अर्थ- (यमः परः) यम परे है अर्थात् दूर है और (विवस्वान्) सूर्य उससे (अवरः) समीप है। (ततः परं) उस यम से परे मैं (किंचन न अति पश्यामि) कुछ भी दूर स्थित हुआ हुआ नहीं देखता हूं। वा नहीं समझता हूं (यमे मे अध्वरः अधिनिविष्टः) यमके अन्दर मेरा अध्वर अर्थात् हिंसारहित यज्ञ स्थित है (विवस्वान् भुवः अनुआततान) सूर्यने द्युलोक को अपने प्रकाशसे फैला रखा है।

इस मंत्र में पिता पुत्र यम व विवस्वान् की स्थान की दृष्टिसे तुलना की गई है। यम का स्थान सूर्यसे परे है और उससे परे कोई नहीं है। हमने यमलोक नामक प्रकरण में देखा था कि तीन प्रकार की द्युमें से दो सूर्यके समीप हैं तथा तीसरी यम के राज्य में है। उसको दृष्टीमें रखते हुए इस मंत्र के यम विवस्वान् से परे है इस कथन का अभिप्राय यह हुआ कि यम जिस द्युमें है वह सब से परे है अर्थात् वह द्युलोककी समाप्ति पर है। उसके आगे द्युलोक समाप्त हो जाता है। हमारी समझमें यहां पर स्थान की दृष्टिसे ही तुलना है। पर का अर्थ उत्कृष्ट भी हो सकता है और अवर का अर्थ अधम भी हो सकता है पर ऐसा अर्थ करने से उस का भाव ध्यानमें आना कठिन है। उपरोक्त अर्थ की पुष्टि करनेवाले मंत्र हम पूर्व देख आए हैं और अतः उस दृष्टि से इस मंत्र का अर्थ विशेष संगत प्रतीत होता है।

भुवः-इस का अर्थ द्युलोक है जैसा कि 'भु-भुवः स्वः' इस में भुवः का अर्थ है।

इषुमान् यम।

दक्षिणायै त्वा दिश इन्द्रायाधिपतये तिरश्चिराजये रक्षित्रे यमायेषुमते। एतं परिदद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः। दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह संभवेम॥ अथर्व० १२।३।५६॥

अर्थ- (दक्षिणायै दिशे अधिपतये) दक्षिण दिशाके स्वामी, के लिए (तिरश्चिराजये रक्षित्रे) कीट पतङ्गादि तिर्यक् गमन करनेवालों से रक्षा करनेवाले (इषुमते इन्द्राय यमाय रक्षार्थ) बाणधारक ऐश्वर्यशाली यम के लिए (एतं त्वा) इस तुझ को (परिदद्मः) सौंपते हैं। (अस्माकं ऐतोः) हमारी गतिसे (तं) उस की तथा (नः) हमारी (गोपयत) रक्षाकर। (दिष्टं नः अत्र जरसे निनेषत्) हमारि पूर्वजन्म के कर्म अर्थात् नसीब हमें यहां बुढापे तक पहुंचावें। (नः) हमें (जरा) बुढापा (मृत्यवे परि ददातु) मृत्यु को सौंपे अर्थात् वृद्धावस्था से पूर्व हमरी मृत्यु न हो। (अथ) मरने के बाद (पक्वेन सह संभवेम) पक्व परिपूर्ण परमात्मासे जा मिलें।

यम और ऋण

अपमित्यमप्रतीतं मदस्मि यमस्य येन बलिना चरामि। इदं तदग्ने अनृणो भवामि त्वं पाशान् विचृतं वेत्था सर्वान्॥

अथर्व ६।११७।१॥

अर्थ- (यत्) क्यों कि मैं (अपमित्यं) जो देना है पर वह (अप्रतीतं) नहीं दिया है ऐसा ऋण हूं अर्थात् मेरे पर वह ऋण है। (यमस्य येन बलिना) यम के जिस बलवान् ऋण से मैं ऋणी हुआ हुआ (चरामि) विचरण कर रहा हूं, (अग्ने) हे अग्नि! (तत्) वह उपरोक्त जो ऋण है उससे मैं तेरे द्वारा (अनृणः) ऋण रहित होऊं। क्यों कि (त्वं) तू (सर्वान् पाशान्) सब पाशों को (विचृतं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वेत्थ) काटना वा खोलना जानती है ।

इस मंत्र में यह दर्शाया गया है कि अग्नि की सहायता से यमके ऋण से मुक्त हुआ जा सकता है । अग्नि सर्व प्रकार के बंधनों को काटना जानती है ।

यम की अग्निको स्थिर करना

ईर्षीकां जरतीमिष्ट्वा तिल्पिञ्जं दण्डनं नडम् ।
तमिन्द्र इध्मं कृत्वा यमस्याग्निं निरादधौ ॥
अथर्व० १२।२।५४॥

अर्थ--(इन्द्रः) इन्द्रने (जरतीं इषीकां) जरती इषीका से (इष्ट्वा) याग करके और (तिल्पिञ्जं) तिल्पिज, (दण्डनं) दण्डन व (नडं) नडको (इध्मं) समिधा बना करके (यमस्य)यम की (तं अग्निं) उस अग्निका (निः आदधौ)निश्चय से स्थापित किया ।

जरती इषीका = बूढे अर्थात् सूखे हुए कानें ।

तिल्पिञ्ज - तिलों के गुच्छे । दण्डन-यह भी एक प्रकार की काने की जातकी वनस्पति है । नड-नडे जिसकी कलमें बनती हैं ।

इस मंत्रमें यह दर्शाया गया है कि यम की अग्निमें इन चीजों से याग करना चाहिए जिससे कि यम की अग्नि स्थिर बनी रहे ।

यम के भाग जल

यमस्य भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवी वर्चो अस्मासु धत्त। प्रजापतेर्वो धाम्नाऽस्मै लोकाय सादये ॥ अथर्व० १०।५।१२॥

अर्थ—हे जलो ! तुम (यमस्य भाग स्थ) यम के भाग हो । (देवीः आपः) हे दिव्यजलो ! (अपां शुक्रं वर्चः अस्मासु धत्त) जलों का शुद्ध तेज हमारे में स्थापित करो । (वः) तुम्हें (प्रजापतेः धाम्ना) प्रजापति के तेजसे (अस्मै लोकाय सादये) इस लोक के लिए स्थित करता हूं ।

इस मंत्र में जलों को यम का अंश बताया गया है । उन से तेज मांगने की प्रार्थना की गई है ।

...... यमनेत्रेभ्यो देवेभ्यो दक्षिणासद्भ्यः स्वाहा ... ॥ यजुः अ० ९।३५॥

अर्थ -(यमनेत्रेभ्यः) यम जिनका नेता है ऐसे (दक्षिणासद्भ्यः) दक्षिण दिशामें बैठनेवाले (देवेभ्यः स्वाहा) देवों के लिए यह आहुति है ।

... ये देवा यमनेत्रा दक्षिणा सदस्तेभ्यः स्वाहा .... ॥ यजुः अ० ९।३५॥

अर्थ—(ये देवाः यमनेत्राः) जो देव यमनेत्र अर्थात् यम जिनका नेता हैं ऐसे तथा (दक्षिणासदः) दक्षिण दिशामें बैठनेवाले हैं (तेभ्यः) उन के लिए (स्वाहा) स्वाहा पूर्वक यह आहुति हो ।

इन मंत्रों से दक्षिण दिशावालों का यम नेता है ऐसा पता चलता है ।

... यमस्य त्रयोदशी... ॥ यजुः २५ । ४ ॥

अर्थ- यम की त्रयोदशी है ।

यम की त्रयोदशी का क्या अभिप्राय है यह विचारणीय है । पाठकगण विचार कर किसी अभिप्राय पर पहुंचें गे ऐसी आशा है ।

... यमाय कृष्णः ॥ यजुः २४ । ३० ॥

अर्थ- यमके लिए काला पशु होवे ॥ यजुर्वेदके इस मंत्रमें भिन्न भिन्नके लिए भिन्न भिन्न पशुओंका विधान है। परन्तु इस विधान का क्या रहस्य है यह एक विचारणीय समस्या है । स्वामीजीके भाष्यसे भी इसपर कुछ भी प्रकाश नहीं पडता ।

तस्या यमो राजा वत्स आसीद्
रजतपात्रं पात्रम्॥

(तस्याः) उस विराट्रूपी गौका (यमः राजा) यमराजा (वत्सः आसीत्) बछडा था व दूध दोहनेके लिए (पात्रं) बरतन (रजतपात्रं) चान्दीका बरतन था ।

यहां पर आलंकारिक वर्णन प्रतीत होता है पर यह अलंकार किसका किस प्रकार है यह एक विचाणीय बात है ।

परिशिष्ट में आए हुए कई मंत्र खासकरके पिछले विशेष विचारणीय हैं क्यों कि इनका अभिप्राय बरारबर व्यक्त नहीं हो रहा है ।

यम व पितरोंका संवन्ध ।

यम व पितर विषयक के अबतक के विवेचन से पाठक गण पितर व यमके पारस्परिक संबन्धसे कुछ न कुछ अवश्य परिचित हो गए होंगे । यमके

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

तथा पितरों के अलग अलग दिए गए विवरणों से यम क्या है, व पितर क्या हैं, यह भी पाठकों के ध्यानमें सहज आ गया होगा। यम व पितरों के संबन्ध का खास खास स्थानोंपर हमने निर्देश भी किया है। उन निर्देशोंसे जो बातें हमें पता चली हैं उनसे यह स्पष्ट है कि यम पितरों का राजा है व पितर उसकी प्रजा हैं। पितर यमलोकमें रहते हैं। उसीका नाम पितृलोक भी है।

इन्हीं उपरोक्त परिणामों की पुष्टि निम्न मंत्र स्पष्ट रूपमें करते हुए दिखाई दे रहे हैं।

यम पितरोंका अधिपति

यमः पितॄणामधिपतिः स मावतु। अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्या माकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा॥ अथर्व० ५।२४।१४॥

अर्थ—(सः पितॄणां अधिपतिः) वह पितरोंका स्वामी (राजा) (यमः) यम (मा अवतु) निम्न लिखित कर्मोंमें मेरी रक्षाकरे। (अस्मिन् ब्रह्मणि) इस ब्रह्मज्ञान की प्राप्तिमें। (अस्मिन् कर्मणि) इस श्रेष्ठ कर्ममें। (अस्यां पुरोधायां) इस पुरोहिताईके काममें। (अस्यां प्रतिष्ठायां) इस प्रतिष्ठाके कार्य में। (अस्यां चित्त्यां) इस चेतना युक्त कार्योंमें। (अस्यां आकूत्यां) इस संकल्पमें। (अस्यां आशिषि) इस आशीर्वादके कार्यमें। (अस्यां देवहूत्यां) इस देवोंके आह्वाहनके कार्योंमें।

इस मंत्रमें यमको पितरों का स्वामी कहा गया है। पितरोंके ऊपर यमके अधिकार को यहां पर स्पष्ट किया गया है। यह अधिकार किस रूपमें है अर्थात् यम पितरोंका किस तरह स्वामी है यह नीचेके मंत्रसे स्पष्ट हो रहा है-

स यत् पितॄननुव्यचलद् यमो राजा भूत्वाऽनुव्यचलत् स्वधाकारं अन्नादं कृत्वा॥ अथर्व. १५।१४।१३॥

अर्थ—(सः) वह व्रात्य (यत्) जब (पितॄन् अनुव्यचलत्) पितरोंका लक्ष्य करके चला अर्थात् पितरोंमें आया तब (यमः राजा भूत्वा) यम पितरोंका राजा बनकरके तथा पितरों के लिए (स्वधाकारं अन्नादं कृत्वा) स्वधा करके लिए हुए को जीवनयात्रा का साधन भूत अन्न बनता हुआ (अनुव्यचलत्) उस व्रात्य के पीछे पीछे पितरों में आया।

व्रात्य नाम अतिथि का है। यहां पर यम पितरोंका राजा बनकर उनमें रहता है यह दर्शाया गया है।

पितरों का यम राजा है इस बात की निम्न मंत्र भी पुष्टि कर रहे हैं।

मा त्वा वृक्षः संबाधिष्ट मा देवी पृथिवी मही।
लोकं पितृषु वित्त्वैधस्व यमराजसु॥
अथर्व० १८।२।२५॥

अर्थ—(त्वा वृक्षः मा संबाधिष्ट) तुझ वृक्ष अर्थात् वनस्पतियां बाधा मत पहुंचावें। वृक्ष यहां वनस्पतियों का उपलक्षण है। (देवी मही पृथिवी मा) और दिव्य गुणोंवाली विस्तृत पृथिवी भी तुझे बाधा मत पहुंचाए। (यमराजसु पितृषु लोकं वित्त्वा) यम जिनका राजा है ऐसे पितरों में स्थान प्राप्त करके (एधस्व) वृधि को प्राप्त हो।

इस मंत्रमें स्पष्ट रूपसे यम का पितरों के राजा होने को दर्शाया गया है। पितर यमकी प्रजा हैं। यमराज में भी पितर रहते हैं इसका यहांपर स्पष्ट रूपसे उल्लेख है। यह मंत्र प्रेत को लक्ष्य कर के कहा गया है। इसी प्रकार निम्न मंत्र में भी उपरोक्त मंत्र के भाव को ही पुष्ट किया गया है।

प्राणो अपानो व्यान आयुश्चक्षुर्दृशये सूर्याय।
अपरिपरेण पथा यमराज्ञः पितॄन् गच्छ॥
अथर्व० १८।२।४६॥

अर्थ- (प्राणः) प्राण, (अपानः) अपान, (व्यानः) व्यान, (आयुः) आयु और (चक्षुः) आंख (सूर्याय दृशये) सूर्यके दर्शन के लिए अर्थात् इस संसार में जीवन धारण करने के लिए होवें। और आयु के पूर्ण होनेपर देह का त्याग करनेपर हे प्रेत! तू (अपरिपरेण पथा) अकुटिल मार्ग द्वारा (यमराज्ञः पितॄन्) यम जिनका राजा है ऐसे पितरों को (गच्छ) जा-प्राप्त हो।

अपरिपरः- परि परितः सर्वतः परः परभावः कुटिलभावः अथवा शत्रुः न विद्यते यस्मिन् सः अपरिपरः। अर्थात् जिसमें सर्वथा कुटिलता वा शत्रु आदि नहीं है वह अपरिपर।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इस मंत्र में भी पितरों का जो विशेषण दिया गया है वह यम का पितरों के राजा होने को ही सिद्ध कर रहा है।

यम श्रेष्ठ पितर !

सप्तर्षीन् वा इदं ब्रूमोऽपो देवीः प्रजापतिम्।
पितॄन् यमश्रेष्ठान् ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः॥
अथर्व ११।६।११॥

अर्थ- (सप्त ऋषीन्) सात ऋषियों को (इदं ब्रूमः) यह कहते हैं। (देवीः अपः) दीव्य जलों को हम कहते हैं। (प्रजापतिं) प्रजापति को हम कहते हैं और (यमश्रेष्ठान् पितॄन्) यम के कारण से जो श्रेष्ठ हैं ऐसे पितरों को हम (ब्रूमः) कहते हैं कि (ते) वे उपरोक्त सब (नः) हमें (अंहसः मुञ्चतु) पाप से छुडावें।

यहां पर पितरों को यमश्रेष्ठ कहा गया है। यहां पर यम का अर्थ योग में कहे गए अहिंसा अस्तेय आदि भी हो सकता है। जो इन षड् यमों के पालने से श्रेष्ठ हुए हैं वे यमश्रेष्ठ ऐसा भी इसका अर्थ हो सकता है।

अस्तु उपरोक्त विवरण से यह पता चला कि यम पितरों का राजा है व पितर उसकी प्रजा हैं।

यम व पितरों के सहकार्य

इसमें यह दिखाया जायगा कि कौन कौन से कार्य यम तथा पितर मिलकर करते हैं।

यमके साथ हवि खाना

ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः। तेभिर्यमः संरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु॥ ऋ० १०। १५।८॥
यजुः अ० १९।५१॥

अर्थ- (ये पूर्वे सोम्यासः वसिष्ठाः पितरः) हमारे जिन पुरातन सोम संपादन करनेवाले तथा उत्तमधनवाले पितरोंने यज्ञमें (सोमपीथं) सोमपान को (अनु ऊहिरे) किया था, (तेभिः) उन (उशद्भिः) यम के साथ सोमपान की कामना करते हुए पितरों के साथ, (उशन् यमः) पितरों के साथ सोमपान की इच्छा करता हुआ यम (संरराणः) पितरों के साथ रमण करता हुआ (हवींषि) हवियों को (प्रतिकामं) यथेच्छ (अत्तु) खावे।

इस मंत्र में पितरों के साथ हवि खाने की इच्छा करता हुआ यम उनके साथ हवि खाता है यह दर्शाया गया है।

ये नः पितुः पितरो ये पितामहा अनूजहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः। तेभिर्यमः संरराणो हवीं ष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु॥ अथर्व० १८।३।४६

इस मंत्रका उत्तरार्ध उपरोक्त ऋ० १०।१५।८ के साथ सर्वथा मिलता है

अर्थ- (नः ये पितुः पितरो ये पितामहाः) हमारे जिन पिता के पितरों ने और उन के भी जिन पितामहों ने जो कि उत्तम धन संपन्न थे, (सोमपीथं) यज्ञ में सोमपान (अनुजहिरे) स्वीकृत किया था अर्थात् सोमपान किया था उन पितरों के साथ० इत्यादि पूर्ववत्॥

इस मंत्र में भी प्रथम मंत्रोक्त बात को ही पुनः कहा गया है। इस प्रकार यम का पितरों के साथ हवि लेने का कार्य ये मंत्र बता रहे हैं।

यम व पितरों के साथ जाना

ह्वयामि ते मनसा मन इहेमान् गृहाँ उपजुजुषाण एहि। सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेन स्योना स्त्वा वाता उपवान्तु शग्माः॥ अथर्व० १८।२।२१॥

अर्थ- (ते मनः मनसा ह्वयामि) तेरे मन को मन द्वारा बुलाता हूं। (इह) यहां (इमान् गृहान्) इन घरों से (जुजुषाणः उप एहि) प्रीति करता हुआ अन्दर आ। तू (पितृभिः) पितरों के (सं गच्छस्व) साथ विचरण कर। (यमेन सं) यमके साथ विवचरण कर। (स्योनाः) सुखदायक (शग्माः) शक्तिशाली (वाताः) वायु (त्वा उपवान्तु) तेरे लिए बहें।

यहां पर यम व पितरोंके साथ जानेको कहा गया है उसका अभिप्राय यह हुआ कि यम व पितर साथ साथ विचरण करते हैं।

पितर व यमका मिलकर सुखदेना

दक्षिणां दिशमभि नक्षमाणौ पर्यावर्तेथामभि पात्रमेतत्। तस्मिन् वां यमः पितृभिः संवि-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दानः पक्वाय शर्म बहुलं नियच्छात् ॥
अथर्व० १२।३।८॥

अर्थ—(दक्षिणां दिशं) दक्षिण दिशा की (अभिनक्षमाणौ) ओर जाते हुए तुम दोनों (एतत् पात्रं अभि) इस पात्र की ओर (परि आवर्तेथाम्) लौट आओ। (तस्मिन्) उस पात्र में (पितृभिः संविदानः यमः) पितरों के साथ मिला हुआ यम (पक्वाय) पक्व होने के लिए अर्थात् पूर्ण आयु देने के लिए (वां) तुम दोनों को (बहुलं शर्म) बहुत सुख (नि यच्छात्) देवे।

इस मंत्र में यह दर्शाया गया है कि यम पितरों के साथ मिल झुलकर सुख देता है। यहां पात्र शब्द से किस का अभिप्राय है यह व्यक्त नहीं होता।

यम व पितरोंकी सहमति से स्वर्ग प्राप्ति

अयस्मये द्रुपदे बेधिषे इहाभिहितो मृत्युभिर्ये सहस्रम्। यमेन त्वं पितृभिः संविदान उत्तमं नाकं अधिरोहयेमम् ॥ अथर्व० ६।६३।३॥
" ६।८४।४॥

अर्थ—(इह) यहां (अभिहितः) सर्वत्र स्थित हुई हुई हे निर्ऋति! तू (ये सहस्रं) जो हजारों हैं ऐसे (मृत्युभिः) मृत्यु के पाशों से (अयस्मये द्रुपदे) लोहमयी लकडी की बनी हुई बेडी में (बेधिषे) बांधती है। (त्वं) तू (यमेन पितृभिः सं विदानः) यम और पितरों के साथ मिलकर उनकी सहमति से (इमं) इसको (उत्तमं नाकं आधिरोहय) उत्तम स्वर्ग में पहुंचा।

निर्ऋति से यहां प्रार्थना की गई है कि वह यम व पितरों से मिलकर स्वर्ग में पहुंचावे। परन्तु इसका क्या अभिप्राय है अर्थात् निर्ऋति किस प्रकार स्वर्ग को पहुंचाती है, उसका स्वर्ग से क्या ताल्लुक है यह विचारणीय है।

पितरों का स्थूणा धारण करना व यम का स्थान देना।

उत्ते स्तभ्नामि पृथिवीं त्वत्परीमं लोगं निदधन्मो अहं रिषम्। एतां स्थूणां पितरो धारयन्तु तेऽत्रा यमः सादना ते मिनोतु ॥
ऋ० १०।१८।१३॥

यह मंत्र थोडे से पाठभेद के साथ अथर्ववेदमें भी आया है—

उत्ते स्तभ्नामि पृथिवीं त्वत्परीमं लोगं निदधन्मो अहं रिषम्। एतां स्थूणां पितरो धारयन्तु ते तत्र यमः सादना ते कृणोतु ॥
अथर्व० १८।३।५२॥

अर्थ- (ते) तेरे लिए (पृथिवीं) पृथिवी को (उत् स्तभ्नामि) ऊपर को उठाकर रखता हूं। फिर (त्वत् परि) तेरे पर उस (लोगं) मिट्टी के ठले को जो कि उठा रखा है। (निदधत्) रखता हुआ (मो अहं रिषम्) मैं मत नष्ट होऊं। (एतां स्थूणां) इस खंभेको तेरे लिए (पितरः धारयन्तु) पितर धारण करें। (अत्र) औरउस आधारस्तंभ पर (ते) तेरे लिए (यमः) यम (सादना) घरों को (मिनोतु) बनावे।

आङ्गिरस् पितर व यम

मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः। याँश्च देवा वावृधुर्ये च देवान्त्स्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति ॥
ऋ० १०।१४।३॥

यह मंत्र पाठान्तर से अथर्ववेद में है-

मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पति ऋक्वभिर्वावृधानः। याँश्च देवा वावृधुर्ये च देवाँस्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥ अथर्व० १८।१।४७॥

अर्थ- (मातली) इन्द्र (कव्यैः) कव्य खाने वाले पितरों से, (यमः) यम (अङ्गिरोभिः) अङ्गिरस् पितरों से तथा (बृहस्पतिः) बृहस्पति (ऋक्वभिः) ऋचाओं से (वावृधानः) वृद्धिको प्राप्त होता है। (यान् देवाः वावृधुः) जिनको देव बढाते हैं (ये च) और जो (देवान्) देवोंको बढाते हैं, (अन्ये) उनमें से अन्य मातली, यम और बृहस्पति तो (स्वाहा मदन्ति) वषट्कार से दी हुई हवि से प्रसन्न होते हैं और (अन्ये) इन से भिन्न दूसरे कव्य, अङ्गिरस् आदि (स्वधया) स्वधाकार से प्रसन्न होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अथर्व वेदमें जो थोडासा पाठभेद है वह इस मंत्र के अर्थ को अधिक स्पष्ट करता है। उसके अनुसार मंत्रार्थ इस प्रकार है—

इन्द्र कव्य पितरों से, यम अङ्गिरस् पितरों से तथा बृहस्पति ऋचाओं से स्तुति करनेवाले पितरों से बढता है। जिन पितरों को ये उपरोक्त देव बढाते हैं तथा जिन देवों के ये उपरोक्त पितर बढाते हैं ऐसे वे पितर बुलाए जानेपर हमारी रक्षा करें।

इस प्रकार इस मंत्र में यह दर्शाया गया है कि यम अङ्गिरस् पितरों से बढता है यानि यशस्वी होता है।

इमं यम प्रस्तर मा हि सीदाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः। आ त्वा मंत्राः कविशस्ताः वहन्त्वेना राजन् हविषा मादयस्व ॥
ऋ० १०।१४।४॥ अथर्व० १८।१।६०॥

अर्थ- हे यम। (अङ्गिरोभिः पितृभिः संविदनः) अङ्गिरस् पितरों से मिला हुआ तू (इमं प्रस्तरं) इस फैलाए हुए आसन पर (आसीद) बैठ। (त्वां कविशस्ताः मंत्राः) तुझे कविशस्त मंत्र (आ वहन्तु) बुलावें (एना) इस (हविषा) हविद्वाराः (मादयस्व) प्रसन्न हो।

कविशस्तमंत्र— कवि अर्थात् क्रान्तदर्शी ज्ञानी लोकों से जिनकी प्रशंसा की गई है ऐसे मंत्र प्रशंसनीय मंत्र।

इस मंत्र में प्रशंसापरक मंत्रोंद्वारा यमके अङ्गिरस् पितरों के साथ बुलाकर यज्ञमें विस्तृत आसन पर बैठानेका उल्लेख है।

यमका अङ्गिरस् पितरों के साथ आना।

अङ्गिरोभिरागहि यज्ञियेभिः यम वैरूपैरिह मादयस्व। विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषद्य ॥ ऋ० १०।१४।५

यह मंत्र थोडेसे पाठ भेद के साथ अथर्व वेदमें भी है—

अङ्गिरोभिर्यज्ञियैरागहीह यम वैरूपैरिह मादयस्व। विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन् बर्हिष्या निषद्य ॥ अथर्व० १८।१।५९

अर्थ- हे यम (वैरूपैः) विविध रूपवाले (यज्ञियेभिः) पूजनीय यज्ञके योग्य (अङ्गिरोभिः) अङ्गिरस् पितरों के साथ (इह आगहि) इस यज्ञमें आ। और (मादयस्व) प्रसन्न हो। (विवस्वन्तं हुवे) मैं विवस्वान् को भी बुलाता हूं (यः) जो कि विवस्वान् (ते पिता) तेरा पिता है। वह तेरा पिता (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञमें (बर्हिषि आ निषद्य) आसन पर बैठकर यजमान को आनन्दित करे।

इस मंत्रमें यम को अङ्गिरस् पितरोंके साथ यज्ञ में बुलाया गया है। इसके अतिरिक्त यह मंत्र यमका पिता विवस्वान् है इस पूर्वोक्त परिणाम का समर्थन कर रहा है। विवस्वान् को भी यज्ञमें बुलानेका यहां निर्देश है।

अबतक के इन मंत्रोंसे अङ्गिरस् पितर व यम के संबन्ध का व परस्पर के व्यवहारों का हमें पता चलता है। ये सब मंत्र यमका पितरोंसे विशेष संबन्ध है यह स्पष्ट रूपसे प्रतिपादन कर रहे हैं। यम बहुत से काम पितरोंसे मिलकर ही करता है। इससे यम राज्यमें पितरोंकी स्थिति पर भी थोडासा प्रकाश अवश्य पडता है।

इस प्रकार विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त यम संबन्धी मंत्र समाप्त होते हैं। पाठक इन पर गंभीरता पूर्वक विचार करें तथा जो उचित हो वह ग्रहण करें तथा शेष त्याग दें। अब हम अगले प्रकरण में उन मंत्रोंपर विचार करेंगे जिनमें कि यम इस अर्थ के अतिरिक्त अर्थोंमें प्रयुक्त हुआहुआ है।

भिन्न भिन्न अर्थोंमें प्रयुक्त यम।

इस प्रकरण में हम यह विचार करेंगे कि यम अन्य किन किन अर्थोंमें वेदमें प्रयुक्त हुआ हुआ है। इस प्रकरण में हम सिर्फ मंत्रार्थ देंगे ताकि पाठकोंको यम का अर्थ पता लग सके। कहीं कहीं जरूरत हुई तो दो चार शब्द लिखेंगे।

युगल अर्थोंमें यम।

प्रातर्यावाणा रथ्येव वीराजेव यमा वरमा सचेथे।
मेने इव तन्वा शुंभमाने दम्पतीव क्रतुविदा जनेषु॥
ऋ० २।३९।२

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अर्थ- (प्रातः यावाणौ) प्रातः काल आनेवाले (रथ्या इव) रथमें जुते हुए दो घोडों की तरह (वीरौ) वीर (अजा इव) दो बकरों की तरह (यमा) युगल (तन्वा शुंभमाने मेने इव) शरीर से सुशोभित होती हुई दो मैनाओंकी तरह सुन्दर शरीरवाले, (दम्पती इव ऋतु विदौ) पती-पत्नीके जोडेकी तरह सर्व कार्य कुशल हे अश्विनौ तुम दोनों (जनेषु) जनतामें (वरं आसचेथे) उत्तम कर्मका योग करते हो अर्थात् जनतामें वांछनीय कार्यों की वृद्धि करते हो।

इस मंत्रमें अत्यन्त सुन्दर रीतिसे उपमालंकार-द्वारा अश्विनौ का वर्णन है। प्रत्येक उपमा को देखते-ही बनता है। अजौ इव यमौ- अश्विनौकी उत्पत्ति युगलमें है अर्थात् वे सहोत्पन्न हैं। और बकरी के पेटसेभी प्रायः जोडा ही पैदा होता है अतः उनकी इस युगल उत्पत्ति का दर्शाने के लिए यमौ अजौ अर्थात् युगलोत्पन्न दो बकरों से दी गई है। युगलोत्पत्ति दर्शानेके लिए और ऐसी उत्तम उपमा मिलनी दुर्लभ है। एक उपमा का सौन्दर्य हमने दर्शाया है। पाठक इसी एक उपमा के देखनेसे अन्यों का महत्व स्वयमेव समझ सकते हैं।

यमा चिदत्र यमसूरसूत जिह्वाया अग्रं पतदा
ह्यस्थात् वपूंषि जाता मिथुना सचेते तमोहना
तपुषो बुध्न एता ॥ ऋ० ३।३९।३॥

अर्थ— इस मंत्रमें उषा कालका वर्णन प्रतीत होता है-

(अत्र) यहां (यम) जोडेको उत्पन्न करनेवाली उषाने (यमौ) जोडेको (असूत) उत्पन्न किया। अतः (हि) निश्चयसे(जिह्वायाः अग्रं पतत् आ अस्थात्) जीभका अग्रभाग स्तुतिकरने के लिए चंचलसा हुआ हुआ स्थित है अर्थात् उसकी स्तुति करना चाहता है। (तपुषः बुध्ने) दिनके मूलमें अर्थात् प्रातः कालमें (आइतौ) आए हुए (तमोहनौ) अंधकारका नाश करनेवाले (मिथुनौ) युगलोत्पन्न (वपूंषि) रूपोंको (सचेते) प्राप्त करते हैं।

यहां संभवतः सूर्य चन्द्रका वर्णन प्रतीत होता है। इस मंत्र के भाव को स्पष्ट रूपसे खोलने के लिए विशेष विचार अपेक्षित है।

वाततित्विषो मरुतो वर्षनिर्णिजो यमा इव सु
सदृशः सुपेशसः। पिशङ्गाश्वा अरुणाश्वा
अरेपसः त्वक्षसो महिना द्यौरिवोरवः ॥
ऋ. ५।५७।४॥

अर्थ- (वात त्विषः) वायु की तरह जो तेजस्वी हैं अर्थात् वायु के समान वेगवाले, (वर्ष निर्णिजः) वर्षका निर्णय करनेवाले, (यमाः इव सु सदृशः सुपेशसः) युगलोत्पन्नों की तरह जो देखनेमें एक जैसे व सुन्दर (पिशङ्गाश्वाः)पीले घोडोंवाले तथा (अरुणाश्वाः) लाल घोडोंवाले, (अरेपसः) पाप रहित (प्रत्वक्षसः) अत्यन्त सूक्ष्म कार्यों के भी करनेवाले, (महिना) अपनी महिमासे (द्यौः इव) द्यु की तरह (उरवः) महान् (मरुतः) ये मनुष्य हैं।

बळित्था महिमा वामिन्द्राग्नी पनिष्ठ आ।
समानो वां जनिता भ्रातरा युवं यमाविहेह मातरा
ऋ० ६।५९।२।

अर्थ- हे इन्द्राग्नी ! (इत्था) इस उपरोक्त प्रकारसे (वां महिमा) तुम्हारी महिमा (वट्) सत्य है और (पनिष्ठः) स्तुत्य प्रशंसनीय है। (त्वां जनिता समानः) तुम्हारा उत्पन्न करनेवाला समान अर्थात् एक ही है। (युवं यमौ भ्रातरौ तुम दोनों सहोत्पन्न (युगल) भाई हो। और तुम दोनों (इह इह मातरा) यहां यहां अर्थात् सर्वत्र विद्यमान मातावाले हो।

पनिष्ठ-पणि व्यवहारे स्तुतौ च से बना है। अत्यन्त प्रशंसनीय-स्तुत्य।

वि यो ममे यम्या संयती मदः साकं वृधा पयसा
पिन्व दक्षिता। मही अपारे रजसी विवेविदद्-
भिव्रजन्नक्षितं पाज आदद ॥ ऋ० ९।६८।३॥

अर्थ—(यः मदः) जिस मदने (यम्या) युगलमें रहनेवाली (संयतीः) साथ साथ गति करनेवाली द्यावा पृथिवीको (विममे) निर्माण किया। और फिर (साकं वृधा) साथ साथ बढनेवाली तथा (अक्षिता) न क्षय होनेवाली द्यावा पृथिवीको (पयस्य पिन्वत्) जल से सींचा। फिर उसने (मही) महान् (अपारे) पार रहित (रजसी) द्यावा पृथिवी का (विवे विदत्) ज्ञान कराया। (अभिव्रजन्) चारों ओर भ्रमण करते हुए उसने फिर (अक्षितं पाजं) अक्षय बलको (आददे) ग्रहण कि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

या अर्थात् अत्यन्त बलवान् हुआ।

उष उषो हि वसो अग्रमेषि त्वं यमयोरभवो विभावा। ऋताय सप्त दधिषे पदानि जनयन्मित्रं तन्वे स्वायै॥ ऋ० १०।८।४॥

अर्थ- (वसो) हे वसु! तू (उषः उषः हि अग्रं एषि) प्रत्येक उषाके आगे आगे आता है। (त्वं) तू (यमयोः) युगलभूत दिनरात का (विभावा अभवः) प्रकाशित करनेवाला है। (स्वायै तन्वे) अपने शरीर के लिए (मित्रं जनयन्) आदित्यको उत्पन्न करता हुआ (ऋताय) यज्ञके लिए (सप्त पदानि) धिष्ण्यादि सात स्थानों को (दधिषे) धारण करता है।

यमस्य मा यम्यं काम आगन्त्समाने योनौ सह शेय्याय। जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां विचिद्वृहेव रथ्येव चक्रा॥ ऋ० १०।१०॥७ तथा अथर्व० १८।१।८

अर्थ- (मा यम्यं) मुझ युगलोत्पन्न बहिनको (यमस्य) सहोत्पन्न (युगलोत्पन्न) यम की (समाने योनौ सहशेय्याय) एकही स्थानपर साथ सोनेके लिए (कामं आगन्) इच्छा हुई है। मैं यमी (पत्ये जाया इव) जिस प्रकार पतिके लिए जाया अपना शरीर फैलाती है उस प्रकार (तन्वे) अपना शरीर इस यमके लिए फैला दूं। और फिर हम दोनों (रथ्या चक्रा इव) रथके दोनों पहियोंकी तरह (विवृहेव) उद्यम करें।

विवृहेव = वि पूर्वक वृहू उद्यमने।

रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्येत् सूर्यस्य चक्षुर्मुहुरुन्मिमीयात्। दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य बिभृयादजामि॥ ऋ. १०।१०।९॥ अथर्व. १८।१।१०

अर्थ— (रात्रीभिः अहभिः) रात्रियों व दिनोंके साथ (अस्मै) इस यम युगलोत्पन्न भाईके लिए (सूर्यस्य चक्षुः) सूर्यकी आंख प्रकाशको (दशस्येत्) देवे तथा (मुहुः) बार बार वह सूर्य की आंख यानि प्रकाश (उन्मिमीयात्) उदय होती रहे। अर्थात् यह यम दीर्घायु बने। और तब जिस प्रकार (सबन्धू) समान बन्धू होते हुए भी (पृथिव्या दिवा) पृथिवी और द्यु (मिथुना) पतिपत्नीके जोडेवाले हैं उसी प्रकार यह सबन्धु होती हुई भी यमी (यमस्य) यमके साथ (अजामि) अ बहिन का व्यवहार यानि पत्नीका व्यवहार (बिभृयात्) धारण करे। यमकी सहोदर बहिन होती हुई भी पत्नी बनकर रहे।

बतो बतासि यम नैव ते मनो हृदयं चाविदाम। अन्या किल त्वां कक्ष्येव युक्तं परिष्वजाते लिबुजेव वृक्षम्॥ ऋ. १०।१०।१३ अथर्व. १८।१।१५॥

अर्थ- (बत) हाय! हे (यम) युगलोत्पन्न भाई! (बत असि) तू बडा निर्बल है। (ते) तेरे (मनः हृदयं च) मन व हृदयको (न एव अविदाम) हम नहीं जान पाए। (किल) निश्चयसे (अन्या) दूसरी कोई स्त्री (त्वां) तुझे (कक्ष्या इव) जिस प्रकार घोडेपर काठी वा जीन बांधने की पेटी घोडेको आलिंगन करती है तथा (वृक्षं लिबुजा इव) जिस प्रकार वृक्षको बेल आलिंगन करती है उस प्रकार (परिष्वजातै) आलिंगन करेगी।

अन्यमुषु त्वं यम्यन्य उ त्वां परिष्वजाते लिबुजेव वृक्षम्। तस्य वा त्वं मन इच्छा स वा तवाधा कृणुष्व संविदं सुभद्राम्॥ ऋ. १०।१०।१४॥ अथर्व. १८।१।१६॥

अर्थ - हे (यमी) युगलोत्पन्न बहिन! (त्वं) तू परिष्वजातै) आलिङ्गन के लिए (अन्यं दूसरे पुरुषको। सु) अच्छी तरह प्राप्त हो। (अन्यः) दूसरा पुरुष (त्वां) तुझे आलिंगन के लिए प्राप्त हो। किस प्रकार जिस प्रकारकि (वृक्षं लिबुजा इव) वृक्षको बेल प्राप्त होती है। (तस्य त्वं मन इच्छा) हे यमी उस पुरुषके मनकी तू इच्छा कर (अधा) और (सः) वह तेरे मनकी इच्छा कर। और इस प्रकार (सुभद्रां संविदं) कल्याणकारी मिलनको (कृणुष्व) कर।

यमे इव यतमाने यदैतं प्र वां भरन्मानुषा देवयन्तः। आसीदतं स्व मुलोकं विदाने स्वासस्थे भवतमिन्दवे नः॥ ऋ. १०।१३।२॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अर्थ- इस मंत्र का देवता हविर्धानशकट है। हे (यमे इव) जिस प्रकार युगलोत्पन्न संतान संचार करती है उस प्रकार (यतमाने) अपने कामोंमें प्रवर्तमान (युवां) तुम दोनोंको (यदा) जब तुम (एतं) जातेहो तब (देवयन्तः मानुषाः) देव बननेकी इच्छावाले मनुष्य (प्रभरन्) भरते हैं। तुम (स्वंलोकं विदाने) अपने स्थान को जानते हुए (आसिदतं) बैठजाओ। तब (नः) हमारे (इन्द्रवे) इन्दु के लिए (स्वासस्थे भवतम्) उत्तम निवासस्थान बनो।

समौ चिद्धस्तौ न समं विविष्टः सम्मातरा चिन्न समं दुहाते। यमयोश्चिन्न समा वीर्याणि ज्ञाती चित्सन्तौ न समं पृणीतः॥
ऋ० १०।११७।९॥

अर्थ- (समौ चित् हस्तौ) दोनों हाथों के समान होते हुए भी (समं न विविष्टः) कार्य को समान नहीं करते। (संमातरौ चित्) एक जैसी दो मातायें (गौएं) होने परभी (समं न दुहाते) समान दूध नहीं देतीं। (यमयोःचित् न वीर्याणि समानि) युगलोत्पन्न दो पुत्रों के भी सामर्थ्य समान नहीं होते। और इसी प्रकार (ज्ञाती चित्) एक कुलोत्पन्न संबन्धी होते हुए भी (समं न पृणीत) समान दान नहीं करते।

इतश्च मामुतश्चावतां यमे इव यतमाने यदैतम्। प्र वां भरन् मानुषा देवयन्तो आ सीदतां स्वमु-लोकं विदाने॥ अथर्व० १८।३।३८

अर्थ- (यमे इव यतमाने) युगलकी तरह प्रयत्नशील तुम दोनों (यत्) जब (एतं) आओ तब (इतः च अमुतः च) इस लोकसे व उस लोकसे (मां) मेरी (अवतां) रक्षा करो। (देवयन्तः मानुषाः) देवत्व की कामनावाले मनुष्यों ने (वां) तुम दोनों को (भरन्) भरा है। (स्वलोकं विदाने) अपना अपना स्थान जानते हुए (आसीदतां) बैठो।

इस प्रकार इन मंत्रों के अवलोकन से पाठकों के ध्यान में सहज आ जाए गा कि इन मंत्रों में प्रयुक्त यम शब्द युगल अर्थ में प्रयुक्त हुआ हुआ है।

२– नियमन अर्थ में यम।

इस विभागमें उन मंत्रों का उल्लेख होगा जिनमें कि यम नियमन, नियामक आदि इन्हीं के सदृश अर्थोंमें प्रयुक्त हुआ हुआ है।

एता ते अग्न उचथानि वेधो जुष्टानि सन्तु मनसे हृदे च। शकेम रायः सुधुरो यमं तेऽधि श्रवो देवभक्तं दधानाः॥
ऋ० १।७३।१०

अर्थ- (वेधः अग्ने) हे मेधावी अग्नि! (एता उचथानि) ये वैदिक स्तोत्र (ते मनसे हृदे च) तेरे मन व हृदय के लिए (जुष्टानि सन्तु) प्रीति उत्पन्न करनेवाले हों। (देवभक्तं श्रवः दधानाः) देवोंसे सेवित अन्न वा धन को धारण करते हुए हम (ते सुधुरः रायः यमं शकेम) तेरे उत्तम तथा धारण करने योग्य अथवा जो उत्तम प्रकारसे दारिद्र्यका नाश करनेवाले धनका नियमन कर सकें। श्रवः अन्न। निघण्टुः- २।७॥ श्रवः=धन। निघ० २।१०

यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि। आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातममृतं यजामहे॥ ऋ० १।८३।५॥

अर्थ- (अथर्वा) स्थिर प्रकृति विद्वान् ने (प्रथमः) सबसे पहिले (यज्ञैः) यज्ञोंद्वारा (पथः तते) मार्ग का विस्तार किया। (ततः) तब (व्रतपाः वेनः सूर्यः) व्रतरक्षक चमकीला सूर्य (आजनि) उत्पन्न हुआ। और फिर (उशनाः काव्यः सचा) कामना करते हुए कविको पुत्र के साथ मिलकर सूर्यने (गाः आ आजत्) किरणों को फैंका अर्थात् सर्वत्र प्रकाश किया। (यमस्य जातं अमृतं) नियमन के लिए उत्पन्न अमृत का हम (यजामहे) यजन करते हैं- उसकी पूजा करते हैं। यहां सूर्योदय का वर्णन है। सचा सह। निघ० ४।२॥

यमेन दत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र एनं प्रथमो अध्यतिष्ठत्। गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात् सूरादश्वं वसवो निरतष्ट॥ ऋ० १। १६३। २॥
यजुः २९।१३॥

इस मंत्रका देवता अश्व है। अर्थ - (वसवः सूरात् अश्वं निरतष्ट) वसुओंने सूर्य से घोडे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

को बनाया यानि उत्पन्न किया। फिर (यमेन दत्तं) नियामक अग्निसे दिए हुए उस घोडेको (त्रितः) तीनों लोकोंमें विस्तृत वायुने (आयुनक्) रथादिमें जोडा। (इन्द्रः एनं प्रथमः अध्यतिष्ठत्) इन्द्र उसपर सबसे पहिले सवार हुआ। (गन्धर्वः अस्य रशनां अगृभ्णात्) गन्धर्वने उस घोडे की लगाम पकडी। रशना=घोडेके बांधनेके रस्सी।

असि यमो अस्यादित्यो अर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन। असि सोमेन समया विपृक्त आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि ॥

ऋ० १।१६३।३
यजुः २९।१४

अर्थ- हे (अर्वन्) घोडे। तू (यमः असि) नियामक है। तू (आदित्यः असि) सूर्य है। तू (गुह्येन व्रतेन त्रितः असि) गोप्य व्रतसे तीनों लोकों में फैला हुआ है। तू (सोमेन समया विपृक्तः असि) सोमके समीपके संपर्क से रहित है अर्थात् सोमसे दूर स्थित है। (ते) तेरे (दिवि) द्युलोक में (त्रीणि बन्धनानि आहुः) तीन बन्धन हैं ऐसा विद्वान् लोक कहते हैं।

इन सब मंत्रोंमें अश्वादिके नामसे आलंकारिक वर्णन है। इन मंत्रों का गूढाशय व संगति करण हम यहां पर करने का प्रयत्न नहीं करेंगे। हमारा उद्देश केवल यम का पदार्थ दिखाना है। फिर किसी समय हो सका तो इन मंत्रों पर विशेष विचार करेंगे।

साकञ्जानां सप्तथमाहुरेकजं षळिद् यमा ऋषयो देवजा इति। तेषामिष्टानि विहितानि धामशः स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः ॥

ऋ० १।१६४।१५

अर्थ- (साकं जानां) साथ उत्पन्न हुई हुई ऋतुओंमें (सप्तथं) सातवीं ऋतुको काल तत्त्वके जाननेवाले (एकजं आहुः) एकही महीनेसे उत्पन्न हुई हुई कहते हैं। अर्थात् १२ मासकी ६ ऋतुएं बनती हैं। परन्तु जिस वर्ष एक अधिक मास आता है उस बार इस एक महीने की एक और अलग अधिक सातवी ऋतु बनती है। इस सातवीं ऋतुमें एक ही मास होता है। इसी बातको ' सप्तथं आहुः एकजं ' से कहा गया है। आगे चलकर कहते हैं कि वास्तव में तो (देव जाः) सूर्यसे उत्पन्न होने वाली (यमाः) सर्व कार्यों की नियामक (षड् इति ऋषयः) ६ ही आने जानेवाली ऋतुयें हैं। परन्तु कभी कभी यह एक अधिक मास आकर सातवीं ऋतु बनाता है। (तेषां इष्टानि धामशः विहितानि) इन ऋतुओंके स्वरूप आदि स्थानानुसार जैसे चाहिए वैसे बनाए गये हैं। अर्थात् जिस ऋतुमें जो जो आवश्यक है वह वह उस ऋतुमें उत्पन्न होता है। और (रूपशः विकृतानि) और ऋतुओं के स्वरूपानुसार इष्ट पदार्थ विविध स्वरूपवाले बनाए हैं। ये सब ऋतुएं (स्थात्रे रेजन्ते) अपने अधिष्ठाता का बीचमें चक्कर लगाती हुई गतिकर रही हैं।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ ऋ० १।१६४।४६॥

अर्थ- (विप्राः) बुद्धिमान् लोक (इन्द्रं) इन्द्र, (मित्रं) मित्र, (वरुणं) वरुण, अग्नि आदि अनेक नामों से (एकं सत्) उस एक कोही (बहुधा) बहुत प्रकार के नामों से (वदन्ति) कहते हैं। (अथ) और इसी प्रकार कई उसे कहते हैं कि (सः) वह (दिव्यः सुपर्णः गरुत्मान्) दिव्य है, उत्तम गतिवाला है, महानात्मा है। कोई उसे (अग्निं यमं मातरिश्वानं आहुः) अग्नि, नियामक, मातरिश्वा आदि नाम से कहते हैं। इस प्रकार उस अकेलेही को इन भिन्न भिन्न नामों से कहते हैं।

यह मंत्र निरुक्त में भी व्याख्यात है। देखो निरु० ७।१८॥

अग्ने शकेम ते वयं यमं देवस्य वाजिनः। अति द्वेषांसि तरेम ॥ ऋ० ३।२७।३॥

अर्थ- (अग्ने) हे अग्नि! (वयं) हम (वाजिनः देवस्य ते) बलवान् दिव्यगुणों वाले तेरा (यमं शकेम) नियमन करने में समर्थ हों। और इस प्रकार (द्वेषांसि) द्वेषों के (अति तरेम) पार हो जावें। अर्थात् द्वेषों से सर्वथा मुक्त हो जावें।

क्व वोऽश्वाः क्वाभीशवः कथं शेक कथा यय। पृष्ठे सदो नसोर्यमः ॥ ऋ० ५।६१।२॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अर्थ-हे मनुष्यो ! (वः अश्वाः क्व) तुम्हारे घोडे कहां हैं ! (अभीशवः क्व) उन घोडों के बांधनेकी रसियां कहां हैं अथवा तुम्हारी अभीशव अर्थात् अंगुलियां कहां हैं यानि तुम्हारी कार्य कुशलता कहां गई ? (कथं शेक) बिना घोडों के जल्दी कैसे पहुंच सकेंगे ? (कथायय) कैसे जाओगे ? (पृष्ठे सदः) घोडों के पीठपर की जीन, काठी आदि कहां हैं ? (नसोर्यमः) और नासिकाओं की नियमन करनेवाली नाथ आदि कहां है ?

त इन्निण्यं हृदयस्य प्रकेतैः सहस्रवल्शमभि संचरन्ति। यमेन ततं परिधिं वयन्तोऽप्सरस उपसेदुर्वसिष्ठाः ॥ ऋ. ७।३३।९ ॥

अर्थ-(ते इत् वसिष्ठाः) वे हि वसिष्ठ (हृदयस्य प्रकेतैः) हृदय के प्रकृष्ट ज्ञानों से (निण्यं सहस्र वल्शं) छिपे हुए हजारों शाखाओंवाले संसार में (अभिसंचरन्ति) संचार करते हैं। और वे वसिष्ठ (यमेन ततं परिधिं वयन्तः) नियामक परमात्मा द्वारा फैला हुए जन्मादि प्रवाहरूपी वस्त्र को बुनते हुए (अप्सरसः उपसेदुः) अप्सराओं के समीप बैठते हैं।

स्तुहीन्द्रं व्यश्ववदनूर्मिं वाजिनं यमम्।
अर्यो गयं मंहमानं वि दाशुषे ॥ ऋ० ८।२४।२२॥

अर्थ—(अनूर्मिं) किसी से भी जिसकी हिंसा नहीं की जा सकती अथवा जो शत्रुओं से अगन्तव्य हैं ऐसे (वाजिनं) बलवान् व (यमम्) सबका नियमन करनेवाले (इन्द्रं) इन्द्र की (व्यश्ववत्) व्यश्व की तरह (स्तुहि) स्तुति कर। (अर्यः) सबका स्वामी वह इन्द्र (दाशुषे) दान करनेवाले के लिए (मंहमानं गयं) पूजनीय धन वा घर को (वि) विशेष रूपसे देता है।

व्यश्व के विषय में सायणाचार्य ने लिखा है कि विश्वनामक किसी व्यक्ति का पिता।

प्रेष्ठमु प्रियाणां स्तुह्यासावातिथिम्।
अग्निं रथानां यमम् ॥ ऋ० ८।१०३।१०॥

अर्थ- हे (आसाव) स्तुति करने वाले! (प्रियाणां प्रेष्ठं) प्रियोंमें सबसे अधिक प्रिय (अतिथिं) आई हुई (रथानां यमं) रथों के नियमन करनेवाली अर्थात् ले जानेवाली (अग्निं स्तुहि) अग्निकी स्तुति कर।

इस मंत्रमें आहु हुए अग्निके विशेषण 'रथानां यमं' से अग्निद्वारा रथ चलानेका निर्देश मिलता है। अग्नि रथ से अग्निके द्वारा चलनेवाले रथ का ग्रहण किया जा सकता है।

सं दक्षेण मनसा जायते कविर्ऋतस्य गर्भो निहितो यमा परः। यूना ह सन्ता प्रथमं वि जज्ञतु र्गुहाहितं जनिमनेममुद्यतम् ॥
ऋ० ९।६८।५

अर्थ- (दक्षेण मनसा संजायते) प्रवृद्ध मनसे उत्पन्न होता है। उस (कविः) कान्तदर्शी (ऋतस्य गर्भः) सत्यके गर्भ अर्थात् सत्यमें स्थित को (यमा) यम द्वारा नियम द्वारा देवोंने (परः निहितः) दूर स्थापित किया है। (यूना सन्तौ) उन दोनोंने जवान होनेपर (प्रथमं विजज्ञतुः)सबसे प्रथम जाना। उन दोनोंका (जनिम गुहाहितं) जन्म गुफामें स्थित है अर्थात् छिपा हुआ है सबको मालूम नहीं है। उनका जन्म (नेमं) आधा (उद्यतं) प्रकाशित है अर्थात् उनके जन्म के विषयमें आधा मालूम है।

अग्निर्जातो अथर्वणा विदद् विश्वानि काव्या।
भुवद्दूतो विवस्वतो वि वो मदे प्रियो यमस्य काम्यो विवक्षसे ॥
ऋ० १०।२१।५

अर्थ- (अथर्वणा जातः अग्नि) अथर्वा से उत्पन्न हुई हुई (अग्निः) अग्नि (विश्वानि काव्या) सर्व काव्यों को (विदत्) जानती है। विवस्वतः दूतः भुवत्) वह अग्नि विवस्वान् का दूत बनती है। (वः विमदे प्रियः)और तुह्मारे विशेष आनन्द के लिए वह अग्नि प्रिय होती है। (यमस्य काम्यः) यमकी कमनीय चाहने योग्य बनती है। अतः हे अग्नि ! तू (विवक्षसे) महान् है।

अहमत्कं कवये शिश्नथं हथैरहं कुत्समावमाभिरूतिभिः। अहं शुष्णस्य श्नथिता वधर्यमं न यो रर आर्यं नाम दस्यवे ॥
ऋ. १०।४९।३

अर्थ—(अहं) मैं इन्द्र (कवये) क्रान्तदर्शीके लिए (अत्कं) आच्छादक-आक्रमण कारी शत्रुको

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

(हथैः) हथियारोंसे (शिश्नथं) मार डालता हूं। (अहं) मैं इन्द्र (कुत्सं) कुत्सकी (आभिः ऊतिभिः) इन रक्षणों द्वारा (आवं) रक्षा करता हूं। (अहं) मैं (शुष्णस्य श्नथिता)हिंसा करनेवाले की हिंसा करता हूं। (यः वधः यमं) इस प्रकार मैंने जो वध है उसका नियमन किया है। हिंसाको रोका है। (दस्यवे) दस्युके लिए (आर्यं नाम न ररे) मैं आर्य नाम नहीं देता। अर्थात् दस्युओंको आर्य का नाम नहीं देता। वे आर्योंमें शामिल नहीं हो सकते।

इस मंत्रके अभिप्रायको अच्छीतरह जाननेके लिए पाठक ऋ. १।३३।१४ तथा ऋ. १।१०३।८ का इस मंत्रसे मिलान करके देखें।

भूम्या अन्तं पर्येके चरन्ति रथस्य धूर्षु
युक्तासो अस्थुः। श्रमस्य दायं विभजन्त्ये-
भ्यो यदा यमो भवति हर्म्ये हितः॥

ऋ. १०।११४।१०॥

अर्थ- (रथस्य धूर्षु युक्तासः अस्थुः)रथके जूओं में जुते हुए होकर (एके) कुछ सूर्यकी किरण रूपी घोडे (भूम्याः अन्तं परिचरन्ति) भूमिकी समाप्ति तक विचरण करते हैं। (यदा) जब (यमः) उन घोडोंका नियामक सूर्य (हर्म्ये हितः भवति) अपने घरमें वापिस लौटकर स्थित होता है तब (एभ्यः) इन सूर्य रश्मिरूपी घोडोंके लिए (श्रमस्य दायं विभजन्ति) श्रम- थकावटको दूर करने वाली वस्तुओंको देते हैं। यहां आलंकारिक रूपसे सूर्यका पृथिवीपर भ्रमण दर्शाया गया है। दायं-दो अवखण्डनेसे यह शब्द बना है। इसका अर्थ है टुकडे टुकडेकर देनेवाला। श्रमस्य दायं=जो थकावट के टुकडे टुकडे कर दे अर्थात् जो थकावट को दूर कर दे।

दीर्घं ह्यङ्कुशं यथा शक्तिं बिभर्षि मन्तुमः।
पूर्वेण मघवन्पदाजो वयां यथा यमो देवी
जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत्॥

ऋ १०।१३४।६॥

अर्थ- हे (मन्तुमः) ज्ञानवान् इन्द्र ! (यथा दीर्घं अङ्कुशं) जिस प्रकार महावत हाथी को काबुमें रखनेके लिए दीर्घ अङ्कुशको धारण करता है उस प्रकार तू (शक्तिं बिभर्षि) शत्रुओंको वश करने के लिए शक्ति को धारण करता है। और हे मघवन् ! (यथा) जिसप्रकार (पूर्वेण पदा अजः वयां) अपने अगले पैरोंसे बकरा वृक्षकी शाखा को खींचकर काबु करता है उस प्रकार तू (यमः) शत्रुओंका नियमन करता है। इस प्रकार (देवी जनित्री) दिव्य गुणोंवाली माताने (अजीजनत्)ऐसा पुत्ररत्न पैदा किया अतः वह (भद्रा) कल्याण कारिणी हुई। इस मंत्रमें प्रशस्त पुत्र के जन्म देनेसे जननी प्रशस्त होती है यह दर्शाया है। इन्द्रके दृष्टान्त द्वारा प्रशस्त पुत्र उत्पन्न करने का यहां उपदेश दिया गया है।

"यमाय त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीय
हयो दात्र एधि वयो मह्यं प्रति ग्रहीत्रे॥

यजुः ७।४७॥

अर्थ- (यमाय) यम नियमादिके पालन के लिए (त्वा वरुणः मह्यं ददातु) तुझे वरुण मेरे लिए देता है। (सः) वह मैं (अमृतत्वं अशीय) अमरत्व को प्राप्त करूं। (दात्रे हयः एधि) दाता के लिए ज्ञान वा घोडों को बढा। (प्रति ग्रहीत्रे) लेनेवाले (मह्यं) मेरे लिए (वयः) अन्न आयु प्राण बढा।

प्रथमा ह व्युवास सा धेनुरभवद् यमे। सा नः
पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम्॥

अथर्व० ३।१०।१॥

अर्थ - (प्रथमाह वि उवास) सबसे प्रथम उषा अन्धकारका नाश करती हुई प्रकट हुई। (सा यमे धेनुः अभवत्) वह यममें धेनु अर्थात् तृप्त करने वाली हुई। अर्थात् जो सुनियमोंका पालन करता है उसके लिए यह काम धेनु जैसी है। (सा) वह (पयस्वती) दूध देने वाली होती हुई (नः उत्तरां उत्तरां समां दुहां) हमारे लिए उत्तरोत्तर अर्थात् अनेवाले वर्षोंमें दूध देती रहे।

यद् राजानो विभजन्त इष्टापूर्त्तस्य षोडशं यमस्यामी सभासदः। अविस्तस्मात् प्रमुञ्चति दत्तः शितिपात् स्वधा॥ अथर्व० ३।२९।१॥

अर्थ- (यमस्य अमी राजानः सभासदः) नियम से चलनेवाले राजाके ये राज्य करनेवाले सभासद (यत् इष्टापूर्तस्य षोडशं विभजन्ते) जो अन्नादिका सोलहवां भाग विभक्त करते हैं। वह (दत्तः) दीया हुआ भाग(अविः)रक्षक बनकर(शिति-पात्)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हिंसकों को गिरानेवाला (स्व-धा) और अपना धारण करनेवाला होता हुआ (तस्मात् प्रमुञ्चति) उस भयसे छुडाता है। इस मंत्रमें प्रजासे राजाको मिलने वाले करका वर्णन है।

अवैरहत्यायेदमा पपत्यात् सुवीरताया इदमा ससद्यात्। पराङेव परा वद पराचीमनु संवतम्। यथा यमस्य त्वा गृहेऽरसं प्रति चाकशानाभूकं प्रति चाकशान् ॥ अथर्व० ६। २९।३॥

अर्थ- (इदं) यह जो उपरोक्त मंत्रानुसार उल्लू वा कपोत जन्य अपशकून (दुर्निमित्त) है वह (अवैरहत्याय)वीरोंकी हत्याके लिए मत (आपपत्यात्) समर्थ होवे। (इदं) यह दुर्निमित्त (सुवीरतायै आससद्यात्) सु वीरताके लिए होवे। हे उल्लु! (पराङ् एव) पराङ्मुख होकर ही (पराचीं संवतं अनु) अधोगत संगतिका लक्ष्य करके (वद) बोल। (यथा) जिस प्रकार (यमस्य) तेरे नियमन करने वाले स्वामी के (गृहे) घरमें (त्वा) तुझे (अरसं) निःसार (प्रतिचाकशान्) सब लोक देखते हैं अर्थात् जिस प्रकार अपने स्वामी के घर में तू हानि पहुंचानेवाला नहीं है उसी प्रकार तुझे (आभूकं) यहां सामर्थ्य विहीन सब (प्रति चाकशान्) देखें।

ऐसे मंत्रों के संबन्धमें हम पहिले थोडासा निर्देश कर आए हैं। विशेष विचार पाठक स्वयं कर सकते हैं।

अष्टेन्द्रस्य षड् यमस्य ऋषीणां सप्त सप्तधा।
अपो मनुष्यानोषधीस्ताँ उ पञ्चानु सेचिरे॥
अथर्व० ८।९।२३॥

यमाय असूम् ॥ यजुः ३०।१४॥

अर्थ- नियम निर्माण करने के लिए (असूम्) निष्पक्षपातीको प्राप्त करे।

यमाय यमसूम् ॥ यजुः ३०।१५॥

अर्थ- (यमाय) नियमों के ज्ञानके लिए नियम बनानेवाले को प्राप्त करे।

यत् संयमो न वि यमो वियमो यन्न संयमः।
इन्द्रजाः सोमजा आथर्वणमसि व्याघ्रजम्भनम् ॥
अथर्व० ४।३।७॥

अर्थ- (यत् संयमः न वियमः) जिसका संयम किया हो उस को विशेष दबाव में न रखो। परंतु (यत् न वियमः संयमः) जिसको विशेष दबाव में न रखा हो उस को अच्छी प्रकार संयम में रखो। (इन्द्रजाः सोमजाः) यह इन्द्रसे और सोमसे उत्पन्न हुआ हुआ (आथवर्णं जंभनं असि) अथर्व विद्यासे व्याघ्रादिको दबाने का उपाय है।

त्रिकद्रुकेभिः पवते षडुर्वीरेकमिद् बृहत्।
त्रिष्टुब् गायत्री छन्दाँसि सर्वा ता यम अर्पिता ॥
ऋ० १०।१४।१६॥
अथर्व० १८।२।६॥

अर्थ- (एकं इत् बृहत्) वह अकेला ही महान् (त्रिकद्रुकेभिः) तीन कद्रुकों से (षट् उर्वीः) ६ पृथिवियोंको (पवते) पवित्र करता है। त्रिष्टुप् गायत्री छन्दांसि) त्रिष्टुप्, गायत्री तथा छन्द आदि (ता सर्वा) वे सब (यमे अर्पिता) नियामक ब्रह्म में अर्पित है स्थित हैं। ता सर्वा= तानि सर्वाणि= त्रिकद्रुक का अभिप्राय कुछ स्पष्ट नहीं होता। षट् उर्वी निम्न लिखित हैं- द्यु, पृथिवी, दिन, रात, जल तथा ओषधियां।

तिग्मं चिदेम महि वर्पो अस्य भसदश्वो न यमसान आसा। विजेहमानः परशुर्न जिह्वां द्रविर्न द्रावयति दारु धक्षत् ॥
ऋ० ६।३।४॥

अर्थ- (आसा यमसानः अश्वः न) मुखद्वारा नियमन किए हुए घोडे की तरह अर्थात् जिसप्रकार मुखमें लगाम डालकर घोडे को काबु में करके प्राप्त किया जाता है उसी प्रकार (अस्य) इस अग्निको जो (तिग्मं चित्) तेजस्वी होता हुआ (महि वर्पः भसत्) महान् रूप प्रकाशित हो रहा है उसे अग्निका नियमन करके (एम) प्राप्त करें जो कि अग्नि (परशुः न) परशु की तरह (जिह्वां विजेहमानः) ज्वालाओंको फैंकती हुई (दारु धक्षत्) काष्ठको जलाती है और (द्रविः न) धातुओंके पिघलानेवाले की तरह (द्रावयति) सबको पिघला डालती है।

इस प्रकार इन मंत्रों में प्रयुक्त यम शब्दका अभिप्राय क्या है यह पाठकों को पता लग गया होगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वेदमें यम भिन्न भिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ हुआ है। यम प्राणियोंके प्राण हरण करने के अर्थ में भी वेदमें प्रयुक्त हुआ हुआ है इस बातसे इस यम संबन्धी विवेचन देखने के बाद इनकार नहीं किया जा सकता। यह संभव है कि यम विषयक दिए गए मंत्रों में से कुछ मंत्रों के विषयमें मत भेद हो तथापि उपरोक्त सिद्धान्त यम विषयक मंत्रों से स्थापित नहीं किया जा सकता यह कहना असंभव है।

३ जीवात्मा अर्थ में यम।

यस्मिन् वृक्षे सुपलाशे देवैः संपिबते यमः।
अत्रा नो विश्पतिः पिता पुराणाँ अनुवेनति॥
ऋ० १०।१३५।१॥

अर्थ- (यस्मिन् सुपलाशे वृक्षे) जिस उत्तम पत्तोंवाले अर्थात् हरेभरे, भोगसामग्री से परिपूर्ण संसाररूपी वृक्षपर (यमः) इन्द्रियों का संयमन करनेवाला जीवात्मा (देवैः) दिव्य गुणोपेत इन्द्रियों के साथ (संपिबते) सांसारिक सुख दुःखों का उपभोग करता है (अत्र) उस संसाररूपी वृक्षपर (विश्पतिः) मनुष्य प्रजाका रक्षक (पिता) उत्पादक परमात्मा (पुराणान् नः) पुरातन समय से भक्ति करते आए हुए हमारी (अनुवेनति) अनुकूलता से कामना करता है।

इस मंत्रपर विशेष सम्पूर्ण सूक्त की व्याख्या करते हुए लिखनेका प्रयत्न करेंगे।

४ ज्ञानेन्द्रियां—यम।

इदं सवितर्विजानीहि षड्यमा एक एकजः।
तस्मिन् हापित्वमिच्छन्ते य एषामेक एकजः॥
अथर्व० १०।८।५॥

अर्थ- हे (सवितः) सविता! (इदं विजानीहि) इस बात को तू भली प्रकार समझ कि (षड् यमाः) पांच ज्ञानेन्द्रियां तथा एक मन ये मिलकर छह यम हैं। तथा (एकः एकजः) एक जीवात्मा अकेला ही जन्म लेनेवाला है। और (एषां यः एकः एकजः) इनमें जो एक अकेला उत्पन्न होनेवाला है (तस्मिन्) उस जीवात्मा में ये छह मन सहित ज्ञानेन्द्रियां (ह) निश्चय से (आपित्वं) बन्धुत्व को (इच्छन्ते) चाहती हैं।

५ आचार्य - यम।

मृत्योरहं ब्रह्मचारी यदस्मिनिर्याचन् भूतात् पुरुषं यमाय। तमहं ब्रह्मणा तपसा श्रमेणान-यैनं मेखलया सिनामि॥ अथर्व० ६।१३३।३॥

अर्थ- (यत्) क्यों कि (अहं) मैं (मृत्योः ब्रह्मचारी) मृत्युका ब्रह्मचारी (अस्मि) हूं अतः (भूतात् पुरुषं) प्राणीमात्रमें से पुरुष को (यमाय) यम के लिए अर्थात् आचार्य के लिए (निर्याचन्) मांगता हुआआया हूं। (तं एनं) उस इस पुरुष को (अहं) मैं (ब्रह्मणा) ब्रह्मज्ञान से (तपसा) तपद्वारा, (श्रमेण) श्रमद्वारा तथा (अनया मेखलाया) इस मेखला द्वारा (सिनामि) बांधता हूं।

६ वायु - यम।

यमाय त्वाङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा।
स्वाहा घर्माय। स्वाहा घर्मः पित्रे॥ यजुः ३८।९॥

इस मंत्र की शतपथ १४। २। २। ११ में व्याख्या है। वहां पर यम का अर्थ निम्न लिखित किया गया है- 'यमाय त्वाङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहेति। अयं वै यमो योऽयं पवते तस्मा एवैनं जुहोति तस्मादाह यमाय त्वेत्यङ्गिरस्वते पितृमत इति… ॥' तदनुसार इस मंत्रका अर्थ इस प्रकार हुआ- (पितृमते अङ्गिरस्वते यमाय त्वा स्वाहा) पितृमान् अङ्गिरस्वत् वायुके लिए तुझे स्वाहा करके दी गई आहुति हो। (घर्माय स्वाहा) यज्ञ के लिए स्वाहा। (घर्मः पित्रे) यज्ञ रक्षक के लिए स्वाहा।

७ सूर्य - यम।

यमाय त्वा मखाय त्वा सूर्यस्य त्वा तपसे।
देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु पृथिव्याः सँ स्पृशस्पाहि अर्चिरसि शोचिरसि तपोऽसि॥
यजुः ३७।११॥

इस मंत्र की व्याख्या करते हुए शतपथ ब्राह्मणने इस मंत्र में आए हुए यम का अर्थ सूर्य किया है। शतपथ ब्राह्मणका वचन इस प्रकार है- 'स प्रोक्षति यमाय त्वेत्येष वै यमो य एष तपत्येष हीदं सर्वं यमयत्येतेनेदं सर्वं यतमेष उ प्रवर्ग्यस्तदेतमेवैतत्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

प्रीणाति तस्मादाह यमाय त्वेति॥ श० १४। १। ३। ४॥' शतपथ के इस वचनानुसार इस मंत्रका अर्थ इस प्रकार किया जा सकता है (यमाय त्वा) सूर्य के लिए तुझे, (मखाय त्वा) यज्ञ के लिए तुझे, (सूर्यस्य तपसे त्वा) सूर्य के तपके लिए तुझे, (सविता देवः त्वा) सविता देव तुझे (मध्वा अनक्तु) मधु से युक्त करे। तू (पृथिव्याः संस्पृशः पाहि) पृथिवी के संस्पृश् अर्थात् उपद्रव्यजन्य संस्पर्शों से रक्षा कर। तू (अर्चिः) दीप्यमान असि है। (शोचिः असि) दुष्टों को शोक करानेवाला है। (तपः असि) दुष्टों को तपाने वाला है।

... आप्यायमानो यमः सूयमानः ...॥
यजुः ८। ५७॥

इस मंत्र में यम किस अर्थ में प्रयुक्त हुआ हुआ है यह निश्चयपूर्वक कहना कठिन है। भाष्यकार भिन्न भिन्न सम्मतियां रखते हैं। अस्तु, तथापि यम और पितर वाला यम यह नहीं है ऐसा कहने में किसी भी प्रकार की आपत्ति नहीं आती।

इस प्रकार यहांपर यमवाले मंत्र तथा बहुवचनान्त पितृ शब्दवाले मंत्र समाप्त होते हैं। यम व पितर विषयक जो जो भी सिद्धान्त स्थापित किए जा सकते हैं वे सब इनमें आ चुके हैं। यम व पितर विषयक नवीन सिद्धान्त अब आगे संभवतः देखने को नहीं मिलेंगे। इस से आगे हम जैसा कि अन्यत्र निर्देश भी कर आए हैं, यम व पितर संबन्धी संपूर्ण सूक्तोंपर विचार करेंगे, जिस से कि यदि कोई महत्व पूर्ण मंत्र जिस में कि यम वा पितृ शब्द न होने से छूट गया होगा तो वह भी पाठकों के सामने आ सकेगा। सम्पूर्ण सूक्तोंपर विचार करने से प्रकृत विषयपर विचार करने के लिए व विशेष निर्णयपर पहुंचने के लिए पर्याप्त सहायता मिलने की संभावना है।

समाज बल विचार

(ले०— पं० महादेव शास्त्री दिवेकर, अनुवादक पं भोलानाथराव)

(अस्पृश्यता निवारण)

किसी भी समाजको सामाजिक बलवृद्धिके लिये उसकी जन संख्या बल का भी विचार करना पडता है। जिस प्रकार समाज की जन संख्या बहुत विशेष व अस्त व्यस्त होना ठीक नहीं है इसी प्रकार अत्यन्त अल्प भी होना ठीक नहीं। आज संसार में १७२ किंवा १७५ कोटि लोक संख्या मानी जाति है। जिसमें ७०। ७२ कोटि क्रिश्चियन संप्रदाय के अनुयायि हैं और ५०। ५२ कोटि लोग बुद्धधर्म के। हिंदुस्थानमें ७ कोटि व विदेशमें २६ करोड मिलाकर करीब करीब ३३कोटि संख्या मुसलमानी धर्म की है। हिंदु लोक केवल २१। २२ कोटि ही है। संसार में इन चार संस्कृतियों का परस्पर प्रबल विग्रह चल रहा है। इस कलह और इस स्पर्धा में हिंदु समाज किस प्रकार स्थिर रहेगा सबसे प्रथम यही प्रश्न उपस्थित होता है। क्रिश्चियन राष्ट्र अत्यन्त प्रभावशाली, उनकी जनसंख्या विशेष, उनका शोध, उनके शस्त्र प्रखर, ऐसे सत्तावान राष्ट्र के सन्मुख हिंदुसमाज की दाल कैसे गलेगी! पूर्व की ओर चीन, जापान इत्यादि बौद्ध धर्मावलम्बी जिनकी जन संख्या करीब करीब ५२ करोड है और यह लोग भी शोध, व शास्त्र में पाश्चात्यों का अनुकरण कर रहे हैं। हिंदुस्तान में मुसलमान लोग शनैः शनैः कैसे उद्दंड हो रहे हैं इसका भी अनुभव पगपगपर होही रहा है। हिंदुस्थान के बाहर के मुसलमान स्वतंत्र सत्तावान हैं इस कारण उन्हें भी एक प्रकार का जोश मालूम पडता है! क्या इस संसार के चित्रपटपर यह नहीं दिखता कि हिंदुसमाज, मुसलमान ख्रिश्चन, बौद्ध समाजोंकी सर्व समृद्धता की दृष्टि से दुर्बल हो रहा है? हिंदुस्थान अर्थात हिंदुओंका रहने का स्थान। लेकिन उस घर में घर के मालिक की अपेक्षा पाहुने लोगों का ही रोब बहुत है। यह न्याय है, अथवा अन्याय? घरके, अधिपति तो हिंदु हैं परंतु उन बिचारों को अपने घर हिंदुस्थान पर कुछ भी सत्ता नहीं है। इसके उपरान्त पडोस के निवासी लोगोंने इतना शोर मचा रखा है कि उससे हिंदुसमाज बचानेके लिये कोई भी त्राता नहीं है। ऐसी स्थितीमें जब कि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हिंदुसमाजका २१ कोटि समुदाय एक ही स्थान पर है अब उससे कुछ लाभ उठानेके लिये अर्थात सामाजिक अंतर्बल बढाने के लिये अस्पृश्यता निवारण ऐसे महत्वशाली उपाय की योजना करनी चाहिये ।

हिंदू समाज की उन्नति के लिये अस्पृश्यता का कलंक धोकर सब लोगों को स्पृश्य बना लेना चाहिये । इस सम्मति से सहानुभूति रखनेवालों की जन संख्या बहुत है। परंतु अब भी बहुत से मनुष्य हिंदु समाज में ऐसे हैं जो अन्ध परम्परा के ही विश्वासी हैं और सब कुछ देखते हुए भी उन्हें इस कार्य में सहयोग करने में कठिनता प्रतीत होती है। तथापि शास्त्रकारों के स्पर्शास्पर्श की अपेक्षा इतर समाजों में जो स्पर्शास्पर्श की कल्पना है उसी को मानना चाहिये । समझिये कि सहभोजन के लिये स्वयंपाक बना हुआ तैय्यार है, इतने में ही एक कुत्ता आकर उसमें मुंह डाल देता है तो क्या इतने प्रयत्न से तैय्यार किया हुआ इतना सामान फेंक दिया जायगा? कदापि नहीं! शास्त्र में लिखे हुए के अनुसार जितने स्थान पर कुत्ते का मुंह लगा है उतने ही स्थान की वस्तु को फेंक देना उचित है और शेष पर " अपवित्रः पवित्रो वा " कह कर पानी छिडक कर आनन्दसे उसे खाना चाहिये । यदि ऐसा नहीं किया जायगा तो सैंकडों मनुष्यों के प्रयत्न की अपेक्षा उस कुत्ते का आगमन ही श्रेष्ठ सिद्ध होगा और सब सामान भी नष्ट होगा। इसके अतिरिक्त यदि किसी मनुष्यने केवल अपने ही लिये खाना बनाया हो और उसे कुत्ता उच्छिष्ट कर दे तो उसे फेंक देना चाहिये । कारण कि वहां का विषय व क्षेत्र अल्प है इससे वहां शुद्धाशुद्ध का विचार अवश्य करना चाहिये । परंतु जहाँ जहाँ क्षेत्र महत हो वहां शुद्धाशुद्ध के विचार करने की आवश्यकता नहीं है । सत्यमें सब दोष छोटे को ही लगता है बडे को कुछ नहीं "नाल्पे सुखमस्ति" अल्प में सुख नहीं है और महत के लिये कुछ दोष नहीं है । साढे तीन हाथ शरीर का अभिमान धारण करके जो स्वयं अपनेको बडा समझता है उसी को दोष है।

परंतु जिसे सर्वजग का अहंकार है जो अपने को ब्रह्म और विश्व समझता है वही ईश्वर है, इसी कारण वह सर्वदा निर्दोषी है;इसप्रकार की विचारसरणी वेदान्त में भरी हुई है और इसी कारण उसे व्यवहार में चालू करना उचित समझा जाता है। गंगाके पानी के लिये घाट तथा गंगाकी धार पर कोई अशुद्धता नहीं है परंतु वही पानी यदि घडेमें भरकर घर ले आया जाय, तो ब्राह्मणों के घरोंमें शूद्र स्पर्शका विचार किया जाता है । इसका कारण यही है कि वह पवित्र पानी बर्तनद्वारा अल्पावधि में लाया गया । अर्थात अल्पत्व दोष से पवित्रता में कमी हो गई । महावस्त्र में शुद्धाशुद्धता का विचार नहीं है परन्तु वही साधारण धोतीमें है । मृतक पुरुष के नीचे बिछी हुई दरी तथा हलके वस्त्र तुरंत धोबी को दिये जाते हैं परंतु तकिये गद्दे तथा रजाइयों को धोना शक्य नहीं है । इन सबका कारण एक का महत्व तथा दूसरे का अल्पत्व ही है। शास्त्रकारों ने कहा भी है । (अंगिरास्मृति का वचन)

तूलिका चोपधानानि पुष्परक्तांबराणि च ॥
शोषयित्वार्कतापेन प्रोक्षणेन विशुध्यति ॥ १४२॥

इस वचन द्वारा यह भलीभांति विदित हो जायगा कि व्यवहार सौकर्य को अर्थ और पावित्र्य-कल्पना का संयोग किस प्रकार किया गया है ।

मृतकके छूत माननेकी भी पद्धति शास्त्रमें है परंतु उस क्षेत्र में भी राजाको छूत नहीं लगती है " (न राज्ञामघदोषोस्ति । मनु. अ. ५ श्लो० ३) (महीपालानां नाशौचं-या.व. अ. ३ श्लो. २७) कारण कि यदि राजा स्पृश्यास्पृश्य का विचार करता हुआ स्वस्थ बैठा तो राज्य किस प्रकार चलेगा ? श्रीवर्धनके भट्टों को पेशवाई की प्राप्ति होनेपर पहले पहले तो उन्हें भी छुआछूतका विचार करना पडा तथा अन्त में शास्त्रका विचार कर राजमाचीकरों को जहागीर देकर सुतक पूरकर दिया । विद्वान ब्राह्मणों को दस दिवस तक मृत छूत मानने का कोई कारण नहीं है उसी प्रकार से वैद्य, डाक्टर, शिल्पकार, न्हावी, स्वयंपाकी, मजूर इनको भी समाजके धारणपोषण की दृष्टिसे दस दिन का अशौच नहीं है । यदि वैद्य दस दिवस अशौचतामें बैठेगा तो रोगियों की देखरेख कौन करेगा। नाई की ओर से हजामतमें रोक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मजूर की ओर से अन्य कार्यों मे रोक होजायगी तो लोकव्यवहार किस प्रकार चलेगा। इस प्रकार की कोई आपत्ति न हो इसी कारण शास्त्र में कहा है।

एकाहात् शुध्दते विप्रो योऽग्निवेदसमन्वितः।
त्र्यहात् केवलवेदस्तु निर्गुणो दशभिर्दिनैः॥अत्रि॥
कारवः शिल्पिनो वैद्यदासीदासास्तथैव च।
राजानो राजभृत्याश्च सद्यः शौचाः प्रकीर्तिताः॥
प्रचेताः स्वस्थकाले तथा सर्वं सूतकं परिकीर्तितम्। आपद्गतस्य सर्वत्र सूतकेऽपि न सूतकम्॥ दक्षस्मृति

शास्त्रलिखित यह बातें अत्यंत विचारणीय हैं। अर्थात् इसी प्रकार के वचन शास्त्रकारों ने अस्पृश्यों को स्पृश्य बनाने के बारेमें भी कहा हैं। यदि शास्त्रोंमें अस्पृश्यता के बारे में कहा गया है तो उस का निराकरण भी बतलाया गया है। इसीसे उन शास्त्रवाक् प्रमाणों द्वारा आपत् प्रसंगी व महाप्रसंगी स्पर्शदोष नहीं है यह सिद्ध होता है।

(१) दीर्घकाष्ठे शिलापृष्ठे नौकायामापणे तथा।
देवगारे तथाऽराले स्पर्शदोषो न विद्यते॥
वृद्धवचन॥

(२) देवयात्रा विवाहेषु यज्ञप्रकरणेषु च।
उत्सवेषु च सर्वेषु स्पृष्टास्पृष्टिर्विद्यते॥
अत्रि श्लो. २५०

(३) तीर्थे विवाहे यात्रायां संग्रामे देशविप्लवे।
नगरग्रामदाहे च स्पृष्टास्पृष्टिर्न विद्यते॥
धर्मसिंधु

(४) प्रकाररोधे विषमप्रदेशे सेनानिवेशे भवनस्य दाहे। आरब्धयज्ञेषु महोत्सवेषु
तथैव दोषा न विकल्पनीयाः॥ अत्रि५

(५) रजकं चर्मकारं च नरं धीवरमेव च।
बुरुडं च तथा स्पृष्ट्वा शुद्धेदाचमनाद्द्विजः॥
अंगिरस्मृति

(६) रजकश्चर्मकृच्चैव व्याधतालोपजीविनौ।
निर्णेजकः सौनिकश्च नरः शैलूषकस्तथा॥

(७) मुखे भगस्तथा श्वा च वनिता सर्ववर्गगा।
चक्री ध्वजी वध्यघाती ग्राम्यकुक्कुटसूकरैः

(८) एतैर्यदंगंस्पृष्टं स्याच्छिरोवर्जं द्विजातिषु।
तोयेन क्षालनं कृत्वा आचांतः प्रयतो मतः॥
शातातप

पहिले श्लोक में कहा गया है कि बाजार, नाव, अड्डा, विशालकाष्ठ में स्पर्शास्पर्श का विचार नहीं है। २, ३, और ४ श्लोकों में विवाह, यात्रा, यज्ञ, तीर्थ, उत्सव, आग, विषम प्रदेश के बारे में कहा है। यहाँ तक यह साफ साफ बतला दिया है कि इन स्थानोंपर आपत् प्रसंगी व महाप्रसंगी स्पर्शदोष नहीं जानना चाहिये। शूद्रस्पर्श से शुद्ध होने के लिये केवल स्नान ही नहीं परंतु आचमन भी कर लेने से प्रायश्चित हो सकता है। ५, ६, ७, ८, "श्लोकोंमें कहा गया है कि यदि १९, २० मनुष्योंके बीचमें यदि किसी शूद्र को स्पर्श कर लिया हो तो केवल आचमन ही कर लेना चाहिये। जहाँ साक्षात स्पर्श हुआ हो वहाँ पानीसे धोकर पैर धोकर शुद्ध हो जाना चाहिये। पराशरस्मृति में कहा गया है कि यदि पानी न मिले तो कानों को स्पर्श करनेसे ही आचमन हो जाता है। इन आठ श्लोकोंमें हमारे पूर्वजोंके विचार लिखे गये हैं अतः सद्यः परिस्थिति को लक्षमें रखते हुए इन्हीं विचारों के अनुकुल हमें कार्य करना चाहिये। यदि अस्पृश्यवर्ग हिंदू जनताको जीवित रखना है तो प्राचीन विचारों को त्यागकर नवीन विचारों ग्रहण करना ही पडेगा। विचारोंके परिवर्तनके लिये समय अनुकूल उपस्थित हुआ है और शास्त्र भी उसे मान्यता देते हैं। पांच छह करोड अस्पृश्योंके संग यदि जनता मनुष्यताका व्यवहार नहीं करेगी तो इस प्रचंड स्पर्धामें हिंदुसमाज कभी भी बलवान नहीं हो सकता। यदि पांच करोड अस्पृश्योंको उनकी उसी गिरी हुई अवस्थामें रखा जायगा तो बडा अन्याय होगा और हिंदू समाजपर शनैः शनैः इन्हीं अस्पृश्योंका आधिपत्य होगा। उस समय उसे कुछ भी कहनेका अधिकार न होगा।

आधुनिक समय लोकशाही का समय है। ऐसी अवस्थामें प्रत्येक व्यक्ति को स्वत्रंत मत प्रकट करने का समान अधिकार है। विषेश तथा आज कल तो सब बातें बहुमत ही से होती हैं। बहुमतका महत्व देखते हुए स्पृश्य लोगोंको पाँच छह करोड अस्पृश्यों को स्पृश्य बनानेमें मदत देनी चाहिये। नेताओंको चाहिये कि अस्पृश्यों की उन्नति करनेके लिये उनके अनेक प्रकार के प्रसंग उपस्थित कर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दें । तदनन्तर उन उपस्थित प्रसंगोंसे लाभ उठायें ! इसको सफल करनेके लिये ऐसी योजना करनी चाहिये कि दसहरा, प्रतिपदा, मकर संक्रात अपना शिवाजी, टिळक, गांधी गोखले के उत्सवोंमें स्पृश्य और अस्पृश्य सब एकत्रित होकर एक दूसरेसे सहर्ष मिलें । ऐसी योजनासे एक दूसरेमें प्रेमकी वृद्धि होगी । स्पृश्य व अस्पृश्य जब बराबरी के नाते से एक दूसरेसे मिलने लगेंगे तभी लोकशाहीके तत्व की वृद्धि होगी । व्यक्तिगत स्वतंत्रता, अधिकार और मतका सुंदर मेल ही लोकशाहीका असली तत्व है । उस तत्वको प्रचार करनेके लिये तथा अस्पृश्य वर्गोंको उन्नति करनेके लिये स्पृश्य और अस्पृश्यों को सहवास में लाना ही बहुत जरुरी है । हिंदु समाज परधर्मीय, क्रिस्चियन व मुसलमान से जितना व्यवहार रखता है उससे कहीं अधिक स्वधर्मीय अस्पृश्य जातियोंसे रखना चाहिये ।

मुसलमान व क्रिश्चियनकी अपेक्षा अस्पृश्य अधिक संव्यवहार्य है । कुछ भी हो अस्पृश्य कम से कम हिंदू तो हैं, गोरक्षा का तो उसे विचार है, अपने आर्य देश की भलाई तो चाहता है । जब मुसलमान लोग घर में चले आते हैं तो अस्पृश्यों को नहीं रोकना चाहिये । क्रिश्चियन को यदि घरमें आकर कुर्सीपर बैठने का अधिकार है तो अस्पृश्य को उससे पहले अधिकार है । जलस्थान, पाठशाला, सभा और सामुदायिक प्रसंगोंपर स्पृश्य और अस्पृश्योंको एक दूसरेसे प्रेमपूर्वक मिलना चाहिये । शास्त्रों में अस्पृश्यों की अपेक्षा परधर्मीयोंके ही स्पृश्यास्पर्श का विचार बतलाया है । उनमें से गोभक्षकों से तो विशेष रीतिसे छूत मानना चाहिये ।

सभायां स्पर्शनं चैव म्लेच्छेन सह संविशेत् ।
कुर्यात्स्नानं सचैलं तु दिनमेकमभोजनम् ॥
देवलस्मृति ॥

एतेऽत्यजाः समाख्याता ये चान्ये च गवाशनाः ।
एषां संभाषणात्स्नानं दर्शनादर्कवीक्षणम ॥
वेदव्यास स्मृति ॥

इन श्लोकों के अनुसार म्लेच्छके छू लेनेपर स्नान व उपास करना चाहिये । और गोभक्षकों से यदि संभाषण भी हो, या दृष्टादृष्ट भी हो, तो स्नान तथा सूर्यदर्शन द्वारा प्रायश्चित करना चाहिये। डोम चमार, भंगी को स्पर्श करने पर यदि केवल स्नान है तो मुसलमान से स्पर्श होने पर स्नान, उपवास को और सूर्य दर्शन का प्रायश्चत्त बतलाया गया है। परंतु हिंदू समाज, को इस अन्तर का कुछ भी ज्ञान नहीं है । सारांश यह है कि हिंदुओं को भली भांति स्वयं समझकर औरों में भी इस विचार का प्रचार करना चाहिये परधर्मी की अपेक्षा स्वधर्मी ही श्रेष्ठ है ।

अस्पृश्यों को भी बतला देना चाहिये कि उन लोगों को भी स्वजाति के अन्तर्गत जातियों के स्पर्शास्पर्श के विचार को कम कर देना चाहिये । चमार डोम को नहीं छूता तथा भंगी चमार को नहीं छूता । इतना भेद कहाँ तक ठीक है? अस्पृश्यों को अपने वर्ग में स्वच्छता समता और देश प्रेम का प्रचार करना चाहिये तथा रोजगार में भी प्रविष्ट होना चाहिये । अब अस्पृश्यों का निर्वाह उनके प्राचीन रोजगार से नहीं होता है । जूते बनाने से चमार का कार्य नहीं चलता, डोम भी अपने कार्यसे संतुष्ट नहीं हैं, इस कारण अब इन लोगों को कलई करने टांगा चलाने, तथा पीने की दारु व आतशबाजी के दारु के रोजगार की इन्हें आज्ञा देनी चाहिये । साग व फल बेंचने का भी रोजगार इन्हीं को सौंप देना चाहिये । जब अस्पृश्य लोग इन धंदों को अपने हाथ में ले लेंगे तभी हिंदुसमाज की सांपत्तिक अवस्था की वृद्धि होगी । नागपूर-सितावर्डी में फल भाजी इत्यादि बेचनेवाले सब चमारही हैं। स्टेशनपर कुली लोग भी सब चमारही हैं । अकोला में बैंड बजाने वाले डोम लोग हैं । अस्पृश्यों को अपनी जाति में संघटन कर के इन सब कामों को अपने हाथ में ले लेना चाहिये । शिक्षित अस्पृश्य लोग यदि इतर शिक्षित लोगों के अपेक्षा स्वजाति हित न देखते हुए यदि सार्वजनिक कार्यमें अग्रसर होंगे और प्रत्येक कार्य में सहायता देंगे तो अस्पृश्यता को दूर करने में बडी सहायता मिलेगी। शिक्षण व सार्वजनिक कार्यों में स्पृश्यास्पृश्य का विचार बिलकुल ही हटा देना चाहिये ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दीर्घायुकी प्राप्ति ।

[३०]

(ऋषिः — उन्मोचनः आयुष्कामः । देवता — आयुः)

आवतस्त आवतः परावतस्त आवतः ।
इहैव भव मा नु गा मा पूर्वाननु गाः पितॄनसुं बध्नामि ते दृढम् ॥ १ ॥
यत् त्वाभिचेरुः पुरुषः स्वो यदरणो जनः ।
उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते ॥ २ ॥
यद् दुद्रोहिथ शेपिषे स्त्रियै पुंसे अचित्त्या ।
उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते ॥ ३ ॥

अर्थ- (ते आवतः आवतः) तेरे समीपसे समीप और (ते परावतः आवतः) तेरे दूरसे दूरसे भी (ते असुं दृढं बध्नामि) तेरे अंदर प्राण को मैं दृढ बांधता हूं । (इह एव भव) यहां ही रह । (पूर्वान् मा नु गाः) पूर्वजों के पीछे न जा, (मा पितॄन् अनु गाः) पितरोंके पीछे न जा अर्थात् शीघ्र न मर ॥ १ ॥

(यत् स्वः पुरुषः) यदि तेरा अपना संबंधी पुरुष अथवा (यत् अरणः जनः) यदि कोई हीन मनुष्य (त्वा अभिचेरुः) तेरे ऊपर कुछ घातक प्रयोग करता है, तो उस के लिये मैं (वाचा ते) अपनी वाणीसे तुझे (उभे उन्मोचन-प्रमोचने वदामि) दोनों छूटने और दूर रहनेकी विद्या कहता हूं॥२॥

(यत् स्त्रियै पुंसे अचित्या दुद्रोहिथ) यदि स्त्रीसे अथवा पुरुषसे विना जाने द्रोह किया है किंवा (शेपिषे) शाप दिया है, तो (वाचा०) वाणीसे छूटने और दूर रहनेकी दोनों विद्याएं मैं तुझे कहता हूं ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे रोगी ! तेरे प्राणको मैं दूरके अथवा समीपके उपायसे तेरे अन्दर स्थिर करता हूं । तूं इस मनुष्य लोकमें दीर्घकाल तक रह । मरे हुए पूर्वजोंके पीछेसे शीघ्र न जा ॥ १ ॥

जो तेरा अपना संबंधी अथवा कोई पराया मनुष्य,जो कुछ भी घातक प्रयोग करता है; उससे बचनेके दो उपाय हैं एक उन्मोचन और दूसरा प्रमोचन ॥ २ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यदेनसो मातृकृताच्छेषे पितृकृताच्च यत् । उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते ॥४॥

यत् ते माता यत् ते पिता जामिर्भ्राता च सर्जतः ।

प्रत्यक् सेवस्व भेषजं जरदष्टिं कृणोमि त्वा ॥ ५ ॥

इहैधि पुरुष सर्वेण मनसा सह । दूतौ यमस्य मानु गा अधि जीवपुरा इहि ॥ ६ ॥

अनुहूतः पुनरेहि विद्वानुदयनं पथः । आरोहणमाक्रमणं जीवतोजीवतोयनम् ॥ ७ ॥

अर्थ- (यत् मातृकृतात् एनसः) यदि माताके किये हुए पापसे अथवा (यत् पितृकृतात् च शेषे) यदि पिताके लिये पापसे (शेषे) तू सोया है (वाचा०) तो वाणीसे छूटने और दूर रहनेकी दोनों विद्याएं तुझे कहता हूं ॥४॥ (यत् ते माता) जो तेरी माता व (यत ते पिता) जो तेरे पिताने तथा (जामिः भ्राता च सर्जतः) जो तेरी बहिन और भाईने तैयार किया है; (भेषजं प्रत्यक् सेवस्व) उस औषधको ठीक प्रकार सेवन कर; (त्वा जरदष्टिं कृणोमि) वृद्ध अवस्थातक रहनेवाला मैं तुझको करता हूं ॥ ५ ॥ हे (पुरुष) मनुष्य! (सर्वेण मनसा सह इह एधि) संपूर्ण मन के साथ यहां रह । (यमस्य दूतौ मा अनु गाः) यमके दूतोंके पीछे मत जाओ । (जीवपुराः अधि इहि) जीवकी पुरीमें निवास कर ॥ ६ ॥ (उदयनं पथः विद्वान्) ऊपर चढनेके मार्गको जानता हुआ (अनुहूतः पुनः आ इहि) बुलाया हुआ फिर यहां आ (जीवतः जीवतः आरोहणं आक्रमणं अयनम्) प्रत्येक जीवित मनुष्यका चढना और आक्रमण करना ये दो गतियां हैं ॥७॥

भावार्थ- स्त्री का अथवा पुरुषका द्रोह, माताका पाप और पिताका पाप, आदिके कारण जो घात होता है उससे बचनेके लिये भी वे ही दो उपाय हैं ॥ ३-४ ॥

माता, पिता, भाई, बहिन, आदिकों द्वारा तैयार किया हुआ औषध रोगी सेवन करे और दीर्घजीवी बने ॥ ५ ॥

अपने मनकी संपूर्णशक्ति रोगनिवृत्तिमें ही विश्वाससे लगाई जावे । कोई मनुष्य यमदूतोंके वशमें न जावे, और इस शरीरमें-अर्थात् जीवात्माकी नगरीमें-दीर्घकाल तक रहे ॥ ६ ॥

उन्नतिका मार्ग जानना चाहिये । अर्थात् मनुष्य आरोग्य की उन्नति करनेके उपाय जाने और रोगोंपर आक्रमण करके उनको परास्त करे ॥७॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मा बिभेर्न मरिष्यसि जरदष्टिं कृणोमि त्वा। निरवोचमहं यक्ष्ममङ्गेभ्यो अङ्गज्वरं तव ॥८॥

अङ्गभेदो अङ्गज्वरो यश्च ते हृदयामयः ।
यक्ष्मः श्येन इव प्रापप्तद् वाचा साढः परस्तराम् ॥ ९ ॥

ऋषी बोधप्रतीबोधावस्वप्नो यश्च जागृविः ।
तौ ते प्राणस्य गोप्तारौ दिवा नक्तं च जागृताम् ॥ १० ॥

अयमग्निरुपसद्य इह सूर्य उदेतु ते। उदेहि मृत्योर्गम्भीरात् कृष्णाच्चित् तमसस्परि ॥११॥

अर्थ— (मा बिभेः, न मरिष्यसि) मत् डर, तू कभी नहीं मरेगा। (जरदष्टिं त्वा कृणोमि) वृद्धअवस्थातक रहनेवाला तुझे मैं बनाता हूं। (तव अङ्गेभ्यः अङ्गज्वरं यक्ष्मं अहं निरवोचं) तेरे अङ्गोंसे शरीरके ज्वरको और क्षयरोगको मैं बाहर निकाल देता हूं ॥ ८ ॥ (अङ्गभेदः अङ्गज्वरः) अवयवोंकी पीडा, अंगोंका ज्वर (यः च ते हृदयामयः) और जो तेरा हृदयरोग है (वाचा साढः यक्ष्मः) वचासे पराजित हुआ यक्ष्मरोग (श्येन इव परस्तरां प्रापप्तत्) श्येनपक्षी की तरह परे भाग जावे ॥ ९ ॥ (बोध-प्रतिबोधौ ऋषी) बोध और प्रतिबोध ये दो ऋषि हैं। (अस्वप्नः यः च जागृविः) एक निद्रारहित है और दूसरा जागता है। (तौ ते प्राणस्य गोप्तारौ) वे दोनों तेरे प्राणके रक्षक हैं, वे तेरे अन्दर (दिवा नक्तं च जागृतां) दिन रात जागते रहें ॥ १० ॥ (अयं अग्निः उपसद्यः) यह अग्नि उपासनाके योग्य है। (इह ते सूर्यः उदेतु) यहां तेरे लिये सूर्य उदय होवे। (गंभीरात् कृष्णात् तमसः मृत्योः चित्) गहरे काले अन्धकार रूपी मृत्युसे भी (परि उदेहि) परे उदयको प्राप्त हो ॥ ११ ॥

भावार्थ-हे रोगी! तू मत् डर, तू मरेगा नहीं। तेरी पूर्ण आयु बनाता हूं। तेरे संपूर्ण अवयवोंसे ज्वर और क्षय दूर करता हूं ॥८॥ शरीरका दुखना, अंगोंका ज्वर, हृदयरोग और क्षयरोग ये सब तेरे शरीरसे दूर हों ॥९॥ तेरे अन्दर बोध और प्रतिबोध ये दो मानो ऋषि हैं। एक सुस्ती आने नहीं देता और दूसरा जगा देता है। ये तेरे प्राण रक्षक हैं, ये दिनरात जागते रहें ॥१०॥ यहां प्राणाग्नि की तुम्हें उपासना करनी चाहिये। इससे तेरे अन्दर आत्मारूपी सूर्य प्रकाशित होता रहे। ऐसा करनेसे गूढ अन्धकार रूपी मृत्युसे तू दूर होगा और अपने प्रकाशसे प्रकाशित होगा ॥ ११ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

नमो॑ य॒माय॒ नमो॑ अस्तु मृ॒त्यवे॒ नमः॑ पि॒तृभ्य॑ उ॒त ये नय॑न्ति ।
उ॒त्पार॑णस्य॒ यो वेद॒ तम॒ग्निं पु॒रो द॑धे॒स्मा अ॑रि॒ष्टता॑तये ॥ १२ ॥
ऐतु॑ प्रा॒ण ऐतु॒ मन॒ ऐतु॒ चक्षु॒रथो॒ बल॑म् ।
शरी॑रमस्य॒ सं वि॑दां॒ तत् प॒द्भ्यां प्रति॑ तिष्ठतु ॥ १३ ॥
प्रा॒णेना॑ग्ने॒ चक्षु॑षा॒ सं सृ॑जे॒मं समी॑रय॒ त॒न्वा॒३॒॑ सं बले॑न ।
वेत्था॒मृत॑स्य॒ मा नु गा॒न्मा नु भूमि॑गृहो भुवत् ॥ १४ ॥

अर्थ-(यमाय नमः) यमके लिये नमस्कार है। (मृत्यवे नमः अस्तु) मृत्युके लिये नमस्कार होवे। (उत ये नयन्ति, पितृभ्यः नमः) जो हमें ले जाते हैं, उन पितरोंके लिये नमस्कार है। (यः उत्पारणस्य वेद) जो पार करना जानता है (तं अग्निं अस्मै अरिष्ट-तातये पुरः दधे) उस अग्निको इस कल्याणवृद्धि के लिये आगे धर देते हैं ॥ १२ ॥

(प्राणः आ एतु) प्राण आवे, (मनः आ एतु) मन आवे, (चक्षुः अथो बलं) आंख और बल आवे। (अस्य शरीरं विदां सं ऐतु) इसका शरीर बुद्धिके अनुसार चले। (तत पद्भ्यां प्रति तिष्ठतु) वह पांवोंसे प्रतिष्ठाको प्राप्त होवे ॥ १३ ॥

हे अग्ने! (प्राणेन चक्षुषा संसृज) प्राण और चक्षुसे संयुक्त कर। (तन्वा बलेन इमं सं सं ईरय) शरीर और बलसे इसको प्रेरित कर। (अमृतस्य वेत्थ) तूं अमृतको जानता है। (मा नु गात्) तेरा प्राण न चला जावे। (भूमिगृहः मा नु भुवत) भूमिको घर करनेवाला न हो अर्थात् मरकर मिट्टीमें न मिल ॥ १४ ॥

भावार्थ-यम और मृत्युके लिये नमस्कार है, तथा जो मृत्युके पश्चात ले जाते हैं उन पितरोंके लिये भी नमस्कार है। मृत्युसे पार होनेकी विद्या जो जानता है उस अग्निसे कल्याण प्राप्त करते हैं ॥ १२ ॥

प्राण, मन, चक्षु, बल ये सब शक्तियां शरीरमें फिरसे निवास करें और यह शरीर अपने पांवसे खडा रह सके ॥ १३ ॥

यह प्राण और चक्षु की शक्तियोंसे युक्त हो। शरीरके बलसे यह प्रेरित होवे। अमृत प्राप्तिका उपाय जान और उससे तेरा प्राण शीघ्र न चला जावे ॥ १४ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मा ते॑ प्रा॒ण उप॑ दस॒न्मो अ॑पा॒नोपि॑ धायि ते ।
सूर्य॒स्त्वाधि॑पति॒र्मृ॒त्योरु॒दाय॑च्छतु र॒श्मिभि॑ः ॥ १५ ॥
इ॒यम॒न्तर्व॑दति जि॒ह्वा ब॒द्धा प॑निष्प॒दा ।
त्वया॑ यक्ष्मं॑ निरवो॑चं श॒तं रोपी॑श्च त॒क्मन॑ः ॥ १६ ॥
अ॒यं लो॒कः प्रि॒यत॑मो दे॒वाना॒मप॑राजितः ।
यस्मै॑ त्वमि॒ह मृ॒त्यवे॑ दि॒ष्टः पु॑रुष जज्ञि॒षे ।
स च॒ त्वानु॑ ह्वयाम॒सि मा पु॒रा ज॒रसो॑ मृथाः ॥ १७ ॥

अर्थ-(ते प्राणः मा उपदसत्) तेरा प्राण नष्ट न होवे । (ते अपानः मो अपि धायि) तेरा अपान न आच्छादित होवे । (अधिपतिः सूर्यः रश्मिभिः त्वा उदायच्छतु) अधिपति सूर्य किरणोंसे तुझे ऊपर उठावे ॥ १५ ॥

(पनिष्पदा इयं अन्तः बद्धा जिह्वा) शब्द बोलनेवाली यह अंदर बंधी हुई जिह्वा (वदति) बोलती है । (त्वया यक्ष्मं) तेरे साथ रहनेवाला क्षयरोग और (तक्मनः च शतं रोपीः) ज्वरकी सौ प्रकार की पीडा (निः अवोचं) दूर करता हूं ॥ १६ ॥

(अयं अपराजितः लोकः देवानां प्रियतमः) यह पराजित न हुआ हुआ लोक देवोंका प्यारा है । (यस्मै मृत्यवे दिष्टः पुरुषः त्वं इह जज्ञिषे) जिस लोककी मृत्युको निश्चित प्राप्त होनेवाला तू पुरुष यहां उत्पन्न होता है । (सः च त्वा अनुह्वयामसि) वह और तुझे बुलाते हैं । और कहते हैं कि (जरसः पुरा मा मृथाः) बुढापेसे पूर्व मत मर ॥ १७ ॥

भावार्थ-तेरा प्राण और अपान तेरे शरीरमें दृढतासे रहे । सूर्य अपनी किरणोंसे तुझे ऊपर उठावे अर्थात जीवन देवे ॥ १५ ॥

अपनी वाक्शक्तिसे मैं कहता हूं कि क्षय, ज्वर तथा अन्य पीडाएं इस प्रकार दूर की जाती हैं ॥ १६ ॥

तूं देवोंका प्रिय है, यद्यपि तू इस मृत्युलोकमें जन्म लेनेके कारण मरनेवाला है, तथापि हम यह ही कहते हैं कि, तू वृद्धावस्थाके पूर्व न मर ॥ १७ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

आरोग्य युक्त दीर्घ आयु।

इस सूक्तमें आरोग्यपूर्ण दीर्घ आयु प्राप्त करनेके बहुतसे निर्देश हैं। पाठक इनका मनन करेंगे, तो उनको बहुत लाभ हो सकता है। यहां दीर्घायुके विषयमें मुख्य प्रश्न आत्मविश्वासका है, इस विषयमें प्रथम मंत्रका निर्देश देखने योग्य है—

आत्मविश्वाससे दीर्घायु।

इह एव भव, पूर्वान् पितॄन् मा अनुगाः।
ते असुं दृढं बध्नामि। (मं० १)

" यहां अर्थात् इस शरीरमें रह, प्राचीन पूर्वजोंके पीछे मत जा अर्थात् शीघ्र न मर। तेरे शरीरमें प्राणोंको दृढतासे बांधता हूं। " ये मंत्र स्पष्ट शब्दों द्वारा बता रहे हैं कि आत्मविश्वाससे दीर्घआयु होनेमें सहायता होती है। " तू मत् मर जा " यह उसीको कहा जा सकता है, कि जिसके आधीन शीघ्र या देरीसे मरना हो। यदि मनुष्यके आधीन यह बात न होगी, तो ' इस समय न मर, वृद्धावस्थाके पश्चात मर ' इत्यादि आज्ञायें व्यर्थ होगी। ये आज्ञाएं कंठरवसे कह रहीं हैं, कि मनुष्यकी इच्छाशक्तिपर मृत्युको शीघ्र या देरीसे प्राप्त होना अवलंबित है। मैं शीघ्र न मरूंगा, मैं दीर्घायु होऊंगा, मैं अपनी आयु धर्म कार्यमें समर्पण करूंगा ' इस प्रकारकी मनकी सुदृढ भावना रही,तो सहसा अल्प आयुमें मृत्यु न होगी,परंतु यदि कोई विश्वकी क्षणभंगुरताका ही ध्यान करेगा, तो वह स्वयं क्षणभंगुर बनेगा। आत्मविश्वास यह अन्य दीर्घायुप्राप्तिके अनुष्ठानोंकी बुनियाद है। अन्य अनुष्ठान तब सिद्ध होसकते हैं,जब कि यह बुनियाद ठीक सुदृढ हुई हो।

द्वितीय मंत्रमें कहा है कि ' उन्मोचन और प्रमोचन ' ये दो उपाय हैं जिनसे नीरोगता और दीर्घायु सिद्ध हो सकती है। ये विधि क्या हैं, इसकी खोज करनी चाहिये। इनमेंसे एक विधि आरोग्य बढानेवाला और दूसरा अकालमृत्यु हरण करनेवाला है।

कुविचारसे अनारोग्य।

तृतीय मंत्रमें स्त्री पुरुषोंको शाप देना, गालीयां देना,अथवा बुरे शब्द प्रयुक्त करना बुरा है ऐसा कहा है। किसीके साथ द्रोह करना भी घातक है। बुरे शब्द बोलनेसे प्रथम अपना मन बुरे विचारोंसे भर जाता है और जो वैसे हीन विचारके शब्द सुनते हैं उनमें वैसे ही हीन भाव जम जाते हैं। इस प्रकार मनका स्वास्थ्य बिगडनेके लिये ये बुरे शब्द कारण होते हैं। मनका स्वास्थ बिगडनेसे ही शरीरमें रोग बीज प्रविष्ट होते हैं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

और वे रोगबीज उसी कारण वहां स्थिर होते हैं।

मातापिता का पाप।

माता पिताके पापाचरणसे भी रोग होते हैं यह बात चतुर्थ मंत्रमें कही है—

मातृकृतात् पितृकृतात् च एनसः शेषे॥ (मं० ४)

" माता और पिता के किये पापाचरणसे तू बीमार होकर पडा है। " इस मन्त्र भागमें स्पष्ट कहा है कि बीमारीका एक हेतु मातापिताके पापाचरण भी है। मातापिताके पापी आचारव्यवहार के कारण जन्मतः ही लडके का शरीर निर्बल होता है और बालक जन्मसे ही बीमारियोंका घर बन जाता है। गृहस्थ धर्ममें रहनेवाले लोग इस मंत्रका अवश्य विचार करें, क्यों कि यदि वे कुछ भी पाप करेंगे, तो वे अपने वंशको दुःखमें डालनेके दोषी हो सकते हैं। इससे पता चलता है कि, व्यभिचार, मद्य पान आदि दुष्ट व्यसनोंमें फंसे हुए लोग न केवल स्वयं दुःख भोगते हैं, प्रत्युत अपने वंशजोंको भी बीमारियोंके महासागरमें डाल देते हैं। वेदने यह मंत्र कह कर जनता के स्वास्थ्यके विषय में बडा उत्तम उपदेश दिया है, परंतु पाठकोंको चाहिये कि वे इसका मनन करें और आचरणमें लावें।

पंचम मंत्रमें कहा है कि [भेषजं सेवस्व। त्वा जरदष्टिं कृणोमि। (मं०५)] योग्य औषधिका सेवन कर, इतना पथ्य करेगा तो मैं तुम्हें दीर्घायु बनाता हूं।" संदेह मत कर, तू पथ्य पालन करनेसे अवश्य दीर्घायुवाला हो जायगा।

मानसशक्ति।

षष्ठ मंत्रमें मनकी शक्तिका वर्णन किया है जो विशेष महत्त्वका है—

पुरुष! सर्वेण मनसा सह इह एधि।
यमस्य दूतो मा अनुगाः। जीवपुरा अधि इहि॥ (मं० ६)

"हे मनुष्य! अपनी सब मानसिक शक्तिके साथ तूं यहां रह। यमके दूतोंके पीछे न जा! जीवोंकी पुरियोंमें अर्थात् शरीरमें यहां स्थिर रह। "

इस मंत्रका संबंध पहिले मंत्रके कथनके साथ बहुत ही घनिष्ट है। अपनी सब मानसिक शक्तिके साथ इच्छा पूर्वक 'मैं दीर्घायु बनूंगा' ऐसा मनमें निर्धार करना चाहिये। मनकी शक्ति विलक्षण है, मनकी शक्ति जितनी प्रबल होगी उतनी निश्चयसे सिद्धि हो सकती है। मनकी कल्पनासे रोगी मनुष्य नीरोग और नीरोग मनुष्य रोगी बनता है। बलवान निर्बल होता है और निर्बल भी सबलके समान कार्य करनेमें समर्थ हो जाता है। मनकी यह विलक्षण शक्ति होनेके कारण हरएक मनुष्यको उचित है कि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वह अपने मनमें सुविचारोंकी धारणा करता हुआ नीरोगता पूर्वक दीर्घायु प्राप्त करे। हीन विचार मनमें न आने दें। क्यों कि हीन विचारोंसे मनुष्य क्षीणायु हो जाता है। मरनेके विचार कभी मनमें न आने दें। पूर्ण स्वास्थ्यके विचार ही मनमें स्थिर किये जावें।

उन्नति का मार्ग।

अपनी उन्नतिका मार्ग कौनसा है, इसका ज्ञान श्रेष्ठ मनुष्योंसे प्राप्त करें और तद्नुसार आचरण करें, आरोग्य प्राप्तिके मार्गका नाम ' उद्यनं पथः ' है, अर्थात् उच्चतर अवस्था प्राप्त करनेका यह राजमार्ग है। इस परसे ' आरोहणं आक्रमणं ' अर्थात् इस आरोग्यके मार्ग पर आना और उसपरसे चलना मनुष्यके लिये लाभ दायक है-

उद्यनं पथः विद्वान् ऐहि।
आरोहणं आक्रमणं जीवतः अयनम्॥ (मं० ७)

" उन्नतिके मार्गको जान कर ही इस संसारमें रह। इस मार्गपर आना और इसी मार्गपरसे चलना जीवित मनुष्यके लिये हित कारक है। " इसलिये हरएक मनुष्यको उचित है कि वह अपने आरोग्यके बढानेके उपायोंको जानें और उनका आचरण करके अपनी आयु और आरोग्य बढावे। इस प्रकार करनेसे कितने लाभ हो सकते हैं इसका वर्णन अष्टम मंत्रमें किया है—

मा बिभेः। न मरिष्यसि। त्वा जरदष्टिं कृणोमि। (मं० ८)

यदि तू पूर्वोक्त मंत्रोंमें कहे मार्गके अनुसार आचरण करेगा, तो " तू शीघ्र नहीं मरेगा, तू मत डर, मैं तुझे दीर्घायु करता हूं। " जो मनुष्य पूर्वोक्त प्रकार आचरण करेगा, उसके लिये यह आशीर्वाद अवश्य मिलेगा। पाठक! विचार करके देखिये, तो मालूम होगा कि यह मार्ग सीधा है, परंतु मनुष्य प्रलोभनमें पडता है और फंसता है—

मार्गदर्शक दो ऋषी।

अपने ही अंदर मार्ग बतानेवाले दो ऋषि बैठे हैं ये ऋषि दशममंत्रमें देखिये—

बोधप्रतिबोधौ ऋषी। अस्वप्नः जागृविः।
तौ प्राणस्य गोप्तारौ दिवानक्तं च जागृताम्॥ (मं १०)

" मनुष्यके अन्दर बोध और प्रतिबोध अर्थात् ज्ञान और विज्ञान ये दो ऋषि हैं। इनसे सच्चा ज्ञान प्राप्त होता है। इनमेंसे एक (अ-स्वप्नः) सुस्त नहीं है और दूसरा सदा जागता रहता है। ये ही दो ऋषि मनुष्यके प्राणोंके रक्षक हैं। अतः ये दिन रात यहां जागते रहें। " ये दो ऋषि यहां जागते रहनेसे ही मनुष्य नीरोग, स्वस्थ और दीर्घायु हो सकता है। ज्ञान विज्ञानसे उसको यहांका व्यवहार कैसा करना चाहिये

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इसका ज्ञान हो सकता है । ठीक व्यवहार करके यह मनुष्य अपना स्वास्थ्य उत्तम रखता है और दीर्घायु होता है । व्यक्तिमें और समाजमें ये बोध और प्रतिबोध अथवा ज्ञान और विज्ञान जागते रहें । जब तक इनकी जाग्रति रहेगी तबतक उन्नति होना स्वाभाविक है । इसलिये कहा है—

गम्भीरात् कृष्णात् तमसः परि उदेहि ॥ (मं० ११)

"गहरे काले अन्धकार रूपी मृत्युसे ऊपर उठ" अर्थात् मृत्युके अंधकारमें न फंस और जीवनके प्रकाशमें नित्य रह । यहां पूर्वोक्त दो ऋषियोंकी सहायतासे मृत्युसे बचनेका उपदेश है । क्यों कि वेही मृत्युको दूर करके दीर्घ जीवन देनेवाले हैं ।

मृत्युको दूर करना ।

यहां एक बात लक्ष्यमें रखने योग्य कही है वह यह है कि "मृत्यु अन्धकार है" और 'जीवन प्रकाशमय है ।" यह अनुभव सत्य है । जीवित मनुष्यका प्रकाशवर्तुल आकाशभर व्यापक होता है, यह प्रकाशवर्तुल मरनेके समय शनैःशनैः छोटा छोटा हो जाता है । जब यह प्रकाश वर्तुल अंगुष्ठ मात्र रह जाता है उस समय मनुष्य मरा होता है । मरनेवाले मनुष्यको मरनेसे पूर्व कुछ घण्टे ऐसा अनुभव आता है कि जगत्के अंदर व्यापनेवाला प्रकाश अब घरके अंदर ही रहा है और बाहर अन्धकार है । मृत्युको छाया रूप वर्णन किया है इसका कारण यह है। यह कविकल्पना नहीं है परंतु सत्य बात है । अपने आपको अन्धेरेसे वेष्टित होने न देना आवश्यक है, यही मृत्युको दूर करनेका तात्पर्य है । प्रकाशका महत्त्व इतना है, यह प्रकाश अपने आत्माका ही है बाहरका नहीं ।

जीवनका लक्षण ।

बारहवे मंत्रमें उन पितरोंको नमन किया है कि जो जीवको इस लोकसे यमलोकमें ले जाते हैं । वे कृपा करें और हमारे (उत्पारण) मृत्युपार होनेके अनुष्ठानमें सहायता करें । बारहवे मंत्रमें यह कहनेके पश्चात् तेरहवें मंत्रमें जीवन का लक्षण बताया है । 'मनुष्यके शरीरमें प्राण, मन, चक्षु, और बल रहे और यह अपने पांवके बलसे खडा रहे ।' (मं० १३) यह जीवनका लक्षण है, मृत्युका लक्षण भी इसीसे ज्ञात हो सकता है, वह इस प्रकार है—'शरीरमें प्राण, मन, आंख, और बल न रहे और शरीर अपने पांवपर खडा न रह सके ।' इन शक्तियोंका यहां होना और न होना जीवन और मृत्यु है । और पूर्वोक्त प्रकार मृत्युको दूर और जीवनको पास किया जा सकता है ।

पाठक इन मंत्रोंका अच्छी प्रकार विचार करेंगे तो उनको इस सूक्तमें कही जीवन विद्याका ज्ञान हो सकता है ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

घातक प्रयोगको दूर कराना।

[३१]

(ऋषिः—शुक्रः। देवता—कृत्यादूषणम्)

यां ते॑ च॒क्रुरा॒मे पात्रे॒ यां च॒क्रुर्मि॒श्रधा॑न्ये।
आ॒मे मां॒से कृ॒त्यां यां च॒क्रुः पुन॒ः प्रति॑ हरामि॒ ताम् ॥ १ ॥
यां ते॑ च॒क्रुः कृ॑क॒वाका॑व॒जे वा॒ यां कु॑री॒रिणि॑।
अव्यां॑ ते कृ॒त्यां यां च॒क्रुः पुन॒ः प्रति॑ हरामि॒ ताम् ॥ २ ॥
यां ते॑ च॒क्रुरेक॑शफे पशू॒नामु॑भ॒याद॑ति।
ग॒र्द॒भे कृ॒त्यां यां च॒क्रुः पुन॒ः प्रति॑ हरामि॒ ताम् ॥ ३ ॥
यां ते॑ च॒क्रुर॑मू॒लायां॑ वल॒गं वा॑ नरा॒च्याम्।
क्षेत्रे॑ ते कृ॒त्यां यां च॒क्रुः पुन॒ः प्रति॑ हरामि॒ ताम् ॥ ४ ॥

अर्थ- (यां ते आमे पात्रे चक्रुः) जिसको वे कच्चे बर्तन में करते हैं, (यां मिश्रधान्ये चक्रुः) जिसको मिश्रधान्यमें करते हैं, (आमे मांसे यां कृत्यां चक्रुः) कच्चे मांसमें जिस हिंसा प्रयोग को करते हैं (तां पुनः प्रतिहरामि) उसको मैं हटादेता हूं ॥ १ ॥

(यां ते कृकवाकौ चक्रुः) जिसको वे पक्षिविशेषमें करते हैं, (यां वा कुरीरिणि अजे) अथवा जिसको सींगवाले मेंढे में अथवा बकरेमें करते हैं (यां कृत्यां ते अव्यां चक्रुः) जिस घातक प्रयोग को वे भेडीमें करते हैं (तां०) उसको मैं दूर करता हूं ॥ २ ॥

(यां ते एकशफे चक्रुः) जिसको वे एक खुरवाले पशुमें करते हैं, (पशूनां उभयादति) पशुओंमें जिनको दोनों ओर दांत होते हैं, उनमें जो प्रयोग करते हैं, (यां कृत्यां गर्दभे चक्रुः) जिस घातक प्रयोगको गधेमें करते हैं (तां०) उसको मैं दूर करता हूं ॥ ३ ॥

(यां ते अमूलायां चक्रुः) जिसको वे अमूला औषधिमें करते हैं, और (नराच्यां वा वलगं) नराची औषधीमें बल घटानेका जो प्रयोग करते हैं (यां कृत्यां ते क्षेत्रे चक्रुः) जिस घातक प्रयोगको वे खेतमें करते हैं (तां० उसको मैं हटाता हूं ॥ ४ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यां ते॑ च॒क्रुर्गार्ह॑पत्ये पूर्वा॒ग्नावु॒त दु॒श्चितः॑ ।
शालायां कृत्यां यां च॒क्रुः पुन॑ः प्रति॑ हरामि॒ ताम् ॥ ५ ॥
यां ते॑ च॒क्रुः स॒भायां॒ यां च॒क्रुर॑धि॒देव॑ने ।
अ॒क्षेषु॑ कृ॒त्यां यां च॒क्रुः पुन॑ः प्रति॑ हरामि॒ ताम् ॥ ६ ॥
यां ते॑ च॒क्रुः सेनायां॒ यां च॒क्रुरि॑ष्वायु॒धे ।
दु॒न्दु॒भौ कृ॒त्यां यां च॒क्रुः पुन॑ः प्रति॑ हरामि॒ ताम् ॥ ७ ॥
यां ते॑ कृ॒त्यां कूपे॑ऽवद॒धुः श्म॑शा॒ने वा॑ निच॒ख्नुः ।
सद्म॑नि कृ॒त्यां यां च॒क्रुः पुन॑ः प्रति॑ हरामि॒ ताम् ॥ ८ ॥
यां ते॑ च॒क्रुः पु॑रुषा॒स्थे अ॒ग्नौ संक॑सुके च॒ याम् ।
म्रो॒कं नि॑र्दा॒हं क्र॒व्याद॒ं पुन॑ः प्रति॑ हरामि॒ ताम् ॥ ९ ॥

अर्थ-(यां ते गार्हपत्ये चक्रुः) जिसको गार्हपत्य अग्निमें करते हैं, (उत दुश्चितः पूर्वाग्नौ) और जिसको बुरी तरहसे प्रज्वलित पूर्व अग्नि में करते हैं तथा (यां कृत्यां शालायां चक्रुः जिस घातक प्रयोगको शालामें करते हैं (तां०) उस को मैं दूर करता हूं ॥ ५ ॥

(यां ते सभायां चक्रुः) जिसको वे सभामें करते हैं, (यां अधिदेवने चक्रुः) जिसको खेलमें करते हैं, (यां कृत्यां अक्षेषु चक्रुः) जिस घातक प्रयोगको पासोंमें करते हैं, (तां०) उसको मैं दूर करता हूं ॥ ६ ॥

(यां ते सेनायां चक्रुः) जिसको वे सेनामें करते हैं, (यां इषु-आयुधे चक्रुः) जिसको बाण और धनुष्यपर करते हैं, (यां कृत्यां दुन्दुभे चक्रुः) जिस घातक प्रयोगको दुन्दुभी पर करते हैं, (तां०) उसको मैं हटाता हूं ॥ ७ ॥

(यां कृत्यां ते कूपे अवदधुः) जिस घातक प्रयोग को वे कूएमें करते हैं, (श्मशाने वा निचख्नुः) अथवा जिसको श्मशानमें गाड देते हैं, (यां) कृत्यां सद्मनि चक्रुः) अथवा जिस घातक प्रयोगको घरमें ही करते हैं, (तां०) उसको मैं हटाता हूं ॥ ८ ॥

(यां ते पुरुषास्थे चक्रुः) जिसको वे मनुष्यकी हड्डीमें करते हैं, (संकसुके अग्नौ चक्रुः) प्रज्वालित आग्निमें जो करते हैं, (म्रोकं निर्दाहं क्रव्यादं प्रति) चोरीसे प्रज्वलित किये मांस खानेवाले अग्नि के प्रति (पुनः तां प्रति हरामि) फिर उसको मैं हटा देता हूं ॥ ९ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अपथेना जभारैणां तां पथेतः प्र हिण्मसि ।
अधीरो मर्याधीरेभ्यः सं जभाराचित्त्या ॥ १० ॥
यश्चकार न शशाक कर्तुं शश्रे पादमङ्गुरिम् ।
चकार भद्रमस्मभ्यमभगो भगवद्भ्यः ॥ ११ ॥
कृत्याकृतं वलगिनं मूलिनं शपथेय्यम् ।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेनाग्निर्विध्यत्वस्तया ॥ १२ ॥

॥ इति षष्ठोऽनुवाकः ॥

॥ पञ्चमं काण्डं समाप्तम् ॥

अर्थ-(अपथेन एनां आजभार) कुमार्गसे इस हिंसा को लाया है (तां पथा इतः प्रहिण्मसि) उसको सुमार्गसे यहांसे हटाते हैं। (अधीरः मर्या धीरेभ्यः) मूढ मनुष्य मर्यादा धारण करनेवाले पुरुषोंसे (अचित्या संजभार) विना सोचे उपाय प्राप्त कर सकता है ॥ १० ॥

(यः कर्तुं चकार) जिसने हिंसा करनेका यत्न किया, वह (न शशाक) वह समर्थ नहीं हुआ। परन्तु (पादं अंगुरिं शश्रे) उसने ही पांव और अंगुलिको तोड दी है। (अभगः) उस अभागीने तो (अस्मभ्यं भगवद्भ्यः भद्रं चकार) हम सौभाग्यवानोंके लिये तो उसने कल्याणही किया है ॥ ११ ॥

(इन्द्रः वलगिनं) इन्द्र इस नीच (मूलिनं शपथेय्यं) जडमें दुःख देने-वाले और गालियां देनेवालोंको (महता वधेन हन्तु) बडे वधोपायसे मारे और (अग्निः अस्तया विध्यतु) अग्नि अस्त्रसे वेध डाले ॥ १२ ॥

भावार्थ- कच्चा बर्तन, मिश्रधान्य, कच्चा मांस, कृकवाक पक्षी, मेंढे, बकरी, भेडी, एक खुरवाले पशु, दोनों ओर दांत वाले पशु, गधा, अमूला औषधि, नराची वनस्पति, खेत, गार्हपत्य अग्नि, पूर्वाग्नि, घर या कमरा, सभा, खेल का स्थान, पासे, सेना, बाण और मनुष्य, दुन्दुभी, कूवा, स्मशान, घर, पुरुषकी हड्डी, प्रज्वालित अग्नि, मांस जलाने वाला अग्नि आदि स्थानोंमें दुष्ट लोक घातक प्रयोग करते हैं। उनसे बचनेका उपाय करना चाहिये ॥ १–९ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कुमार्गसे ही यह हिंसक और घातक प्रयोग हुआ करते हैं। यद्यपि दूसरेने कुमार्गसे ऐसे प्रयोग किये, तो भी उनको ठीक प्रकार दूर करनेका उपाय हमें करनाही चाहिये। मनुष्य स्वयं उपाय न जानता हो, तो ज्ञानी पुरुषोंसे उपाय को जान सकता है ॥ १० ॥

जो दूसरे की हिंसा करनेका यत्न करता है वह दूसरे की हिंसा करनेके पूर्व अपनी ही करता है। जो दूसरे की हिंसा करना चाहता है वह अभागी है, उससे ईश्वरभक्त होनेसे जो भाग्यवान होते हैं उनका कल्याणही होता है ॥ ११ ॥

ईश्वरही नीच मनुष्योंको दण्ड देवे ॥ १२ ॥

[इस सूक्तका विषय संदिग्ध होनेसे इसका विशेष स्पष्टीकरण करना कठिन है। यह खोचका विषय है।]

षष्ठ अनुवाक समाप्त।

पञ्चम काण्ड समाप्त।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अथर्ववेद का स्वाध्याय।

पञ्चम काण्डकी विषय सूची।

सूक्त	विषय	पृष्ठ
	सप्त मर्यादायें!	पृ. २
	पञ्चमकाण्डकी भूमिका	३
	सूक्तोंके ऋषिदेवता छन्द	४
	ऋषिक्रमानुसार सूक्तविभाग	८
	देवता क्रमानुसार सूक्तविभाग	९
	सूक्तोंके गण	१०
१	आत्मोन्नति की विद्या	११
	आत्मोन्नतिका मार्ग	१६
	आत्माकी उन्नति	,,
	अदम्य आत्मशक्तिका तेज	१७
	गुह्यवाणीका गुप्त संदेश	१९
	शरीर धारणका उद्देश्य	,,
	अपने अन्दरके अमृत	२०
	दूसरोंके साथ आदर का व्यवहार	२२
	विरोधक शक्तियोंकी एकतासे वृद्धि	२३
	सात मर्यादाएँ	२५
	परमपिताकी उपासना	२७
	ईश गुणवर्णन	२८
	सूक्तसार	३०
२	भुवनोंमें ज्येष्ठ देव	३१
	ज्येष्ठके लक्षण	३४
	दासकी घबराहट, दासके लक्षण	३५
	विरोधियोंका सहकार्य	३६
	शक्तिकी वृद्धि	३८
	माधुर्य, ब्राह्मण क्षत्रियोंकी एकता	३९
	आप्तपुरुषकी स्तुति	४३
	आदर्श पुरुष	४४
	काव्य कैसा हो ?	,,
	राष्ट्रोन्नतिका सन्देश	४६
	सूक्तका ईश्वर विषयक भावार्थ	४८
३	विजयकी प्राप्ति	४९
	अपने विजय की प्रार्थना	५३
	विजयी विचार	,,
	शत्रुको दूर करना	५४
	कामना की तृप्ति	५५
	ईश्वर उपासना, ईशप्रार्थना, निष्पाप बनना	५६
	देवोंकी सहायता	५७
	राजप्रबंध, शारीरिक बल	५८
४	कुष्ठ औषधि	५९
५	लाक्षा औषधि	६३
६	ब्रह्म विद्या	६८
	ब्रह्मप्राप्तिका मार्ग	७३
	स्वर्गके महन्तोंकी घोषणा	७४
	शत्रुको भगाना	७५
	सिद्धिका मार्ग, स्वा-हा करो	७६
	सोम और रुद्र	७७
	तीन उपदेश	७८
	शस्त्रोंके शस्त्र	७९
	पाशवी बलका आत्मिक बलसे प्रतिकार	७९

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अध्याय	विषय	पृष्ठ
	आत्मसमर्पण	८१
७	ऐश्वर्यमयी विपत्ती	८२
	विपत्तिपूर्ण संपत्ति	८५
	कंजूसीसे गिरावट	८६
	हार्दिक इच्छा	८७
८	शत्रुको दबाना	८९
	शत्रुका नाश, ईशप्रार्थना, नास्तिकोंकी-असफलता	९२
	शत्रुके नाश का उपाय	९४
९-१०	आत्मिक बल	९६
	आत्मिक शक्ति (चित्र)	९७
	पत्थरका कवच	१०१
११	श्रेष्ठ देव	१०२
	ईश्वर और भक्तका संवाद	१०६
	दो प्रकारके लोग	१०७
	प्रयत्नका महत्त्व, ईश्वरका महत्त्व	१०८
	धन प्राप्तिमें दोष	१११
	ईश्वरका सखा	११२
१२	यज्ञ	११३
	यजमानकी इच्छा	११७
१३	सर्पविष दूर करना	११९
	सर्पविष	१२२
	उपाय	१२३
१४	घातक प्रयोगको लौटाना	१२५
	दुष्टकृत्यका परिणाम	१२७
१५	सत्यका विजय	१२८
	सत्यसे यश	१२९
१६	आत्मबल	१३०
१७	स्त्रीके पातिव्रत्यकी रक्षा	१३१
	स्त्री चारित्र्य की रक्षा	१३६
	बृहस्पति और तारा	१३७
१८	ब्राह्मणकी गौ	१४०
	राजाका कर्तव्य	१४७
१९	ब्राह्मणको कष्ट	१४८
	ज्ञानीका कष्ट	१५२
	अन्त्येष्टीकी कुछ बातें	,,
	हजामत	,,
२०-२१	दुन्दुभीका घोष	१५३
	नगारा	१५८
२२	ज्वरनिवारण	१५९
	ज्वररोग	१६२
	ज्वरके भेद	१६३
	ज्वर निवृत्तिका उपाय	१६४
२३	रोग जन्तुओंका नाश	१६५
	रोग क्रिमियोंका नाश	१६७
२४	सुरक्षिततताकी प्रार्थना	१६८
२५	गर्भधारणा	१७१
	गर्भकी सुरक्षितता	१७४
२६	यज्ञ	१७५
	यज्ञमें आत्मसमर्पण	१७७
२७	अग्निकी ऊर्ध्वगति	१७८
	यज्ञका महत्त्व	१८०

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सूक्त	विषय	पृष्ठ
२८	**दीर्घायु और तेजस्विता**	**१८१**
	यज्ञोपवीतका धारण	१८६
	तीन धागे, सुवर्णका यज्ञोपवीत	१८६
	इंद्रिय और प्राण	१८६
	ओंकारकी तीन शक्तियां	१८९
	देवोंके नगर	१९०
	न्याय, पुष्टि और ज्ञान	१९१
	यज्ञोपवीत से लाभ	१९२
२९	**रोग-क्रिमि-निवारण**	**१९३**
	रोगोंके क्रमि	१९७
	रोग जन्तुओंका शरीरमें प्रवेश	१९८
	आरोग्य प्राप्ति	१९९
	संसर्ग रोग, रोग हटनेका लक्षण	२००
३०	**दीर्घायुकी प्राप्ति**	**२०१**
	आरोग्ययुक्त दीर्घ आयु	२०६
	आत्मविश्वाससे दीर्घ आयु	"
	कुविचारसे अनारोग्य	"
	मातापिताका पाप	२०७
	मानस शक्ति	"
	उन्नतिका मार्ग	२०८
	मार्ग दर्शक दो ऋषि	२०८
३१	**घातक प्रयोग दूर करना**	**२१०**

मुद्रक तथा प्रकाशक —श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
स्वाध्याय मंडल; भारतमुद्रणालय, औंध (जि. सातारा)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वर्ष १०

अंक १२

क्रमांक १२०

मार्गशीर्ष संवत् १९८६

दिसंबर सन १९२९

वैदिक धर्म.

वैदिक तत्त्वज्ञान प्रचारक मासिक पत्र।

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर।

स्वाध्यायमंडल, औंध (जि. सातारा)

परोपकारकी सदिच्छा।

उभा शंसा नर्या मामविष्टामुभे मामूती अवसा सचेताम्।

भूरिचिदर्यः सुदास्तरायेषा मदन्त इषयेम देवाः ॥ ८ ॥

ऋ० १।१८५।९

"(उभौ शंसौ नर्यौ) दोनों प्रशंसनीय मनुष्य (मां अविष्टां) मेरी रक्षा करें। (उभे ऊती) दोनों प्रकार की संरक्षक शक्तियां (अवसा मां सचन्तां) वेगसे मुझे प्राप्त हों। हे देवो! (अर्यः) श्रेष्ठ मनुष्य और (भूरिचित् मदन्तः) बहुत प्रकारसे हर्षित हुए हुए हम सब (इषा सुदास्तराय इषयेम) अंदरकी सदिच्छासे उत्तम दान देनेकी सदा इच्छा करें।"

माता और पिता ये दोनों प्रशंसनीय और पूज्य मनुष्य हैं। प्रथम आयुमें इनकी सहायतासे हमारी पालना और पोषणा उत्तम प्रकारसे होवे। स्थूल और सूक्ष्ममें दो प्रकार की संरक्षक शक्तियां हैं। यौवन अवस्थामें ये दोनों शक्तियां हमारे अंदर बढें। श्रेष्ठ महात्मा लोग और बहुत लाभ होने के कारण हर्षित हुए हम सब अन्तःकरण की सदिच्छासे परोपकार करनेके लिये आत्मसमर्पणरूपी उत्तम दानयज्ञ करनेकी इच्छा करें। अर्थात् केवल स्वार्थ भोगकी इच्छा हमारे अंदर न बढे। हमारे अंदर परोपकार की सदिच्छा सदा जाग्रत रहे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वैदिकधर्म का १० वां वर्ष।

यह अंक ग्राहकोंके पास पहुंचतेही इस वैदिकधर्म मासिक के लिये १० वां वर्ष समाप्त होगा। और ग्यारहवां वर्ष अगले अंक से प्रारंभ होगा।

'वैदिकधर्म' में इस समय ७२ पृष्ठ दिये जाते हैं। ये ७२ पृष्ठ प्रायः वेद विषयपर ही निबंधरूपमें होते हैं। इतना बडा मासिक केवल ४) रु० में देना अब असंभव हो गया है। यदि प्रत्येक पाठक इस महिने में दो दो नये ग्राहक बना देंगे, तो इतने ही मूल्य में यह दिया जा सकता है। पाठक इसका विचार करें और ग्राहक संख्या बढाकर इस धर्म-कार्य की उचित सहायता करें।

महाभारत।

महाभारत का शान्तिपर्व छप रहा है। उसका पहिला 'राजधर्म पर्व' छपकर तैयार हुआ है और वह ग्राहकों के पास भेजा गया है। इस 'राजधर्म पर्व' के करीब ६९२ पृष्ठ हो गये हैं अर्थात् सात अंकोंमें यह पर्व समाप्त हुआ है। इसका मूल्य ३॥) है और डा० व्य. ॥।) है। जो पाठक इसके ग्राहक होना चाहते हैं वे ४।) भेज दें और शीघ्र मंगवायें। इस पर्व में तो प्रतिदिन के व्यवहार चातुर्य का इतना अच्छा उपदेश है, कि जो पाठक इसका पाठ करेंगे वे निःसन्देह व्यवहार दक्ष हो जांयगे।

अथर्ववेद सुबोध भाष्य।

अथर्ववेद सुबोधभाष्य का पञ्चम काण्ड समाप्त हुआ है और इस अंकसे षष्ठ काण्ड का प्रारंभ हुआ है। यह भाष्य इतना सुबोध है कि जो इस का पाठ नियमपूर्वक करते हैं, उनको तो उसकी सरलताके विषयमें कहने की आवश्यकता ही नहीं। जो संस्कृत बिलकुल नहीं जानते वे भी इसके पाठ-से अथर्ववेदका रहस्य जान सकते हैं और जो इसका मनन करेंगे वे तो बहुत ही लाभ उठा सकते हैं। 'वैदिकधर्म' मासिक के ग्राहकों को तो यह करीब उपहार में ही मिल रहा है, अतः जो इस मासिक के ग्राहक होंगे उनको इसका पाठ करने का अवसर प्रतिमास मिल सकता है। अतः जो अथर्ववेद पढना चाहते हैं वे 'वैदिकधर्म' मासिक के ग्राहक शीघ्र बनें।

यजुर्वेद प्रथम अध्याय।

यजुर्वेद स्वाध्याय का प्रथम अध्याय तैयार हुआ है। करीब दो मासमें छप जायगा। यजुर्वेद स्वाध्याय का सिलसिला अन्य कार्य की व्यग्रता के कारण स्थगित हुआ था। वह पुनः प्रारंभ हुआ है और अब एकएक अध्याय प्रकाशित किया जायगा। यजुर्वेद का भाषामें रूपान्तर करने का कार्य बडा कठीन है, इसलिये बहुत शीघ्रतासे यह नहीं हो सकता। तथापि इसका अब प्रारंभ हुआ है और प्रथम अध्याय का पुस्तक शीघ्रही पाठकों के पास पंहुचेगा।

जो पाठक वेद विषय का मनन करना चाहते हैं, वे इन पुस्तकों का पठन अवश्य करें। ये सब पुस्तक अत्यन्त सुबोध रीतिसे लिखे गये है।

मंत्री-स्वाध्याय मंडल.
औंध (जि. सातारा)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कल्याण प्राप्ति का मार्ग।

स्रुक्त्योऽसि प्रतिसरोऽसि प्रत्यभिचरणोऽसि।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥ अथर्व० २।११।२

मंत्रका शब्दार्थ।

"हे मनुष्य, तूं (स्रुक्त्य: असि) उत्पादक शक्ति युक्त है; (प्रतिसर: असि) तूं आगे जानेवाला है; (प्रत्यभिचरण: असि) तूं दुष्टता को दूर करनेवाला है। अत: (समं) अपने समान लोगों के (अति क्राम) आगे जा और (श्रेयं आप्नुहि) कल्याण प्राप्ति कर ले।"

सामान्य विवेचन।

जो अपनी उन्नति करलेना चाहते हैं वे इस मंत्र को पढें और उसपर विचार करें। इसका प्रत्येक भाग मनुष्य की उन्नति के मार्गकी एक एक सीढी का बोध करता है। इससे क्रमश: उनका विचार करना चाहिए।

मनुष्य के शरीर में जो स्वाभाविक शक्तियां हैं वे निम्न लिखित शब्दोंसे इस मंत्रमें बतलाई गई हैं।

शक्ति, साधन और साध्य।

१ स्रुक्त्य: = विधायक शक्तिसे युक्त, उत्पादक शक्तिसे युक्त।

२ प्रतिसर: = अग्रगामी, नेतबन कर कार्य करनेवाला; अग्रसर।

३ प्रत्यभिचरण: = शत्रु पर हमला करके उसका नाश करनेवाला।

मनुष्य को अपनी उन्नति के लिए तीन शक्तियां अत्यंत आवश्यक हैं: (१) विधायक शक्ति, (२) अग्रसर होने की महत्वाकांक्षा और (३) विरोध का प्रतिकार करने की शक्ति। ये तीन शक्तियां मनुष्यमें जन्म से विद्यमान रहती हैं।

वह मनुष्य अपनी उन्नति नहीं कर सकता जिसमें कुछ विशेष कार्य करने की इच्छा नहीं, आगे बढ़कर कार्य करने का उत्साह नहीं, तथा विरोध करनेवालेसे दो दो हाथ करके उसे हराकर अपनी श्रेष्ठता साबित करने की शक्ति नहीं। यह तो स्पष्ट ही है कि जो अपनी उन्नति नहीं कर सकता उसकी दिन प्रति दिन अवनति ही होती जाती है; क्यों कि इस संसार में कोई भी स्थिर नहीं रह सकता। या तो वह आगे जावे या घुरते हुए पीछे पडा रहे। इन दो बातोंके सिवा कोई तीसरी बात हो नहीं सकती।

इस प्रकार मंत्र के पूर्वार्ध में मनुष्य की स्वाभाविक शक्तियोंका विचार करके उत्तरार्ध में उसे अपना कल्याण कर लेने का उपदेश किया है। उसमें दो बातें हैं (४) अपने समान लोगोंके आगे बढ जाना और (५) भलाई कर लेना। इन पांचों में से पहली तीन अपनी निजकी शक्तियां हैं, उन्हें विकसित और व्यवस्थित कर लेना चाहिए। अनंतर चौथे उपदेश के अनुसार काम करने से पांचवां साध्य प्राप्त होता है।

अब देखें कि संसार में मंत्र की प्रथम तीन शक्तियां किस प्रकार काम करती हैं:-

परमेश्वरने सूर्य, चंद्र, वायु, अग्नि, झाडपात पशुपक्षि आदि अनेक पदार्थ निर्माण किए हैं। देखिए उनमें ये शक्तियां कैसे काम करती हैं।

सूर्य।

सूर्य में उत्पादक शक्ति है। यह तो अब सिद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं क्यों कि सूर्य के कारण ही सूर्यमालिका में गति उत्पन्न होती है। सूर्यके जीवनपूर्ण किरणों से ही वृक्ष, वनस्पतियों की बाढ होती है। सारे जीवन का आधार ही सूर्य है। जब हम यह देखते हैं तब इसमें स्थित जीवनशक्ति का हमें विश्वास और निश्चय हो जाता है। अपनी सूर्यमालिका में सूर्य को ही अग्रसर होने का आदर प्राप्त है। यहभी अलग से सिद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

तीसरी शक्ति विरोध का प्रतिकार करने की है। यहभी सूर्य में पूरी पूरी है। सूर्य तो प्रकाश का देव है,इससे वह प्रथम अपना विरोधी जो अंधकार है उसका नाश करता है। वह, जीवन का देव होने से जीवन देकर मृत्युका प्रतिकार करता है। इस प्रकार सूर्य में तीनों शक्तियां काम करती हैं।

इसी प्रकार वायु, अग्नि और अन्य देवता के बारे में जानिए। स्थूल सृष्टि में इन शक्तियों का काम देख लिया। अब अर्धचेतन सृष्टि की ओर झुकें।

अर्धचेतन सृष्टिमें वृक्ष-वनस्पतिकी ओर देखिए। वहां भी तीनों शक्तियां अच्छी तरह काम करती हुई दिखाई देंगीं। वृक्ष में उत्पादक शक्ति है इसीसे उन्हे फल, फूल आते हैं। और उनकी वृद्धि होती है। जान बूझकर अग्रसर होनेका गुण इनमें नहीं है। पर जहां वे स्थित हैं वहां अपने से छोटे झाडों का बढने न देनेकी अहमहमिका उनमें है। इसे देखकर कौन कहेगा कि उनमें खुदही बढने की इच्छा नहीं है? विरोध का प्रतिकार करके ही उनकी बाढ होती है। छोटासा अंकुर भी बढकर ऊपर आते समय मिट्टी के बडे ढेले को दूर कर देता है।

जड और अर्ध चेतन सृष्टि में यद्यपि ये शक्तियां कार्य करती हैं तब भी अपनी अधिक प्रगति होवे, स्वतः की अधिक उन्नति के लिए दूसरों के आगे जावें और अपना श्रेय संपादन करें ये बातें इनसे इच्छापूर्वक होना असंभव है। क्यों कि उक्त शक्तियां भी इनमें निसर्ग-नियमों के अनुसार ही कार्य करतीं हैं। अतः इनका स्वतः प्रेरक धर्म कार्य नहीं करता और ऐसा होना भी असंभव है। क्यों कि इन सब के लिए जो महत्वाकांक्षा चाहिए वही उनमें नहीं होती। तथापि महत्वाकांक्षा के अभाव में यद्यपि प्रगति रुक जाती है तब भी निसर्ग-नियम के अनुसार उक्त शक्तियों का कार्य वहां चलता है। इस बात का कोई इन्कार नहीं कर सकता।

जड और अर्धचेतन सृष्टिमें निसर्ग की प्रेरणासे चलनेवाला उक्त शक्तियों का कार्य हम देख चुके। अब देखें उक्त शक्तियां पूर्णचेतन सृष्टिमें किस प्रकार स्वभावतः कार्य करती हैं।

इसे देखने के लिए अपने बालकों के कार्यों का सावधानी से अवलोकन करें। छोटे बालकों में विधायक शक्ति तो स्पष्ट ही दिखाई देती है। वह कुछ न कुछ कार्य करने के लिए लगातार चेष्टा करता ही रहता है। उनमें यह इच्छा तो बिलकुलही स्वाभाविक रहती है कि हम सबसे आगे रहें, सब लोग हमारी तारीफ करें। उनकी सदैव यही इच्छा रहती है कि हम आगे जावें, जहां पर हैं वहीं सडते हुए पडे न रहें। इसीसे बालक सदैव आगे की ओर खिसकने की चेष्टा करता रहता है। उसकी कृतिसे हम देख सकते हैं कि वह यही चाहता है कि बुराई नष्ट हो, उसका अपने साथ कदापि संबंध न होवे।

छोटे बालकोंके इन कार्यों के अवलोकन से विदित होगा कि उनमें मनुष्य के समान उक्त तीनों शक्तियां विद्यमान हैं। जब मनुष्य बडा होता है और गुलामी की परिस्थिति की आदत पडजानेसे परतंत्रसे बर्ताव करता है यह बात भिन्न है। परन्तु योग्य स्वतंत्रता रहने पर उक्त शक्तियां मनुष्य में निःसंदेह कार्य करती हुई दिखाई देंगीं।

इन स्वाभाविक शक्तियों की वृद्धि करना, उन शक्तियों को योग्य मार्ग में लगाना, उनसे योग्य काम करा लेना आदि बातें मनुष्य के लिए संभव हैं, क्यों कि मनुष्य विद्यमान परिस्थितिमें बदल कर सकता है। यह बात स्थिरचर सृष्टि में अन्य कोई भी नहीं कर सकता। इसीसे उपरोक्त मंत्र के उपदेश की सत्यता हमें मनुष्यमें ही देखनी चाहिए।

मनुष्य में ये शक्तियां स्वभावसे हैं। उनकी उचित वृद्धिसे मनुष्य अपने समान लोगों के आगे बढ कर अपने ही प्रयत्न से श्रेष्ठता प्राप्त कर सकता है। इसी से प्रत्येक मनुष्य को इस मंत्रका मनन अत्यंत आवश्यक है। हमें निश्चय है मनुष्य जितना इस मंत्र पर अधिक विचार करेगा उतना ही स्पष्ट अपनी उन्नति का मार्ग उसे दिखाई देगा।

उत्पादक शक्ति।

मनुष्य दो प्रकारके कार्य करता है। उसके कुछ प्रयत्न उत्पादक तथा कुछ अनुत्पादक होते हैं। कुछ उपयोग का पदार्थ निर्माण करना उत्पादक कार्य कहलाता है। बढई लकडी से मेज तैयार करता है

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यह उत्पादक कार्य है। जिससे मनुष्य की, कुलकी, जातिकी वा राष्ट्र की सांपत्तिक उन्नति हो सकती है उसीको उत्पादक कर्म कहते है।

हिन्दुस्थान के लोग ग्रंथ पठन करते हैं, न्याय-शास्त्र सीखकर तर्कवितर्क करते हैं। पर इनसे धन-वृद्धि, सुख वृद्धि नहीं होती इससे इन्हे उत्पादक कार्य नहीं कह सकते। मंत्र यह नहीं कहता कि बहुतों को उत्पादक कार्योंमें जन्म के जन्म व्यतीत करना चाहिए। वह इतना ही सुझाता है अपनी उत्पादक अर्थात् निर्माण करनेकी शक्ति बढाओ।

मनुष्य में यह शक्ति है। उसे उस शक्तिको विशेष शिक्षासे विकसित करना होगा।

" सृज् " उत्पन्न करना- धातुसे इस मंत्रका सृकत्य शब्द बना है,अतः इसका विशेष अर्थ 'उत्पादक ' है। इस में कुछ नवीन उत्पन्न करनेका, नवीन बनानेका भाव है। इस शब्द से मनुष्य की उत्पादक शक्ति दिखलाई गई।

शिक्षासे यह शक्ति विकसित होनी चाहिए। वर्तमान शिक्षा से मनुष्य की उत्पादक शक्ति विकसित नहीं होती, उसकी सब मसाला तैयार मिलनेपर काम पूरा करनेकी शक्ति भर बढती है। अतः इस शिक्षा से राष्ट्र का घात हो रहा है।

शिक्षा ऐसी जिसके प्राप्त करने से यह लगे कि मैं कुछ कर दिखाऊं, मैं कुछ न कुछ करके दिखला दूंगा। ऐसी ही शिक्षा से व्यक्ति और राष्ट्र दोनोंकी वृद्धि हो सकती है।

अपने राष्ट्र की प्रतिष्ठा संसार के प्रमुख राष्ट्रों में बढाने के लिए किसी एक विषय का अभ्यास कर उसमें नए खोज कर, उसका शास्त्रीय ज्ञान विशेष रीतिसे प्राप्त करना चाहिए। परमेश्वरने ऐसे अनेक विषयों का निर्माण किया है कि उसके एक विषयके एक भाग के ज्ञान से भी राष्ट्रीय उन्नति हो सकती है और वह ज्ञान पूर्ण रीतिसे प्राप्त करने के लिए एक पूरा जन्म काफी न होगा।

ऐसे विषयों में से अपनी रुचि का कोई भी एक विषय लेकर सारे संसार को चकित कर सकते हैं। इतना उसका व्याप बढाने की कोशिश करना विधायक या उत्पादक शक्ति का दर्शक है।

यह विशेष कार्य कर दिखाने की शक्ति आज संसार के अनेक राष्ट्रोंमें से अकेले जर्मनीने ही अधिक संपादित की है। महायुद्ध में हारजाने पर भी उस अकेले राष्ट्र ने विविध शास्त्रों में जितनी तरक्की की है, उतनी अन्य किसी राष्ट्र को अब करते न बनी। विधायक कार्य करने की शक्ति ऐसी होनी चाहिए।

अग्रसरत्व।

इसके बाद का मंत्र का दूसरा उपदेश अग्रसरत्व है। अर्थात् आगे बढकर स्वतः कार्य करनेकी और दूसरों को काम करने को लगाने की शक्ति है। जबतक मनुष्य व्यक्तिशः काम करते रहेगा, तब तक उसमें अग्रसर हो काम करने की बुद्धि ही उत्पन्न न होगी। अर्थात् अग्रसरत्व का गुण प्राप्त करने के लिए संघशः कार्य करने की परिस्थिति बढानी चाहिए। संघसे जब कोई कार्य कराना होता है तब इस गुण का उपयोग होता है।

अपनी खुद की विधायक शक्ति बढाने की सूचना पहले ही की गई है। वह शक्ति बढ जानेपर विधायक या उत्पादक शक्तिका अधिक से अधिक उपयोग कैसे ले सकें? इसका विचार करें तो संघ बनाकर कार्य कर दिखानेकी आवश्यकता प्रतीत होगी और इसी समय इस गुण की महत्ता विदित होगी।

एक राष्ट्र में व्यक्तिशः उत्पादक शक्ति की वृद्धि हुई हो और दूसरे में संघशः उत्पादक शक्ति की वृद्धि हुई हो, तो पहला राष्ट्र दूसरे को मारेगा। क्यों कि व्यक्तिगत शक्ति की अपेक्षा संघशक्ति ही सदैव बलवती होती है।

सांघिक कार्य का विचार करने से विदित होगा कि जो राष्ट्रीय स्वतंत्रता का इच्छुक होता है वही नेता बनकर कार्य का बोझ सम्हालने के लिए योग्य होता है। ऐसा कार्य करते समय सुस्ती और अव्यवस्था का त्याग करना होगा। अपने कार्य में सहायता करनेवाले जो मित्र होंगे, उनको अपने साथ ले जाना आवश्यक है। साधारण लोग अज्ञ होते हैं। जब तक कोई साहस करके आगे कदम

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

नहीं रखता, तब तक आगे जाने की उनकी हिम्मत नहीं होती। यद्यपि जनता अज्ञ है, तब भी वह उत्तम अनुयायी है। कडी शिस्त का, तेजस्वी स्वाभिमानका, प्रेमल आत्मविश्वास का, निःसीम स्वार्थत्याग का आदर्श जिस समय उनके सन्मुख उपस्थित होता है उस समय जनता अपना सर्वस्व उस आदर्श के लिए अर्पण करने को तैयार होती है। कायर आदर्शों से जनता अनुयायी बनाई नहीं जा सकती। जो साहस से कार्य करने को आगे बढता है वही अग्रगामी होता है।

विरोध का प्रतिकार।

व्यक्ति या राष्ट्र के मार्ग में जो रुकावट होती है वही विरोध है। ऐसे विरोध का प्रतिकार मनुष्य को करना ही चाहिए। यह तीसरा वैदिक आदेश है। उसके लिए आवश्यक जो ज्ञानादि साधन वे भी परमेश्वरने मनुष्य को जन्मतः दीए हैं। विरोध के प्रतिकार बिना उन्नति हो नहीं सकती। विरोध अनेक हैं पर अनीति का विरोध सब में बडा है। इसीसे उसे अत्यंत आवश्यक है कि वह अनीति के आचार को रोक दे। जो बात व्यक्ति की है वही राष्ट्र की है। राष्ट्रों को भी आवश्यक है कि अपनी शक्ति केवल पाशवी स्वार्थ साधन में व्यर्थ व्यय न करें; किन्तु उसका उपयोग राष्ट्र की नीति बढाने में संसार के अन्याय के कामों को रोकने के लिए क्रिया जावे।

विरोध सदैव दूसरों से ही नहीं होता। अपने अज्ञान या अनीति से भी अपनी प्रगति में विरोध या रुकावटें उत्पन्न हो जाती हैं।

प्रतिबंध अपने से होवे या दूसरों से उसे दूर कर अपनी उन्नति का मार्ग खुला कर देना चाहिए।

इस प्रकार मंत्र के पूर्वार्ध में बतलाए हुए तीन नियम किस प्रकार बर्ताव किए जावें सो तो अपन देख चुके, अब उत्तरार्ध के उपदेशों को देखें।

आगे होना।

उत्तरार्ध में बतलाए हुए मार्ग का आक्रमण करने का अधिकार आने के पूर्व पूर्वार्ध का उपदेश आचरण में उतरना चाहिए। चौथे चरण ने यह बतलाया है कि "अपने समान स्थिति में जो लोग हैं उनके आगे बढो।" इसका उचित आचरण होने के लिए अपने में उत्पादक शक्ति, अग्रसर होने की शक्ति और प्रतिबंधों को दूर करने की शक्ति विकसित होनी चाहिए। अन्यथा वह अपने समान लोगों के आगे न जा सकेगा।

आगे होना कोई आसान बात नहीं है। उसके लिए मिहनत करनी पडती है। अपनी कक्षा के विद्यार्थियों के आगे जाने के लिए उनसे अधिक मिहनत करनी पडती है। ऐसी मिहनत किए बिना उनके आगे जाना असंभव है। मनुष्य को अपने समान मनुष्यों से अधिक तरक्की करना और राष्ट्र को भी अपने समान राष्ट्रों से अधिक अभ्युदय कर लेना, ये बातें केवल इच्छा से नहीं होतीं। उसके लिए भरसक प्रयत्न होना चाहिए। कक्षामें पचास विद्यार्थी हों तो पहला नंबर आने के लिए घर में मनःपूर्वक मिहनत करनी पडती है। इसका अनुभव तो सभी को है।

मंत्र में कहा है कि (समं अतिक्राम) अपने समान लोगों के आगे जाओ। अपने से कम योग्यता वालों के आगे जाना नहीं है किन्तु बुद्धि और कर्तृत्वशक्ति से जो अपने समान हैं उनके आगे जाना है।

आगे जानेपर जो अपने समान होंगे उनके भी आगे जाना होगा। इस प्रकार अखंड उन्नति होती रहेगी। आज यदि अपने अपने समान लोगों के आगे चले भी गए तो अपना कार्य समाप्त नहीं होता किंतु आगे जानेपर जो अपने बराबरी के होंगे उनके भी आगे जाना है। दूसरों के आगे अपन सदैव रहें। इसी इच्छा से प्रयत्न करना होगा।

किसी भी बात में यही नियम उपयोगी है। वाचक इसे स्मरण रखें और इस नियम की व्यापकता पर ध्यान दें।

श्रेयःप्राप्ति।

इस प्रकार जब अपनी उन्नति होने लगेगी तब अपना ध्यान 'श्रेय' प्राप्त करने की ओर लगाना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

होगा। श्रेय ही सच्चा कल्याण है। मनुष्य को यदि कुछ समझता नहीं है तो वह यही है। वह यहीं नहीं समझता कि सच्चा कल्याण किसमें है।

'प्रेय' और 'श्रेय' ऐसे यदि दो मार्ग आगे आए तो मनुष्य प्रेय के पीछे पड जाता है। ऊपर से प्रिय लगनेवाला परन्तु परिणाम में घात करने वाला 'प्रेय' है। प्रथम कटु लगनेवाला पर अंतमें सच्चा कल्याण करनेवाला 'श्रेय' है। मनुष्य इन दो मार्गोंमें से प्रेय पसंद करता है और श्रेय मार्ग छोड देता है। इसीसे वेदमंत्र में कहा है कि सब प्रयत्न करके अपना श्रेय प्राप्त करो। वर्ना प्रेय का स्वीकार करेगा और सब प्रयत्न मिट्टी में मिल जावेगा।

गीतामें दैवी और आसुरी संपत्ति बतलाई गई है। श्रेय का स्वीकार करना दैवी संपत्तिका और प्रेय का स्वीकार आसुरी संपत्ति का लक्षण है। छुटपन में विद्याध्ययन करना, व्यायाम से शरीर सुदृढ करना, ब्रह्मचर्य का पालन करके अपनी आयु की नीव दृढ करना श्रेय मार्ग का और दैवी संपत्ति का लक्षण है। परंतु जो इसके विपरीत प्रेयमार्ग से जाते हैं वे अकाल में खुद को कुमार्ग में ले जाते हैं, उनका शरीर नष्ट हो जाता है और उनसे कोई भी पुरुषार्थ होना असंभव हो जाता है। ऐसे अनेकों उदाहरण वाचक स्वयं जानते होंगे। यदि उन्हीं को वाचक ध्यानपूर्वक देखें तो श्रेय और प्रेय मार्ग का भेद वे समझ लेंगे।

इस एक मंत्र ने बतलाया कि मनुष्य किस प्रकार अपनी उन्नति कर लेवे। वाचक इसका जितना अधिक विचार करें उतना ही उन्नति का मार्ग उन्हे स्पष्ट दिखाई देगा और उस मार्ग से जानेपर उन्हे अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति निःसंदेह होगी।

योग का चमत्कार।

योग की परंपरा।

योग की परंपरा बहुत प्राचीन है। वैदिक ऋषियोंतक यह परंपरा पहुंचती है। वेद में यही दिखाई देता है कि भगवान् वसिष्ठ ऋषि ज्ञानयोग के प्रतिष्ठाता थे। इसके जानने का कोई उपाय नहीं है कि वसिष्ठजी के पास यह विद्या कहां से आई। तथापि उनके वैदिक सूक्तों में ज्ञानयोग की गुप्त विद्या ही अधिकांश में प्रकट हुई है। तदनंतर वैदिक ऋषियों में से वह मंडल जिसका विशेष संबंध योगविद्यासे है, अथर्वांगिरस ऋषियों का है। इनके मंत्रों में प्राणायाम, ध्यान, धारणा, समाधि, आत्मदर्शन आदि विषय विस्तृत रूप से आए हुए हैं। हस्तस्पर्शसे अथवा मानसिक शक्ति की प्रेरणा से रोग दूर करना तथा इसके सदृश अन्य बहुतसे विषय उनके सूक्तों में दिखाई देते हैं। सप्तर्षि के दशम मण्डल के मंत्रों में भी यह विद्या दिखाई देती है। वैदिक सूक्तों के ऋषियों में बहुत ऋषि ऐसे हैं कि जिनके सूक्तोंमें योगविद्या का कुछ न कुछ वर्णन अवश्य है। तब भी उक्त तीन मण्डल अर्थात् वसिष्ठमण्डल, अथर्वांगिरस मंडल और सप्तर्षि मण्डल, मुख्य हैं।

सब योग-ग्रंथों में, श्रीशंकरजी की प्रसिद्धि इस लिए है कि वे निवृत्ति की ओर झुकनेवाले दोनों योगों के अर्थात् हठ और राज योगों के प्रवर्तक हैं। सब मानते हैं कि ये योगों के आद्यगुरु हैं। इसके बाद श्रीकृष्णजी सर्व-संमति से योगेश्वर पदवी के योग्य हुए। महाभारत में हमें यह बात दिखाई देती है। महाभारत कालमें एक भी माननीय पुरुष न था जो भगवान् श्रीकृष्णजी के योग सामर्थ्य को न जानता था। स्वपक्ष और परपक्ष के श्रेष्ठ पुरुष उनके योग बल से पूर्ण परिचित थे। यहांतक कि उनके शत्रु भी उन्हे 'जादुगर' कहकर अपनी निंदा से यह दिखलाते थे कि उनके पास कोई अद्भुत सामर्थ्य है। भगवान् श्रीकृष्णजी के पश्चात् 'योगेश्वर' की अति आदर पदवी का अधिकारी कोई न हुआ। वे राजनैतिक, सामाजिक धार्मिक आदि उच्च

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यावत् बातोंमें दखल रखते थे यही नहीं बल्कि इन बातों के जटिल प्रश्नों को हल करने की सामर्थ्य उनमें थी। इसीसे उन्हे 'पूर्ण पुरुष' यह अत्यंत आदर की उपाधि प्राप्त हुई थी। महाभारत को पढनेवाले इस बातको खूब जानते ही हैं।

आज भी योग-साधन करनेवाला पुरुष यदि श्रीकृष्णचन्द्रजी को 'आदर्श पुरुष' के नाते अपने सन्मुख रखे तो गैर-वाजिब न होगा, यही नहीं बल्कि प्रत्येक को चाहिए कि उन्हे आदर्श पुरुष समझे और उनके सदृश होने का पूर्ण प्रयत्न करे। यह किसीको भी न भूलना चाहिए कि यदि किसी के जीवन चरित्र में योग दिखाई देता है तो वह श्रीकृष्णजी के ही जीवन चरित्र में है।

इसके पश्चात् योगदर्शनकार पतंजलि महामुनि योगाचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुए। उनका योगदर्शन इतना उत्कृष्ट एवं सर्वांग-परिपूर्ण है कि वह योगाभ्यासी लोगोंको निःसंदेह सदैव मार्गदर्शक होगा।

योगग्रंथोंमें जो परंपरा सर्वमान्य हुई है वह इस प्रकार है- १ आदिनाथ अर्थात् श्री शिवाजी

२ मत्स्येन्द्रनाथ	३ शाबर
४ आनन्दभैरव	५ चौरंगी
६ मीननाथ	७ गोरखनाथ
८ विरूपाक्ष	९ बिलेशय
१० मंथान	११ भैरव
१२ सिद्धि	१३ बुद्ध
१४ कंथडि	१५ कोरंटक
१६ सुरानन्द	१७ सिद्धपाद
१८ चर्पटि	१९ कानेरी
२० पूज्यपाद	२१ नित्यनाथ
२२ निरंजन	२३ कपाली
२४ बिंदुनाथ	२५ काकचण्डीश्वर

इत्यादि अनेक पूर्वकालीन महायोगी हो गए। वे सब योग में प्रगति की इच्छा करनेवालों को सदैव वंदनीय ही हैं। क्यों कि इन लोकोत्तर पुरुषोंने आजन्म तपस्या की, योगमार्ग का आक्रमण किया, अद्भुत सामर्थ्य प्राप्त की और योगमार्ग जीवित रखा।

योग में अनंत विभाग हैं। उनमें से एक एक विभाग में भी प्राविण्य प्राप्त करना कठिन है। ऊपर लिखे हुए सिद्ध पुरुषों को परिस्थिति जैसी अनुकूल थी वैसी प्राप्त होना अब तो प्रायः असंभव ही है। तथापि आजभी यदि कोई मनुष्य इस मार्ग में पदार्पण करनेवाला हो तो उसे योग्य मार्ग बतलानेवाले योगी आज भी जगह, जगह मिलेंगे। हिमालय, गंगाका किनारा, नर्मदा-तट, गिरनार पर्वत आदि स्थान ऐसे हैं जहां परंपरामें तैयार हुए योगिजन आज भी दर्शन देते हैं। और यदि उनकी कृपा हो जाय तो वह अनुभव जिसके लिए वर्षोंतक प्रयत्न करना पडता, थोडे ही परिश्रम से प्राप्त हो सकता है। सारांश यही कि इस योग मार्ग की परंपरा बिलकुल आदि वैदिक कालसे आज दिनतक अ-बाधित चली आई है। इतनी भारी राज्य क्रान्तिके कारण भी उस परंपरामें जरा भी खण्ड न पडा और न विघ्न ही हुआ। आर्यों के वैदिक धर्म में यदि जीवित रस मिलने की कहीं संभावना है तो वह इसी योगसाधनमें ही मिलेगा। अन्य सब वैदिक मार्ग परंपरा की दृष्टि से लुप्त हो चुके हैं। परन्तु यह मार्ग आज दिन तक अव्याहत चला है। क्या यह बात हिन्दूमात्र को आल्हादकारी नहीं है।

मुगलोंका साम्राज्य बढा। उन्होंने अपनी तलवार के बल पर जो मन में आए सो और जो कर सके सो भी सब अत्याचार किए। परन्तु दण्डीस्वामीका बल भी बाँका करने का साहस सिकंदर तक को न हुआ। अंग्रेजी साम्राज्य में नवीन नास्तिकता की लहर उठी। प्रायः सब धर्ममार्गोंपर उसका असर हुआ। परन्तु, तब भी योगाश्रम आजदिनतक यथापूर्व बने हुए हैं और वे अबाधित हैं। हमारे धर्म के जीवितपन का यह बडा भारी चिन्ह है। सब लोग चाहे आज योग सीखें या न सीखें, परन्तु यदि आज योग मार्गसे जानेकी किसी की इच्छा हुई तो अपने धर्म के आदि कालमें जिस परंपरा का आरंभ हुआ, वह परंपरा आज भी देखने मिलेगी।

CC-0. In Public Domain, Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ॐ

अथर्ववेद

स्वाध्याय।

(अथर्ववेदका सुबोध भाष्य।)

षष्ठं काण्डम्।

लेखक और प्रकाशक।

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

प्रथमवार

संवत् १९८६, शक १८५१, सन १९२९

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अऋण होना ।

अनृणा अस्मिन्ननृणा परस्मिन्तृतीये लोके अनृणाः स्याम ।
ये देवयानाः पितृयाणाश्च लोकाः सर्वान्पथो अनृणा आक्षियेम ॥

अथर्व० ६।११७।३

" हम इस लोकमें अऋण, परलोकमें अऋण और तीसरे लोक में भी अऋण होवें । जो देवयान और पितृयाण लोक हैं, उनके सब मार्गोंमें हम अऋण होकर चलेंगे ।"

मुद्रक तथा प्रकाशक—श्रीपाद दामोदर सातवळेकर, स्वाध्यायमंडल,
भारतमुद्रणालय; औंध (जि. सातारा).

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ॐ

अथर्ववेदका स्वाध्याय ।

[अथर्ववेदका सुबोधभाष्य ।]

षष्ठ काण्ड ।

इस षष्ठ काण्डके प्रथम सूक्तमें 'सविता' देवताका वर्णन है । सविता देवता सबकी उत्पत्ति करनेवाली, सबको प्रकाश देनेवाली और उत्तम चेतना देनेवाली है । संध्याके गुरुमन्त्रमें इसी का वर्णन है । इससे पाठक जान सकते हैं कि यह मंगलवाचक पहिला सूक्त है और इसका मनन करनेसे सबका शुभ मंगल हो सकता है ।

इस षष्ठ काण्डमें प्रायः तीन मंत्रवाले सूक्त हैं । इस कारण इस काण्डकी 'प्रकृति तीन मंत्रवाले सूक्तोंकी है' ऐसा कहते हैं; इससे भिन्न मंत्रसंख्यावाले सूक्त इस काण्डमें विकृति है । परंतु यहां स्मरण रखना चाहिये कि, अधिक मंत्रवाले कई सूक्त भी पुनरुक्त मंत्रभागोंको अलग करनेसे तीन मंत्रवाले सूक्त बनाये जा सकते हैं । तथापि कुछ सूक्त ऐसे रहेंगे कि जो निश्चयसे इस काण्डमें विकृति सूक्तही कहे जायेंगे ।

इस काण्डकी सूक्त व्यवस्था इस प्रकार है—

इस काण्डमें	१२२ सूक्त	३ मन्त्रवाले हैं,	इनकी मंत्रसंख्या	३६६ है ।
"	१२ "	४ "	"	४८ "
"	८ "	५ "	"	४० "
"	कुल १४२ सूक्तसंख्या		कुलमंत्रसंख्या	४५४

इस प्रकार इस काण्डके १४२ सूक्तोंमें ४५४ मंत्र हैं । इस काण्ड में १२ अनुवाक हैं, बहुधा प्रत्येक अनुवाकमें दस दस सूक्त हैं; तथापि तृतीय, सप्तम, एकादश और द्वादश इन चार अनुवाकोंमें प्रत्येक में ग्यारह सूक्त हैं और त्रयोदशवे अनुवाकमें अठारह सूक्त हैं ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अऋण होना ।

अनृणा अस्मिन्ननृणा परस्मिन्तृतीये लोके अनृणाः स्याम ।
ये देवयानाः पितृयाणाश्च लोकाः सर्वान्पथो अनृणा आक्षियेम ॥

अथर्व० ६।११७।३

" हम इस लोकमें अऋण, परलोकमें अऋण और तीसरे लोक में भी अऋण होवें। जो देवयान और पितृयाण लोक हैं, उनके सब मार्गोंमें हम अऋण होकर चलेंगे।"

मुद्रक तथा प्रकाशक—श्रीपाद दामोदर सातवळेकर, स्वाध्यायमंडल,
भारतमुद्रणालय; औंध (जि. सातारा).

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अथर्ववेदका स्वाध्याय ।

[अथर्ववेदका सुबोधभाष्य ।]

षष्ठ काण्ड ।

इस षष्ठ काण्डके प्रथम सूक्तमें 'सविता' देवताका वर्णन है । सविता देवता सबकी उत्पत्ति करनेवाली, सबको प्रकाश देनेवाली और उत्तम चेतना देनेवाली है । संध्याके गुरुमन्त्रमें इसी का वर्णन है । इससे पाठक जान सकते हैं कि यह मंगलवाचक पहिला सूक्त है और इसका मनन करनेसे सबका शुभ मंगल हो सकता है ।

इस षष्ठ काण्डमें प्रायः तीन मंत्रवाले सूक्त हैं । इस कारण इस काण्डकी 'प्रकृति तीन मंत्रवाले सूक्तोंकी है' ऐसा कहते हैं; इससे भिन्न मंत्रसंख्यावाले सूक्त इस काण्डमें विकृति है । परंतु यहां स्मरण रखना चाहिये कि, अधिक मंत्रवाले कई सूक्त भी पुनरुक्त मंत्रभागोंको अलग करनेसे तीन मंत्रवाले सूक्त बनाये जा सकते हैं । तथापि कुछ सूक्त ऐसे रहेंगे कि जो निश्चयसे इस काण्डमें विकृति सूक्तही कहे जायेंगे ।

इस काण्डकी सूक्त व्यवस्था इस प्रकार है—

इस काण्डमें	१२२ सूक्त	३ मन्त्रवाले हैं,	इनकी मंत्रसंख्या	३६६ है ।
"	१२ "	४ "	"	४८ "
"	८ "	५ "	"	४० "
"	कुल १४२ सूक्तसंख्या		कुलमंत्रसंख्या	४५४

इस प्रकार इस काण्डके १४२ सूक्तोंमें ४५४ मंत्र हैं । इस काण्ड में १३ अनुवाक हैं, बहुधा प्रत्येक अनुवाकमें दस दस सूक्त हैं; तथापि तृतीय, सप्तम, एकादश और द्वादश इन चार अनुवाकोंमें प्रत्येक में ग्यारह सूक्त हैं और त्रयोदशवे अनुवाकमें अठारह सूक्त हैं ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

काण्डोंकी मंत्रसंख्या क्रम पूर्वक बढ रही है। प्रथम काण्डमें १५३, द्वितीयमें २०७, तृतीयमें २३०, चतुर्थमें ३२४, पञ्चममें ३७६ और इस षष्ठ काण्डमें ४५४ मंत्र हैं। यह संख्या प्रथम काण्डकी मंत्रसंख्यासे तीन गुणा, तृतीयसे दुगणी और पञ्चमसे देवढी है। सूक्त संख्या भी बहुत है। परंतु सूक्त प्रायः तीन मंत्रवाले होनेके कारण बडी संख्या का महत्व विशेष नहीं है, तथापि कुल अभ्यास इस काण्डमें पहिलेकी अपेक्षा अधिकही होना है। प्रथम पाठ छोटा देकर पश्चात् बडे पाठ देनेके समान ही यह व्यवस्था यहां दिखाई देती है—

सूक्तोंके ऋषि-देवता-छन्द।

सूक्त	मंत्रसंख्या	ऋषि	देवता	छंद
१ प्रथमोऽनुवाकः॥१३त्रयोदशः प्रपाठकः।				
१	३	अथर्वा	सविता	उष्णिक्, त्रिपदा पिपीलिकमध्या साम्नी जगती।२,३पिपीलिकमध्या पुरउष्णिक्।
२	३	,,	वनस्पतिः, सोमः,	उष्णिग्,१-३परोष्णिक्।
३	३	,,(स्वस्त्ययनकामः)	नानादेवताः	जगती।१ पथ्याबृहती।
४	३	,,	,,	१ पथ्याबृहती, २संस्तारपांक्तिः, ३ त्रिपदा विराड्गर्भा गायत्री।
५	३	,,	इन्द्राग्नी	अनुष्टुप्,२ भुरिक्।
६	३	,,	ब्रह्मणस्पतिः;सोमः	,,
७	३	,,	सोमः,३विश्वेदेवाः	गायत्री,१ निचृत।
८	३	जमदग्निः	कामात्मदेवता	पथ्यापंक्तिः
९	३	,,	,,	अनुष्टुभ्
१०	३	शन्तातिः	नानादेवताः (अग्निः,वायुः,सूर्यः)	१ साम्नी त्रिष्टुप्, २ प्राजापत्या बृहती,३साम्नीबृहती.
२ द्वितीयोऽनुवाकः।				
११	३	प्रजापतिः	रेतः, मंत्रोक्ताः	अनुष्टुप्
१२	३	गरुत्मान्	तक्षकः	,,
१३	३	अथर्वा(स्वस्त्ययनकामः)	मृत्युः	,,
१४	३	बभ्रुपिंगलः	बलासः	,,
१५	३	उद्दालकः	वनस्पतिः	,,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

१६	४	शौनकः	चन्द्रमाः(मन्त्रोक्तदेवताः)	अनुष्टुप् १ निचृत् त्रिपदा गायत्री, ३ बृहतीगर्भा ककुम्मत्यनुष्टुप्, ४ त्रिपदाप्रतिष्ठा.
१७	४	अथर्वा	गर्भदृंहणं	,,
१८	३	,,	ईर्ष्याविनाशनं	,,
१९	३	शन्तातिः	चन्द्रमाः(नानादेवताः)	गायत्री,अनुष्टुप्
२०	३	भृग्वंगिराः	यक्ष्मनाशनं	१अतिजगती, २ककुम्मती प्रस्तारपंक्तिः,३सतःपंक्तिः

३ तृतीयोऽनुवाकः

२१	३	शन्तातिः	चन्द्रमाः	अनुष्टुप्
२२	३	,,	आदित्यरश्मिः,मरुतः	त्रिष्टुप्, चतुष्पदा भुरिग्जगती.
२३	३	,,	आपः	अनुष्टुप्,२ त्रिपदागायत्री ३ परोष्णिक्
२४	३	,,	,,	,,
२५	३	शुनःशेपः	मंत्रोक्तदेवतं	,,
२६	३	ब्रह्मा	पाप्मा	,,
२७	३	भृगुः	यमः।निर्ऋतिः	जगती,२ त्रिष्टुप्
२८	३	,,	,, ,,	त्रिष्टुप्,२ अनुष्टुप्, ३ जगती,
२९	३	,,	,, ,,	बृहती,१-२ विराणाम गायत्री, ३ त्र्यवसाना सप्तपदा विराडष्टी
३०	३	उपरिबभ्रवः	शमी	जगती,२ त्रिष्टुप्, ३ चतुष्पदा ककुम्मत्यनुष्टुप्
३१	३	,,	गौः	गायत्री.

४ चतुर्थोऽनुवाकः।

३२	३	१-२चातनः, ३अथर्वा	अग्निः	त्रिष्टुप्,२ प्रस्तारपंक्तिः।
३३	३	जाटिकायनः	इन्द्रः	गायत्री,२ अनुष्टुभ्।
३४	५	चातनः	अग्निः	,,
३५	३	कौशिकः	विश्वानरः	,,
३६	३	अथर्वा (स्वस्त्ययनकामः)	अग्निः	,,
३७	३	,, ,,	चन्द्रमाः	अनुष्टुभ्,
३८	४	,, (वर्चस्कामः)	बृहस्पतिः,त्विषिः	त्रिष्टुप्
३९	३	,, ,,	,,	१ जगती २ त्रिष्टुप्, ३ अनुष्टुभ्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

४०	३	,,(१-२अभयकामः, ३ स्वस्त्ययनकामः)	मन्त्रोक्तदेवताः	जगती ३ ऐन्द्रीअनुष्टुप्
४१	३	ब्रह्मा	चन्द्रमाः, बहुदैवत्यम्.	अनुष्टुप्, १ भुरिक्, २ त्रिष्टुप्

५ पञ्चमोऽनुवाकः।

४२	३	भृग्वंगिराः (परस्परं चित्तैकीकरणकामः।)	मन्युः	अनुष्टुप् १—२ भुरिक्
४३	३	,, ,,	मन्युशमनं	,,
४४	३	विश्वामित्रः	वनस्पतिः (मन्त्रोक्तदेवता)	,, ३ त्रिपदा महाबृहती
४५	३	अंगिराः प्राचेतसो यमश्च.	दुष्वप्ननाशनम्	१ पथ्यापंक्तिः, २ भुरिक् त्रिष्टुप्३अनुष्टुप्।
४६	३	,,	स्वप्नं	१ ककुम्मती विष्टारपंक्तिः। २ त्र्यवसाना शक्वरीगर्भा पञ्चपदा जगती, ३अनुष्टुप्
४७	३	,,	अग्निः,२विश्वेदेवाः ३ सुधन्वा	त्रिष्टुप्
४८	३	,,	मन्त्रोक्तदेवताः	अनुष्टुप्
४९	३	गार्ग्य	अग्निः	१अनुष्टुप्२-३जगती(३विराट्)
५०	३	अथर्वा (अभयकामः)	अश्विनौ	१ विराड् जगती, २,३ पथ्यापंक्तिः
५१	३	शन्तातिः	आपः, ३वरुणः	त्रिष्टुप्, १ गायत्री, ३ जगती

६ षष्ठोऽनुवाकः। १४ चतुर्दशः प्रपाठकः।.

५२	३	भागलिः	मन्त्रोक्तदेवताः	अनुष्टुप्
५३	३	बृहच्छुक्रः	नानादेवताः	त्रिष्टुप्, १ जगती
५४	३	ब्रह्मा	अग्नीषोमौ	अनुष्टुप्
५५	३	,,	१ विश्वेदेवाः २-३ रुद्रः	१जगती २ त्रिष्टुप्, ३ जगती.
५६	३	शन्तातिः	१ विश्वेदेवाः २-३ रुद्रः	१ उष्णिग्गर्भा पथ्यापंक्तिः २ अनुष्टुप्, ३ निचृत्
५७	३	,,	रुद्रः	१-२अनुष्टुप्,३पथ्यापंक्तिः
५८	३	अथर्वा (यशस्कामः)	बृहस्पतिः, मंत्रोक्तदेवता	१ जगती, २ प्रस्तारपंक्तिः; ३ अनुष्टुप्
५९	३	,,	रुद्रः, ,,	अनुष्टुप्
६०	३	,,	अर्यमा	,,
६१	३	,,	रुद्रः	त्रिष्टुप्, २-३ भुरिक्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

७ सप्तमोऽनुवाकः ।

६२	३	अथर्वा.	रुद्रः। मन्त्रोक्तदेवताः	त्रिष्टुप्
६३	४	द्रुह्वणः(आयुर्वर्चोबलकामः)	निर्ऋतिः, यमः, ४ अग्निः	जगती, १अतिजगतीगर्भा ४ अनुष्टुप्
६४	३	अथर्वा	सांमनस्यं । विश्वेदेवाः	अनुष्टुप्. २ त्रिष्टुप्
६५	३	,,	चन्द्रः, इन्द्रः,पराशरः	,, १ पथ्यापंक्तिः
६६	३	,,	,, ,,	,, १ त्रिष्टुप्
६७	३	,,	,, ,,	,,
६८	३	,,	मन्त्रोक्तदेवताः	१ पुरोविराडतिशक्करीगर्भा चतुष्पदा जगती, २ अनुष्टुप्, ३ अतिजगतीगर्भा त्रिष्टुप्.
६९	३	,,(वर्चस्कामो यशस्कामश्च)	बृहस्पतिः,अश्विनौ	अनुष्टुप्
७०	३	कांकायनः	अघ्न्या.	जगती
७१	३	ब्रह्मा	अग्निः ३ विश्वेदेवाः	,, ३ त्रिष्टुप्
७२	३	अथर्वांगिराः	शेपोऽर्कः	अनुष्टुप्, १ जगती, ३ भुरिक्

८ अष्टमोऽनुवाकः ।

७३	३	अथर्वा.	सांमनस्यं, नानादेवताः	त्रिष्टुप् १,३ भुरिक्
७४	३	,,	,, त्रिणामा	अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप्
७५	३	कबन्धः (सपत्नक्षयकामः)	इन्द्रः, मन्त्रोक्ताः	,, षट्पदा जगती
७६	४	,,	सांतपनाग्निः	,, ३ ककुम्मती.
७७	३	,,	जातवेदाः,	,,
७८	३	अथर्वा	१,२ चन्द्रमाः,३त्वष्टा.	,,
७९	३	,,	संस्फानः	गायत्री, ३ त्रिपदा प्राजापत्या जगती
८०	३	,,	चन्द्रमाः	अनुष्टुप्, १ भुरिक्, ३ प्रस्तारपंक्तिः
८१	३	,,	आदित्यः,मंत्रोक्ताः	,,
८२	३	भगः(जायाकामः)	इन्द्रः	,,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

९ नवमोऽनुवाकः।

८३	४	अंगिराः	मन्त्रोक्तदेवताः	अनुष्टुप्,४ एकावसाना द्विपदा निचृदार्षी अनुष्टुप्
८४	४	,,	निर्ऋतिः	१ भुरिग्जती,२ त्रिपदा आर्षी बृहती, ३-४ जगती, ४ भुरिक्त्रिष्टुप्।
८५	३	अथर्वा (यक्ष्मनाशनकामः)	वनस्पतिः	अनुष्टुप्.
८६	३	,, (वृषकामः)	एकवृषः	,,
८७	३	,,	ध्रुवः	,,
८८	३	,,	,,	,, ३ त्रिष्टुप्
८९	३	,,	रुद्रः, मन्त्रोक्तदेवताः	,,
९०	३	,,	रुद्रः	१,२ अनुष्टुप् ३ आर्षी भुरिगुष्णिक्
९१	३	भृग्वंगिराः	मन्त्रोक्तदेवताः, यक्ष्मनाशनं	अनुष्टुप्
९२	३	अथर्वा	वाजी	त्रिष्टुप् १ जगती

१० दशमोऽनुवाकः।

९३	३	शन्तातिः	रुद्रः, ३बहुदैवत्यम्	त्रिष्टुप्
९४	३	अथर्वांगिराः	सरस्वती	अनुष्टुप् २विराड् जगती,
९५	३	भृग्वंगिराः	वनस्पतिः, मंत्रोक्ताः	,,
९६	३	,,	,, ३ सोमः	,, ३त्रिपदाविराण्नाम गायत्री
९७	३	अथर्वा	मित्रावरुणौ.	त्रिष्टुप्, २ जगती, भुरिक्.
९८	३	,,	इन्द्रः	,, २ बृहती गर्भाष्टारपंक्तिः
९९	३	,,	,, ३ सोमः सविता च.	अनुष्टुप्, ३भुरिक् बृहती.
१००	३	गरुत्मान्	वनस्पतिः	,,
१०१	३	अथर्वांगिराः	ब्रह्मणस्पतिः	,,
१०२	३	जमदग्निः (अभिसंमनस्कामः)	अश्विनौ	,,

११ एकादशोऽनुवाकः।१५पञ्चदशःप्रपाठकः।

१०३	३	उच्छोचनः	इन्द्राग्नी, बहुदैवत्यं.	अनुष्टुप्
१०४	३	प्रशोचनः	,, ,,	,,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यम और पितर ।

[ले०-श्री. पं. मंगलदेव (तडित्कान्त) जी वेदालंकार (गु. कु. कांगडी.) औंध.]

अब हम यम और पितरोंसे संबन्ध रखनेवाले सूक्तोंपर अर्थात् जिन सूक्तोंका देवता यम अथवा पितर है, उनपर सूक्तके क्रमसे विचार करेंगे। यद्यपि इन सूक्तोंमें आए हुए बहुतसे मंत्रोंपर पहिले विचार किया जा चुका है तथापि यहांपर पूर्वापर प्रकरणके साथ उन पर विचार करनेसे उनका भाव अधिक खुल सकेगा। साथ ही पाठकों के लक्ष्यमें यह बात भी आ सकेगी कि उनके जो पहिले अर्थ दे आए हैं वे कहांतक संगत हैं और उनसे निकाला हुआ परिणाम कहांतक ठीक है। संपूर्ण सूक्तके भाव के साथ यदि तो उन मन्त्रोंकी संगति लग सकती है तो तो उन मंत्रोंका अर्थ ठीक है अन्यथा अवश्यमेव अर्थमें खींचा तानी की गई है यह स्पष्ट हो जायगा। और इसीलिए पाठकोंसेभी निवेदन है कि वेभी यदि किसी मंत्रके अर्थ वा भावसे असहमत हों तो वे प्रथम उस मंत्रके सूक्तके भावके साथ उस मंत्रकी संगति देखें और फिर अर्थ पर विचार करें। संपूर्ण सूक्त के साथ संगतिकरण करते हुए मंत्रका अर्थ करना अधिक पूर्ण व ठीक होगा। यद्यपि सबके सब मंत्रोंके अर्थों की कसौटी के लिए हम यहां साधन उपस्थित नहीं कर सकते तथापि जिन सूक्तों पर यहां विचार करना है उनमें वे प्रायः सभी मंत्र आ जायंगे जो कि प्रकृत विषय में एक बडा भारी महत्त्व पूर्ण भाग ले रहे हैं अर्थात् जिनके आधारपर यम व पितर विषयक परिणाम निकाले गए हैं। पहिले ऋग्वेदके सूक्तोंपर क्रमशः विचार करेंगे। ऋग्वेदमें ५ सूक्त ऐसे हैं जो कि प्रकृत विषय से संबन्ध रखते हैं। पहिले तीन सूक्त अर्थात् १४, १५ और १८ लगातार इसी विषयसे संबन्ध रखने वाले हैं।

१—ऋग्वेद-मं० १०। सू० १४॥

१-१६ यम ऋषिः। देवताः-१-५, १३-१६ यमः। ६ लिङ्गोक्ताः। ७-९ लिङ्गोक्ताः पितरो वा। १०-१२ श्वानौ।

परेयिवान्सं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम्। वैवस्वतं सङ्गमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य॥ ऋ० १०।१४।१॥

अर्थ— (प्रवतः) प्रकृष्ट कर्म करनेवालों को, उत्तम कर्म करने वालोंको तथा निकृष्ट कर्म करनेवालोंको (महीः) भूमि प्रदेशोंको (अनुपरेयिवान्सं) प्राप्त कराते हुए तथा (बहुभ्यः पन्थां अनुपस्पशानं) बहुतों के लिए मार्गको दिखलाते हुए और (जनानां सङ्गमनं) जिसमें मनुष्य जाते हैं ऐसे (वैवस्वतं) विवस्वान् के पुत्र (यमं राजानं) यम राजाकी (हविषा दुवस्य) हविदान पूर्वक पूजा कर। "प्रवतः महीः अनु परेयिवान्सं" इसका अभिप्राय यह है कि सबको उन उनके कर्मानुसार उचित स्थान पर जन्म देता है। जैसे कोई भारत वर्षमें जन्म लेता है तो कोई अन्यत्र। भारतवर्षमें भी जीव स्वकर्मानुसार भिन्न भिन्न प्रान्तमें जन्म लेता है। इस जन्मस्थानकी व्यवस्था यम करता है ऐसा इसका भाव प्रतीत होता है। अथवा इस मंत्र भाग का अर्थ यूं भी किया जा सकता है- (प्रवतः अनु महीः परेयिवान्सं) प्रकृष्ट, उत्कृष्ट तथा निकृष्ट योनिस्थ जीवोंके उद्देश्य से पृथिवी पर आए हुए यमको... इत्यादि। इसका अभिप्राय यह है कि अन्तमें नाना योनिस्थ जीवोंको यमने यम लोकमें ले जाना है अतः वह पृथिवी पर आया हुआ है। और उसका यह कार्य है इसकी पुष्टि आगे 'जनानां संगमनं' यह कर रहा है।

बहुभ्यः पन्थां अनुपस्पशानम्- इसका अभिप्राय यह है कि नाना योनिस्थ जीवोंमेंसे जिस जिसकी आयु संपूर्ण होती जाती है उस उसको वह यमलोकका रस्ता दिखाता जाता है। इस प्रकार इन कर्मों के करनेवाले यम राजाको हवि देकर उसकी पूजा करनी चाहिए यह मंत्रका आशय है।

यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ। यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयु रेना जज्ञानाः पथ्या अनु स्वाः॥ ऋ० १०।१४।२॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अर्थ— (यमः नः गातुं प्रथमः विवेद) यमने हमारा मार्ग सबसे पहिले जाना। (एषा गव्यूतिः न अपभर्तवै) यह मार्ग अपहरणके लिए नहीं है अर्थात् इस मार्गसे छुटकारा पाया नहीं जा सकता। वह मार्ग कौनसा है यह मंत्र के उत्तरार्धसे दर्शाते हैं-(यत्र नः पूर्वे पितरः परेयुः) जहां पर हमारे पूर्वज पितर गए हुए हैं। और (एना) इस मार्गसे (जज्ञानाः) जात प्राणीमात्र (स्वाः पथ्याः अनु) अपने अपने पथ्योंके अनुसार जाते हैं।

इस मंत्रको प्रथम मंत्रोक्त 'जनानां सङ्गमनं यमं राजानं' का स्पष्टीकरण कहा जा सकता है। अन्त में यमलोकमें सब प्राणियों के जानेके लिए जो मार्ग है उसका यहां निर्देश है। यम हमारा यमलोकमें जानेका मार्ग सबसे पहिले जानता है क्यों कि वह उस मार्गका अधिष्ठाता है। इस मार्ग से छुटकारा पाना कठिन है क्यों कि जो उत्पन्न हुआ है वह अवश्य मरेगाही। इसी भावको, और भी अधिक स्पष्ट मंत्र के उत्तरार्ध से करते हुए कहा गया है कि उस मार्ग में से हमारे पूर्वज गए और जात प्राणीमात्र भी अपने अपने कर्मानुसार जायगा।

इस प्रकार इस मंत्र में यमलोकके जानेके मार्गका वर्णन है। उस मार्गसे सबको जाना होगा। कोई भी इससे बच नहीं सकता। अतएव यमको पूर्व मंत्रमें 'जनानां संगमनं' कहा है। 'पथ्याः' का भाव विशेष रूपसे स्पष्ट नहीं होता है। यह मंत्र अथर्ववेदमें (१८।१।५०) भी है।

अगले तृतीय मंत्रसे छठे मंत्र तक नया प्रकरण शुरु होता हुआ प्रतीत होता है। इन चार मंत्रोंमें यम व अङ्गिरस् पितरों की चर्चा है।—

मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः। याँश्च देवा वावृधुर्ये च देवान्त्स्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति॥

ऋ० १०।१४।३॥

अर्थ- (मातली) इन्द्र (कव्यैः) कव्यों से, (यमः अङ्गिरोभिः) यम अङ्गिरसों से और (बृहस्पतिः ऋक्वभिः) बृहस्पति ऋचाओं से अर्थात् ऋचा संबन्धी ज्ञान रखनेवालों से (वावृधानः) वृद्धिको प्राप्त होता है। (यान् देवाः वावृधुः) जिनको देवों ने बढाया है तथा (ये देवान्) जो देवों को बढाते हैं, उनमें से (अन्ये) अन्य अर्थात् मातली, यम तथा बृहस्पति (स्वाहा) वषट्कार से दी गई हविद्वारा (मदन्ति) प्रसन्न होते हैं और (अन्ये) दूसरे कव्य, अङ्गिरस् तथा ऋक्व (स्वधया) स्वधाकार से दी गई हविद्वारा प्रसन्न होते हैं। यह मंत्र अथर्ववेद (१८।१।४७) में है। वहां पर जो चतुर्थ पाद है वह इस मंत्रके चतुर्थ पाद से भिन्न है। अथर्ववेद के पाठानुसार कव्य, अङ्गिरस् कौन है यह स्पष्ट हो जाता है। अथर्ववेद में आए हुए इस मंत्रका चौथा पाद इस प्रकार है- 'तेनोऽवन्तु पितरो हवेषु।' अर्थात् मंत्रोक्त कव्य, अङ्गिरस् आदि जो पितर हैं वे हमारी आह्वान करनेपर रक्षा करें।

कव्य- पितरों को प्रायः बहुत से मंत्रों में कवि के नाम से कहा गया है। और अतएव उन्हें जो हवि दी जाती है उसका नाम कव्य है। देवों के लिए दी जाती हवि हव्य के नाम से कही जाती है। दोनों हवियों का भेद करने के लिए पितरों की हवि को कव्य के नाम से कहा गया है। तथापि कई स्थानोंपर पितरों के लिए हवि शब्द से भी हव्यका विधान है ही। यहां पर कव्य शब्द से कव्य खानेवाले पितरों का ग्रहण है। इस मंत्रका पूर्वार्ध अभी विशेष विचारणीय है। इनका एक दूसरे से बढने का क्या अभिप्राय है यह पता नहीं चलता है।

इमं यम प्रस्तर मा हि सीदाङ्गिरोभिः
संविदानः। आ त्वा मंत्राः कविशस्ता
वहन्त्वेना राजन्हविषा मादयस्व॥

ऋ० १०।१४।४॥

अर्थ- (अङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः) अंगिरस् पितरों के साथ एकमत हुआ हुआ हे यम! तू (इमं प्रस्तरं) इस विस्तृत फैले हुए आसनपर (आसीद) बैठ। (त्वा) तुझे (कविशस्ताः मंत्राः) क्रान्त दर्शीयों द्वारा स्तुति किए गए मंत्र (आ वहन्तु) बुलावें। (एना) इस (हविषा) हविद्वारा (मादयस्व) प्रसन्न हो।

इस मंत्र में यम का अङ्गिरस् पितरों के साथ यज्ञ में विस्तृत आसनपर बैठजाने का वर्णन है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उसकी मंत्रों द्वारा स्तुति करके उसे यज्ञमें हवि दी जाती है। ये अङ्गिरस् पितर कौन हैं इस पर स्वतंत्र विचार करेंगे। इन तीन चार मंत्रों से उनका व यम का संबन्ध दिखाया गया है। उपरोक्त मंत्र के भाव को अगले मंत्र में और भी अधिक स्पष्ट किया गया है —

अङ्गिरोभि रागहि यज्ञियेभिः यम वैरूपैरिह मादयस्व। विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषद्य॥ ऋ० १०। १४। ५॥

अर्थ-हे यम! (वैरूपैः) विविध स्वरूपवाले, (यज्ञियेभिः) यज्ञ के योग्य पूजनीय (अङ्गिरोभिः) अङ्गिरस् पितरों के साथ (इह आ गहि) इस हमारे यज्ञ में आ। यज्ञमें आकर दी गई हवि को खाकर (मादयस्व) आनन्दित हो। (विवस्वन्तं हुवे) विवस्वान् (सूर्य) को मैं बुलाता हूं (यः) जो कि विवस्वान् (ते पिता) तेरा पिता है। वह विवस्वान् (अस्मिन् यज्ञे बर्हिषि आ निषद्य) इस यज्ञमें आकर आसनपर बैठकर दी हुई हवि को खाकर आनन्दित होवे।

यज्ञ में यम व अङ्गिरस् पितरों को बुलाकर उन्हें हवि दी जाती है, यह यहांपर हमें स्पष्ट रूप से पता चलता है। यम का पिता विवस्वान् (सूर्य) है, उसे भी साथ में यज्ञ में बुलाया जाता है व हवि खाने के लिए दी जाती है। अङ्गिरस् पितर नाना रूपवाले हैं अर्थात् उनके स्वरूप भिन्न भिन्न हैं। इस भिन्न भिन्न स्वरूप का अगले मंत्रमें स्पष्टीकरण किया गया है। यह मंत्र थोडेसे पाठन्तर के साथ अथर्ववेद (१८। १। ५९) में भी आया है।

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः। तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम॥

ऋ० १०। १४। ६॥

अर्थ—(नः नवग्वाः अथर्वाणः भृगवः सोम्यासः अङ्गिरसः पितरः) हमारे नवग्व, अथर्वा, भृगु, सोमसंपादन करनेवाले अङ्गिरस् पितर हैं। (तेषां यज्ञियानां) उन यज्ञार्ह अङ्गिरस् पितरों की (सुमतौ) उत्तम सलाहों में तथा (भद्रे सौमनसे) शुभ संकल्पों में (स्याम) होवें।

वेदमें नवग्व तथा दशग्व शब्द कई स्थानोंपर आये हैं। नवग्व तथा दशग्व शब्दवाले मंत्रों का समन्वय करके अर्थ निश्चय करना चाहिए। यह शब्द अभी शोध के लिए अवकाश रखता है निरुक्तकार यास्काचार्यने इस मंत्र में आए हुए नवग्व आदि शब्दों के निर्वचन निम्न लिखित किए हैं-

नवग्व—नवगतयो नवनीत गतयोवा।

नि०। ११।१८॥

अर्थात् नव प्रकार की गतिवाले अथवा नवनीत अर्थात् मक्खन की तरह गतिवाले। नव प्रकार की गतिवाले अथवा मक्खन की सी गतिवाले का अभिप्राय व्यक्त नहीं होता। महर्षि स्वामी दयानन्दजी ने इसका अर्थ नवीन गतिवाले ऐसा किया है। सायणाचार्य अपने भाष्यमें इस शब्द का अर्थ इस प्रकार करते हैं- 'नवग्वाः नवभिर्मासैः सत्रमनुतिष्ठन्तः।' अर्थात् नव मासका सत्र याग करने से इनका नाम नवग्व है।

अथर्वा-अथर्वाणोऽथर्वणवन्तः, थर्वतिश्चरति कर्मातत्प्रतिषेधः। निरु० ११। २। १८॥

अथर्वा स्थिर अर्थात् निश्चल प्रकृतिवाला होता है। चलनार्थक थर्व धातु से थर्वन् शब्द बनता है। जिसका अर्थ है अस्थिर-चलायमान। इससे उलटा अथर्वा-निश्चल।

भृगु—अर्चिषि भृगुः संबभूव। भृगुः भृज्यमानः, न देहे। निरु० ३। ३॥ भृगु अग्निकी ज्वालाओं में पैदा हुआ था। भृगु का अर्थ है जो आगमें भुना हुआ हो, जिसकी शरीर में आस्था न हो। सोम्यासः-सोम संपादिनः। निरु०। ॥ जो यज्ञ में सोम रस तैयार करते हैं वे सोम्य कहलाते हैं।

इस प्रकार इन विशेषणों से पूर्व मंत्रोक्त 'वैरुपैरिह मादयस्व' में अङ्गिरस् पितरों को जो वैरूप कहा था उसका इस मंत्रमें स्पष्टीकरण करके दिखाया है कि अङ्गिरस् पितर वैरूप किस प्रकार से हैं। मंत्र के उत्तरार्ध में उनकी नेक सलाह में रहने को कहा गया है। यह मंत्र अथर्व (१८। १। ५८) में तथा यजुर्वेद (१९। ५०) में भी आया हुआ है। यहांपर तीसरे मंत्र से अङ्गिरस् पितर का जो प्रकरण प्रारंभ हुआ था वह समाप्त होता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अब अगले दो मंत्रों में अर्थात् ७ वें व आठवें में पुनः उसी प्रकरण का निर्देश करते हुए मृत पुरुष की आत्मा को यम लोक में जहां कि पूर्व पितर गए हुए हैं वहां यम व वरुण के दर्शन करने के लिए कहा गया है।

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिः यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः। उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवम्॥

ऋ० १०। १४। ७॥

अर्थ—हे मृत पुरुष! (यत्र) जिस लोकमें (नः पूर्वे पितरः) हमारे पूर्वज पितर (परेयुः) गए हुए हैं, उस लोकमें (पूर्व्येभिः पथिभिः) पहिले के मार्गोंद्वारा (प्रेहि प्रेहि) अवश्य जा। उस लोक में जाकर (स्वधया मदन्तौ) स्वधासे आनन्दित होते हुए अथवा तृप्त होते हुए (उभा राजाना) दोनों राजा (यमं वरुणं देवं च) यम तथा वरुण देव को (पश्यासि) देख।

इस मंत्र में प्रथम दो मंत्रों के भाव को बिलकुल व्यक्त कर दिया है। सबसे प्रथम यहां यह बात पूर्ण रूपसे स्पष्ट हो जाती है कि जिस लोक में हमारे पितर गए हुए हैं वह लोक यम लोक है अथवा उस लोक में यम का राज्य है क्यों कि यम उस लोक का राजा है ऐसा उत्तरार्ध में कहा है। दूसरी बात यम भी स्वधासे तृप्त होता है यह यहांपर स्पष्ट होती है। तीसरी बात यम के साथ ही वरुण भी रहता है। चौथी बात यम लोक में जानेके मार्ग पितृयाण कहलाते हैं। इस प्रकार प्रथम दो मंत्रों के भाव को किस प्रकार अधिक स्पष्ट किया गया है यह पाठक स्वयं देख सकते हैं। यह मंत्र थोडेसे पाठान्तर के साथ अथर्ववेद (१८।१।५४) में भी है।

सं गच्छस्व पितृभिः संयमेनेष्टा पूर्तेन परमे व्योमन्। हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छस्व तन्वा सुवर्चाः ऋ० १०। १४। ८॥

अर्थ- हे मृत पुरुष! (परमे व्योमन्) उत्कृष्ट व्योम में अर्थात् स्वर्गमें (पितृभिः सं गच्छस्व) पितरों के साथ जा। (यमेन सं) यमके साथ जा। (इष्टापूर्तेन) इष्टा पूर्त के साथ अर्थात् अपने उपार्जित कर्मों के साथ जा। (अवद्यं हित्वाय) निन्दित कर्मों का त्याग करके अर्थात् सुकर्मों के साथ (पुनः) फिर (अस्तं एहि) अपने घरको वापस आ अर्थात् पुनर्जन्म लेकर आ और तब (सुवर्चाः) उत्तम तेज-कान्ति से युक्त हुआ हुआ तू (तन्वा सं गच्छस्व) शरीर को धारण करके संसार में विचरण कर।

इस मंत्र से हमें कई बातें पता चलती हैं। सबसे प्रथम ये दोनों मंत्र अर्थात् सातवां व आठवां मृत पुरुष को संबोधन करके कहे गए हैं। मंत्रका उत्तरार्ध इस बातकी पूर्ण रूप से पुष्टि कर रहा है। दूसरी बात स्वर्ग में जानेके लिए पितर तथा यम मृत पुरुष की आत्मा को पृथिवी पर लेने आते हैं। तीसरी बात 'परमे व्योमन्' से यम लोक उत्कृष्ट लोक है। उसमें अच्छे कर्म करनेवाले जाते हैं। अथवा यम लोक में कई विभाग हैं और उनमें कर्मानुसार जीव जाता है। इष्टापूर्त के साथ जाने का कथन इसी बातकी पुष्टि कर रहा है। इष्टापूर्त का लक्षण निम्न लिखित है-

अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चानुपालनम्।
आतिथ्यं वैश्वदेवं च इष्टमित्यभिधीयते ॥ १ ॥
वापीकूपतडागादि देवतायतनानि च।
अन्नप्रदानमारामाः पूर्तमित्यभिधीयते ॥ २ ॥

अथर्व वेद (१८।३।५८) में भी यह मंत्र आया हुआ है।

अपेत वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन्। अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्ववसानमस्मै॥ ऋ० १०।१४।९

अर्थ- (अपइत) हे विघ्नकारी जनो! यहांसे चले जाओ। (वीत) भाग जाओ। (वि सर्पतातः) सर्वथा यह स्थान छोडकर हट जाओ। (अस्मै) इस प्रेतके लिए (पितरः) पितरोंने (एतं लोकं अक्रन्) यह स्थान किया है। (अस्मै) इस मृतके लिए (यमः) यमने (अहोभिः) दिनोंसे व (अद्भिः) पेय जलोंसे तथा (अक्तुभिः) रात्रियों से (व्यक्तं अवसानं) स्पष्ट समाप्ति (ददातु) दी है।

इस मंत्रमें शव की अंत्येष्टि क्रिया के लिए स्थान को पितर निर्धारित करते हैं ऐसा उल्लेख है। यहां

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

शरीरसे प्राणों के निकल जाने के बादका वर्णन है ऐसा उत्तरार्धसे प्रतीत हो रहा है। उत्तरार्ध में यह स्पष्ट कहा है कि इसके लिए अब दिन रात आदि की समाप्ति हो चुकी है अर्थात् यह मर गया है। अब पूर्वार्धानुसार मरने पर पितर इसके लिए स्थान बनाते हैं इसके दो ही अभिप्राय हो सकते हैं(१) या तो जो पितर स्थान बनाते हैं वह स्मशान भूमिका हो सकता है अथवा (२) वह यम लोक का हो सकता है। प्रथम विकल्पके पक्षमें हमें अन्य मंत्रभी मिलते हैं जिनको कि हम अंत्येष्टि के प्रकरणमें दर्शाए हैं। यदि दूसरा विकल्प माना जाए जिसके कि विषयमें अभीतक हमारे पास कोई प्रमाण नहीं तो इससे यम लोक पर थोडासा प्रकाश अवश्य पड सकता है और वह यह कि जैसा उत्तरार्ध में दर्शाया है यम लोकमें दिन व रात नहीं होते और वहां जल भी नहीं है।

अवसान= समाप्ति। यह मंत्र अथर्व वेद (१८।१। ५९) में भी है।

अब यम के दूत दो श्वानोंका वर्णन अगले तीन मंत्रों में अर्थात् मंत्र १० से लेकर १२ तक में है।

अति द्रव सारमेयौ श्वानौ चतुरक्षौ शबलौ
साधुना पथा। अथा पितॄन्त्सुविदत्राँ उपेहि
यमेन ये सधमादं मदन्ति ॥ ऋ० १०।१४।१०

अर्थ- हे पितृ लोक में जाते हुए जीव! (सारमेयौ चतुरक्षौ) सारमेय, चार आंखोंवाले (शबलौ) चितकबरे (श्वानौ) दो कुत्तोंसे (अति) बचकर के (साधुना पथा) कल्याण कारी उत्तम मार्गसे (द्रव) जा। (अथ) तब (सुविदत्रान् पितॄन्) उत्तम धन वा ज्ञान से युक्त पितरों को (उप इहि) प्राप्त हो। (ये) जो कि पितर (यमेन सधमादं मदन्ति) यमके साथ आनन्दित होते हुए तृप्त होते हैं।

सारमेय- सायणाचार्यने सारमेयका अर्थ किया है कि-सरमा नामकी देवोंकी कुत्ती है। उसका बच्चा सारमेय। सरमा शब्द सृगतौ धातुसे बाहुलकसे अम करनेपर बनता है, जिसका अर्थ है बहुत दौडने वाली। उसका पुत्र सारमेय। स्त्रीभ्यो ढक् से ढक्। सारमेय का अर्थ हुआ बहुत दौडनेवाली का पुत्र। लौकिक साहित्यमें सारमेय का अर्थ कुत्ता प्रचलित है।

यमके कुत्तों का वर्णन इस मंत्रमें किया गया है। उनकी चार आंखें हैं तथा चितकबरे रंगके हैं। इस मंत्र में यम व पितरों का संबन्ध भी व्यक्त हो रहा है।

अगले मंत्र में यम से कहा गया है कि वे इस जीव को उन कुत्तोंसे कल्याण तथा आरोग्य प्रदान करे।

यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी
नृचक्षसौ। ताभ्यामेनं परि देहि राजन् स्वस्ति
चास्मा अनमीवञ्च धेहि ॥ ऋ० १०।१४।११

अर्थ- हे यम! (ते) तेरे (यौ) जो (रक्षितारौ) रक्षा करनेवाले (चतुरक्षौ) चार आंखोंवाले (पथिरक्षी) यम लोकमें जानेके मार्ग की रक्षा करनेवाले तथा (नृचक्षसौ) मनुष्योंके देखनेवाले (श्वानौ) दो कुत्ते हैं, हे राजन्! (ताभ्यां) उन दोनों कुत्तों द्वारा (एनं) इस जीवको (स्वस्ति) कल्याण (देहि) प्रदान कर। (च) और (अस्मै) इस जीवके लिए (अनमीवं) रोग रहितता अर्थात् आरोग्य (धेहि) धारण कर। इसे नीरोगी बना।

इस मंत्रमें जीवित पुरुषके लिए यमके कुत्तोंसे कल्याण व आरोग्य मांगा गया है ऐसा प्रतीत होता है। यह मंत्र अथर्व (१८।२।१२) में है।

उरूणसा वसुतृपा उदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो
जनाँ अनु। तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दाता-
मसुमद्येह भद्रम् ॥ ऋ० १०।१४।१२

अर्थ- (उरूणसौ) लम्बी नाकवाले, (असुतृपौ) प्राणोंके खानेसे तृप्त होनेवाले, (उदुम्बलौ) विस्तृत बलवाले अर्थात् अत्यन्त बलवान् (यमस्य दूतौ) यमके दूत उपरोक्त दोनों कुत्ते (जनाँ अनुचरतः) मनुष्योंके पीछे पीछे विचरण करते हैं। (तौ) इस प्रकारके वे यम दूत कुत्ते (अस्मभ्यं) हमारे लिए (सूर्याय दृशये) सूर्यके दर्शनार्थ अर्थात् इस लोकमें जीवन धारण करने के लिए (अद्य) आज (इह) इस संसारमें (भद्रं असुं) कल्याणके देनेवाले प्राणको (पुनः) फिर (दाताँ) देवें।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इस मंत्रमें यमके कुत्तोंका थोडासा और अधिक वर्णन हमें मिलता है। वे लम्बी नाकवाले, प्राणोंको खाकर तृप्त होनेवाले, अत्यंत बलशाली हैं। वे सर्वदा मनुष्योंके पीछे लगे रहते हैं।

इसी सूक्तके आठवें मंत्रमें हम देख आए हैं कि वहां पुनर्जन्मका वर्णन मिलता है। इस मंत्रका उत्तरार्ध भी पुनर्जन्म विषयक निर्देश कर रहा है। 'सूर्याय दृशये' से ऐसा पता चलता है कि संभवतः इस लोकमें रहकर ही सूर्य दर्शन हो सकता है अन्यत्र नहीं। यह मंत्र भी अथर्व वेद (१८।२।१३) में है।

यमके कुत्तों पर अधिक प्रकाश डालनेके लिए हम प्रसंग वश अथर्व० ८।१।९ को उद्धृत करते हैं, जिससे कि यमके श्वान विषयक कल्पनाको जो कि हम आगे देने वाले हैं समझनेमें पाठकों को सहायता मिलेगी।

श्यामश्च त्वा मा शबलश्च प्रेषितौ यमस्य यौ पथिरक्षी श्वानौ। अर्वाङेहि मा वि दीध्यो मात्र तिष्ठः पराङ्मनाः॥ अथर्व० ८।१।९॥

अर्थ- (श्यामः) काला (च) और (शबलः) चितकबरा ऐसे (यौ) जो दो (यमस्य) यमके (पथिरक्षी) यम लोकके मार्ग की रक्षा करनेवाले (श्वानौ) कुत्ते हैं वे (त्वा) तुझे (मा) मत बाधा पहुंचावें। (अर्वाङ् एहि) तू हमारे सन्मुख आ। (मा विदीध्यः) विरुद्ध मत हो अर्थात् हमें छोडकर चले जाने की कोशिश मत कर। (अत्र) यहां इस संसारमें (पराङ्मनाः) विक्षिप्त चित्तवाला होकर (मा तिष्ठः) मत स्थित हो। अर्थात् संसार से उदासीन वृत्ति धारण मत कर।

इस मंत्रके पूर्वार्धमें यमके कुत्तोंका स्वरूप दर्शाया है। उनमेंसे एक काला है व दूसरा चितकबरा है। इस प्रकार १० वें मंत्रसे १२ वें मंत्रतकमें तथा इस अथर्ववेदके मंत्रमें जो यमके श्वानोंके लिए विशेषण प्रयुक्त किए गए हैं उनसे ऐसा पता चलता है कि आलंकारिक रूपसे दिन व रातका वर्णन इन मंत्रोंमें है। यमके दोनों कुत्ते दिन व रात हैं। काला कुत्ता रात है व चितकबरा कुत्ता दिन है।

इस कल्पनाका आधार इन मंत्रोंमें कुत्तोंके लिए प्रयुक्त हुए हुए विशेषण हैं। हम खास खास विशेषणोंके आधार पर पाठकोंको उपर्युक्त कल्पना का दिग्दर्शन करायेंगे। यमके श्वानोंके लिए कहा है कि (जनान् अनुचरतः) अर्थात् वे मनुष्योंके पीछे पीछे प्राणापहरणके लिए लगे हुए विचरण कर रहे हैं। ज्यों ज्यों रात व दिन गुजरते जाते हैं त्यों त्यों मनुष्यकी आयु क्षीण होती जाती है। और एक दिन व रात आती है जब मनुष्य का प्राणान्त हो जाता है। दिन व रात सारमेय भी हैं क्यों कि जल्दी जल्दी आकर चले जाते हैं। ये शबल अर्थात् चितकबरे भी हैं। दिन सफेद है व रात काली है इस प्रकार दोनों मिलकर शबल हैं। ये नृचक्षस अर्थात् मनुष्यों को देखने वाले भी हैं। ये असुतृप अर्थात् प्राणोंको खाकर तृप्त होनेवाले हैं। जब तक शरीर से प्राण नहीं छूटता तबतक मनुष्यके साथ दिन रात लगे ही हुए हैं। प्राण छूटेकि दिन रात उसके लिए समाप्त हुए। उसके प्राणोंके लेनेके लिए ही मानो दिन रात पीछे पीछे लगे हुए थे। वे प्राण मिलेके उस मनुष्यका दिन रातसे पीछा छूटा। यहां पर एक और भी शंका उठ सकती है कि और वह यह कि श्वान शब्दसे ही क्यों यमके दूत कुत्तोंका उल्लेख किया गया? क्या कुत्तेके वाचक अन्य शब्द नहीं हैं? परन्तु पाठकों को यहां पर ध्यानमें रखना चाहिए कि यह श्वान शब्द हमारी उपरोक्त कल्पना को विशेष दृढ करता है। श्वान शब्दके अर्थ पर विचार करनेसे उपरोक्त शंका का तो उत्तर मिलही जाता है पर दिन रात का यमके श्वान होनेका रहस्यभी पूर्ण रूपसे खुल जाता है। श्वान का अर्थ है- (श्वा=श्वः=कल To-morrow+न-नहीं) जो आनेवाली कलमें नहीं रहेगा अर्थात् जो आज तो है पर कल न रहेगा। पाठक देख सकते हैं कि यह अर्थ पूर्ण रूपसे दिन व रात पर घट रहा है। जो दिन व रात आज हैं वे ही फिर दुबारा लौटकर कल नहीं आयेंगे। इस प्रकार आलंकारिक वर्णन से यमके दूत श्वान दिन और रात हैं ऐसी हमारी सम्मति है। अभी इस विषयमें विशेष खोजके लिए अवकाश है। पाठक इस पर विशेष विचार कर सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यहां पर यमके स्थान विषयक प्रकरण समाप्त होता है। अब आगेके तीन मंत्रोंमें अर्थात् १३ से १५ तकमें यमके लिए हवि देने यज्ञ करने आदिका निर्देश है।

यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः।
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरङ्कृतः॥
ऋ० १०।१४।१३॥

अर्थ—(यमाय सोमं सुनुत) यमके लिए यज्ञमें सोमको निचोडो। (यमाय हविः जुहुत) यमके लिए हवि प्रदान करो। (अरङ्कृतः) नाना प्रकारके द्रव्यों के डालनेसे जो अलङ्कृत किया हुआ, (अग्निदूतः) अग्निको अपना दूत बना करके (ह) निश्चय से (यज्ञः) यज्ञ (यमं गच्छति) यम को प्राप्त होता है।

भावार्थ- यमके लिए सोम, हवि आदि यज्ञ में देने चाहिए। यज्ञ यम को निश्चय से प्राप्त होता है।

यह मंत्र थोडेसे पाठान्तर के साथ अथर्ववेद (१८। २। १) में है।

यमाय घृतवद्धविर्जुहोत प्र च तिष्ठत।
स नो देवेष्वा यमद् दीर्घायुः प्रजीवसे॥
ऋ० १०। १४। १४॥

अर्थ- (यमाय) यमके लिए (घृतवत् हविः) घीवाली हवि (जुहोत) प्रदान करो। और हवि देकर (प्र तिष्ठत) प्रतिष्ठा को प्राप्त करो अथवा दीर्घ जीवन का लाभ करो। (सः) वह यम (प्र-जीवसे) अच्छी प्रकार से जीनेके लिए (देवेषु) देवों में (नः) हमें (दीर्घायुः) लम्बी आयुष्य (आ यमत्) देवे।

भावार्थ-यमके लिए घीसे मिश्रित हवि देकर प्रतिष्ठा वा दीर्घ जीवन प्राप्त करो। यम को हवि देनेसे वह देवोंमें दीर्घायु देता है।

यह मंत्र भी अथर्व० (१८। २। ३) में कुछ पाठभेद के साथ आया है।

[टिप्पणी- प्रतिष्ठत- ऐसा प्रतीत होता है कि यम के लिए घीवाली हवि देनेसे मनुष्य की सांसारिक व पारलौकिक स्थिति उत्कृष्ट हो सकती है।]

यमाय मधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन।
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पथिकृद्भ्यः॥
ऋ० १०। १४। १५॥

अर्थ—(यमाय राज्ञे) यम राजा के लिए (मधुमत्तमं हव्यं) अत्यन्त मधुर हव्य का (जुहोतन) प्रदान करो। (पथिकृद्भ्यः) रस्ता बनानेवाले मार्ग प्रदर्शक (पूर्वजेभ्यः) जो सबसे पूर्व उत्पन्न हुए हैं व (पूर्वेभ्यः) हमसे पूर्वके हैं ऐसे (ऋषिभ्यः) ज्ञानियों के लिए (इदं नमः) यह नमस्कार है।

इस मंत्र में यम राजा के लिए मधुरतम हवि देनेका वह प्राचीन ऋषियों के लिए नमस्कार का विधान है।

इस प्रकार इस प्राणापहारी यम का वर्णन करने के बाद अन्तिम मंत्रमें उपसंहार करते हैं। इस उपसंहार के मंत्रमें उस यम (सर्व नियन्ता परमात्मा) का वर्णन है।

इस मंत्रकी सम्पूर्ण सूक्त के साथ संगति किस प्रकार लग सकती है यह हम आगे मंत्रार्थ के बाद दर्शायेंगे।

त्रिकद्रुकेभिः पतति षळुर्वीरेकमिद् बृहत्।
त्रिष्टुब्गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आहिता॥
ऋ० १०। १४। १६॥

अर्थ- (एकं इत् बृहत्) अकेला ही वह सर्वनियन्ता महान् यम (त्रिकद्रुकेभिः) तीन कद्रुकों से (षट् उर्वीः) छहों उर्वियों को (पतति) प्राप्त होता है अर्थात् व्याप्त करके स्थित है। (त्रिष्टुप् गायत्री) त्रिष्टुप् गायत्री आदि (ता सर्वा छंदांसि) वे सब छन्द (यमे) उस नियन्ता परमात्मा में (आहिता) स्थित हैं।

षट् उर्वी- द्यु, पृथिवी, आप, ओषधी, दिन व रात ये छह उर्वियां हैं।

त्रिकद्रुक का क्या अभिप्राय है यह कुछ ठीक ठीक पता नहीं चलता। सायणाचार्य ने इन्हें याग विशेष करके लिखा है। पं. क्षेमकरण दासजीने उत्पत्ति, स्थिति व प्रलयको त्रिकद्रुक कहा है।

यद्यपि त्रिकद्रु का अर्थ निश्चय न होनेसे मंत्र के पूर्वार्ध का भावार्थ ठीक ठीक पता लगना कठिन है तथापि छहों उर्वियों में वह यम व्याप्त है इतना अवश्य पता चलता है। उत्तरार्ध स्पष्ट है। त्रिष्टुप् गायत्री आदि सर्व उस यम (नियामक परमात्मा) में स्थित हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अब इस मंत्रका संपूर्ण सूक्त के साथ संगतिकरण कैसे हो सकता है इसपर विचार करना है। संसार में हम देख रहे हैं कि परमात्मा की भिन्न भिन्न शक्तियां अपनी स्वतंत्र सत्ता रखती हुई कार्य कर रही हैं। सूर्य, चन्द्र, अग्नि, विद्युत् आदि शक्तियां यद्यपि अन्तमें परमात्मा में ही समाविष्ट होती हैं तथापि इनकी अपनी स्वतंत्र सत्तासे इनकार नहीं किया जा सकता। अर्थात् ये परमात्मा की शक्तियां होतीं हुई भी अपनी स्वतंत्र सत्ता रखतीं हुई संसार में कार्य कर रही हैं। ये सब परमात्मा की ही भिन्न शक्तियां हैं अर्थात् इनके नामसे परमात्मा की ही सत्ता व महत्ता का बोध होता है जैसा कि हमें ऋ० १।१६४ मंत्र ४६ दर्शा रहा है—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥ ऋ० १।१६४।४६

परन्तु इसका अभिप्राय यह कदापि नहीं कि इन्द्र मित्रादि की स्वतंत्र सत्ता ही नहीं। इनकी स्वतंत्र सत्ता से इनकार करना परमात्माकी भिन्न भिन्न सत्ताओंसे इनकार करना है। उपरोक्त मंत्रमें गिनाई गई परमात्माकी भिन्न भिन्न सत्ताओं में यम भी एक है। यमका सर्वत्र अर्थ वायु करनेका यह मंत्र विरोध करता है इस प्रकार इस सूक्तमें जो यमका वर्णन है वह परमात्मा की विनाश शक्ति व मरने के बाद जीवों की व्यवस्था करनेवाली शक्ति का वर्णन है। यह शक्ति अग्नि वायु आदि की तरह अपनी स्वतंत्र सत्ता रखती है। जिस प्रकार वायु आदि की स्वतंत्र सत्तासे इनकार नहीं किया जा सकता उसी प्रकार यम की भी स्वतंत्र सत्तासे इनकार नहीं किया जा सकता। परमात्मा की भिन्न शक्तियों में से एक यम नामक शक्ति है जिसका कि यम व पितर में उल्लेख किया गया है। कोई यह न समझ ले कि यम परमात्मा की शक्तियों से भिन्न कोई अलग ही शक्ति है अतः इस सूक्तके अंतमें इस शंकाके निवारणार्थ इस मंत्रसे उपसंहार करते हुए ऋ० १।१६४।४६ मंत्र के आशय को दर्शाया गया है। इस अंतिम मंत्रका यह प्रयोजन है कि अन्तिम यम तो एक ही परमात्मा है पर जो सूक्तमें यमका वर्णन है वह उस की एक देशीय शक्ति का वर्णन है। हमारे ख्याल में इसी प्रकार इस मंत्र की सूक्तके साथ संगति है। यम यह एक स्वतंत्र सत्तावाली परमात्मा की शक्ति है जो वायु अग्नि आदिसे भिन्न है। सुज्ञ पाठक इस विवेचन पर और भी अधिक विचार कर निष्कर्ष निकाल सकते हैं।

सम्पूर्ण सूक्तका मंत्रवार सारांश

प्रथम मंत्र।

१ कर्मानुसार जन्म स्थानका निर्णय यम करता है।
२ यम विवस्वान् (सूर्य) का पुत्र है।
३ यम को सब जन प्राप्त होते हैं।

द्वितीय मंत्र।

४ यम ने यम लोक में जाने के मार्ग को सबसे प्रथम जाना।
५ यम लोक के मार्ग से कोई भी बच नहीं सकता। अर्थात् प्रत्येक को यम लोक में अवश्य जाना पडता है।
६ यम लोकमें हमारे पूर्व पितर गए हुए हैं।

तृतीय मंत्र।

७ यम अङ्गिरस् पितरों से बढता है।

चतुर्थ व पंचम मंत्र।

८ यम को अङ्गिरस् पितरों के साथ यज्ञ में बुलाया जाता है।
९ अङ्गिरस् पितर नाना स्वरूपवाले हैं।
१० यम के पिता विवस्वान् को भी यज्ञ में बुलाया जाता है।

षष्ठ मंत्र।

११ अङ्गिरस् पितरों के नानारूप नवग्व, अथर्वन् भृगु आदि हैं।

सप्तम मंत्र।

१२ प्रेत पितृलोक (यमलोक) में भेजा जाता है।
१३ यम लोकमें यम व वरुण राजा हैं।
१४ यम व वरुण स्वधासे आनन्दित होते हैं।

अष्टम मंत्र।

१५ प्रेत को यम व पितर लेने आते हैं। वह अपने इष्टापूर्त के साथ लेकर उनके साथ यम लोक में जाता है।

CC-0. Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

१६ प्रेत यम लोक से पुनः वापिस लौटता है।

नवम मंत्र।

१७ श्मशान भूमि से विघ्न कारियों को भगाया जाता है।

१८ यम लोक में दिन रात नहीं होते।

दशम मंत्र।

१९ यमके दो कुत्ते हैं जिनकी चार आंखें हैं तथा वे स्वयं चितकबरे हैं।

२० मृत आत्मा पितरों को प्राप्त होती है।

२१ पितर यमके साथ आनन्दित होते हैं।

एकादश मंत्र।

२२ यमके श्वान यमलोक के मार्ग की रक्षा करते हैं।

२३ वे मनुष्यों को सर्वदा देखते रहते हैं।

द्वादश मंत्र।

२४ यमके श्वान लम्बी नाकवाले हैं।

२५ प्राणों को खाकर तृप्त होनेवाले हैं।

२६ ये श्वान यमके दूत हैं।

२७ वे मनुष्योंके सर्वदा पीछे पीछे फिरते रहते हैं।

२८ यमके दोनों श्वानों में से एक काला व दूसरा चितकबरा है।

२९ संभवतः ये यमके दोनों श्वान दिन व रात हैं।

त्रयोदश मंत्र।

३० यमके लिए यज्ञमें सोम निचोडा जाता है व हवि दी जाती है।

३१ अग्नि को अपना दूत बनाकर यज्ञ यमके पास पहुंचता है।

चतुर्दश मंत्र।

३२ यमके लिए घी मिश्रित हवि दी जाती है जिससे कि उत्कृष्ट स्थिति उपलब्ध होती है।

३३ यम देवों में जाने के लिए हविर्दाता को दीर्घायु देता है।

पंचदश मंत्र।

३४ यमराजा के लिए अतीव मधुरतम हव्य देना चाहिए।

३५ पूर्वज सब ऋषियों का सत्कार करना चाहिए।

षोडश मंत्र।

३६ छहों उर्वियों को अकेले ही उस महान् ब्रह्मने व्याप्त कर रखा है।

३७ त्रिष्टुप् आदि सब छंद भी उसी यम(सर्व नियामक-परमात्मा)में स्थित हैं-यमके अन्तर्गत हैं।

२—ऋग्वेद मं०१० सू०१५॥

इस सूक्तमें जीवित तथा मृत दोनों पितरों को यज्ञमें बुलाने आदिका वर्णन है। किस मंत्रमें जीवित पितरों के प्रति कथन है व किसमें मृत पितरोंके प्रति यह निर्णय प्रत्येक मंत्र स्वयं करता है।

उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः। असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञा स्तेनो ऽवन्तु पितरो हवेषु॥ ऋ० १०।१५।१॥

अर्थ-हे (सोम्यासः) सोम संपादन करनेवाले (अवरे) निकृष्ट, (उत् परासः) और उत्कृष्ट (उत्) तथा (मध्यमाः) मध्यम (पितरः) पितरो! (उदीरतां) उन्नति को प्राप्त होओ। (ये अवृकाः) जिन हिंसा न करनेवाले पितरोंने (असुं ईयुः) प्राण को प्राप्त किया है अर्थात् जो प्राणधारी पितर हैं (ते) वे (ऋतज्ञाः) सत्य व यज्ञको जाननेवाले (पितरः) पितर (हवेषु) बुलाए जानेपर (नः) हमारी (रक्षन्तु) रक्षा करें।

निरुक्त०

सोम्यासः—सोम संपादन करनेवाले।

अवृकाः—अनमित्राः-शत्रुरहित।

उदीरतां = उत् ईरताम्। उत् उपसर्ग पूर्वक ईर गतौ धातु। ऊपर गति करना अर्थात् उन्नति करना।

भावार्थ- सब प्रकार के उत्तम, मध्यम तथा निकृष्ट पितर अपनी उन्नति करें। हमारे सहायतार्थ बुलानेपर आकर हमारा रक्षण करें।

'असुं य ईयुः' पदसे यह ज्ञात होता है कि इस में जीवित पितरों से प्रार्थना की गई है। यह मंत्र अथर्ववेद (१८।१।४४) में तथा यजुर्वेद (१९। ४९) में भी आया है।

इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य अपरास ईयुः। ये पार्थिवे रजस्यानिषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु॥ ऋ० १०।१५।२॥

अर्थ- (अद्य) आज (पितृभ्यः) पितरों के लिए (इदं नमः अस्तु) यह नमस्कार हो। किन-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पितरों के लिए ? (ये) जो कि (पूर्वासः) पूर्वकालीन पितर (ईयुः) स्वर्ग को गए हुए हैं और (ये) जो कि (अपरासः) अर्वाचीन काल के पितर स्वर्गको गए हुए हैं। और (ये) जो कि पितर (पार्थिवे रजसि) पार्थिव रजस् पर अर्थात् पृथिवीपर (आ निषत्ताः) स्थित हैं, (वा) अथवा (ये) जो कि (नूनं) निश्चय से (सुवृजनासु विक्षु) उत्तम बल वा धन युक्त प्रजाओं में स्थित हैं।

भावार्थ- पुरातन कालके, अर्वाचीन कालके जो पितर हैं और जो इस समय पृथिवी लोकपर विद्यमान हैं अथवा उत्तम धनधान्य संपन्न प्रजाओं में विद्यमान हैं उन सब पितरों के लिए नमस्कार है।

विश् शब्द निघण्टु में मनुष्यवाची नामों में पठित है। देखो निघण्टु २।३॥

वृजन का अर्थ निघण्टु में बल ऐसा किया गया है। निघण्टु २।९॥

इस मंत्र में सर्व प्रकार के पितरों का अर्थात् प्राचीन, अर्वाचीन, जीवित, मृत सबके लिए नमस्कार का निर्देश है। पूर्वासः अर्थात् प्राचीन काल के पितर इस वखत मृत ही हैं। जो पार्थिव लोक पर विद्यमान हैं वे ही जीवितों में गिने जा सकते हैं। अतः इसके सिवाय शेष दोनों अर्वाचीन व प्राचीन पितर निःसंदेह मृत पितर ही हैं यह मंत्र से स्पष्ट है। इससे यह स्पष्ट हुआ कि मृत पितरों को भी नमस्कार करना चाहिए।

यह मंत्र अथर्ववेद (१८।१।४६) तथा यजुर्वेद (१९।६८) में भी आया हुआ है।

आहं पितॄन्त्सुविदत्राँ अविथ्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः। बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः॥ ऋ० १०।१५।३

अर्थ- (सुविदत्रान् पितॄन्) उत्तम धनसंपन्न पितरों को (आ अविथ्सि) अच्छी प्रकार प्राप्त करता हूं। (विष्णोः नपातं विक्रमणं च) और सर्व व्यापक परमात्मा के न गिरानेवाले अर्थात् उन्नति करानेवाले शौर्य को प्राप्त करता हूं। (बर्हिषदः पितरः) कुशासन पर बैठनेवाले पितर जो कि (स्वधया) स्वधाके साथ (सुतस्य पित्वः) उत्पादित अर्थात् तैयार किए हुए अन्नका (भजन्त) सेवन करते हैं यानि खाते हैं (ते) वे पितर (इह) इस यज्ञमें (आगमिष्ठाः) आवें।

भावार्थ- धनधान्य संपन्न पितरों को व व्यापक परमात्मा के शौर्य को मैं प्राप्त करता हूं। स्वधा के साथ पक्व अन्न को खानेवाले पितरो! इस यज्ञमें आओ।

सुविदत्र— सुविदत्रः कल्याणविद्यः। निरु० अ० ६। पा० ३। खं० १४। सुविदत्र का अर्थ निघण्टु में धन भी है। निघ० ७।१०

पित्वः = पितु + अस् = पित्वः= अन्नका। नपात = न पातयति = जो न गिरावे।

इस मंत्र में पितर का निर्णय करना जरा कठिन है। तथापि 'आहं सुविदत्रान् पितॄन् अविथ्सि' से जीवित पितर प्रतीत होते हैं। क्यों कि सुविदत्र पितरों को तभी प्राप्त किया जा सकता है जब कि उनके यहां उनसे जन्म लिया जावे। और जन्म जीवित पितरों से ही मिलता है।

यह मंत्र अथर्ववेद (१८।१।४५) में तथा यजुर्वेद (१९।५६) में आया है।

बर्हिषदः पितरः ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम्। त आ गतावसा शन्तमेनाथा नः शंयोररपो दधात॥ ऋ० १०।१५।४॥

अर्थ हे। (बर्हिषदः पितरः) हे बर्हिषत् पितरो! (अर्वाक्) हमारे प्रति (ऊति) रक्षणार्थ आओ। (वः) तुम्हारे लिए (हव्या) हव्यों को (चकृम) करते हैं उनका (जुषध्वम्) प्रीतिपूर्वक सेवन करो। (ते) वे तुम (शंतमेन अवसा) कल्याण कारी रक्षण के साथ (आगत) आओ। (अथ) और तब (नः) हमें (अरपः) पाप रहित आवरण, (शं) कल्याण और (योः) दुखवियोग (दधात) दो।

भावार्थ- बर्हिषत् पितर हमारा रक्षण करें और उसके बदले में हम उनका हव्यादि प्रदान द्वारा सत्कार करें। वे हमारे रोग तथा भयोंको दूर करते हुए हमारा संरक्षण करें।

बर्हिषदः —बर्हिष् में अथवा बर्हिष् पर बैठनेवाले। निघण्टु में बर्हिष् शब्द अन्तरिक्ष एवं जलवाची है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अंतरिक्षमें जल रहता है अतः जलका भी नाम बर्हिष् पडगया ऐसा प्रतीत होता है।

बर्हिष्=अंतरिक्ष। निघण्टु १।३॥ बर्हिष्=जल। निघण्टु- १।१२।

अंतरिक्ष में पितर रहते हैं ऐसा हमें वेद मंत्रोंसे (जैसा कि हम पूर्व दर्शा आए हैं) पता चलता है। तदनुसार 'बर्हिषदः पितरः' का अर्थ हुआ अन्तरिक्षस्थ पितर। निघण्टु- ३।३। में बर्हिषत्, महत् वाची नामों में भी पठित है। तदनुसार महान् पितर ऐसा भी अर्थ किया जा सकता है। बर्हिष् कुशाघास का भी नाम है। तदनुसार इसका अर्थ कुशाघास के आसनपर बैठनेवाले ऐसा भी हो सकता है। वेदमें बर्हिष् यज्ञ के लिए भी प्रयुक्त हुआ हुआ है अतः यज्ञ में बैठनेवाले ऐसा अर्थ भी हम कर सकते हैं। प्रसङ्गानुसार उचित अर्थ लेना चाहिए। बर्हिषत् पितरों के विषय में विशद विवरण हम अन्यत्र प्रकाशित करेंगे।

शंयोः- शमनं च रोगाणां यावनं च भयानाम्॥
निरुक्त० ४।३।२४॥

अरपः- रपो रिप्रमिति पापनामनी भवतः॥ निरुक्त० ४।३।२४॥ न रपः = अरपः-पापरहित।

इस मंत्रमें बर्हिषत् पितर जीवितों के लिए प्रयुक्त हुआ है वा मृतों के लिए, इसका निर्णय करना कठिन है। मंत्र में कोई भी ऐसा शब्द नहीं है जिस के आधारपर कोई परिणाम निकाला जावे। यह मंत्र यजुर्वेद (१९।५५) में तथा अथर्ववेद (१८। १।५१) में भी है।

उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु
प्रियेषु। त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुव-
न्तु तेऽवन्त्वस्मान्॥ ऋ० १०।१५।५॥

अर्थ-(ते) वे (सोम्यासः) सोम संपादन करनेवाले (पितरः) पितर (प्रियेषु बर्हिष्येषु) प्रीतिकारक यज्ञ संबन्धी निधियों में (उपहूताः) बुलाए गए हैं। (ते) वे पितर (इह) इस यज्ञमें (आगमन्तु) आवें। (ते अधिश्रुवन्तु) वे पितर हमारी प्रार्थनायें ध्यान देकर सुनें, (अधिब्रुवन्तु) हमें उपदेश करें तथा (अस्मान् ते अवन्तु) हमारी वे रक्षा करें।

भावार्थ- याज्ञिक कार्यों में पितर हमारे बुलाए जानेपर आवें। आकर हमें उपदेश दें, हमारी प्रार्थनायें सुनें तथा हमारी रक्षा करें।

बर्हिष्य- बर्हिष् नाम यज्ञका है। उसमें होनेवाला बर्हिष्य अर्थात् यज्ञ संबन्धी।

सोम्यासः—यास्काचार्यने निरुक्तमें 'सोम्यासः' का अर्थ 'सोम का संपादन करनेवाले' ऐसा किया है।

निधि—निधिः शेवधिरिति। निरु० अ० २। पा. १। खं० ४। अर्थात् सुख का भण्डार।

इस मंत्र में भी जीवित पितरों के प्रति निर्देश है अथवा मृत पितरों के प्रति इसका निर्णय करना कठिन है। मंत्र से किसी भी प्रकार का निर्देश उपलब्ध नहीं होता। यह मंत्र यजुर्वेद (१९।५७) में तथा अथर्ववेद (१८।३।४५) में है।

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभि गृ-
णीत विश्वे। मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो
यद्व आगः पुरुषता कराम॥
ऋ० १०।१५।६॥

अर्थ-(विश्वे) तुम सब पितरो! (जानु आच्य) दांयां घुटना टेककर (दक्षिणतः निषद्य) दोईं ओर बैठकर (इमं यज्ञं) इस यज्ञ का (अभिगृणीत) स्वीकार करो। (पितरः) हे पितरो! (यत् वः आगः) जो तुम्हारा अपराध (पुरुषता कराम) पुरुषत्व के कारण अर्थात् मनुष्यत्व के कारण हम करते हैं ऐसे (केन चित्) किसी भी अपराध के कारण (मा हिंसिष्ट) हमारी हिंसा मत करो।

भावार्थ- हे पितरो दांई ओर दांयां घुटना टेककर इस यज्ञमें बैठो। यदि हम मनुष्यों से किसी प्रकार का अपराध अनजाने हो जाए तो उसके कारण हमारा विनाश मत करो।

जानु आच्य—इसका अर्थ हमने 'दांयां घुटना टेककर' ऐसा किया है जिसका आधार भूत शतपथ ब्राह्मण का निम्न वचन है-'अथैनं पितरः। प्राचीनावीतिनः सव्यं जान्वाच्योपासीदंस्तानब्रवीत् ...' इत्यादि। शतपथ २।४।२।२॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इस मंत्रमें जिन पितरोंका उल्लेख है वे जीवित पितर हैं ऐसा 'आच्याजानु' से प्रतीत होता है। मृत पितर देह रहित होनेसे यज्ञमें घुटना टेककर नहीं बैठ सकते। देहधारी पितरोंके लिए ही यह करना संभव है और देहधारी पितर जीवित पितर ही हो सकते हैं मृत पितर नहीं। यह मंत्र यजुर्वेद (१९।६२) में तथा अथर्व (१८।१।५२) में है।

आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय। पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्रयच्छत त इहोर्जं दधात ॥ ऋ० १०।१५।७ ॥

अर्थ- (अरुणीनां उपस्थे आसीनासः) यज्ञमें प्रदीप्त की गई अग्निकी लाल लाल ज्वालाओंके समीपमें बैठे हुए अर्थात् यज्ञमें उपस्थित हुए हुए पितरो! (दाशुषे मर्त्याय) दानी मनुष्यके लिए (रयिं धत्त) धनको दो। (तस्य) उस दानीके (पुत्रेभ्यः वस्वः प्रयच्छत) पुत्रोंके लिए धनका दान करो। (ते) वे तुम (इह) यहांपर उस दानी व दानीके पुत्रोंके लिए (ऊर्जं) अन्नसे (दधात) पुष्ट करो।

भावार्थ- हे पितरो! यज्ञमें बैठकर जो दान करने वाला है उसके लिए तथा उसके पुत्रोंके लिए धन व अन्नका दान करके उन्हें पुष्ट करो।

अरुणी- यद्यपि निघण्टु १।१५ ॥ में उषाकी किरण ऐसा अर्थ है तथापि यहां पर प्रकृत प्रकरण में यज्ञका वर्णन होनेसे यज्ञकी रक्तवर्ण ज्वालाओं सेही अभिप्राय है। ऊर्जः— अन्न। निघण्टु २।७ ॥

इस मंत्रमें जिन पितरोंका उल्लेख है उनका निर्णय करना कठिन है। जीवित तथा मृत दोनों प्रकारके पितरोंके विषयमें उपरोक्त मंत्रोक्ति घट सकती है जैसा कि हमें इसी सूक्तके आगे आने वाले मंत्र दर्शायेंगे। यह मंत्र अथर्व वेद (१८।३।४३) में तथा यजुर्वेद (१९।६३) में आया है।

ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः। तेभिर्यमः संरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ॥ ऋ० १०।१५।८ ॥

अर्थ- (ये) जिन (नः) हमारे (पूर्वे सोम्यासः वसिष्ठाः पितरः) पुरातन सोमसंपादन करनेवाले वसिष्ठ अर्थात् उत्तम धनवाले पितरोंने (सोम पीथं) सोमपान को यज्ञमें (अनु ऊहिरे) प्राप्त कियाथा, (तेभिः) उन (उशद्भिः) यमके साथ सोमपान करने वा हवि खाने की कामना करते हुए वसिष्ठ पितरोंके साथ (उशन्) पितरोंके साथ सोमपान करने वा हवि खानेकी कामना करता हुआ, (संरराणः) पितरोंके साथ रमण करता हुआ अर्थात् आनन्दित होता हुआ (यमः) यम (हवींषि) हवियोंको (प्रतिकामं) इच्छानुसार (अत्तु) खावे।

भावार्थ- हमारे जिन पुरातन पितरोंने यज्ञमें बैठकर सोमपान कियाथा उन पितरोंके साथ मिल कर यम हमारे द्वारा दी गई हवियोंको खावे। हमें यम व पितरोंके लिए यज्ञमें पर्याप्त मात्रामें हवि देनी चाहिए।

* वसिष्ठ- यद्वै नु श्रेष्ठः तेन वसिष्ठो अथो यद्वस्तृतमो वसति तेनो एव वसिष्ठः। श० ८।१।१।६ ॥

इस वचनानुसार वसिष्ठ का अर्थ उत्तम वास करानेवाला अर्थात् उत्तम आश्रय दाता ऐसा अर्थ भी किया जा सकता है। वसु नाम धनका भी है। तदनुसार उत्तम धनवाले ऐसा अर्थ भी हो सकता है।

इस मंत्रके वर्णन से यहां मृत पितरोंका उल्लेख है ऐसा मालूम होता है। यम के साथ हवि खानेवाले पितर जीवित नहीं हो सकते।

इस मंत्रसे लेकर इस सूक्तकी समाप्ति पर्यन्त मृत पितरोंके संबंधमें निर्देश है ऐसा प्रतीत होता है। पाठक मंत्रोंके देखनेसे स्वयमेव इस बातका निर्णय कर सकेंगे। यह मंत्र यजुर्वेद (१९।५१) में आया है।

* टिप्पणी – वसिष्ठके विषयमें निम्न लिखित ब्राह्मणों के वचन हैं-

(१) यद्वै नु श्रेष्ठः तेन वसिष्ठो अथो यद्वस्तृतमो वसति तेनो एव वसिष्ठः॥ श० ८।१।१।६ (२) येन वै श्रेष्ठः तेन वसिष्ठः ॥ गो. उ. ३।९ (३) एष (प्रजापतिः) वै वसिष्ठः ॥ श० २।४।४।२ (४) प्राणो वै वसिष्ठ ऋषिः ॥ श० ८।१।१।६ (५) सा ह वागुवाच- (हे प्राण!) यद्वा अहं वसिष्ठास्मि त्वं तद्वसिष्ठोऽसीति ॥ श० १४।९।२।१४ (६) अग्निर्वै देवानां वसिष्ठः ॥ ऐ० १।२८ यह वचन ऋ० २।९।१ पर है। (७) वाग्वै वसिष्ठा ॥ श० [illegible]

CC-0. Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

निम्न दो मंत्रों (११-१२) में अग्निको पितरोंके साथ यज्ञमें बुलाया गया है—

ये तातृषुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्कैः । आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ् सत्यैः कव्यैः पितृभिर्घर्मसद्भिः ॥ ऋ० १०।१५।९॥

अर्थ- (देवत्रा जेहमानाः) देवोंको प्राप्त होते हुए अर्थात् देव बनते हुए (होत्राविदः) यज्ञोंके जानने वाले (स्तोम तष्टासः) स्तोमोंके बनाने वाले (ये) जो पितर (अर्कैः) अर्चनीय स्तोत्रोंसे (तातृषुः) इस संसार सागरसे सर्वथा तर गए हैं ऐसे (सुविदत्रेभिः सत्यैः कव्यैः, घर्मसद्भिः पितृभिः) उत्तम धनवाले अथवा कल्याणकारी विद्यावाले अर्थात् उत्तम ज्ञानी, (सत्यैः) सत्यवचनी, (कव्यैः) कव्य नाम है पितरोंके उद्देश्यसे दी गई हविका, उसको खाने वाले तथा यज्ञमें आकर बैठने वाले पितरोंके साथ (अर्वाङ्) हमारे प्रति (अग्ने) हे अग्नि ! तू (आयाहि) यज्ञमें आ ।

भावार्थ- देवत्वको प्राप्त हुए हुए पितरोंको अग्नि के साथ यज्ञमें बुलाया जाता है व अग्नि उन पितरोंके साथ यज्ञमें आती है अर्थात् पितर अग्निके साथ हमारे यज्ञमें आते हैं ।

घर्म-यज्ञ । निघण्टु. ३।१७ ॥

※ अर्क- मंत्र स्तोत्र ।

इस मंत्रके ' देवत्रा जेहमानाः ' के भावको अगला मंत्र विशेष रूपसे स्पष्ट करता है । उसमें भी अग्नि द्वारा देवयोनिमें गए हुए पितरोंकाही आह्वान किया गया है ।

ये सत्यासो हविरदो हविष्पा इन्द्रेण देवैः सरथं दधानाः। आग्ने याहि सहस्रं देववन्दैः परैः पूर्वैः पितृभिर्घर्मसद्भिः॥

ऋ. १०।१५।१० ॥

अर्थ- (ये) जो पितर (सत्यासः) सत्यवचनी, (हविरदः) हविके खानेवाले, (हविष्पाः) हविकी रक्षा करनेवाले तथा (इन्द्रेण देवैः सरथं दधानाः) जो इन्द्र व देवोंके साथ समान रथपर आरूढ होते हैं ऐसे (सहस्रं देववन्दैः) हजारों बार देवोंसे स्तुति किए गए (पूर्वैः परैः) पुरातन तथा अर्वाचीन (घर्मसद्भिः पितृभिः) यज्ञमें बैठने वाले पितरोंके साथ (अग्ने) हे अग्नि ! तू (आयाहि) आ ।

भावार्थ- देवोंके साथ एक रथारूढ अर्थात् देवोंके साथ विचरण करणेवाले पितरोंको यज्ञमें अग्नि लाती है ।

यह मंत्र पूर्वमंत्रकेही आशय को स्पष्ट कर रहा है। प्राचीन पितर तथा देवोंमें विचरण करनेवाले पितर जीवित पितर नहीं हो सकते । इसके सिवाय यहां एक और भी महत्व पूर्ण बातका पता चलता है और वह यह कि मरनेके बाद जीव एकदम पुनर्जन्म नहीं लेता, कमसे कम सबके सब जीव तो एकदम नहीं ही लेते। यदि यह कहा जाए कि इस मंत्र में मुक्त पितरोंका वर्णन है तो इस बातको मानना पडेगा कि मुक्त जीवोंका भी सांसारिक जीवोंसे संबंध रहता है व वे बुलानेपर हमारे कार्योंमें शामिल होते हैं । दूसरे शब्दोंमें इसे यूं भी कह सकते हैं कि परलोकवासी जीवोंका इस लोकवासी जीवोंसे संबन्ध बना रहता है। वे इस लोकमें आकर यहांके जीवोंके कार्योंमें हिस्सा बटोरते हैं व समय समय पर रक्षा आदिके कार्य भी करते हैं । उनको हमारे समाचार पहुंचानेवाली अग्नि है । अतः जिवित पितरोंकी तरह उनका भी समय समयपर सत्कार करना चाहिए ऐसा इसका अभिप्राय हुआ । इस विषयमें विशेष प्रकाश डालनेवाले मंत्रको मूल लेखमें उद्धृत किया जा चुका है। उन मंत्रोंपर विशेष विचार करना जरूरी है ।

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदः सदः सदत सुप्रणीतयः । अत्ता हवींषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिं सर्ववीरं दधातन ॥

ऋ. १०।१५।११॥

※ टिप्पणी— अर्कके अनेक अर्थ हैं 'अर्को देवो भवति, यदेनमर्चति । अर्को मंत्रो भवति, यदनेनार्चन्ति। अर्कमन्नं भवति, अर्चति भूतानि । अर्को वृक्षो भवति संवृत्तः कटुकिम्ना । निरुक्त. ५।१।५॥ सुविदत्रः-सुविदत्रः कल्याणविद्यः । निरु० ६।३।१४ इसका अर्थ धनभी है । निरु० ७।४।९॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अर्थ— हे (सुप्रणीतयः) उत्तम प्रकारसे ले जानेवाले (Leaders) (अग्निष्वात्ताः पितरः) अग्निष्वात्त पितरो ! (इह) इस यज्ञ में (आगच्छत) आओ। (सदः सदः सदत) घर घर में स्थित हो ओ ! (अथ) और (बर्हिषि प्रयतानि हवींषि अत्त) यज्ञमें दी गई हवियोंको खाओ। और हमें (सर्ववीरं रयिं दधातन) सर्व प्रकार की वीरतासे परिपूर्ण पुत्र रूपी धन दे कर पुष्ट करो।

भाव— हे अग्निष्वात्त पितरो! घर घर में आओ। यज्ञों में तुम्हारे उद्देश्य से दी गई हवियों को खाओ तथा उसके बदले में वीर संतति का प्रदान करो।

अग्निष्वात्त पितर– अग्निष्वात्तका अर्थ भिन्न भिन्न भाष्यकारों ने भिन्न भिन्न किया है। इस पर विशेष विचार इस सूक्त के अन्तिम मंत्र पर करेंगे। यहां पर पितृ निर्णय के लिए इतना लिखनाही पर्याप्त है कि जिनका अंत्येष्टि संस्कार अग्नि से किया जाता है उन्हें अग्निष्वात्त पितर कहा जाता है। तदनुसार इस मंत्र में मृत पितरोंको बुला गया है व उन्हें हवि दी गई है तथा उसके बदले में वीर संतान देने की प्रर्थना की गई है। इस प्रकार यह मंत्र भी मृतों का जीवितों के साथ संवन्ध है इस बातकी स्थापना को पुष्ट करता है।

सुप्रणीति– जिसकी नीति (Leading) उत्तम है। अर्थात् जो उत्तम पथप्रदर्शक है। यह मंत्र यजुर्वेद (१९।५९) में तथा अथर्व वेद (१८।३।४४) में भी आया हुआ है।

त्वमग्न ईळितो जातवेदोऽवाड् ढव्यानि सुरभीणि कृत्वी। प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥ ऋ० १०।१५।१२

अर्थ– हे (जातवेदः अग्ने) जातवेदस् अग्नि ! (ईळितः त्वं) स्तुति किया गया तू (हव्यानि) हव्योंको (सुरभीणि कृत्वी) सुगंधित बनाकर (अवाट्) बहनकर (पितृभ्यः) उन हव्योंको पितरोंके लिए (प्रादाः) दे। (ते) वे पितर (स्वधया अक्षन्) उन हव्योंको स्वधाके साथ खावें। (देव) हे प्रकाशमान अग्नि ! (त्वं) तूभी (प्रयता हवींषि)

भावार्थ- अग्निकी स्तुति करने पर वह पितरोंके लिए हविको सुगंधित बना कर ले जाती है। और पितरोंको ले जाकर देती है ताकि वे खावें।

इस मंत्रसे ऐसा पता चलता है कि दूरस्थ पितरोंके पास हवि पहुंचानेका साधन अग्नि है। अतः अग्नि द्वारा दूरस्थ पितरोंको हवि पहुंचाना चाहिए।

[सूचना- अग्नि व पितर विषयक विशेष विवेचन अग्नि व पितर नामक शीर्षक के नीचे दिया गया है वहांसे पाठक देख सकते हैं। वहां पर अग्नि व पितर संबन्धी मंत्रोंकी संगति लगाकर उनका अभिप्राय दर्शाया गया है।]

जीवित पितरोंको अग्नि द्वारा हवि देनेसे तृप्ति नहीं हो सकती अतः अग्नि द्वारा हवि मृत पितरोंकोही दी जा सकती है और उसीके द्वारा वे तृप्त होसकते हैं। स्थूल रूपमें विद्यमान हवि जीवितोंके लिए उपयोगी है और अग्नि द्वारा सूक्ष्म रूपमें की गई हवि मृतों के लिए उपयोगी है। इस में हेतु यह है कि जीवित पितरोंका भौतिक देह उस अग्नि द्वारा की गई सूक्ष्म रूप हवि से तृप्त नहीं हो सकता यह बात निर्विवादही है। इसके प्रतिकूल मृत पितरोंका भौतिक देह नहीं है अर्थात् उनके पास स्थूल हविके ग्रहण करनेका एक मात्र साधन स्थूल शरीर नहीं है अतः उनके लिए स्थूल हवि निरुपयोगी है पर सूक्ष्म शरीरके अवशिष्ट होनेसे उसके संरक्षणके लिए उन्हें सूक्ष्म रूपमें हवि चाहिए जो कि अग्नि द्वारा उन्हें मिल सकती है और उससे वे तृप्त हो सकते हैं। जीवित दशामें स्थूल शरीर होते हुए भी सूक्ष्म शरीर विद्यमान रहता है व स्थूल शरीरके साथ साथ तृप्त होता रहता है। स्थूल शरीर की खौराकमेंसे सूक्ष्म शरीरको थोडा बहुत अंश मिलता रहता है पर स्थूल देहके अलग होजाने पर सूक्ष्म देहको स्थूल शरीरके द्वारा जो खौराक उपलब्ध होती थी वह बंद हो जाती है। अन्नके बिना देहकी स्थिति नहीं रह सकती अतएव अग्नि द्वारा सूक्ष्म देहको खौराक पहुंचाई जाती है। और यही कारण प्रतीत होता है कि अग्निको सर्वत्र कहा गया है कि वह मृत पितरोंके पास हवि ले जाए, उनको हवि लानेके लिए ले आए इत्यादि। हमारी समजमें अग्नि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

द्वारा मृत पितरोंको हवि पहुंचनेका कारण यही है कि उनके सूक्ष्म शरीरको अन्न मिलता रहे। मृत पितरोंको स्वसूक्ष्म देह संरक्षणार्थ हविकी आवश्यकता रहती है और अतएव वेदमें ऐसे मंत्र हमें उपलब्ध होते हैं।

इसके अनुसार इस मंत्रमें मृत पितरोंके उद्देश्य से हवि देनेका उल्लेख है ऐसा हम मान सकते हैं। यह मंत्र अथर्व वेद (१८।३।४२) में तथा यजुर्वेद (१९।६६) में भी आया हुआ है :

ये चेह पितरो ये च नेह याँश्च विद्म याँ उ च न प्र विद्म। त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञं सुकृतं जुषस्व ॥ ऋ० १०।१५।१३ ॥

अर्थ— (ये च इह पितरः) जो पितर यहां पर विद्यमान हैं, (ये च न इह) और जो पितर यहांपर विद्यमान नहीं हैं, (यान् च विद्म) और जिन पितरोंको हम जानते हैं, (यान् च न प्रविद्म) और जिन पितरोंको हम नहीं जानते, इस प्रकारके (यति ते) जितनेभी वे पितर हैं उन सबको (त्वं) तू (वेत्थ) जानती है। (स्वधाभिः) स्वधाओंके साथ (सुकृतं यज्ञं) उत्तम प्रकारसे किए हुए यज्ञको तू (जुषस्व) प्रीतिपूर्वक सेवन कर।

भावार्थ- जो पितर इस संसार में विद्यमान् हैं और जो नहीं हैं तथा जिनको हम जानते हैं और जिनको हम नहीं जानते अर्थात् जो हमारे जन्म सेभी पहिले इस लोकसे चले गए हैं उन सब पितरों को अग्नि जानती है।

पूर्व मंत्रमें मृत पितरों को हवि की आवश्यकता क्यों है यह दर्शाते हुए हमने यह भी दर्शाया था कि अग्नि द्वारा उन्हें हवि पहुंचाने में हेतु क्या है। इस मंत्र में अग्नि द्वारा हवि पहुंचाने का दूसरा हेतु दर्शाया गया है और वह यह कि अग्नि सब प्रकार के पितरों के विषयमें परिचय रखती है। अतएव वही एक ऐसी है कि जो पितरों के पास चाहे वे कहीं पर भी हों हवि पहुंचा सकती है। यह दूसरा हेतु है जिसके कि कारण अग्नि द्वारा हवि पहुंचाने का वेदमंत्रों में निर्देश है। अग्नि संबन्धी विशेष विवेचन हम पहिले अग्नि व पितर में कर आए हैं वहां से पाठक देख सकते हैं। यह मंत्र यजुर्वेद (१९।६७) में है।

ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते। तेभिः स्वराडसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयस्व ॥ ऋ० १०।१५।१४

अर्थ- (ये) जो पितर (अग्निदग्धाः) अग्नि द्वारा जलाए गए हैं, (ये) और जो (अनग्निदग्धाः) अग्नि द्वारा नहीं जलाए गए हैं ऐसे जो दोनों प्रकार के पितर (दिवः मध्ये स्वधया मादयन्ते) द्यु लोक के बीचमें स्वधासे आनन्दित हो रहे हैं (तेभ्यः) उन दोनों प्रकार के पितरों के लिए (स्वराट्) स्वयं प्रकाशमान अग्नि वा यम (यथावशं) कामना के अनुसार (एतां असुनीतिं तन्वं कल्पयस्व) इस प्राणों द्वारा ले जाए जानेवाले शरीर को बना।

भावार्थ-जिनका अंत्येष्टि संस्कार अग्निद्वारा किया गया है व जिनका अग्निद्वारा नहीं किया गया ऐसे द्यु लोक में रहनेवाले पितरों का पुनर्जन्म होता है।

असुनीति—जो प्राणों द्वारा ले जाया जावे। अर्थात् जिसका संचालन प्राणों द्वारा होता है। यह शरीर असुनीति है क्यों कि प्राण निकल जानेपर इसका संचालन बन्द हो जाता है।

अग्निदग्ध और अनग्निदग्ध

['ये निखाता ये परोप्ताः' इत्यादि अथर्व. १८।२।३४ में जो प्रेत के अंत्येष्टि संस्कार के चार प्रकार दर्शाए हैं उनमें से दग्ध को छोडकर शेष तीन संस्कार अर्थात् गाडना, बहाना और हवामें खुला छोडना इन विधियोंसे जिन प्रेतोंका अंत्येष्टि संस्कार हुआ है वे अनग्निदग्ध हैं तथा जिनकी अंत्येष्टि अग्नि से हुई है वे अग्निदग्ध हैं। सूचना- इसपर विशेष प्रकाश प्रेत व अंत्येष्टि नामक शीर्षक में डाला गया है। पाठक वहां से देख सकते हैं।]

अग्निष्वात्त व अनग्निष्वात्त

प्रसंगवश थोडासा यहांपर अग्निष्वात्त व अनग्निष्वात्त के विषयमें लिखना जरूरी है। उपरोक्त

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मंत्र (ऋ० १० । १५ । १४) यजुर्वेद (१९ । ६०) में आया हुआ है । वहांपर जो थोडासा पाठभेद है वह अग्निष्वात्त व अनग्निष्वात्त के अर्थ निर्णय को स्वयमेव कर देता है । ऋग्वेद का पाठ उपर हम दे आए हैं । यजुर्वेद का पाठ इस प्रकार है :-

ये अग्निष्वात्ता ये अनग्निष्वात्ता मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते । तेभ्यः स्वराडसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयाति ॥ यजुः १९ । ६०॥

इन दोनों मंत्रों की तुलना करने से पाठकों को दोनों मंत्रोंमें कितना व कहां पाठभेद है यह बात सुगमता से पता चल सकती है । ऋग्वेदस्थ मंत्रमें जहां 'अग्निदग्धाः' पद है वहांपर यजुर्वेदस्थ मंत्र में 'अग्निष्वात्ताः' ऐसा पद है । और इसी प्रकार ऋग्वेद के मंत्र में जहां 'अनग्निदग्धाः' है वहांपर यजुर्वेद के मंत्रमें 'अनग्निष्वात्ताः' ऐसा आया है । शेष भाग दोनों वेदों के मंत्र में सर्वथा समान है । थोडासा लकार व पुरुष भेद अंतिम पद में है और वह यह कि यजुर्वेदस्थ मंत्रमें 'कल्पयाति' है और उसके स्थानमें ऋग्वेदमें 'कल्पयस्व' है । इसका अभिप्राय यह हुआ कि-

अग्निदग्धाः = अग्निष्वात्ताः, और अनग्निदग्धाः =अनग्निष्वात्ताःअर्थात् जो अग्नि दग्धका अर्थ है वही अग्निष्वात्तका अर्थ है और जो अनग्निदग्धका अर्थ है वही अनग्निष्वात्त का। अनग्निदग्ध का अर्थ स्पष्ट ही है कि जो अग्निसे जला हुआ हो । अतः अग्निष्वात्तका भी अर्थ हुआ कि जो अग्नि से जला हुआ हो। इसी प्रकार अनग्निदग्धका अर्थ है कि जो अग्नि से न जला हुआ हो । अतः अनग्निष्वात्तका भी अर्थ हुआ कि जो अग्नि से न जला हुआ हो ।

'अग्निष्वात्ताः' का विग्रह इस प्रकार है-'अग्निना स्वात्ताः स्वादिताः ते अग्निष्वात्ताः ।' अर्थात् जिनका अग्नि ने स्वाद लिया है- जिनको अग्नि ने चखा है अर्थात् जिनको अग्नि ने जलाया है । इस प्रकार व्याकरण शास्त्र भी उपरोक्त कथन का ही पोषक है ।

अग्निष्वात्त के अर्थ के विषय में शतपथ का निम्न लिखित वचन है-

यानग्निरेव दहन्त्स्वदयति ते पितरो अग्निष्वात्ताः। श० २ । ६ । १ । ७॥

अर्थात् जिनको अग्नि ही जलाती हुई स्वाद लेती है वे पितर अग्निष्वात्त कहलाते हैं । इसका यह अभिप्राय हुआ कि जिनका अंत्येष्टि संस्कार अग्निद्वारा होता है वे अग्निष्वात्त पितर हैं। अंत्येष्टि संस्कार के बिना अग्नि को पितरों के जलाने का अन्य कोई अवसर ही नहीं। इस प्रकार शतपथ ब्राह्मणानुसार भी उपरोक्त विवेचन की पुष्टि होती है । अतः अग्निष्वात्तका अर्थ हुआ कि जिसका अंत्येष्टि संस्कार अग्नि से हुआ है और अनग्निष्वात्त का अर्थ हुआ जिसका अंत्येष्टि संस्कार अग्निसे नहीं हुआ है ।

अग्निष्वात्त व अग्निदग्ध के इस विवेचनानुसार उपरोक्त मंत्र में मृत पितरों का ही उल्लेख है यह साबित होता है।

संपूर्ण सूक्तका मंत्रवार सारांश ।

मंत्र १ ।

१ जीवित पितर संग्रामों में अथवा रक्षार्थ बुलाए जानेपर हमारी रक्षा करते हैं ।

मंत्र २ ।

२ प्राचीन, अर्वाचीन, पृथिवीस्थ आदि पितरों के लिए नमस्कार करना चाहिए ।

मं. ३ ।

३ बर्हिषत् पितरों को यज्ञ में बुलाना चाहिए ।

मं. ४ ।

४ बर्हिषत् पितरों को हवि देनी चाहिए ।

५ बर्हिषत् पितर हमारे रोग, भयादि को दूर करते हैं ।

मंत्र ५ ॥

६ पितर यज्ञमें आकर हमारी प्रार्थनाओं को सुनते हैं, हमें उपदेश देते हैं तथा हमारी रक्षा करते हैं ।

मंत्र ६ ॥

७ पितर यज्ञ में दांया घुटना टेककर बैठते हैं, व यज्ञ का स्वीकार करते हैं ।

मंत्र ७ ॥

८ पितर यज्ञ में बैठकर दानी मनुष्य को धन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

के पुत्रों को धन देते हैं। उसे अन्नादि देकर पुष्ट करते हैं।

मंत्र ८ ॥

९ सोमपान करनेवाले पुरातन मृत पितरों के साथ यम हवि को खाता है।

मंत्र ९ ॥

१० अग्नि देवत्व को प्राप्त किए हुए यज्ञादि में बैठनेवाले पितरों के साथ यज्ञमें आती है।

मंत्र १० ॥

११ पितर इन्द्र तथा देवों के साथ समान रथपर आरूढ होकर विचरण करते हैं।

मंत्र ११ ॥

१२ अग्निष्वात्त पितर बुलानेपर घरघर में आते हैं। हवियां खाते हैं व सर्ववीरगुणोपेत संतति देते हैं।

मंत्र १२ ॥

१३ अग्नि हव्यों को सुगंधित बनाकर ले जाती है व ले जाकर पितरों को खानेके लिए देती है।

मंत्र १३ ॥

जो पितर यहां हैं व जो यहां नहीं हैं, जिन पितरों को हम जानते हैं व जिनको हम नहीं जानते इत्यादि सर्व प्रकार के पितरों को अग्नि जानती है।

मंत्र १४ ॥

१५ द्युलोक के मध्यमें स्वधासे तृप्त होनेवाले पितर चाहे अग्निदग्ध हों चाहे अनग्निदग्ध हों, उनका पुनर्जन्म होता है।

३-ऋग्वेद मं.१० । सू०१६ ॥

इस सूक्तमें विशेषतः अंत्येष्टि संस्कार संबन्धी मंत्रों का उल्लेख है। इस सूक्तका देवता अग्नि है।

मैनमग्ने विदहो माभिशोचो मास्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम्। यदा शृतं कृणवो जातवेदोऽथेमेनं प्र हिणुतात् पितृभ्यः ॥

ऋ० १० । १६ । १॥

अर्थ—(अग्ने) हे अग्नि ! (एनं मा विदहः) इस प्रेत को इस प्रकार से मत जला कि जिससे इसे विशेष कष्ट प्रतीत हो। (मा अभि शोचः) इसे शोकाकुल मत कर। (अस्य त्वचं मा चिक्षिपः) इस की त्वचा अर्थात् चमडी को मत फैंक। इसके शरीर में विद्यमान त्वचा मांस आदि को इस प्रकार से जला दे कि कोई भी भाग अवशिष्ट न रहने पावे। (जातवेदः) हे जातवेदस् अग्नि! (यदा शृतं कृणवः) जब तू इस प्रेत को परिपक्व बना दे अर्थात् पूर्णतया जलादे (अथ) तब (एनं) इस प्रेतकी आत्मा को (पितृभ्यः प्रहिणुतात्) पितरोंके पास भेज दे अर्थात् पितृलोकमें इस प्रेत की आत्मा चली जावे।

प्रेत दहन के समय अग्नि से किस प्रकार की प्रार्थना करनी चाहिए इस बातका इस मंत्रमें उल्लेख है। इस मंत्र के उत्तरार्ध से एक महत्व पूर्ण बातका निर्देश मिलता है और वह यह है कि जब तक देह संपूर्णतया जल नहीं जाती अथवा संपूर्णतया नष्ट नहीं हो जाती तबतक आत्मा उस देह को छोडकर स्थानान्तर में नहीं जाती। उस देह के आसपासही मंडलाती रहती है। उस देहका मोह उसे खींचे रखता है। इस निर्देशानुसार आत्मा को देहसे शीघ्र मुक्त कराने के लिए व उसके लिए निर्धारित भावी स्थानपर शीघ्रतासे पहुंचाने के लिए शरीर का शीघ्र दहन करना ही अधिक उत्तम है, क्यों कि अग्निदहन के सिवाय शरीर को संपूर्णतया शीघ्र नष्ट करनेका अन्य कोई सुगम उपाय नहीं है।

मंत्र के चतुर्थ पाद से यह भी पता चल रहा है कि मृतात्मा शरीर से पृथक् होकर पितृलोक में जाती है। अग्नि आत्मा को पितृलोक में भेजती है। इस मंत्र से जो महत्व पूर्ण निर्देश मिलते हैं वे विशेष विचारणीय हैं। यह मंत्र अथर्ववेदमें थोडेसे पाठ भेदके साथ है। (अथर्व० १८ । २ । ४)

शृतं यदा करसि जातवेदोऽथेमेनं परिदत्तात् पितृभ्यः। यदा गच्छात्यसुनीतिमेतामथा देवानां वशनीर्भवाति ॥ ऋ० १० । १६ । २॥

अर्थ—(जातवेदः) हे जातवेदस् अग्नि! (यदा शृतं करसि) जब तू इस प्रेत को पूर्णतया पक्व अर्थात् दग्ध कर दे, (अथ) तब (एनं पितृभ्यः परि दत्तात्) इसको पितरों के लिए सौंप दे। (यदा) जब यह प्रेत (एतां असुनीतिं गच्छाति)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इस प्राणों के नयन को प्राप्त होता है अर्थात् जब इसके प्राण निकल जाते हैं (अथ) तब प्राणों के निकल जानेपर प्रेत (मृत शरीर), (देवानां वशनीः भवाति) देवोंके वश हो जाता है।

भावार्थ-अग्नि शरीर को पूर्णतया दग्ध करके आत्मा को पितृलोक में भेज देतो है। अग्निद्वारा पृथक् पृथक् हुएहुए शरीर के तत्त्व अपने अपने स्थानमें चले जाते हैं।

यह मंत्र अथर्ववेद (१८ । २ । ५) में भी आया है। इस मंत्रका पूर्वार्ध प्रथम मंत्रके उत्तरार्ध के समान है। आत्मा से युक्त शरीर के, जिस समय आत्मा शरीर से पृथक् होती है जिसे कि हम लौकिक भाषा में मरना कहते हैं, शरीर व आत्मा इस प्रकार दो विभाग हो जाते हैं। उन दो विभागों का आगे चलकर क्या होता है अर्थात् ये कहां कहां जाते हैं यह बात इस मंत्र में दर्शाई गई है। मंत्रके पूर्वार्ध में आत्मा का क्या होता है यह दर्शाया गया है तथा उत्तरार्ध में शरीर का क्या होता है यह दर्शाया गया है। पूर्वार्ध स्पष्ट है। उत्तरार्ध में कही गई बातका स्पष्टीकरण अगला मंत्र तीसरा स्वयं स्पष्ट कर रहा है। यहांपर सिर्फ इतना ही कहा गया है कि जब प्राण निकल जाते हैं तब यह मृत देह देवों के वश हो जाता है। यह मृत देह देवोंके वश किस प्रकार हो जाता है इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार से है-

सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा। अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रतितिष्ठा शरीरैः॥

ऋ० १० । १६ । ३॥

अर्थ- हे प्रेत! तेरी (चक्षुः सूर्यं गच्छतु) आंख सूर्य को जावे! (आत्मा वातं) तेरी आत्मा (प्राण) वायु को जावे। और हे प्रेत! (धर्मणा) धर्म से अर्थात् कर्म फल जन्य धर्म से अथवा पार्थिवादि तत्वों के धर्म से अर्थात् जो पार्थिव तत्व हैं वे पृथिवी में जा मिलें जो जलीय हैं वे जल में जा मिलें इत्यादि प्रकार से (द्यां च पृथिवीं च) द्यु व पृथिवी लोक को जा अर्थात् पार्थिव तत्व पृथिवी में जा मिले और जो द्युलोक का अंश हो वह द्युलोक में जा मिले। जहां जहां से जो जो अंश तेरे शरीर में आया हो, वहां वहां वह वह अंश चला जावे। (वा) अथवा (अपो गच्छ) जलों में जलीय अंश जावे। (यदि तत्र ते हितं) यदि वहां का कोई अंश तेरे में विद्यमान हो। और इसी प्रकार ओषधियों में शरीरांशों से स्थित हो अर्थात् ओषधिका अंश ओषधि में चला जावे।

भावार्थ-मरनेपर शरीर में विद्यमान तत्व अपने अपने स्थानपर जहां से आए हुए होते हैं वहां चले जाते हैं। सूर्यादि देवों के अंश उन उनमें वापिस चले जाते हैं। हरेक देव अपना अपना अंश शरीर से खींच लेता है।

इस प्रकार इस मंत्र में तृतीय मंत्रके चतुर्थ पाद 'अथ देवानां वशनीर्भवति' का स्पष्टीकरण किया गया है। यह मंत्र अथर्ववेद (१८ । २ । ७) में भी आया हुआ है।

अजो भागस्तपसा तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः। यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकम्॥

ऋ० १० । १६ । ४॥

अर्थ- हे अग्नि! इस प्रेतका जो (अजः भागः) अज अर्थात् न जन्म लेनेवाला भाग (आत्मा) है (तं) उसको तू (तपसा तपस्व) अपने तप से तपा। (तं) उस अज भाग को (ते शोचिः) तेरी दीप्यमान ज्वाला (तपतु) तपावे। (तं) उस अज भागको (ते अर्चिः) भासमान तेरी ज्वाला (तपतु) तपावे। और फिर (जातवेदः) हे जातवेदस् अग्नि! (याः ते शिवाः तन्वः) जो तेरे कल्याणकारी ज्वालायें रूपी तनू अर्थात् शरीर हैं (ताभिः) उन शरीरों द्वारा इस अज भाग को (सुकृतां लोकं) सुकर्म करनेवालों के लोक में (वह) प्राप्त करा।

भावार्थ- हे अग्नि! तू इस शरीर के अज भाग आत्मा को अपनी नाना गुण विशिष्ट ज्वालाओं से शुद्ध करके पुण्यलोकमें ले जा।

जैसा कि हम उपर दर्शा आए हैं कि मरने पर शरीर दो विभागोंमें विभक्त हो जाता है जिसमेंसे एक भाग तो मृत शरीर तथा दूसरा भाग अज

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

आत्मा है। मृत शरीर को क्या करना चाहिए तथा अग्निदाह के अनन्तर वह किस किस रूपमें कहां कहां जाता है यह तृतीय मंत्रमें स्पष्टरूपसे दर्शाया जा चुका है। द्वितीय मंत्रमें संकेतरूपसे अज भाग आत्माके लिए भी निर्देश किया जा चुका है। इस मंत्रमें उसीका विशदरूपसे वर्णन वा स्पष्टी करण है। वस्तुतस्तु तृतीय व चतुर्थ मंत्र द्वितीय मंत्रके ही स्पष्टीकरण हैं। जैसा कि पाठक स्वयं देख सकते हैं। इस मंत्रसे भी यही पता चलता है कि अग्नि ही मृतात्माको सुकृतोंके लोकमें लेजाती है। यह मंत्र भी अथर्ववेदमें (१८।२।८) में पाया जाता है।

अवसृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधाभिः। आयुर्वसान उपवेतु शेषः सं गच्छतां तन्वा जातवेदः॥ ऋ० १०।१६।५॥

अर्थ- (अग्ने) हे अग्नि! (यः) जो (ते आहुतः) तेरेमें अंत्येष्टिके समय आहुत किया हुआ (स्वधाभिः चरति) स्वधाओंसे विचरण करता है उसको (पुनः) फिर (पितृभ्यः) पितरोंके लिए लाकर छोड अर्थात् वह पुनर्जन्म ले। अथवा 'पितृभ्यः' को पंचमी मानकर भी अर्थ कर सकते हैं, और वह इस प्रकार कि फिर पितृलोकमें विद्यमान पितरोंसे लाकर इस संसारमें छोड। दोनों प्रकारके अर्थोंका भाव एकही है। दोनों प्रकारके अर्थोंमें विरोध नहीं है। इस प्रकार यह पुनर्जन्म लिया हुआ (शेषः) अपत्य (संतान) (उपयातु) कुटुंबियों को प्राप्त करे, तथा (जातवेदः) हे जात वेदस् अग्नि! (तन्वा संगच्छतां) वह अपत्य शरीरसे भली भांति संगत होवे अर्थात् उत्तम शरीर संपत्ति से संपन्न बने।

अथवा इस मंत्रका अर्थ निम्न लिखित प्रकारसे भी किया जा सकता है-

हे अग्नि! जो मृत पुरुष तेरेमें अंत्येष्टिके समय आहुत किया हुआ स्वधाओंसे विचरण कर रहा है उसे पितरोंके लिए दे अर्थात् उसे पितृलोकमें विद्यमान पितरोंके पास लेजाकर छोड। क्यों कि इस भावके अन्य मंत्र मिलते हैं जिनमें कि अग्निका मृत को पितृलोकमें पहुंचानेका उल्लेख है अतः यह अर्थ भी हो सकता है। यहां शेष अर्थात् पीछे शेष रह गई मृतकी संतान दीर्घायुको प्राप्त हुई हुई घरोंको वापिस जाए। वह संतान सुंदर शरीरको प्राप्त करे।

इस अर्थानुसार मंत्रके पूर्वार्धमें मृत पुरुषके लिए प्रार्थना की गई है व उत्तरार्धमें उस पुरुषकी जीवित संततिके लिए दीर्घायु आदिकी प्रार्थनाका उल्लेख है। शेष नाम संतान का है। 'शेष इत्यपत्य नाम शिष्यते इति'। निरु० ३।२॥

इस मंत्रसे अग्निके एक और विशेष कार्य का पता चलता है और वह यह कि पुनर्जन्मके लिए जीवात्माको पितरोंके पास पहुंचानेका कार्य भी अग्नि का ही है।

यह मंत्र थोडेसे पाठभेदके साथ अथर्व वेद (१८।२।१०) में भी आया हुआ है।

यत्ते कृष्णः शकुन आतुतोद पिपीलः सर्प उत वा श्वापदः। अग्निष्टद्विश्वादगदं कृणोतु सोमश्च यो ब्राह्मणाँ आ विवेश॥ ऋ० १०।१६।६॥

अर्थ-- हे प्रेत! (ते) तेरे (यत्) जिस अंगको (कृष्णः शकुनः) काले अनिष्टकारी पक्षीने (आतुतोद) पीडा पहुंचाई है, (उत वा) अथवा (पिपीलः, सर्पः श्वापदः) कीडी की जातिके जन्तुओंने वा, सर्पने या जंगली हिंसक पशुने तुझे पीडा पहुंचाई है, तो (अग्निः) अग्नि (विश्वात्) इन उपरोक्त सबसे (तत्) उस तेरे अंगको (अगदं कृणोतु) रोगरहित करे। (सोमः च) और सोम भी तेरे उस अंगको नीरोग करे। (यः) जो कि सोम (ब्राह्मणान् आविवेश) ब्राह्मणोंमें प्रविष्ट हुआ हुआ है।

भावार्थ- काले अनिष्टकारी पक्षी वा कीडी मकोडे आदि जन्तु, सर्पादि विषयुक्त प्राणियों व जंगली जनावरों से पहुंचाए गए कष्ट को अग्नि व सोम दूर करें।

जिनकी मृत्यु सर्पादि मंत्रोक्त प्राणियोंसे होती है उनकी अंत्येष्टिमें इस मंत्रका विनियोग होता है ऐसा इस मंत्रका अभिप्राय प्रतीत होता है। मंत्रके शब्दार्थ स्पष्ट हैं।

इन प्राणियोंसे काटे गए अंगोंको अग्नि नीरोग करती है इसका अभिप्राय यही प्रतीत होता है कि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वह उन प्राणियों के विषसहित उस अंगको ऐसा जला देती है कि फिरसे वह रोग औरोंमें नहीं जा सकता। उस शवकी भस्म में इन प्राणियोंके विषके जन्तु किसीभी अवस्थामें बचने नहीं पाते।

इस मंत्रमें सर्पादि विषैले प्राणी व जंगली हिंस्रक जानवरोंसे आक्रांत देह सोमसे ❀ भी नीरोग की जासकती है ऐसा कहा गया है।

अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व स प्रोर्णुष्व पीवसा मेदसा च। नेत्त्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधृग् विधक्ष्यन् पर्यङ्खयाते ॥ ऋ० १०।१६।७ ॥

अर्थ- हे प्रेत ! (गोभिः) घृतसे उत्पन्न हुई हुई (अग्नेः वर्म) अग्निकी ज्वाला रूपी कवचसे (परि व्ययस्व) अपनेको चारों ओरसे ढकले। अर्थात् अग्निकी ज्वालाओंके बीचमें तू हो जा जिससे कि तेरा पूर्ण रूपसे दहन हो सके। (सः) वह तू (पीवसा मेदसा) अपने अन्दर विद्यमान स्थूल चर्बीसे (प्रोर्णुष्व) अपने आपको आच्छादित कर। इस प्रकार करनेसे (हरसा धृष्णुः) अपने तेजसे धर्षण करने वाला, (दधृक्) प्रगल्भ, (जर्हृषाणः) अत्यन्त प्रसन्न हुआ हुआ अतएव (विधक्ष्यन्) तुझ प्रेतको विविधरूपसे जलाता हुआ अग्नि (त्वां) तुझे (नेत्) नहीं (पर्यङ्खयाते) इधर उधर बखेरेगा अर्थात् पूर्णरूपसे जलाकर भस्मावशेष कर डालेगा।

भावार्थ— मुरदेको जलाते हुए घी पर्याप्त मात्रामें डालना चाहिए ताकि अग्नि खूब जोरसे प्रज्वलित होकर उसे जला डाले। उसका कोईभी भाग जले बिना रहने न पावे।

इस सूक्तके प्रथम मंत्रमें अग्निसे कहा गया है कि हे अग्नि ! तू 'मास्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम्' अर्थात् इस प्रेतकी चमडी तथा शरीरको बिना जलाए हुए इधर उधर मत बखेर। संपूर्णतया इसे जलादे। यहां पर उसी संपूर्ण दहन को लक्ष्यमें रखते हुए मुरदेसे कहा गया है कि तू अग्निकी ज्वाला रूपी कवच को पहिन ले व अपने अंदर विद्यमान चर्बीसे अपने आपको लपेट ले जिससेकि अग्नि तुझे पूर्णतया जलादे। मंत्रका अभिप्राय यह है कि प्रेतका पूर्णरूपसे दहन होना चाहिए व उसके लिए पर्याप्त घृतका उपयोग करना चाहिए।

गो- घी। वेदमें गौसे उत्पन्न पदार्थोंका नाम भी गो शब्दसे कहा गया है। देखो निरुक्तमें गो शब्दकी व्याख्या। निरु० अ० २। पा. २ ॥

इममग्ने चमसं मा वि जिह्वरः प्रियो देवानामुत सोम्यानाम्। एष यश्चमसो देवपानस्तस्मिन् देवा अमृता मादयन्ते ॥ ऋ० १०।१६।८ ॥

अर्थ— (अग्ने) हे अग्नि ! (इमं चमसं) इस शरीररूपी चमसको (मा वि जिह्वरः) मत विचलित कर। क्योंकि यह चमस (देवानां उत सोम्यानां) देवों और सोम संपादन करने वालोंका (प्रियः) प्यारा है। (एषः) यह (यः) जो (चमसः) चमस है वह (देव पानः) देवपान है अर्थात् इसमें देव पान करने योग्य द्रव्यको पीते हैं। (तस्मिन्) उस चमसमें (अमृताः देवाः) अमरण शील देव (मादयन्ते) पान करके प्रसन्न होते हैं।

भावार्थ— यह शरीर देवोंके पान करनेका चमस है। यह देवोंका प्रिय है। इसमें देव पान करते हैं अतः हे अग्नि इस शरीर की दुर्दशा मत कर।

चमस- चमचा। यज्ञमें जिस पात्रमें सोम रस डालकर पान किया जाता है उसका नाम चमस है।

हम इसी सूक्तके दूसरे व तीसरे मंत्रमें देख आए हैं कि इस शरीरका किस प्रकार देवोंसे संबन्ध है। इसके अतिरिक्त स्थान स्थानपर वेदोंमें ऐसा वर्णन

❀ टिप्पणी— सोमके इस महत्त्व पूर्ण गुण को लक्ष्य में रखते हुए वैद्यों को चाहिए कि वे इस सोमका पता करें उसके द्वारा जनताकी इन दुष्ट प्राणियोंसे रक्षा करें। वेदमें सोम विषयक अनेक सूक्त हैं जिनका समन्वय करके सोमके विशेष गुणोंका पता करना चाहिए व उसे प्राप्त करनेका प्रयत्न करना चाहिए। यदि यह महत्त्व पूर्ण औषध प्राप्त हो गई तो इन दुष्ट प्राणियों द्वारा होनेवाली जनताकी आकस्मिक मृत्युके कम होनेके साथ साथ जनताका बडा उपकार होगा। अतः सुज्ञ वैद्योंको चाहिए कि वे इस ओर अपना शीघ्रही ध्यान आकर्षित करें। ऋ० मं० ९ सम्पूर्ण तथा १० वें मण्डलके कुछ सूक्त सोम विषयक हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

है। अथर्व वेद १० काण्ड सू० २ में भी ऐसा ही वर्णन है।

अबतक के मंत्रों में अंत्येष्टि संबन्धी वर्णन किया गया है। अगले तीन मंत्रोंमें क्रव्याद् ꣳ अग्निको उपलक्ष्य करके कहा गया है। इस अंत्येष्टि संस्कार में प्रयुक्त अग्नि का नाम क्रव्याद् अग्नि है ऐसा जान पडता है। क्रव्याद् अग्नि का अर्थ है मांस भक्षक अग्नि। और यह मांस भक्षण अंत्येष्टि में शव दहन द्वारा अग्निको करना पडता है। जैसा कि अबतकके मंत्रों द्वारा स्पष्ट है। इस प्रकार शवके खानेसे मांस भक्षक (क्रव्याद् अग्नि) इस अग्नि का क्या करना चाहिए इस विषयमें अगले तीन मंत्र प्रकाश डाल रहे हैं।

क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु
रिप्रवाहः। इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो
हव्यं वहतु प्रजानन्॥ ऋ. १०। १६। ९॥

अर्थ- (क्रव्यादं अग्निं दूरं प्रहिणोमि) मांस भक्षक अग्नि को दूर भिजवाताहूं। (रिप्रवाहः) पाप का वहन करने वाली वह अग्नि (यमराज्ञः) गच्छतु) जहां का यम राजा है उन प्रदेशों को चली जावे। (इह) यहांपर (अयं इतरः जातवेदाः प्रजानन्) यह दूसरी क्रव्यात् अग्नि से भिन्न जातवेदस् अग्नि सर्व कर्मों को यथावत् जानती हुई (देवेभ्यः हव्यं वहतु) देवोंके लिए हव्यों का वहन करे अर्थात् उन्हें पहुंचावे।

भावार्थ- यह शव दहन करने वाली अतएव मांस भक्षक (क्रव्यात्) अग्नि फिर लौटकर हमारे घरों में वापिस न आजावे अतः मैं इसे दूर भेज देता हूं वह यम लोक में चली जावे। यहां के कार्य संपादन करने के लिए जातवेदस् अग्नि है। वही देवोंके लिए हव्यों का वहन करती रहे।

इस मंत्रमें क्रव्यात् अग्निको यमराजके देशों में भेजनेका उल्लेख है। इससे ऐसा पता चलता है कि शवदहनानन्तर वह क्रव्यात् नाम पाई हुई अग्नि पृथिवी लोकसे यम लोकमें जाती है। प्रथम द्वितीय व चतुर्थ मंत्रों के साथ इस मंत्रपर विचार करनेसे यह परिणाम निकलता है कि शवदाहके अनन्तर यह क्रव्यात् अग्नि आत्माको यमलोकस्थ पितृलोक में ले जाती है। एकवार जिस अग्नि से शवदहन किया जा चुका वह अग्नि फिर देवोंके लिए हव्यादि के वहन के लिए अर्थात् यज्ञादि कर्म के लिए उपयुक्त नहीं रहती यह बात भी इस मंत्र से स्पष्ट होती है।

क्रव्यात्-क्रव्य=मांस, उसका भक्षक क्रव्यात्। निरु० अ. ६। पा. ३। खं १२॥

रिप्रवाहः-रिप्रं पापं तस्य वोढा। निरु० अ० ४। पा. ३। खं. २१॥

यह मंत्र यजुर्वेद (३५। १९) में तथा अथर्ववेद (१२। २। ८) में भी आया हुआ है।

यो अग्निः क्रव्यात् प्रविवेश वो गृहमिमं पश्य-
न्नितरं जातवेदसम्। तं हरामि पितृयज्ञाय
देवं स घर्ममिन्वात् परमे सधस्थे॥
ऋ० १०। १६। १०॥

अर्थ- (यः क्रव्यात् अग्निः) जो मांसाहारी अग्नि (इमं इतरं जातवेदसम् पश्यन्) इस दूसरी जातवेदस् नामक अग्निको देखकर (वः गृहं प्रविवेश) तुम्हारे घर में घुस गई है (तं) उस (देवं) देदीप्यमान-अत्यन्त प्रकाशमान क्रव्यात् अग्निको (पितृयज्ञाय हरामि) पितृ यज्ञके लिए हरता हूं हटाता हूं। (सः) वह क्रव्यात् अग्नि (परमे सधस्थे) परम सधस्थ में (घर्मं) यज्ञको (इन्वात्) प्राप्त करे।

भावार्थ- तुम्हारे घरों में जातवेदस् अग्नि के रहते हुए भी जो क्रव्यात् अग्नि घुस गई है उसे मैं दूर करता हूं ताकि तुम पितृयज्ञ कर सको। यह अग्नि परमलोकमें यज्ञ को प्राप्त करती रहे।

इस मंत्र से पूर्व के मंत्र में क्रव्यात् अग्निको दूर भगाकर यमलोकमें भेजनेका निर्देश है। उस मंत्रके साथ इस मंत्र की संगति लगाने के लिए व विरोध हटानेके लिए इस मंत्रके 'तं हरामि पितृयज्ञाय देवं' इस तृतीय पाद का अर्थ ऐसा करना चाहिए कि 'पितृयज्ञ करने के लिए उस क्रव्यात् अग्निको हटाता हूं'। अर्थात् यह क्रव्यात् अग्नि पितृयज्ञके

ꣳ टिप्पणी— क्रव्याद अग्नि के विषयमें विशेष वक्तव्य हम पहिले 'अग्नि और पितर' नामक प्रकरण में प्रकाशित कर आए हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

लिए अनुपयुक्त है। वह तो परमसधस्थ जो यम लोक है उस में चली जावे और वहीं पर अपने भागको प्राप्त करती रहे। इस प्रकार इस मंत्र का अर्थ पूर्व मंत्रके भाव को लक्ष्य में रखते हुए करने से दोनों मंत्रोंकी संगति की जा सकती है। क्रव्यात् अग्निका घरों मेंसे निकालने का व उसे यम लोकमें भेजनेका अभिप्राय जनतामेंसे मृत्यु दूर करने का अभिप्राय प्रतीत होता है।

परम सधस्थ- वह बडा स्थान जिसमें सब इकट्ठे रहते हैं। यहांपर पूर्व मंत्र के साहचर्य से यम लोक ऐसा अर्थ है। वैसे तो यमलोकभी परम सधस्थ है ही।

यह मंत्र कुछ पाठभेद के साथ अथर्ववेद (१२। २। ७) में आया है।

इस प्रकार यहांपर क्रव्यात् अग्निका विषय समाप्त हो जाता है। अब आगेके मंत्रों में अग्निके प्रति सामान्य कथन का उल्लेख है।

यो अग्निः कव्यवाहनः पितॄन् यक्षदृतावृधः।
प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्य आ॥
ऋ० १०। १६। ११॥

अर्थ- (यः अग्निः) जो अग्नि (कव्यवाहनः) कव्य का अर्थात् पितरों की हविका वहन करनेवाली है और जो (ऋतावृधः) यज्ञ वा सत्य से बढने वाले (पितॄन्)पितरों का यजन करती है वह अग्नि, (देवेभ्यः पितृभ्यः च हव्यानि प्रवोचति) देवों और पितरोंके लिए हव्यों का प्रवचन करे अर्थात् वह देवों व पितरोंको कहे कि मैं तुम्हारे लिए यह हवि ले आई हूं।

भावार्थ- अग्नि पितरों का कव्य से सत्कार करती है व उनके लिए तथा देवों के लिए मनुष्यों द्वारा दी गई हवियों का वहन करती है।

कव्य- उस हव्य का नाम है जो कि पितरों के उद्देश्य से दिया जाता है।

ऋतावृधः- ऋत नाम है यज्ञ व सत्य का। जो यज्ञ व सत्य के बढाने वाले अथवा जो सत्य व यज्ञ से बढने वाले हों।

यह मंत्र यजुर्वेद (१९।६५) में है।

उशन्तस्त्वा निधीमह्युशन्तः समिधीमहि।
उशन्नुशत आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे॥
ऋ० १०। १६। १२॥

अर्थ—हे अग्नि! (उशन्तः) तेरी कामना करते हुए हम (त्वा) तेरी (निधीमहि) स्थापना करते हैं। और (उशन्तः) तेरी कामना करते हुए हम (समिधीमहि) तुझे प्रदीप्त करते हैं। (उशन्) हमारी कामना करती हुई हे अग्नि! तू (हविषे अत्तवे) हविके खानेके लिए (उशतः पितॄन्) कामना करते हुए पितरोंको (आवह) प्राप्त करा-ले आ।

भावार्थ- हे अग्नि! हम यज्ञादिमें तेरी कामना करते हुए तेरी स्थापना करें व तुझे प्रकाशित करें। तू हमारे यज्ञोंमें पितरोंको हवि खानेके लिए ले आया कर।

इस मंत्रमें अग्नि पितरोंको यज्ञादिमें हवि भक्षणार्थ ले आती है ऐसा हमें निर्देश मिलता है। अग्नि पितरोंको यज्ञादिमें हवि भक्षणार्थ किस प्रकार ले आती है यह एक विचारणीय समस्या है। पाठक इस पर विचार कर प्रकाश डाल सकेंगे तो बडा अनुग्रह होगा।

यह मंत्र यजुर्वेद (१९।७०) में व अथर्ववेद (१८।१।५६) में भी आया हुआ है।

अगले दो मंत्रोंमें श्मशानभूमिके उस स्थानका वर्णन प्रतीत होता है जहां कि मुरदा जलाया गया हो।

यं त्वमग्ने समदहस्तमु निर्वापया पुनः।
कियाम्ब्वत्र रोहतु पाकदूर्वा व्यल्कशा॥
ऋ० १०। १६। १३॥

अर्थ— (अग्ने) हे अग्नि! (यं) जिस प्रेत को तूने (समदहः) जलाया है (तं उ) उसे (पुनः) फिर सम्पूर्णतया दहन हो चुकने पर (निर्वापय) बुझा डाल। (अत्र) इस मुर्दे के जलनेके स्थान पर (कियाम्बु) कितना जल छिडकना चाहिए कि जिससे (व्यल्कशा) विविध शाखाओं वाली (पाक. दूर्वा) परिपक्व दूर्वा घास (रोहतु) उगे।

भावार्थ – शवके सम्पूर्णतया दहन हो चुकने पर आग को बुझा डालना चाहिए व वहां पर इतना पानी छिडकना चाहिए कि जिस से फिर से वहां पर दूर्वा घास निकल आवें।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इस मंत्र से ऐसा ज्ञात होता है कि शव का पूर्ण दहन हो चुकनेपर उसआग को बुझाकर ही घर वापिस लौटना चाहिए। अग्नि को विना बुझाए जलती अवस्थामें ही श्मशान भूमि से नहीं जाना चाहिए। आगको भी इतना पानी डालकर बुझाना चाहिए कि उस आग से जो जमीनपर परिणाम हुआ है वह दूर हो जावे और उसपर पुनः नाना शाखाओंवाली दूर्वाघास उग सके और जमीन वैसी की वैसी ही फिरसे हरीभरी हो जावे। इसके लिए यह भी आवश्यक है कि जिस स्थानपर एक शवको जलाया गया हो वहांपर पुनः दूसरा शव नहीं जलाना चाहिए। इस मंत्र से श्मशान भूमि संबन्धी वैदिक कल्पना की जा सकती है और इस कल्पना के अनुसार वर्तमान समय की श्मशान भूमियों के विषयमें विचार पाठक स्वयंकर सकते हैं व श्मशान भूमिके वास्तविक स्वरूप को समझ सकते हैं। इस प्रकार यह मंत्र अंत्येष्टि क्रिया की समाप्ति किस प्रकार से होनी चाहिए इस बातपर विशेष प्रकाश डाल रहा है।

शीतिके शीतिकावति ह्लादिके ह्लादिकावति।
मण्डूक्यासु सङ्गम इमं स्वग्निं हर्षय॥
ऋ० १०।१६।१४॥

अर्थ- (शीतिके) हे शैत्ययुक्त ! (शीतिकावति) हे शैत्य गुणसंपन्न ओषधियोंवाली ! (ह्लादिके) हे हर्षित करनेवाली ! (ह्लादिकावति) तथा हे आनन्दित करनेवाले फलफूल युक्त वृक्षोंवाली पृथिवी ! (मण्डूक्या) मेंडकी के साथ (सु सङ्गम) अच्छीतरह संगत हो अर्थात् तेरे में इतना अधिक पानी हो कि मेण्डक आनन्द से तेरे अन्दर रह सकें। मेण्डक पानीवाली जमीन में रहता है। अतः मेंण्डकी के साथ संगत होनेका अभिप्राय यह है कि जमीन अत्यंत जलवाली हो। (इमं अग्निं सुहर्षय) इस अग्नि को आनन्दित कर अर्थात् यह पूर्ण रूप से तेरेपर प्रज्वलित हो सके।

पूर्व मंत्रके कथनानुसार जल छिडकने से पृथिवी का कैसा स्वरूप हो जायगा यह इस मंत्र में दर्शाया गया है ऐसा जान पडता है परन्तु इस मंत्र के चतुर्थ पादका संपूर्ण मंत्र के साथ कैसे संगतिकरण किया जा सकता है यह विचारणीय है। चारों पादों को मिलाकर इस मंत्रका भाव व्यक्त नहीं होता है। सुज्ञ पाठक इसपर विचार करके उचित परिणामपर पहुंच सकेंगे ऐसी आशा है।

इस प्रकार यह सूक्त यहांपर समाप्त होता है। सामान्यतया इस सूक्तमें अंत्येष्टि पर विचार किया गया है यह पाठक स्वयं जान सके होंगे। इसपर विशेष विचार करना पाठकों के उपर निर्भर है।

सम्पूर्ण सूक्तका मंत्रवार सारांश।

मंत्र १।

१ अग्नि मृत देहको सम्पूर्णतया जला देनेपर आत्मा को पितृलोक में भेजती है।

२ इसका अभिप्राय यह हुआ कि जबतक मृत देह रहती है तबतक उसकी आत्माभी वहीं रहती है।

मंत्र २ व ३।

३ शरीर के पूर्ण रूपसे जल जानेपर देहके घटक अपने अपने स्थानपर चले जाते हैं अर्थात् हरेक देव अपना अपना अंश वापिस लौटा लेता है। आंख सूर्य में चली जाती है, प्राण वायुमें जा मिलाते हैं इत्यादि।

मंत्र ४।

४ शरीर का जो अज भाग आत्मा है उसे अग्नि अपनी नानाविध अर्चियों से शुद्ध कर के सुकृतों के लोक में ले जाती है।

मंत्र ५।

५ अग्नि फिर जीवात्मा को पितृलोक से वापिस लौटा लाती है व इहस्थ पितरों को सौंपती है अर्थात् पुनर्जन्म देती है।

मंत्र ६।

६ काले पक्षी से, कीडीमकोडे आदि छोटे छोटे जन्तुओं से, सर्पादि से तथा जंगली हिंसक जानवरों से पहुंचाए गए कष्टों का अग्नि निवारण करती है।

७ सोम भी यही कार्य करता है।

मंत्र ७।

८ शवके पूर्ण दहनके लिए घृत की पर्याप्त मात्रा डालनी चाहिए जिस से कि अग्नि की बडी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ज्वालाएं निकलें व शवको शीघ्र ही भस्माव-शेष कर डालें।

मंत्र ८।

९ यह शरीर सूर्यादि देवों का रसपान करनेका चमस है। इसीमें ये देव अपने अपने अंश से आकर बसते हैं।

मंत्र ९।

१० क्रव्यात् अग्नि पाप का वहन करनेवाली है। उसका वास स्थान यमलोक है।

११ वह यज्ञादि कार्यों के लिए अनुपयुक्त है।

मंत्र १०।

१२ क्रव्यात् अग्नि को घरमें प्रविष्ट नहीं होने देना चाहिए। उसे घरों में से निकाल डालना चाहिए।

मंत्र ११।

१३ अग्नि पितरों के निमित्तसे दी गई हविका वहन करती है। वह देवों व पितरों की हवि द्वारा पूजा करती है।

मंत्र १२।

१४ अग्नि पितरों को हवि खाने के निमित्त ले आती है।

मंत्र १३।

१५ शव के पूर्ण दहन के अनन्तर अग्नि को बुझा डालना चाहिए।

१६ वहांपर इतना अधिक पानी डालना चाहिए कि नाना शाखाओंवाली दूर्वाघास उग आवे।

१७ और इसके लिए जहांपर एक शवका दहन किया गया हो वहांपर दूसरे का नहीं करना चाहिए अन्यथा पानी डालने से अग्नि का प्रभाव दूर न हो सकेगा व उस स्थानपर घास न उग सकेगी।

मंत्र १४।

१८ जमीन इतनी पानी से तरबतर होनी चाहिए कि उसके गर्भ के अंदर मण्डूक निवास कर सकें।

४-ऋग्वेद०मं०। १० सू०१३५

इस सम्पूर्ण सूक्तका देवता यम है। यमका अर्थ इस सूक्तमें क्या है यह एक विचारणीय विषय है। यास्काचार्यने निरुक्तमें इस मंत्रमें आए हुए यमका अर्थ आदित्य किया है। नि० १२।२९। परन्तु इस स्थापनाके अनुसार सम्पूर्ण सूक्त लगाना पर्याप्त कठिन है। जो कि सायणाचार्यने लगानेका प्रयत्न किया है। सम्पूर्ण सूक्तमें आलंकारिक वर्णन प्रतीत होता है पर वह अलंकार अभीतक हमारे ध्यानमें नहीं बैठा है। अतः यहांपर हम सायणाचार्यका भाष्य व महाशय ग्रिफित (Griffith) का अंग्रेजी अनुवाद तत् तत् मंत्रके साथ देंगें। इसके अतिरिक्त किसी मंत्रपर यदि विशेष सामग्री मिलेगी तो उसे हम टिप्पणीके रूपमें पाठकोंके सामने रखेंगे। जो भी सामग्री सूक्तपर प्रकाश डालनेके लिए हमारे सामने उपस्थित है वह सबकी सब प्रकशित कर दी जायगी ताकि विचारकोंको सामग्री जमा करने के लिए विशेष प्रयत्न करना न पडे।

यस्मिन् वृक्षे सुपलाशे देवैः संपिबते यमः।
अत्रा नो विश्पतिः पिता पुराणाँ अनुवेनति॥
ऋ. १०।१३५।१॥

सायणभाष्य- (वृक्षे) यह लुप्तोपमा है। वृक्षकी तरह (सुपलाशे) शोभन उद्यानसे युक्त, अथवा सुन्दर पत्तोवाले वृक्षमें। इस प्रकारके वृक्षका मूल जिस प्रकार गरमी आदिके दूर करनेसे सुखकर होता है उस प्रकार सुखकर जिस स्थानमें (देवैः) परिजन भूत देवों के साथ (यमः) नियंता वैवस्वत (विवस्वान् का पुत्र) (सं पिबते) पान करता है। (विश्पतिः) प्रजाओंका अधिपति (नः पिता) मुझ नचिकेताका जनक वाजश्रवस (अत्र) इस यमके स्थानमें (पुराणान्) यहांपर चिरकालसे निवास करते हुए पितरोंके (अनु) समीप यह नचिकेता रहे इस प्रकार की मेरे लिए कामना करता है। 'नः' यहांपर व्यत्ययसे बहुवचन हुआ हुआ है। नचिकेता नामके कुमारको वाचश्रवस पिताने यम लोक भेज दिया था। वहांपर वह यमको प्रसन्न कर के फिर इस लोकमें वापिस लौट आया था। यह बात इन मंत्रोंसे प्रतिपादन की जा रही है। अथवा कुमार नाम वाला नचिकेतासे भिन्न दूसरा कोई ऋषि था। उसने यम (यच्छतीति यमः आदित्यः) अर्थात् आदित्य की इस सूक्तद्वारा स्तुतिकी-उत्तम

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पत्तोंवाले वृक्ष की तरह सुंदर स्थानमें(यमः)आदित्य (देवैः संपिबते) रश्मियों के साथ गमन करता है। उपसर्ग के साथ आने से पिबति यहांपर गत्यर्थक है। व्यत्यय से आत्मनेपद हुआ हुआ है। (अत्र) इस स्थान में स्थित (विश्पतिः) प्रजाओं का प्रकाश वर्षा आदि देनेसे पालक और प्राण रूपसे सब का जनक वह आदित्य (पुराणान्) पुरातन स्तुति करनेवाले हम लोकों की (अनुवेनति) अनुग्रह पूर्वक कामना करता है। अथवा इस स्थान में स्थित हमारे पूर्व पुरुषों की (अनुवेनति) अनुक्रमसे कामना करता है। ७

ग्रिफित- सुन्दर पत्तों से युक्त वृक्ष में यम देवों के साथ पान करता है। पिता, जो कि घरका स्वामी है वह हमारे पुरातन पितरों को प्रसन्न करे।

वृक्षः= जहां पर कि श्रेष्ठ मृत आत्मायें कर्मों की थकान्द को दूर करने के लिए विश्रान्ति लेती हैं।
पिताः= यम।

पुराणां अनुवेनन्तं चरन्तं पापयामुया।
असूयन्नभ्य चाकशं तस्मा अस्पृहयं पुनः॥
ऋ० १० । १३५ । २॥

सायणभाष्य- (पुराणान् अनुवेनन्तं) पुरातन पितरोंके प्रति मेरे अनुगमन करने की कामना करते हुए अर्थात् मैं पुरातन् मृत पितरों का अनुगमन करूं यानि यम लोक में जाऊं इस प्रकार की इच्छा करते हुए (अमुया पापया चरन्तं) इस पापपूर्ण निकृष्ट बुद्धि के साथ वर्तमान पिता वाजश्रवस को (सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए मुझको पिताने मृत्यु के पास जा इस प्रकार कहा अतः) (असूयन्) मानसिक दुःख से दुःखित हुए हुए मैंने (नचिकेताने) सबसे पहिले देखा। अर्थात् जब मैं सुख पूर्वक जीवन व्यतीत कर रहाथा, ऐसी हालत में जब पिताने मुझे यह कहा कि मृत्यु के पास जा तो मैंने बडी दुःख भरी निगाह से उसकी ओर देखा और फिर (तस्मै अस्पृहयम्) पिता की आज्ञानुसार उस मृत्यु को प्राप्त करने की इच्छा की।

---

७ टिप्पणी— यह मंत्र निरुक्त १२।२९ में इस प्रकार से व्याख्यात है-

यस्मिन् वृक्षे सुपलाशे स्थाने वृतक्षेये वा, अपि वोपमार्थे स्याद् वृक्ष इव सुपलाशे इति। वृक्षो व्रश्चनात्, पलाशं पलाशदनात्। देवैः संगच्छते यमो रश्मिभिरादित्यः। तत्र नः सर्वस्य पाता वा पालयिता वा पुराणाननुकामयेत।

दुर्गाचार्य ने जो इस निरुक्त भष्य पर वृत्ति लिखी है वह निम्न लिखित है-

यमः　यस्मिन्वृक्षे सुपलाश इति। कुमारस्य यामायनस्यार्षम्। यस्मिन् वृक्षे आदित्ये। स हि स्वगत्या कालमतिक्रामयन् सर्वभूतानामायूंषि क्षपयति। 'वृश्चतीति वृक्षः। वृतः क्षये वा' पुण्यकृद्भिर्वृतो निवास इत्यर्थः। सुपलाशे सुष्ठु पराशीर्णमले दीप्तिमति देवैः सह अस्तं गच्छन्नादित्यः। तत्र

'सुपलाशे'वृक्षे इत्यस्य विशेषणम्　कमिति। अत्र नः अस्मान् पुण्येन कर्मणा विद्यया च तत्प्रापिकया गतात्मनः पुराणान् इव तन्निवासिनः अनुवेनतु कामयतु। संप्रीणतामित्यर्थः।

'वृक्षे इव सुपलाशे इति' ऐतिहासिक पक्षे। स्वगृहमुपगतानस्मान् सुपलाशवृक्षप्रख्यं सुखनिवासं पितृराजो यमः पुराणान् इव तल्लोकनिवासिनः पितृन् अनु कामयतु। अस्मिन् पक्षे देवैः संपिबते इति तदनुचारिणो गृह्यन्ते देवा इति।

अथवा वृक्षे इव सुपलाशे इत्युपमा

निरुक्तकार यास्काचार्य की सम्मतिमें यहां यमका अर्थ आदित्य ऐसा है। जैसा कि सायणाचार्यने भी मानकर तदनुसार एक अर्थ किया है। ऊपर दी गई दुर्गाचार्य की वृत्ति से पता चलता है कि ऐतिहासिक पक्ष वालोंके मत में इस सूक्तमें भी यम वही है जो कि पितृलोक वा यमलोक का राजा है जहां कि मरकर सब जाते हैं। अस्तु तथापि ये पक्ष विशेष विचार की अपेक्षा रखते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

(आदित्य के पक्षमें) अथवा (पुराणान्) पुरातन स्तुति करनेवाले पितरों की अनुक्रमसे कामना कर ते हुए (चरंतं) उदय और अस्त के रूपमें द्युलोक-में परिभ्रमण करते हुए आदित्य की ओर (असूया पापया) इस निकृष्ट बुद्धिद्वारा (असूयन्) निन्दा करता हुआ कि यह आदित्य सामान्य सी वस्तु है इस प्रकार से (अभ्यपश्यं) मैंने दृष्टि पात किया। असूया- गुणों में दोषारोपण करना । (पुनः) अब फिर उस आदित्यकी महिमा को जानता हुआ (तस्मै अस्पृहयं) उस आदित्य को, स्तुतियों द्वारा व परिचर्यादि कर्मों द्वारा प्राप्त करने की इच्छा करता हूं।

ग्रिफित- मैंने उसकी ओर अनिच्छा से देखा जो कि पुरातन कालीन मनुष्यों के साथ बडी नरमाईसे व्यवहार करता है और जो बुराई के मार्ग को कुच-ल डालता है। और तब मैंने इस संसार में पुनः लौट ने की इच्छा की।

म. ग्रिफित के अनुसार यह मंत्र कुमार की आ-त्मा की उक्ति है।

यं कुमार नवं रथमचक्रं मनसा कृणोः।
एकेषं विश्वतः प्रांचमपश्यन्नधि तिष्ठसि ॥
ऋ० १० । १३५ । ३॥

सायणभाष्य—नचिकेता नामवाले कुमार को यम इस ऋचासे व अगली ऋचासे ललचानेका प्रयत्न करता है-हे कुमार। (नवं) बिलकुल नया जिसको कि इससे पहिले तूने कभी नहीं देखा और जो (अचक्रं) पहियों से रहित व (एकेषं) एकेष है तो भी (विश्वतः प्रांचं) सर्वत्र प्रकर्ष रूपसे गति करता है ऐसे (यं रथं) मेरे पास आनेके लिए अध्यवसाय रूपी जिस रथ को तूने (मनसा अकृ-णोः) मन से बनाया और बनाकर (अपश्यन्) कर्तव्य अकर्तव्य विभागको न जानता हुआ उस रथ पर तू (अधितिष्ठसि) सवार हुआ हुआ है। आदित्य के पक्षमें-अथवा स्तुतिकरनेवाले कुमार नामक ऋषि को आदित्य प्रत्यक्ष हुआ हुआ देह व आत्मा के विवेकको बतला रहा है-हे कुमार ऋषि ! चक्रसे रहित (एकेषं) एक प्राण ईषा स्थानीय है जिसका ऐसे इस अभिनव, सर्व ओर गति करनेवाले शरीररूपी जिस रथको अन्तःकरण द्वारा तूने किया है उस शरीररूपी रथको मेरा स्वरूप न जानने के कारण न जानता हुआ, भोगायतन के स्वरूपमें स्वीकार करता है अर्थात् शरीर से भोग भोगता है।

मनद्वारा शरीर का निर्माण इस प्रकार से होता है- संकल्पात्मक मनसे काम अर्थात् इच्छा उत्पन्न होती है। कामना उत्पन्न होने पर पुण्यात्मक वा अ-पुण्यात्मक कर्म किया जाता है। और उस कर्मद्वारा भोग देनेके लिए इस शरीर का आरंभ होता है। इस प्रकार परंपरा रूपसे मन का शरीर निष्पादक-त्व है।

ग्रिफित—हे कुमार ! यद्यपि तू नये चक्र रहित रथपर चढता है पर उसे देखता नहीं है। जिस रथ को कि तूने मनद्वारा बनाया है जो कि एकेष (one-poled) होता हुआ भी सर्वत्र गति करता है।

एकेष—एक है ईषा जिसको। ईषा-धुरा।

इस मंत्रमें कुमार के प्रति यमकी उक्ति है ऐसा म. ग्रिफित का कथन है।

यं कुमार प्रावर्तयो रथं विप्रेभ्यस्परि।
तं सामानु प्रावर्तत समितो नाव्याहितं ॥
ऋ० १० । १३५ । ४॥

सायणभाष्य— हे कुमार नचिकेता ! (यं रथं) जिस पूर्वोक्त अधिष्ठित रथको जिसमें कि तू सवार होकर आया है (विप्रेभ्यः परि) मेधावी-ज्ञानी लो-कों के ऊपर से अर्थात् अंतरिक्ष में से मेरे पास (प्रावर्तयः) ले आया है, (तं) उस रथका जो कि रथ (नावि सं आ हितं) नौका कि तरह तारने-वाली बुद्धि में स्थित है उसका (साम) पिताद्वारा की गई सान्त्वनाने (अनु प्रावर्तत) अनुगमन कि-या है। अर्थात् जब तू भूलोक से संकल्परूपी रथमें चढकर आया तब तेरी रक्षार्थ तेरा अनुकरण पिता की सान्त्वनाने किया।

आदित्य के पक्षमें-अथवा हे कुमार ऋषि ! तूने जिस शरीररूपी रथ को उसपर सवार होकर सं-सार में प्रवृत्त किया है, उस रथके पीछे पीछे मेधा-वियों के बीचमें साम अर्थात् ऋक् सामादि साध्य स्तोत्र व (नावि) नौका की तरह तारक वेदरूपी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वाणी में स्थित कर्म इस लोकसे प्रवृत्त होते हैं। उसका अनुकरण करते हैं।

ग्रिफित- हे कुमार! जिस रथ को तूने इस मार्ग से पितरों के बीचमें से चलाया है उस रथका साम ने इस लोकसे अनुकरण किया है अर्थात् साम उस के पीछे पीछे आया है। जो कि रथ नौकापर रखा हुआ है।

कः कुमारमजनयद्रथं को निरवर्तयत्।
कः स्वित्तदद्य नो ब्रूयादनुदेयी यथाभवत्॥
ऋ० १०। १३५। ५॥

सायणभाष्य- (कः कुमारं अजनयत्) किस पुरुषने इस कुमार को उत्पन्न किया? निन्दा अर्थमें किं शब्द है। इस प्रकार के बालकको यमके पास भेजनेवाला पिता कैसे अच्छा हो सकता है। अच्छा यह बात जाने दो। (कः) किस पुरुषने इस बालक को यम के पास जानेके लिए (रथं) रथको (निरवर्तयत्) प्रवृत्त किया? वह भी मूर्ख था, यह प्रश्न का अभिप्राय है। (यथा) जिस प्रकारसे यह कुमार (अनुदेयी अभवत्) अनुदेयी होता है (तत्) इस बातक कथन को (अद्य) इस कालमें (नः) हमें (कः स्वित् ब्रूयात्) भला कौन कहेगा। पहिले यम के पास जाकर फिर वहां से उससे छूटनेका उपाय बताता हुआ भी बुद्धिमान् नहीं कहा जा सकता, यह इसका अर्थ है। (आदित्य के पक्षमें) अथवा कुमार नामक ऋषि अपने सर्वात्म्यभाव को जानता हुआ अपने अतिरिक्त दूसरे की सत्ता की असंभवता को निन्दावाची किं शब्द से दिखलाता है-मुझ कुमार को किस पिताने पैदा किया? किसी ने भी नहीं। 'अजो नित्यः शाश्वत' इति श्रुत्युक्तरूप में हूं। और किसने शरीरात्मक रथका संचालन किया? मेरे सिवाय दूसरा संचालक नहीं है और वैसेही अन्यनिर्वर्त्य (संचालन करने योग्य) का होना भी असंभव है। इस समय सर्वात्म्यानुभव दशा में उस उस प्रकार को कौन भला हमें कह सकता है जिस प्रकार से कि अनुदान करने योग्य मेरेसे भिन्न अन्य पदार्थ की सत्ता होवे। वह प्रकार भी दुर्वचनीय है ऐसा इसका अर्थ है।

ग्रिफित- कुमार का पिता कौन था? किसने रथ को चलाया? आज हमें कौन बतला सकता है कि किस प्रकार से अनुदेयी (Funeral Gift) हुआ था।

म. ग्रिफित ने अनुदेयीका अर्थ Funeral Gift किया है पर वे लिखते हैं कि इस का अर्थ अनिश्चित है। म. विलसन इसका अर्थ '(Restitution) करते हैं। प्रो. झिमर (Zimmers) इसका अर्थ '(Surender) या (Delivery) ऐसा करते हैं।

यथा भवदनुदेयी ततो अग्रमजायत। पुरस्ताद्बुध्न आततः पश्चान्निरयणं कृतम्॥ ऋ० १०।१३५।६॥

सायण भाष्य- (अनुदेयी) पिताको पीछेसे पुनः वापिस देनेयोग्य (यथा) जिस प्रकारसे यह कुमार होवे ऐसा (ततः) उस वाजश्रवस पितासे (अग्रं) यमके पास जा इस प्रकार के वचनके आगे वर्तमान वचन कि नचिकेताको यमके साथ जानना चाहिए 'तं वै प्रवसंतं गंतासीति होवाच' इत्यादि (तै. ब्रा. ३।११।८) ब्राह्मणमें कहा गया वचन उत्पन्न हुआ। (पुरस्तात्) उससे पहिले (बुध्नः) उक्त अग्रका मूल भूत यमके घरको जा यह वचन अति विस्तृत हुआ हुआ था। अतः उसका परिहार नहीं हो सकता था इस वास्ते पीछेसे क्रोधको छोड कर (निरयणं कृतं) उस यमसे बचकर निकल आनेके उपायको पिताने किया। (आदित्यपक्षमें) अथवा अनुदेयी अपनेको अनुदातव्य आत्मस्वरूपसे भिन्न अन्य पदार्थकी सत्ता जिस प्रकार से है, उसके गुणानुसार (ततः) उस माया विशिष्ट आत्माका (अग्रं) स्रष्टव्य विकार का आद्य मनः तत्व उत्पन्न करनेकी इच्छाका कारण उत्पन्न हुआ। (पुरस्तात्) सृष्टिसे पहिली अवस्थामें (बुध्नः) मूल अव्याकृत मायात्मक कारण ही विस्तृत था। (पश्चात्) तमस् की उत्पत्तिके बाद (निरयणं) तद्गत कार्योंका उस कारणसे निर्गमन अर्थात् घट पटादिभेदसे स्वरूपका आलंभन ब्रह्माने किया। अर्थात् कारण जगत् को कार्य जगत्के स्वरूपमें लाया। तथा मिट्टीका विकार घटादि मिट्टीसे भिन्न नहीं होता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उसी प्रकार आदित्यके अनुग्रहसे ब्रह्मभावको प्राप्त मेरा विकार यह प्रपंच मेरेसे भिन्न नहीं है। इस प्रकारसे व्यतिरिक्त पितादिका पूर्वोक्त आक्षेप का समर्थन किया है।

ग्रिफित-जब अनुदेयी (Funeral Gift) रखा गया तब ज्वालाका अग्रभाग सीधा प्रकट हुआ। अर्थात् ज्वाला सीधी दीखने लगी। पहिले मूल (A depth) विस्तृत हुई। और तब पीछेसे निरयण A passage किया गया।

म. ग्रिफितके अनुवाद के अनुसार इस मंत्रका यह अभिप्राय प्रतीत होता है कि शवको जब दहन किया गया तब अग्निकी ज्वालायें सीधी जलने लगी। और शवके जलनेके बाद पीछेसे अस्थि संचय, आदि किया गया। उन्होंने अनुवाद करते हुए बुध्नका अर्थ किया है (A depth) जिसपर निम्न टिप्पणी दी है। (A depth: the meaning is obscure) अर्थात् इस का अर्थ अस्पष्ट है। उन्होंने जो कल्पना करके अर्थ किया है उसके अनुसार इस शब्दका अर्थ नहीं घटता, अतएव उन्हें ऐसा लिखना पडा है। इसी प्रकार निरयणका अर्थ उन्होंने (A passage) ऐसा किया है। (A passage out probably for the removal of the ashes) अर्थात् इसका अर्थ संभवतः अस्थि संचय, अवशिष्ट भस्मादिको उक्त स्थानसे हटाना है।

इदं यमस्य सादनं देवमानं यदुच्यते । इयमस्य धमते नाळीरियं गीर्भिः परिष्कृतः॥ ऋ० १०।१३५।७

सायण भाष्य- यह (यमस्य) नियन्ता आदित्यका वा विवस्वान् के पुत्रका (सदनं) स्थान है। जो कि सदन (देवमानं उच्यते) देवों द्वारा बनाया गया है ऐसा कहा जाता है। अथवा देव अर्थात् रश्मियों का निर्माण साधन कहा जाता है। इस यमकी प्रीत्यर्थ (इयं नाळीः) यह वाद्य विशेष-वंश-बजाया जाता है। अथवा नाळी यह वाणीका नाम है। यह स्तुति रूप वाणी इसकी प्रीत्यर्थ उच्चारण की जाती है। इस प्रकार होनेपर यह यम स्तुतियोंसे परिष्कृत अर्थात् शोभायमान होता है। 'परिष्कृतः संपर्युपेभ्यः' इत्यादिसे सुडागम होता है। 'परिनिविभ्यः' इत्यादिसे षत्व हुआ है। ... नंतर' इत्यादिसे गतिका प्रकृति स्वरत्व।

ग्रिफित- यह स्थान है जहां यम रहता है। जो कि स्थान देवोंका घर कहलता है। यहां पर उसके लिए वाद्यंत्र बजानेवाले बंशी बजाते हैं। यहांपर वह गायनोंसे सुशोभित किया जाता है।

इस प्रकार यह सूक्त समाप्त होता है। मंत्रोंकी परस्पर संगति किस प्रकार लग सकती है व संपूर्ण सूक्तका वस्तुतः क्या अभिप्राय है यह कहना पर्याप्त कठिन है। उपरोक्त दोनों भाष्यों से भी कोई विशेष सहायता मिलती हुई प्रतीत नहीं होती।

म. विलसन ने इस सूक्त पर निम्न लिखित वक्तव्य प्रकाशित किया है। म. ग्रिफित के अर्थोंसे ऐसा पता चलता है। कि उन्होंने म. विलसनके वक्तव्यानुसार अपनी सम्मति बनाकर मंत्रार्थ किया है। अस्तु म. विलसन का वक्तव्य का सारांश इस प्रकार है—

"प्रकृत सूक्तकी ऋचाओंका विषय कुमार का अंत्येष्टि संस्कार (Funaral ceremony) है ऐसा प्रतीत होता है। कुमार यह मनुष्यका नाम है ऐसा कई कहते हैं। सायणाचार्यने इस सूक्तका भाष्य करते हुए जो कथानक उद्धरण किया है उसके अनुसार नचिकेता नामक कुमार को उसके पिताने यमके राज्यमें भेज दिया था। उस यमने उसके साथ दयालुताका व्यवहार किया व उसे पुनः इस संसारमें वापिस भेज दिया। इस सूक्तकी ऋचाओंको सायणाचार्यने यम व आदित्यपर घटाया है परन्तु फिर भी वे बहुत अंश तक अस्पष्ट ही रही हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण (३।११।८) में तथा कठ उपनिषद् में मरनेके बाद आत्मा का क्या होता है इस संबंधी वाद विवादके आधार नचिकेता व यम की बात चीतके रूपमें पाये जाते हैं।

यद्यपि सायणाचार्यने इन्हीके आधारपर उपरोक्त सूक्तकी व्याख्या करनेका प्रयत्न किया है। परन्तु फिर भी यह सूक्त समस्या की समस्या ही बना रह गया है। उपरोक्त सूक्त का संबन्ध तैत्तिरीय ब्राह्मण (३। ११। ८) से व कठोपनिषद् से सायणाचार्यने कैसे जोडा है यह कहना कठिन है क्यों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कि सूक्त का कोई मंत्र ऐसा नजर में नहीं आता जिस से इनका संबन्ध जुडता हो। सूक्त में आए हुए कुमार शब्द से नचिकेता का ग्रहण करके संबन्ध जोडा गया होगा ऐसा भासमान होता है कोई प्रबल प्रमाण (अन्तः प्रमाण) इस विषय में ढूंढना चाहिए ता कि उस के आधार से सूक्त को हल किया जा सके।

३—ऋग्वेद मं० १०। सू० १५४॥

यह सूक्त अंत्येष्टि संस्कार विषयक है। इसमें प्रेत से कहा गया है कि तू किन किन को प्राप्त हो, जैसा कि मंत्रों को देखने से पाठकों को स्वयं स्पष्ट हो जायगा। इस सूक्त का ऋषि विवस्वान् की दुहिता यमी है। म्रियमाण यजमानादियों का वर्तन इसमें प्रतिपादित किया जाएगा अतः वे इस सूक्त के देवता हैं।

सोम एकेभ्यः पवते घृतमेक उपासते।
येभ्यो मधु प्रधावति ताँश्चिदेवापि गच्छतात्॥
ऋ० १०। १५४। १॥

अर्थ— (एकेभ्यः) कईयों के लिए (सोमः पवते) सोमरस बहता है। और (एके) कई (घृतं उपासते) आज्य का उपभोग करते हैं। इनको व (येभ्यः मधु प्रधावति) जिनके लिए मधुधारा रूपसे बहता है. (तान् चित् अपि) हे प्रेत उनको भी तू (गच्छतात्) प्राप्त हो।

भावार्थ- जिनके लिए सोम रस बहता रहता है व जो आज्य का उपभोग करते रहते हैं तथा जिन के लिए मधु की कुल्यायें बहती रहती हैं ऐसे यज्ञ कर्ताओं को हे प्रेत तू प्राप्त हो।✽

शव दहनादि अंत्येष्टि क्रिया प्रेतकी आत्मा के प्रति इस सूक्त की ऋचाओं के अनुसार उसके संबंधी आदियों का कथन है।

तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये स्वर्ययुः।
तपो ये चक्रिरे महस्ताँश्चिदेवापि गच्छतात्॥
ऋ० १०। १५४। २॥

अर्थ- (ये) जो लोक (तपसा) कृच्छ्रचांद्रायणादि नानाविध तप करने कारण से (अनाधृष्याः) किसी भी प्रकार से कष्टों को नहीं पहुंचाए जा सकते, जिनको पाप नहीं सता सकते, व (ये) जो लोक (तपसा) तपके कारण से (स्वः ययुः) स्वर्ग को गए हुए हैं, और (ये) जिन्हों ने (महः तपः चक्रिरे) महान् तप किया है, हे प्रेत! इन (तान् चित् अपि गच्छतात्) उन तपस्वियों को भी तू जाकर प्राप्त हो अर्थात् इनमें तेरी स्थिति होवे।

भावार्थ- हे प्रेत जो तप के कारण किसी भी प्रकार पराभूत नहीं हो सकते, व जो तप ही के कारण स्वर्ग को प्राप्त हुए हुए हैं, तथा जिन्होंने महान् तप किया है उनको तू यहांसे जाकर प्राप्त हो।

प्रथम मंत्र में यज्ञादि कर्म काण्ड का माहात्म्य दर्शाकर प्रेत को तत्कर्म करनेवालोंमें जाने को कहा है। व इस मंत्रमें तपः प्रभाव दिखलाकर तपस्वियों में जानेका निर्देश किया गया है।

ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः।
ये वा सहस्रदक्षिणास्तांश्चिदेवापि गच्छतात्॥
ऋ० १०। १५४। ३॥

अर्थ— हे प्रेत! (ये शूरासः) जो शूरवीर गण (प्रधनेषु) संग्रामों में (युध्यन्ते) युद्ध करते हैं और (ये) जो उन संग्रामों में (तनूत्यजः) शरीरों का त्याग करते हैं अर्थात् अपने प्राण दे देते हैं, (वा) अथवा (ये) जो लोक (सहस्रदक्षिणाः) हजारों दान करते हैं (तान् चित् अपि) उनको भी तू (गच्छतात्) प्राप्त हो।

✽ टिप्पणी—सायणाचार्य ने इस मंत्र की व्याख्या करते हुए यह दर्शाया है कि जिनके गोत्रज ब्रह्मयज्ञ के समय साम पढते हैं उनके लिए सोम कुल्या रूप में बहता रहता है। इसी प्रकार जिनके गोत्रज ब्रह्मयज्ञ के समय यजु को पढते हैं उनके लिए घृतकी कुल्या बहती रहती है। इसी तरह जिनके गोत्रज ब्रह्मयज्ञ के समय आथर्वण मंत्रों को पढते हैं उनके लिए मधुकी कुल्या बहती रहती है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

भावार्थ- जो शूरवीर गण युद्धोंमें अपने प्राण देकर वीर गति को प्राप्त हुए हुए हैं वा जो लोक नानातरह के दानों को देकर अपने को संसार में अमर कर गए हैं ऐसे लोकों को हे मृतात्मा तू प्राप्त हो-तेरे सद्गति होवे।

इस मंत्र से यह स्पष्ट होता है कि दानी व शूरवीर गण भी मृत्युके पश्चात् सद्गति को प्राप्त करते हैं। गीता में 'हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं' आदि युद्ध में मरने से सद्गति होती है ऐसे द्योतक वाक्यों की यह वेद मंत्र पुष्टि करता है। शूरवीरता से युद्धमें शरीर त्याग करनेवाले को परलोक में सुख मिलता है यह आर्य लोकों का बडा पुराना दृढ विश्वास चला आता है; उस विश्वास के मूलभूत ऐसे ऐसे वेद मंत्र ही हैं।

ये चित्पूर्व ऋतसाप ऋतावान ऋतावृधः।
पितॄन्तपस्वतो यम तांश्चिदेवापि गच्छतात्॥
ऋ० १०। १५४। ४॥

अर्थ-(ये चित्) और जो (पूर्वे) पूर्व पुरुष (ऋतसापः) सत्य का पालन करनवाले अथवा यज्ञों के नित्य नियमपूर्वक करनेवाले, (ऋतावानः) सत्य वा यज्ञसे युक्त और इसीलिए(ऋतावृधः)सत्य व यमके वर्धक थे, तथा (तपस्वतः) तपसे युक्त (पितॄन्) पूर्व पितरों को (तान् चित् अपि) इन सबको भी हे(यम)नियमवान् प्रेतात्मा तू प्राप्त हो। ※

भावार्थ- जो पितर सत्यके रक्षक हैं, यज्ञादि नित्यनियमसे करने वाले हैं तथा तपस्वी हैं ऐसे पितरों को हे मृतात्मा तू परलोकमें जाकर प्राप्त हो।

सहस्रणीथाः कवयो ये गोपायन्ति सूर्यम्।
ऋषीन्तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात्॥
ऋ. १०। १५४।५॥

अर्थ-(ये) जो (कवयः) क्रांतदर्शी ज्ञानी लोक (सहस्रणीथाः) हजारों प्रकारों की नीतियोंवाले हैं और जो (सूर्यं गोपायन्ति) इस सूर्यका रक्षण करते हैं ऐसे (तपस्वतः ऋषीन्) तप से युक्त ऋषियोंको जो कि (तपोजान्) तप से ही उत्पन्न हुए हुए हैं- ऐसोंको भी हे नियममें स्थित प्रेतात्मा! तू यहां से जाकर प्राप्त हो।

भावार्थ— जो क्रान्तदर्शी ऋषिगण नाना प्रकार के विज्ञानों से परिपूर्ण हैं व जो तपस्वी तथा तपसे उत्पन्न हुए हुए हैं ऐसों को हे प्रेतात्मा तू इस लोकसे जाकर प्राप्त हो। उनमें जाकर तू स्थित हो। निकृष्ट लोकों में मत जा।

इस सूक्त के मंत्रों पर दृष्टि पात करनेसे साधारणतया हमें पता चलता है कि इस संसार में रहकर कैसे अर्थात् किस प्रकारके कर्मों को करने से मृत्यु के अनन्तर उत्तम गति, उत्तम लोक वा उत्तम स्थान-स्वर्ग प्राप्त होता है। इस सूक्तमें ५ मंत्र हैं। पांचों मंत्रों में भिन्न भिन्न कर्म करनेवाले लोकों को गिनाया गया है और प्रेतात्मा से कहा गया है कि इन इन को तू इस लोकसे जाकर प्राप्त कर। अर्थात् इन ५प्रकार के जनोंमें से ही किसी को तू जाकर प्राप्त हो। इन से हीन इतरों को प्राप्त मत हो। ये पांच प्रकार के जन इस लोक के नहीं, अपितु पर लोक के हैं, ऐसा मंत्रों से पता चलता है। अतः 'तान् चित् अपि गच्छतात्' का अर्थ यह नहीं किया जा सकता कि इन ५प्रकार के इस लोकमें स्थित जनोंमें जाकरके तू पुनर्जन्म ले। सद्गति की प्राप्ति के लिए इस सूक्तमें यज्ञादि करना, तप करना,लडाईमें पराक्रम के साथ शरीरत्याग करना, नानाविध दान

※ इस मंत्र में यम प्रेतात्माके लिए आया है अतः इसका अर्थ नियममें स्थित ऐसा प्रतीत होता है। ग्रिफित आदि युरोपियन अनुवादकों ने यमका यहांपर क्या अर्थ है इस पर कुछभी प्रकाश डालने का प्रयत्न नहीं किया है। इससे ऐसा पता चलता है कि उन्हें यहांपर यमका क्या अर्थ है यह पता ही नहीं चला है। डा. जे. मूर नेभी. Oriental Sanskrit Texts Volume V, पृ. ३१०में यह सूक्त अर्थ सहित दिया है पर उन्होंने भी यम के स्थान पर यम ही रहने दिया है। सायणाचार्यने यम का अर्थ 'नियत' ऐसा किया है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

करना, सत्याचरण इत्यादि कई साधन बताए गए हैं। यह संपूर्ण सूक्त अथर्व वेद (काण्ड १८। सूक्त २। मं. १४ से १८) में ऐसा का ऐसा है।

सम्पूर्ण सूक्तका मंत्रवार सारांश।

मंत्र १।

१-यज्ञ करने से सद्गति, उत्तम लोक प्राप्त होता है।

मंत्र २।

२-तप करनेसे पराभव नहीं होता व तपस्वी को स्वर्ग मिलता है।

मंत्र ३।

३-जो संग्रामों में युद्धकर शरीर छोडते हैं, उन्हें भी स्वर्ग उपलब्ध होता है।

४-जो अत्यन्त दानी हैं वे भी स्वर्ग को प्राप्त करते हैं।

मंत्र ४।

५-तपस्वी सत्यरक्षक उत्तम गतिका लाभ करते हैं।

मंत्र ५।

६- हजारों प्रकारकी नीतियों वाले व सूर्य रक्षक ऋषिगण स्वर्गको प्राप्त करते हैं।

संस्कृत का प्रचार कैसे हो !

(ले० —श्री० रुलिया रामजी कश्यप एम० एस० सी.)

आज कल प्रायः जनता संस्कृत भाषाको मृत भाषा (Dead Language) समझती है। किस अंशमें यह सत्यभी है। क्योंकि आजकल कोई जाति या देश ऐसा नहीं जिस की मातृभाषा संस्कृत हो। अर्थात् जहां के नर नारी तथा बालक इस भाषा में स्वभाविक रीति से पारिवारिक सम्भाषण करते हों। इसी कारण लिपि तथा साहित्य के रूप में चाहे जीवित ही है पर भाषा के रूप में संस्कृत आज वास्तव में एक मुर्दा जबान है क्योंकि भाषा वही होती है जो कोई जाति बोलती हो।

मेरी सम्मति में संस्कृत को पुनर्जीवित करने का एक मात्र उपाय यह है कि जो जन समूह ऐसा करने का भार अपने ऊपर ले। उसका प्रत्येक व्यक्ति यह प्रतिज्ञा करे कि मैं इस जन समूह में संस्कृत से भिन्न भाषा में कभी वार्त्तालाप आदि व्यवहार न करूंगा। यदि कोई सभा इस कार्यको अपने ऊपर ले तो उसे चाहिये कि जितने कार्य कर्त्ता वह वेतन पर नियुक्त करे उन सबसे नियुक्तिसे पूर्व यह प्रण ले ले कि वह किसी कार्य कर्त्तासे संस्कृतसे भिन्न भाषा में व्यवहार न करेगा। इसी प्रकार यदि कोई दानी महाशय अपने दानसे संस्कृतके विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति देना स्वीकार करें तो उसकी भी यह शर्त होनी चाहिये कि वह विद्यार्थि संस्कृत प्रचारके लिये नियत छात्र वृत्तिको पानेवाले अपने जैसे दूसरे विद्यार्थियों से केवल संस्कृत में ही वार्त्तालाप करे।

इसका परिणाम यह होगा कि एक जन समूह ऐसा बन जावेगा जो स्वाभाविक रीतिसे संस्कृत भाषामें ही वार्त्तालाप आदि व्यवहार करेगा और ऐसा होनेके कारण आशा की जा सकती है कि कुछ ही समयमें संस्कृत उसकी पारिवारिक भाषा और तदन्तर्गत बच्चों की मातृभाषा बन जावे।

आजकल की इस विषयमें पूरा यत्न करनेवाली संस्था आर्य समाज में इस नियमका अनुसरण नहीं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

किया गया। परिणाम यह हुआ कि यद्यपि आर्य समाज की हार्दिक कामना है कि संस्कृत फिरसे जीवित भाषा बने और इसी लिये उसने इतने गुरुकुल, कालिज, स्कूल, लाईब्रेरियां आदि बनाईं परन्तु जनता के किसी भी भाग की मातृभाषा अथवा पारिवारिक भाषा आजतक संस्कृत नहीं बनी दूसरे शब्दोंमें यद्यपि संस्कृत साहित्यमें कई लुप्त ग्रन्थ प्रकाशित हुए और संस्कृत में हिन्दि अनुवाद संयुक्त अनेक नवीन ग्रन्थ भी रचे गये तो भी संस्कृत भाषा अब तक जीवित नहीं वरञ्चमृत भाषा ही कही जाती है।

मेरी तुच्छ सम्मति में सन्ध्योपासना में रुचि न रहना भी इसका परिणाम है। स्वभावतः मनुष्य अपने प्यारे के प्रति अपने प्रेमभाव अपनी मातृभाषा में ही प्रकट करता है तो यह कैसे सम्भव है कि मातृभाषा पंजाबी होते हुए और १०, १५ वर्षतक बराबर अंग्रेजी का अभ्यास करते हुए कोई भक्त अपने प्रियतम भगवान के प्रति अपना प्रेम उस संस्कृतभाषा में प्रकट करे जो वह स्वयं नहीं समझता। परिणाम यह होता है कि उसका जी तो पञ्जाबी या अंग्रेजीमें भगवद् आराधन करनेको चाहता है और उसे करनी पडती है संकृतमें संध्या। उसका दिल सर्वथा उसके वश में नहीं रहता। लोकाचार वश वह संध्याके मंत्र आंख मूंद कर पढ लेता और दिल भगवान से कोसों दूर होता है। अंत में वर्षों इस प्रकार संध्या करके बिलकुल कोरा रहकर निराश हो संध्या छोड बैठता है या जिसको संध्या छोडने से आर्थिक हानिका भय हो वह उसी प्रकार संध्या का ढोंग रचता रहता है। यह संध्या में जी न लगने का वास्तविक कारण है जो केवल तब दूर हो सकता है जब कि उपासक लोग अपनी पारिवारिक भाषा और अपने बालकों की मातृभाषा संस्कृत बनाने का उपरोक्त साधनस्वीकार करें। अर्थात् आर्य समाजें अपने सभासदों को बाधित करें कि वह परस्पर संस्कृत वार्त्तालाप करने की योग्यता पैदा करके यह नियम करें कि सभासद आपस में केवल संस्कृत में वार्त्तालाप किया करेंगे जो पं० सातवलेकर जी की पुस्तकों द्वारा प्रत्येक केवल १ घंटा प्रतिदिन लगाकर एक वर्ष के भीतर सीख सकता है।

दूसरा साधन यह है कि संस्कृत के प्रचार के इच्छुक जब कोई नौकर किसी भी कार्य्य क्षेत्रमें अपने आधीन रख सकें तो वह संस्कृत जाननेवाले को वैसेही संस्कृत न जाननेवालेसे उत्तम समझकर पहले उसे नौकर रखकर देखें अगर वह काम न चला सके तो दूसरे को रखें।

तीसरा साधन यह है कि जो कोई संस्कृत विद्या का प्रेमी अपनी जीविका की चिन्ता में पडकर वह कार्य छोड अन्य कार्य में लगा हुआ हो, दानी महाशय उस की योग्यता अनुसार उस की जीविका का तथा स्वाध्याय का उत्तम प्रबन्ध कर दें जिससे कि जीविका वश उसे संस्कृत प्रचार से विमुख न होना पडे।

चौथा साधन यह है कि संस्कृत में आधुनिक वैज्ञानिक विषयों पर गवेषणा पूर्ण निबन्ध लिखने के लिये ऐसे संस्कृतज्ञ वैज्ञानिक तय्यार किये जावें जिन को वैज्ञानिक आचार्य प्रमाण मानकर उनके निबन्धों का आदर करते हों। इस कार्य के लिये रुपया जितना हो उतना ही थोडा है।

पांचवां साधन पुराने ऋषियों की १४ विद्यायों को जिनमें सर्प विद्या, देवजनविद्या, भूतविद्या आदि भी हैं, पुनर्जीवित करना है। इस विषय में अथाह कार्यक्षेत्र खुला पडा है। लेखक का एक सम्बन्धि सर्प विद्या में ऐसा कुशल है कि सर्प का डसा हुआ चाहे कैसी ही शोचनीय दशा में हो मगर वह अभी मर न गया हो तो उसे वह स्वस्थ करने की शक्ति रखता है। इसी प्रकार अन्य विद्याओं के विज्ञाता भी मिल सकते हैं।

इन पांच साधनों के द्वारा संस्कृत भाषा फिर जीवित भाषा बन सकती है। गुरुकुल से विद्या प्राप्त दम्पतियों को चाहिये कि अपनी पारिवारिक भाषा संस्कृत बनाकर जनता का इस विषय में उत्साह बढावें।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

१०५	३	उन्मोचनः	कासः	अनुष्टुप्
१०६	३	प्रमोचनः	दूर्वाशाला,	,,
१०७	४	शन्तातिः	विश्वजित्	,,
१०८	५	शौनकः	मेधा, ४अग्निः,	,, २ उरोबृहती, ३पथ्याबृहती
१०९	३	अथर्वा	पिप्पली, भैषज्यं	,,
११०	३	,,	अग्निः,	त्रिष्टुप्, १ पंक्तिः
१११	४	,,	,,	अनुष्टुप्, १ परानुष्टुप् त्रिष्टुप्.
११२	३	,,	,,	त्रिष्टुप्
११३	३	,,	पूषा.	,, ३ पंक्तिः

१२ द्वादशोऽनुवाकः ।

११४	३	ब्रह्मा	विश्वेदेवाः	अनुष्टुप्
११५	३	,,	,,	,,
११६	३	जाटिकायनः	वैवस्वतः	जगती, २ त्रिष्टुप्
११७	३	कौशिकः(अनृण कामः)	अग्निः	त्रिष्टुप्.
११८	३	,,	,,	,,
११९	३	,,	,,	,,
१२०	३	,,	मन्त्रोक्तदेवताः	१ जगती २ पंक्तिः, ३ त्रिष्टुप्
१२१	४	,,	,,	१–२ अनुष्टुप्, ३,४ अनुष्टुप्
१२२	५	भृगुः	विश्वकर्मा	त्रिष्टुप्, ४,५ जगती
१२३	५	,,	विश्वेदेवाः	,, ३ द्विपदा साम्नी अनुष्टुप्, ४ एकावसाना द्विपदा प्राजापत्या भुरिगनुष्टुप्
१२४	३	अथर्वा(निर्ऋत्यपसरणकामः)	मंत्रोक्तदेवता दिव्या आपः	त्रिष्टुप्.

१३ त्रयोदशोऽनुवाकः ।

१२५	३	अथर्वा	वनस्पतिः	त्रिष्टुप्, २ जगती.
१२६	३	,,	वानस्पत्यो दुन्दुभिः	भुरिक्त्रिष्टुप्
१२७	३	भृग्वंगिराः	वनस्पतिः, यक्ष्मनाशनं	अनुष्टुप्, ३ त्र्यवसाना षट्पदा जगती.
१२८	४	अंगिराः (अथर्वांगिराः)	चन्द्रमाः, शकधूमः	अनुष्टुप्
१२९	३	,,	भगः	,,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

१३०	४	अथर्वांगिराः	स्मरः	अनुष्टुप्	१ विराट्पुरस्ताद्बृहती.
१३१	३	,,	,,	,,	
१३२	५	,,	,,	,,	१ त्रिपदानुष्टुप्, ३ भुरिक्, २, ४, ५ त्रिपदा महाबृहती २, ४ विराट्
१३३	५	अगस्त्यः	मेखला	त्रिष्टुप्	१ भुरिक्; २, ५ अनुष्टुप् ४ जगती.
१३४	३	शुक्रः	मन्त्रोक्तदेवताः	अनुष्टुप्;	१ परानुष्टुप् त्रिष्टुप्; २भुरिक् त्रिपदागायत्री.
१३५	३	,,	,,	,,	
१३६	३	अथर्वा (केशवर्धनकामः) [वीतहव्यः]	वनस्पतिः	अनुष्टुप्,	२ एकावसाना द्विपदा साम्नीबृहती.
१३७	३	,, ,,	,,	,,	
१३८	५	,, ,,	,,	,,	३ पथ्यापंक्तिः
१३९	५	,,	,,	,,	१ त्र्यव० षट्प० विराड् जगती.
१४०	३	,,	ब्रह्मणस्पतिः, मंत्रोक्ताः	,,	१ उरोबृहती; २ उपरिष्टाज्ज्योतिष्मती त्रिष्टुप् ३ आस्तारपंक्तिः
१४१	३	विश्वामित्रः	अश्विनौ	,,	
१४२	३	,,	वायुः	,,	

इस प्रकार षष्ठ काण्डके सूक्तोंके ऋषि, देवता, छंद हैं। अब इनका ऋषिक्रमानुसार विभाग देखिये—

ऋषिक्रमानुसार सूक्तविभाग।

१ अथर्वा ऋषिके १-७; १३; १७; १८; ३७; ३६-४०; ५०; ७८—६२; ६४-६९; ७३; ७४; ७८-८१; ८५-९०; ९२; ९७-९९; १०९-११३; १२४-१२६; १२९-१३२; १३६-१४० ये ६१ सूक्त हैं।

२ शन्ताति ऋषिके १०; १९; २१-२४; ५१; ५६; ५७; ९३; १०७ ये ग्यारह सूक्त हैं।

३ भृग्वंगिराः ऋषिके २०; ४२; ४३; ९१; ९५; ९६; १२७ ये सात सूक्त हैं।

४ ब्रह्मा ऋषिके २६; ४१; ५४; ५५; ७१; ११४; ११५ ये सात सूक्त हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

५ कौशिक ऋषिके ३५; ११७-१२१ ये छः सूक्त हैं।
६ भृगु ऋषिके २७-२९; १२२; १२३ ये पांच सूक्त है।
७ आङ्गिराः प्राचेतस्, ऋषिके ४५-४८ ये चार सूक्त हैं।
८ विश्वामित्र ऋषिके ४४; १४१; १४२ ये तीन सूक्त हैं।
९ अथर्वाङ्गिरा ऋषिके ७२; ९४; १०१ ये तीन सूक्त हैं।
१० जमदग्नि ऋषिके ८; ९; १०२ ,, ,, ,,
११ आङ्गिरा ,, ८३; ८४; १२८ ,, ,, ,,
१२ कबन्ध ,, ७५-७७ ,, ,, ,,
१३ गरुत्मान् ,, १३; १०० ये दो सूक्त है।
१४ शौनक ,, १६; १०८ ,, ,, ,,
१५ उपरिबभ्रव,, ३०; ३१ ,, ,, ,,
१६ चातन ,, ३२; ३४ ,, ,, ,,
१७ जाटिकायन,, ३३; ११६ ,, ,, ,,
१८ शुक्र ,, १३४; १३५ ,, ,, ,,
१९ प्रजापति ऋषिका ११ यह एक सूक्त है।
२० बभ्रुपिंगल,, १४ ,, ,, ,,
२१ उद्दालक ,, १९ ,, ,, ,,
२२ शुनःशेप ,, २५ ,, ,, ,,
२३ यम ,, ४५ ,, ,, ,,
२४ गार्ग्य ,, ४९ ,, ,, ,,
२५ भागलि ,, ५२ ,, ,, ,,
२६ बृहच्छुक्र ,, ५३ ,, ,, ,,
२७ काङ्कायन ,, ७० ,, ,, ,,
२८ भग ,, ८२ ,, ,, ,,
२९ उच्छोचन ,, १०३ ,, ,, ,,
३० प्रशोचन ,, १०४ ,, ,, ,,
३१ उन्मोचन ,, १०५ ,, ,, ,,
३२ प्रमोचन ,, १०६ ,, ,, ,,
३३ अगस्त्यः ,, १३३ ,, ,, ,,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इस प्रकार ३३ ऋषि नामोंसे इस काण्ड का संबंध है। प्रथम काण्डमें ८, द्वितीय काण्डमें १७, तृतीय काण्डमें ८, चतुर्थ काण्डमें १७, पञ्चम काण्डमें १२ और इस षष्ठ काण्डमें ३३ ऋषियोंका संबंध है। अब देवताक्रमानुसार सूक्तविभाग देखिये—

देवताक्रमानुसार सूक्तविभाग।

१ नाना देवताः, बहुदैवतम्, मन्त्रोक्त दैवतं के ३; ४; १०; ११; १६; १९; २५; ४१; ४४; ४८; ५२; ५३; ५८; ६२; ६८; ७३; ७६; ८१; ८३; ८९; ९१; ९३; ९५; १२०; १२१; १२४; १३४; १३५; १४० ये २९ सूक्त हैं।

२ सोम, चन्द्रमाः के २; ६; ७; १६; १९; २१; ३७; ४१; ६५-६७; ७८; ८०; ९६; ९९; १२८; ये १६ सूक्त हैं।

३ अग्निके १०; ३२; ३४; ३६; ४७; ४९; ६३; ७१; १०८; ११०-११२; ११७-११९; ये १५ सूक्त है।

४ वनस्पति के २; १५; ४४; ८५; ९५; ९६; १००; १२५; १२७; १३६—१३९ ये १३ सूक्त हैं।

५ विश्वेदेवाः देवता के ७; ४७; ५५; ५६; ६४; ७१; ११४; ११५; १२३ ये ९ सूक्त हैं।

६ रुद्र देवता के ५५-५७; ५९; ६१; ६२; ८९; ९०, ९३ ये ९ सूक्त हैं।

७ इन्द्र देवता के ३३; ६५-६७; ७५; ८२; ९८; ९९ ये ८ सूक्त हैं।

८ बृहस्पति के ३८; ३९; ५८; ५९; ६९ ये पांच सूक्त हैं।

९ निर्ऋति के २७— २९; ६३; ८४ ये पांच सूक्त हैं।

१० ब्रह्मणस्पति के ६; १०१; १०२; १४० ये चार सूक्त हैं।

११ अश्विनौ के ५०; ६९; १०२; १४० ,, ,,

१२ यम के २७-२९; ६३ ,, ,,

१३ आपः के २३, २४, ५१, १२४ ,, ,,

१४ सांमनस्य के ६४, ७३; ७४ ये तीन सूक्त हैं।

१५ पराशर के ६५—६७ ,, ,,

१६ स्मर के १३०—१३२ ,, ,,

१७ वायु के १०, १४२ ये दो सूक्त हैं।

१८ यक्ष्मनाशन के २०, १२७ ,, ,,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

१९ ध्रुव के ८७, ८८ ये दो सूक्त हैं।
२० कालात्मा के ८, ९ ,, ,,
२१ सविता के १, ९२ ,, ,,

शेष सूक्त एक देवताका एक है देखिये, इन्द्राग्नी ५, सूर्य १०, रेतः ११, तक्षकः १२, मृत्युः १३, बलासः १४, गर्भदृंहणं १७, ईर्ष्याविनाशनं १८, आदित्यरश्मिः २२, मरुतः २२, पाप्मा २६, शमी ३०, गौः ३१, विश्वानरः ३५, त्विषिः ३८, मन्युः ४२, मन्युशमनं ४३, दुष्वप्ननाशनं ४५, स्वप्नं ४६, सुधन्वा ४७, वरुणः ५१, अग्नीषोमौ ५४, अर्यमा ६०, अघ्न्या ७०, शेपोऽर्कः ७२, त्रिणामा ७४, सांतपनाग्निः ७६, जातवेदाः ७७, त्वष्टा ७८, संस्फानः ७९, आदित्यः ८१, एकवृषः ८६, वाजी ९२, सरस्वती ९४, मित्रावरुणौ ९७, कासः १०५, दूर्वाशाला १०६, विश्वजित् १०७, मेधा १०८; पिप्पली १०९, भैषज्यं १०९, पूषा ११३, वैवस्वतः ११६, विश्वकर्मा १२२, वानस्पत्यो दुन्दुभिः १२६, शकधूमः १२८, भगः १२९, मेखला १३३ ये अठतालीस देवताओंके प्रत्येकका एक एक ऐसे सूक्त हैं।

पहिले २१ और ये ४८ मिलकर ६९ देवताएं इस काण्डमें हैं। अर्थात् इतनी देवताओंका विचार इस काण्डमें हुआ है अब इस काण्डके गणों की व्यवस्था देखिये–

इस काण्डमें सूक्तोंके गण।

१ बृहच्छान्तिगण के १९, २३, २४, ५१, ५७, ५९, ६१, ९३, १०७ ये नौ सूक्त हैं।
२ स्वस्त्ययनगण के ३, ४, ७, १३, ३२, ३७, ४०, ९३ ये आठ सूक्त हैं।
३ तक्मनाशनगण के २०, २६, ४२, ८५, ९१, १२७ ये छः सूक्त हैं।
४ पुष्टिकमंत्रगण के ४, १५, ३३, ७९, १०२ ये पांच सूक्त हैं।
५ अपराजितगण के ६५–६७, ९७ ये चार सूक्त हैं।
६ वर्चस्यगण के ३८, ५८, ६९ ये तीन सूक्त हैं।
७ पवित्रगण के ५१, ६२, ७३ ,, ,,
८ रौद्रगणके ५५, ६१, ९० ,, ,,
९ वास्तुगण के १०, ७३, ये दो सूक्त हैं।
१० चातनगण के ३२, ३४ ,, ,,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

११ अंहोलिङ्गगण के ३५, ३६ ये दो सूक्त हैं ।
१२ अभयगण के ४०, ५० ,, ,,
१३ इन्द्रमहोत्सवके ८६, ८७ ,, ,,
१४ दुष्वप्ननाशनगणका ४६ यह एक सूक्त है ।
१५ सांमनस्यगणका ७३ यह ,, ,,

इस प्रकार इन सूक्तों के गण हैं । पाठक यदि इन सूक्तोंका गण सूक्तोंके साथ साथ मिलकर विचार करेंगे, तो सूक्तोंका तात्पर्य समझनेमें बडी सुगमता होगी ।

इतना विचार ध्यानमें रखकर अब इस काण्डका मनन कीजियेः-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ॐ

अथर्ववेदका स्वाध्याय।

षष्ठ काण्ड।

अमृतदाता ईश्वर !

[१]

(ऋषिः— अथर्वा। देवता-सविता।)

दोषो गाय बृहद् गाय द्युमद्धेहि।
आथर्वण स्तुहि देवं सवितारम् ॥ १ ॥
तमु ष्टुहि यो अन्तः सिन्धौ सूनुः।
सत्यस्य युवानमद्रोघवाचं सुशेवम् ॥ २ ॥
स घा नो देवः सविता साविषदमृतानि भूरि।
उभे सुष्टुती सुगातवे ॥ ३ ॥

अर्थ— हे (आथर्वण) अथर्वाके अनुयायी ! (सवितारं देवं) सविता देवकी (स्तुहि) स्तुति कर। (दोषो गाय) रात्रीके समय गा, (बृहत गाय) बहुत भजन कर, (द्युमत् धेहि) तेजयुक्त की धारणा कर ॥ १ ॥

(यः सिन्धौ अन्तः सत्यस्य सूनुः) जो भवसमुद्रके बीचमें सत्यकी प्रेरणा करनेवाला, तथा (युवानं) युवा, (सुशेवं) उत्तम सुख देनेवाला और (अ-द्रोघ-वाचं) द्रोह हीन वाणीसे युक्त है (तं उ स्तुहि) उसीका गुण-वर्णन कर ॥ २ ॥

(सः घ सविता देवः) वही सर्व प्रेरक देव (उभे सुष्टुती सुगातवे) दोनों प्रकारकी स्तुति करने योग्य उत्तम मार्गोंपरसे हम जांय, इस के लिये

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

(नः भूरि अमृतानि साविषत्) हमें बहुतसे अमृतमय सुख देता रहता है ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे योगमार्ग में प्रवृत्त मनुष्य ! तूं सर्वप्रेरक एक ईश्वर की उपासना कर। रात्रीके समय उसका गुणगान कर, उसका बहुत भजन कर, और उसके तेजकी मन में धारणा कर ॥ १ ॥

वही एक ईश्वर इस भव समुद्र के बीचमें सत्यकी प्रेरणा करनेवाला है, वह न बाल होता है और न वृद्ध होता है। परंतु सदा तरुण रहता है। वही सब सुखोंको देने वाला है और हिंसारहित वाणीका प्रवर्तक है, उसी का गुणगान कर ॥ २ ॥

वही सबको प्रेरणा देनेवाला एक देव हम दोनों प्रकारके प्रशंसनीय मार्गोंपरसे प्रगति करें, इसलिये हमें अनंत सुख सदा देता रहता है ॥ ३ ॥

एकदेवकी भक्ति।

इस सूक्तमें एक देव की भक्ति करनेका उत्तम उपदेश है। विशेष विचार न करते हुए इस सूक्तका अर्थ देखनेसे, यह सूक्त सूर्य देवकी उपासना करनेका उपदेश कर रहा है, ऐसा प्रतीत होता है। सूर्य परमात्माका प्रतिनिधि इस सूर्य माला में है, इसलिये उसकी उपासना करनेसे परंपरया परमात्माकी उपासना हो सकती है, इसमें संदेह नहीं है; परंतु यह प्रतीकोपासना साधारण अज्ञ बालबुद्धि जनोंकी मनःस्थिरता के लिये उपयोगी है। वेदमें अग्नि, विद्युत् और सूर्य इनके द्वारा पार्थिव, अन्तरिक्षीय और द्युलोक संबंधी तीन दृश्य तेजों का दर्शन कराके परमात्मोपासना का ही पाठ दिया होता है; इसी नियमके अनुसार यहां सविता देव के द्वारा सूर्यका दर्शन कराते हुए एक अद्वितीय परमात्मा की ही उपासना कही है इस का उत्तम प्रमाण यह है—

दोषो गाय (मं० १)

'रात्रीके समय उसका गुणगान कर, उसकी भक्ति कर, उसकी उपासना कर. यदि 'दिनमें दिखाई देनेवाले सूर्य की ही उपासना इस सूक्तमें होती, तो 'रात्रीके समय उसके गुण गान कर' ऐसा कहना अनुचित था, क्योंकि सूर्य की उपासना दिनके समय ही हो सकती है और रात्रीके समय नहीं। इस सूक्तमें तो रात्रीके एकान्त समय में उस सूर्य देवका खूब भजन करो ऐसी आज्ञा है, देखिये—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दोषो गाय, बृहद् गाय। (मं० १)

"रात्रीके समय भजन कर, बहुत भजन कर" इस प्रकार रात्रीके समय भजन करने को ही कहा है। यदि इस सूर्य की ही उपासना इस सूक्त में अभीष्ट होती, तो उसकी उपासना रात्रीका नामनिर्देश करके कैसी कही होती? इस सूक्तमें दिनका नाम तक नहीं है, परंतु रात्रीका स्पष्ट उल्लेख है, इतनाही नहीं परंतु उस रात्रीमें—

द्युमत् धेहि। (मं० १)

"तेजवाले स्वरूप की मनमें धारणा कर।" सूर्य का तेज दिनमें दिखाई देता है, रात्रीके समय नहीं। परंतु यहां तो रात्रीके समय सूर्यके तेजका ध्यान करना लिखा है; इस लिये, जो सूर्य रात्रीके समय उपासनाके लिये प्राप्त हो सकता है, और जिसके तेज की धारणा रात्रीके समय में भी की जा सकती है, उस सूर्यका वर्णन इस सूक्तमें है ऐसा हम कह सकते हैं। अर्थात् सूर्यकाभी जो सूर्य परमात्मा है, जिसके शासन से यह सूर्य यहां प्रकाश रहा है, उस परमात्मरूपी सूर्यकी उपासना इस सूक्त द्वारा कही है। इस के गुण जो उपासनाके समय मनन करने चाहियें, उसका वर्णन निम्न लिखित प्रकार इस सूक्त में हुआ है—

१ बृहत्= वह सबसे बडा है, उससे बडा कोई नहीं है,

२ द्युमत्= वह प्रकाशवाला है,

३ देव=वह सब प्रकारसे दिव्य है, वह दाता प्रकाशक और ऐश्वर्य युक्त है,

४ सविता= वह सबकी उत्पत्ति करनेवाला और सबका ऐश्वर्य बढानेवाला है,

५ सिन्धौ अन्तः= इस संसारसमुद्रके गहरे स्थानमें भी वह विद्यमान है,

६ सत्यस्य सूनुः= सत्यकी प्रेरणा करनेवाला, वह सत्य स्वरूप है,

७ युवा= वह सदा जवान है, वह न कभी बाल था और न कभी बुड्ढा होगा, सदा तरुण जैसा शक्तिशाली है,

८ सुशेवः= उत्तम सुख देनेवाला, किंवा (सु-सेवः) उत्तम प्रकार सेवा करने योग्य,

९ अ-द्रोघ-वाक्= हिंसारहित शब्दोंकी प्रेरणा करनेवाला,

१० अमृतानि भूरि साविषत्= अनंत सुखोंको देता रहता है.

ये दस गुण इस परमात्माके इस सूक्त में कहे हैं, उपासक को इन गुणोंका मनन करना चाहिये। परमात्माके इन गुणोंका मनन करके, इनकी धारणा मनमें करके अपने अन्दर जहांतक हो वहांतक इन गुणों की वृद्धि करनी चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सर्वथा इन गुणोंका उत्कर्ष मनुष्यमें न भी हो सके, तो कोई हर्ज नहीं है, जिस अवस्था तक हो सके, उस अवस्थातक उत्कर्ष करना आवश्यक है।

परमात्माके इन गुणोंका मनन करनेसे उसके तेजःस्वरूपका साक्षात्कार सर्वत्र होने लगता है। योगमार्गमें प्रवृत्त होकर प्राणायाम ध्यान धारणा की ओर थोडीसी प्रवृत्ति होनेसे ही प्रकाशदर्शन होने लगता है। इस प्रकाशदर्शनका नित्य स्मरण करनेसे और इसीको ध्यानमें स्थिर करनेसे योगसिद्ध उन्नतिका प्रकाशका मार्ग सिद्ध होजाता है। यह तेजका केन्द्र इस संसार महासागरमें सर्वत्र उपस्थित देखना और उसके विना कोई पदार्थ नहीं है, ऐसा मनका निश्चय करना चाहिये। उसका तेज, उसके सत्यनियम और उसकी दया सर्वत्र अनुभव करनेसे उसकी सर्वत्र उपस्थिति जानी जा सकती है।

अहिंसक वाणी।

परमात्मा स्वयं हिंसारहित वाणीका प्रवर्तक है, अतः जो मनुष्य उसके भक्त होना चाहते हैं, वे सदा द्रोहरहित वाणीका प्रयोग करें। "अद्रोघवाक्" अर्थात् जिन शब्दोंमें थोडा भी द्रोह नहीं; थोडी भी हिंसा नहीं, दूसरोंको कष्ट देनेका थोडा भी आशय नहीं, उस प्रकारकी वाणी मनुष्योंको बोलना उचित है। इस शब्द द्वारा ईश्वरभक्तको किस प्रकारका आचरण करना चाहिये यह दर्शाया है। यदि स्वयं परमेश्वर कभी द्रोहमय शब्दोंका प्रयोग नहीं करता, तो उसके भक्तको भी ऐसे ही शब्द प्रयोग करना चाहिये। अर्थात् भगवद्भक्त अपने मनमें हिंसाका भाव न रखे, हिंसाभाव वाणीसे प्रकट न करे, और हिंसाका कोई कर्म न करे। इस प्रकार प्रयत्न करनेसे कोई समय ऐसा आ जाता है, कि जिस समय उपासकके मनमें हिंसाकी लहर उठती ही नहीं। यह अवस्था जब प्राप्त होती है तब उसके सन्मुख हिंसक जन्तु भी हिंसावृत्ती भूल जाते हैं। आत्मोन्नतिके लिये इस प्रकार 'अद्रोह वृत्ती' की परम आवश्यकता रहती है।

अद्रोह वृत्ती केवल द्रोह निषेधको ही व्यक्त करती है, ऐसा कोई न समझे। द्रोह निषेधकी अपेक्षा 'दूसरोंका सुख बढानेके लिये आत्मसमर्पण' करनेकी इस वृत्तीमें आवश्यकता है। अहिंसा अद्रोह ये शब्द केवल हिंसा निवृत्ती ही नहीं बताते, प्रत्युत जनताकी सेवा करने द्वारा जो भगवानकी सेवा होती है, उसके करने की भी इसमें आवश्यकता है।

सत्य का मार्ग।

अहिंसाके साथ 'सत्य,' का मार्ग भी इस सूक्तमें बताया है। परमात्माको 'सत्यस्य सूनुः' कहा है, यहां 'सूनु' शब्दका अर्थ (सु-प्रसवे) प्रसव करना है। सत्यका

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

प्रसव करनेका तात्पर्य सत्य मानना, सत्य बोलना और सत्य करना, अर्थात् सत्यरूप बनना है। परमात्मा सत्यका प्रवर्तक है, ऐसा कहनेसे ईश्वर भक्तको उचित है कि वह सत्यनिष्ठ बने। अपनी उन्नतिके लिये सत्यकी अत्यंत आवश्यकता है।

अहिंसा वृत्ति और सत्यनिष्ठा इन दो भावनाओंसे मनुष्यकी उन्नति हो सकती है और परमात्माका साक्षात्कार होता है।

दो मार्ग।

अहिंसा और सत्य ये दो प्रशंसनीय मार्ग हैं, इनसे ही मनुष्यमात्रका इहपरलोकमें कल्याण हो सकता है। इन दो मार्गोंके विषयमें इस सूक्तमें इस प्रकार कहा है।—

उभे सुश्रुती सुगातवे सः भूरि अमृतानि साविषत्। (मं० ३)

"दोनों उत्तम प्रशंसनीय मार्गोंपरसे (सु) उत्तम रीतिसे (गातवे) जाने के लिये वह परमात्मा बहुत सुखसाधन हमें देता है।" यही उसकी अपार दया है। इस जगत्में उसने अनंत सुखसाधन निर्माण किये हैं, और मनुष्योंको दिये हैं। इस का उद्देश्य यह है कि मनुष्य उन सुखसाधनों का अवलंबन करके अहिंसा और सत्यके साधनद्वारा अपनी उन्नतिका साधन करे और अन्तमें परमात्माको प्राप्त करे। परमेश्वरकी अपार दया इस प्रकार अनुभव करके उसके उपर दृढ श्रद्धा रखनी योग्य है।

उक्त दो मार्ग ऐहिक अभ्युदयसाधन और पारमार्थिक निःश्रेयससाधन ये भी हो सकते हैं। धर्मके ये दो अंग ही हैं। परमात्माने इस जगत् में जो सुखसाधन निर्माण किये हैं उनको लेकर अभ्युदय और निःश्रेयस साधन करके परमगतिको मनुष्य प्राप्त हो।

अथर्वाका अनुयायी।

इस सूक्तका उपदेश 'आ-थर्वण' के लिये किया है। 'थर्व'का अर्थ कुटिलता, हिंसा, चंचलता आदि। 'अ+थर्व' का अर्थ है 'अकुटिलता, अहिंसा और स्थिरता' जो मनुष्य अकुटिलता और अहिंसा वृत्तीसे चलते हुए मनःस्थैर्य प्राप्त करते हैं अर्थात् योगमार्गका अनुष्ठान करके चित्तवृत्तियोंका निरोध करते हैं, उनको अथर्वा कहते हैं। इस योगमार्गके जो अनुयायी होते हैं, उनको 'आथर्वण' कहते हैं। इन आथर्वणोंकी उन्नति किस प्रकार होती है, इसका वर्णन इस सूक्तमें किया है। इस दृष्टिसे पाठक इस सूक्तका विचार करेंगे, तो उनको आत्मोन्नतिके वेदप्रतिपादित योगमार्गका ज्ञान हो सकता है।

आशा है कि पाठक इस सूक्तसे अहिंसा और सत्यका महत्त्व जानकर उसके अवलंबनसे अपनी उन्नतिका साधन करें और वेदका उपदेश अपने दैनिक आचरणमें लाकर इहपरलोकमें परम उन्नति प्राप्त करें।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

विजयी इन्द्र।

[२]

(ऋषिः- अथर्वा। देवता- सोमः, वनस्पतिः।)

इन्द्राय सोममृत्विजः सुनोता च धावत।
स्तोतुर्यो वचः शृणवद्धवं च मे ॥ १ ॥
आ यं विशन्तीन्दवो वयो न वृक्षमन्धसः।
विरप्शिन् वि मृधो जहि रक्षस्विनीः ॥ २ ॥
सुनोता सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे।
युवा जेतेशानः स पुरुष्टुतः ॥ ३ ॥

अर्थ- हे (ऋत्विजः) ऋतुओंके अनुकूल यज्ञ करनेवालो! (इन्द्राय सोमं सुनोत) इन्द्र के लिये सोमरस निचोडो, (च आ धावत) और उसको अच्छी प्रकार शोधो। (यः स्तोतुः मे वचः) जो स्तुति करनेवाले मेरी स्तुति और (हवं च) मेरी प्रार्थना (शृणवत्) सुने ॥ १ ॥

(यं अन्धसः इन्दवः) जिसके प्रति अन्नरसके अंश (आविशन्ति) पहुंच जाते हैं (वृक्षं वयः न) वृक्षके प्रति जैसे पक्षी जाते हैं। हे (विरप्शिन्) विज्ञानयुक्त वीर! (रक्षस्विनीः मृधः वि जहि) आसुरी वृत्तीके शत्रुओंको नाश कर ॥ २ ॥

(सोमपाव्ने वज्रिणे इन्द्राय) सोमपान करनेवाले शस्त्रधारी इन्द्रकेलिये (सोमं सुनोत) सोमका रस निचोडो। (सः पुरुष्टुतः जेता युवा ईशानः) वह प्रशंसनीय विजयी युवा ईश है ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे याजको! इन्द्र देवके लिये सोमरस निचोडो और उस रसको छानकर पवित्र बनाओ। वह प्रभु ऐसा है कि जो हमारी प्रार्थना सुनता है और हमारे मनोरथ पूर्ण करता है ॥ १ ॥

उसी प्रभुके प्रति यह सोमयज्ञ पहुंचता है। हे वीर! आसुरी भाववाले शत्रुओंको परास्त कर ॥ २ ॥

सोमपान करनेवाले वज्रधारी इन्द्रके लिये सोमरस तैयार करो। वही इन्द्र प्रशंसनीय विजयी युवा वीर है और वही सबका प्रभु है ॥ ३ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इन्द्रके लिये सोमरस।

सोमरस निकालकर उसको छानकर पवित्र करके उसका प्रभुके लिये समर्पण करना चाहिये और अवशिष्ट रहे हुए रसका स्वयं सेवन करना चाहिये। यह सोमरस बडा बलवर्धक, पौष्टिक, आरोग्यवर्धक, उत्साहवर्धक और तेजस्विता बढानेवाला है! ईश्वर को भक्तिपूर्वक समर्पण करनेके बाद अवशेष भक्षण करनेका महत्व इस सूक्तमें है।

तृतीय मंत्रमें "ईशान" शब्द है जो इन्द्र शब्दका विशेषण होनेसे यहांका वर्णन परमात्मपरक होनेका निश्चय कराता है। 'युध, जेता, इन्द्र' आदि शब्द भी उसी प्रभु-के वाचक प्रसिद्ध हैं।

रक्षाकी प्रार्थना।

[३]

(ऋषिः— अथर्वा। देवता—नानादेवताः)

पातं न इन्द्रापूषणादितिः पान्तु मरुतः।
अपां नपात् सिन्धवः सप्त पातन पातु नो विष्णुरुत द्यौः॥ १॥
पातां नो द्यावापृथिवी अभिष्टये पातु ग्रावा पातु सोमो नो अंहसः।
पातु नो देवी सुभगा सरस्वती पात्वग्निः शिवा ये अस्य पायवः॥२॥
पातां नो देवाश्विना शुभस्पती उषासानक्तोत न उरुष्यताम्।
अपां नपादभिह्रुती गयस्य चिद् देव त्वष्टर्वर्धय सर्वतातये॥ ३॥

अर्थ— (इन्द्रापूषणौ नः पातं) इन्द्र और पूषा ये दो देव हमारी रक्षा करें, (अदितिः मरुतः पान्तु) अदिति और मरुत् देव हमारी रक्षा करें। (अपां नपात, सप्त सिन्धवः पातन) मेघोंको न गिरानेवाला पर्जन्यदेव और सातों समुद्र हमारी रक्षा करें, (विष्णुः उत द्यौः नः पातु) व्यापक देव और द्युलोक हमें बचावे॥ १॥

(द्यावापृथिवी अभिष्टये नः पातां) द्युलोक और पृथिवी लोक अभीष्ट

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अवस्था प्राप्त होनेके लिये हमारी रक्षा करें। (ग्रावा सोमः नः अंहसः पातु) पत्थर और सोम औषधि हमें पापसे बचावें,(सुभगा सरस्वती देवी नः पातु) उत्तम ऐश्वर्यवाली विद्यादेवी हमारी रक्षा करे। (अग्निः पातु) अग्नि हमारी रक्षा करे और (ये अस्य पायवः) जो इसके रक्षक गुण हैं, वे भी हमारी रक्षा करें ॥ २ ॥

(शुभस्पती अश्विनौ देवौ नः पातां) उत्तम पालक अश्विनीदेव हमारी रक्षा करें। (उत उषासानक्ता नः उरुष्यतां) तथा उषा और रात्री हमारी रक्षा करें। (अपां नपात् त्वष्टः देव) हे जलोंको न गिरानेवाले त्वष्टा देव! (गयस्य अभिह्रुती चित्) घरकी दुरवस्थासे भी दूर करके (सर्वतातये वर्धय) सब प्रकारके विस्तारके लिये हमारी वृद्धि कर ॥ ३ ॥

देवोंद्वारा हमारी रक्षा।

इस सूक्तमें कई देवोंके नामोंका उल्लेख करके उनसे हमारी रक्षा होनेकी प्रार्थना की है। इसमें पृथ्वीस्थानीय देव ये हैं—

१ पृथिवी= भूमि जिसपर सब मानव जाती रहती है,
२ सप्त सिन्धवः= सात समुद्र, जिनमें जल भरा पडा है,
३ अग्निः, अस्य पायवःच= अग्नि और उसकी सब रक्षक शक्तियां,
४ सोमः= सोम आदि सब वनस्पतियां और औषधियां,
५ ग्रावा= पत्थर तथा अन्यान्य खनिज पदार्थ

ये पांच देव पृथिवी स्थानीय हैं, ये अपनी शक्तियोंसे हमारी रक्षा करें। इनके अन्दर विविध शक्तियां हैं, इसलिये उन शक्तियोंसे मनुष्यका सुख बढे ऐसा उपाय अवलंबन करना चाहिये। उदाहरण के लिये अग्निका उपयोग पाक करने आदि कार्योंमें करनेसे लाभ और गृहादिके जलानेमें करनेसे हानि होती है। इसी प्रकार अन्यान्य देवताओंके विषयमें जानना चाहिये। अब अन्तरिक्षस्थानीय देवोंके विषयमें देखिये—

६ इन्द्र= जो पर्जन्य देता है, विद्युत् का संचार करता है,
७ मरुतः= सब प्रकारके वायु, जो प्राणादि रूपसे सबकी रक्षा करते हैं,
८ अपां नपात= जलोंको मेघोंमें धारण करनेवाला देव,
९ त्वष्टा= जो तोडने मोडने का कार्य करता है और जो रूपोंको बनाता है,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ये देवभी विविध शक्तियोंके द्वारा मनुष्योंकी रक्षा करते हैं। इसलिये इनकी शक्तियोंसे मनुष्य का लाभ हो और कदापि हानि न हो ऐसा प्रबंध करना चाहिये। अब द्युस्थानीय देवताओंका विचार देखिये--

१० द्यौः= द्युलोक जहां सब तेजधारी सूर्यादि गोलक रहते हैं,

११ पूषा= सूर्य जो अपने किरणोंसे सबको पुष्ट करता है।

ये देव द्युलोक में रहते हुए मनुष्यकी रक्षा कर रहे हैं; इसी प्रकार अन्य देवोंके विषयमें देखिये--

१२ अश्विनौ= श्वास और उच्छ्वास, प्राण और अपान, तारक (जर्मरी), मारक (तुर्फरी) शक्ति, यह प्राण शक्ति है।

१३ उषासानक्ता = उषा और रात्री, यह काल है।

१४ सरस्वती= विद्या देवी, ज्ञानदेवता, शास्त्रविद्या, सभ्यता,

१५ अदितिः= अखंडित मूल शक्ति, और

१६ विष्णुः = सर्वव्यापक ईश्वर।

ये सब देव और देवताएं मनुष्यकी रक्षा करें। मनुष्यको चाहिये कि वह इनसे ऐसा व्यवहार करे, की जिससे इनकी शक्ति इसकी सहायक बने और कभी विरोधक न बने।

इनमें सब शक्ति एक अद्वितीय सर्वव्यापक देवसे आती है, तथापि मनुष्य का इन के साथ अलग अलग संबंध आता है, और इनसे मनुष्यके विविध कार्यसिद्ध भी होते हैं और इनका विरोध होनेसे मनुष्यकी बडी हानि भी होती है, इसलिये इनकी सहाय्यताकी याचना यहां की है।

दो उद्देश्य।

मानवी उन्नति के दो उद्देश्य हैं। (१) गयस्य अभिह्रुती = घरकी कुटिलता, हानि आदि दूर करना, और (२) सर्वतातये वर्धय = सब प्रकारका विस्तार होने के लिये बढना। उक्त देवताओंकी शक्तियों से ये दो उद्देश्य सिद्ध हों, ऐसा व्यवहार करना चाहिये। पूर्वोक्त देव अपने शरीरमें अंश रूपसे हैं, उनकी शक्तियोंकी उन्नति करके भी मनुष्यका बडा लाभ हो सकता है। इस सूक्तका विचार करनेसे इस ढंगसे बहुत लाभ हो सकता है।

अगला सूक्त भी इसी विषयका है, वह अब देखिये--

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

[४]

(ऋषिः—अथर्वा । देवता-नानादेवताः)

त्वष्टा मे दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः ।
पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रायमाणं सहः ॥ १ ॥
अंशो भगो वरुणो मित्रो अर्यमादितिः पान्तु मरुतः ।
अप तस्य द्वेषो गमेदभिह्रुतो यावयच्छत्रुमन्तितम् ॥ २ ॥
धिये समश्विना प्रावतं न उरुष्या ण उरुज्मन्नप्रयुच्छन् ।
द्यौ३ष्पितर्यावय दुच्छुना या ॥ ३ ॥

अर्थ--(त्वष्टा) सबका निर्माण करनेवाला, पर्जन्य, ब्रह्मणस्पति और (पुत्रैः भ्रातृभिः अदितिः) पुत्र और भाइयोंके साथ अदिती देवी, (मे दैव्यं वचः) मेरे देवोंके संबंधके वचनको सुनें, और (नः दुष्टरं त्रायमाणं सहः पातु) हमसबके अजेय और पालना करनेवाले बल की रक्षा करें ॥१॥

अंश, भग, वरुण, मित्र, अर्यमा, अदिति और मरुत देव ये सब देव मेरी (पान्तु) रक्षा करें । (तस्य अभिह्रुतः द्वेषः अपगमेत) उस शत्रुका कुटिल द्वेष दूर होवे । (अन्तितं शत्रुं यावयत) ये सब पास आये शत्रु को दूर भगा दें ॥ २ ॥

हे (अश्विनौ) अश्विदेवो ! (धिये नः सं प्रावतं) बुद्धिके लिये हमारी उत्तम रक्षा करो । हे (उरु-ज्मन्) विशेष गतिवाले ! (अप्रयुच्छन्) भूल न करता हुआ तूं (नः उरुष्य) हम सबकी रक्षा कर । हे (द्यौः पितः) द्युलोक के पालक ! (या दुच्छुना) यावय) जो दुर्गति है, उसको दूर कर ॥ ३ ॥

इस सूक्तमें पूर्व सूक्तमें कहे जो देवोंके नाम आगये हैं वे ये हैं- "त्वष्टा, अदिति, मरुतः"। जो देवोंके नाम पूर्व सूक्तमें नहीं आये वे ये हैं— " पर्जन्य, ब्रह्मणस्पति, अंश, भग, वरुण, मित्र, अर्यमा, द्यौष्पिता । " पूर्वके अनुसंधानसे ही इस सूक्तका अर्थ देखना चाहिये ।

१ पर्जन्यः = मेघ, जलदेनेवाला देव,
२ ब्रह्मणस्पतिः = ज्ञानका स्वामी, ज्ञान देनेवाला,
३ अंशः = प्रकाश देनेवाला,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

४ भगः = भाग्यवान्, भाग्य देनेवाला,

५ वरुणः = वरिष्ठ देव, सबसे श्रेष्ठ देव,

६ मित्रः = सबका हितकारी,

७ अर्य-मा = श्रेष्ठ कौन है इनका निश्चय करनेवाला,

८ द्यौष्पिता = द्युलोक का पालक देव।

९ पुत्रैः भ्रातृभिः सह अदितिः = लडकों और भाइयोंके समेत अदिति देवी। अखंडित मूल शक्तिका नाम अदिति देवी है, इससे सूर्यादि तेजके गोलक उत्पन्न होते हैं इस लिये ये इसके पुत्र हैं। तथा उसके समान जो हैं वे उसके भाई हैं। अर्थात् मूल प्रकृति अथवा मूल शक्ति और उससे उत्पन्न हुए सब पदार्थ इस मंत्र भागसे लेने योग्य हैं।

यह सब दैवी शक्तियोंका समूह हम सबकी रक्षा करे।

रक्षा का कार्य।

रक्षा करनेका क्या तात्पर्य है यह इस सूक्तमें बताया है, इसलिये इसके सूचक वाक्य देखिये। रक्षाके लिये अपनी बुद्धि उत्तम रहनी चाहिये। यह दर्शानेके लिये कहा है—

१ धिये नः सं प्र अवतं-'उत्तम बुद्धिके विस्तार होनेके लिये हम सबकी उत्तम प्रकार विशेष रक्षा करो।' मनुष्यको बुद्धिकी ही विशेष आवश्यकता है। मनुष्यकी रक्षा भी इसीलिये होनी चाहिये कि उसकी बुद्धि विशेष शुद्ध, पवित्र, निर्दोष और कुशाग्र हो और कभी हीन न हो। (मं० ३)

२ मे दैव्यं वचः- मेरा भाषण दिव्य हो, अर्थात् उसमें देवके गुणोंका वर्णन हो, शुद्ध भाव हो, और कभी हीन भाव न हो। वाणीकी इस प्रकार शुद्धी होनेसे ही ऊपर कही बुद्धिकी उन्नति हो सकती है। इस सूक्तमें एक वाणीका उल्लेख करके सब अन्य इंद्रियोंकी प्रवृत्ति शुद्ध करनेका उपदेश सूचित किया है। जिस नियमसे वाणीकी शुद्धि होती है, उसी नियमसे नेत्र कर्ण आदि अन्यान्य इंद्रियोंकी भी शुद्धी होती है। इंद्रियों-को शुभ कर्ममें सदा निमग्न रखनेसे ही सब इंद्रिय शुद्ध हो सकते हैं। यह नियम सब इंद्रियोंके विषयमें समानही है। अपने इंद्रियोंमें "दिव्य भाव" स्थिर करना चाहिये, यह इस विवरणका तात्पर्य है। इस प्रकार सब इंद्रियां शुद्ध होनेसे बुद्धि भी इसी कारण से शुद्ध होती है और विकसित होती है। (मं० १)

३ द्वेषः अपगमेत् = द्वेषभाव, निंदा करनेका स्वभाव, शत्रुत्व करनेका आशय अन्तःकरणसे दूर हो जावे। यह पवित्र बननेका मार्ग है। द्वेषभाव मनसे पूर्णतया हटा, तो मन शुद्ध हुआ। (मं० २)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

४ दुच्छुना यावय = सब दुर्गतिको दूर कर। अपने इंद्रिय हीन कर्मोंमें प्रवृत्त रहनेसेही सब प्रकार की दुर्गति प्राप्त होती हैं। इस लिये पूर्वोक्तप्रकार आत्मशुद्धि होगयी तो दुर्गति अपने पास कदापि रहेगी ही नहीं। (मं०३)

५ शत्रुं यावय = शत्रुको दूर भगा दे। अपने अंदर कामक्रोधादि शत्रु हैं, समाजमें कामी क्रोधी ये शत्रु हैं और राष्ट्रके भी शत्रु होते हैं। इन सब शत्रुओंको दूर करना चाहिये। पूर्वोक्तप्रकार आत्मशुद्धि करनेसे सब आंतरिक शत्रु दूर होते हैं, सामाजिक और अन्य शत्रु दूर करनेका उपाय भी वहांकी शुद्धता करनाही है। इस कार्यके लिये अपने अंदर बल चाहिये, उसका उपदेश इस प्रकार किया है-

६ नः दुष्टरं त्रायमाणं सहः = हमारे अन्दर शत्रुद्वारा पार करनेके लिये कठिण और जिससे अपनी रक्षा होती है इस प्रकारका बल हमारा हो। बलके दो लक्षण यहां कहे हैं, वह बल ऐसा चाहिये कि जिसका (दुः+तरं) उल्लंघन शत्रु न कर सके। जब शत्रु आक्रमण करे उस समय वह पूर्ण रीतिसे परास्त हो, ऐसा अपना बल रहना चाहिये। इसी प्रकार उस बलसे हरएक कठिन प्रसंगमें हमारी रक्षा होवे, ऐसा हमारा बल हमेशा रहना चाहिये। इस प्रकारका बल बढ जानेसे स्वयमेव सब शत्रु दूर होंगे।

इस प्रकार का बल बढाना ब्रह्मणस्पतिका कार्य है। ब्रह्मणस्पति यह ज्ञान और विज्ञान का देव है और वह अपने ज्ञानके दानसे पूर्वोक्त बल मनुष्योंमें बढाता है। इसीलिये उसकी उपासना और स्तुति प्रार्थना मनुष्यों को करनी चाहिये। उपासना के समय इस प्रकार का मनन करनेसे और श्रद्धाभक्तियुक्त अन्तःकरणसे उपासना करनेसे ये सब फल प्राप्त होते हैं।

यज्ञसे उन्नति

[५]

(ऋषिः-अथर्वा। देवता—इन्द्राग्नी)

उदे॑नमुत्त॒रं न॑याग्ने घृ॒तेना॑हुत।
समे॑नं॒ वर्च॑सा सृज प्र॒जया॑ च ब॒हुं कृ॑धि ॥ १ ॥
इन्द्रे॒मं प्र॑त॒रं कृ॑धि सजा॒ताना॑मसद् व॒शी।
रा॒यस्पोषे॑ण॒ सं सृ॑ज जी॒वात॑वे ज॒रसे॑ नय ॥ २ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

यस्यं कृण्मो हविर्गृहे तमग्ने वर्धया त्वम् ।
तस्मै सोमो अधि ब्रवदयं च ब्रह्मणस्पतिः ॥ ३ ॥

अर्थ-हे (घृतेन आहुत अग्ने) घीसे आहुती पाये हुए अग्नि! (एनं उत्तरं उन्नय) इस मनुष्यको अधिक ऊंचा उठा। (एनं वर्चसा संसृज) इसको तेजसे संयुक्त कर। (च प्रजया बहुं कृधि) और प्रजासे समृद्ध कर ॥ १ ॥

हे इन्द्र! (इमं प्रतरं कृधि) इस मनुष्यको ऊंचा कर। यह (सजातानां वशी असत्) यह मनुष्य स्वजातिके पुरुषोंके बीच सबको वशमें करनेवाला होवे। (रायस्पोषेण संसृज) इसको धन और पुष्टी उत्तम प्रकार प्राप्त हो और (जीवातवे जरसे नय) दीर्घजीवनके लिये बुढापेतक सुख पूर्वक लेजा ॥ २ ॥

हे अग्ने! (यस्य गृहे हविः कृण्मः) जिसके घरमें हम हवन करते हैं, (त्वं तं वर्धय) तूं उसको बढा; (सोमः अयं च ब्रह्मणस्पतिः) सोम और यह ब्रह्मणस्पति (तस्मै अधि ब्रवत्) उसको आशीर्वाद देवे ॥ ३ ॥

हवनसे आरोग्य।

जिसके घरमें हवन होता है उसकी वृद्धि होती है, और सब प्रकार की उन्नति होती है। इसके विषयमें देखिये—

१ एनं उत्तरं। = जिसे घरमें हवन होता है वह (उत्+तरः) अधिक उच्च बनता है, पूर्वकी अपेक्षा अधिक उन्नत होता है।

२ वर्चसा सं। = जिसके घरमें हवन होता है वह तेजस्वी होता है।

३ प्रजया बहुः। = जिसके घरमें हवन होता है उसको उत्तम संतानें होती हैं।

४ इमं प्रतरं। = जिसके घरमें हवन होता है, वह अधिक ऊंचा बनता है। हर एक प्रकारसे श्रेष्ठ होता जाता है।

५ सजातानां वशी = स्वजातियोंको अपने आधीन करनेवाला होता है, जो प्रतिदिन हवन करता है।

६ रायस्पोषेण सं = उसका धन बढता है और पुष्टी भी बढती है। वह हृष्ट पुष्ट होता है।

७ जीवातवे जरसे नय = उसको दीर्घ आयु प्राप्त होती है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अर्थात् जिसके घरमें हवन होता है उसकी हरएक प्रकारसे उन्नति होती है। प्रतिदिन उसको सुख और सौभाग्य प्राप्त होता है! इसलिये प्रतिदिन हवन करना लाभकारी है। हवनसे आरोग्य, बल, दीर्घआयु प्राप्त होकर, धन यश और अन्य सब प्रकार का अभ्युदय और निश्रेयस भी प्राप्त होता है।

शत्रुका नाश।

[६]

(ऋषिः- अथर्वा। देवता—ब्रह्मणस्पतिः, सोमः)

योऽ३स्मान् ब्रह्मणस्पतेऽदेवो अभिमन्यते।
सर्वं तं रन्धयासि मे यजमानाय सुन्वते॥ १॥
यो नः सोम सुशंसिनो दुःशंस आदिदेशति।
वज्रेणास्य मुखे जहि स संपिष्टो अपायति॥ २॥
यो नः सोमाभिदासति सनाभिर्यश्च निष्ट्यः।
अप तस्य बलं तिर महीव द्यौर्वधत्मना॥ ३॥

अर्थ— हे (ब्रह्मणस्पते) ज्ञानपते! (यः अदेवः अस्मान् अभिमन्यते) जो ईश्वरकी भक्ति न करनेवाला हमें नीचे करनेकी इच्छा करता है, (तं सर्वं) उस सब शत्रुको (सुन्वते यजमानाय मे रन्धयासि) सोमरससे यजन करनेवाले मेरे कारण नाश कर॥ १॥

हे सोम! (यः दुःशंसः) जो दुराचारी (सुशंसिनः नः आदिदेशति) सदाचार करनेवाले हम सबको आज्ञा करता है अर्थात् हमें आधीन करना चाहता है, (अस्य मुखे वज्रेण जहि) इसके मुखमें वज्रसे आघात कर, जिससे (सः संपिष्टः अप अयति) वह चूर चूर होकर दूर होवे॥ २॥

हे सोम! (यः सनाभिः) जो स्वजातीय (यः च निष्ट्यः) और जो सबसे नीचे बैठने योग्य नीच मनुष्य (नः अभिदासति) हमें दास बनाना चाहता है, अथवा हमारा घात करता है, (तस्य बलं वधत्मना अप तिर) उसके बलको अपने वधसाधनसे नीचे कर, (मही द्यौः इव) जिस प्रकार बडा द्युलोक अपने प्रकाशसे अंधकारको दूर करता है॥ ३॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

शत्रुका लक्षण।

इस सूक्त में शत्रुके लक्षण निम्नलिखित प्रकार दिये हैं—

१ अदेवः = जो एक अद्वितीय ईश्वर को नहीं मानता, देव की भक्ति नहीं करता जो नास्तिक और सत्य धर्मपर अविश्वास रखता है।

२ अभिमन्यते = जो अभिमान से भरा है, जो घमंडी है।

३ दुःशंसः = जिसके विषयमें सब लोग बुरा कहते हैं, सब लोग जिसकी निंदा करते हैं, अर्थात् जो अकेला सब का अहित करता है।

४ आदिदेशति = जो दूसरोंपर हुकुमत करनेका अभिलाषी है, जो दूसरोंको आज्ञा करना जानता है। जो दूसरों पर जिस किसी रीतिसे अधिकार जमाना चाहता है।

५ अभिदासति = जो दूसरोंको दास बनाना चाहता है, दूसरोंका नाश करता है, दूसरोंको लूटता है।

शत्रुके ये पांच लक्षण हैं। इन लक्षणोंसे बोधित होनेवाले शत्रुको दूर करना चाहिये, फिर वह (सनाभिः) स्वजातीय, अपने कुलमें उत्पन्न हुआ हो, अथवा (नि-ष्ट्यः) निकृष्ट जातीका अथवा किसी हीन कुलमें उत्पन्न अथवा आचारहीन हो, या कैसा भी हो, उसको दूर करना चाहिये।

अद्रोहका मार्ग।

[७]

(ऋषिः— अथर्वा। देवताः-सोमः, ३ विश्वेदेवाः)

येन॑ सो॒माादि॑तिः प॒था मि॒त्रा वा॒ यन्त्य॒द्रुहः॑।
तेना॒ नोऽव॒सा ग॑हि ॥ १ ॥
येन॑ सोम साह॒न्त्यासु॑रान् र॒न्धया॑सि नः।
तेना॑ नो॒ अधि॑ वोचत ॥ २ ॥
येन॑ देवा॒ असु॑राणा॒मोजां॒स्यवृ॑णीध्वम्।
तेना॑ नः॒ शर्म॑ यच्छत ॥ ३ ॥

अर्थ— हे (सोम) शान्तदेव! (येन पथा आदितिः) जिस मार्गसे यह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पृथिवी) वा मित्राः अद्रुहः यन्ति) अथवा सूर्य आदि देव परस्पर द्रोह न करते हुए चलते हैं, (तेन अवसा नः आगहि) उसी मार्गसे अपनी रक्षाके साथ हमें प्राप्त हो ॥ १ ॥

हे (साहन्त्य सोम) विजयी शक्तिसे युक्त सोम! (येन असुरान् नः रन्धयासि) जिससे असुरोंको हमारे लिये तू नष्ट करता है, (तेन नः अधि वोचत) उस शक्तिके साथ हमें आशीर्वाद दे ॥ २ ॥

हे (देवाः) देवो! तुम (येन असुराणां ओजांसि अवृणीध्वं) जिससे असुरोंके बलोंको निवारण करते हैं, (तेन नः शर्म यच्छत) उस बलसे हमें सुख दो ॥ ३ ॥

प्रार्थना!

अद्रोहका विचार।

हे शान्त और सुख दायक ईश्वर! जिस तेरे सुनियम के कारण सूर्य चन्द्रादि सब विविधलोक लोकान्तर एक दूसरे के साथ न टकराते हुए अपने मार्ग से भ्रमण करके कार्य कर रहे हैं, वह बल हमें दे। इस बलसे युक्त, उस विचारसे युक्त होते हुए हम एक दूसरे के साथ, आपसमें विरोध और लडाई न करते हुए, और अपना संघबल बढाते हुए हम अपनी उत्तम रक्षा कर सकेंगे। इस लिये " अद्रोहका विचार " हमारे में स्थिर हो जावे।

बलकी वृद्धि।

हे ईश्वर! जिस बलसे तू असुरों राक्षसों और दस्युओंको नष्ट करते हो; उस बलका दान करनेका आशीर्वाद हमें दो। अर्थात् वह बल हमें प्राप्त हो और इस बलके प्राप्त होनेसे हम पूर्वोक्त शत्रुओंको दूर कर सकेंगे।

हे ईश्वर! जिस बलसे शत्रुओंके बलोंको रोका जाता है, वह बल हमें प्राप्त हो, और उसके द्वारा हमें सुख प्राप्त हो।

तीन उपदेश।

इस सूक्त में " (१) आपसमें अद्रोह का व्यवहार करना, (२) अपना बल बढाना, (३) और शत्रुओंके बलोंको रोकना अथवा अपना बल उन से अधिक प्रभावशाली, करना " ये तीन उपदेश हैं। इससे निःसन्देह सुख प्राप्त

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हो सकता है। इस सूक्तमें इन बलोंकी प्रार्थना ईश्वरसे की है, इस कारण यह उत्तम प्रार्थनासूक्त है। इस में बलवाचक दो शब्द हैं, "सहः और ओजः"। इनमें 'सहः' शब्द मानसिक और आत्मिक बलका बोधक और "ओजः" शब्द शारीरिक अथवा पाशवी बल का वाचक है। अर्थात् अपना सब प्रकार का बल बढे, यह इस प्रार्थना का भाव है।

दम्पतीका परस्पर प्रेम।

[८]

(ऋषिः—जमदग्निः। देवता-कामात्मा)

यथा॑ वृ॒क्षं लि॒बु॑जा स॒मन्तं॑ परिषस्व॒जे।
ए॒वा परि॑ ष्वजस्व॒ मां यथा॒ मां का॒मिन्य॒सो यथा॒ मन्नाप॑गा॒ असः॑ ॥ १ ॥
यथा॑ सु॒प॒र्णः प्र॒पत॑न् प॒क्षौ नि॒हन्ति॒ भूम्या॑म्।
ए॒वा नि ह॑न्मि ते॒ मनो॒ यथा॒ मां का॒मिन्य॒सो यथा॒ मन्नाप॑गा॒ असः॑ ॥ २ ॥
यथे॒मे द्यावा॑पृथि॒वी स॒द्यः प॒र्येति॒ सूर्यः॑।
ए॒वा प॒र्येमि ते॒ मनो॒ यथा॒ मां का॒मिन्य॒सो यथा॒ मन्नाप॑गा॒ असः॑ ॥ ३ ॥

अर्थ—(यथा लिबुजा वृक्षं समन्तं परिषस्वजे) जिस प्रकार बेल वृक्षको चारों ओरसे लिपट जाती है, (एव मां परिष्वजस्व) इसप्रकार तू मुझे आलिंगन दे. (यथा मां कामिनी असः) जिससे तू मेरी कामना करनेवाली हो और (यथा मत् अपगा न असः) जिससे तू मुझसे दूर जानेवाली न हो ॥ १ ॥

(यथा प्रपतन् सुपर्णः) जैसे उडनेवाला पक्षी (भूम्यां पक्षौ निहन्ति) भूमीकी ओर अपने दोनों पंखोंको दबाता है, (एव ते मनः निहन्मि) इस प्रकार तेरा मन मेरे अंदर खींचता हूं, (यथा०) जिससे तू मेरी इच्छा करनेवाली और मुझसे दूर जानेवाली न हो ॥ २ ॥

(यथा इमे द्यावापृथिवी) जिस प्रकार इस द्युलोक और पृथ्वीलोकके बीच (सूर्यः सद्यः पर्येति) सूर्यका प्रकाश तत्काल फैलता है, (एव ते मनः पर्येमि) इसी प्रकार तेरे मनको मैं व्यापता हूं (यथा०) जिससे तू मेरी कामना करनेवाली और मुझसे दूर जानेवाली न हो ॥ ३ ॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

SPS Central Library Acc No. Srinagar

[९]

वाञ्छं मे तन्वं॑ पादौ॒ वाञ्छाक्ष्यौ॑ वाञ्छं॑ सक्थ्यौ॑ ।
अक्ष्यौ॑ वृषण्यन्त्याः केशा॒ मां ते॒ कामे॑न शुष्यन्तु ॥ १ ॥
मम॑ त्वा दोषणि॒श्रिषं॑ कृणोमि हृदय॒श्रिष॑म् ।
यथा॒ मम॒ क्रता॒वसो॒ मम॑ चि॒त्तमु॒पाय॑सि ॥ २ ॥
यासां॑ नाभि॑रारेह॑णं हृदि सं॒वन॑नं कृ॒तम् ।
गावो॑ घृतस्य॑ मा॒तरो॒ऽमूं सं वा॑नयन्तु मे ॥ ३ ॥

अर्थ— (मे तन्वं पादौ वाञ्छ) मेरे शरीरकी और दोनों पैरोंकी इच्छा कर, (अक्ष्यौ वाञ्छ) मेरे दोनों आंखों की इच्छा कर, (सक्थ्यौ वाञ्छ) दोनों जंघाओंकी इच्छा कर। (वृषण्यन्त्याः ते अक्ष्यौ केशाः) बल की इच्छा करती हुयी तेरी आंखें और बाल (कामेन मां शुष्यन्तु) कामसे मुझे सुखावें ॥ १ ॥

(त्वा मम दोषणिश्रिषं) तुझे मेरी भुजाओंमें आश्रित और (हृदयश्रिषं कृणोमि) हृदयमें आश्रय करनेवाली करता हूं। (यथा मम क्रतौ असः) जिससे तू मेरे कार्यमें दक्ष हो और (मम चित्तं उपायसि) मेरे चित्तके अनुसार चल ॥ २ ॥

(यासां) जिनसे (नाभिः) मिलना (आरेहणं) आनन्ददायक है और जिनके (हृदि संवननं कृतं) हृदयमें प्रेमकी सेवा है, (घृतस्य मातरः गावः) घी को निर्माण करनेवाली यह गौवें, (अमुं मे संवानयन्तु) इस स्त्री को मेरे साथ मिला देवें ॥ ३ ॥

स्त्री और पुरुष का प्रेम !

गृहस्थधर्ममें रहनेवाले स्त्री और पुरुष परस्पर प्रेम करें और सुखसे गृहस्थाश्रमका व्यवहार करें, यह उपदेश इन दोनों सूक्तोंमें कहा है।

अष्टम सूक्तमें कहा है कि स्त्री पुरुष गृहस्थाश्रममें परस्पर मिलकर रहें, एक दूसरेपर प्रेम करें और उनमें से कोई भी एक दूसरेसे दूर होनेका यत्न न करे। पुरुष यत्न करके अपनी स्त्रीका मन अपनी ओर आकर्षित करे और उसको अपने पास संतुष्ट रखे, जिससे वह वारंवार पतिगृहसे दूसरी ओर भाग न जावे। जिस प्रकार सूर्य इस जगत् में अपने प्रकाशसे फैला रहता है, इसी प्रकार पति भी ऐसा आचरण करे कि जिससे स्त्रीके मन-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri